(श्री:)

नेत्रपुष्पहर:

फिटकरीभुनी २ माशे नमकलाहौरी २ माशे

हीराकसी २ माशे - - बीजकटेरीकेफलके २ माशे।

(सफेद) कौडीके भस्मीहुनी १ माशे

सुरमाकाला २ माशे. बीजसिरसकालेके २ माशे।

बासेपानीमें घोटकर गोलीबनानी -

पं. गुजानन्दजी की दवाई · फूलेपर

कांच १ तोले शंखनाभि १ तो

चीनीमसली - १ तोले. शहदमें अंजना -

(कांस्यपात्रमें सिला)

शंकरदेवस्थ-पानक

ब्राह्मी. ३ =
शंखपुष्पी. ५ =
नीलोफर ५ =
चंदनसफेद ५ =
आंवला . ५ =
उन्नाव . ५ =
खस. ५ =
आजार ककडी . ऽ१
बे० कूटू ऽ१

जल ऽ।५ का
१५ रत्तीचना
सिता - ५

॥ श्रीः ॥

श्रीयुतभिषग्वरशार्ङ्गधरविरचिता

शार्ङ्गधरसंहिता ।

(चिकित्साग्रन्थ.)

मथुरानगरनिवासिपाठकज्ञातीयश्रीकन्हैयालालमाथुरपुत्रा-
ऽऽयुर्वेदोद्धारसम्पादकपण्डितदत्तरामचतुर्वेदिकृत--

भाषाटीका समेता ।

जिसको
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापेखानेमें
मैनेजर पं० शिवदुलारे वाजपेयीने मालिकके
लिये छापकर प्रसिद्ध किया.

संवत् १९७६, शके १८४१.

कल्याण-मुंबई

सब हक्क यन्त्रालयाधिकारीने स्वाधीन रक्खे हैं.

प्रस्तावना ।

शार्ङ्गधरके जीवनचरित्रको त्यागके हम इस ग्रन्थके विषयमें कुछ लिखते हैं । सबको विदित है कि, यह "शार्ङ्गधरग्रन्थ" ऋषिप्रोक्त नहीं है तथापि ऋषिप्रोक्तग्रन्थोंसे प्रतिष्ठामें न्यून नहीं है । इसी कारण एतद्देशीय वैद्योंने इसकी लघुत्रयीमें गणना की और इसको संहिता संज्ञा दी । क्यों न हो जब स्वयं ग्रंथकार प्रथमही प्रतिज्ञा करते हैं ।

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ।

अर्थात् जो प्रसिद्ध योग मुनीश्वरोंके कहे और वैद्योंके वारंवार अनुभव कियेहुए हैं उनका संग्रह सत्पुरुषोंके प्रसन्न करनेको शार्ङ्गधरनामा मैं करताहूं ।

इस लिखनेसे यह प्रयोजन है कि, यह शार्ङ्गधर ग्रन्थ ग्रन्थकारका स्वकपोलकल्पित नहीं है किंतु ऋषि मुनियोंके सर्वत्र प्रसिद्ध और प्राचीन आचार्योंके परिचित प्रयोग जो अत्यंत दुष्प्राप्य थे उनका संग्रहरूप यह ग्रन्थ अस्मदादि मूढ बुद्धिवालोंके निमित्त निर्माण किया । इस कारण इस ग्रन्थको ऋषिप्रोक्तही समझना ।

अब आप इसको ध्यान देकर देखिये कि, किस प्रणालीसे ग्रंथकारने इसे निर्माण किया है । देखिये प्रथम मंगलाचरणमें विलक्षणता कि अभीष्ट श्रीशिवको प्रणाम कर उनकी उपमा वैद्यके प्रयोजनीय और औषधोंपर घटित की । फिर मुनिप्रोक्त और चिकित्सकोंके आनुभविक प्रयोगसे यह कथनद्वारा ग्रंथकी उत्तमता दिखाय, रोगोंके निदानपंचकका दिग्दर्शनमात्र वर्णन कर, कर्षण बृंहणात्मक द्विविध चिकित्सा कही ।

परंतु वह चिकित्सा औषधके विना नहीं होसके इसवास्ते औषधोंकी अचिंत्यशक्तिके वर्णनसे सम्पूर्ण प्राणिमात्रको औषधमें पूर्ण विश्वास कराय दी । फिर औषध रोगोंकी करीजाती है इसवास्ते चतुर्विध रोगोंके भेद दिखलाय उनको शांतिकारी प्रयोगाचरण करे यह कहा । कदाचित् फिर भी रोगियोंको अश्रद्धा न हो इसवास्ते इस ग्रन्थके प्रयोगोंको सप्रमाणता दिखाई ।

---

१ बृहत्संहितामें लिखाहै—मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरंतनं साधु न मनुजग्रथितम् ॥
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ १ ॥

इस श्लोकका यह तात्पर्य है कि, यह ग्रंथ प्राचीन मुनियोंका बनाया है इससे उत्तम है और यह मनुष्यराचित है इससे श्रेष्ठ नहीं परंतु यह महान् भूल है। सिवाय वेदके अन्यग्रन्थमें एकसा अर्थ होनेसे इसका विचार नहीं है । इसी प्रकार वाग्भट ग्रंथके अंतमेंभी लिखा है उसको बुद्धिमान् देख लेवेंगे ।

फिर देखिये कि, बुद्धिमान् वह कहाता है जो पूर्वही विचारके कार्य आरंभ करता है नहीं कि, विचारा तो कुछ और लिखमारा कुछका कुछ इसवास्ते इस आचार्यने प्रथमही अपने कथनीय विचारको अनुक्रमणिका द्वारा लिख दिया है । फिर कोई पामरजन न्यूनाधिक करके इस ग्रन्थको न बिगाडे इससे—

द्वात्रिंशत्संमिताध्यायैर्युक्तेयंसंहितास्मृता ।
षड्विंशतिशतान्यत्रश्लोकानांगणनापिच ॥

यह लिखकर मानो इस ग्रन्थपर अपनी मुद्रा कर दी और २६०० छब्बीस सौ श्लोकोंकी संख्या लिखनेका तात्पर्य यह है कि, मैंने इस शार्ङ्गधरसंहितामें बत्तीस अध्याय और छब्बीस सौ श्लोक कहेहैं । इससे न्यूनाधिकको बुद्धिमान् पुरुष प्रक्षिप्त जाने अर्थात् वे मेरे बनाये नहीं हैं पीछेसे मिलाये गये हैं ।

फिर पूर्वोक्त अनुक्रमणिकाके अनुसार तोल, युक्तायुक्तविचार, औषधकी योजना आदि लिख औषध लानेकी विधि और औषधकी परीक्षा आदि लिखी है । फिर औषधग्रहणका काल, रस, वीर्य, विपाकादिका वर्णन, ऋतुवर्णन और उनमें दोषोंका संचय, कोप और शमन आदिका वर्णन करके फिर नाडीपरीक्षा, दीपन पाचनादि कहके आगे शारीर भाग संक्षेपसे दिखाय फिर मुख्य २ रोगोंकी गणना लिखी है ।

फिर दूसरे खंडमें पंचविध कषाय, तेल, चूर्ण, गुटिका, संधान तथा पारद आदि रसोपरसकी शुद्धि, तथा जारण मारण लिख साधारण रस लिखे हैं । फिर उत्तरखंडमें स्नेहपान, स्वेदन, वमन विरेचन, बस्तिकर्म, नस्य, धूमपान, गंडूष, कवल, प्रतिसार लेपादि और रुधिरमोक्षविधि कहके अंतमें नेत्रकर्माविधि लिखी है ।

इस प्रकार ग्रन्थका क्रम दूसरे किसी ग्रन्थमें नहीं है । इत्यादि गुणगुंफित ग्रन्थको देखा तो इस ग्रन्थकी सर्वत्र दुर्दशा देखी । ग्रन्थकर्त्ताके रचित करनेपरभी पामर जनोंने ऐसा बिगाडा कि, कुछ लिखा नहीं जाय । कहीं अधिक पाठ बढायादिया कहीं असलमें भी न्यून करदिया । फिर और देखिये कि, इन ग्रन्थशत्रु और हमारे देशके अवनतिकर्त्ता मूर्ख छापनेवालोंने सर्वनाश कर दिया कि, यदि ग्रन्थ शुद्धभी होय तथापि छापकर सर्वथा अशुद्ध करके भोले ग्राहकोंको ठगना । इसका मुख्य कारण यही है कि, वे मुसलमान, कायस्थ, बनियें, ढूँसर, खत्री, कहार, कलवार और इतर शूद्रादिक हैं जो संस्कृत लेशमात्रभी नहीं जानते । ऐसे छापनेवाले हिन्दीके लखनऊ, देहली, आगरा, मथुरा आदि शहरोंमें बेशुमार हैं परंतु पूना, बंबई, काशी, कलकत्ते आदिमें संस्कृत ग्रन्थ तथा स्वदेशभाषाके ग्रन्थ अतिपारिश्रमके साथ बहुतसी प्रतियोंको एकत्र कर शुद्ध करके छापते हैं उनको देशहितैषी अवश्य जानना । इत्यादि छापेके दोषसे इस

शार्ङ्गधरको अशुद्ध देखके हमने इसको शुद्ध करना विचारा तो कई प्रति एकत्र करी उनसे तथा इस ग्रंथकी दो संस्कृतटीका मिलीं एकका नाम गूढार्थदीपिका और दूसरीका नाम आढमल्ली । इनमें आढमल्ली टीका सर्वोत्तम और बहुधा दुष्प्राप्य है । इन सबसे प्रथम ग्रन्थका यथायोग्य शोधन करके उक्त टीकाओंकी सहायतासे इस शार्ङ्गधरकी माथुरीभाषाटीका निर्माण करी । यद्यपि यह टीका सर्वोत्तम नहीं है परंतु अन्य २ जो हिन्दी टीका छपी हैं उनसे सर्वप्रकार उत्कृष्ट है । हमारे कहनेसेही क्या है विद्वान् जन आपही कहदेवेंगे । जब यह ग्रंथ सटीक बनके तैयार होगया तनेहीमें श्रीयुतगोब्राह्मणप्रतिपालकवैश्यवंशकुलकैरवेन्दुश्रीवेंकटेशचरणकमलचंचरीक श्रेष्ठिवर्य्य कृष्णदासात्मज खेमराजजीका पत्र आया कि, आप इस शार्ङ्गधरकी भाषाटीका जल्दी बनाके भेजो । यह पत्र देखतेही चित्तको अत्यंत हर्ष हुआ और यह पुस्तक उनको अर्पण की ई । तो उन्होंनेभी हमारा दानमानसे पूर्ण सत्कार किया और इस ग्रन्थको निज “श्रीवेंकटेश्वर” त्रालयमें छापकर प्रकाशित किया । मित्रो ! यह वही पुस्तक आपके करकमलमें है जो कुछ भली और बुरी है आप देखलीजिये । इसमें जो कुछ शुद्धाशुद्ध रहगया है उसको आप मत्सरता त्यागके शोधन करदेना क्योंकि, भूलना यह मनुष्यका धर्म है ।

परंतु नीच और पामरोंमें “सुंदरमणिमयभवने पश्यति छिद्रं पिपीलिका सततम्” यह वाक्य रितार्थ होवेगा परंतु उनसे हमारी क्षति किसी प्रकार नहीं होसकती अलमतिविस्तरेण ।

आपका कृपाभाजन-

मथुरानिवासि पं० दत्तराम चौबे.

ॐ

शार्ङ्गधरसंहिताग्रन्थकी विषयानुक्रमणिका।

विषयाः .... पृष्ठांकाः

प्रथमखण्डः।

प्रथमोऽध्यायः।

आशीर्वादात्मक मंगलाचरण १
अन्यग्रंथोंसे इसकी उत्तमता और प्रामाणिकत्वकथन २
रोगपरीक्षाके अनंतर चिकित्सा करनेकी आज्ञा .... ,,
औषधियोंका प्रभावकथन ४
प्रयोजन .... ,,
प्रत्यक्षादि अविरुद्ध प्रयोगोंके कहनेसे और संक्षेप करनेसे इस ग्रंथका माहात्म्य ५
पूर्वखंडकी अनुक्रमणिका ६
मध्यमखंडकी अनुक्रमणिका ७
उत्तरखंडकी अनुक्रमणिका ... . ,,
संहिताकी निरुक्तिपूर्वक ग्रंथकी .... श्लोकसंख्या ८
औषधोंके मानकी परिभाषा ... . ,,

मागधपरिभाषा।

त्रसरेणुका परिमाण ८
परमाणुके लक्षण ९
मरीचिआदिके परिमाण .... ,,
मासेका परिमाण ... . ,,
शाण और कालका परिमाण ... ,,
कर्षका परिमाण १०
अर्द्धपल और पलका परिमाण .... ,,
प्रसृतिसे आदि ले मानिका पर्यंतकी संज्ञा .... ,,
प्रस्थका और आढकका परिमाण ११
द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतका परिमाण .... ,,
खारीका परिमाण .... ,,
भार और तुलाका परिमाण ११
सर्वमानज्ञापनार्थ एक श्लोक करके मानकथन .... ,,
गीली सूखी और दूध आदि पतली .... वस्तुकी तोल १२
कुडवपात्र बनानेकी रीति ... . ,,
प्रयोगके प्रथम औषधोंके नाम विशिष्ट प्रयोगोंका धरना ... . ,,

कलिंगपरिभाषा।

काल अग्नि वय और बलानुसार मात्रा देनेकी आज्ञा १३
भक्षणार्थ प्रथम कही हुई कलिंगपरिभाषाको दिखाना .... ,,
कलिंगपरिभाषाकी तोल ... ,,
कलिंग मागध मानमें मागधमानकी बड़ाई ....
औषधोंका युक्तायुक्तविचार ... ,,
जो औषध सदैव गीली लेनी उनका कथन ... ... ,,
साधारण औषधकी योजना ... १५
अनुक्तकालादिकोंकी योजना .... ,,
योगमें पुनरुक्त द्रव्यका मान .... ,,
चूर्णादिकोंमें कौनसा चंदन लेना ... ,,
सिद्ध करी हुई औषधके काल व्यतीत होनेसे गुणहीनत्व १६
रोगोंका उक्तानुक्त द्रव्यकथन .... ,,
द्रव्यहरणार्थ कालादिकथन १७
औषधग्रहणका काल १८
द्रव्योंके ग्राह्य अंग .... ,,
औषधोंका प्रसिद्ध अंगहरण .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः

द्वितीयोऽध्यायः ।

औषध भक्षणके पांच काल ... १९
प्रथम काल २०
द्वितीय काल .... ,,
तृतीय काल २१
चतुर्थ काल .... ,,
पंचम काल ... . ,,
द्रव्यमें रसादिकोंकी विशेष अवस्था-कथन २२
रसका स्वरूप .... ,,
रसोंकी उत्पत्तिक्रम २३
गुणोंके स्वरूप ... ... ,,
वीर्यका स्वरूप .... ,,
विपाकका स्वरूप .... ,,
प्रभावका स्वरूप .... ,,
रसादिकोंकी उत्कृष्टता .... ,,
वातादि दोषोंका संचय प्रकोप और शमन २५
ऋतुओंके नाम ... . ,,
ऋतुभेद करके वातादि दोषोंका संचय कोप और शमन .... ,,
दोषोंका अकालमें भी चयादि निमित्त कारण कथन २७
वायुका प्रकोप तथा शमन २८
पित्तकोप और शमन .... ,,
कफका कोप और शमन .... ,,

तृतीयोऽध्यायः ।

नाडीपरीक्षा २९
दोषोंके निजस्वरूपकी चेष्टा .... ,,
सन्निपात और द्विदोषकी नाडी ३०
असाध्यनाडीलक्षण .... ,,
ज्वरादिकोंकी नाडीके लक्षण .... ,,
उत्तमप्रकृतिके लक्षण ३१
दूतपरीक्षा .... ,,
दूतके शकुन ३२
वैद्यके शकुन .... ,,
दुष्टस्वप्न ३४
दुःस्वप्नका परिहार ३५
शुभस्वप्न .... ,,

चतुर्थोऽध्यायः ।

दीपन पाचन औषधी ३६
संशमन औषधी.... .... ३७
अनुलोमन औषधी .... ,,
स्रंसन औषधी .... ,,
भेदन औषधी ३८
रेचन औषधी .... ,,
वमन औषधी .... ,,
संशोधन औषधी ३९
छेदन औषधी .... ,,
लेखन औषधी .... ,,
ग्राही औषधी ४०
स्तंभन औषधी .... ,,
रसायन औषधी ... ... ,,
बाजीकरण औषधी ४१
धातुवृद्धिकारी औषधी .... ,,
धातुको चैतन्य करता तथा वृद्धिकारी औषधी .... ,,
वाजीकरण औषधोंकी विशेषता .... ,,
सूक्ष्म औषधी ४२
व्यवायी औषधी.... .... ,,
विकाशी औषधी... .... ,,
मदकारी औषधी ... . ,,
प्राणहारक औषधी ४३
प्रमाथी औषधी.... .... ,,
अभिष्यंदीलक्षण.... .... ,,

पंचमोऽध्यायः ।

कलादिकथन ४४
कलाओंकी व्यवस्था ४५

विषयाः पृष्ठांकाः

आशय ४५
रसादि सात धातुओंका विवरण ४६
धातुओंके मल ४७
मनुष्यकी उपधातु ४८
सप्तत्वचा .... ,,
वातादि दोषत्रय.... .... ४९
वायुका प्रधानतापूर्वक विवरण .... ,,
पित्तका विवरण ५०
कफका विवरण ५१
स्नायुके कार्य ५२
संधिके लक्षण .... ,,
अस्थिके कार्य ५३
मर्मके कार्य .... ,,
शिराओंके कार्य .... ,,
धमनीके कार्य .... ,,
पेशीके कार्य ५४
कंडराके कार्य ... . ,,
रंध्रों (छिद्रों) का विवरण .... ,,
फुफ्फुसादिकोंका विवरण ५५
तिलके लक्षण .... ,,
बृक्कके लक्षण ... . ,,
वृषणके लक्षण .... ,,
लिंगके लक्षण ... . ,,
हृदयके लक्षण ५६
शरीरपोषणार्थ व्यापार .... ,,
प्राणवायुका व्यापार ५७
आयुके और मरणके लक्षण ५८
वैद्यको क्या कर्तव्य है .... ,,
साध्यव्याधिका यत्न न करनेसे अवस्थांतरकथन ५९
चारपदार्थसाधन भूतकी रक्षा करना .... ,,
दोषोंकी सम और विषम अवस्थाकथन .... ,,
सृष्टिक्रमवर्णन ६०

विषयाः पृष्ठांकाः

प्रकृति कैसे विश्व निर्माण करैहै तथा पुरुषको कर्तृत्व कैसे है यह कहते हैं... .... ६०
एकसे कार्यकी उत्पत्तिक्रम कहते हैं ६१
त्रिविध अहंकारके कार्य .... ,,
तन्मात्राओंकी उत्पत्ति .... ,,
तन्मात्रापंचकोंका विशेष ६२
भूतपंचकोंकी उत्पत्ति .... ,,
इंद्रियोंके विषय .... ,,
मूलप्रकृतिके पर्यायनाम ६३
चौबीस तत्त्व राशिको पृथक् निकालके कथन .... ,,
षोडश विकार .... ,,
चौबीस तत्त्वराशि .... ,,
जीवके बंधन ६४
काम.... ... . ,,
क्रोध.... .... ,,
लोभ .... ,,
मोह ६५
अहंकार .... ,,
बंधन अबंधन व्याधि और आरोग्यके लक्षण .... ,,

षष्ठोऽध्यायः।

आहारकी गति और अवस्था ६५
उक्त आहारकी दो अवस्था.... .... ६६
रस और आमके कार्य ... ... ,,
आहारके सारको कहकर निःसारका कथन ६७
मलका अधोगमन ... . ,,
सारभूत रसकाभी कार्यंत्र करके स्थानांतरप्राप्तिकथन .... ,,
रक्तको प्राधान्य ६८
रसादि धातुओंकी उत्पत्ति ... . ,,
गर्भोत्पत्तिक्रम .... ,,
पुत्रकन्या होनेमें कारण ६९

विषयाः पृष्ठांकाः

बालककी मात्राका प्रमाण ६९
अंजनादि करनेका काल ७०
वमन विरेचनादि कर्म ... . ,,
बाल्यादि दशपदार्थोंका ह्रास ७१
वातप्रकृति मनुष्यके लक्षण .... ,,
पित्तप्रकृति मनुष्यके लक्षण ... . ,,
कफप्रकृतिवालेके लक्षण .... ,,
द्विदोषज और त्रिदोषज-प्रकृतिके लक्षण ७२
निद्रादिकोंकी उत्पत्ति .... ,,
ग्लानिके लक्षण .... ,,
आलस्यके लक्षण .... ,,
जम्भाईके लक्षण.... .... ७३
छींकके लक्षण .... ,,
डकारके लक्षण .... ,,

सप्तमोऽध्यायः ।

रोगगणना कथन.... .... ७३
ज्वररोग संख्या ७४
अतिसार रोग ७६
संग्रहणी ... ... ,,
प्रवाहिका रोग ७७
अजीर्ण रोग .... ,,
अलसक विषूच्यादि रोग ७८
मूलव्याधि (बवासीर) .... ,,
चर्मकील रोग ८०
कृमिरोग .... ,,
पांडुरोग ८१
कामला कुंभकामला व हलीमकरोग ८२
रक्तपित्तरोग ... . ,,
कासरोग ८३
क्षयरोग ८४
शोषरोग ८५
श्वासरोग .... ,,
हिक्कारोग ८६

विषयाः पृष्ठांकाः

जठराग्निके विकार ८६
अरोचक रोग ८७
छर्दिरोग .... ,,
स्वरभेद ८८
तृष्णारोग ८९
मूर्च्छारोग .... ,,
भ्रम-निद्रा-तंद्रा-संन्यास रोग ९०
मदरोग .... ,,
मदात्ययरोग ९१
दाहरोग ९२
उन्मादरोग .... ,,
भूतोन्मादरोग ९३
अपस्माररोग ९५
आमवातरोग ... . ,,
शूलरोग ९६
परिणामशूलरोग ९७
उदावर्तरोग ... . ,,
आनाह रोग ९८
उरोग्रह और हृदय रोग ९९
उदररोग .... ,,
गुल्मरोग १००
मूत्राघातरोग १०२
मूत्रकृच्छ्ररोग १०३
अश्मरीरोग १०४
प्रमेहरोग १०५
सोमरोग १०६
प्रमेहपिटिका .... ,,
मेदोरोग १०७
शोथरोग १०८
वृद्धिरोग १०९
अंडवृद्धिरोग ११०
गंडमाला गलगंड और अपचीरोग .... ,,
ग्रंथिरोग .... ,,
अर्बुदरोग १११

विषयाः .... पृष्ठांकाः

श्लीपदरोग ११२
विद्रधिरोग .... ,,
व्रणरोग ११३
आगंतुकव्रणरोग ११४
कोष्ठरोग .... ,,
अस्थिभंगरोग ११५
वह्निदग्धरोग .... ,,
नाडीव्रणरोग ११६
भगंदररोग .... ,,
उपदंशरोग ११७
शूकरोग ११८
कुष्ठरोग ११९
क्षुद्ररोग विस्फोटक और मसूरिका रोग १२१
विसर्परोग १२६
शीतपित्तरोग १२८
अम्लपित्तरोग .... ,,
वातरक्तरोग १२९
वातरोग १३०
पित्तरोग १३५
कफरोग १३७
रक्तरोग १३८
ओष्ठरोग .... ,,
दंतरोग १३९
दंतमूलरोग १४०
जिह्वारोग १४१
तालुरोग १४२
गलरोग .... ,,
मुखान्तर्गतरोग १४३
कर्णरोग १४४
कर्णपालिरोग १४५
कर्णमूलरोग १४६
नासारोग .... ,,
शिरोरोग १४८
कपालरोग १४९

विषयाः .... पृष्ठांकाः

वर्त्मरोग १५०
नेत्रसंधिगतरोग १५२
नेत्रके सपेद बबूलेके रोग .... ,,
नेत्रके काले बबूलेके रोग १५३
काचबिंदुरोग १५४
तिमिर रोग १५५
लिंगनाशरोग .... ,,
दृष्टिरोग १५६
अभिष्यंदरोग १५७
अधिमंथरोग .... ,,
सर्वाक्षिरोग .... ,,
षढरोग १५८
शुक्रदोष १५९
स्त्रियोंके आर्त्तवदोष १६०
प्रदररोग .... ,,
योनिरोग १६१
योनिकंदरोग १६२
गर्भके रोग .... ,,
स्तनरोग १६३
स्त्रीदोष १६४
प्रसूतिरोग .... ,,
बालरोग .... ,,
बालग्रह १६६
अनुक्तरोगोंका संग्रह १६७
पंचकर्मोंके मिथ्यादियोग होनेवाले रोग १६८
स्नेहादिकसे होनेवाले रोग .... ,,
शीतादिकोंसे होनेवाले रोग १६९
विषरोग .... ,,
विषके भेद १७०
अन्यविषके भेद .... ,,
उपद्रव .... ,,
आगंतुक भेद .... ,,

इति प्रथमखंडः।

विषयाः पृष्ठांकाः

द्वितीयखण्डः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

पांच काढे १७२
स्वरस ... . ,,
स्वरसकी दूसरी विधि .... ,,
स्वरसकी तीसरी विधि १७३
स्वरसमें औषध डालनेका प्रमाण .... ,,
अमृतादि स्वरस प्रमेहपर .... ,,
वासकादिस्वरस रक्तपित्तादिकोंपर .... ,,
तुलसी और द्रोणपुष्पीका स्वरस विषमज्वरपर १७४
जम्ब्वादिस्वरस रक्तातिसारपर .... ,,
स्थूलबब्बूलीस्वरस सर्वअतिसारोंपर .... ,,
आर्द्रकका स्वरस वृषणवात और श्वासपर .... ,,
बिजौरेका स्वरस पार्श्वादिशूलोंपर .... ,,
शतावरका स्वरस पित्तशूलपर तथा घीकुबारका स्वरस तिल्लीपर १७५
अलंबुषादि रस गंडमालापर .... ,,
शशमुंडरस सूर्यावर्त्तादिकोंपर .... ,,
ब्राह्म्यादिका रस उन्मादरोगपर .... ,,
कूष्मांडकरस मदरोगपर १७६
गांगेरुकीस्वरस व्रणरोगपर .... ,,
पुटपाक कहनेका कारण ... . ,,
पुटपाक बनानेकी युक्ति .... ,,
कुटजपुटपाक सर्वातिसारोंपर १७७
चावलोंके धोनेकी विधि .... ,,
अरलुपुटपाक ... . ,,
न्यग्रोधादि पुटपाक १७८
दाडिमादि पुटपाक .... ,,
बीजपूरादि पुटपाक .... ,,
अडूसेका पुटपाक .... ,,
कंटकारी पुटपाक १७९
बिभीतक पुटपाक .... ,,
शुंठिपुटपाक आमातिसारपर ... ,,
दूसरा शुंठीपुटपाक .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः

सूरणपुटपाक बवासीरपर १८०
मृगशृंगपुटपाक हृदयशूलपर .... ,,

द्वितीयोऽध्यायः ।

काढे करनेकी विधि १८०
काढेमें खांड और सहत डालनेका प्रमाण १८१
काढेमें जीरा आदि करडे और दूध आदि पतले पदार्थ मिलानेका प्रमाण ... . ,,
काढेमें पात्रको ढकनेका निषेध .... ,,
गुडूच्यादि काढा सर्व ज्वरपर ... ,,
नागरादि वा शुंठ्यादि काढा सर्व ज्वरपर १८२
क्षुद्रादिक्काथ .... ,,
गुडूच्यादिक्काथ... .... ,,
शालपर्ण्यादि काढा वातज्वरपर .... ,,
काश्मर्यादि क्वाथ वातज्वरपर .... ,,
कट्फलादि पाचन पित्तज्वरपर ... १८३
पर्पटादिकाढा पित्तज्वरपर .... ,,
द्राक्षादि काढा पित्तज्वरपर.... .... ,,
बीजपूरादि पाचन कफज्वर .... ,,
भूनिंबादि क्वाथ कफज्वरपर .... ,,
पटोलादि काढा कफज्वरपर १८४
पर्पटादि काढा वातपित्तज्वरपर .... ,,
लघुक्षुद्रादि काढा वातकफज्वरपर .... ,,
आरग्वधादि काढा वातकफज्वरपर .... ,,
अमृताष्टक पित्तश्लेष्मज्वरपर .... ,,
पटोलादि काढा पित्तकफज्वरपर १८५
कंटकार्यादि पाचन सर्वज्वरपर .... ,,
दशमूलादिकाढा वातकफज्वरादिपर .... ,,
अभयादि काढा त्रिदोषज्वरपर १८६
अष्टादशांग काढा सन्निपातादिकोंपर .... ,,
यवान्यादि काढा श्वासादिकोंपर ... ,,
कट्फलादि काढा कासआदिपर ... १८७
गुडूच्यादि काढा तथा पर्पटादि काढा.... ,,
निदिग्धिकादि काढा .... ,,
देवदार्वादि काढा प्रसूतदोषपर .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः

क्षुद्रादि काढा सर्व शीतज्वरोंपर १८८
मुस्तादि काढा विषमज्वरपर ... ,,
पटोलादि काढा ऐकाहिकपर .... ,,
तथा .... ,,
गुडूच्यादि काढा तृतीयज्वरपर ... १८९
देवदार्वादि काढा चातुर्थिकज्वरपर .... ,,
गुडूच्यादि काढा ज्वरातिसारपर ,,
नागरादि काढा ज्वरातिसारपर १९०
धान्यपंचक आमशूलपर .... ,,
धान्यकादि काढा दीपन पाचनपर ,,
वत्सकादि काढा आमातिसार और रक्तातिसारपर .... ,,
कुटजाष्टक काढा अतिसारादिकोंपर ,,
ह्रीबेरादि काढा अतिसारादि रोगोंपर १९१
धातक्यादि काढा बालकोंके सर्व अतिसारोंपर .... ,,
शालपर्ण्यादि काढा संग्रहणीपर .... ,,
चतुर्भद्रादि काढा आमसंग्रहणीपर ,,
इन्द्रयवादि काढा सब अतिसारोंपर ,,
त्रिफलादि काढा कृमिरोगपर १९२
फलत्रिकादि काढा कामला पांडुरोगपर .... ,,
पुनर्नवादि काढा पांडु कासादिरोगोंपर .... ,,
वासादि काढा.... .... ,,
वासेका काढा रक्तपित्त क्षयादिपर १९३
वासादि काढा ज्वरखांसीपर .... ,,
क्षुद्रादि काढा खांसीपर .... ,,
क्षुद्रादि काढा श्वास खांसीपर .... ,,
रेणुकादि काढा हिक्कापर .... ,,
हिंग्वादि काढा गृध्रसी रोगपर .... ,,
बिल्वादि वा गुडूच्यादि क्वाथ १९४
रास्नादि पंचकक्वाथ सर्वांगवातपर .... ,,
रास्नासप्तक .... ,,
महारास्नादि काढा संपूर्ण वायुपर .... ,,
एरंडसप्तक स्तनादिगतवायुपर १९५
नागरादि काढा वातशूलपर .... ,,
त्रिफलादि काढा पित्तशूलपर १९६
एरंडमूलादि काढा कफशूलपर ... ,,
दशमूलादि काढा हृद्रोगादिकोंपर .... ,,
हरीतक्यादि काढा मूत्रकृच्छ्रपर .... ,,
वीरतर्वादि काढा मूत्राघातादिकोंपर ... ,,
एलादि काढा पथरीशर्करादिकोंपर १९७
गोक्षुरादि क्वाथ मूत्रकृच्छ्रपर .... ,,
त्रिफलादि काढा प्रमेहपर.... .... ,,
दूसरा फलत्रिकादि काढा प्रमेहपर १९८
दार्व्यादि काढा प्रदररोगपर .... ,,
न्यग्रोधादि काढा व्रणादिकोंपर .... ,,
बिल्वादि काढा मेदरोगपर .... ,,
दूसरा त्रिफलादि काढा १९९
चव्यादि काढा उदररोगपर .... ,,
पुनर्नवादि काढा शोथोदरपर .... ,,
पथ्यादि काढा यकृत्प्लीहादि रोगोंपर .... ,,
पुनर्नवादि काढा सूजनपर.... .... २००
त्रिफलादि काढा वृषणशोथपर .... ,,
रास्नादि काढा अंत्रवृद्धिपर .... ,,
कांचनारादि काढा गंडमालापर .... ,,
शाखोटकादि काढा श्लीपद और मेदरोगपर .... ,,
पुनर्नवादि काढा अंतर्विद्रधिपर २०१
वरुणादि काढा मध्यविद्रधिपर .... ,,
वरुणादि काढा .... ,,
ऊषकादि गण.... .... २०२
खदिरादि काढा भगंदररोगपर .... ,,
पटोलादि काढा उपदंशपर .... ,,
अमृतादि काढा वातरक्तपर .... ,,
दूसरा पटोलादि काढा .... ,,
अवल्गुजादि काढा श्वेतकुष्ठपर २०३
लघुमंजिष्ठादि काढा वातरक्तकुष्ठादिकोंपर .... ,,
बृहन्मंजिष्ठादि काढा कुष्ठादिकोंपर .... ,,

विषयाः .... पृष्ठांकाः
पथ्यादि काढा शिरोरोगादिकोंपर २०४
वासादि काढा नेत्ररोगपर .... ,,
दूसरा अमृतादि काढा २०५
व्रणादि प्रक्षालन करनेका काढा .... ,,
प्रमथ्यादिकषायभेद .... ,,
मुस्तादिप्रमथ्या रक्तातिसारपर .... ,,
यवागूका विधान २०६
आम्रादियवागू संग्रहणीपर.... .... ,,
यूष .... ,,
सप्तमुष्टिक यूष संनिपातादिकोंपर ... ,,
पानादिक कल्पना २०७
उशीरादि पानक पिपासाज्वरपर .... ,,
गरमजलकी विधि ज्वरादिकोंपर .... ,,
रात्रिमें गरमजल पीनेकी विधि .... ,,
दूधके पाककी विधि आमशूलपर २०८
पंचमूलीक्षीरपाक सर्वजीर्णज्वरोंपर .... ,,
त्रिकंटकादिक्षीरपाक .... ,,
अन्नस्वरूपयवागू २०९
विलेपीके लक्षण और गुण .... ,,
पेयालक्षण .... ,,
भात करनेका प्रकार .... ,,
शुद्धमंड २१०
अष्टगुणमंड .... ,,
वाट्यमंड कफपित्तादिकोंपर ... ,,
लाजामंड कफपित्तज्वरादिकोंपर २११

तृतीयोऽध्यायः ।

फांटविधि २११
मधूकादि फांट वातपित्तज्वरपर ... ,,
आम्रादिफांट पिपासादिकोंपर २१२
मधूकादि फांट पित्ततृष्णादिकोंपर .... ,,
मंथकल्पना .... ,,
मंथकी विधि २१३
खर्जूरादिमंथ सर्वमद्यविकारोंपर ... ,,
मसरादिमंथ वमनरोगपर .... ,,
यवोंका मंथ तृष्णादिकोंपर २१३

चतुर्थोऽध्यायः ।

हिमकल्पना २१४
आम्रादिहिम रक्तपित्तपर .... ,,
मरिचादिहिम तृष्णादिकोंपर .... ,,
नीलोत्पलादिहिम वातपित्तज्वरपर .... ,,
अमृतादिहिम जीर्णज्वरपर ... २१५
वासाहिम रक्तपित्तज्वरपर .... ,,
धान्यादिहिम अंतर्दाहपर .... ,,
धान्यादिहिम रक्तपित्तादिकोंपर .... ,,

पञ्चमोऽध्यायः ।

कल्ककी कल्पना २१५
वर्धमानपिप्पली पांडुरोगादिकोंपर २१६
निंबकल्क व्रणादिकोंपर .... ,,
महानिंबकल्क गृध्रसीपर .... ,,
रसोनकल्क वायु और विषमज्वरपर २१७
दूसरा रसोनकल्क वातरोगपर .... ,,
पिप्पल्यादि कल्क ऊरुस्तंभादिकोंपर २१८
विष्णुक्रांताकल्क परिणामशूलपर ... ,,
दूसरा शुंठीकल्क .... ,,
अपामार्गकल्क रक्तार्शपर .... ,,
बदरीमूलकल्क रक्तातिसारपर २१९
लाक्षाकल्क रक्तक्षयादिकोंपर .... ,,
तंदुलीयकल्क रक्तप्रदरपर .... ,,
अंकोलकल्क अतिसारपर .... ,,
कर्कोटिकाकल्क विषोंपर .... ,,
अभयादिकल्क दीपनपाचनपर २२०
त्रिवृतादि कल्क कृमिरोगपर .... ,,
नवनीतकल्क रक्तातिसारपर .... ,,
मसूरकल्क संग्रहणीपर .... ,,

षष्ठोऽध्यायः ।

चूर्णकी कल्पना २२१
आमलक्यादि चूर्ण सर्वज्वरोंपर २२२

विषयाः पृष्ठांकाः
पिप्पलीचूर्ण ज्वरपर २२२
त्रिफलादि चूर्ण ज्वरपर .... ,,
त्र्यूषण चूर्ण कफादिकोंपर २२३
पञ्चकोलचूर्ण अरुच्यादिकोंपर ... ,,
त्रिगन्ध तथा चतुर्जातचूर्ण .... ,,
कृष्णादिचूर्ण बालकोंके ज्वरातिसारपर २२४
जीवनीयगण तथा उसके गुण .... ,,
अष्टवर्ग तथा उसके गुण .... ,,
लवणपञ्चकचूर्ण तथा गुण ... २२५
क्षार गुल्मादिकोंपर .... ,,
सुदर्शनचूर्ण सब ज्वरोंपर .... ,,
त्रिफलापिप्पलीचूर्ण श्वासखांसीपर २२७
कट्फलादिचूर्ण ज्वरादिकोंपर .... ,,
दूसरा कट्फलादि चूर्ण कफशूलादिकोंपर .... ,,
तथा कट्फलादि चूर्ण कफादिकोंपर ,,
शृंग्यादि चूर्ण बालकोंके कासज्वरपर २२८
यवक्षारादि चूर्ण बालकोंकी पांचों खांसीपर .... ,,
शुण्ठयादि चूर्ण आमातिसारपर .... ,,
दूसरा हरीतक्यादि चूर्ण .... ,,
लघुगंगाधरचूर्ण सर्वातिसारोंपर .... ,,
वृद्धगंगाधर चूर्ण सर्वातिसारोंपर २२९
अजमोदादि चूर्ण अतिसारपर .... ,,
मरीच्यादिचूर्ण संग्रहणीपर .... ,,
कपित्थाष्टकचूर्ण संग्रहणीआदिपर २३०
पिप्पल्यादि चूर्ण संग्रहणीपर .... ,,
दाडिमाष्टकचूर्ण संग्रहण्यादिकोंपर . ,,
द्धदाडिमाष्टक अतिसारादिकोंपर २३१
तालीसादिचूर्ण अरुचिआदिपर ... ,,
लवंगादि चूर्ण हृद्रोगादिपर २३२
जातीफलादि चूर्ण संग्रहणीआदिपर ,,
महाखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर २३३
नारायणचूर्ण उदररोगपर .... ,,
हपुषादिचूर्ण अजीर्ण उदरआदिकोंपर २३५
पंचसम चूर्ण शूलआादपर .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः
पिप्पल्यादि चूर्ण अफरा आदिपर २३५
लवणत्रितयादिचूर्ण यकृत्प्लीहादिकोंपर २३६
तुंबर्वादिकचूर्ण शूलादिकोंपर २३७
चित्रकादिचूर्ण गुल्मादिकोंपर .... ,,
वडवानलचूर्ण मन्दाग्निआदि रोगोंपर २३८
अजमोदादिचूर्ण आमवातपर .... ,,
शुण्ठयादिचूर्ण श्वासादिकोंपर २३९
हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर .... ,,
यवानीखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर २४०
तालीसादिचूर्ण अरुचिआदि रोगोंपर ,,
सितोपलादिकचूर्ण खांसी क्षय पित्तादिरोगोंपर २४१
लवणभास्करचूर्ण संग्रहणीगुल्मादिरोगोंपर .... ,,
एलादिचूर्ण वमनरोगपर २४२
पंचनिंबचूर्ण कुष्ठादिकोंपर .... ,,
शतावरीचूर्ण वाजीकरणपर २४३
अश्वगन्धादि चूर्ण पुष्टाईपर .... ,,
मुसलीचूर्ण धातुवृद्धिपर २४४
नवायसचूर्ण पांडुरोगादिकोंपर .... ,,
आकरभादि चूर्ण स्तम्भनपर .... ,,
मञ्जन २४५

सप्तमोऽध्यायः ।

वटिका बनानेकी विधि २४५
बाहुशाल गुड बवासीरपर २४६
मरिचादिगुटिका खांसीपर २४७
व्याघ्रीआदि गुटिका ऊर्ध्ववातपर .... ,,
गुडादि गुटिका श्वासखांसीपर .... ,,
आमलक्यादिगुटिका मुखशोषादिपर ,,
सञ्जीवनी गुटिका सन्निपातादिकोंपर ,,
व्योषादि गुटिका पीनसपर २४८
गुडवटिकाचतुष्टय आमवातआदि रोगोंपर .... ,,
वृद्धदारक मोदक बवासीरपर २४९
सूरणवटक बवासीरपर .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः
बृहत्सूरणवटक बवासीरपर २४९
मंडूरवटक कामलादिरोगोंपर २५०
पिप्पलीमोदक धातुज्वरादिकोंपर .... ,,
चन्द्रप्रभा गुटिका प्रमेहादिकोंपर २५१
कांकायनगुटिका गुल्मादिरोगोंपर २५२
योगराजगूगल वातादिरोगोंपर २५३
कैशोरगूगल वातरक्तादिकोंपर २५४
त्रिफलागूगल भगन्दररोगादिकोंपर २५६
गोक्षुरादिगूगल प्रमेहादिरोगोंपर .... ,,
चन्द्रकलागुटिका प्रमेहपर २५७
त्रिफलादिमोदक कुष्ठादिकोंपर .... ,,
कांचनारगूगल गण्डमालादिकोंपर २५८
माषादिमोदक धातुपुष्टिपर .... ,,

अष्टमोऽध्यायः ।

अवलेहोंकी योजना २५९
कण्टकारी अवलेह हिचकी श्वासकासोंके ऊपर.... .... २६१
क्षयादिकों[illegible]लेह रक्तपित्तादिकोंपर २६२
कूष्मांडखंडलेह बवासीरपर.... .... २६३
अगस्त्यहरीतकी क्षयादिकोंपर .... ,,
कुटजावलेह अर्शादिकोंपर २६४
दूसरा कुटजावलेह अतिसार आदिपर २६५

नवमोऽध्यायः ।

घृत तेल आदि स्नेहोंका साधनप्रकार २६६
घृतका साधनप्रकार तिनमें प्रथम क्षीर घृत प्लीहादिकोंपर २६९
चांगेरीघृत अतिसारसंग्रहणीपर .... ,,
मसूरादिघृत अतिसारआदिपर .... ,,
कामदेवघृत रक्तपित्तादिकोंपर २७०
पानीयकल्पनाघृत अपस्मारादिकोंपर २७१
विषयाः पृष्ठांकाः
अमृताघृत वातरक्तपर २७२
महातिक्तक घृत वातरक्तकुष्ठादिकोंपर ,,
सूर्यपाकसिद्धकासीसाद्यघृत कुष्ठदद्रुपामा इत्यादिकोंपर २७३
जात्यादिघृत व्रणपर .... ,,
बिन्दुघृत उदरादिरोगोंपर २७४
त्रिफलाघृत नेत्ररोगपर २७५
गौर्याद्यघृत व्रणादिकोंपर २७६
मयूरघृत शिरोरोगादिकोंपर .... ,,
फलघृत वन्ध्यारोगपर २७७
पञ्चतिक्तघृत विषमज्वरादिकोंपर २७८
लघुफलघृत योनिरोगपर .... ,,

तैलसाधनप्रकार ।

लाक्षादितैल २७९
अंगारतैल सर्वज्वरपर २८०
नारायणादितैल कम्पवायुपर ... २८१
बलातैल वातादिकोंपर २८२
प्रसारिणी तैल वातकफजन्य विकार तथा वादीपर .... ,,
माषादितैल ग्रीवास्तम्भादिकोंपर २८३
शतावरीतैल शूलादिकोंपर.... .... २८४
कासीसादितैल बवासीरपर २८५
पिंडतैल वातरक्तपर २८६
अर्कतैल खुजली और फोडा आदिपर .... ,,
मरिचादितैल कुष्ठादिकोंपर २८७
त्रिफलातैल व्रणपर .... ,,
निंबबीजतैल पलितरोगपर .... ,,
मधुयष्टीतैल बाल आनेपर.... .... २८८
करंजादि तैल इन्द्रलुप्तपर .... ,,
नीलिकादितैल पलितदारुण आदि रोगोंपर .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः
भृंगराजतैल पलितादि रोगोंपर २८९
अरिमेदादितैल मुखदंतादिरोगोंपर .... ,,
जात्यादितैल नाडीव्रणादिकोंपर २९०
हिंग्वादितैल कर्णशूलपर .... ,,
बिल्वादितैल बधिरपनेपर २९१
क्षारतैल कर्णस्रावादिकोंपर.... .... ,,
पाठादितैल पीनसरोगपर २९२
व्याघ्रीतैल पूय और पीनसरोगपर .... ,,
कुष्ठतैल छींक आनेपर .... ,,
गृहधूमादितैल नासार्शपर .... ,,
वज्रीतैल सर्व कुष्ठोंपर २९३
करवीरादितैल लोमशातनपर .... ,,

दशमोऽध्यायः।

आसवादिसाधनकी विधि २९४
उशीरासव रक्तपित्तादिकोंपर २९६
कुमार्यासव क्षयादिकोंपर .... ,,
पिप्पल्यासव क्षयादि रोगोंपर २९७
लोहासव पांडुरोगादिकोंपर.... २९८
मृद्वीकासव ग्रहण्यादि रोगोंपर २९९
लोध्रासव प्रमेहादिकोंपर ३००
कुटजारिष्ट सर्वज्वरोंपर .... ,,
विडंगारिष्ट विद्रधिपर ३०१
देवदार्वरिष्ट प्रमेहादिकोंपर .... ,,
खदिरारिष्ट कुष्ठादिकोंपर ३०२
बब्बूलारिष्ट क्षयादिकोंपर ३०३
द्राक्षारिष्ट उरःक्षतादिकोंपर ३०४
रोहितारिष्ट अर्शादिरोगोंपर .... ,,
दशमूलारिष्ट क्षयप्रमेहादिकोंपर ३०५

एकादशोऽध्यायः।

स्वर्णादिधातु और उनका शोधन ३०७
सुवर्णभस्मकी प्रथम विधि.... .... ३०८
सुवर्णमारणकी दूसरी विधि.... .... ,,
सुवर्णभस्मकी तीसरी विधि.... .... ३०९
सुवर्णभस्मकी अन्य विधि .... ,,
विषयाः पृष्ठांकाः
सुवर्णभस्मका प्रकारान्तर ३१०
रौप्य (चांदी) की भस्म.... .... ,,
रूपेकी भस्म करनेकी दूसरी विधि ३११
ताम्रभस्मकी विधि .... ,,
जस्तकी भस्म ३१२
शीशेकी भस्म ३१३
शीशा मारणका दूसरा प्रकार .... ,,
रांगभस्मप्रकार ३१४
लोहभस्मप्रकार .... ,,
लोहभस्मका दूसरा प्रकार ३१५
लोहभस्मका तीसरा प्रकार... .... ,,
सात उपधातु ३१६
सुवर्णमाक्षिकका शोधन और मारण .... ,,
रौप्यमाक्षिकका शोधन और मारण ३१७
नीलाथोथेका शोधन .... ,,
अभ्रकका शोधन और मारण .... ,,
दूसरी विधि ३१८
सुरमा और गैरिकादिकोंका शोधन ३१९
मनशिलका शोधन .... ,,
हरतालका शोधन .... ,,
खपरियाका शोधन .... ,,
अभ्रक हरिताल आदिसे सत्व निकालनेकी विधि ... . ,,
हीराका शोधन और मारण ३२०
हीरेके भस्मकी दूसरी विधि... .... ३२१
तीसरी विधि .... ,,
वैक्रांतका शोधन और मारण .... ,,
संपूर्ण रत्नोंका शोधन मारण ३२२
शिलाजीतका शोधन .... ,,
तथा दूसरा प्रकार .... ,,
मंडूर बनानेकी विधि ३२३
क्षार बनानेकी विधि ३२४

द्वादशोऽध्यायः।

पारदप्रकरण ३२४

विषयाः	पृष्ठांकाः
पारेका शोधन	.... ३२५
गंधकका शोधन ...	... ३२६
हींगलूसे पारा काढनेकी विधि	.... ,,
हींगलूका शोधन	.... ३२७
शुद्ध हुए पारेके मुख करनेकी विधि	...., ,,
मुख और पक्ष छेदनका दूसरा प्रकार	.... ३२८
कच्छपयंत्र करके गंधकजारण	.... ३२९
पारामारणकी विधि	.... ,,
पारद भस्म करनेका दूसरा प्रकार	.... ३३०
" तीसरा प्रकार ...	... ३३१
" चौथा प्रकार	.... ,,
ज्वरांकुशरस	... ,,
ज्वरारिरस	... ३३२
शीतज्वरारिरस.... ...	.... ,,
ज्वरघ्नी गुटिका....	.... ३३३
लोकनाथरस क्षयादिरोगोंपर	.... ,,
लघुलोकनाथरस क्षयपर	...., ३३७
मृगांकपोटलीरस क्षयादिरोगोंपर	... ,,
हेमगर्भपोटलीरस कफक्षयादिकोंपर	.... ३३८
दूसरी विधि	... ३४०
महाज्वरांकुश विषमज्वरपर....	,,
आनंदभैरवरस अतिसारादिकोंपर	... ३४१
लघुसूचिकाभरणरस सन्निपातपर	.... ,,
जलचूडामणिरस सन्निपातपर	.... ३४२
पंचवक्ररस सन्निपातपर	.... ३४३
उन्मत्तरस सन्निपातपर ...	.... ,,
सन्निपातपर अंजन	.... ३४४
नाराचरस शूलादिकोंपर ...	.... ,,
इच्छाभेदीरस शूलादिकोंपर .	.... ,,
वसंतकुसुमाकररस प्रमेहादिकोंपर	.... ३४५
राजमृगांकरस क्षयरोगपर	.... ,,
स्वयमग्निरस क्षयादिकोंपर	.... ३४६
सूर्यावर्त्तरस श्वासपर	.... ३४७
स्वच्छंदभैरवरस वातरोगपर	.... ,,
हंसपोटलीरस संग्रहणीपर	.... ३४८
त्रिविक्रमरस पथरीरोगपर	.... ,,
महातालेश्वररस कुष्ठादिकोंपर	.... ३४९
कुष्ठकुठाररस कुष्ठरोगपर	.... ३५०
उदयादित्यरस कुष्ठपर	.... ,,
सर्वेश्वररस कुष्ठादिकोंपर	.... ३५१
स्वर्णक्षीरीरस सुप्तिकुष्ठपर	.... ३५२
प्रमेहबद्धरस प्रमेहरोगपर	.... ३५३
महावाहिरस सर्वउदररोगोंपर	.... ,,
विद्याधररस गुल्मादिरोगोंपर	.... ३५४
त्रिनेत्ररस पक्ति (परिणाम) शूलादिकोंपर	,,
शूलगजकेसरीरस शूलादिकोंपर	.... ३५५
सूतादिवटी मंदाग्निआदि रोगोंपर	.... ,,
अजीर्णकंटकरस अजीर्णपर....	.... ३५६
मंथानभैरवरस कफरोगपर....	.... ,,
वातनाशनरस वातविकारपर	.... ३५७
कनकसुंदररस	.... ,,
सन्निपातभैरवरस –	.... ३५८
ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीपर....	.... ३५९
ग्रहणीवज्रकपाटरस संग्रहणीपर	.... ३६०
मदनकामदेवरस वाजीकरणपर	.... ३६१
कंदर्पसुंदररस वाजीकरणपर	.... ३६२
लोहरसायन क्षयादिरोगोंपर	.... ३६३
(क्षेपक) जैपालशोधन	.... ३६५
बच्छनाग वा सिंगीमुहरा विषकी शुद्धि	,,
विषशोधनका दूसरा प्रकार....	.... ३६३

मध्यमखंडः समाप्तः।

तृतीयखंडः प्रथमोऽध्यायः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
प्रथम स्नेहपानविधि	.... ३६७
स्नेहद्विविध	.... ,,
स्नेहके भेद	.... ,
स्नेह पीनेका काल	.... ३६८

विषयाः .... पृष्ठांकाः
स्नेहोंका सात्म्य कितने दिनमें होता है ३६८
स्नेहकी स्थलविषयमें योजना .... ,,
स्नेहकी मात्राका प्रमाण त्यागके स्नेह पनिके दोष .... ,,
दीप्ताग्नि मध्यमाग्नि और अल्पाग्नि इनमें स्नेहकी मात्रा देनेका प्रमाण ,,
स्नेहकी मात्राओंका भेद ३६९
अल्पादिमात्राओंका गुण ... . ,,
दोषोंमें अनुपानविशेष .... ,,
घी पिलाने योग्यप्राणी .... ,,
तैल पिलाने योग्य प्राणी ३७०
वसा (मांस स्नेह) पिलाने योग्य रोगी .... ,,
मज्जा पिलाने योग्य रोगी .... ,,
स्नेह पीनेमें कालनियम .... ,,
स्नेहोंकी स्थलविशेषमें योजना ३७१
स्नेहोंके पृथक् २ अनुपान .... ,,
भातके साथ स्नेह पिलाने योग्य ,,
स्नेहोंके विना यवागूसे सद्यःस्नेहन होनेवाले .... ,,
धारोष्णदूधसे तत्काल धातु उत्पन्न होवे ३७२
मिथ्या आचारसे स्नेहन पचनेका यत्न .... ,,
स्नेहजन्य अजीर्णका यत्न .... ,,
द्वितिय स्नेहअजीर्णका यत्न .... ,,
स्नेहपानअयोग्य मनुष्य .... ,,
स्नेहपानयोग्य मनुष्य ३७३
सम्यक्स्नेहपानके लक्षण .... ,,
अत्यन्त स्नेहपानके लक्षण .... ,,
रूक्षको स्निग्ध और स्निग्धको रूक्ष करना ३७४
स्नेहादिकसेवनके गुण .... ,,
स्नेहपानमें वर्ज्य पदार्थ .... ,,

द्वितीयोऽध्यायः ।

पसीनेके भेद ३७५
चार प्रकारके स्वेदोंके पृथक् २ गुण .... ,,
वादीकी तारतम्यताके साथ न्यूनाधिक स्वेदकी योजना .... ,,
रोगविशेष करके स्वेदविशेषकी योजना. ,,
जिनके प्रथम पसीने काढना ३७६
भगन्दरादि रोगोंमें स्वेदनकी विधि .... ,,
पश्चात् पसीने निकालने योग्य प्राणी .... ,,
पसीने निकालनेमें देशकाल ३७७
पसीने निकालनेपर किस मार्गसे दोष दूर होते हैं .... ,,
पसीने निकालनेके पश्चात् दस्त होनेसे उसकी चिकित्सा .... ,,
अजीर्णादि रोगोंमेंभी आवश्यकतामें अल्प पसीने काढनेकी आज्ञा .... ,,
अल्प पसीने निकालने योग्य रोगी .... ,,
अत्यन्त पसीने निकालनेके उपद्रव ३७८
चार प्रकारके पसीनोंमें तापसंज्ञक पसीनेके लक्षण .... ,,
ऊष्मसंज्ञक पसीनेके लक्षण .... ,,
उपनाहसंज्ञक स्वेदके लक्षण ३७९
दूसरा प्रकार महाशाल्वण प्रयोग ३८०
द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण ३८१
पसीने निकालनेकी अवधि .... ,,
पसीने निकालनेके पश्चात् उपचार ३८२

तृतीयोऽध्यायः ।

वमनविरेचनकाल ३८२
वमन कराने योग्य रोगी .... ,,
वमनके अयोग्य प्राणी ३८३
वमनमें विहित पदार्थोंका कहना ३८४
वमनमें सहायक पदार्थ .... ,,
वमनप्रयोगमें काढे करनेका प्रमाण ,,
वमनमें काढे पीनेका प्रमाण ३८५

विषयाः पृष्ठांकाः

वमनमें कल्कादिकोंका प्रमाण ३८५
वमनमें उत्तम मध्यम और कनिष्ठ वेगोंका प्रमाण .... ,,
वमनके विषयमें प्रस्थका प्रमाण ,,
वमनमें औषधविशेष करके कफादिकका जय .... ,,
कफादिकोंको वमनद्वारा निकालनेवाली औषध ३८६
वमन करनेमें बाह्योपचार .... ,,
उत्तम वमन न होनेसे उपद्रव .... ,,
अत्यन्त वमन होनेके उपद्रव ३८७
अत्यन्त वमन होनेकी चिकित्सा .... ,,
रद्द करते २ जीभ भीतर चलीगई हो उसकी चिकित्सा .... ,,
रद्द करते २ जीभ बाहर निकलपडी होय उसका उपाय .... ,,
वमनसे नेत्रोंमें विकार होनेसे उपचार ,,
उलटी करते २ ठोडी रहगई हो उसका उपचार ३८८
उलटी करते २ रुधिर गिरने लगे उसका उपाय .... ,,
अत्यन्त वमन होनेसे अधिक तृषा लगनेका यत्न ....
उत्तम वमन होनेके लक्षण .... ,,
वमनांतर कर्म .... ,,
उत्तम वमनका फल ३८९
वमनमें वर्जित पदार्थ .... ,,

चतुर्थोऽध्यायः ।

वमनके पश्चात् विरेचन ३८९
दस्तकी दूसरी विधि ३९०
दस्तोंका सामान्य काल .... ,,
विरेचनयोग्य रोगी .... ,,
दोष दूर करनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता ३९१
दस्त कराने योग्य रोगी .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः

दस्त करानेमें अयोग्य ३९१
दस्तोंमें मृदुमध्य और क्रूरकोष्ठ ३९२
मृदुमध्यमादि कोठोंमें मृदुमध्यमादिक औषधि .... ,,
उत्तमादि भेद करके दस्तोंके प्रमाण ,,
दस्त होनेमें कषायादिकी मात्रा प्रमाण ३९३
दस्त होनेंम कल्कादिकोंके प्रमाग .... ,,
दस्तोंमें निशोथ आदि औषध लेनेका प्रमाण .... ,,
अन्य औषधोंसे दस्तोंका विधान .... ,,
ऋतुभेदकरके दस्त ३९४
शरदृतुमें दस्त .... ,,
हेमन्त ऋतुमें दस्त .... ,,
शिशिरऋतु वा वसन्त ऋतुमें दस्त ,,
ग्रीष्मऋतुमें दस्त .... ,,
अभयामोदक .... ,,
दस्तोंकी सहायकर्ता उपचार ३९५
दस्त होनेपर किस प्रकार रहना ३९६
दस्तोंमें जो पदार्थ निकलते हैं .... ,,
उत्तम दस्त न होनेके उपद्रव .... ,,
उत्तम जुल्लाब न होनेपर उपचार .... ,,
अत्यन्त दस्त होनेसे उपद्रव .... ,,
अत्यन्त दस्तजन्य उपद्रवोंका यत्न ३९७
दस्त बंद करनेकी औषधी .... ,,
दस्त रोकनेम यत्न .... ,,
उत्तम दस्त होनेके लक्षण .... ,,
विरेचनके गुण ३९८
दस्तमें वर्जित पदार्थ .... ,,
दस्तोंमें पथ्यपदार्थ .... ,,

पंचमोऽध्यायः ।

वस्तिकी विधि ३९९
अनुवासनवस्ति .... ,,
अनुवासन वस्तिके योग्य रोगी .... ,,
अनुवासनके अयोग्य .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः

वस्तिके मुख बनानेको सुवर्णादिकी नली. ४००
रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाण ,,
नलीके छिद्रका प्रमाण .... ,,
बस्ति किसके अंडकी होनी चाहिये ४०१
व्रणवस्तिका प्रमाण .... ,,
वस्तिके गुण .... ,,
वस्ति सेवनका काल .... ,,
वस्तिमें हीनमात्रा अतिमात्राका फल ४०२
उत्तमादि मात्रा .... ,,
स्नेहादिकोंमें सेंधवादिकका मान ... ,,
दस्त देनेके पश्चात् अनुवासनवस्ति देनेका प्रकार .... ,,
बस्ति देनेकी विधि ४०३
पिचकारी मारनेमें काल .... ,,
कितनी कालकी मात्रा होतीहै .... ,,
पिचकारी मारनेके अनंतर क्रिया ... ४०४
उत्तम बस्तिकर्मके गुण
स्नेहका विकार दूर होनेमें यत्न .... ,,
वातादिकमें पिचकारी मारनेका प्रमाण ,,
बस्तिके क्रमसे गुण ४०५
अनुवासन वस्ति तथा निरूहण वस्ति ये किसको देवें.... .... ,,
केवल तैल गुदाके बाहर आवे उसका यत्न .... ,,
तैल बाहर निकले इसके उपद्रव और यत्न ४०६
स्नेह वस्ति जिसको उपद्रव न करे उसका विधान .... ,,
अहोरात्रिमेंभी जिसके तैल बाहर न निकले उसका यत्न.... .... ,,
अनुवासन तैल.... .... ,,
अनुवासन वस्तिके विपरीत होनेसे जो रोग होवे ४०७
वस्तिकर्ममें पथ्य .... ,,

विषयाः पृष्ठांकाः

षष्ठोऽध्यायः ।

निरूह वस्तीका विधान ४०८
निरूह वस्तीका दूसरा नाम .... ,,
निरूह वस्तीमें काढे आदिका प्रमाण ,,
निरूह वस्तीके अयोग्य मनुष्य .... ,,
निरूह वस्तीमें योग्य प्राणी ४०९
निरूह वस्ती देनेका प्रकार .... ,,
निरूह बाहर न आनेसे उसके शोधनकी औषधी .... ,,
उत्तम निरूहवस्ती होनेके लक्षण .... ,,
जिसको निरूह वस्ती उत्तम न हुई हो उसके लक्षण ४१०
उत्तम निरूह वस्ती तथा स्नेहवस्तीके लक्षण .... ,,
निरूहवस्ती कितने बार देवे उसका प्रकार .... ,,
सुकुमारआदि मनुष्योंके निरूह वस्ती देना ४११
आदिमध्य और अन्तमें वस्तीका देना.... ,,
उत्क्लेशन वस्ति .... ,,
दोषहरवस्ति .... ,,
शोधनवस्ति ४१२
दोषशमनवस्ति .... ,,
लेखनवस्ति .... ,,
बृंहणवस्ति .... ,,
पिच्छलवस्ति .... ,,
निरूहणवस्ति ४१३
मधुतैलकवस्ति .... ,,
दीपनवस्ति ४१४
युक्तरथवस्ति .... ,,
सिद्धवस्ति .... ,,
वस्तिकर्ममें पथ्यापथ्य .... ,,

सप्तमोऽध्यायः ।

उत्तर वस्तिका क्रम ४१५

विषयाः पृष्ठांकाः
उत्तर वस्तिकी योजना कैसे करे ४१५
उत्तर वस्तिकी योजना करनेका प्रकार .... ,,
स्त्रियोंके वस्ति देनेकी विधि .... ,,
बालकोंके वस्ति देनेका प्रमाण ४१६
स्त्रियोंके तथा बालकोंके बस्ती देनेमें स्नेहकी मात्रा .... ,,
शोधनद्रव्यकरके वस्तिका विधान ,,
बस्तिकर्म उत्तम होनेके लक्षण ४१७
गुदामें फलवर्त्तीकी योजना .... ,,

अष्टमोऽध्यायः ।

नस्यविधि ४१७
नस्यके भेद ४१८
नस्यका काल .... ,,
नस्यका निषेध.... .... ,,
नस्यकर्ममें योग्यायोग्य रोगी .... ,,
विरेचकनस्यकी विधि .... ,,
रेचकनस्यका प्रमाण ४१९
नस्यकर्ममें औषधका प्रमाण .... ,,
विरेचन नस्यके दूसरे दो भेद .... ,,
अवपडिन और प्रधमनके लक्षण .... ,,
रेचन और स्नेहन योग्य प्राणी ४२०
अवपीडननस्ययोग्यप्राणी .... ,,
प्रधमननस्ययोग्यप्राणी .... ,,
रेचनसंज्ञकनस्य .... ,,
रेचकनस्यका दूसरा प्रकार .... ,,
रेचकनस्यका तीसरा प्रकार ४२१
प्रधमनसंज्ञके नस्य .... ,,
बृंहणनस्यका कल्पना .... ,,
नस्य अधिक हानका यत्न ४२२
बृंहण नस्ययोग्य प्राणी .... ,,
बृंहणनस्य .... ,,
पक्षाघातादिक रोगोंपर नस्य ४२३
प्रतिमर्श नयस्की दो बिंदुरूपमात्रा .... ,,
बिंदुसंज्ञक मात्रा .... ,,
विषयाः पृष्ठांकाः
प्रतिमर्श नस्यके समय ४२३
प्रतिमर्श नस्य करक तृप्तके लक्षण ४२४
प्रतिमर्शके योग्य रोगी .... ,,
पालत होनेमें नस्य .... ,,
नस्यकी विधि ४२५
नस्य लेनेके पश्चात् नियम .... ,,
नस्यके सन्धारणका प्रकार .... ,,
नस्यकर्ममें त्याज्यकर्म ४२६
नस्यमें शुद्धादिकभेद .... ,,
उत्तम शुद्धिके लक्षण .... ,,
हीनशुद्धिके लक्षण .... ,,
अतिशुद्धिके लक्षण .... ,,
हीनशुद्ध्यादिकोंमें चिकित्सा ४२७
अतिस्निग्धके लक्षण .... ,,
नस्यमें पथ्य .... ,,
पंचकर्मकी संख्या .... ,,

नवमोऽध्यायः ।

धूमपानविधि ४२८
शमनादिधूमोंके पर्याय .... ,,
धूमसेवन अयोग्यप्राणी .... ,,
धूमपानके उपद्रवोंमें क्या देवे सो कहतेहैं ४२९
धूमपानका समय और गुण .... ,,
धूमप्रयोगसे प्रकृति कैसी होती यह कथन ,,
धूममें नलीका विचार .... ,,
धूमपानके अर्थ ईषिकाविधान ४३०
कौनसी औषधका कल्क कौनसे धूममें दवे .... ,,
बालग्रहनाशक धूनी ४३१
धूमपानमें परिहार .... ,,

दशमोऽध्यायः ।

गण्डूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि.... .... ४३२
स्नेहिकादि गडूषोंकी दोषभेदकरके याजना .... ,,
गंडूष और कवलके भेद .... ,,
गंडूष और कवलकी औषधोंका प्रगाण ४३३
कौनसी अवस्थामें और कितने कुल्ले करे ,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
गंडूष धारणमें दूसरा प्रमाण	४३३
वादीके रोगमें स्नैहिक गंडूष	,,
पित्तरोगमें शमनसंज्ञक गंडूष	,,
व्रणादिरोगोंमें मधुगंडूष	४३४
विषादिकोंपर गंडूष	,,
दांतोंके हिलनेपर गंडूष	,,
मुखशोषपर गंडूष	,,
कफपर गंडूष	,,
कफ और रक्तपित्तपर गंडूष	,,
मुखपाक (छाले) पर गंडूष	,,
गंडूषके सदृश प्रतिसारण और कवल	४३५
कवलका प्रकार	,,
प्रतिसारणके भेद	,,
प्रतिसारणचूर्ण	,,
गंडूषादि हीनयोग होनेके लक्षण	,,
शुद्ध गंडूषके लक्षण	४३६

एकादशोऽध्यायः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः
लेपकी विधि	४३६
दोषघ्न लेप	४३७
दाहशांतिको लेप	,,
दशांग लेप	,,
विषघ्न लेप	,,
दूसरा प्रकार	,,
मुखकांतिकारक लेप	४३८
दूसरा प्रकार	,,
मुहांसे नाशक लेप	,,
व्यंगरोगपर लेप	,,
मुखकी झांईपर लेप	,,
मुँहांसे आदिपर लेप	४३९
अरुंषिकारोगपर लेप	,,
दूसरा प्रकार	,,
दारुण रोगपर लेप	,,
दूसरी विधि	,,
इन्द्रलुप्तपर लेप	,,
दूसरी विधि	४४०
केशवृद्धिपर लेप	,,
केश जमानेवाला लेप	,,
इन्द्रलुप्तरोगपर लेप	,,
केश आनेपर दूसरा लेप	,,
केश काले करनेका लेप	४४१
दूसरी विधि	,,
तीसरा प्रकार	,,
चतुर्थ प्रकार	,,
पांचवां प्रकार	,,
केशनाशक प्रयोग	४४२
दूसरी विधि	,,
सफेदकोढ दूर होनेका औषध	४४३
दूसरी विधि	,,
तीसरी विधि	,,
विभूतपर लेपन	,,
दूसरा प्रकार	,,
नेत्ररोगपर लेप	४४४
दूसरी विधि	,,
खुजली आदिपर लेप	,,
दाद खुजली आदिपर लेप	,,
दूसरा प्रकार	४४५
रक्तपित्तादिकोंपर लेप	,,
उदर्दरोगपर लेप	,,
वातविसर्परोगपर लेप	,,
पित्तविसर्परोगपर लेप	,,
कफविसर्पपर लेप	४४६
पित्तवातरक्तपर लेप	,,
नाकसे रुधिर गिरनेपर लेप	,,
वातकी मस्तकपीडापर लेप	,,
दूसरा प्रकार	,,
पित्तशिरोरोगपर लेप	४४७
कफसंबंधी मस्तकपीडापर लेप	,,
दूसरा प्रकार	,,
सूर्यावर्त तथा अर्द्धभेदकपर लेप	४४७
कनपटी अनंतवात तथा सर्व शिरोरोगोंपर लेप	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
दूसरा प्रकार	४४८
उन दोनों लेपोंके उच्चत्वमें प्रमाण	,,
दोनों प्रकारके लेप किस जगह देना	,,
साधारण लेपविषममें निषेध	,,
रात्रिमें निषेधका हेतु	,,
रात्रिमें प्रलेपादिकोंकी विधि तथा योग्य प्राणी	४४९
व्रण दूर होनेपर लेप	,,
व्रणसंबंधी वायुकी सूजनपर लेप	,,
पित्तकी सूजनपर लेप	,,
कफजन्य व्रणकी सूजनपर लेप	,,
आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्यसूजनपर लेप	४५०
व्रण पकनेके लेप	,,
पके व्रणके फोडनेका लेप	,,
दूसरा प्रकार	,,
तीसरा प्रकार	,,
व्रणशोधन लेप	४५१
व्रणके शोधन और रोपण विषयकलेप	,,
व्रणसंबंधी कृमि दूर करनेपर लेप	,,
व्रणके शोधन और रोपणपर दूसरा लेप	,,
उदरशूलमें नाभिपर लेप	,,
वातविद्रधिपर लेप	४५२
पित्तविद्रधिपर लेप	,,
कफविद्रधिपर लेप	,,
आगंतुक विद्रधिपर लेप	,,
वातगलगंडपर लेप	,,
कफके गलगंडपर लेप	४५३
गण्डमाला अर्बुद तथा गलगण्डपर लेप	,,
अपबाहुक वातरोगपर लेप	,,
श्लीपदरोगपर लेप	,,
कुरंडरोगपर लेप	४५४
उपदंशरोगपर लेप	,,
उपदंशपर दूसरा लेप	,,
उपदंशपर तीसरा लेप	,,
अग्निदग्धपर लेप	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
दूसरा लेप	४५५
योनि कठोर करनेको लेप	,,
दूसरा लेप	,,
लिंग और स्तनादिकी वृद्धि करनेका लेप	,,
लिंगवृद्धिपर दूसरा लेप	४५६
योनिद्रावणकारी लेप	,,
देहदुर्गंध दूर करनेका लेप	,,
दूसरा लेप	,,
वशीकरण लेप	४५७
मस्तकमें तेल धारण करनेका विचार	,,
शिरोबस्तिकी विधि	,,
शिरोबस्तिका प्रकार	,,
शिरोबस्ति धारणमें प्रमाण	४५८
शिरोबस्ति धारणमें काल	,,
शिरोबस्तिके कर्म होनेके उपरांत क्रिया....	,,
शिरोबस्ति देनेसे रोग दूर हों उनका कथन	,,
कानमें औषध डालकी विधि	,,
कानमें औषध डालके कितनी देर ठहरे	४५९
मात्राका प्रमाण	,,
रसादिक तथा तैलादिक इनका कानमें डालनेका काल	,,
कर्णशूलपर औषध	,,
कर्णशूलपर मूत्रप्रयोग	,,
कर्णशूलपर तीसरा प्रयोग	,,
कर्णशूलपर चतुर्थ प्रयोग	४६०
कर्णशूलपर पांचवां प्रयोग	,,
कर्णशूलपर दीपिकातैल	,,
कर्णशूलपर स्योनाकतैल	४६१
कर्णनादपर तैल	,,
कर्णनादादिकोंपर तैल	,,
बहरेपनेपर अपामार्गक्षार तैल	४६२
कर्णनाडीपर शंबूक तैल	,,
कर्णस्रावपर औषध	,,

विषयाः पृष्ठांकाः
दन्तकषायसंज्ञक वृक्षोंके नाम ४६२
कर्णस्रावपर औषध ४६३
कानसे राध बहे उसपर औषध .... ,,
कर्णका कीडा दूर होनेपर तेल .... ,,
कानके कीडा दूर होनेको दूसरा प्रयोग ,,
,, ,, तीसरा प्रयोग.... .... ,,

द्वादशोऽध्यायः।

रक्तस्रावकी विधि ४६४
रक्तस्रावका सामान्य काल.... .... ,,
रक्तका स्वरूप .... ,,
रुधिरमें पृथ्व्यादि भूतोंके गुण ४६५
दुष्टरुधिरके लक्षण .... ,,
रुधिरवृद्धिके लक्षण .... ,,
क्षीणरुधिरके लक्षण .... ,,
वादीसे दूषित रुधिरके लक्षण .... ,,
पित्तदूषित रुधिरके लक्षण ४६६
कफदूषित रुधिरके लक्षण .... ,,
द्विदोष तथा त्रिदोषसे दूषित रुधिरके ल० ,,
विषदूषित रुधिरके लक्षण .... ,,
शुद्धरुधिरके लक्षण .... ,,
रुधिरस्रावयोग्य रोग ४६७
रुधिर निकालनेका प्रकार .... ,,
फस्त खोलने अयोग्यरोगी .... ,,
वातादिकसे दूषित रक्त निकालनेका प्रकार ४६८
शिंगीआदिको रुधिर ग्रहणमें प्रमाण .... ,,
जिनके अंगसे रुधिर न निकले उसकाका० ,,
रुधिर निकालनेमें औषधि ४६९
रुधिर निकालनेमें काल .... ,,
अत्यंत रुधिर निकालनेमें कारण .... ,,
अत्यंत रुधिर निकलनेपर उपाय .... ,,
दाग देनेसे जो रोग दूर हो उनके नाम ४७०
दुष्ट रुधिर निकालनेपर जो अवशिष्ट रहे उसके गुण .... ,,
रुधिरसे देहकी उत्पत्तिआदिका प्रकार.... ४७१
रुधिर निकालनेपर दोष कुपित होनेका उ० ,,
विषयाः पृष्ठांकाः
रुधिर निकलनेपर पथ्य ४७१
उत्तम प्रकार रुधिर निकलनेके लक्षण.... ,,
रुधिर निकलनेपर वर्जित वस्तु ४७२

त्रयोदशोऽध्यायः।

नेत्र अच्छे होनेके वास्ते उपचार .... ,,
सेकके लक्षण .... ,,
उस सेकके स्नेहादि भेद करके तीन प्रकार ४७३
सेककी मात्रा .... ,,
सेक करनेका काल .... ,,
वाताभिष्यंद रोगपर सेक .... ,,
वाताभिष्यंदपर दूसरा सेक.... .... ,,
रक्तपित्त तथा अभिवातपर सेक ४७४
रक्ताभिष्यंदपर सेक .... ,,
रक्ताभिष्यंदपर दूसरा सेक.... .... ,,
नेत्रशूलनाशक सेक .... ,,
आश्चोतनके लक्षण .... ,,
लेखनादि आश्चोतनमें कितनी बिंदु डाले उसका प्रमाण ४७५
वातादिकोंमें देनेकी योजना .... ,,
आश्चोतनकी मात्राके लक्षण.... .... ,,
वाताभिष्यंदपर आश्चोतन .... ,,
वातजन्य तथा रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए अभिष्यंदपर आश्चोतन.... .... ४७६
सर्व प्रकारके अभिष्यंदोंपर आश्चोतन .... ,,
रक्तपित्तादिजन्य अभिष्यंदोंपर आश्चोतन ,,
पिंडीके लक्षण .... ,,
कफाभिष्यंदपर शिरोविरेचन .... ,,
अधिमंथरोगपर दूसरा उपचार ४७७
अभिष्यंदमें क्रिया .... ,,
वाताभिष्यंद तथा पित्ताभिष्यंदपर पिंडी ,,
पित्ताभिष्यंदपर दूसरी पिंडी .... ,,
कफपित्ताभिष्यंदपर पिंडी .... ,,
रक्ताभिष्यंदपर पिंडी ४७८
सूजन खुजली इत्यादिकोंपर पिंडी .... ,,
बिडालकके लक्षण .... ,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
सर्व नेत्ररोगोंपर लेप	... ४७८
सर्व नेत्ररोगोंपर दूसरा लेप...	.... ,,
सर्व नेत्ररोगोंपर तीसरा लेप	.... ४७९
चौथा लेप	... ,,
अर्मरोगपर लेप....	.... ,,
अंजननामिका फुन्सीपर लेप	.... ,,
नेत्ररोगपर तर्पण	.... ,,
तर्पण अयोग्य प्राणी	.... ४८०
तर्पणका विधान	.... ,,
तर्पणमात्राका प्रमाण	.... ४८१
तर्पणद्वारा कफकी आधिक्यता होनेमें उ०	,,
तर्पणप्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा	,,
तर्पणकी तृप्तिके लक्षण	.... ,,
तर्पण अधिक होनेके लक्षण....	.... ,,
हीनतर्पणके लक्षण	.... ४८२
तर्पण करके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेसे उसका यत्न	.... ,,
पुटपाक	.... ,,
पुटपाकसंबंधी रस नेत्रोंमें डालनेका विधान	,,
स्नेहादि भेद करके पुटपाककी योजना....	४८३
स्नेहन पुटपाक	.... ,,
लेखन पुटपाक	.... ,,
रोपणपुटपाक	.... ४८४
संपक्व होनेसे अंजन तथा साधारण अंजनका विधान	.... ,,
अंजनके भेद	.... ,,
गुटिकादि भेद करके अंजनके भेद	.... ४८५
अंजन विषयमें अयोग्य	.... ,,
अंजनवर्त्तीका प्रमाण	.... ,,
अंजनमें रसका प्रमाण	.... ,,
विरेचन अंजनमें चूर्णका प्रमाण	.... ४८६
सलाईका प्रमाण और वह किसकी बनावे	,,
लेखनादिकोंमें सलाईका प्रमाण	... ,,
कौनसे समय तथा कौनसे भागमें अंजन करे	.... ,,
चंद्रोदयावर्ती	.... ४८७

विषयाः	पृष्ठांकाः
फूलआदिपर बत्ती	.... ४८७
दूसरा प्रकार	.... ,,
लेखनी दंतवर्त्ती	.... ,,
तंद्रा दूर होनेको लेखनी वर्त्ती	.... ४८८
रोपणी कुसुमिका वर्त्ती	.... ,,
रतौंध दूर करनेकी वर्त्ती	.... ,,
नेत्रस्रावपर स्नेहनी वर्त्ती	.... ,,
रसक्रिया	.... ४८९
फूला दूर करनेकी रसक्रिया	.... ,,
अतिनिद्रानाशक लेखनी रसक्रिया	.... ,,
तंद्रानाशक रसक्रिया	.... ,,
संनिपातपर रसक्रिया	.... ,,
दाहादिकोंपर रसक्रिया	.... ४९०
नेत्रके पलकोंके बाल आनेको तथा खुजली आदि रोपणी रसक्रिया	.... ,,
तिमिरपर रसक्रिया	.... ,,
अंजनमें पुनर्नवायोग	.... ४९१
नेत्रस्रावपर रोपणी रसक्रिया	.... ,,
दूसरा प्रकार	.... ,,
नेत्र स्वच्छ होनेको स्नेहनी रसक्रिया	.... ,,
शिरोत्पातरोगपर अंजन	.... ,,
अंधापन दूर करनेकी रसाक्रिया	.... ४९२
लेखनचूर्णाञ्जन....	.... ,,
रतौंध दूर होनेका लेखन चूर्ण	.... ,,
खुजली आदिपर लेखन चूर्णांजन	.... ,,
सर्व नेत्ररोगोंपर मृदुचूर्णांजन	.... ,,
सर्व नेत्ररोगोंपर सौवीरांजन	.... ४९३
शीशेकी सलाई बनानेकी विधि	.... ,,
प्रत्यंजन करनेकी विधि	.... ,,
सदोष नेत्र होनेसे निषेध	.... ४९४
प्रत्यंजन चूर्ण	.... ,,
सर्पविषपर अंजन	.... ,,
हाथोंकी हथेलीसे नेत्र पोंछनेके गुण	.... ४९५
शीतल जलसे नेत्र धोनेके गुण	.... ,,
ग्रंथको समूलत्वसूचनापूर्वक स्वाभिमानका परिहार	.... ,,
ग्रंथ पढनेका फल	.... ,,
सहेतुक इस ग्रंथकी पढनेकी आज्ञा	.... ४९६

इत्यनुक्रमणिका संपूर्णा ।

ॐ श्रीशं वन्दे ।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

अथ शार्ङ्गधरसंहिता ।

भाषाटीकासमेता ।

आर्या ।

मथुरानगरनिवासी कृष्णतनय दत्तराममाथुरने ॥
शार्ङ्गधरकी सुभाषाटीका कीनी सु आढमल्लीसों ॥ १ ॥

इस पृथुंतर और दुरधिगमनीय आयुर्वेदशास्त्रतत्वके जाननेमें वैद्योंको अधिक परिश्रम होता है और उसके मध्यमें अनेक विघ्न आते हैं इसीसे सर्व ग्रन्थकर्त्ता (ग्रन्थकार) ग्रन्थके आदि मध्य और अन्तमें मङ्गलाचरण करते हैं ऐसा शिष्टाचार है, तथा शास्त्रकीभी आज्ञा है, अतएव यह शार्ङ्गधर ग्रन्थकर्त्ताभी निजेष्टदेव श्रीशिवपार्वतीको प्रणामपूर्वक आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण करते हैं जैसे—

श्रियं स दद्याद्भवतां पुरारिर्यदंगतेजःप्रसरे[२] भवानी ॥
विराजते निर्मलचन्द्रिकायां[३] महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ ॥ १ ॥

---

१ आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् । इति त्रिविधं मंगललक्षणं भवति । २ यदंगतेजःप्रसरे–इस पदके कहनेसे यह दिखाया कि श्रीशिवका विभूतिविभूषित अंग होने परभी अति शुभ्रताके कारण पर्वतकी उपमा देना युक्तही है । और उस सुन्दर स्वरूपमें खचित श्रीभगवतीजीको औषधस्वरूप करके कहा यह शार्ङ्गधर आचार्यकी बुद्धिकी चातुर्यता सराहने योग्य है. प्रायः वैद्योंको पर्वत और औषधीसेही कार्य रहता है अतएव इस शार्ङ्गधरसंहितामें शिव पार्वतीको पर्वत और औषधीरूप उपमा देना अपना अभीष्ट दिखलाया । कोई कहते हैं कि इस अर्द्धांगी स्वरूपके वर्णनमें वात, पित्त और कफ तीनोंका आधिपत्य वर्णन किया है जैसे पित्त उष्ण होता है उसी प्रकार श्रीशिवका तेज उष्ण सो पित्ताधिप हुआ और श्रीपार्वतीजीकी चंद्रिका शीतल सो श्लेष्माधिप हुई तथा सर्पभूषणसे वाताधिपत्य सूचना करी, जैसे ये तीनों गुण सदैव शिवमें स्थित रहते हैं उसी प्रकार इस शार्ङ्गधर ग्रंथमें वातपित्तकफकी साम्यता जाननी । और जैसे हिमालयमें औषधी प्रकाशित है उसी प्रकार इस ग्रंथमेंभी औषधियोंका वर्णन है । यद्यपि यह ग्रंथकीभी उपमा कही परन्तु मुख्य उपमा पर्वत और शिवकीही यथार्थ है. इस ग्रंथमें त्रिविध मंगलाचरणोंमें आशीर्वादात्मक मंगलाचरण कहाहै. इसका यह प्रयोजन है कि दुष्ट उक्तिके प्रभावसे जो दुःखस्वरूपरोग प्रकट हो उनका नाश हो और रोगनिवृत्ति करके सुखरूप श्रीकी प्राप्ति हो । ३ निर्मलचांद्रिकायते इति पाठांतरम् ।

अर्थ—हिमालय पर्वतमें अत्यन्त देदीप्यमान (संजीवन्यादि) महौषधी जैसे निर्मल चन्द्रमाकी चाँदनीमें शोभाको प्राप्त होती है उसी प्रकार जिनके तेजसमूहमें अर्थात् अर्धांगमें श्रीपार्वती महाराणी विराजमान (शोभित) है ऐसे श्रीशिव तुमको कल्याण अथवा लक्ष्मी देओ ॥

अब कहते हैं कि यह ग्रंथ संपूर्ण प्राणिजनोंके उपकारार्थ होय इस प्रकार विचारकर इस ग्रन्थका संबन्ध[१] कहना चाहिये क्यों कि (संबन्धके कहनेसे श्रोता और वक्ताकी सिद्धि है अत एव सर्व शास्त्रोंमें प्रथम संबन्ध कहते हैं) इसी कारण शार्ङ्गधर आचार्यभी प्रथम संबन्धको कहते हैं—

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ॥
विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जनरंजनाय ॥ २ ॥

अर्थ—चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके कहे हुए और प्राचीन सद्वैद्योंने वारंवार नाम रूप योजनादिक करके अनुभव (निश्चित) किये ऐसे जो विख्यात योग उनका संग्रह सज्जनोंके मनोरञ्जनार्थ शार्ङ्गधर नामक मैं करता हूँ, तात्पर्य यह है कि, चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके प्रयोग जहाँ तहाँसे लेकर प्रकारान्तरसे उन्हींको शुद्ध करके मैं लिखता हूँ, इसके कहनेसे ग्रन्थकी उत्तमता दिखाई और त्रिकालदर्शीको मुनि कहते हैं उनके कहे प्रयोग मे इस ग्रन्थमें हैं इस वाक्य कहनेसे ग्रन्थकी प्रामाणिकता दिखाई । एवं वैद्योंके अनुभव को प्रयोग इसमें कहे हैं, इससे इस ग्रन्थकी अन्य सर्व ग्रन्थोंसे उत्कृष्टता दिखाई है अर्थात् सर्व आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें यह सर्वोत्तम है ॥

अब (प्रथम रोगकी[२] परीक्षा करे फिर औषधकी) इत्यादि मतको विचार शार्ङ्ग भी कहते हैं—

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ॥
चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीत वैद्यो विधिवत्सुयोगैः ॥ ३

अर्थ—प्रथम वैद्य हेतु[३] आदिरूप[४] आकृति[५] सात्म्य[६]. जाँति इन भेदोंसे रोगीके सम्

---

१ सिद्धिः श्रोतृप्रवक्तॄणां संबंधकथनाद्यतः । तस्मात्सर्वेषु शास्त्रेषु संबंधः पूर्वमुच्यते ॥

२ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनंतरमौषधम् । ततः कर्म भिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

३ जिससे रोग होय उसका नाम हेतु है उसीको निदान कहतेहैं, जैसे मृत्तिकाभक्षणसे पीलि होताहै । ४ रोग होनेके प्रथम जंभाई आना अंगोंका टूटना अरुचि इत्यादिक लक्षण होतेहैं उस नाम आदिरूप है और उसको पूर्वरूप ऐसे कहतेहैं । ५ रोगोंके तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, नि नाश इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं उस अवस्थाका नाम आकृति है उसीको रूप कहते हैं । ६ औ विहार इनका रोगीके प्रकृत्यनुसार सुखकारी प्रयोग हो उसका नाम सात्म्य और उसीको उप कहते हैं । ७ जिन कारणोंसे वाताद्यन्यतमदोष दूषित हो ऊर्ध्वाधरांतिर्यक् यथेष्ट विचरनेसे जो रो

रोगोंको जान फिर यथाशास्त्र उत्तम प्रकारके प्रयोगोंसे कर्षण और बृंहणरूप द्विविध चिकित्सा यथाक्रम करे । अन्यथा दोष लगता है जैसे वाग्भट लिखते हैं । (कि जो विना दोषोंके जाने वैद्य चिकित्सा कर्मको करता है वह उस कर्मकी सिद्धिको तथा सुख और सद्गतिको नहीं प्राप्त होता) ॥

अथवा हेतु है आदिमें जिनके ऐसे जो रूपादिक तिन्होंसे प्रथम रोगपरीक्षा करके फिर चिकित्सा करे । जैसे वाग्भटमें लिखा है (कि दर्शन स्पर्शन प्रश्न और निदान पूर्वरूप—रूप—उपशय—तथा संप्राप्ति इनसे रोगियोंके रोगकी परीक्षा करे) तहां हेत्वादिक पाँच तो कहे । अब रूपादित्रयको कहते हैं. तहां रूपके कहनेसे देहका स्थूल और कृशता तथा बल वर्ण और विकारादिकी परीक्षा देखनेसे करे । तथा (आसमंतात् कृतिःकरणं) जिससे सर्वत्र कर्म कराजाय ऐसी त्वगिन्द्रीसे शीत, उष्ण, मृदु, कठोर आदिकी परीक्षा करे । और सात्म्यके कहनेसे हितकारी पदार्थ जानना अर्थात् आपको कौनसी वस्तु हित है इस वाक्यके प्रश्न करनेको कहा अथवा सात्म्य करके कोई अभिलाषका ग्रहण करते हैं अर्थात् जिस रोगीको जिस खाने पीने आदि आहार विहारकी इच्छा होय उस इच्छा द्वाराही वैद्य रोगीके देहस्थित दोषोंके क्षीणवृद्धिका ज्ञान करे ॥

इस प्रकार दर्शनादित्रयपरीक्षा कही और जातिके कहनेसे शेष इन्द्रियोंकी परीक्षा जाननी क्योंकि सुश्रुतमें रोगकी परीक्षा छैः प्रकारकी कही है (जैसे पांच श्रोत्रादि इन्दियोंसे और छठी प्रश्नसे) तहां दर्शनादि तीन परीक्षा कहआये अब शेष श्रोत्रादिकोंकी परीक्षा कहते हैं (तहां कर्णइन्द्री करके प्रनष्टशल्य स्थानीय रुधिर निकलनेके शब्दकी परीक्षा करे । जिह्वाइन्द्री करके प्रमेहादि रोगोंमें रसकी परीक्षा करे । और घ्राणइन्द्री करके अरिष्ट लिङ्गादि व्रणोंके गन्धकी परीक्षा करे) इस प्रकार हेत्वादिकोंकी व्याख्या करी तहां प्रथम अर्थ ठीक है दूसरा अर्थ जो त्रिविध और षड्विधपरीक्षापरत्व कहा है सो कल्पित है तथापि उत्तम है स-

---

त्पत्ति होय उस कारण तथा उस दुष्टदोष तथा उस विचरना इन सबके वास्तविक होनेसे जो आनुपूर्विकज्ञान उसको जाति अथवा संप्राप्ति कहते हैं ।

१ शरीरमें बढेहुए वातादि दोषोंको औषधि करके घटानेको कर्षण चिकित्सा कहते हैं ।

२ अतिक्षीण दोषोंके पुष्ट करनेको बृंहण चिकित्सा कहते हैं ।

३ यस्तु दोषमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

४ दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणाम् । रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

५ पंचभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति—तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा रोगेषु प्रनष्टशल्यविज्ञानीयादिषु वक्ष्यंते । सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छतीत्येवमादयः । रसनेन्द्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषु रसविशेषाः । घ्राणेन्द्रियविज्ञेया अरिष्टलिंगादिषु व्रणानां च गंधविशेषाः ।

मीक्ष्य इस पदके धरनेसे अज्ञानकी निवृत्ति कही (अर्थात् बहुतसे रोग यथार्थ देखे नहीं गये, तथा ठीक ठीक कहनेमें नहीं आये और ठीक ठीक विचारमें नहीं आये, अथवा जो ठी पूछनेमें नहीं आये, ऐसे रोग वैद्यको मोहित करते हैं) अतएव वारंवार परीक्षाद्वारा रोगनिश्च करना चाहिये । रोगनाशक कर्म, व्याधिप्रतीकार, धातुसात्म्यार्थक्रिया ये चिकित्सांके पर्यायवाचक शब्द हैं जैसे लिखा है (उत्तम भिषगादिचतुष्टयोंका विकृतधातुके समान करनेके अर्थ जो प्रवृत्ति है उसको चिकित्सा कहते हैं) इस कर्षण बृंहण चिकित्सा करके दोषोंके घटावे और बढावे जैसे लिखा है (कि दोषोंकी विषमताको रोग[३] कहते हैं और दोषोंके समानताको आरोग्य कहते हैं) सुयोगैः इस पदसे यह सूचना करी कि सुन्दर द्रव्योंके प्रयोगों अर्थात् शीघ्र आरोग्यकर्त्ता औषधों करके वैद्य रोगोंकी चिकित्सा करे ॥

औषधियोंके प्रभाव ।

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति ॥
ज्ञात्वेति संदेहमपास्य धीरैः संभावनीया विविधप्रभावाः ॥ ४ ॥

अर्थ-जैसे देवताओंके अपरिमितभेद और उत्कृष्ट प्रभाव प्रगट हैं उसी प्रकार दिव्यौषधियोंके अनेकभेद और अपरिमितशक्ति प्रगट होती है । इस प्रकार जान गंभीर बुद्धिवाले (वै अपने चित्तसे) सन्देहको दूर कर आदरपूर्वक औषधोंको विविधप्रभाववती माने । इस कहनेक यह तात्पर्य है कि, मणि मन्त्र और औषधियोंके प्रभाव अचिन्त्य हैं । जो वाहरके औ आत्माके भावोंको हिताहित कर्ता है उसका नाम धीर है. धीर शब्दका ग्रहण इस जग निश्चयार्थ ज्ञानके वास्ते है ॥

अव प्रयोजन कहते हैं क्योंकि * सर्वशास्त्रोंका और कर्मका जबतक प्रयोजन नहीं हो त तक कोई ग्रहण नहीं करे अतएव उस प्रयोजनको कहते हैं-

स्वाभाविकागंतुककायिकान्तरा रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः ॥
तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः श्रेयोमयान्योगवरान्नियोजयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-स्वाभाविक[४], आगन्तुक[५], कायिक[६] और आन्तरिक[७] ऐसे चार प्रकारके कर्मज औ

---

१ मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्यातास्तथैव च । तथा दुःपरिमृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकम्
२ चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते । प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थं चिकित्सेत्यभिधीयते ॥ ३ रोग दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ।

* सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते
४ स्वभावकरके होनेवाले जो क्षुधा, तृषा, जरा, निद्रा आदि उनको स्वाभाविक व्याधि कहते है
५ जो अभिघात निमित्त करके रोग होते हैं (जैसे सर्पका काटना शस्त्र आदिका लगना) उन आगंतुक कहते हैं । ६ शरीरमें वातादिदोष वैषम्यताकरके उत्पन्न हुए ज्वर, रक्तपित्त, कासादि रोग उनको कायिक कहते हैं । ७ मनोविकारकरके उत्पन्न हुए जो मद, मूर्च्छा, संन्यास, भूतोन्मादादिक रोग उनको आंतरिक (मानस कहते हैं ।

दोषज रोग उत्पन्न होते हैं, उनके शांतिके अर्थ दुःखसे छुडानेवाले और पुण्यरूप ऐसे जो उत्तम योग उनकी योजना करनी चाहिये ॥

योगवरान् इस पदके धरनेसे यह दिखाया कि समस्त आर्ष ग्रन्थोंके उत्तम २ प्रयोग शार्ङ्गधरने संग्रह करके इस अपने ग्रन्थमें रक्खे हैं । अब कहते हैं रोग तीन प्रकारके हैं जैसे ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि (एक तो कर्मके कोपसे, दूसरे दोषोंके कोपसे, तीसरे कर्म और दोषोंके कोपसे, कायिक और मानसिक रोग प्राणियोंके देहमें होते हैं) अब इन तीनोंके पृथक् २ लक्षण कहते हैं तहां (परद्रव्य[२]) (धरोहर आदि) और ऋण इनके न देनेसे, गुरुस्त्रीके गमनसे, ब्राह्मण आदिके मारनेसे जो रोग प्रगट होते हैं उनको कर्मज रोग कहते हैं ये औषधि करके वैद्यसे अच्छे नहीं होते किन्तु दान दया आदिकरके, ब्राह्मण गौकी सेवा करनेसे, गुरुकी आज्ञा पालन करनेसे, तथा इनके साथ नम्रता रखनेसे, जप और तप इत्यादि करनेसे पूर्वजन्मके संचित कर्मसे उत्पन्न व्याधिका शमन होता है। अब दोषज व्याधिके लक्षण कहते हैं (कि वातादि दोष अपने कारणसे कुपित हो आपसमें मिलकर इतस्ततश्चलायमान हो जो विकारोंको प्रगट करते हैं उनको दोषजरोग कहते हैं ये औषध करनेसे दूर होते हैं) अब कर्मदोषोद्भव विकारोंको कहते हैं (कि दानादिक कर्म और औषधी इन दोनोंके करनेसे जो रोग कथंचित् कर्म और दोषोंके क्षीण होनेसे कुछ २ शांत हों उनको कर्मदोषज विकार कहते हैं ।) अब प्रत्यक्षादि अविरुद्ध प्रयोगोंके कहनेसे और संक्षेप करनेसे इस ग्रंथका माहात्म्य कहते हैं—

प्रयोगानागमात्सिद्धान्प्रत्यक्षादनुमानतः ॥
सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात् ॥ ६ ॥

अर्थ—समस्त लोकके हितार्थ इस ग्रंथमें प्रत्यक्ष अनुमान और आगम (शास्त्र) से सिद्ध प्रयोगोंको संक्षेप रूपसे वर्णन करते हैं । आगमादिकोंके लक्षण जेजटादि आचार्योंने कहे हैं उनको सबके जाननेके अर्थ मैं इस जगह लिखता हूं (तहां आगम कहिये वेद अथवा

---

१ कर्मप्रकोपेन कदाचिदेके दोषप्रकोपेन भवंति चान्ये । तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः ॥

२ दुष्टामयाः परकलत्रधनर्णहारगुर्वंगनागमनविप्रवधाधिभिर्वा । दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते नोपक्रमेण भिषजामुपयांति सिद्धिम् ॥ ३ दानैर्दयादिभिरपि द्विजदेवतागोसंसेवनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः । इत्युक्तपुण्यनिचयैरपचीयमानाः प्राक्कर्मजा यदि रुजः प्रशमं प्रयांति ॥

४ स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषैरवप्लुतैः स्वेषु मुहुश्चलद्भिः । भवंति ये प्राणभृतां विकारास्ते दोषजा भेषजसिद्धिसाध्याः ॥ ५ दानादिभिः कर्मभिरौषधीभिः कर्मक्षये दोषपरिक्षयाद्यात् । सिद्ध्यन्ति ये यत्नवतां कथंचित्ते कर्मदोषप्रभवा विकाराः ॥

आप्तपुरुषोंका वाक्य है जैसे लिखा है कि जो सिद्ध[1] प्रमाणों करके सिद्ध हो और इस लोक तथा परलोकमें हितकारी हो वह आप्तोंका आगम शास्त्र है और जो सत्य अर्थके जाननेवाले हैं उनको आप्त कहते हैं) अब आगमसिद्ध जो सुननेमें आता है उसको कहते हैं. जैसे लिखा है (कि इस[2] प्रयोगके प्रभावसे हजारवर्ष जीवे और वृद्धास्त्रीभी इसके सेवन करनेसे सोलह वर्षकी अवस्थावालीसी होय) यह आगमसिद्धि कही । अब कहते हैं कि जो कुछ अर्थका साक्षात्कारी ज्ञान है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं. जैसे लिखा है कि (मनइन्द्रीगत भ्रांतिरहित जो वस्तु है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं और जिसमें इन्द्रियोंको यथार्थ ज्ञान न हो उसको भ्रम[3] कहते हैं) जैसे--वमन विरेचनादि योग प्रत्यक्षफल दिखानेवाले हैं। तथा जिस वस्तुका अव्यभिचारी लक्षणों करके पछिसे ज्ञान होय उसको अनुमान कहते हैं जैसे पांडुरोग मिट्टी खानेसे होता है और वमन मक्खीके खानेसे होती है ऐसा अनुमान कराजाता है । उसी प्रकार त्वचाके फटने और राध (रुधिर) निकलनेसे व्रण पकगया ऐसा अनुमान करा जाता है । प्रत्यक्ष अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण आयुर्वेदमें माने जाते हैं । अब कदाचित् कोई प्रश्न करे कि यह ग्रंथ तुम किस हेतुसे करते हो तहां कहते हैं कि (सर्वलोकहितार्थाय) अर्थात् सर्वलोकके हितके अर्थ कहताहूं, तहां लोक दो प्रकारका है एक स्थावर (वृक्षादि) और दूसरा जंगम (पशुपक्षी मनुष्यादि) इन दोनों प्रकारके लोकमें यहांपर इस मनुष्यदेहका लोकशब्द करके ग्रहण है ॥

कदाचित् कोई कहे कि आप जो शार्ङ्गधर ग्रंथमें लिखते हो यह अन्य प्राचीन ग्रंथ द्वाराही ज्ञान हो सकता है फिर इस पिष्टपेषण ग्रंथसे क्या फलसिद्धि होयगी ? तहां कहते हैं कि (अनतिविस्तरात्) अर्थात् विस्ताररहित इस ग्रन्थको मैं कहता हूँ अन्य आर्ष ग्रंथ बहुप्रपंचयुक्त हैं पूर्वपक्ष समाधानादि करके चित्तको उद्वेग करते हैं इस कारण मैंने यह उक्तदोषरहित संक्षेपसे कहा है अतएव यह ग्रन्थ उत्तम है ॥

अथ अनुक्रमणिका ।

प्रथमं परिभाषा स्याद्भैषज्याख्यानकं तथा ॥
नाडीपरीक्षादिविधिस्ततो दीपनपाचनम् ॥ ७ ॥
ततः कलादिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा ॥
रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरितः ॥ ८ ॥

अर्थ--अब तीनों खण्डोंकी अनुक्रमणिका कहते हैं । तहां परिभाषासे आदि ले रोग गण

---

[1] सिद्धं सिद्धैः प्रमाणैस्तु हितं चात्र परत्र च । आगमः शास्त्रमाप्तानामाप्ताः सत्यार्थवेदिनः ॥
[2] जीवेद्वर्षसहस्राणि योगस्यास्य प्रभावतः । वृद्धा च शतवर्षीया भवेत्षोडशवार्षिकी ॥
[3] मनोक्षगतमभ्रांतं वस्तु प्रत्यक्षमुच्यते । इन्द्रियाणामसंज्ञाने वस्तुतत्त्वे भ्रमः स्मृतः ॥

नांत पर्यन्त सात अध्यायों करके यह पूर्वखंड आचार्यने कहाहै। जैसे प्रथमाध्यायमें परिभाषा (तोल आदि) कथन, दूसरे अध्यायमें औषधाख्यान अर्थात् औषधभक्षणादि विधि और तथाके कहनेसे द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाकादिकोंका कथन है, तीसरे अध्यायमें नाडीपरीक्षाविधि और आदिशब्दसे दूत स्वप्नादिकोंका कथन है, चतुर्थ अध्यायमें दीपनपाचनादिलक्षण और अनुलोमन विरेचन वमन लेखन स्तंभनादिकथन है, पंचमाध्यायमें कलादिकोंका कथन तथा सृष्टिक्रम शारीरादिकोंका कथन है, छठे अध्यायमें आहारादिकोंकी गति और गर्भोत्पत्ति कुमारपोषणोक्ति प्रकृतिलक्षण कथन है, सप्तमाध्यायमें रोग (ज्वरादिकोंकी) गणना कथन इस प्रकार सात अध्यायोंकरके प्रथम खण्ड कहा है॥

मध्यखंडकी अनुक्रमणिका।

स्वरसः क्वाथफांटौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम् ॥
तथैव गुटिकालेहौ स्नेहः संधानमेव च ॥
धातुशुद्धिरसाश्चैव खंडोऽयं मध्यमः स्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ—१ अध्यायमें स्वरस और पुटपाकविधि कही है। २ अध्यायमें काढे और प्रमथ्यादि तथा उष्णोदक क्षीरपाक अन्नक्रिया इनकी विधि कही है। ३ अध्यायमें फाण्ट और मंथ इनकी विधिकथन। ४ अध्यायमें हिमविधिका कथन। ५ अध्यायमें कल्ककथन। ६ अध्यायमें चूर्णोंका कथन। ७ अध्यायमें गुटिकाओंका कथन। ८ अध्यायमें अवलेहोंका कथन। ९ अध्यायमें घृत और तेलका कथन। १० अध्यायमें मद्यभेदकथन। ११ अध्यायमें स्वर्णादिकधातु और उपधातु इनका शोधन मारण कथन। १२ अध्यायमें रस उपरस इनका शोधन मारण और सिद्धरस इनका कथन कहा है। इस प्रकार बारह अध्यायों करके मध्यम खंड कहाहै॥

उत्तरखंडकी अनुक्रमणिका।

स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम् ॥ ततस्तु स्नेहवस्तिः
स्यात्ततश्चापि निरूहणम् ॥ १० ॥ ततश्चाप्युत्तरो वस्तिस्ततो
नस्यविधिर्मतः ॥ धूमपानविधिश्चैव गंडूषादिविधिस्तथा
॥ ११ ॥ लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविस्रुतिः ॥
नेत्रकर्मप्रकारश्च खंडः स्यादुत्तरस्त्वयम् ॥ १२ ॥

अर्थ–१ अध्यायमें स्नेहपान[1]विधि । २ अध्यायमें स्वेद[2]विधि । ३ अध्यायमें वमनविधि । ४ अध्यायमें विरेचनविधि । ५ अध्यायमें स्नेह[3]वस्तिकथन । ६ अध्यायमें निरूहण[4]विधि । ७ अध्यायमें उत्तर[5]वस्तिकथन । ८ अध्यायमें नस्य[6]विधि । ९ अध्यायमें धूमपान[7]विधि तथा व्रणधूपन और ग्रहधूपन जानना । १० अध्यायमें गंडूषा[8]दिविधि और कवलप्रतिसारण कथन । ११ अध्यायमें लेपा[9]दिकोंकी और मस्तकमें तैल डालना तथा कर्णपूरणकी विधि जाननी । १२ अध्यायमें रुधिर निकालनेकी विधि । १३ अध्यायमें नेत्रकर्मप्रकार इस प्रकार तेरह अध्यायोंकरके उत्तरखंड कहा है ॥

अब संहिताकी निरुक्तिपूर्वक ग्रंथकी श्लोकसंख्या कहते हैं–

द्वात्रिंशत्सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता ॥
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च ॥ १३ ॥

अर्थ–शार्ङ्गधरसंहिता ३२ अध्याय करके युक्त है और इसमें २६०० छब्बीस सौ श्लोकोंकी संख्या कही है । पदके समूहसे वाक्य वाक्योंके समूहोंसे प्रकरण और प्रकरणके समूहोंसे अध्याय होता है ॥

औषधोंके मानकी परिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां ज्ञायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १४ ॥

अर्थ–मान (परि[10]माण) के विना औषधोंकी युक्ति (कर्त्तव्यविधि) कही नहीं होती अत एव औषध बनानेके लिये मान (तोलने आदि) विधि इस संहितामें मागध परिभाषा करके कहताहूं यह तोलनेका प्रमाण है और भक्षणकी मात्राका प्रमाण आगे प्रत्येक प्रयोगमें कहेंगे ॥

त्रसरेणुका परिमाण ।

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ॥

---

[1] घृत और तैल पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं । [2] देहमेंसे पसीने निकालनेकी विधिको स्वेदविधि कहते हैं । [3] गुदादिकोंमें तेलकी पिचकारी मारनेके प्रयोगको स्नेहवस्ति कहते हैं । [4] काढे तथा दूध इत्यादिकरके पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणवस्ति कहते हैं । [5] उत्तरवस्ति लिंग भगादिमें पिचकारी लगानेके प्रयोगको कहते हैं । [6] नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्य-विधि कहते हैं । [7] चिलम हुक्का अथवा बीडीमें औषध करके जो धुआँ पीते हैं उसको धूमपान कहते हैं । [8] काढे अथवा रसादिकोंके कुल्ले करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते हैं । [9] लेपादिक करनेके प्रयोगको लेपविधि कहते हैं । [10] गुंजा, मासे, तोले, पौसेरा, अधसेरा इत्यादिक जानना ।

त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ १५ ॥

अर्थ–तीस परमाणुका १ त्रसरेणु होता है और वंशी शब्द उसी त्रसरेणुका पर्यायवाचक शब्द है । परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं वह स्वभावसे अथवा अनुभाव करके जाने जाते हैं नेत्रों करके नहीं प्रतीत होते ॥

परमाणुके लक्षण ।

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–जाली झरोखोंमें सूर्यकी किरण पडनेसे उन किरणोंमें जो धूलके बहुत बारीक कण उडते दीखते हैं उस एक एक कण (रज) का जो तीसवाँ भाग है उसको परमाणु कहते हैं, कोई इसके आगे वंशीके लक्षण कहता है जैसे (जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते) अर्थात् जाली झरोखोंमें जो सूर्यकी किरणोंमें रज उडती है उसको वंशी कहते हैं ॥

मरीचि आदिका परिमाण ।

षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिस्तु राजिका ॥
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुंजा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ १७ ॥

अर्थ–६ वंशीकी १ मरीचि (जो रेतली जमीनमें धूलके बारीक कण सूर्यकी किरणोंसे चमकते हैं) होती है । छः मरीचियोंकी १ राई, ३ राईकी १ सपेद सरसों होती है, ८ सपेद सरसोंका १ यव होता है, और ४ यव (जौ) की १ (गुंजा) रत्ती घूंघची होती है ॥

मासेका परिमाण ।

षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥

अर्थ–६ रत्तीका १ मासा होता है उसको हेम और धान्यकभी कहते हैं, (कोई सात रत्तीका, कोई पांच रत्तीका और कोई दश रत्तीका माषा होता है ऐसा कहते हैं) ॥

शाण और कोलका परिमाण ।

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ १८ ॥
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ॥
क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते ॥ १९ ॥

अर्थ-४ मासेका शाण होता है उसको धरण टंकभी कहते हैं । (जहां जहां मासा आवे वहां २ छः रत्तीका मासा जानना) २ शाणका कोल होता है उसको क्षुद्रभ, वटक और द्रंक्षणभी कहते हैं, (कोल नाम बेरका है, उसके बराबर होनेसे इस तोलकी कोलसंज्ञा रक्खी है)॥

कर्षका परिमाण ।

कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ॥ अक्षः पिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ २० ॥ बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ॥ करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्रहम् ॥ उदुंबरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥ २१ ॥

अर्थ-दो कोलका १ कर्ष होता है, उसको पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिन्दुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपदक, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुंबर भी कहते हैं अर्थात् ये १३ नाम भी उसी कर्षके हैं । (तहां अक्ष नाम बहेडेका है, उसके बराबर होनेसे इस कर्षको अक्षभी कहते हैं, तेंदूके फल समान होनेसे तिन्दुक संज्ञा है, हथेली भरकी पाणितल संज्ञा है, तीन उंगली करके ग्राह्य अतएव इसकी बिडालपद संज्ञा है, सोलह मासेका होता है इस कारण इसकी षोडशिका संज्ञा है और गूलरके समान होनेसे इस कर्षकी उदुम्बर संज्ञा आचार्योंने दीनी है इसी प्रकार जितनी संज्ञा इस परिभाषामें हैं वे सब सार्थक हैं) व्यवहारमें १ कर्षका १ तोला होता है ॥

अर्द्धपल और पलका परिमाण ।

स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ शुक्तिभ्यां चपलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥ प्रकुंचः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ २२ ॥

अर्थ-२ कर्षका एक अर्द्धपल उसीको शुक्ति (शीप) और अष्टमिका कहते हैं । २ शुक्तिका पल होता है उसको मुष्टि, आम्र (आम्रफल), चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी और बिल्व (बेलका फल) ये भी पलके पर्यायवाचक नाम हैं ॥

प्रसृतिसे आदि ले मानिकापर्यंतकी संज्ञा ।

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते । प्रसृतिभ्यामंजलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः ॥ २३ ॥ अष्टमानं च संज्ञेयं कुडवाभ्यां च मानिका ॥ शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥२४॥

अर्थ-दो पलकी प्रसृति होती है, फैलीहुई उंगलियोंवाली हथेलीको प्रसृति और उसको प्रसृत भी कहते हैं। दो प्रसृतिकी १ अंजली (पस्सा) होता है, उसीको कुडव (पावसेर) अर्द्धशरावक

और अष्टमानभी कहते हैं। दो कुडवकी १ मानिका होती है, उसको शराव अष्टपलभी कहते हैं। एक शरावके १२८ टंक होते हैं॥

प्रस्थका और आढकका परिमाण।

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम्॥
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत्॥ २५॥

अर्थ–दो शरावका १ प्रस्थ (सेर) होता है, चार प्रस्थका १ आढक होता है, उसको भाजन कंसपात्रभी कहते हैं, यह ६४ पलका होताहै॥

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतका परिमाण।

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोन्मनौ॥ उन्मानश्च घटो
राशिद्रोणपर्यायसंज्ञकाः॥ २६॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुंभौ च
चतुःषष्टि शरावकाः॥ शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी
च सा स्मृता॥ २७॥

अर्थ–चार आढकका १ द्रोण होताहै, उसको कलश, नल्वण, उन्मान, घट (घडा) और राशिभी कहतेहैं। दो द्रोणका शूर्प (सूप) होताहै, उसको कुम्भभी कहते हैं। उस शूर्पके ६४ शराव होतेहैं। एवं दो शूर्पकी १ द्रोणी होती है, उसको वाह और गोणीभी कहते हैं॥

खारीका परिमाण।

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः॥
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा॥ २८॥

अर्थ–चार द्रोणीकी १ खारी होती है, उसके ४०९६ पल होतेहैं॥

भार और तुलाका परिमाण।

पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः॥
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः॥ २९॥

अर्थ–२००० पलका १ भार होताहै और १०० पलकी १ तुला होती है, यह केवल मगध देशमेंही नहीं किंतु सर्व देशमें यही तोलका निश्चय जानना॥

अब सर्वमान ज्ञापनार्थ एक श्लोक करके मान कहते हैं।

माषटंकाक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम्॥
राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा॥ ३०॥

अर्थ–मासेसे लेकर खारीपर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी जैसे ४ मासेका १ शाण

---

१ तुला पलशतं तासां विंशतिर्भार उच्यते। खारी भारद्वयेनैव स्मृता षड्भाजनाधिका॥ इति।

४ शाणका एक कर्ष, ४ कर्षका एक बिल्व, ४ बिल्वकी एक अंजली, ४ अंजलीका एक प्रस्थ, ४ प्रस्थका एक आढक, ४ आढककी एक राशि, ४ राशिकी एक गोणी, ४ गोणीकी एक खारी इस प्रकार एकसे दूसरी चौगुनी जाननी ॥

अब गीली सूखी और दूध आदि पतली वस्तुओंका तोल ।

गुंजादिमानमारभ्य यावत्स्यात्[1]कुडवस्थितिः ॥
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ ३१ ॥
प्रस्थादिमा[2]नमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ॥
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचिन्मतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–जल आदि पतले पदार्थ और गीली औषध तथा सूखी औषध ये रत्तीसे लेकर कुडवपर्यंत समान लेवे और जल आदि पतले पदार्थ तथा गीली औषध ये लेनी होय तो प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत इनका तोल सूखी औषधकी अपेक्षा दुगुनी लेवे तथा तुलासे लेकर द्रोणपर्यंत इनकी तोल दुगुनी लेवे ऐसा कहीं नहीं कहा अत एव इनका मान सूखी औषधीके समान लेवे । इस अभिप्रायको स्नेहपाकमें प्रायः मानते हैं । तत्कालकी लाई हुई औषधको गीली कहते हैं । जो धूपमें सुखाय लीनी हो अथवा वहुत दिनकी धरी हुई औषधको शुष्क[3] कहते हैं ॥

कुडवपात्र बनानेकी रीति ।

मृदुस्तु वेणुलोहादेर्भांडं यच्चतुरंगुलम् ॥
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ–चार अंगुल लंबा चार अंगुल चौडा तथा चार अंगुल गहरा ऐसे माटीके अथवा बांसके अथवा लोह (सोना–चाँदी–ताँबा–जस्त–राँग–काँसा–शीशा–और लोह) के आदिशब्दसे चामके, अथवा सींग और दाँतके पात्र बनावे उसकी कुडवसंज्ञा है इसके द्वारा दूध–जल–तेल–घृत नापा जाता है ॥

प्रयोगके, प्रथम औषधोंके नाम विशिष्ट प्रयोगोंका, धरना ।

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ॥
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽसौ विनिश्चयः ॥ ३४ ॥

अर्थ–जिस प्रयोगमें जो प्रथम औषध है उसी औषधके नाम करके इस प्रयोगको

---

[1] रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत् । शुष्कद्रव्यार्द्रयोस्तावत्तुल्यं मानं प्रकीर्तितम् ॥
[2] प्रस्थादिमानमारभ्यद्रव्यादिद्विगुणं त्विदम् । कुडवोपि क्वचिद्दृष्टं यथा दंतीघृते मतः ॥
[3] शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा स्वार्द्रस्य द्विगुणा हि सा । शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्धं प्रयोजयेत् ॥

जानना, उदाहरण--जैसे क्षुद्रादि, रास्नादि, गुडूच्यादिक्काथ, इनमें प्रथम कटेरी रास्ना और गिलोय है इसी कारण क्षुद्रादि काढा रास्नादि काढा और गुडूच्यादि काढा कहाया इसी प्रकार चन्दनादि तैल कूष्माण्डपाक हिंग्वष्टकचूर्ण आदिमेंभी जानना चाहिये ॥

इति मागधपरिभाषा ।

अथ कालिंगपरिभाषा ।

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् ॥
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—अब मात्राकी स्थिति नहीं है यह कहते हैं जैसे कि औषधोंके सेवनका प्रमाण निश्चय करके करनेमें नहीं आता इसी कारण काल, जठराग्नि, अवस्था, वल, प्रकृति, दोष और देश इनको वैद्य विचार करके अपनी बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पना करे। तहां कालकरके शीत-गरमी वर्षा जानना, जठराग्निकरके रोगीकी मन्द तीक्ष्ण विषम सम चतुर्विध अग्नि जानना। अवस्था तीन हैं आदि मध्य और अन्त । वल तीन प्रकारका है हीन मध्य और उत्तम। प्रकृति तीन प्रकारकी है हीन मध्यम और उत्तम अथवा देश जाति शरीर आदिके भेदसे प्रकृतिके बहुत भेद हैं । दोष तीन प्रकारका है वात, पित्त, कफात्मक । देशभी दो प्रकारका है एक भूमिदेश और एक देहदेश, तहां भूदेश तीन प्रकारका है जैसे जांगल, अनूप और साधारण, उसी प्रकार देहभी जांगलादि भेदोंकरके तीनही प्रकारका है ॥

भक्षणार्थ प्रथम कही हुई कलिंगपरिभाषाकोभी दिखाते हैं ।

यतो मंदाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ॥
अतस्तु मात्रा तद्योगा प्रोच्यते सुज्ञसंमता ॥ ३६ ॥

अर्थ—कलियुगके मनुष्य मन्दाग्नि, छोटी देहवाले और तुच्छ बलके होते हैं अत एव इनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य ऐसा औषधका प्रमाण कहते हैं ॥

कलिंग परिभाषाका तोल ।

यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः ॥ यवद्वयेन गुंजा
स्यात्त्रिगुंजो वल्ल उच्यते ॥ ३७ ॥ माषो गुंजाभिरष्टाभिः
सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित् ॥ स्याच्चतुर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टंक
एव च ॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः
॥ ३८ ॥ चतुःकर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ चतुः-
पलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥ ३९ ॥

अर्थ–बारह सपेद सरसोंका १ यव (जौ) दो यवकी १ गुंजा (रत्ती) ३ रत्तीका एक वल्ल (कहीं दो रत्तीकाभी वल्ल होता.है) आठ रत्तीका १ माषा, कहीं कहीं सात रत्तीका मासा होता है (यह तन्त्रान्तरका मत है इसको विषकल्पमें लेना चाहिये क्यों कि सर्वत्र अप्रसिद्ध है) चार मासेका १ शाण होता है उसको निष्क और टंक भी कहते हैं, ६ मासेका एक गद्याणक, दश मासेका एक कर्ष होता है, चार कर्षका एक पल, उस पलके दश शाण होते हैं । चार पलका १ कुडव होता है और प्रस्थादिकोंका तोल मागध परिभाषाके समानही जानना परन्तु यह तोल इसीके अनुक्रमसे लेना मागधपरिभाषाका कर्ष और पलकरके नहीं लेनी चाहिये ॥

यद्यपि देशान्तरोंमें अनेक मान हैं तथापि मागध और कलिंगमान ये दो प्रसिद्ध हैं यह कहते हैं–

कालिंगं मागधं चेति द्विविधं मानमुच्यते ॥
कालिंगान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो जनाः ॥ ४० ॥

अर्थ–मान दो प्रकारका है एक कालिंग (अर्थात् उडिया देशमें प्रसिद्ध होनेसे) और दूसरा मागध (मागध देशमें प्रसिद्ध होनेसे) तहां कालिंगमानसे मागधमान श्रेष्ठ है ऐसे मानके ज्ञाता वैद्य कहते हैं । मागधमान चरकका और कालिंगमान सुश्रुतका है ॥

औषधोंका युक्तायुक्तविचार ।

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥
विनाविडंगकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ४१ ॥

अर्थ–दशधा द्रव्यकल्पनादि सम्पूर्ण विषयमें नवीन[1] औषधकी योजना करनी चाहिये परन्तु वायविडंग, पीपर, गुड, अन्न, घृत और सहत ये छः पदार्थ पुराने गुणकारी होते हैं अत एव ये पुराने लेने चाहिये (घृत[2] भोजनमें–तृप्तिके लिये सदा नवीन ताजा) लेना और तिमिरादिकी औषधोंमें पुराना लेना । उक्तं च भावप्रकाशे--" योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे " इत्यादि इसी प्रकार शहतभी बृंहण कार्यमें नया लेना और कर्षणमें पुराना लेना । उक्तं च सुश्रुते–" बृंहणीयं मधु नवं नातिश्लेष्महरं सरम् । मेदःश्लेष्मापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम् ॥" विडंगादिकोंका पुरानत्व १ वर्षके बाद होता है ॥

जो औषध सदैव गीली लेनी उनको कहते हैं ।

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी ॥
अश्वगंधा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी ॥
प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ–गिलोय, कूडा (कुरैया), अडूसा, पेठा, शतावर, असगंध, पीयावांसा, सौंफ

---

[1] सर्वं च क्षीरविषवद्युक्तं भवति भेषजम् । तेषामलाभे गृह्णीयादनतिक्रांतवत्सरम् ॥

[2] घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते । तैलपक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥

और प्रसारणी ये नौ औषध सर्वकालमें गीली लेनी चाहिये परंतु गीली जानके द्विगुणित न लेवे ॥

साधारण औषधकी योजना ।

शुष्कं नवीनं द्रव्यं च योज्यं सकलकर्मसु ॥
आर्द्रं च द्विगुणं युंज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥ ४३ ॥

अर्थ--पूर्वोक्तश्लोककी नौ औषधियोंके विना इतर औषध संपूर्ण कार्यमें सूखी हुई नवीन लेनी चाहिये और गीली होंय तो दूनी लेना यह निश्चय सर्वत्र जानना ॥

अनुक्तकालादिकोंकी योजना ।

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादंगेऽनुक्ते जटा भवेत् ॥
भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात्पात्रेऽनुक्ते च मृन्मयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ--जिस प्रयोगमें काल नहीं कहाहो वहांपर प्रातःकाल लेना, जहाँ औषधका अंग नहीं कहाहो वहाँ औषधकी जड लेनी, जिस प्रयोगमें औषधके भाग न कहे हों उस जगह सब समान भाग लेवे और जिस जगह पात्र न कहाहो तहाँ मिट्टीका पात्र लेना चाहिये, चकारसे जहाँ द्रव्य नहीं हो तहाँ[1] जल लेना चाहिये ॥

योगमें पुनरुक्त द्रव्यका मान कहते हैं ।

एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरुच्यते ॥
मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४५ ॥

अर्थ--जिस प्रयोगमें एक औषधका नाम पर्याय करके दो वार कहाहो उसे आयुर्वेदरहस्यज्ञाता वैद्य दूनी[2] लेवे ॥

चूर्णादिकोंमें कौनसा चन्दन लेवे ।

चूर्णस्नेहासवालेहाः प्रायश्चन्दनान्विताः ॥
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ--चूर्ण (लवंगादि) घृत तेल (लाक्षादि) आसव (कुमार्यासवादि) लेह (च्यवनप्राशावलेहादि) इनमें प्रायः[3] सपेद चंदन लेना और काढे तथा लेप आदिमें प्रायः लाल चंदन लेना चाहिये, प्रायः शब्दसे यह दिखाया कि कहीं (एलादिचूर्णमें. भी) लाल चंदन लेवे, क्योंकि व्याधिविहित है और काढे आदिमें सपेद चंदन ले ॥

---

[1] द्रव्येऽप्यनुक्ते जलमात्रदेयं भागेऽप्यनुक्ते समताभिधेया । अंगेऽप्यनुक्ते विहितं तु मूलं कालेऽप्यनुक्ते दिवसस्य पूर्वम् ॥

[2] घृते तैले च योगे तु यद्द्रव्यं पुनरुच्यते । तज्ज्ञातव्यमिहार्येण मानतो द्विगुणं भवेत् ॥

[3] प्रायःशब्दो विशेषार्थे क्वचिन्न्यूनेऽपि दृश्यते ।

अब सिद्ध करीहुई औषधोंके काल व्यतीत होनेसे गुणहीनत्व कहतेहैं।

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ॥
मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम् ॥
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ ४८ ॥
औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ॥
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥ ४९ ॥

अर्थ-वनसे लाईहुई औषध एक वर्षके पश्चात् तेज और गुणरहित होजातीहै, तालीसादि चूर्ण दो महीनेके पश्चात् हीनवीर्य होजातेहैं (अर्थात् कुछ २ गुणोंमें न्यून होजाते हैं सर्वथा वीर्यरहित नहीं होते, क्योंकि लवणभास्करादि चूर्णोंका प्रमाण अधिक कहा है वह अधिक कालतक सेवनके लियेही कहाहै अन्यथा यह व्यर्थ होजायगा) और विजयादि गुटिका तथा खंडकादि अवलेह आदि बहुत काल रखनेसेभी अपने गुणको नहीं त्यागते परंतु कुछ २ गुणरहित होजातेहैं। और घृत तेल आदि १६ महीनोंके उपरांत गुणहीन होतेहैं। कोई (चतुर्मासाधिकास्तथा) ऐसा पाठ कहकर अर्थ करते हैं कि, वर्षाकालके चार महीने व्यतीत होनेपर घृततैलादि हीनवीर्य होतेहैं। लघुपाक हुई यव गेहूँ चना आदि औषधी १ वर्षके अनन्तर निर्वीर्य होतीहैं, बहुतकालक रहनेसे गुड अधिक गुणवान् होताहै। एवम् आसव (कुमार्यासवादि), सुवर्ण आदि, धातुकी भस्म और चंद्रोदयादि रस वा रसायन ये जितने पुराने होंय उतनेही अधिक गुणवाले होतेहैं ॥

रोगोंको उक्तानुक्त द्रव्यकथन।

व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत् ॥
अनुक्तमपि युक्तं यद्युज्यते तत्र तद्बुधः ॥ ५० ॥

अर्थ-व्याधिमें चूर्ण कषायादिकोंकी योजना करनेमें जो औषधी दी जावे उस चूर्ण कषाय आदिमें यदि एक दो ऐसी औषध जो व्याधिके विरुद्ध होय तो गणोक्त भी हो तथापि उस विरुद्ध औषधको वैद्य निकाल डाले और यदि कोई ऐसी औषधी हो कि, जो उस व्याधिको हितकारी है परंतु चूर्ण काढे आदिमें नहीं कही होय तो उसको वैद्य अपनी बुद्धिसे मिलाय देवे ॥

---

१ घृतमब्दात्परं किंचिद्धीनवीर्यत्वमाप्नुयात् । तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । रूढाः पुराणा विरसा न तथा गुणकारिणः ॥ २ हीनं तु स्याद्घृतं पक्वं तैलं वा वत्सरात्परम् ।

द्रव्यहरणार्थ कालादिकथन ।

आग्नेया विंध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ॥ ५१ ॥
अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥
अन्येष्वपि प्ररोहंति वनेषूपवनेषु च ॥ ५२ ॥

अर्थ–विंध्याचल (आदिशब्दसे मलयाचल, सह्याद्रि, पारियात्र) आदिकोंकी उत्पन्न होनेवाली औषधि अग्निगुणभूयिष्ठ अर्थात् उष्णवीर्य होती हैं और हिमालयपर्वत आदिकी औषधी शीतवीर्य होती हैं, ये केवल पर्वतोंहीमें नहीं होती किंतु वन और उपवन (बगीचा) आदिमेंभी होती हैं, अत एव जैसी २ पृथ्वीमें जैसी २ ऋतु (शरदी, गरमी, चातुर्मास्य) होती है उसीके अनुसार वीर्यवान् औषधी होती है ॥

औषध लानेकी विधि ।

गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ॥
आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥
साधारणं धराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥ ५३ ॥

अर्थ–औषधी लानेके निमित्त प्रातःकाल उठ स्वस्थ चित्त करके, पवित्र होवे और उत्तम दिन (अर्थात् उत्तम तिथि, नक्षत्र, योग और लग्नमें) सूर्यके सम्मुख मुख करके तथा सूर्यको प्रणाम कर और हृदयमें श्रीशिव (परमात्माका) ध्यान कर मौनमें स्थित हो जांगल और अनूपरहित ऐसी साधारण पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली और उत्तर दिशामें स्थित जो औषधी है उनको ग्रहण करे, कोई कहता है कि उत्तराश्रित अर्थात् उत्तराभिमुख होकर औषधको उखाडे, इस जगह ीयात् यह पद दो वार आनेसे निश्चयार्थ ज्ञापन जानना ॥

अब दुष्टस्थानमें प्रगट औषधका त्याग कहते हैं ।

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजा ॥
जंतुवह्निहिमव्याप्ता नौषधी कार्यसाधिका ॥ ५४ ॥

अर्थ–सर्प आदिकी, बमईकी, दुष्ट पृथ्वीकी, जलप्रायस्थानकी, श्मशानकी, ऊषर (वंजड) पृथ्वीकी, मार्ग (रास्ते) में उत्पन्न होनेवाली, एवं जो कीडोंकी खाई हुई, अग्निसे जरी हुई, सरदीकी मारी हुई ऐसी औषधी कार्यसाधक नहीं होती, अतएव ऐसे स्थानकी और बिगडी औषध नहीं लानी चाहिये । इस जगह हमारा कथन इतनाही है कि ये संपूर्ण औषध लानेकी

---

१ सर्वलक्षणसंपन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ।

आज्ञा वैद्यको है यदि स्वयं वैद्य जायगा तभी वल्मीकादि स्थानकी और जंतु अग्नि पाले आदिसे दूषित औषधोंकी परीक्षा करेगा नीच जंगली मनुष्य यह बात काहेको देखेगा उसको तो कहींसे मिले ग्राहकको देकर अपने पैसे लेनेसे काम है । दूसरे शुभाशुभ दिन वह क्यों देखने लगेगा अतएव आजकल औषधी अपना गुण नहीं दिखातीं, दूसरेके यहाँके वैद्य हकीम और डाक्टरोंसे कोई औषधीकी परीक्षाके विषयमें कुछ प्रश्न किया जावे तो वे केवल बछियाके बाबाही निकलेंगे । कारण इसका भी वही है कि इन्होंने कभी परीक्षा न सीखी, न अपने आँखोंसे देखी जो कुछ बजारमें जंगली आदमी दे जाते हैं और जो कुछ उसका नाम बता जाते हैं वही उनके वास्ते ठीक है, फिर औषध विपरीत गुण करे तो कौन आश्चर्य है अतएव हमारे भारतनिवासी वैद्योंको इस परीक्षामें कटिबद्ध होना चाहिये । कि जिससे यह विद्या सर्वथा अस्त न हो ॥

औषधिग्रहणकाल ।

शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥
विरेकवमनार्थं च वसंतान्ते समाहरेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ—शरदृतु (आश्विन कार्त्तिकके महीने) में संपूर्ण औषधी रससे परिपूर्ण होती हैं अतएव सर्व कार्य करनेके अर्थ इन दोनों महीनोंमें औषध लेकर घर रक्खै, तथा विरेक (जुल्लाब) और वमन (रद्द) के लिये ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ आषाढ इन दो महीनोंमें) औषध लेनी चाहिये । यद्यपि अखिल कार्यके कहनेसे विरेक और वमनका बोध होगया तथापि विशेषता सूचनार्थ पृथक् २ कहा है ॥

द्रव्योंके ग्राह्य अंग कहते हैं ।

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ॥
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ ९६ ॥

अर्थ—जिन वृक्षोंकी वडी जड हो (जैसी वड, नीम, आम आदि) उनकी छाल लेनी चाहिये और जिन वनस्पतियोंकी छोटी जड हो (जैसी कटेरी धमासा गोखरू आदि) उनके सर्व अंग अर्थात् जड पत्ता फूल फल और शाखा सब लेनी चाहिये । कोई कहताहै कि, बडे वृक्षोंके जडकी छाल लेवे और छोटे वनस्पतिकी जडमात्र लेनी चाहिये ॥

अब औषधोंका प्रसिद्ध अंगहरण कहते हैं ।

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ॥

---

१ ग्रीष्मे मंजरिकाग्रेषु वर्षासु दलचर्मणि । वसंते मूलमाश्रित्य वृक्षाणां तु रसस्थितिः ॥

तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्त्रिफलादितः ॥ ५७ ॥
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥ ५८ ॥

इति शार्ङ्गधरे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ—बड आदि शब्दसे पाखर, आम, जामुन, अंबाडे आदिकी छाल लेनी, विजयसार आदि शब्दसे खैर, महुआ, बबूर आदिका सार लेना, तालीस आदिशब्दसे पत्रज, घीकुवार, पानपत्तेनका शाक इनके पत्ते लेने चाहिये, त्रिफला आदिशब्द करके सुपारी, कंकोल, मैनफल आदिके फल लेने चाहिये। धाय आदि शब्दकरके सेवती, कमोदनी, कमल आदिके पुष्प लेने चाहिये और थूहर आदिशब्द करके आक, दुद्धी, मंदार आदिका दूध लेना चाहिये, एवं चकारसे नहीं कहे गये गोंद आदि जानना ॥

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपाठकतनयदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहितार्थबोधिनीमाथुर-
भाषाटीकायां प्रथमखण्डे परिभाषाऽध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ॥
कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥

अर्थ—प्रथमाध्यायमें कह आये हैं कि (भैषज्याख्यानकं तथा) अर्थात् इस शार्ङ्गधरके दूसरे अध्यायमें भैषज्य (औषध) भक्षणका काल कहेंगे अतएव उसको कहते हैं. वैद्य बहुधा प्रातःकालमें रोगीको औषध भक्षण करावे और कषाय (स्वरस, कल्क, काढा, फांट और हिम) ये विशेष करके प्रातःकालमेंही देवे (बुधः) इस पदके धरनेसे यह सूचना करी कि औषधके कालको विचारके वैद्य अपनी बुद्धिके अनुसार औषध देवे केवल प्रातःकालकाही नियम नहीं है अब अन्य कालोंको वक्ष्यमाण प्रकार करके कहते हैं ॥

औषधभक्षणके पांच काल।

ज्ञेयः पंचविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥
सायंतने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्योंके औषधभक्षणविषयमें पांच काल हैं उनको कहते हैं. किंचित् सूर्योदय होने पर औषध लेना यह प्रथम काल, तथा दिनमें भोजनके समय औषधी लेना दूसरा काल,

तथा सायंकालमें भोजनके समय औषध लेना तृतीयकाल और वारंवार औषधी लेना चतुर्थ-काल एवं रात्रिमें औषध लेना वह पंचमकाल, इस प्रकार पांच काल जानना ॥

तहां प्रातःकाल कषायके सेवनमें कहा है, दूसरा काल जो भोजनके समयका है वह पांच प्रकारका है, जैसे भोजनके प्रथम लवण और अदरखका सेवन भोजनमें मिलायके हिंग्वष्ट-कादि चूर्ण, भोजनके मध्यमें जैसे पानी आदि पीना, भोजनान्तरमें जैसे लौंग और हरीतक्यो-दिका सेवन और एक भोजनके आदि अन्तमें जैसे अम्लपित्त रोगमें धात्री अवलेह भोजनके आदि अन्तमें दिया जाता है। तीसरा काल सायंकाल भोजनका समय है. वह भी तीन प्रकारका है, जैसे कि ग्रास ग्रासके पिछाडी और भोजनके अन्तमें बाकीके काल प्रसिद्ध हैं।

प्रथमकाल ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ॥
लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत् ॥
एवं स्यात्प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥ ३ ॥

अर्थ--पित्त और कफके कुपित होनेपर पित्तको विरेचन और कफको वमन उसी प्रकार लेखन (दोषोंको पतला करनेके) अर्थ प्रातःकालमें निरन्तर औषध देवे तथा रोगीके प्रातःकाल भोजन न देवे। यदि दोष उत्कट होय तो अन्य समयभी देना हितकारी लिखा इस प्रकार औषध ग्रहणमें मनुष्योंको प्रथम काल जानना ॥

(वक्तव्य श्लोक ३) विरेचनकी औषधि निरन्न दीजाती है, परन्तु वमनकी औषधि निरन्न नहीं दीजाती यवागू पिलाकर दीजाती है. देखो वमनविधि।

द्वितीयकाल ।

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ॥ अरुचौ चित्रभो-
ज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुणे मन्दे-
ग्नावग्निदीपनम् ॥ दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक्
॥ ५ ॥ व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनांते समाहरेत् ॥ हिक्का-
क्षेपककंपेषु पूर्वमंते च भोजनात् ॥ ६ ॥ एवं द्वितीयकालश्च
प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ॥ ७ ॥

अर्थ–अपान कहिये गुदासम्बन्धी वायु उसके कुपित होनेपर भोजनके किंचित् पूर्व औष भक्षण करे। अरुचि होनेपर अनेक प्रकारके अन्न तथा नाना प्रकारकी रुचिकारी वस् औषध मिलायके भोजन करे। तथा नाभिसम्बन्धी समानवायुके कोप एवं अग्निमांद्य होने अग्निदीपनकर्ता औषध भोजनके मध्यमें सेवन करे। सर्व देहव्यापी व्यान वायु

कुपित होनेमें भोजनकी अंतमें औषध भक्षण करे । तथा हिचकी, आक्षेपक वायु एवं कंप-वायु इनके कुपित होनेपर भोजनके प्रथम और अंतमें औषध भक्षण करे इस प्रकार दूसरा काल कहा है ॥

तृतीय काल ।

उदाने कुपिते वाते स्वरभंगादिकारिणी ॥
ग्रासे ग्रासांतरे देयं भैषज्यं सांध्यभोजने ॥ ८ ॥
प्राणे प्रदुष्टे सांध्यस्य भक्ष्यस्यान्ते च दीयते ॥
औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥ ९ ॥

अर्थ—कंठसंबधी उदानवायुके कुपित (स्वरभंगादि कंठका बैठजाना, वा गूंगा होजाना अथवा अन्य कंठके रोग) होनेसे सायंकालके भोजनमें ग्रास (गस्सा) के साथ अथवा दो दो ग्रासोंके बीचमें औषध भक्षण करावे । तथा हृदयस्थित प्राणवायुके कुपित होनेमें बहुधा सायंकालके भोजनके अंतमें औषध भक्षण करावे इस प्रकार तीसरा काल जानना ॥

कदाचित् कोई प्रश्न करै कि शार्ङ्गधरने पवनके पांच भेद कहे इसी प्रकार कफ और पित्तके जो पांच २ भेद हैं वे क्यों नहीं कहे ? तहाँ कहते हैं कि सब दोष, धातु मलादिकोंमें वायुको प्रधानता है और वायुही अन्य कफादिकोंके प्रकोपका कारण है अतएव इसके प्रकोप करके पित्तकफका प्रकोप होता है ऐसा जानना । जैसे कहा है कि ऐक दोष कुपित हो संपूर्ण दोषोंको कुपित करता है. तथा सुश्रुतमें लिखा है कि ‘ [1]अचिंत्यवीर्यवान् दोषोंका नियंता, सर्व रोगसमूहोंका राजा ऐसा यह वायु स्वयंभू और भगवान् ऐसे कहा है, ’ अतएव इसको प्रधानत्व होनेसे इसीके भेद कहे हैं अन्य कफादिकोंके नहीं ।

चतुर्थकाल ।

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च ॥
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥ १० ॥

अर्थ—तृषा वमन हिचकी श्वास तथा विषदोष ये रोग होनेसे बारम्बार अन्नसहित औषध भक्षण करना चाहिये । इस श्लोकमें जो चकार है इससे यह सूचना करी कि, तृषादि रोगोंमें अन्नराहितभी औषध देवे. इस प्रकार चतुर्थकाल कहा ॥

पंचमकाल ।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा ॥

---

[1] एकदोषस्तु कुपितो दोषानन्यान्प्रकोपयेत् । स्वयंभूरेष भगवान्वायुरित्यभिशब्दितः । अचिन्त्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ॥

पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषजं निशि ॥
इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ॥ ११ ॥

अर्थ—जत्रु (हसली) के ऊपर भागके (कर्णरोग १ नेत्ररोग १ मुखरोग तथा नासिका रोग इत्यादि) रोगोंके विषयमें तथा बढे हुए वातादि दोषोंके घटानेके विषयमें और अति क्षीण दोषोंके बढानेके विषयमें रात्रिके समय पाचनरूप तथा शमनरूप औषध अन्नरहित भक्षण करावे, (तहां कोई रात्रिके कहनेसे सब रात्रिभर औषध देवे ऐसा कहते हैं परन्तु व्यवहारमें तो रात्रिके प्रथम प्रहरमें औषध देना ठीक है) इस प्रकार पञ्चमकाल जानना ।

अब द्रव्यमें रसादिकोंकी विशेष अवस्था कहते हैं ।

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥
संवेदनक्रमादेताः पंचावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १२ ॥

अर्थ—द्रव्यमें रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पांच अवस्था हैं । इनका ज्ञान क्रम-करके जानना । तहां मधुरादि भेदसे रस छः प्रकारका है । गुरु मन्दादिके भेदसे गुण २० प्रकारका है । शीत उष्णके भेदसे वीर्य दो प्रकारका है । कोई शीत, उष्ण, रूक्ष विशदादि भेद करके अष्टविधवीर्यको मानते हैं । विपाक ३ प्रकारका है । कोई लघु गुरुके भेदसे विपा दोही प्रकारका मानते हैं । और द्रव्योंकी शक्ति अचिन्त्य है, अतएव द्रव्य प्रधान है जै किसीने कहा है कि ‘ विना[1] वीर्यके पाक नहीं और रसके विना वीर्य नहीं, द्रव्यके विना रस नह अतएव द्रव्यका प्रधानत्व है’ द्रव्यके कहनेसे सामान्यतः जल, छाल, सार, गोंद आदि जानन जैसे लिखा है ‘ जडें[2], छाल, सार, गोंद, नाल, स्वरस, पल्लव, दूध, दूधवाले फल, फूल, भस्म, तेल, कांटे, पत्र, शुंग (कोमल पत्तेकी कली), कन्द, प्ररोह और उद्भिज आदि’ तथ जंगम[3] पार्थिव[4] सब द्रव्य शब्द करके ग्रहण किये जाते हैं ॥

रसका स्वरूप ।

मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः ॥
इत्येते षड्रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः ॥ १३ ॥

अर्थ—मधुर[5], अम्ल[6], क्षार[7], चरपरा[8], कडुआ[9] और कषैला[10] ये छः प्रकारके रस नाना द्रव्यके आश्रय करके रहते हैं ऐसे जानना ॥

---

[1] पाको नास्ति विना वीर्याद्वीर्यं नास्ति विना रसात् । रसो नास्ति विना द्रव्याद्द्रव्यं श्रे मतः स्मृतम् ॥ [2] मूलत्वक्निर्यासनालस्वरसपल्लवदुग्धदुग्धफलपुष्पभस्मतैलकंटकपत्रशुंगकन्दप्ररोहउद्भिदादि तथा जंगमपार्थिवादीनि सर्वाणि द्रव्यशब्देनाभिधीयंते ।

[3] मनुष्य पशु आदि । [4] पृथ्वीके पदार्थ सुवर्णादि । [5] मीठा । [6] खट्टा । [7] खारी [8] तीक्ष्ण मरिच आदि । [9] कडुआ गिलोय आदि । [10] कषैला हरड बहेडा आदि ।

रसोंका उत्पत्तिक्रम ।

प्रा५

धराम्बुक्ष्मानलजलज्वलनाकाशमारुतैः ॥
वाय्वग्निक्ष्मानिलैर्भूतद्वये रसभवः क्रमात् ॥ १४ ॥

अर्थ–पृथ्वी और जलसे मधुर (मीठा) रस उत्पन्न हुआहै, पृथ्वी और अग्निसे अम्ल (खट्टा) रस, जल और अग्निसे क्षार (नोन) रस, आकाश और वायुसे तीक्ष्ण (चरपरा) रस, वायु और अग्निसे तिक्त (कडुआ) रस, एवं पृथ्वी और वायुसे कषाय (कषैला) रस उत्पन्न हुआ है इस प्रकार दो दो भूतोंकरके एक एक रस उत्पन्न होताहै इस प्रकार छः रसोंकी उत्पत्ति जाननी ॥

गुणोंके स्वरूप ।

गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात् ॥ १५ ॥
धराम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः ॥
एष्वेवान्तर्भवन्त्यन्ये गुणेषु गुणसंचयाः ॥ १६ ॥

अर्थ–पृथ्वीका भारी गुण, जलका स्निग्ध (चिकना) गुण, अग्निका तीक्ष्ण गुण, वायुका रूक्ष गुण और आकाशका हलका गुण इस प्रकार पांच गुण क्रम करके पांच महाभूतोंके जानने । तथा इन्ही गुणोंमें दूसरे सांद्र, मृदु, श्लक्ष्ण इत्यादि गुण रहते हैं उनको अनुमानसे जानना । "गुणाः" इस बहुवचनसे व्यवायी, विकाशी आदि अन्य बाईस गुण जानना । कोई सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुण ये तीनही गुण कहते हैं, इसका विस्तार सुश्रुत ग्रंथमें देखिये ॥

वीर्यका स्वरूप ।

वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम् ॥
तत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये ॥
अत्रैवांतर्भविष्यंति वीर्यान्यन्यानि यान्यपि ॥ १७ ॥

अर्थ–वीर्य बहुधा द्रव्यके आश्रय रहताहै, वह दो प्रकारका है, एक शीतल और दूसरा उष्ण इसीसे त्रिलोकीमें ये वीर्य अग्न्यात्मक और सोमात्मक दीखते हैं तथा इन शीतोष्णवीर्यके अंतर्गत अन्यवीर्य (स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, तीक्ष्ण इत्यादि) रहते हैं ॥

विपाकका स्वरूप ।

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥
कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात्प्रायशः कटुः ॥
मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तमम्लाच्च जायते ॥
कटुकाज्जायते वायुः कर्माणीति विपाकतः ॥ १८ ॥

अर्थ–मिष्टरस और क्षाररस इनका मधुर पाक होताहै, खट्टे रसका खट्टा पाक होताहै, कषैले चरपरे और कडुए रसोंका पाक बहुधा तीक्ष्ण होताहै अतएव उन तीन पाकोंकरके जो तीन कर्म होतेहैं, उनको कहतेहैं–मधुर पाक करके कफ होताहै, अम्ल पाक करके पित्त होताहै और तीक्ष्ण पाक करके वायु होताहै इस प्रकार तीन प्रकारके पाक करके तीन दोष उत्पन्न होते हैं ॥

प्रभावके स्वरूप ।

प्रभावस्तु यथा धात्री लघुश्चापि रसादिभिः ॥
समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ॥
क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः ॥
ज्वरं हंति शिरे बद्धा सहदेवीजटा यथा ॥ १९ ॥

अर्थ–आंवले रस गुण वीर्य विपाकादि गुण करके समान होने तथा हलके होनेपरभ अपने प्रभावकरके वातादि तीनों दोषोंका नाश करतेहैं । ‘ लकुचस्य रसादिभिः ’ ऐसाभी पा है इसका यह अर्थ ह कि आमले क्षुद्रफनसके रसादिक करके समानभी होनेपर अपने प्रभा (उत्कृष्टशक्ति) करके त्रिदोषको शमन करते हैं । इस शक्तिको प्रभाव कहते हैं । कहीं एक द्रव्य ऐसा है कि अपने प्रभावसे शीघ्रही रोगको दूर करता है जैसे सहदेईकी जडको मस्तक बांधनेसे ज्वर दूर होताहै इस प्रकार प्रभावका गुण जानना ॥

रसादिकोंकी उत्कृष्टता ।

क्वचिद्रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥
कर्म स्वं स्वं प्रकुर्वन्ति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः ॥ २० ॥

अर्थ--कहीं रस, कहीं गुण, कहीं वीर्य, कहीं विपाक, कहीं शक्ति ये द्रव्यके आश्रय करके रहनेसे अपने २ कर्म करते हैं उन कर्मोंको उदाहरण करके दिखाते हैं प्रथम रसके उदाहरण जै गिलोयका रस कटु और उष्ण होनेपरभी पित्तको शमन करताहै, कारण उष्ण और कटुर होनेसे । गुणका उदाहरण जैसे तीक्ष्ण गुणवाली भी मूली कफकी वृद्धि करती है कारण इसक यह है कि यह स्निग्ध गुणवाली है । बीर्यका उदाहरण जैसे बडा पंचमूल कषैला और कडुवे होनेपरभी वादीको शमन करताहै कारण यह उष्णवीर्य है । विपाकका उदाहरण जैसे सोंठ तीक्ष् होनेपरभी वायुको शमन करतीहै कारण यह है कि इसका मधुर पाक है । शक्ति उदाहरण जो कर्म रस, गुण, वीर्य, विपाक करके नहीं होते वे कर्म शक्ति कहि प्रभाव करके होतेहैं. जैसे--खैर कुष्ठका नाश करताहै, कारण इसका यह है कि

इसकी विलक्षण शक्ति है। इसी कारण औषधोंका प्रभाव अचिंत्य[1] है। कदाचित् कोई प्रश्न करे कि गुण वीर्यमें क्या भेद है, क्योंकि जो गुण हरडमें है वही आमलेमें है। तहां कहते हैं कि आमला शीतलवीर्य है और हरड उष्णवीर्य है अतएव वीर्यका भेद होनेसे दोनों पृथक् २ कहे हैं ॥

इति द्रव्यादिकथनम्।

वातादिदोषोंका संचय प्रकोप और उपशम।

चयकोपसमा यस्मिन्दोषाणां संभवंति किम् ॥
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ॥ २१ ॥

अर्थ–जिन छः ऋतुओंमें दोषोंकी वृद्धि, प्रकोप और उपशमका संभव होता है वे ऋतु सूर्यके बारह राशियोंमें संक्रमण करनेसे होती हैं ॥

ऋतुओंके नाम।

ग्रीष्मे मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृण्मिथुनकर्कयोः ॥
सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत् ॥
धनुर्ग्राहौ च हेमंतो वसंतः कुंभमीनयोः ॥ २२ ॥

अर्थ–मेष संक्रांतिसे लेकर वृषसंक्रांतिकी समाप्ति पर्यन्त ग्रीष्मऋतु होती है। इसी प्रकार मिथुन संक्रांतिसे लेकर कर्कसंक्रांति पर्यन्त प्रावृट्ऋतु, सिंह और कन्याकी संक्रांतिको वर्षाऋतु तुला और वृश्चिक संक्रांतिको शरदृतु, धनसंक्रांति और मकरसंक्रांतिको हेमन्तऋतु, एवं कुम्भकी संक्रांतिसे लेकर मीनकी संक्रांतिकी समाप्तिपर्यन्त वसन्तऋतु कहलाती है। इस प्रकार दो राशियों करके दो दो महीनेकी एक ऋतु होती हैं, ऐसे छः ऋतु जानना। ये दोषोंके संचय होनेमें ग्राह्य हैं, अयनविषयमें ग्राह्य नहीं हैं जैसे सुश्रुतमें[2] लिखा है ॥

ऋतुभदकरके वातादिदोषोंका संचय कोप और शमन।

ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति ॥ वर्षासु चीयते
पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति ॥ हेमंते चीयते श्लेष्मा वसंते च
प्रकुप्यति ॥ प्रायेण प्रशमं याति स्वयमेव समीरणः ॥ शर-
त्काले वसंते च पित्तं प्रावृडृतौ कफः ॥ २३ ॥

---

[1] अमीमांस्यान्यचिंत्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ इति सुश्रुते।

[2] इह तु वर्षाशरद्धेमन्तवसंतग्रीष्मप्रावृषः षडृतवो भवंति दोषोपचयप्रकोपशमनिमित्तम्।

अर्थ-ग्रीष्मऋतुमें वायुका संचय होकर प्रावृट् कालमें प्रकोप होता है। वर्षाऋतुमें पित्तक संचय होकर शरदृतुमें प्रकोप होता है। एवं हेमन्तऋतुमें कफका संचय होकर वसन्तऋतु कफ कुपित होता है। वायु शरत्कालमें अपने आपही स्वयं शान्त होजाता है औ पित्त वसन्तऋतुमें स्वयं शान्त होजाता है तथा कफ प्रावृट्कालमें अपने आप शान होजाता है ॥

दोषसंचयप्रकोपशमनचक्रम्.

नाम	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्मऋतु वैशाख—ज्येष्ट मेष—वृष	वर्षाऋतु भाद्रपद—आश्विन सिंह—कन्या	हेमंतऋतु पौष—माघ धन—मकर
कोप	प्रावृट्ऋतु मिथुन—कर्क आषाढ—श्रावण	शरदृतु तुला—वृश्चिक कार्त्तिक—मार्गशिर	वसंतऋतु कुंभ—मीन फाल्गुन—चैत्र
शमन	शरदृतु तुला—वृश्चिक कार्तिक—मार्गशिर	वसंतऋतु कुंभ—मीन फाल्गुन—चैत्र	प्रावृट्ऋतु मिथुन—कर्क आषाढ—श्रावण

वैद्यकशास्त्रमें तीन दोषोंमें वायुको प्रधानता है अतएव ग्रीष्म ऋतुसे आरंभ कर अन्तमें वसंत ऋतु कही है। गोदावरीके दक्षिणभागमें चार महीने निरंतर वर्षा होती है इसीसे चातुर्मास्यं प्रावृट् और वर्षा ये दो ऋतु कल्पना की गई। हेमन्त और शिशिर इन दोनों ऋतुके गुण दोष समान हैं अतएव शिशिरऋतुका परित्याग करके इस जगह हेमन्त मात्र धरा है। यह कल्पना त्रिदोषोंके संचय प्रकोपके अनुभव करके की है, देव पितृकार्यमें यह ऋतु कल्पना ग्रहण नहीं करना उसमें चैत्र वैशाख वसन्तऋतु इत्यादिक जो धर्मशास्त्रमें कही हैं वही संकल्प-कालमें कहनी चाहिये।

यहां पर वातादिकोंके सचय और कोपका कारण सुश्रुतसे लिखते हैं कि इस ग्रीष्मऋतुमें औषधि (गेहूं चनादि) साररहित, रूक्ष और अत्यन्त हलकी होती है, तथा इसी प्रकारके रूक्षादि गुणयुक्त जल होते हैं, ऐसे अन्नजल (आबहवा) के सेवन करनेसे सूर्यके तेजकरके शोषित है देह जिन्होंकी ऐसे मनुष्योंके रूक्ष, लघु और विशदगुणवान् होनेके कारण वायुका संचय होता है, वही वातका संचय प्रावृट्ऋतुमें अत्यन्त जलमें भींगी पृथ्वीमें भींगी हुई देहवाले प्राणियोंके शीत वात वर्षाकरके प्रेरित वातजन्य व्याधियोंको उत्पन्न करती है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि शीतगुण वायुका ग्रीष्मऋतुमें क्योंकर संचय होता है? तहां कहते हैं कि सम्पूर्ण वातके गुणोंमें रौक्ष गुणकी प्रधानता है अतएव औषधियोंके अति रूखे होनेसे रूक्ष वायुका ग्रीष्म ऋतुमें भी संचय होता है।

जिनको कफ पित्तके संचय प्रकोपका कारण जानना होय वे बृहन्निघण्टुरत्नाकरके "चर्याचन्द्रोदय" में देखलेवें इस जगह ग्रंथ बढनके भयसे नहीं लिखा।

किसी २ पुस्तकमें यह श्लोक अधिक है।

[कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावग्रहणस्य च॥
यमदंष्ट्रा समाख्याता अल्पाहारः स जीवति]॥ २४॥

अर्थ—कार्तिकके अन्तके आठ दिन और मार्गशिरके आदिके आठ दिन 'यमदंष्ट्रासंज्ञक' हैं इनमें थोडा भोजन करनेवाला जीवित रहता है यह श्लोक प्रक्षिप्त है॥

कोई प्रश्न करे कि जिस ऋतुमें दोषोंका संचय होता है उसी ऋतुमें कोप क्यों नहीं होता? तहां कहते हैं कि जैसे वायुका ग्रीष्म ऋतुमें संचय होता है परन्तु इसमें ऋतु उष्ण होनेके कारण वातका कोप नहीं होता। कोई दिन रात्रिमेंही छः ऋतुके धर्म होते हैं ऐसा कहते हैं। जैसे दिनके पूर्वभागमें वसन्तके, मध्याह्नमें ग्रीष्मके, अपराह्नमें प्रावृट्के, प्रदोषमें वर्षाके, अर्धरात्रिमें शरद्के और दो घडीके तडके हेमन्त ऋतुके लक्षण होते हैं।

अब दोषोंका अकालमेंभी चयादि निमित्तकारण कहते हैं।

चयकोपशमान्दोषा विहारा रससेवनैः॥
समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम्॥ २५॥

अर्थ—वातादि दोषोंके जो गुण हैं उन गुणोंके समान[1] हैं गुण जिन्होंके ऐसे आहार और विहार इनके सेवन करके वातादि दोषोंका संचय प्रकोप और उपशम[2] होता है। और वातादि दोषोंके गुणोंके विपरीत[3] गुणकर्ता ऐसे विहार और गुरु स्निग्धादि पदार्थ इनके सेवन करके अकालमें वातादि दोषोंका नाश होता है॥

---

[1] लघु रूक्ष शीतादिपदार्थ वातगुणोंके समान, विदाही तीक्ष्ण अम्ल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणोंके समान तथा मधुर स्निग्ध इत्यादि पदार्थ कफगुणोंके समान हैं।

[2] तात्पर्य यह है कि वातादिकोंके संचयकालमें समानगुणके विहारादिक पदार्थोंके सेवन करनेसे उन वातादिकोंका संचय होता है। एवं प्रकोपकालमें ऐसे पदार्थोंका सेवन करनेसे प्रकोप होता है। और उपशमकालमें सेवन करनेसे उन दोषोंका शमन होता है।

[3] गुरु स्निग्ध उष्ण इत्यादिक पदार्थ वातगुणके विपरीत हैं, कटु उष्ण रूक्ष इत्यादि पदार्थ कफगुणके विरुद्ध हैं और अविदाही मधुर शीतल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणके विपरीत जानना।

वायुका प्रकोप तथा शमन ।

लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात्तथा ॥
प्रदोषे कामशोकाभ्यां भीचिंतारात्रिजागरैः ॥
अभिघातादपां गाहाज्जीर्णेऽन्ने धातुसंक्षयात् ॥
वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २६ ॥

अर्थ–लघु[१] आहार, तथा रूक्ष[२] आहार, एवं मित[३] आहार इनके सेवन करके तथा अति शीतकाल, अति शीत पदार्थोंके सेवन, अत्यन्त परिश्रम करना, प्रदोषकाल, काम[४] धन पुत्रादिक वियोगजनित दुःख, भय और चिन्ता, रात्रिमें जागरण, शस्त्र लकडी आदिकी चोट लगना, जलमें अत्यन्त बैठा रहना तथा आहारका पाक होना एवं धातुका क्षीण[५] होना इत्यादिक कारणोंसे वायुका कोप होता है और इतने कहे हुए कारणोंके प्रत्यनीक (विरुद्ध कहिये उष्ण तथा स्निग्धादि) पदार्थोंके सेवन करनेसे वायु शान्त होता है ॥

पित्तकोप और शमन ।

विदाहिकट्वाम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात् ॥
मध्याह्ने क्षुत्तृषारोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्धरात्रिके ॥
पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २७ ॥

अर्थ–दाहकारी[६], तीक्ष्ण[७], खट्टे, उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे, अत्यन्त अग्निके तापनेसे, द प्रहरके समय भूख और प्यासके रोकनेसे, अर्द्धरात्रिके समय, अन्नके परिपाक होते समय इत्यादि कारणों करके पित्तका प्रकोप होता है इन उक्त कारणोंके विरोधी मधुर शीतल आदि पदार्थोंके सेवन करनेसे पित्तका शमन होता है ॥

कफका कोप और शमन ।

मधुरस्निग्धशीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया ॥ मंदेऽग्नौ च प्रभाते
च भुक्तमात्रे तथा श्रमात् ॥ २८ ॥ श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः
प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २९ ॥

---

१ जो पदार्थ खानेसे जल्दी पचजावे उनको लघु जानने उदाहरण मूंग मोठ आदि । २ चन आदि पदार्थ रूक्ष जानने । ३ जितना अपना आहार है उससे कम खानेको मिताहार कहते हैं ४ स्त्रीविषयमें इच्छा होनेको काम कहते हैं । ५ धातुक्षयात्स्रुते रक्ते मंदः स जायतेऽनलः । पवन परं कोपं याति तस्मात्प्रयत्नतः ॥ इत्यादि । ६ जिनके खानेसे दाह होय उनको विदाही कहते जस बांस और करीलकी कोपल । ७ राई मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ जानने ।

अर्थ–मधुर, स्निग्ध[2], शीतल[3] तथा आदिशब्दसे भारी[4], श्लक्ष्णादि[5] पदार्थोंके सेवन करनेसे, दिनमें निद्रा लेनेसे, मंदाग्निमें अधिक भोजन करनेसे, प्रातःकालमें भोजन करते ही देहको परिश्रम न देनेसे अर्थात् बैठे रहनेसे इत्यादि कारणोंसे कफका प्रकोप होताहै, तथा इन कारणोंके विरुद्ध कहिये उष्ण तथा रूक्षादि पदार्थोंके सेवन करनेसे कफका शमन होता है ॥

इति माथुरदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां भैषज्याख्यानं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

प्रथम लिख आये हैं कि ‘ नाडीपरीक्षादिविधिः ’ अतएव भैषज्याख्यानके अनंतर नाडीपरीक्षा लिखते हैं ।

नाडीपरीक्षा ।

करस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः[7] ॥ १ ॥

अर्थ–जीवकी साक्षिणी[6] ऐसी धमनीनाडी हाथके अंगूठेकी जडमें है, उसकी चेष्टा करके शरीरके सुखदुःखको पंडित जाने + ॥

दोषोंके निजस्वरूपकी चेष्टाको कहते हैं ।

नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौका[8]सर्पयोर्गतिम् ॥
कुलिंगकाकमंडूकगतिं पित्तस्य कोपतः ॥
हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥ २ ॥

अर्थ–वादीक कोपसे नाडी जोंर्क और सर्पकी चालके समान गमन करती है पित्तके

---

[1] गुड खांड मिश्री आदि मधुर पदार्थ जानने । [2] घी तेल आदि स्निग्ध पदार्थ जानने । [3] केलेकी फली, बरफ आदि शीतल पदार्थ जानने । [4] भैंसका दूध आदि भारी पदार्थ जानने । [5] उडद आदि श्लक्ष्ण पदार्थ जानने । [6] प्राणवायुकी साक्षीभूत । [7] नाडीपरीक्षा किस समय करनी किस समय नहीं करनी इसको जाननेवाला ।

+ प्रदर्शयेद्दोषनिजस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च । मूकस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दीपप्रभाका इव जीवनाडी ॥ सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य तथा तैलावगाहिनः । क्षुत्तृषार्त्तस्य सुप्तस्य सम्यङ्नाडी बुद्ध्यते ॥

[8] जोंक और सर्प इनका टेढा तिरछा गमन है ।

कोपसे नाडी कुलिंग[1] (घरका चिडा) कौआ और मेंडक इनकी गतिके समान चलती है एवं कफके कोपसे नाडी हंस[2] और कबूतरकी चालके सदृश चलतीहै ॥

सन्निपात और द्विदोषकी नाडी ।

लावतित्तिरवर्तीनां गमनं सन्निपाततः ॥ कदाचिन्मंदगमना कदाचिद्वेगवाहिनी ॥ ३ ॥ द्विदोषकोपतो ज्ञेया हंति च स्थानविच्युता ॥

अर्थ--सन्निपातमें नाडी लवाँ[3], तीतर और बटेरकीसी चाल चलतीहै । दो दोषोंके कोपसे नाडी धीरे २ चलकर तत्काल जलदी २ चलने लगतीहै तथा अपने स्थानसे अन्यत्र निजगतिसे चलतीहै जैसे पित्तके स्थानमें चक्रगतिसे चले तो वातपित्त जानना इत्यादि। वर्तिक पक्षीको कोई गरुडभी कहते हैं ॥

असाध्यनाडीके लक्षण ।

स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी ॥ ४ ॥
अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हंत्यसंशयम् ॥

अर्थ—जो नाडी अपने स्थानको त्यागदे अर्थात् उस स्थानसे आगे पीछे चलनेलगे और जो ठहर ठहरके चले इन दोनों प्रकारकी नाडी रोगियोंके प्राणोंको नाश करती है । जो नाडी अत्यन्त क्षीण होगईहो और अत्यंत शीतल होगईहो वह निश्चय प्राणोंको हरण करतीहै । चकारसे जो नाडी कुटिल और ऊँची नीची चले उस नाडीकोभी प्राणहरण करनेवाली जानो ॥

ज्वरादिकी नाडीके लक्षण ।

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ ५ ॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥ मंदाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ॥ ६ ॥ असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥

अर्थ--सामान्यज्वरके कोपमें नाडी गरम और जल्दी जल्दी चलती है स्त्र्यादिकोंमें इच्छा होनेपर उनके न मिलनेसे तथा क्रोधसे नाडी बहुत जल्दी चलतीहै एवं चिन्ता (सोच- विचार) और भय (दुश्मन आदिका भय) से नाडी क्षीण होतीहै । कोई “ चिंताभयश्रमात् ” ऐसा पाठ कहतेहैं तहां श्रम कहिये ग्लानिसे नाडी क्षीण होतीहै । मंदाग्नि और धातुक्षीणवाले मनुष्योंकी नाडी अत्यंत मंद होती है तथा रुधिरके

---

[1] कुलिंग काँवा और मेंडक इनका उछल २ कर चलना होताहै । कोई कुलिंगके जगह ‘ कलापि ’ ऐसा पाठ कहते हैं, उनके मतसे कलापी कहिये मोर इनकीसी चालके समान नाडी चलती है । [2] हंस (बतक) और कबूतर इनकी धीरी २ चाल है । [3] लवा और तीतर ये पक्षी चपलगतिवाले हैं । [4] नाडीमध्यवहांगुष्ठमूले यात्यर्थमुच्छलेत् । शनैरूर्ध्वोर्ध्वगमनी कुटिला हंति मानवम् ॥

कोपसे अर्थात् रुधिरपूरित नाडी कुछ गरम और भारी होती है। कोई (कोष्णाकी जगह सोष्णा) ऐसा पाठ कहते हैं। और आमयुक्त नाडी अत्यन्त भारी होती ह, जठराग्निके दुर्बल होनेसे जो विना पचा हुआ रस शेष रहता है उसकी आमसंज्ञा है। अथवा आम करके इस जगह आमाजीर्ण जानना ॥

उत्तमप्रकृतिके लक्षण।

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती भवेत् ॥ ७ ॥ सुखितस्य
स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ चपला क्षुधितस्यापि
तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है उसकी नाडी हलकी और वेगवती होती है, स्वस्थ (रोगरहित) मनुष्यकी नाडी स्थिर और बलवती होती है, भूखे मनुष्यकी नाडी चंचल होती है, और भोजन कर चुकाहो उसकी नाडी स्थिर होती है। इति नाडीपरीक्षा ॥

अब प्रथम लिख आये हैं, कि आदि शब्दसे दूत स्वप्नादिक जानने अतएव दूतके लक्षणोंको कहते हैं।

दूतपरीक्षा।

दूताः स्वजातयोऽव्यंगाः पटवो निर्मलांबराः ॥ सुखिनोऽश्ववृषा-
रूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः ॥९॥ सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि
संगताः ॥ भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ १० ॥

अर्थ—वैद्यके बोलनेको अथवा प्रश्न करनेके विषयमें दूत कैसा होय सो कहते हैं। जो बोलनेको जाय वह उस रोगीकी जातिका हो, हाथ पैर आदिसे हीन न हो, सर्व कर्ममें कुशल है, सफेद वस्त्रोंको धारण करता है और सुखी तथा उत्तम घोडे और बैलपर बैठाहुआ, सफेद पुष्प और रसभरे फल करके युक्त तथा उत्तम कुलका और उत्तम

---

१ जठरानलदौर्बल्याद‌विपक्वस्तु यो रसः। स आमसंज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपकः ॥ इति। आमं विदग्धं विष्टब्धकं चेति। कोई सामा गरीयसी इस पदका अर्थ यह करते हैं; कि आमके साथ जो रहे उसे साम कहते हैं वे दोष दूष्य दूषितादिक जानने जैसे लिखा है। आमेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः। सामा इत्युपदिश्यंते ये च रोगास्तदुद्भवाः ॥ इति। तहां सामदोषसे, सामदूष्यसे और सामदूष्यतासे रसादिधातु दूष्य हैं मलमूत्रआदि दूषित हैं।

२ पाखण्डाश्रमवर्णानां सपक्षा कर्मसिद्धये। त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये ॥ ३ तैलकर्दमदिग्धांगा रक्तस्रगनुलेपनाः। फलं पक्वमसारं वा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम् । वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥

चेष्टाको करनेवाला दूत होना चाहिये, इस श्लोकमें जो चकार है इससे उत्तम दर्शन औ उत्तम वेष हो तथा सजाति कहिये नासिकाकी पवन जिधरको बह रही हो उधरको बैठनेवाला अथवा उस दिशामें आनेवाला । तथा समयपर वैद्यको मिलनेवाला इस प्रकारका दूत वैद्य घर रोगीके लिये उत्तम तिथि नक्षत्रमें आया हुआ रोगीका कल्याणकारी जानना । कोई स्वज तयः इस जगह ' सजातयः ' ऐसा पाठ कहते हैं ॥

दूतके शकुन ।

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥
न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम् ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस समय दूत वैद्यके बुलानेको जाय उस समय रस्तेमें भेडी मृदंगादिक सौम्य शकु होय तो रोगीको शुभदायक नहीं होते अंगार तैल कुलथी इत्यादिक प्रदीप्त (अशुभ) शकु हो तो शुभदायक हैं; अर्थात् अशुभ शकुन शुभ हैं और शुभ शकुन अशुभ होते हैं ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है ॥

वैद्यके शकुन ।

चिकित्सां रोगिणः कर्तुं गच्छतो भिषजः शुभम् ॥
यात्रायां सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम् ॥ १२ ॥

---

१ छिंदतस्तृणकाष्ठानि स्पृशंतो नासिकास्तनम् । वस्त्रांतानामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः । स्रोतो वरोधहृद्दंडमूर्द्धोरःकुक्षिपाणयः । कपालोपलभस्मास्थितुषांगारकराश्च ये । विलिखन्तो महीं किं काष्ठलोष्टविभेदिनः ॥ २ नपुंसकाः स्त्रीबहवो नैककार्या असूयकाः । पाशदंडायुधधराः प्राप्ता स्युः परंपराः । आर्द्रा जीर्णापसव्यैकमलिनोद्धतवाससः । न्यूनाधिकांगा उद्विग्ना विकृता रौद्ररूपिणः वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ ३ यस्यां प्राणमरुद्भाति सा नाडी जीवसंयुते ४ याम्यां दिशि प्रांजलयो विषमैकपदोस्थिताः । वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ५ वैद्यस्य पित्र्ये दैवे वा कार्ये चोत्पातदर्शने । मध्याह्ने चार्धरात्रे वा संध्ययोः कृत्तिकासु आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासु भरणीषु च । चतुर्थ्यां वा नवम्यां वा षष्ठ्यां संधिदिनेषु च । दक्षिणा मुखे देशे त्वशुचौ वा हुताशनम् । ज्वलयंतं पचंतं वा क्रूरकर्मणि चोद्यते । नग्नं भूमौ शयानं वेगोत्सर्गेषु वाशुचिम् । प्रकीर्णकेशमभ्यक्तं स्विन्नाविक्लवमेव च । वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते गर्हिताः इति ॥

६ सौम्यशकुन-भेरी, मृदंग, शंख, वीणा, वेदध्वनि, मंगलगीत पुत्रान्वित स्त्री, बछरा गौ, धुले हुए वस्त्र ये सम्मुख आवें तो अनुत्तम जानना ।

७ प्रदीप्तशकुन-कुलथी, तिल, कपास, तिनका, पाषाण, भस्म, अंगार, तेल, काली मुरदा, ढाककी राख इत्यादि जानने ।

८ सद्यो रणे वर्माणि वा प्रवेशे शुभगृहे नष्टविलोकने च । व्याधौ च नद्युत्तरणे भयार्ते प्रयाणाद्विपरीतभावाः ॥

अर्थ–रोगीको औषध करनेको जाननेवाले वैद्यको मार्गमें × सौम्य शकुन शुभदायक हैं और दीप्त ÷ शकुन अच्छे नहीं ॥

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन संयुतः ॥
चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेंद्रियः ॥ १३ ॥

अर्थ--जिस रोगीकी मूलप्रकृति पलटी न हो तथा देहका वर्ण*पलटा न हो, और

× भृंगारांजनवर्द्धमाननकुलाबद्धैकपश्वामिषं शंखक्षीरनृयानपूर्णकलशच्छत्राणिसिद्धार्थका: । वीणाकेतनमीनपङ्कजदधिक्षौद्राज्यगोरोचनाकन्यारत्नासितेक्षुवस्त्रसुमनाविप्राश्चरत्नानिच ॥

÷ गमनंदक्षिणेवामान्नशस्तंश्वसृगालयोः । वामंनकुलचाषाणांनोभयंशशसर्पयोः ॥ भासकौशिकगृध्राणां नप्रशस्तंकिलोभयम् । दर्शनंचरुतंचापि न सम्यक्कृकलासयोः ॥ कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम् । पात्रंनेष्टंतथांगारतैलकर्दमपूरितम् ॥ प्रसन्नेतरमद्यानांपूर्णंवारक्तसर्षपैः । शवकाष्ठंपलाशानां शुष्काणांपथिसंगमाः । नेष्यंतिपातितास्थीनांदीनांघरिपवस्तथा ॥

१ कोई आचार्य पाँच तत्त्वकरके पांचभौतिकी प्रकृति कहतेहैं जैसे–पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्वोंकरके जाननी । कोई २ सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीन प्रकारकी प्रकृति कहते हैं । इस प्रकार प्रकृतियोंको कहकर अब वर्णको कहते हैं ।

प्रकृति सात प्रकारकी है पृथक् २ दोषोंके मिलापसे और सन्निपातसे जैसे सुश्रुतमें लिखा है, ‘ शुक्रशोणितसंयोगाद्योभवेद्दोषउत्कटः । प्रकृतिर्जायतेतेनतस्यामेलक्षणंशृणु ॥ ’

वही प्रकृति अन्य उपाधियोंसेभी होतीहै । जैसे चरकमें लिखाहै कि जातिप्रसक्ता, कुलप्रसक्ता, देशानुपातिनी, कालानुपातिनी, वयोनुपातिनी और प्रत्यात्मनियता प्रकृति तहां जातिप्रसक्ता प्रकृति जाति २ में पृथक् २ होतीहै जैसे सुनार, लोहार, दरजी, नाऊ, कुम्हार, आदिमें बोलना चालचलना आदि । कुलप्रसक्ता प्रकृति जैसे–ब्राह्मणोंके कुलमें तपःप्रियता, क्षत्री कुलमें शूरवीरता आदि धर्म होतेहैं । देशानुपातिनी प्रकृति जैसे–कर्नाटक, पंजाब, उडिया, आसाम, गुजरातके रहनेवालेके कायिक, वाचिक, मानसिक धर्म पृथक् २ हैं । कालानुपातिनी प्रकृति जैसे–समय २ में देहादिकोंमें दुर्बलता स्थूलता आदि और दोषोंका संचय कोप प्रशमादि पृथक् २ होते हैं । वयोनुपातिनी प्रकृति जैसे- बाल्यअवस्था, यौवनअवस्था और वृद्धावस्थादिकके धर्म पृथक् २ होते हैं । और सातवीं प्रत्यात्मनियता प्रकृति है–जैसे प्रत्येक मनुष्यके रहती हैं वे सब प्रकृतियां कायिक, वाचिक और मानसिकस्वभावविशेष करके पृथक् २ हैं ।

* तहां वर्णशब्दकरके प्रभा जानना, उसीको छाया भी कहते हैं । परंतु कोई आचार्य प्रभा और छायामें भेद मानतेहैं जैसे–

“ वर्णप्रभामिश्रितायाछायासापरिकीर्तिता । वर्णमाक्रामतिच्छाया
प्रभावर्णप्रकाशिनी । आसन्नालक्ष्यतेछायाप्रभादूराच्चलक्ष्यते ॥ ”

सत्त्वगुणी, वैद्यका आज्ञाकारी तथा इन्द्रियोंका जीतनेवाला ऐसा रोगी होय तो उसकी वै
चिकित्सा करे अर्थात् औषधी देवे ॥

तहां दुष्ट स्वप्न ।

स्वप्नेषु नग्नान्मुंडांश्च रक्तकृष्णांबरावृतान् ॥ व्यंगांश्च विकृतान्कृ-
ष्णान्सपाशान्सायुधानपि ॥ १४ ॥ बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां
दिशमाश्रितान् ॥ महिषोष्ट्रखरारूढान्स्त्रीपुंसान्यस्तु पश्यति ॥
स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पंचताम् ॥ १५ ॥

अर्थ- स्वप्नमें नंगे, संन्यासी, अथवा सांई इत्यादि मुंडे हुए, लाल, काले वस्त्रोंको प
हुए, नाक कान कटे हुए, पांगुरे, कुबडे, खंजे, काले, हाथोंमें फांस, तलवार, भाला, बर
इत्यादिक धारण करे हुए, बांधते मारते हुए, दक्षिण दिशामें स्थित, भैंसा ऊंट गधा इन
चढे हुए, पुरुष किंवा स्त्रियोंको देखे तो रोगरहित मनुष्य रोगी होवे; और रोगी मनुष्य दे
तो मरणको प्राप्त हो ॥

अधो यो निपतत्युच्चाज्जलेऽग्नौ वा विलीयते ॥ श्वापदैर्हन्यते
योऽपि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥१६॥ यस्य नेत्रे विलीयेते
दीपो निर्वाणतां व्रजेत् ॥ तैलं सुरां पिबेद्वापि लोहं[2] वा लभते
तिलान् ॥१७॥ पक्वान्नं लभतेऽश्नाति [3]विशेत्कूपरसातलम् ॥
स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पंचताम् ॥ १८ ॥

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको पर्वत अथवा वृक्ष इत्यादि उच्चस्थानसे गिरता
देखे' तथा जलमें डूबजावे, अग्निमें गिरजावे, कुत्तेने काटाहो, अथवा अपने कुटुंबके
करके पीडित हो, मछली आदि जिसको निगल जावे (आदिशब्दसे मगर, सूंस,
आदि निगल जावे), स्वप्नमें नेत्र जाते रहें, जलता दीपक बुझ जावे,

---

इस वर्णमें प्रभा छायाका केवल लक्षणभेदही नहीं है किंतु संख्यामेंभी भेद है । जैसे-
कृष्ण, श्याम और गौरश्याम ऐसे वर्ण चार प्रकारके हैं । प्रभाके सात भेद हैं--रक्त,
असित, श्याम, हरित, पांडुर और असित । छायाके पांच भेद हैं--स्निग्ध, विमल, रूक्ष,
और संक्षिप्त । दुःख सहनशीलताको सत्त्व कहते हैं जैसे लिखा है--

' सत्त्ववान्सहतेसर्वंसंस्तभ्यात्मानमात्मना । राजसः स्तंभमानोन्यैः सहतेनैवतामसः ॥ '

तहां प्रवर और मध्यमके भेदसे सत्त्वके तीन भेद हैं । इन सबके लक्षण यहांपर ग्रंथ
भयसे नहीं लिखे सो ग्रंथान्तरसे जानलेना ।

[1] आद्ययोरोगीभिषग्वश्योज्ञापकः स्वत्त्ववानपीति ।

[2] लौहम् इति पाठांतरम् । [3] जननींप्रविशेन्नरः इतिपाठांतरम् ।

[1]सुराको पीवे, लोह (सुवर्ण, तांबा, रांगा, शीशा, लोहा आदि), वा ग्रहणसे कपास खल-लवण आदिको प्राप्त हो और तिल मिले, एवं पकान्न (पूडी, कचौडी, लड्डू) प्राप्त हों अथवा पक्कान्नका भोजन करे (तथा माताके घरमें, माताके उदरमें अथवा माताकी गोदमें माताके साथ शयन करे) जो कुएँमें अथवा पातालमें प्रवेश करे तो रोगरहित मनुष्य रोगी हो और रोगी मनुष्य मरे ॥

दुःस्वप्नका परिहार ।

दुःस्वप्नानेवमादींश्च दृष्ट्वा ब्रूयान्न कस्यचित् ॥ स्नानं कुर्यादुष-
स्येव दद्याद्धेम तिलानथ ॥१९॥ पठेत्स्तोत्राणि देवानां रात्रौ दे-
वालये वसेत् ॥ कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात्परिमुच्यते॥२०॥

अर्थ–पूर्वोक्त कहे हुए (नग्नमुंडितादिक) खोटे स्वप्नोंको देखकर किसीसे न कहे । प्रातःकाल उठ स्नान कर काले तिल और सुवर्णका दान करे और दुष्ट स्वप्ननाशक (विष्णुसहस्रनाम गजेन्द्रमोक्षादि) देवस्तोत्रोंका पाठ करे । इस प्रकार दिनमें कृत्य कर रात्रिमें देवमंदिरमें रहकर जागरण करे । इस प्रकार तीन दिन करनेसे यह मनुष्य दुष्टस्वप्न (खोटे सपने) के दोषसे छूट जाताहै ॥

अथ शुभ स्वप्न ।

स्वप्नेषु यः सुरान्भूपाञ्जीवतः सुहृदो द्विजान् ॥
गोसमिद्धाग्नितीर्थानि पश्येत्सुखमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें इन्द्रादिक देवता, राजा महाराजा, जीवते हुए मित्र, कुटुम्बके लोग और ब्राह्मण, गौ, देदीप्यमान अग्नि, मथुरा प्रयागादि तीर्थ इत्यादिकोंको देखे अथवा तीर्थ कहिये गुरु आचार्य आदिको देखे तो सुखको प्राप्त हो ॥

तीर्त्वा कलुषनीराणि जित्वा शत्रुगणानपि ॥
आरुह्य सौधगौशैलकरिवाहान्सुखी भवेत् ॥ २२ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें कीचके पानियोंको (आदिशब्दसे नदी नद समुद्रको) तरे अर्थात् पार होय, तथा शत्रुओंको जीतके आवे, और सफेद घर, बैल, पर्वत और हाथी, घोडा इनपर आपको चढा हुआ देखे तो उसको सुखकी प्राप्ति हो ॥

शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसं मत्स्यान्फलानि च ॥
प्राप्तातुरः सुखी भूयात्स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥

---

[1] धान्यादिकोंको पीस सिद्ध कीहुई जो सुरा (कहिये मद्य) उसको स्वप्नमें पीवे तो अशुभ है और इससे व्यतिरिक्त अर्थात् अन्यप्रकारकी दारू पीवे तो शुभ है जैसे लिखा है–

"रुधिरंपिबतिस्वप्नेमद्यंवापिकथंचन । ब्राह्मणोलभतेविद्यामितरस्तुधनंलभेत् ॥ "

अर्थ—जो मनुष्य सफेद पुष्प, सफेद वस्त्र, कच्चा मांस, मछली और आम्र आदि फलोंको स्वप्नमें देखे वह रोगी रोगरहित हो और रोगहीन देखे तो उसको धनकी प्राप्ति हो ॥

अगम्यागमनं लेपो विष्ठया रुदितं मृतिम् ॥
आममांसाशनं स्वप्ने धनारोग्याप्तये विदुः ॥ २४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें अगम्यास्त्री (रजस्वला, बहिन, बेटी, गुरुस्त्री आदि) से गमन करे, अथवा अगम्य स्थानमें जाय, तथा विष्ठासे अपनी देह लिपी हुई देखे, तथा आपको अथवा अन्यको रुदन करता अथवा मरा हुआ देखे, तथा कच्चे मांसको भक्षण करता देखे तो रोगयुक्त निरोगी हो और अरोगी मनुष्यको धनकी प्राप्ति होवे ॥

जलौका भ्रमरी सर्पो मक्षिका वापि यं दशेत् ॥
रोगी स भूयादारोग्यः स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको सपनेमें जोंक, भँवरी, सर्प और मक्खी काटें, वाशब्दसे व ततैया मच्छर आदि डसे तो रोगी रोगरहित हो और स्वस्थ मनुष्यको धनकी प्राप्ति होवे ॥

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारसंपादकमाथुरदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरभाषाटीकायां
नाडीपरीक्षादिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रथम यह लिख आये हैं कि "ततो दीपनपाचनम्" अतएव दीपनपाचनाध्यायको कहते॥

दीपनपाचन औषध ।

पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशिः ॥
पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् ॥
नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥ १ ॥

अर्थ—जो औषध आमको न पचावे और अग्निको प्रदीप्त करे उसको दीपनसंज्ञक जानना जैसे सौंफ[1] । और जो औषध आम[2]को पचावे और अग्निको प्रदीप्त न करे उसको 'पाचन'सं

---

[1] द्रव्यगुणावल्यां--'शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः ।' कदाचित् कोई प्रश्न करे कि सौंफ दीपनी है फिर आमको क्यों नहीं पचाती और विना आमके पचे अग्नि कदाचित् दीप्त होती। तहां कहते हैं कि द्रव्योंके प्रभाव अचिंत्य हैं यह सुश्रुतमें लिखा है । इन हेतुओंसे विचार नहीं आते । जैसे "नौषधिर्हेतुभिर्विद्वान्न परीक्षेत्कथंचन। सहस्राणां च हेतूनां नांबष्ठादिर्विरेचयेत् ॥" इत्यादि । [2] 'जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः । स आमसंज्ञको ज्ञेयः सर्वदोषप्रकोपनः ॥

कहते हैं जैसे नागकेशर[1] और जो अग्निको प्रदीप्त करे और आमकोभी पचावे उस औषधको ' दीपनपाचन ' कहते हैं जैसे चित्रक[2] ॥

संशमन औषध ।

* न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषांस्तथोद्धतान् ॥
समीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथामृता ॥ २ ॥

अर्थ–जो औषध वातादिदोष समान हों उनको बिगाडे नहीं और न शोधन करे तथा बिगडे हुए दोषोंमें मिलाकर समान दशामें प्राप्त करे, तात्पर्य यह है कि जो कुछ इस प्राणीने खाया पिया है उसको विना निकाले अर्थात् न वमन करावे न दस्त करावे किंतु जो दोष हो उसमें मिलकर उसी जगह उसको शमन करदेवे, उसको ' शमन[3] ' संज्ञक कहते हैं । इस जगह दोषशब्द दोषोंमें और उन दोषोंके कार्यमेंभी कार्यकारणके उपचारसे लेना चाहिये । उदाहरण–जैसे गिलोय ॥

अनुलोमन औषध ।

कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्त्वा बंधमधो नयेत् ॥
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ ३ ॥

अर्थ–जो औषध मल कहिये वातादिदोषोंके पाक अर्थात् कोपको शांत करके परस्पर बद्ध अथवा अबद्धोंको पृथक् २ कर नीचेको गिरावे, अथवा वात मूत्र पुरीषादिकोंका बंध अर्थात् बद्ध कोष्ठको स्वच्छ करके मलादिकोंको अधोभागमें प्राप्त कर गुदाद्वारा निकाले उस औषधको ' अनुलोमन ' जानना । उदाहरण जैसे हरड ॥

स्रंसन औषध ।

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ॥
नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात्कृतमालकः ॥ ४ ॥

अर्थ–पश्चात् पाक होने योग्य जो वातादिक[4] दोष उनके कोष्ठाश्रित[5] होनेसे जो औषध उनको विनाही पाक करे नीचेके भागमें लाकर गुदाके द्वारा निकाले उसको ' स्रंसन ' संज्ञक औषधि कहते हैं । उदाहरण जैसे अमलतासका गूदा ॥

---

[1] नागकेशरकंरूक्षमुष्णं लघ्वामपाचनमिति । [2] चित्रकः कटुकः पाकेवह्निकृत्पाचनोलघुः ।

* नशोधयतियद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोतिक्रुद्धांश्चतत्संशमनमुच्यते ॥ इति पाठान्तरम् ।

[3] रसायनीसंशमनीदोषाणांज्वरनाशिनी । गुडूचीकटुकालघ्वीतिक्ताग्निदीपनीतिच ।

[4] आदि शब्दकरके मलमूत्रादिक जानने । [5] पाचकस्थानके आश्रय करके कोई कोष्ठशब्द करके हृदयादिकोंकाभी ग्रहण करते हैं जैसे " स्थानानामग्निपक्वानांमूत्रस्यरुधिरस्यच । हृदुंडुकः फुप्फुसश्चकोष्ठमित्यभिधीयते ॥ "

भेदन औषध ।

मलादिकमबद्धं वा बद्धं वा पिंडितं मलैः ॥
भित्त्वाधः पातयति तद्भेदनं कटुकी यथा ॥ ५ ॥

अर्थ—जो औषध वतादिदोषोंकरके बंधेहुए[1] अथवा विना बँधे हुए गांठके समान मलमूत्र[2] दिकोंको तोड फोडकर नीचेके भागमें लायके गुदाके द्वारा निकाले उसको ' भेदन ' संज्ञ कहते हैं । जैसे कुटकी ॥

रेचन औषध ।

विपक्कं यदपक्कं वा मलादि द्रवतां नयेत् ॥
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ ६ ॥

अर्थ—जो औषध पेटके अन्नादिकोंका उत्तम पाक होनेपर अथवा कुछ कच्चे रहनेपर उ अन्नादिकोंको[3] तथा वातादिमलोंको पतला करके अधोभागमें लाय गुदाद्वारा दस्त करावे उस ' रेचन ' संज्ञक कहते हैं, जैसे निसोथ । रेचकमात्र द्रव्योंमें पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्वके गु त्वादि गुण अधिक होनेसे नीचेको जाती है अतएव दस्त कराते हैं । गुरुत्व शब्द करके जगह प्रभाव विशेष जानना अन्यथा मत्स्य, मसूर, पिष्टान्नादिकोंको विरेचकत्व आवेगा ॥

वमन औषध ।

अपक्कपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्द्ध्वं नयेत्तु यत् ॥
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य[4] फलं यथा ॥ ७ ॥

अर्थ—जो औषध पक्कदशाको नहीं प्राप्त हुए ऐसे पित्त और कफको बलात्कार क मुखके द्वारा निकाले (रद्द करावे) उसे ' वमन ' संज्ञक जानना । उदाहरण जैसे मैनफल संपूर्ण वमनकारी द्रव्योंमें पवन और अग्निके गुण लघुत्वादि अधिक होनेके कारण ऊपर जाते हैं अतएव रद्द होती है । इस जगहभी लघुत्वादि करके प्रभाव विशेष जान अन्यथा तीतर खील आदिको वमनत्व आवेगा । कोई प्रश्न करे कि कफको वमन औ पित्तको विरेचनद्वारा निकाले ऐसा शास्त्रमें लिखा है, फिर इस जगह पित्तको वमन द्वा निकालना कैसे कहा ? तहां कहते हैं कि अपक्क पित्तको वमनद्वाराही निकाल

---

१ शुष्क और गांठदार । २ मलशब्दसे इस जगह दोषोंका ग्रहण है । आदि शब्दसे दूषितादिकोंकाभी ग्रहण है । ३ आदिशब्दकरके दूष्य और दूषितादिकोंका ग्रहण है । ४ मदनफलं बलादिति पाठांतरम् ।

चाहिये, जैसे लिखा है कि कटुतिक्त और अम्लोंको वमन करके निकाले देखो दग्धपित्त अम्लताको प्राप्त होता है अतएव अम्लपित्तकी चिकित्सामें प्रथम वमन कराना लिखा है ॥

संशोधन औषध ।

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम् ॥
देहसंशोधनं तत्स्याद्देवदालीफलं यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—जो औषध स्वस्थानमें संचित मलों (वातादिकों) को ऊपरके भागमें लायकर (मुखे[1]—नासिका) द्वारा बाहर निकाले, अथवा उस संचयको अधो अधो भागमें लायकर (गुदा, लिंग, भग) द्वारा बाहर निकाले, उसको ‘ संशोधन[2] ’ जानना । उदाहरण जैसे देवदालंकि फल, जिसको वंदाल और घघरवेलभी कहते हैं । देहके कहनेसे फस्त खोलनाभी शोधनमें लिया है ॥

छेदन औषध ।

श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ॥
छेदनं तद्यवक्षारो मरिचानि शिलाजतु ॥ ९ ॥

अर्थ--जो औषध परस्पर एकसे एक मिले हुए[3] कफादि दोषोंको अपनी शक्ति करके फोडकर पृथक् २ करदेवे उसको ‘ छेदन ’ औषध कहते हैं । उदाहरण जैसे जवाखार, काली मिरच और शिलाजीत । (मरिचानि) इस बहुवचनसे लाल मिरचभी छेदनकर्त्ता जाननी । प्रश्न—वातादि क्रम त्यागकर इस जगह श्लोकमें कफादि क्रम क्यों कहा ? उत्तर—देहको ऊर्ध्वमूलत्व अध:शाखत्व है इस कारण कफक्रम रक्खा है ॥

लेखन औषध ।

धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् ॥

---

[1] मुखसे रद्दके द्वारा और नाकमें नास देनेसे वमन और नासके साथ वे दोष निकलते हैं ।

[2] शोधन बाह्य और आभ्यंतरके भेदसे दो प्रकारका है । तहां बहिराश्रय जैसे शस्त्र क्षार अग्नि प्रलेपादि । और आभ्यंतराश्रय चार प्रकारका है जैसे वमन विरेचन आस्थापन और शोणितावसेचन । कोई शोणितावसेचनकी जगह शिरोविरेचन कहते हैं परन्तु उसे वमनके अन्तर्गत जानना क्योंकि ऊर्ध्वशोधक है । [3] कोई परस्पर गठे हुए ऐसा कहता है और कोई ‘ श्लिष्ट ’ का अर्थ अत्यंत कुपित ऐसा कहता है। और आदि शब्द करके वात पित्त रुधिर और क्रमि इनकाभी दोष शब्द करके ग्रहण है जैसे सुश्रुतमें लिखा है “ नतदेह: कफादस्तिनपित्तान्नचमारुतात् । शोणितादपिवानित्यंदेह एतैस्तुधार्यते ” और कृमिको दोषत्व गुग्गुलुकल्पमें लिखा है यथा--“ पंचादिदोषान्समये ” इत्यादि । यहां पंचदोष करके वात, पित्त, कफ, रुधिर और कृमियोंका ग्रहण है ।

लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं[1] वचा[2] यवाः ॥ १० ॥

अर्थ--जो औषधी रसादिधातु और वातादिदोष इनको सुखायके देहसे बाहर निकाल उसको ' लेखन ' औषधि कहते हैं । उदाहरण जैसे--सहत, गरम जल, वच और जौ (मलान् वा) इसमें वा जो पडा है उससे मनके दोष पृथक् जानना । क्योंकि मनके दोषों चिकित्सा दूसरी है । प्रश्न--मनके दोष कौनसे हैं ? उत्तर--" रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषा दाहृतौ " इत्यादि--अर्थात् रजोगुण और तमोगुण ये दो मनको[3] बिगाडनेवाले दोष हैं ॥

ग्राही औषध ।

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् ॥
ग्राहि तच्च यथा शुंठी जीरकं गजपिप्पली ॥ ११ ॥

अर्थ--जो औषध अग्नि प्रदीप्त करे और आमादिकोंका पाचन करे तथा उष्णवीर्य होने जलस्वरूप जो कफादि दोष, धातु और मल इनका शोषण करे उसको ' ग्राही ' कहते हैं उदाहरण जैसे सोंठ, जीरा और गजपीपल ॥

स्तंभन औषध ।

रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत् ॥
वातकृत्स्तंभनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुंटुकौ ॥ १२ ॥

अर्थ--जो औषधी रूक्ष गुणकरके, शीतवीर्य करके, कषैले रसकरके युक्त होनेसे एवं पाककर हलकी होवे; ऐसे प्रकारकी जो औषध वह वादीको उत्पन्न करे है । अतएव उस औषध ' स्तंभन ' जाननी । उदाहण जैसे--कुडा और स्योनाक (टेंटु) ॥

रसायन औषध ।

रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ॥
यथामृतारुन्दती चगुग्गुलुश्च हरीतकी ॥ १३ ॥

अर्थ--जो औषध देहकी वृद्धावस्था और ज्वरादि रोगोंका नाश करे उसको रसा

---

[1] नीरंकोष्णंवचायवाः इति पाठांतरम् । अयंपाठः कपोलकल्पनया केनापिलिखितः ।

[2] प्रश्न--वच संग्राही नहीं हो सकी क्योंकि अनिलगुणभूयिष्ठ है और अनिल है सो शोष करता है । उत्तर--संग्राही औषधं पक्क और आमग्रहण करनेसे दो प्रकारकी है. तहां जो संग्रहणी आमको पचायके अग्नि प्रज्वलित कर उसी ग्रहणीमें स्थित द्रवताको सुखायके स्तंभन करे उ उष्णग्राहक जाननी । और जो औषध अतिसारादिकोंमें पक्कमलादिकोंको स्तंभन करे उसका संग्रा कर उसे शीतग्राहक जाननी । ये दो अनिलगुणभूयिष्ठ हैं परन्तु फिरभी संग्राहित्वमें दोषता ना आती । [3] धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधंपरम् ।

यन जानना । उदाहरण जैसे–गिलोय, रुदंती (शाकका भेद, पश्चिममें बहुत विख्यात ह) गूगल और हरड । प्रश्न–व्याधिके कहनेसेही वृद्धावस्थाका ग्रहण होगया फिर पृथक् क्यों कही? उत्तर–जराशब्द करके इस जगह स्वाभाविकी वृद्धावस्थाका ग्रहण है क्योंकि सत्तरवर्षके उपरान्त स्वाभाविक वृद्धावस्था कहलाती है । जो रसादि धातुओंका अयन अर्थात् पोषणकारी होय उसको ‘रसायन’ कहते हैं ॥

वाजीकरण औषध ।

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च तत् ॥
यथा नागबलाद्यास्तु बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ १४ ॥

अर्थ–जो औषध धातुको बढायकर स्त्रियोंमें हर्षयुक्त शक्तिको करे अर्थात् मैथुनशक्तिको बढावे उसको वाजीकरण जानना । उदाहरण जैसे नागबला (खरेटी) (आदि शब्दसे जायफल, शतावर, दूध, मिश्री इत्यादिक) और कौंचके बीज । वाजीकरण दो प्रकारका है एक वीर्यस्तम्भकर्ता दूसरा वीर्यवृद्धिकारी ॥

धातुवृद्धिकारी औषध ।

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं च तदुच्यते ॥
यथाश्वगंधा मुशली शर्करा च शतावरी ॥ १५ ॥

अर्थ–जिस औषधसे धातुकी वृद्धि हो उस औषधको शुक्रल जाननी । उदाहरण जैसे असगन्ध, मुसरी, मिश्री, शतावर इत्यादि ॥

धातुको चैतन्यकर्ता तथा वृद्धिकारी औषध ।

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जामलानि च ॥
प्रवर्तकानि कथ्यंते जनकानि च रेतसः ॥ १६ ॥

अर्थ–शुक्र धातुको चैतन्य करनेवाली तथा उत्पन्नकारी ऐसी औषध दूध, उडद, भिलावेके फलकी गिरी और आमले इत्यादिक जानना ॥

वाजीकरण औषधविशेष ।

प्रवर्तनं स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् ॥
जातीफलं स्तंभकं च शोषणी च हरीतकी ॥ १७ ॥

अर्थ--स्त्री*वीर्यकी प्रगट करनेवाली है और बडी कटेरीका फल शुक्रका रेचनकर्ता है. एवं जायफल वीर्यका स्तंभक है और हरड शुक्रको सुखानेवाली है. कोई प्रथम पदका यह अर्थ करते हैं कि कटेरीका फल स्त्रीके वीर्यको प्रवर्तन और रेचनकर्ता है । पर यह अर्थ श्रेष्ठ नहीं ॥

---

[१] कालिङ्गं क्षयकारी च इति पाठान्तरम् ।

[*] स्त्रीस्मरणकीर्तनदर्शनसंभाषणस्पर्शनचुंबनालिंगनादिभिः शुक्रस्य प्रवर्तनम् (इति. भाव. प्र.)

सूक्ष्म औषध ।

देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥
तद्यथा सैंधवं क्षौद्रं निंबस्तैलं रुबूद्भवम् ॥ १८ ॥

अर्थ–जो औषध देहके सूक्ष्म छिद्र (रोमकूपों) में प्रवेश करे उसको सूक्ष्म औषधि क हैं. उदाहरण जैसे सैंधानमक, सहत, नीम और अण्डीका तेल (अथवा नीमका तेल अण्डीका तेल) ॥

व्यवायि औषध ।

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति ॥
व्यवायि तद्यथा भंगा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ १९ ॥

अर्थ--जो औषध अपक्व हो सकल देहमें व्याप्त हो फिर मद्य विषके समान पाकको होय. उस औषधको 'व्यवायि' जानना । उदाहरण जैसे भांग और अफीम ॥

विकाशी औषध ।

संधिबंधांस्तु शिथिलान्यत्करोति विकाशि तत् ॥
विश्लेष्यौजश्च[2] धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः ॥ २० ॥

अर्थ--जो औषध सर्व अंगोंकी संधियोंके बन्धनोंको शिथिल करे और रसादि उत्पन्न हुआ जो ओज[3] (अर्थात् सर्व धातुओंका तेज) उसको धातुओंमेंसे शोषण करे औषधको 'विकाशी' जानना । उदाहरण जैसे–सुपारी और कोदों धान्य, चकारसे अ उक्त कर्मोंको करे ऐसा जानना ॥

मदकारी औषध ।

बुद्धिं लुंपति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २१ ॥

अर्थ–जो पदार्थ बुद्धिका लोप करे उसको मदकारी कहते हैं यह तमोगुणप्रधान है उ हरण–जैसे सुरादिक, मद्य, दारू ॥

बुद्धिशब्द मेधा, धृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्ति आदिवाचक है. प्रसंगवश लक्षणोंको कहते हैं. ग्रन्थधारणा शक्तिको 'मेधा' कहते हैं । सन्तुष्टताको '

---

[1] ततो भावाय कल्पते इति पाठांतरम् । पुनर्भावं स विंदति इति वा पाठान्तरम् ।

[2] ' विशोष्यौ ' इति पा० ।

[3] रसादीनां शुक्रान्तानां यत्परं तेजस्तत् बल्योजस्तदेवबलमुच्यते यतः "देहः सावयवस्तेन भवाति देहिनामिति–" तात्पर्यार्थ यह है कि कोई कहता है कि संधिप्रभृतियोंके शिथिल श्रम उत्पन्न होता है और उस कामसे ओज क्षीण होताहै । जैसे लिखा है–"अभिघातात्क्षया पाद्ध्यानाच्छोकाच्छ्रमात्क्षुधः । ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणमिश्रितम् ॥ "

कहते हैं कोई नियमात्मिका बुद्धिको ' धृति ' कहते हैं। बीतीहुई वार्त्ताके याद रहनेको 'स्मरण' कहते हैं। कोई अर्थधारणशक्तिको 'स्मरण' कहते हैं। विना जानी वस्तुके ज्ञानको 'मति' कहते हैं। कोई २ त्रिकालज्ञानको मति कहते हैं और अर्थावबोधप्राकट्यको 'प्रतिपत्ति' कहते हैं। (सुरादिकम्) इस पदमें आदि शब्दकरके संपूर्ण मदकारी वस्तु जाननी। प्रश्न—मद्य तो बुद्धि, स्मृति, वाणी और चेष्टा कर्त्ता लिखाहै यथा "बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च। संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि" ॥ फिर इस जगह मदकारी द्रव्योंको बुद्धिलोपकर्त्ता कैसे लिखा है ? उत्तर—मदकी चार पानावस्था हैं, तहाँ प्रथम मदपान बुद्ध्यादिकका लोप करता है, शेष बुद्ध्यादिकके लोपकर्ता हैं अतएव शार्ङ्गधरने लिखाहै ॥

प्राणहारक औषध।

व्यवायि च विकाशि स्यात्सूक्ष्मं छेदि मदावहम् ॥
आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २२ ॥

अर्थ—पूर्व कही हुई जो व्यवायि, विकाशि, सूक्ष्म, छेदि, मदकारी और आग्नेय और प्राण हरनेवाला तथा योगवाही (गरमके संग अतिगरम और शीतद्रव्यके संग अतिशीतल हो) उसे विष कहते हैं. कोई आचार्य लोकमें "योगवाह्यमृतं विषम्" ऐसाभी पाठ कहतेहैं उसका अर्थ यह है कि वह विष योगवाही कहिये किसी संस्कार विशेष करके जिस २ अनुपानके साथ देवे उसी अनुपानके गुणोंको बढायके अमृतक तुल्य गुण करे ॥

प्रमाथी औषध।

निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम् ॥
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २३ ॥

अर्थ—जो द्रव्य अपनी शक्तिसे कान, मुख, नासिका आदि छिद्रोंसे तथा अन्य छिद्रोंसे कफादि दोषसंचयको (और व्याधिसंचयको) निकाले उसको प्रमाथि कहते हैं। उदाहरण जैसे वच, कालीमिरच (तथा लाल मिरच) ॥

अभिष्यन्दि लक्षण।

पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः ॥
धत्ते यद्गौरवं तस्मादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४ ॥

अर्थ—जो द्रव्य अपने पिच्छल गुणकरके भारिपनेसे रसवाहिनी २४ शिराओंको रोककर शरीरको भारी करे उस पदार्थको अभिष्यन्दि कहिये स्रोतःस्रावी जानना। उदाहरण जैसे—दही ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां दीपनपाचनादिविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

प्रथम यह लिख आये हैं कि "ततः कलादिकाख्यानम्" अतएव कलादिकोंको कहते

कलाः सप्ताशयाः सप्त धातवः सप्त तन्मलाः ॥ सप्तोपधातवः स
त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥ त्रयो दोषा नवशतं स्नायूनां संध
यस्तथा ॥ दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ॥ २।
सप्तोत्तरं मर्मशतं शिराः सप्तशतं तथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता
धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥ मांसपेश्यः समाख्याता नृ
पंचशतं बुधैः ॥ स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः कंडराश्चैव षोडश ॥ ४।
नृदेहे दश रंध्राणि नारीदेहे त्रयोदश ॥ एतत्समासतः प्रोक्तं विस
रेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥

अर्थ--शरीरमें रसादि धातुओंके जो स्थान हैं उनकी मर्यादाभूत ऐसी सात कला कोष्ठमें[2] सात आशय कहिये स्थान हैं। रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी), और शुक्र ये सप्त धातु हैं, तथा उन धातुओंके सात मल हैं। धातुओंके समीप रहे ऐसे सात उपधातु हैं। शरीरमें सात त्वचा हैं। वात, पित्त और कफ ये तीन दोष शरीरमें डोरीके समान और वेलके समान ९०० बंधन हैं उनको स्नायु कहते हैं। दो सौ संधि हैं। श्लोकमें जो चकार है इससे संधि दो सौ दशसे अधिक जानना। शरीरके आ रभूत और बलकारी ३०० हड्डी हैं। जीवके आधारभूत ऐसे १०७ मर्मस्थान हैं। और धातु तथा जलके वहानेवाली ७०० शिरा[3] हैं। चकारसे कुछ अधिक भी हैं जानना। रस वहानेवाली २४ ([4]धमनी) नाडी हैं, और पुरुषके देहमें मांसपेशी अ मांसके लंबे २ टुकडे पांच सौ हैं॥

---

१ धात्वाशयांतरैस्तस्य यत्क्लेदः स्वाधितिष्ठति । देहोष्मणा विपक्को यः सा कलेत्यभिधीयते। २ आशयः स्थानानि तानि कोष्ठशब्देनोपलक्षितानि तथाच—स्थानानामग्निपक्कानां मूत्रस्य रस्य च। हृदुंडुकः फुप्फुसश्च कोष्ठमित्यभिधीयते। ३ बडी बडी जड और बारीक २ अग्रभाग शिरा जितने देहमें रोम हैं उतनी हैं जैसे लिखा है--तावन्ति नाडयो देहे यावन्त्यो रोमकूटयः। स्थू मूलाश्च सूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत्। ४ धमनी नाडी शिरा इनके कार्य पृथक् २ हैं अतएव इ नाम भी पृथक् २ हैं वास्तविक ये सब एकही हैं। ५ वे मांसके टुकडे किसी आचार्योंके म चौकोन हैं. जैसे लिखा है "चतुरस्रा भवेत्पेशी।"

तथा स्त्रियोंके २० अधिक हैं । कंडरा कहिये बडे स्नायु सोलह हैं । पुरुषोंके देहमें दश रंध्र कहिये छिद्र हैं और स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक हैं, अर्थात् तेरह छिद्र हैं । इस प्रकार कलादिक संक्षेपसे कहीं अब इन्हींको विस्तार करके कहते हैं ॥

कलाओंकी व्यवस्था ।

मांसासृङ्मेदसां तिस्रो यकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका ॥
पंचमी च तथांत्राणां षष्ठी चाग्निधरा मता ॥ ६ ॥
रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ॥

अर्थ—पहली कला मांसको धारण करती है इसलिये उसको मांसधरा कहते हैं । दूसरी कला रुधिरको धारण करती है अतः उसको रक्तधरा कहते हैं इसी प्रकार मेदके धारण करनेवालीको मेदधरा कहते हैं । यकृत् और प्लीहाकी चौथी कला है जो इन दोनोंके मध्यमें रहती है अतएव उसको कफधरा कहते हैं । अंत्र कहिये आंतडोंको धारण करनेवाली पांचवीं कलाको ' पुरीषधरा ' ऐसे कहते हैं । अग्निको धारण करनेवाली छठी कला उसको ' पित्तधरा ' कहते हैं और सातवीं कला * शुक्रको धारण करती है अतएव उसको रेतोधरा जाननी, इस प्रकार सात कला जाननी ॥ —

श्लेष्माशयः स्यादुरसि तस्मादामाशयस्त्वधः ॥ ७ ॥ ऊर्द्ध्वम-
ग्न्याशयो नाभेर्वामभागे व्यवस्थितः ❀ ॥ तस्योपरि तिलं
ज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥ ८ ॥ मलाशयस्त्वधस्तस्य वस्तिर्मू-
त्राशयः स्मृतः ॥ जीवरक्ताशयमुरो ज्ञेयाः सप्ताशया-

---

१ बीस अधिक हैं उनके स्थान कहते हैं । २ दोनों स्तनोंमें पांच २ हैं और योनिमें चार गर्भमार्गमें तीन तथा गर्भस्थानमें तीन इस प्रकार बीस जाननी । २ उन सोलहोंके स्थान बताते हैं कि दोनों पैरोंमें चार, दोनों हाथोंमें चार, नाडमें चार, पीठमें चार इस प्रकार सोलह जाननी । ३ पांचवीं कला आंतडोंके आधारसे उदरस्थ मलके विभाग करतीहै अतएव उसको ' पुरीषधरा ' कहतेहैं । ४ छठी कला खाद्यपेयादिक ऐसे चार प्रकारके आमाशयसे प्रच्युत हुए अन्नको पक्वाशयमें ले जाकर धारण करती है इसीसे उसको ' पित्तधरा ' कहतेहैं जैसे लिखाहै—"अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम् । तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा ॥ " इति ।

* यथा पयांसि सर्पिश्च गुडश्चेक्षुरसं यथा । शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः । द्वयंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः । मूत्रस्रोतपथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते । कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा । स्त्रीषु व्यायामतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥

+ (श्लो. ८) वामभागे व्यवस्थितः इत्यत्र मध्यभागे व्यवस्थित इति वा पाठः ।

पंचमोऽध्यायः ।

प्रथम यह लिख आये हैं कि "ततः कलादिकाख्यानम्" अतएव कलादिकोंको कहते

कलाः सप्ताशयाः सप्त धातवः सप्त तन्मलाः ॥ सप्तोपधातवः स त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥ त्रयो दोषा नवशतं स्नायूनां संधयस्तथा ॥ दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ॥ २ ॥ सप्तोत्तरं मर्मशतं शिराः सप्तशतं तथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥ मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पंचशतं बुधैः ॥ स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः कंडराश्चैव षोडश ॥ ४ ॥ नृदेहे दश रंध्राणि नारीदेहे त्रयोदश ॥ एतत्समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥

अर्थ--शरीरमें रसादि धातुओंके जो स्थान हैं उनकी मर्यादाभूत ऐसी सात कलें हैं [2]कोष्ठमें सात आशय कहिये स्थान हैं । रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी), म और शुक्र ये सप्त धातु हैं, तथा उन धातुओंके सात मल हैं । धातुओंके समीप रहने ऐसे सात उपधातु हैं । शरीरमें सात त्वचा हैं । वात, पित्त और कफ ये तीन दोष है शरीरमें डोरीके समान और वेलके समान ९०० बंधन हैं उनको स्नायु कहते हैं । दो सौ द संधि हैं । श्लोकमें जो चकार है इससे संधि दो सौ दशसे अधिक जानना । शरीरके आधारभूत और बलकारी ३०० हड्डी हैं । जीवके आधारभूत ऐसे १०७ मर्मस्थान हैं । दे और धातु तथा जलके वहानेवाली ७०० [3]शिरा हैं । चकारसे कुछ अधिक भी हैं ऐ जानना । रस वहानेवाली २४ ([4]धमनी) नाडी हैं, और पुरुषके देहमें मांसपेशी अर्थ मांसके लंबे २ [5]टुकडे पांच सौ हैं ॥

---

[1] धात्वाशयांतरैस्तस्य यत्क्लेदः स्वाधितिष्ठति । देहोष्मणा विपक्वो यः सा कलेत्यभिधीयते ।

[2] आशयः स्थानानि तानि कोष्ठशब्देनोपलक्षितानि तथाच—स्थानानामग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुंदुकः फुप्फुसश्च कोष्ठमित्यभिधीयते । [3] बडी बडी जड और बारीक २ अग्रभाग ऐ शिरा जितने देहमें रोम हैं उतनी हैं जैसे लिखा है—तावन्ति नाड्यो देहे यावन्त्यो रोमकूटयः । स्थूलमूलाश्च सूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत् । [4] धमनी नाडी शिरा इनके कार्य पृथक् २ हैं अतएव इनके नाम भी पृथक् २ हैं वास्तविक ये सब एकही हैं । [5] वे मांसके टुकडे किसी आचार्योंके मत चौकोन हैं. जैसे लिखा है " चतुरस्रा भवेत्पेशी । "

तथा स्त्रियोंके २० अधिक हैं । कंडरा कहिये बडे स्नायु सोलह हैं । पुरुषोंके देहम दश रंध्र कहिये छिद्र हैं और स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक हैं, अर्थात् तेरह छिद्र हैं । इस प्रकार कलादिक संक्षेपसे कहीं अब इन्हींको विस्तार करके कहते हैं ॥

कलाओंकी व्यवस्था ।

मांसासृङ्मेदसां तिस्रो यकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका ॥
पंचमी च तथांत्राणां षष्ठी चाग्निधरा मता ॥ ६ ॥
रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ॥

अर्थ—पहली कला मांसको धारण करती है इसलिये उसको मांसधरा कहते हैं । दूसरी कला रुधिरको धारण करती है अतः उसको रक्तधरा कहते हैं इसी प्रकार मेदके धारण करनेवालीको मेदधरा कहते हैं । यकृत् और प्लीहाकी चौथी कला है जो इन दोनोंके मध्यमें रहती है अतएव उसको कफधरा कहते हैं । अंत्र कहिये आंतडोंको धारण करनेवाली पांचवीं कलाको ' पुरीषधरा ' ऐसे कहते हैं । अग्निको धारण करनेवाली छठी कला उसको ' पित्तधरा ' कहते हैं और सातवीं कला * शुक्रको धारण करती है अतएव उसको रेतोधरा जाननी, इस प्रकार सात कला जाननी ॥ –

श्लेष्माशयः स्यादुरसि तस्मादामाशयस्त्वधः ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वम-
ग्न्याशयो नाभेर्वामभागे व्यवस्थितः ❀ ॥ तस्योपरि तिलं
ज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥ ८ ॥ मलाशयस्त्वधस्तस्य वस्तिर्मू-
त्राशयः स्मृतः ॥ जीवरक्ताशयमुरो ज्ञेयाः सप्ताशया-

---

१ बीस अधिक हैं उनके स्थान कहते हैं । २ दोनों स्तनोंमें पांच २ हैं और योनिमें चार गर्भमार्गमें तीन तथा गर्भस्थानमें तीन इस प्रकार बीस जाननी । २ उन सोलहोंके स्थान बतातेहैं कि दोनों पैरोंमें चार, दोनों हाथोंमें चार, नाडमें चार, पीठमें चार इस प्रकार सोलह जाननी । ३ पांचवीं कला आंतडोंके आधारसे उदरस्थ मलके विभाग करतीहै अतएव उसको ' पुरीषधरा ' कहतेहैं । ४ छठी कला खाद्यपेयादिक ऐसे चार प्रकारके आमाशयसे प्रच्युत हुए अन्नको पक्वाशयमें ले जाकर धारण करती है इसीसे उसको ' पित्तधरा ' कहतेहैं जैसे लिखाहै–"अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम् । तज्जीर्यंति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा ॥ " इति ।

* यथा पयांसि सर्पिश्च गुडश्चेक्षुरसं यथा । शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः । द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः । मूत्रस्रोतपथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते । कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा । स्त्रीषु व्यायामतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥

+ (श्लो. ८) वामभागे व्यवस्थितः इत्यत्र मध्यभागे व्यवस्थित इति वा पाठः ।

स्त्वमी ॥ ९ ॥ पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ॥
धरागर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ ॥ १० ॥

अर्थ–वक्षस्थलमें कफका आशय कहिये कफका स्थान है, कफस्थानके किंचित् अधोभाग आमका[1] स्थान है, नाभिके ऊपर बांईतरफ अग्निका स्थान है, उसीको 'ग्रहणी[2]' स्थान कहते हैं । उस अग्निस्थानके ऊपर जो तिल है उसको क्लोम कहते हैं वह पिपासास्थान है अर्था प्यास इसी जगहसे उत्पन्न होती है । कोई आचार्य " तस्योपरि जलं ज्ञेयम् " ऐसा पा लिखकर अर्थ करते हैं कि उस तिलके ऊपर जल है । जैसे लिखाहै " अग्नेरुर्द्धं जलं स्था तदन्नं च जलोपरि । अग्नेरधः स्वयं वायुः स्थितोऽग्निं धमते शनैः ॥ वायुना धममानोऽग्नि स्त्युष्णं कुरुते जलम् । तदन्नमुष्णतोयेन समंतात्पच्यते पुनः ॥ " इति अर्थात् अग्निके ऊप जल है, उसके ऊपर अन्न है और अग्निके नीचे पवन स्थिर होकर स्वयं अग्निको धमाता है। वह वायुसे धमाई हुई अग्नि ऊपरके जलको अत्यंत गरम करती है तब वह उष्णजल ऊपरके अन्नका अच्छे प्रकार परिपाक करता है ।

अग्निस्थानके नीचे पवनका स्थान है उस पवनकी समान संज्ञा है फिर उस पवनाशयके नीचे मलाशय अर्थात् मलका स्थान है; इसीको पकाशय कहते हैं, यह वामभागमें है। (इसीके एकदेशमें विभाजित मलधारक उंदुक कहलाता है) लोकमें इसको 'पोटलक' कहते हैं अतएव उंदुकसे पक्वाशय पृथक् है परंतु चरकमें पुरीष अंत्रशब्दकरके उंदुक कहा। उसके पासही कुछ नीचे दहनीतरफ चमडेकी थैलीके आकार मूत्राशय है जिसको वस्ति कहते हैं । जीवतुल्य रक्त है कि जिसका स्थान उर है । ऐसे सात आशय कहिये स्थान जानने। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं, जैसे एक गर्भाशय और दो स्तन्याशय अर्थात् स्तनसंबंधी दूध रहनेके स्थान । तहां गर्भाशय पित्त और पक्वाशयके मध्यमें है ऐसा जानना॥

रसादि सात धातुओंका विवरण ।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥
जायंतेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा ॥ ११ ॥

अर्थ--रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु पित्तके तेजसे पाचित होकर क्रमसे एकसे एक उत्पन्न होते हैं । जैसे रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, मज्जासे शुक्र धातु उत्पन्न होतीहै ॥

---

[1] 'नाभिस्तनांतरं जंतोरामाशय उदाहृतः ।' जिस स्थानमें आम अर्थात् कच्चा अन्नरस रहताहै उस स्थानको आमाशय कहते हैं । [2] अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणी मता । नाभेरुपरि सा ह्यग्निबलोपचयबाहि च ॥

अब कहते हैं कि, धातुओंके मलका परिणामभी स्थूल और अणुभाग विशेष करके तीन प्रकारका है । उदाहरण जैसे अन्नके पचनेसे विष्ठा मूत्र ये मल होते हैं और सारवस्तु रसधातु प्रगट होती है । वही रस पित्ताग्निकरके पच्यमान होनेसे उसका कफ है सो मल प्रगट होता है, स्थूल भाग रस और सूक्ष्मभाग रुधिर होता है । रक्तके परिपाकसे पित्त मल होता है, स्थूल भाग रक्तका रक्तही है और सूक्ष्मभाग मांस प्रगट होता है । इसी प्रकार परिपक्व होकर मांससे कानका मल प्रगट होता है सो जानना । स्थूलभाग मांस और सूक्ष्मभाग मेद, उसका अपनी अग्निसे परिपक्व होनेपर पसीना मल होता है और स्थूल भाग मेद और उसका सूक्ष्मभाग हड्डी होती है, वह हड्डीभी परिपक्व होकर केश रोमादि मलको प्रगट करती है । इसका स्थूलभाग हड्डी है और सूक्ष्मभाग मज्जा कहाती है । उस मज्जाके परिपक्व होनेसे स्थूल भाग मज्जा सूक्ष्मभाग शुक्र होता है और नेत्र पुरीष तथा त्वचा इनमें जो मैल आता है वह मज्जा धातुका मल है । वह शुक्रभी अपनी अग्निसे पचकर मलको प्रगट नहीं करता जैसे हजार बार धमाया हुआ सुवर्ण मैलको नहीं त्यागता । इस शुक्रका स्थूल भाग शुक्र है और सूक्ष्मभाग ओज जानना ।

धातुओंके मल ।

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रंजकम् ॥ कर्णविड्रसनं दंतकक्षामेढ्रादिजं मलम् ॥ १२ ॥ नखा नेत्रमलं वक्रस्निग्धत्वपिटिकास्तथा ॥ जायंते सप्तधातूनां मलान्येतान्यनुक्रमात् ॥ १३ ॥

अर्थ–सात धातुओंके क्रमसे मल होते हैं । जैसे जीभका जल, नेत्रोंका जल और कपोलका जल इनको रसधातुका मल जानना । रञ्जक पित्त (अर्थात् रसको रँगनेवाला पित्त) रुधिरका मल है । कानका मैल मांसका मल है । जीभ, दांत, कांख और शिश्न इनका मैल है सो मेद धातुका मैल है । आदि शब्दसे पसीनाभी मेद धातुका मल है । परन्तु यह शार्ङ्गधरका मत नहीं[2] क्योंकि स्वेदको उपधातुओंमें वर्णन किया है । नख (नाखून) हड्डीका मल है । ‘ नखाः ’ यह जो बहुवचन है इससे केश (बाल) लोम (रोआं) इत्यादिकभी हड्डीका मल है । नेत्रोंका मैल मुखकी चिकनाई यह मज्जा धातुका मल है । और मुहमें मुहाँसोंका होना यह शुक्र धातुका मल है तथा केश ग्रहणसे डाढी मूछ ये भी शुक्रधातुके मल हैं ॥

कोई आचार्य छः धातुओंके[3] छः ही मल मानते हैं । नेत्रमल, मुखकी चिकनाई और मुहाँसे इनको मज्जा धातुका मल कहते हैं ।

---

[1] जीभ आदिका जो जल है सो कफसंबंधी है अतएव कफही रस धातुका मल है ।

[2] “ किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोऽसृजः । पित्तं मांसस्य तु मलं खेषु स्वेदस्तु मेदसः । नखमस्थ्नस्तुलोमाद्यामज्जः स्नेहोऽक्षिविट्त्वचः । प्रसादकिट्टंधातूनांपाकादेवविवर्धते । शुक्रस्याविप्रसन्नत्वान्मलाभावइतिस्मृतः ॥

स्त्वमी ॥ ९ ॥ पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ॥
धरागर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ ॥ १० ॥

अर्थ—वक्षस्थलमें कफका आशय कहिये कफका स्थान है, कफस्थानके किंचित् अधोभाग आमका[1] स्थान है, नाभिके ऊपर बांईतरफ अग्निका स्थान है, उसीको ' ग्रहणी[2] ' स्थान कहे हैं । उस अग्निस्थानके ऊपर जो तिल है उसको क्लोम कहते हैं वह पिपासास्थान है अर्था प्यास इसी जगहसे उत्पन्न होती है । कोई आचार्य " तस्योपरि जलं ज्ञेयम् " ऐसा पा लिखकर अर्थ करते हैं कि उस तिलके ऊपर जल है । जैसे लिखाहै " अग्नेरुर्द्ध्वं जलं स्था तदन्नं च जलोपरि । अग्नेरधः स्वयं वायुः स्थितोऽग्निं धमते शनैः ॥ वायुना धममानोऽग्नि रत्युष्णं कुरुते जलम् । तदन्नमुष्णतोयेन समंतात्पच्यते पुनः ॥ " इति अर्थात् अग्निके ऊप जल है, उसके ऊपर अन्न है और अग्निके नीचे पवन स्थिर होकर स्वयं अग्निको धमाता है। वह वायुसे धमाई हुई अग्नि ऊपरके जलको अत्यंत गरम करती है तब वह उष्णजल ऊपरके अन्नका अच्छे प्रकार परिपाक करता है ।

अग्निस्थानके नीचे पवनका स्थान है उस पवनकी समान संज्ञा है फिर उस पवनाशयके नीचे मलाशय अर्थात् मलका स्थान है; इसीको पक्काशय कहते हैं, यह वामभागमें है। (इसीके एकदेशमें विभाजित मलधारक उंडुक कहलाता है) लोकमें इसको ' पोटलक ' कहते हैं अतएव उंडुकसे पक्काशय पृथक् है परंतु चरकमें पुरीष अंत्रशब्दकरके उंडुक कहा। उसके पासही कुछ नीचे दहनीतरफ चमडेकी थैलीके आकार मूत्राशय है जिसको वस्ति कहते हैं । जीवतुल्य रक्त है कि जिसका स्थान उर है । ऐसे सात आशय कहिये स्थान जानने। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं, जैसे एक गर्भाशय और दो स्तन्याशय अर्थात् स्तनसंबंधी दूध रहनेके स्थान । तहां गर्भाशय पित्त और पक्काशयके मध्यमें है ऐसा जानना॥

रसादि सात धातुओंका विवरण ।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥
जायंतेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा ॥ ११ ॥

अर्थ--रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु पित्तके तेजसे पाचित होकर क्रमसे एकसे एक उत्पन्न होते हैं । जैसे रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, मज्जासे शुक्र धातु उत्पन्न होतीहै ॥

---

[1] ' नाभिस्तनांतरं जंतोरामाशय उदाहृतः । ' जिस स्थानमें आम अर्थात् कच्चा अन्नरस रहताहै उस स्थानको आमाशय कहते हैं । [2] अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणी मता । नाभेरुपरि ग ह्यग्निबलोपचयबाहि च ॥

अब कहते हैं कि, धातुओंके मलका परिणामभी स्थूल और अणुभाग विशेष करके तीन प्रकारका है। उदाहरण जैसे अन्नके पचनेसे विष्ठा मूत्र ये मल होते हैं और सारवस्तु रसधातु प्रगट होती है। वही रस पित्ताग्निकरके पच्यमान होनेसे उसका कफ है सो मल प्रगट होता है, स्थूल भाग रस और सूक्ष्मभाग रुधिर होता है। रक्तके परिपाकसे पित्त मल होता है, स्थूल भाग रक्तका रक्तही है और सूक्ष्मभाग मांस प्रगट होता है। इसी प्रकार परिपक्व होकर मांससे कानका मल प्रगट होता है सो जानना। स्थूलभाग मांस और सूक्ष्मभाग मेद, उसका अपनी अग्निसे परिपक्व होनेपर पसीना मल होता है और स्थूल भाग मेद और उसका सूक्ष्मभाग हड्डी होती है, वह हड्डीभी परिपक्व होकर केश रोमादि मलको प्रगट करती है। इसका स्थूलभाग हड्डी है और सूक्ष्मभाग मज्जा कहाती है। उस मज्जाके परिपक्व होनेसे स्थूल भाग मज्जा सूक्ष्मभाग शुक्र होता है और नेत्र पुरीष तथा त्वचा इनमें जो मैल आता है वह मज्जा धातुका मल है। वह शुक्रभी अपनी अग्निसे पचकर मलको प्रगट नहीं करता जैसे हजार बार धमाया हुआ सुवर्ण मैलको नहीं त्यागता। इस शुक्रका स्थूल भाग शुक्र है और सूक्ष्मभाग ओज जानना।

धातुओंके मल।

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रंजकम् ॥ कर्णविड्रसनं दंतकक्षामेढ्रादिजं मलम् ॥ १२ ॥ नखा नेत्रमलं वक्रस्निग्धत्वपिटिकास्तथा ॥ जायंते सप्तधातूनां मलान्येतान्यनुक्रमात् ॥ १३ ॥

अर्थ—सात धातुओंके क्रमसे मल होते हैं। जैसे जीभका जल¹, नेत्रोंका जल और कपोलका जल इनको रसधातुका मल जानना। रञ्जक पित्त (अर्थात् रसको रँगनेवाला पित्त) रुधिरका मल है। कानका मैल मांसका मल है। जीभ, दांत, कांख और शिश्न इनका मैल है सो मेद धातुका मैल है। आदि शब्दसे पसीनाभी मेद धातुका मल है। परन्तु यह शार्ङ्गधरका मत नहीं² क्योंकि स्वेदको उपधातुओंमें वर्णन किया है। नख (नाखून) हड्डीका मल है। 'नखाः' यह जो बहुवचन है इससे केश (बाल) लोम (रोआं) इत्यादिकभी हड्डीका मल हैं। नेत्रोंका मैल मुखकी चिकनाई यह मज्जा धातुका मल है। और मुहमें मुहाँसोंका होना यह शुक्र धातुका मल है तथा केश ग्रहणसे डाढी मूछ ये भी शुक्रधातुके मल हैं॥

कोई आचार्य छः धातुओंके छः ही मल मानते हैं। नेत्रमल, मुखकी चिकनाई और मुहाँसे इनको मज्जा धातुका मल कहते हैं।

---

१ जीभ आदिका जो जल है सो कफसंबंधी है अतएव कफही रस धातुका मल है।

२ " किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोऽसृजः। पित्तं मांसस्य तु मलं खेषु स्वेदस्तु मेदसः। नखमस्थ्नस्तु लोमाद्यं मज्जः स्नेहोऽक्षिविट्त्वचः। प्रसादकिट्टंधातूनांपाकादेवविवर्धते। शुक्रस्यातिप्रसन्नत्वान्मलाभावइतिस्मृतः ॥

अब मनुष्यकी उपधातुओंको कहते हैं ।

स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति ॥
शुद्धमांसभवः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता ॥ १४ ॥
स्वेदो दन्तास्तथा केशास्तथैवौजश्च सप्तमम् ॥
इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥ १५ ॥

अर्थ–स्तनसम्बन्धी दूध रसधातुकी उपधातु है अर्थात् रसधातुसे प्रगट होता है और र अर्थात् स्त्रियोंके मासिक रुधिर जो गिरता है वह रुधिरधातुका उपधातु ये दोनों उपधातु स्त्रियोंके कालविशेषमें प्रगट होती हैं और नष्ट होती हैं (उसी प्रकार स्त्रियोंके रोमराजी आदिभी काल करके प्रगट होती हैं) और (कोई आचार्य रस धातुसेही आर्तवकी उत्पत्ति कहते हैं) शुद्ध मांससे उत्पन्न हुए स्नेह (चिकनाई) को वसा कहते हैं, यह मांसधातुका उपधातु है । स्वेद कहिये पसीना, यह मेदधातुका उपधातु है. दांत अस्थि अर्थात् हड्डी धातुका उपधातु है । केश मज्जाधातुका उपधातु है । ओज[1] शुक्रधातुका उपधातु है । इस प्रकार सात[2] धातुसे उत्पन्न सात उपधातु जानने । कोई आचार्य इन उपधातुओंको मलकेही अन्तर्गत मानते हैं ॥

सप्तत्वचा ।

ज्ञेयाऽवभासिनी पूर्वसिध्मस्थानं च सा मता ॥ द्वितीया लोहिता
ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥ १६ ॥ श्वेता तृतीया संख्याता
स्थानं चर्मदलस्य च ॥ ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभू-
मिका ॥ १७ ॥ पंचमी वेदिनी ख्याता सर्वकुष्ठोद्भवस्ततः
॥ १८ ॥ स्थूला त्वक्सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा ॥
इति सप्तत्वचः प्रोक्ताः स्थूला व्रीहिद्विमात्रया ॥ १९ ॥

अर्थ–पहली त्वचाका नाम ' अवभासिनी[3] ' है सो सिध्म[4]रोगकी जन्मभूमि है । इस श्लोकमें चकार जो है इससे पद्मकंटकादिक रोगोंकी भी जन्मभूमि जानना । यह जौंके

---

[1] " ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् । सोमात्मकं शरीरस्यबलपुष्टिकरंमतम् । "

[2] " रसात्स्तन्यं ततो रक्तमसृजः स्नायुकंडराः । मांसाद्वसा त्वचः स्वेदो मेदसः स्नायुसंधयः । अस्थ्नो दंतास्तथा मज्ज्ञः केशा ओजश्चसप्तमात् । धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मात्त उपधातवः ॥ "

[3] अवभासिनीकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि " अवभासयति पराजयति भ्राजकाग्निना सर्वान् वर्णानिति तथा पंचविधां छायां प्रकाशयतीति " अर्थात् जो भ्राजकाग्नि करके संपूर्ण वर्णोंको करे तथा पंच प्रकारकी छायाको प्रकाशित करे उसे अवभासिनी कहते हैं ।

[4] सिध्मरोग कुष्ठका भेद है । उसको विभूत वा बनरफ कहते हैं ।

अठारहवें भाग प्रमाण मोटी है । २ दूसरी त्वचाका नाम 'लोहिता' है । यह तिलकालककी जन्मभूमि है । (तथान्यच्च[2] व्यंगादिकोंकी जाननी) और जौके सोलहवें भाग प्रमाण मोटी है। तीसरी त्वचाका नाम ' श्वेता ' है. यह चर्मदल कुष्ठकी जन्मभूमि है और जौके १२ वें भाग प्रमाण मोटी है. चौथी त्वचाका नाम 'ताम्रा' है । यह किलासकुष्ठके होनेकी जगह है, और जौके आठवें भाग प्रमाण मोटी है । पांचवीं त्वचाका नाम 'वेदनी' है । यह संपूर्ण कुष्ठोंकी जन्मभूमि है ' तत् ' इस पदके कहनेसे विसर्पादिरोगोंकीभी जन्मभूमि जानना । यह मुटाईमें जौके पांचवें भागके समान मोटी है । छठी त्वचाका नाम 'रोहिणी' है । यह ग्रंथि (गाँठ) गंडमाला तथा गंडमालाका भेद अपची इनकी जगह है । ग्रंथि आदि कफ मेदप्रधान है अतएव इनके साधर्म्यसे श्लीपद अर्बुदका जन्मस्थान भी यही छठी त्वचा है, यह जौके प्रमाण मोटी है । सातवीं त्वचाका नाम 'स्थूला' है । यह विद्रधिरोग तथा आदिशब्दसे अर्श (बवासीर) और भगंदरादिरोगोंके होनेकी जगह है । इस प्रकार सात त्वचा कही हैं । ये सातों त्वचा दो जौकी बराबर मोटी हैं । यह प्रमाण पुष्टस्थानोंमें जानना; ललाट और छोटी उँगली आदिमें नहीं क्योंकि लिखाहै कि स्फिक् (कूला) और उदर आदिमें व्रीहिमुखशस्त्रसे अँगूठेके बीच इतना मोटा चीरा देवे ॥

वातादि दोषत्रय ।

वायुः पित्तं कफो दोषा धातवश्च मलास्तथा ॥
तत्रापि पंचधा ख्याताः प्रत्येकं देहधारणात् ॥ २० ॥

अर्थ–शरीरमें वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं जो रसादि धातुओंको दूषित करते हैं अतएव उनको दोष कहते हैं, और शरीरके धारण करनेसे उनकी धातु संज्ञा है, वे रसादि धातुओंको मलीन करते हैं अतएव उनकी मल संज्ञा कही है, वे दोष शरीरधारकत्व करके एक २ पांच पांच प्रकारके हैं । उदाहरण । जैसे सुश्रुतमें लिखाहै कि प्रस्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विवेचन और धारण लक्षणात्मक वायु पांच प्रकारकी होकर शरीरको धारण करतीहै । इसी प्रकार राग, पक्ति, ओजस्तेजसात्मक पित्तके पांच विभागोंमें बँटकर अग्निकर्मसे देहका पालन करता है । तथा वृद्धि, सन्धि, श्लेष्मण, स्नेहन, रोपण, प्रपूरणात्मक कफके पांच विभागोंसे विभक्त होकर जल कर्म करके देहका पालन पोषण करताहै ॥

वायुका प्राधान्यतापूर्वक स्वरूप तथा विवरण ।

पवनस्तेषु बलवान्विभागकरणान्मतः ॥ रजोगुणमयः सूक्ष्मः

---

१ तिलकालक जिसको तिल कहते हैं इसे क्षुद्ररोगोंमें लिखा है । २ चकारसे मस्से अजगल्ली आदिकीभी जन्मभूमि तीसरी त्वचाही है ।

शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥ २१ ॥ मलाशये चरन्कोष्ठवह्निस्थाने
तथा हृदि ॥ कंठे सर्वांगदेशेषु वायुः पंचप्रकारतः ॥२२॥ अ-
पानः स्यात्समानश्च प्राणोदानौ तथैव च ॥ व्यानश्चेति समी-
रस्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंमें वायु बलवान् है। इसको मलादिकोंके पृथक् विभाग करनेसे, तथा पित्त और कफ इनको जहां इच्छा होय तहां लेजानेकी सामर्थ्य अतएव उस (वायु) को प्रधानता है। इस वायुमें रजोगुण अधिक है. ([1]शीतलस्वभाव हो तथा देहके छिद्रोंमें प्रवेश करनेसे) बहुत बारीक है, शीतल और रूखी है, तथा हलकी चं अर्थात् एक स्थानपर स्थित नहीं रहती। यह पांच स्थानोंमें गमन करती है अतएव पांच प्रका जाननी उन पांच स्थान और पांच नामोंको अनुक्रमसे कहते हैं। मलाशय अर्थात् पक्वाशयमें वायु रहता है उसको 'अपान' वायु कहते हैं। कोष्ठमें अग्निका स्थान है उसमें जो रहे उसको 'समान' वायु कहते हैं। हृदयमें रहनेवाले वायुको 'प्राण' वायु कहते कंठमें रहनेवाले वायुको 'उदान' वायु कहते हैं। और संपूर्ण देहमें रहनेवाले पवनको 'व्या वायु कहते हैं। इस प्रकार वायुके पांच स्थान तथा पांच नाम जानना ॥

पित्तका विवरण।

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम् ॥ कटुतिक्तरसं ज्ञेयं
विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥ २४ ॥ अग्न्याशये भवेत्पित्तमग्नि-
रूर्ध्वं तिलोन्मितम् ॥ त्वचि कांतिकरं ज्ञेयं लेपाभ्यंगादिपा-
चकम् ॥२५॥ द्वयं यकृति यत्पित्तं तादृशं शोणितं नयेत् ॥
यत्पित्तं नेत्रयुगले रूपदर्शनकारि तत् ॥ २६ ॥ यत्पित्तं
हृदये तिष्ठन्मेधाप्रज्ञाकरं च तत् ॥ पाचकं भ्राजकं चैव रंज-
कालोचके तथा ॥ २७ ॥ साधकं चेति पंचैव पित्तनामान्य-
नुक्रमात् ॥

---

[1] पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः। वायुना यत्र नीयंते तत्र वर्षन्ति मेघवत् ॥

[2] कोई प्रश्न करे कि देहके कहनेसेही सर्व अंगोंका बोध होगया फिर सर्वांगका पृथक् ग्रहण किया ? तहां कहते हैं कि अंगग्रहण इस जगह प्रत्यंगादिकोंके निरासार्थ अर्थात् प्रत्यंगोंमें वात विशेष स्थान नहीं। अतएव विशेष स्थानग्रहणार्थ इस जगह सर्वांग देहका ग्रहण किया है। पवनके अन्य नामभी कहते हैं जैसे—"नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः।' इति।

अर्थ—अब पित्तका वर्णन करते हैं । पित्त गरम और एक पतला पदार्थ है, दूषित पित्तका नीलवर्ण है और निर्मल पित्त पीले रंगका होता है । इस पित्तमें सत्त्वगुण अधिक है तथा निर्दूषित पित्तका स्वाद चरपरा और कडुवा होता है, तथा उष्णादिपदार्थोंके संयोग करके विदग्ध (विकृति) होनेसे खट्टा होजाता है । यह पित्त पांच स्थानोंमें रहता है । उन पांच स्थान और उसके नामोंको क्रम करके कहताहूं । कोठेमें अग्निका स्थान है । उस स्थानमें जो पित्त है वह अग्निस्वरूप होकर[2] तिलके बराबर है । वह पित्त उस पित्तके स्थानमें चार[3] प्रकारके अन्नको पचाता है अतएव उसको ' पाचक ' पित्त कहते हैं । त्वचामें[4] जो पित्त रहता है, वह शरीरमें कांति उत्पन्न करता है । चन्दनादिकोंके लेप, तैलादिकोंके अभ्यंग, आदिशब्दकरके स्नानादिक इनको पचाता है । अतः उसको ' भ्राजक ' पित्त कहते हैं । वह पित्त बाईं तरफ प्लीहाके स्थानमें रहकर, जैसे रससे रुधिरको प्रगट करता है उसी प्रकार दहनी तरफ यकृत्के स्थानमें रहकर भी रससे रुधिरको प्रगट करता है वह दृश्य कहिये दृष्टिगोचर है और उसको 'रंजक' पित्त कहते हैं. (कोई कहता है कि यकृति कहिये कालखण्ड (कलेजे) में जैसे रुधिर दीखता है उसी प्रकारका प्लीहामें रुधिरको उत्पन्न करता है) । दोनों नेत्रोंमें जो पित्त रहता है वह सफेद, नील, पीत आदि रूपका दर्शन करता है उसको ' आलोचक ' पित्त कहते हैं । जो पित्त हृदयमें है, वह मेधारूप और प्रज्ञारूप बुद्धिको उत्पन्न करता है । अतः उसको ' साधक ' पित्त कहते हैं । इस प्रकार पित्तके पांच स्थान और पांच नाम क्रम करके जानने ॥

कफका विवरण ।

कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥ २८ ॥
तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ कफश्चामाशये
मूर्ध्नि कंठे हृदि च संधिषु ॥ २९ ॥ तिष्ठन्करोति देहेषु स्थैर्यं
सर्वांगपाटवम् ॥ क्लेदनः स्नेहगश्चैव रसनश्चावलंबनः ॥ ३० ॥

अर्थ—कफ, चिकना, भारी, सफेद, पिच्छिल[5] (मलाईके सदृश) और शीतल है । तथा

---

[1] विदग्धाजीर्णसंसृष्टं पुनरम्लरसं भवेत् ।

[2] स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रं प्रमाणतः । ह्रस्वमात्रेषु सत्त्वेषु तिलमात्रं प्रमाणतः । क्रमिकीटपतङ्गेषु बालमात्रं हि तिष्ठति ॥

[3] भक्ष्य–भोज्य–लेह्य–चोष्य । [4] त्वचावभासिनीनामधेया–बाह्यत्वगित्यभिप्रायः ।

[5] मृद्यमानः सन्नंगुलिग्राही अर्थात् चेपदार ।

कफमें तमोगुण अधिक है और मीठा है तथा विकृति (दूषित) कफका स्वाद निमकीन हो वही कफ पांच स्थानोंमें रहकर देहकी स्थिरता और पुष्टताको करता है। अब उन पांच तथा उन पांचोंके नाम क्रमपूर्वक कहते हैं। आमके स्थानमें जो कफ रहता है उसको ' कफ कहते हैं वह आमाशयमें चार प्रकारके आहारका आधार है, तथा मधुर, पिच्छिल प्रक्लेदित्व होनेपरभी अपनी शक्ति करके संपूर्ण कफके स्थानोंपर उसके कर्मकरके उपकार का मस्तकमें रहनेवाले कफको ' स्नेहन ' कफ कहते हैं। वह तर्पणादि द्वारा इन्द्रि अपने अपने कार्यमें सामर्थ्ययुक्त करता है। और कंठमें स्थित कफको ' रसन ' कफ क यह जिह्वाकी जडमें स्थित और कटुतिक्तादि रसोंके ज्ञानका कारण है। हृदयमें रहने अवलंबन कफ कहते हैं। यह अवलंबनादि कर्मद्वारा हृदयका पोषण करता है। सं रहनेवाले कफको संश्लेषण कहते हैं यह संधियोंको यथास्थित करता है। इस प्रकार पांच स्थान और पांच नाम क्रमपूर्वक जानने ॥

स्नायुके कार्य।

स्नायवो बंधनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–स्नायु अर्थात् मांसरज्जु ये मांस हड्डी और मेद इनके बंधन हैं। इनको हिन् कहते हैं। इन्हींके द्वारा हड्डी, मांस और मेद खिंची हुई है ॥

संधिके लक्षण।

संधयश्चांगसंधानाद्देहे प्रोक्ताः कफान्विताः ॥

अर्थ–शरीरमें हाथ पैर आदि अंग जिस जगह एकत्रित हुए हैं उस स्थानको जोडके स्थानको संधि[2] कहते हैं। उन संधियोंमें कफके सदृश पदार्थ भराहुआ है।

---

[1] स्नायु ९०० नौ सौ प्रतान (फैलनेवाली) वृत्त (गोल) और भीतरसे पोली हैं। हाथ पैर आदि शाखाओंमें कमलनाल तंतुके समान फैलनेवाली और गोल महान् ६०० स्नायु हैं। और कोठेमें २०० दो सौ तीस स्नायु मोटी और छिद्रवाली हैं। तथा ग्रीवा(में ७० स्नायु हैं, वेभी मोटी और पीली हैं। इस प्रकार सब मिलकर ९०० हुईं। ये देह रूप है जैसे लिखा है " नौर्यथा फलकैस्तीर्णा बंधनैर्बहुभिर्युता। भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता हिता। एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावंतः संधयः स्मृताः। स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः॥

[2] संधि दो प्रकारकी हैं एक चल दूसरी अचल तहां ठोडी, कमर और हाथ पैरोंमें नाडकी संधि चलायमान है, बाकीकी संधियां अचल हैं। सब संधियां २१० हैं, इनमें सदृश पदार्थ भरा है उसका प्रयोजन यह है कि जैसे रथचक्रादि तैलादिकके संयोगसे फिरते हैं उसी प्रकार संधि इस पदार्थके योगसे चलनवलनविषयमें समर्थ होतीहै।

अस्थिके कार्य ।

[1]आधारश्च तथा सारकायेऽस्थीनि बुधा जगुः ॥ ३२ ॥

अर्थ--देहमें अस्थि (हड्डी) सार[2] (बलरूप) और आधार है, वह कपाल, रुचक, वलय, तरुण, नलक ऐसी पांच प्रकारकी हैं ॥

मर्मके कार्य ।

मर्माणि जीवाधाराणि प्रायेण मुनयो जगुः ॥

अर्थ--देहमें मर्म[3] प्रायः करके आत्माके आधारभूत हैं. ऐसे मुनीश्वरोंने कहा है ॥

शिराओंके कार्य ।

[4]संधिबंधनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः ॥ ३३ ॥

अर्थ--शिरा (नस) संधिके बंधन करनेवाली और वातादिदोष तथा रसादि धातु इनके वहानेवाली हैं ॥

धमनीके कार्य ।

[5]धमन्यो रसवाहिन्यो धमंति पवनं तनौ ॥

अर्थ--देहमें जो रसवाहिनी नाडी हैं वे पवनको धमन करती हैं अर्थात् धमाती हैं अतएव उनको धमनी कहते हैं ॥

---

[1] मांसनेत्रनिबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा । अस्थीन्यालंबनं कृत्वा न शीर्यंते पतंति च ॥

[2] अभ्यंतरगतैः सारैर्नूनं तिष्ठंति भूरुहाः । अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् । तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् । अस्थीनि न विनश्यंति साराण्येतानि देहिनाम् ॥

[3] वे मर्म पांच प्रकारके हैं । जैसे--मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थिमर्म ८, और संधिमर्म २०, इस प्रकार सब मर्म १०७ जानने । ये मर्म सद्यः प्राणहरणकर्ता--कालांतरमें प्राणहरणकर्ता, वैशल्यघ्न--वैकल्यकारी और पीडाकारी हैं 'सोममारुततेजांसि रजःसत्वतमांसि च । मर्माणि प्रायशः पुंसां भूतात्मा योऽवतिष्ठते । मर्मस्वभिहतो जीवो न जीवंति शरीरिणः॥' [4] शिरा स्थूल सूक्ष्म भेदकरके दो प्रकारकी हैं, उनका नाभिस्थान मूल है। उसी नाभिस्थानसे ये शिरा ऊपर नीचे और तिरछी फैली हुई हैं । मूलशिरा ४० हैं उनमें दश वातवाहिनी हैं, दश पित्तवाहिनी हैं, दश कफवाहिनी और दश रुधिरवाहिनी हैं । इस प्रकार सब चालिस जाननी । उनमें वातवाहिनी जो दश शिरा हैं उनमेंसे १७५ दूसरी शिरा निकली हैं इसी प्रकार पित्तवाहिनी, कफवाहिनी और रक्तवाहिनी शिरा इन प्रत्येकमेंसे १७५ एक सौ पचहत्तर २ निकली हैं । इस प्रकार सब मिलानेसे ७०० शिरा होती हैं ।

[5] धमनीनाडियां चौवीस हैं । ये भी नाभिस्थानसे प्रगट होकर दश नीचे गई हैं कि जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्तव आदि और अन्न, जल, रस इनको वहतीहैं और दश ऊर्ध्वगामिनी धमनी हैं । ये शब्द, रूप, रस, गंध, श्वासोच्छ्वास, जंभाई, क्षुधा, हँसना, बोलना, रुदन करना इत्यादिकोंको

पेशीके कार्य ।

मांसपेश्यो बलाय स्युरवष्टंभाय देहिनाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–मांसपेशी अर्थात् मांसके टुकडे मनुष्योंके बलके अर्थ और अवष्टंभ कहिये देहके खडा रहनेके अर्थ जाननी ॥

कंडराके कार्य ।

प्रसारणाकुंचनयोरंगानां कंडरा मता ॥

अर्थ–कंडरा कहिये बडी स्नायु वे हाथ पैर आदि अंगोंके प्रसारण (फैलाने) और आ-चन (समेटने) के विषयमें समर्थ जाननी ॥

रंध्रों (छिद्रों) का विवरण ।

नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रंध्रे प्रकीर्तिते ॥ ३५ ॥ मेहनापानव-
क्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते ॥ दशमं मस्तके चोक्तं रंध्राणीति नृणां
विदुः ॥ ३६ ॥ स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः ॥
सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानि मतानि त्वचि जन्मिनाम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–नाक, नेत्र, कान इनमें दो दो छिद्र हैं; लिंग, गुदा और मुख इनमें एक एक छि मस्तकमें एक छिद्र है कि जिसको ब्रह्मरंध्र कहते हैं । इस प्रकार पुरुषोंके नौ छिद्र खुले हुए हैं मस्तकमें जो ब्रह्मरंध्र है वह ढकाहुआ है–ऐसे दश छिद्र हैं । तथा स्तनसंबंधी दो छिद्र गर्भभागमें ऐसे तीन छिद्र पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके अधिक हैं । तथा इस प्राणीकी त्व अनेक छिद्र हैं परन्तु अत्यन्त बारीक होनेसे नहीं दीखते । चकारसे प्राण, जल, रस, मांस, मेद, मूत्र, मल, शुक्र और आर्तवके बहनेवाले अन्य छिद्र और भी हैं ऐसा आचार्यका मत है ॥

बहाकर देहको धारण करतीहै । तिरछी जानेवाली ४ धमनी हैं । इन चारोंमेंसे असंख्यात ध उत्पन्न हुई हैं, इनसे यह देह जालके सदृश परिव्याप्त है । इनके मुख रोमकूपों (रोआँ) से बंधे हु और ये रसको सर्वत्र पहुँचातीहैं, पसीनेको बहातीहैं, तथा उबटना, स्नान और लेपादिक इनके वी भीतर ले जाती हैं । इस प्रकारसे २४ धमनी हैं ।

१ शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि संधयस्तु शरीरिणाम् । पेशीभिः संभृतान्यत्र बलवंति भवंत्यतः ॥ त तु स्थानविशेषान्नानास्वरूपत्वं दर्शितम् । तद्यथा 'बहलपेलवस्थूला सुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्ण कंशाभावाः । ' आसां लक्षणं तु अस्मद्विरचितबृहन्निघंटुरत्नाकरस्य शारीरभागेऽप्यवलोकनीयम् । ग्रंथविस्तरभयान्न लिखितम् । २ कंडरा जो १६ हैं उनके प्ररोहके अर्थ जाननी जैसे हाथ पैर कंडराओंके नख (नाखून) अग्रप्ररोह है इसी प्रकार औरभी जानो । सोलह संख्याका जो ग्रहण सो इस जगह शस्त्रकर्मके निषेधार्थ है । यथा--"जालानि कंडराश्चांगे पृथक् षोडश निर्दिशेत् । कूर्चाः सप्तजीविन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः । शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः ॥ "

अब शारीरकथनके प्रसंगसे अन्यकुप्फुसादिकोंका स्वरूप दिखाते हैं।

तद्वामे फुप्फुसं प्लीहा दक्षिणांगे यकृन्मतम् ॥ उदानवायोराधारः फुप्फुसं प्रोच्यते बुधैः ॥ ३८ ॥ रक्तवाहि शिरामूलं प्लीहा ख्याता महर्षिभिः ॥ यकृद्रंजकपित्तस्य स्थानं रक्तस्य संश्रयम् ॥ ३९ ॥

अर्थ–हृदयके वामभागमें प्लीहा और फुप्फुस तथा दक्षिण भागमें यकृत् है उसको 'कालखण्ड (कलेजा) कहते हैं। अब इनके कार्य कहते हैं। फुप्फुस (फेंफडा) जो है सो उदान अर्थात् कंठस्थवायुका आधार है और प्लीहा है सो रुधिर बहनेवाली शिराओंका मूल है एवं यकृत् है सो रंजक पित्त और रुधिरका स्थान है॥

तिलके लक्षण।

जलवाहि शिरामूलं तृष्णाच्छादनकं तिलम् ॥

अर्थ–रुधिरके कीट (कीटी) से प्रगट और दक्षिणभागमें यकृत्के समीप तिल नामका एक स्थान है उसको क्लोम कहते हैं। वह तिल जल वहनेवाली नाडियोंका मूल है अतएव तृष्णा कहिये प्यासको आच्छादन करता है॥

वृक्कके लक्षण।

वृक्कौ पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥ ४० ॥

अर्थ–वृक्क कहिये कुक्षिगोलक[3] यह जठर (पेट) में रहनेवाले मेदको पुष्ट करते हैं अर्थात् बढाते हैं। जठरशब्दका ग्रहण अन्यस्थानाश्रित मेदके निषेधार्थ है जैसे लिखा है " स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यन्तराश्रिता। अथेतरेषु सर्वेषु सरक्ते मेद उच्यते॥ " इति॥

वृषणके लक्षण।

वीर्यवाहिशिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ॥

अर्थ–वृषण[4] कहिये आँड। ये वीर्यवाही नाडियोंके आधार हैं अतएव पुरुषार्थ अर्थात् पुरुषबलको देते हैं। 'बीजवाहि' ऐसाभी पाठान्तर है॥

लिंगके लक्षण।

गर्भाधानकरं लिंगमयनं वीर्यमूत्रयोः ॥ ४१ ॥

---

[1] प्लीहा रक्तसे उत्पन्न है और उसको भाषामें फीहा कहते हैं। [2] फुप्फुस अर्थात् फेंफडा यह रुधिरके झागसे प्रगट होकर हृदयनाडिकासे लगा हुआ है इसीसे श्वासका कार्य होता है, कि जिसके द्वारा सर्व देहकी चेष्टा होती है। (यह वाम भागमें उत्पन्न होकर दोनों तरफ फैलाहुआ होता है)।

[3] दो कुक्षिगोलक रक्त और मेदके सारांशसे उत्पन्न होते हैं (इन्हें भाषामें गुरदे कहते हैं)।

[4] वृषण मांस, कफ और मेदके सारांशसे उत्पन्न होते हैं।

अर्थ—लिंग कहिये शिश्नेन्द्री जो वीर्यद्वारा गर्भको प्रगट करती है और वीर्य तथा मूत्र निकलनेका मार्ग है। जैसे लिखा है. "द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः । मूत्रस्रोतःपथ शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ " इति । " वीजमूत्रयोः " ऐसा भी पाठान्तर है ॥

हृदयके लक्षण ।

हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयं मतम् ॥

अर्थ—कमलकी कलीके समान किंचित् विकासित और अधोमुख ऐसा हृदय है यह चैतन्यताका स्थान होकर ओज कहिये संपूर्ण धातुओंके तेजोंका सार है। यद्यपि सामान्यता करके सर्वदेहही चेतनाका स्थान है जैसे चरकमें लिखा है "चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः । केशलोमनखाग्रांतमलद्रव्यगुणैर्विना ॥ " इति । परन्तु विशेषता करके हृदयही चेतनाका मुख्य स्थान है। और जैसे दूधमें सार वस्तु घृत है इसी प्रकार सब धातुओंका तेज—स्नेहरूप ओज है अर्थात् तेज रूप है। जैसे सुश्रुतमें लिखा है "रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तदेव ओजस्तदेव बलमित्युच्यते" कोई आचार्य ओज शब्द करके जीव और रुधिरको ग्रहण करते हैं, कोई निर्विकार कफकोही ओज कहते हैं और किसी २ ग्रन्थमें ओज शब्द करके रसका ग्रहण करते हैं।

शरीरपोषणार्थ व्यापार ।

शिराधमन्यो नाभिस्थाः सर्वां व्याप्य स्थितास्तनुम् ॥ ४२॥
पुष्णंति चानिशं वायोः संयोगात्सर्वधातुभिः ॥

अर्थ—नाभिस्थानमें रहनेवाली शिरा और धमनी संपूर्ण शरीरमें व्याप्त हो रात्रि दिवस वायुके संयोग करके रसादि सर्व धातुओंको सर्व शरीरमें लेजाकर शरीरका पोषण करती हैं और चकारसे पालन करती हैं। ये तरुण पुरुषोंके शरीरका पोषण (पुष्ट) करती हैं और वृद्ध मनुष्यके देहका पालन करती हैं। जैसे लिखा है " स एवान्नरसो वृद्धानां परिपक्वशरीरत्वादप्रीणनो भवति । " कोई कहे कि कैसे पोषण करती हैं ? तहां कहते हैं कि पवनके संयोगसे अर्थात् प्राकृत पवनकी सहायतासे पोषण करती हैं। जैसे लिखा है कि "क्रियाणामप्रतीपातसमोहं बुद्धिकर्मणा । करोत्यन्यान्गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् ॥" कौनसी वस्तुओंसे पोषण करती हैं? तहां कहते हैं कि सम्पूर्ण रसादि धातुओंकरके पोषण करती हैं। इस वाक्यसे सबका सामान्य कर्म कहा। जैसे लिखा है कि "यामिरिदं शरीरमाराम इव जलहारिणीभिः केदार इव कुल्याभिरुपपद्यते अनुगृह्यते चाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्वि-

---

१ लिंगके साथ वर्तमान हृदयके बंधन करनेवाले ऐसे चार कंडरा बडे २ स्नायु हैं उनके अग्रभागसे यह लिंग प्रगट होता है। २ हृदय रुधिरके सारसे निर्मित है।

शैरिति। " कदाचित् कोई प्रश्न करे कि वे शिरा और धमनीनाडी नाभिमें स्थित हो सर्व देहको कैसे पोषण करती हैं ? तहां कहते " व्याप्नुवंत्यभितो देहं नाभिस्थप्रसृताः शिराः। प्रतानाः पद्मिनीकंदबिसादीनां यथा जलम् ॥ "

प्राणवायुका व्यापार।

नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलांतरम् ॥ ४३ ॥
कंठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥
पीत्वा चांबरपीयूषं पुनरायाति वेगतः ॥ ४४ ॥
प्रीणयन्देहमखिलं जीवं च जठरानलम् ॥

अर्थ–नाभिमें स्थित[1] प्राणपवन (प्राणाश्रित वायु) हृदयका स्पर्श कर बाह्य आकाशसे अमृत[2] (हवा) पीनेके वास्ते कंठसे बाहर जाता है, वहां अमृतको पीकर फिर उसी वेगसे नासिकाद्वारा अपने स्थानमें आकर संपूर्ण देह और जीव इनको सन्तुष्ट और जठराग्निको प्रदीप्त करता है ॥

यह प्राणवायु सकल शरीरमें व्यापक होनेसे नाभिमें आवृत्त जो शिरा हैं उनमेंभी स्थित है। अतएव लिखा है "नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्यपाश्रिताः। शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥ " इति। औरभी ग्रंथान्तरमें लिखा है कि " ब्रह्मग्रंथौ नाभिचक्रं द्वादशारमवस्थितम्। लूतेव तंतुजालस्थस्तत्र जीवो भ्रमत्ययम् ॥ सुषुम्नया ब्रह्मरंध्रमारोहत्यवरोहति। जीवप्राणसमारूढो रज्ज्वा कोल्हाटिको यथा ॥ " इस प्रमाण पवनका कारणभी ग्रंथान्तरोंमें इस प्रकार लिखा है।

---

[1] प्राण अग्नि और सोमादिक ये नाभिमें रहते हैं। अतएव यहां " नाभिस्थः प्राणपवनः " ऐसा कहा। [2] ऊपर लिखे श्लोकसे प्रत्यक्ष मालूम होता है कि इस प्राणीके देहसे पवन विष्णुपदामृत पीनेको निकलता है और फिर देहके भीतर जाता है। परंतु मुख्य इसका तात्पर्य यही है कि, भीतरकी पवन देहमें किंचिन्मात्रभी रहनेसे विषैल अर्थात् विषरूप होजाती है अतएव वह विषमिश्रित पवन बाहर निकलती है और विष्णुपदनाम आकाशका है उसमें प्राप्त हो स्वच्छ पवनसे मिश्रित होकर अपने विषैले गुणको त्यागती है और आकाशकी नवीन पवनको श्वासद्वारा भीतर लेजाकर रुधिरकी शुद्धि करनेसे देहको और जीवको पालन करती है। इसीलिये एक छोटेसे मकानमें बहुतसे मनुष्योंके बैठनेसे उस मकानकी पवन विषैली होजाती है, परंतु जिस मकानमें चारों तरफ पवन आनेजानेका संचार अच्छी तरह होवे उसमें यह अवगुणकारी पवन नहीं ठहरसक्ती। और इसीसे बडे २ मेलोंमें इंग्रेज जो बहुत दिनतक मेलेको ठहरने नहीं देते उसकाभी मुख्य यही कारण है। इससे जो जो सफाई करनेके बंदोबस्त करते हैं उन सबका कारण हमारे शास्त्रमें लिखा है परंतु अब मूर्खानंद वैद्य और हकीम तथा डाक्टर इन सब बातोंको अँग्रेजोंकी निर्मित बतलाते हैं। ठीक है कुएँकी मेढकी कुएँकोही समुद्र मानती है।

" तेषां मुख्यतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः । चरत्यास्ये नाभिकायां नाभौ हृदयपंकजे । शब्दोच्चारणनिश्वासे श्वासकासादिकारणम् ॥ "

इत्यादि गुणविशिष्ट प्राणपवन हृदयकमलके आभ्यंतरको स्पर्श करके अर्थात् हृदयकमलको प्रफुल्लित कर कंठको उल्लंघन कर मस्तकमें विष्णुपदामृत (ब्रह्मरंध्राश्रित अमृत) पीनेको प्राप्त होता है, " चक्रं सहस्रपत्रं तु ब्रह्मरंध्रे सुधाधरम् । तत्सुधासारधाराभिरभिवर्द्धयते तनुम् । " भरतोऽपि " ब्रह्मरंध्रे स्थितो जीवः सुधया संप्लुतो यदा । तुष्टो गीतादिकार्याणि स प्रकर्षाणि साधयेत् । " उस जगह उस ब्रह्मरंध्रस्थित अमृतको पीकर जिस वेगसे ऊपर गई उसी वेगसे फिर तत्क्षण लौटकर अपने स्थानपर आकर प्राप्त होती है वह अपनी जगहपर आकर सकलदेह (चोटीसे लेकर चरणपर्यंत) को तथा जीव और जठरानल (पाचकाग्नि) को पुष्ट करती है ।

यद्यपि देह ग्रहणहीसे जीवानलादिकका ग्रहण होगया तोभी फिर कहना है सो विशेषताद्योतक है अर्थात् सामान्यता करके देहके अंगप्रत्यंग विभाग जानना और जीव तथा अग्नि ये विशेषताकरके जानने क्योंकि "शरीराद्भिन्नो जीवः" इति श्रुतेः । अर्थात् जीवको शरीरसे भिन्न होनेके कारण पृथक् कहा इसवास्ते दोष नहीं है " आयुर्वर्णो बलं स्वास्थ्यमुत्साहोपचयप्रभाः । ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाः स्वक्ता देहेऽग्निहेतुकाः । शांतेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरंजीवत्यनामयम् । रोगी स्याद्विरते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥ "

आयुके और मरणके लक्षण ।

शरीरप्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते ॥ ४५ ॥
कालेन तद्वियोगाद्धि पंचत्वं कथ्यते बुधैः ॥

अर्थ-एवं पूर्वोक्त श्लोकके अभिप्रायसे शरीर और प्राण इनके संयोगको आयु कहते हैं और काल करके शरीर और प्राण इन दोनोंके वियोग होनेको पंचत्व (मरण) कहते हैं ॥

वैद्यको क्या कर्तव्य है ।

न जंतुः कश्चिदमरः पृथिव्यां जायते क्वचित् ॥ ४६ ॥
अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किंतु रोगान्निवारयेत् ॥

अर्थ-पृथ्वीमें कोई प्राणी अमर (मृत्युरहित) नहीं है अत एव मृत्युके निवारण करनेमें

---

१ भूतात्माके शरीरनिधनपर्यंत धर्म, अधर्म, नैमित्तिक सांसारिक सुखदुःखको उपभोग साधनको आयु कहते हैं । २ कालभी स्वयंभू, अनादि, मध्य, निधनका कारण है । प्राणियोंके संहार करनेवाला काल कहलाता अथवा प्राणियोंको सुखदुःखादिमें नियोजन करता है इसवास्ते उसे काल कहते हैं अथवा मृत्युके समीप प्राप्त करता इसवास्ते उसको काल कहा है ।

कोई समर्थ नहीं है परन्तु वैद्य रोगोंका निवारण करे । प्रसंग वश वैद्यके लक्षण " व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ " अर्थात् व्याधिका निदानादिद्वारा यथार्थ ज्ञान करके रोगजन्य पीडाका शमन करना यही वैद्यका वैद्यत्व है किन्तु वैद्य आयुका प्रभु नहीं है ॥

अब साध्य व्याधिका यत्न न करनेसे अवस्थांतर कहते हैं।

याप्यत्वं याति साध्यश्च याप्यो गच्छत्यसाध्यताम् ॥ ४७ ॥
जीवितं हंत्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ॥

अर्थ—साध्य व्याधिकी चिकित्सा न करनेसे याप्य होती है. याप्यकी चिकित्सा न करनेसे व्याधि असाध्य होजाती है और असाध्य होनेसे व्याधि प्राणहरण करती है अतएव व्याधिके उत्पन्न होतेही चिकित्सा करनी चाहिये । जैसे लिखा है " जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः । वह्नित्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ " याप्य यह असाध्यका भेद है जैसे लिखा है कि " असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः । " तथा च " यापनीयं तु जानीयात्क्रियां धारयते तु यः। क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति ।" उसी प्रकार साध्यभी दो प्रकारका है. एक सुखसाध्य और दूसरा कृच्छ्रसाध्य, एक दोषसे उत्पन्न, उपद्रवरहित और नवीन इत्यादि लक्षणयुक्त व्याधि सुखसाध्य कहीगई है और शस्त्रादिसाधनद्वारा चिकित्सा योग्य व्याधिको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥ ४८ ॥
अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवत् ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका साधन (कारण) ऐसा यह देह है अतएव शुभाशुभ कर्मके फलको जाननेवाले मनुष्य रोगोंसे शरीरकी रक्षा करें ॥

अब दोषोंकी विषम और सम अवस्थाको कहते हैं ।

धातवस्तन्मला दोषा नाशयंत्यसमास्तनुम् ॥ ४९ ॥
समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च ॥

अर्थ—रसादि सात धातु और धातुओंके मल तथा वातादि तीन दोष ये न्यूनाधिक होनेसे

---

१ चकारसे यह दिखाया कि व्याधि प्रथमही याप्यत्वको नहीं प्राप्त होती किंतु प्रथम कृच्छ्रसाध्य होती है फिर याप्यत्वको प्राप्त होती है । २ पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते । अतो दानादिकं कुर्यात्संप्रतीक्ष्य विचक्षणः । इति ।

शरीरका नाश करते हैं और सम ([1]स्वप्रमाणस्थित) होनेसे सुख, बल और शरीरकी वृद्धिको देते हैं ॥

इति शारीरे कालादिकथनम् ।

प्रथम कह आये हैं कि आदिशब्दसे सृष्टिक्रम कहेंगे सोही वर्णन करते हैं ।

जगद्योनेरनिच्छस्य चिदानंदैकरूपिणः ॥ ६० ॥
पुंसोऽस्ति प्रकृतिर्नित्या प्रतिच्छायेव भास्वतः ॥

अर्थ—महदादि रूप जो जगत् (पृथिव्यादिभूत) उनका आदि कारण होकर इच्छारहित तथा [2]चिंदानन्द ज्ञानमय ऐसा जो पुरुष उसको ईश्वर कहते हैं । उस पुरुषकी नित्य और सूर्यकी छायाके प्रमाण प्रकृति है उसको अव्यक्तभी कहते हैं ॥

प्रकृति कैसे विश्व निर्माण करती है तथा पुरुषको कर्तृत्व कैसे है यह कहते हैं ।

अचेतनापि चैतन्ययोगेन परमात्मनः ॥ ६१ ॥
अकरोद्विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृति ॥

अर्थ--वह मूलप्रकृति चेतनरहित (जड) होकर परमात्माके चैतन्यसंवन्ध करके अनित्य ऐसे संपूर्ण महदादिरूप विश्वको करती है । इस विषयमें दृष्टान्त जैसे ऐन्द्रजालिक (बाजीगर) मंत्रप्रभावसे झूठे नाटकोंको दिखाता है इस श्लोकका संवन्ध पूर्व श्लोकके साथ है ॥

---

[1] अब ग्रथांतरसे दोषादिकोंका परिमाण लिखते हैं ' यः प्रसादपरोऽन्नस्य परजीर्णस्य सर्वशः । स रसोंऽजलयस्तस्य नव देहेषु देहिनः । रक्तस्यांजलयस्त्वष्टौ शकृतः सप्त सर्वशः । पित्तस्यांजलयः पंच षट् कफस्य प्रचक्षते । मूत्रस्य विद्याच्चत्वारो वसायाश्चांजलित्रयम् । द्वावंजली मेदसस्तु मज्ज एकांजलिर्मता । शुक्रस्यैकांजलिर्ज्ञेया मस्तिष्कस्योजसस्तथा । चत्वारोऽञ्जलयः स्त्रीणां रजसः प्रकृतिस्थितिः । द्वावंजली प्रसूतायाः स्तन्यस्यापि हि योषितः । प्रमाणमेतद्धातूनामदुष्टानामुदाहृतम् ॥ हीनाः स्वेन प्रमाणेन विविधाश्चापि धातवः । योजयंति विकारैस्तु दोषा वृद्धिक्षयप्रदाः ॥ ' इति । अतएवाह वाग्भटः " रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता । " ग्रंथांतरेऽपि ' विकृताविकृता देहं घ्नंति ते वर्द्धयंति च । ' तथा च चरकेऽपि " विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यत । सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥ " इति ।

[2] अस्ति ब्रह्मचिदानन्दं स्वयं ज्योतिर्निरंजनम् । ईश्वरो लिंगमित्युक्तमद्वितीयमजं विभुम् । निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरमुनीश्वरम । सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसज्ञंकाः । अनाद्यविद्यापरिता यथाग्नौ विस्फुलिंकाः ॥

अब एकसे कार्यका उत्पत्तिक्रम कहते हैं ।

प्रकृतिर्विश्वजननी पूर्वं बुद्धिमजीजनत् ॥ ५२ ॥
इच्छामयीं महद्रूपामहंकारस्ततोऽभवत् ॥
त्रिविधः सोऽपि संजातो रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ ५३ ॥

अर्थ—विश्वकी जननी ऐसी जो प्रकृति है वह प्रथम इच्छामयी (सत्त्व रज तमोगुण स्वभावोंसे अनेक प्रकारकी) और महद्रूप (महान् है पर्याय नाम जिसका अथवा स्फटिकमणिके समान) बुद्धिको उत्पन्न करती भई. उस बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न हुआ वह राजसी तामसी और सत्त्वगुण भेदसे तीन प्रकारका है । तहां वैकारिक सत्त्वगुणी तैजस रजोगुणी और भूतादि तामसी जानना ॥

त्रिविध अहंकारके कार्य ।

तस्मात्सत्त्वरजोयुक्तादिन्द्रियाणि दशाभवन् ॥ मनश्च जातं तान्याहुः श्रोत्रं त्वङ्नयनं तथा ॥ ५४ ॥ जिह्वाघ्राणत्वचोहस्तपादोपस्थगुदानि च ॥ पंचबुद्धींद्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥ ५५ ॥ कर्मेन्द्रियाणि पंचैव कथ्यंते सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥

अर्थ—राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा तमोमात्रकरके अनुविद्ध (मिश्रित) जो सात्त्विक अहंकार है उससे श्रोत्र (कान), त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ (लिंग और भग) गुदा और मन ये ग्यारह इन्द्री उत्पन्न हुईं। उनमें पहली (कान त्वचा आदि) ज्ञानेंद्री हैं क्योंकि इनको बुद्धिका आश्रय है, अवशिष्ट (बाकी) रही जो पांच वे कर्मेंद्री हैं क्योंकि इनको कर्मका आश्रय है । तथा उभयात्मक (बुद्ध्यात्मक और कर्मात्मक मन है) अथवा राजस अहंकारसे इन्द्री, सात्त्विकसे इन्द्रियोंके देवता और मन ऐसे पृथक्त्व करके उत्पत्तिक्रम जानना । कोई ‘ तस्मात् ’ इस जगह ‘ तमःसत्त्वरजोयुक्तात् ’ ऐसा पाठ कहते हैं और व्याख्या करते हैं ‘ तमःसत्त्वरजोयुक्तसे ’ इंद्री हुई तात्पर्य यह है कि सांख्यशास्त्रमें इंद्रियोंको अहंकारजन्य कहा है और वैद्यकमें भौतिकी कही हैं इतना फरक है ॥

तन्मात्राओंकी उत्पत्ति ।

तमःसत्त्वगुणोत्कृष्टादहंकारादथाभवत् ॥ ५६ ॥ तन्मात्रपंचकं तस्य नामान्युक्तानि सूरिभिः ॥ शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ॥ ५७ ॥ रसतन्मात्रकं गंधतन्मात्रं चेति तद्विदुः ॥

अर्थ—राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा सत्त्वमात्रकरके अनुविद्ध (युक्त) ऐसा

जो तामस अहंकार उससे तन्मात्रा कहिये उसी २ आश्रयपर मुख्यत्वकरके रहनेवाले ऐसे गुण उत्पन्न हुए, उनके पांच नाम—शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गंधतन्मात्र इस प्रकार जानने। इन तन्मात्राओंको योगी पुरुषही जानसकते हैं ॥

तन्मात्रापंचकोंका विशेष।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसगंधावनुक्रमात् ॥ ५८ ॥
तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ॥

अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये क्रम करके तन्मात्रपंचकोंके विशेष जानने। इनका सुख दुःख और मोह इन्हींसे अनुभव होता है अतएव स्थूलभावको प्राप्त हुए जानने तथा तन्मात्रपंचकोंका अनुभव सूक्ष्म है इसीसे नहीं हाता ॥

भूतपंचकोंकी उत्पत्ति।

तन्मात्रपंचकात्तस्मात्संजातं भूतपंचकम् ॥ ५९ ॥
व्योमानिलानलजलक्षोणिरूपं च तन्मतम् ॥

अर्थ—शब्दादि पंचतन्मात्राओंसे भूतोंके पंचक उत्पन्न हुए उनके नाम आकाश[1], पवन[2], अग्नि[3] जल[4] और पृथ्वी[5] इस प्रकार जानन ॥

इंद्रियोंके विषय।

बुद्धींद्रियाणां पंचैव शब्दाद्या विषया मताः ॥ ६० ॥
कर्मेन्द्रियाणां विषया भाषादानविहारतः ॥
आनंदोत्सर्गकौ चैव कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६१ ॥

अर्थ—श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये पांच बुद्धीन्द्रिय हैं, इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच विषय क्रमपूर्वक जानने। उदाहरण--जैसे कर्णइन्द्रीका शब्द, त्वगिन्द्रीका स्पर्श, चक्षुइन्द्रीका रूप, जिह्वाइन्द्रीका रस और घ्राण (नासिका) इन्द्रीका गंध विषय जानना। वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा ये कर्मेन्द्री हैं इनके भाषण, आदान, विहार, आनंद, उत्सर्ग ये पांच विषय क्रमकरके जानने। उदाहरण--जैसे वाणीइन्द्रीका विषय भाषण, हस्तइन्द्रीका ग्रहण, पैरोंका विहार, उपस्थका आनंद और गुदाका उत्सर्ग ये विषय जानने।

---

[1] आकाश—आकाशका शब्दमात्रगुण जानना। [2] वायु—वायुका मुख्यगुण स्पर्श तथा आनुषंगिक शब्द गुण जानना। [3] तेज—तेजका मुख्य गुण रूप और आनुषंगिक शब्द और स्पर्श ये गुण जानना। [4] उदक—उदकका मुख्यगुण रस और आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप ये गुण जानना। [5] पृथ्वी—पृथ्वीका मुख्य गुण गंध तथा आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये गुण जानना।

मूलप्रकृतिके पर्यायनाम ।

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ॥
एतानि तस्या नामानि शिवमाश्रित्य या स्थिता ॥ ६२ ॥

अर्थ–प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्या और अविकृति ये प्रकृतिके पर्यायशब्द जानना । वह प्रकृति शिव कहिये ईश्वरके आश्रय करके ऐसे रहती है जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सूर्यके आश्रय रहता है । वह सत्त्व, रज, तमरूपा है, जैसे सुश्रुतमें लिखाहै "सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवे हेतुमव्यक्तं नाम" इति ॥

अब चौबीस तत्त्वराशिको पृथक् निकालके कहते हैं ।

महानहंकृतिः पंच तन्मात्राणि पृथक् पृथक् ॥
प्रकृतिर्विकृतिश्चैव सप्तैतानि बुधा जगुः ॥ ६३ ॥

अर्थ–महत्तत्त्व अहंकार और पंचतन्मात्रा ये सात इन्द्रियादिकोंके कारण हैं अर्थात् प्रकृतिरूप और प्रकृतिके कर्मरूप कहिये विकृतिरूप हैं ॥

षोडशविकार ।

दशेंद्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पंच च ॥
विकाराः षोडश ज्ञेयाः सर्वं व्याप्य जगत्स्थिताः ॥ ६४ ॥

अर्थ–दश इन्द्री, उभयात्मक मन और पांच महाभूत ये सोलह विकार हैं । ये संपूर्ण जगत्में व्याप्त होकर स्थित हैं ॥

चौबीसतत्त्वराशि ।

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे ॥ जीवात्मा नियतो नित्यं
वसतिं स्वांतदूतवान् ॥ ६५ ॥ स देही कथ्यते पापपुण्यदुःख-
सुखादिभिः ॥ व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबंधनैः ॥ ६६ ॥

अर्थ–अव्यक्त १ महान् २ अहंकार ३ शब्दतन्मात्रा ४ स्पर्शतन्मात्रा ५ रूपतन्मात्रा ६ रसतन्मात्रा ७ गन्धतन्मात्रा ८ श्रोत्र (कान) ९ त्वक् (त्वचा) १० चक्षु (नेत्र) ११ घ्राण (नासिका) १२ रसना (जीभ) १३ वाक् (वाणी) १४ हाथ १५ पैर १६ उपस्थ (लिंग और योनि) १७ पायु (गुदा) १८ मन १९ पृथ्वी २० आप २१ तेज २२ वायु २३ और आकाश २४ इस प्रकार चौबीस तत्त्व हुए । इन करके सिद्ध (निर्मित) शरीररूप घरमें पच्चीसवाँ पुरुष सर्वकाल रहता है, उसको जीवात्मा कहते हैं । मन है सो उसका दूत है । वह जीवात्मा महदादिकृत सूक्ष्म लिंग शरीरमें रहता है अतएव उसको देही

अथवा कर्मपुरुषभी कहते हैं । अतएव पापपुण्य सुखदुःख इनकरके वह युक्त हैं तथा साथ वर्तमान ऐसा जो कृत्रिम कर्मबन्धन तिस करके बद्ध है ॥

आदि शब्दसे इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राण, अपान, उन्मेष, बुद्धि, मन, संकल्प, विचा स्मृति, विज्ञान, अध्यवसाय, विषय, उपलब्धि इत्यादिक गुणभी उत्पन्न होते हैं अर्थात् भी बद्ध है ॥

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि विकाररहित जीवात्मा विकार वस्तुओं करके कैसे बद्ध हो है ? तहां कहते हैं कि जीवात्मा निर्विकार भी है परन्तु विकारवान् वस्तुके संयोगसे विकार होजाता है । इसमें दृष्टान्त देते हैं कि जैसे सायंकालमें आकाश सूर्यकिरणके संयोगसे होजाता है उसी प्रकार जीव विकारवान् होजाता है वास्तवमें आकाशके समान निर्वि है । कोई आचार्य कहते हैं कि ये सम्पूर्ण विकार उस लिंगदेहमें प्रतिबिंबके सदृश हैं जैसे तालाव पुष्करिणी आदिके जलमें, जलके काँपनेसे समीपस्थित वृक्षादि कंपित पडते हैं ।

जीवके बंधन ।

(कामक्रोधौ लोभमोहावहंकारश्च पंचमः ॥
दशेन्द्रियाणि बुद्धिश्च तस्य बंधाय देहिनः ॥)

अर्थ–काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इन्द्री और बुद्धि ये उस जीवके बन्धन इनके लक्षण क्रमसे हम अन्य ग्रन्थान्तरोंसे कहते हैं ॥

काम ।

(स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा ॥
परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते)

अर्थ–पुरुषोंके स्त्रियोंमें और स्त्रियोंके पुरुषोंमें परस्पर प्रीति करनेको काम कहते हैं प यह प्रीति उपभोग निमित्त जाननी ॥

क्रोध ।

(य ऊष्मा हृदयाज्जातः समुत्तिष्ठति वै सकृत् ॥
परहिंसात्मकः क्लेशः क्रोध इत्यभिधीयते ॥)

अर्थ--एकवारही इस प्राणीके हृदयसे गरमी प्रगट होकर परको हिंसात्मक दुःख देनेवा होती है इससे चित्तको एक प्रकारका क्लेश होता है उस क्लेशको क्रोध कहते हैं ॥

लोभ ।

परार्थं परभागांश्च परसामर्थ्यमेव च ॥

(दृष्ट्वा श्रुत्वा च या तृष्णा जायते लोभ एव सः ॥)

अर्थ–परधन, परभाग और पराई सामर्थ्यको देखकर और सुनकर इस प्राणीके चित्तमें जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको लोभ कहते हैं ॥

मोह ।

(अश्रेयःश्रेयसोर्मध्ये भ्रमणं संशयो भवेत् ॥
मिथ्याज्ञानं तु तं प्राहुरहिते हितदर्शनम् ॥)

अर्थ–अश्रेय (अकल्याण) और कल्याण इन दोनोंमें बुद्धिके भ्रमणको संशय कहते हैं । और अहितमें हित देखना उसको मिथ्याज्ञान कहते हैं ॥

अहंकार ।

(अहमित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्त्तते ॥
कार्यकारणयुक्तस्तु तदहंकारलक्षणम् ॥)

अर्थ–जो प्राणी कार्य कारण करके युक्त अहं (मैं करता हूं) इस अभिमानके साथ क्रियाओंमें प्रवृत्त होताहै उसको अहंकार कहते हैं ॥

अब बंधन अबंधन व्याधि और आरोग्यके लक्षण ।

आप्नोति बंधमज्ञानादात्मज्ञानाच्च मुच्यते ॥
तद्दुःखयोगकृद्व्याधिरारोग्यं तत्सुखावहम् ॥ ६७ ॥

अर्थ–यह पुरुष अज्ञानकरके क्लेशादिक बंधनको प्राप्त होताहै और आत्मज्ञान (धर्माधर्मके विचार) से उस बंधनसे छूटताहै । शरीर आर शरीरी इनको जो दुःख देवे उसको व्याधि कहते हैं, तथा इनको सुख देवे उसको आरोग्य कहते हैं । दुःख है सो इस प्राणीके स्वभावके प्रतिकूल है और सुख अनुकूल है ॥ इति सृष्टिक्रमशारीरं समाप्तम् ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां कलादिकथनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

प्रथम लिख आये हैं कि, " आहारादिगतिस्तत्र " अतएव उसी आहारगतिअध्यायको कहते हैं ॥

आहारकी गति और अवस्था ।

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः ॥ माधुर्यं फेनभावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥ १ ॥ अथ पाचकपित्तेन विद-

ग्धश्चाम्लतां व्रजेत् ॥ ततः समानमरुता ग्रहणीमभिधीयते ॥ २ ॥ ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटु ॥

अर्थ–पांचभौतिके[1] अन्नादिकोंका आहार प्राणवायुकरके[2] प्रेरित हुआ प्रथम आमाशयमें[3] होताहै । फिर वही छः रसयुक्तभी आहार मधुरभाव[4] और फेन (झाग) रूपको प्राप्त है । फिर वही आहार उसी आमाशयमें पाचकपित्तके तेजसे विदग्ध (कर्पट) होकर (खट्टे) भावको प्राप्त होताहै पश्चात् उस आमाशयसे समान वायुकरके ग्रहणी (अग्निस्था में प्राप्त होता है । उस ग्रहणीस्थानमें कोष्ठाग्निकरके उस आहारका पाक होता है । वह कटु (चरपरा) होताहै । आहारकी प्रथमावस्था मधुर, दूसरी अम्ल और तीसरी कटु जाननी ॥

उक्त आहारकी दो अवस्था ।

रसो भवति संपक्वादपक्वादामसंभवः ॥ ३ ॥

अर्थ–उस आहारका उत्तम पाक होनेसे रस होताहै और कच्चा परिपाक होनेसे आम होताहै ॥

रस और आमके कार्य ।

वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः ॥ पुष्णाति धातूनखिलान्सम्यक्पक्वोऽमृतोपमः ॥ ४ ॥ मंदवह्निविदग्धश्च कट्वश्चाम्लो भवेद्रसः ॥ विषभावं व्रजेद्वापि कुर्याद्वा रोगसंकरम् ॥ ५

अर्थ–वही पूर्वोक्त रस अग्निके बलकरके मधुरभाव और स्निग्धताको प्राप्त होकर संपूर्ण धातुओंको पोषण करताहै अतएव उत्तम प्रकारसे परिपक्व हुआ रस अमृतके तुल्य[6] है और रस मंदाग्निकरके विदग्ध हुआ विषभावको प्राप्त होताहै, अर्थात् कटु अम्ल होकर प्राणना

---

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके अंशसे प्रगट होताहै अतएव आहारकी पांच संज्ञा है । जैसे लिखाहै–" चतुर्धा षड्सोपेतोऽनेकविध्यनुपक्रमः । द्विविधोष्टविधो वीर्यैराहारः भौतिकः । " २ हृदि प्राणोनिलो मतः । ३ नाभिस्तनांतरे जंतोराहुरामाशयं बुधाः इति आमाशय कफका स्थान है और कफका मिष्ट रस है अतएव इस स्थानमें छः प्रकारकाभी मिष्ट होजाताहै । अतएव ग्रंथान्तरमें लिखाहै कि " भुक्त्वादौ कफस्य वृद्धिः " इसी मिष्ट स्थाके आहारकी आमाजीर्ण संज्ञा है जैसे लिखा है–" माधुर्यमन्नं सृजतामपूर्वम् । " ५ पित्त एक पीले रंगका द्रव पदार्थ है । जब वह पूर्वोक्त मधुर आहारमें मिलता है तब उसको कर देता है । ६ जैसे अमृत--जीव मधुरादिगुणयुक्त होताहै उसी प्रकार उत्तम रस जीवन तर्पणादि गुणयुक्त होताहै । क्योंकि सौम्यगुणवाला है जैसे सुश्रुतमें लिखा है–" सखलु द्रवा ह्ननजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैः सौम्योऽवगम्यते । "

होता है, अर्थात् कटु अम्ल होकर प्राणनाशकारी होता है। कदाचित् अल्प होनेसे मारणात्मक नहीं होता तो दोषोंके दूषित होनेसे अनेक रुधिरविकार, ज्वर, भगन्दर, कुष्ठादि रोगोंको करता है ॥

आहारके सारको कहकर निःसारको कहते हैं।

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः ॥ शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ ६ ॥ तत्किट्टं च मलं ज्ञेयं तिष्ठेत्पक्वाशये च तत् ॥

अर्थ–उस आहारके रसको सार कहते हैं और आहारका निस्सार जो पदार्थ है उसको मलद्रव कहते हैं। तहां वह द्रव मूत्रवाहिनी शिराद्वारा वस्तिमें जाकर मूत्र होजाता है और अवशिष्ट रहा हुआ जो किट्ट वह पक्वाशयके एक देशमें जायकर मल (विष्ठा) होजाता है ॥

मलका अधोगमन।

वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेन नोदितम् ॥ ७ ॥
प्रवाहिनी सर्जनी च ग्राहिकेति वलित्रयम् ॥

अर्थ–गुदास्थित मल अपानवायु करके अधःप्रेरित वलित्रितयात्मक गुदाके द्वारा बाहर गिरता है उन वलियोंके नाम कहते हैं। प्रवाहिनी सर्जनी और ग्राहिका इस प्रकार शंखावर्त्त (शंखके आँटेके समान) तीन वली हैं ॥

सारभूत रसकोभी कार्यत्वकरके स्थानांतरप्राप्ति कहते हैं।

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ॥ ८ ॥
रंजितः पाचितस्तत्र पित्तेनायाति रक्तताम् ॥

अर्थ–वह रस समान वायु करके ऊपरके प्रेरित अग्निस्थानसे हृदयमें आकर रंजक-

---

१ दोषोंके दूषित होनेसे रोगोंको करता है किंतु स्नेहदग्धके सदृश आप नहीं करता अर्थात् घृत तैलसे जला हुआ मनुष्य घृतसे जला, तैलसे जला कहाता है परंतु वास्तवमें अग्निहीसे जला हुआ होताहै। जैसे लिखाहै–"रसादिस्थेषु दोषेषु व्याधयः संभवंति ये। तज्जा इत्युपचारेण तान्याहुर्घृतदग्धवत्।" २ गुदाके अवयवभूत भीतर तीन २ वली एकसे एक ऊपर हैं इनका आकार शंखकी नाभिके समान हैं।

३ रस सकलशरीरगमनशीलत्व होनेसे ग्रहणीस्थानसे हृदयमें प्राप्त होता है। जैसे लिखा है–'सर्वदेहानुसारत्वेऽपि तस्य हृदयस्थानं सहृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रवेश्योर्ध्वगा दशदश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गास्ताः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयंति वर्द्धयंति यापयंति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा तस्य सरसस्यानुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या।'

पित्त करके रञ्जित तथा पाचकाग्निसे पाचित हो रुधिरत्वपनेको प्राप्त होता है ॥

रक्तका प्राधान्य ।

रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् ॥ ९ ॥
स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥

अर्थ—सर्वशरीरस्थ (पाञ्चभौतिक) रुधिर (देहधारक होनेसे) जीवका उत्तम आ इसके गुण स्निग्ध, गुरु, चञ्चल और स्वादु हैं वही रुधिर विदग्ध कहिये विकृत होनेसे समान कटु (तीक्ष्ण) और खट्टा होता है ॥

रसादिधातुओंकी उत्पत्तिका क्रम ।

पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात् ॥ १० ॥
शुक्रत्वं यान्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत् ॥

अर्थ—रसादिक सात धातु पित्तताप करके पाचित हो क्रम करके एक महीनेमें शु उत्पन्न करती हैं इसी क्रमसे एक महीनेमें स्त्रियोंके रज होता है ॥

गर्भोत्पत्तिक्रम ।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ॥ ११ ॥
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥

---

१ प्रथम कुछ २ रंगता हुआ क्रमसे अत्यंत लाल होजाता है जैसे लिखा है—" रसोऽ नैव रंज्यते द्वितीये कपोतवर्णाभः पित्तस्थानेषु तिष्ठते, दिवसे तृतीये चतुर्थे वा पद्मवर्णो भवे भेऽह्नि षष्ठे वा किंशुकाभः सप्तमेऽह्नि संजाते शशकरक्तोपमः एवं रसाद्रक्तं मतम्

२ विस्रता द्रवता रागः स्पन्दनं लघुता तथा । भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यन्ते शोणिते

३ देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते । तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रुधिरं जीव उच्यते । ४ यहां यह दिखाया कि रसही शुक्रत्वको प्राप्त होता है इसवास्ते ' शुक्रत्वं याति ' ऐसा एक वचन आदि शब्दके ग्रहणसे वही रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थिभावको प्राप्त होता है।

कोई आचार्य कार्य कारणके अभेदोपचारसे रसादि प्रत्येकधातु एक महीनेमें शुक्र होते कहतेहैं। और स्त्रियोंके रज होताहै जैसे "रसादेव रजः स्त्रीणां मासि मासि त्र्यहं स्रवेत् । शुक्रं याति स्वभावतः स्मृतम् ॥" इन श्लोकोंमें तथा इस वचनके ग्रहणसे यह दिखाया है कि शुक्र होता है, क्योंकि वाजीकरणादिप्रयोगसे प्रत्यक्ष देखाजाताहै । अन्यथा उनको मैथुनकी होता है तथा लिखाभी है—" [illegible] [illegible] दिवसं [illegible] । [illegible] [illegible] ॥" अब कहतेहैं एक मासमें रसका शुक्र होताहै उसका [illegible] है, आजकल रस इतने दिनमें होता और रसादिधातु मात्र २ दिनमें होती है। हैं तो हमारे बनाये " [illegible] " मे देखलेवे ।

अर्थ–मनके संकल्पकरके स्त्रीपुरुषोंका रतिसंग होनेसे शुद्ध शोणित (आर्त्तव) और शुद्ध धातु इनके मिलापकरके स्त्रियोंके गर्भाशयमें गर्भधारण होता है जब वह गर्भ प्रगट होताहै तब उसको बालक कहते हैं ॥

पुत्रकन्या होनेमें कारण।

आधिक्ये रजसः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत् ॥ १२ ॥
नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी ॥

अर्थ–गर्भाधानकालमें ऋतुसम्बन्धी रक्तकी आधिक्यतासे कन्या होती है और शुक्रधातुके आधिक्य होनेसे पुत्र होता है तथा आर्त्तव और शुक्रधातुके समान होनेसे नपुंसक संतान होती है। इसका कारण कर्मके अनुसरणादि परमेश्वरकी इच्छा है ॥

बालककी मात्राका प्रमाण।

बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका ॥ १३ ॥ अवलेहीकृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः ॥ वर्द्धयेत्तावदेकैकां यावद्भवति वत्सरः ॥
॥ १४ ॥ माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद्यावत्षोडशवत्सरः ॥ ततः
स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः ॥ १५ ॥ ततो बालकवन्मात्रा
ह्रसनीया शनैः शनैः ॥ मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां
चतुर्गुणा ॥ १६ ॥

अर्थ–बालकको प्रथम महीनेमें दूध, सहत, खांड और घृत इनमेंसे जो उपयुक्त होय उसीके साथ एक रत्ती सुवर्णादिक औषधं डाल अवलेहभूत (चाटनेके योग्य) करके देवे।

---

१ शुद्धआर्तवके लक्षण–"शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसंति यद्वासो न विरंजयेत्। त्र्यहं गत्वाऽप्रवृत्तिं च कुरुते शोणितं स्त्रियः। न्युपद्रवा संसते या गर्भस्तस्या ध्रुवं भवेत्।" २ शुद्धशुक्रके लक्षण–"स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च। शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा। वातादिदूषितं पूतिकुणपग्रंथिरूपिणम्। क्षीणमूत्रपुरीषाभ्यां गंधशुक्रं तु निष्फलम्।" ३ बालशब्द कन्या पुरुष और नपुंसक तीनोंका वाचक है।

४ "यथेच्छा" इस पदके कहनेसेही यमल (जोडला) होनेकी सूचना की है अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे दो वा तीन इत्यादिकभी बालक होते हैं। जैसे लिखा है–"बीजेन्तर्वायुनाभिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ। यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ।" ५ बालक तीन प्रकारके होते हैं, एक तो दूध पीनेवाला, दूसरा दूध अन्नका आहारकर्ता और तीसरा केवल अन्नका भोजनकर्ता जानना। इनको क्रमसे दूध सहत और खांडके साथ औषधि देनी चाहिये। ६ प्रथमग्रहण इस जगह बालकके जन्मदिनसे कहाहै। ७ घृत गौका लेवे।

८ औषधि इस जगह सुश्रुतोक्त लेनी चाहिये जैसे लिखाहै–"सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा। मत्स्याक्षयाख्या शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकांचनम्। अर्कपुष्पीघृतं क्षौद्रचूर्णितं कनकं वचा। हेमचूर्णानि

पित्त करके रागयुक्त तथा पाचकपित्तमें पाचित हो रुधिररूपकको प्राप्त होता है ॥

रक्तको प्राधान्य ।

रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् ॥ ९ ॥
स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥

अर्थ–सर्वशरीरस्थ (पांचभौतिक[1]) रुधिर (देहमूलत्व[3] होनेसे) जीवका उत्तम आ
इसके गुण स्निग्ध, गुरु, चञ्चल और स्वादु हैं वही रुधिर विदग्ध कहिये विकृत होनेसे
समान कटु (तीक्ष्ण) और खट्टा होता है ॥

रसादिधातुओंकी उत्पत्तिका क्रम ।

पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात् ॥ १० ॥
शुक्रत्वं यांति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत् ॥

अर्थ–रसादिक[4] सात धातु पित्तताप करके परिपक्व हो क्रम करके एक महीनेमें शुक्र
उत्पन्न करती हैं उसी क्रमसे एक महीनेमें स्त्रियोंके रज होता है ॥

गर्भोत्पत्तिक्रम ।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ॥ ११ ॥
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥

---

१ प्रथम कुछ २ रंगता हुआ क्रमसे अत्यंत लाल होजाता है जैसे लिखा है–" रसःकिं
नैव संपद्यते द्वितीये कपोतवर्णाभः पित्तस्थानेषु तिष्ठति, दिवसे तृतीये चतुर्थे वा पद्मवर्णो भवेत्
मेऽहनि षष्ठे वा किंशुकाभः सप्तमेऽहनि संप्राप्ते शक्रगोपकाभः एवं सप्ताहाद्रसो रक्तं भवतीति।

२ विस्रता द्रवता रागः स्पंदनं लघुता तथा । भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यंते शोणिते यतः।

३ देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते । तस्माद्रक्षेद्धि रुधिरं रुधिरं जीवमुच्यते । ४ रसके
यह दिखाया कि रसही शुक्रत्वको प्राप्त होता है इसवास्ते ' शुक्रत्वं याति ' ऐसा एक वचन
आदि शब्दके ग्रहणसे वही रस, रक्त, मांस, मेद, मजा और अस्थिभावको प्राप्त होता है।
कोई आचार्य कार्य कारणके अभेदोपचारसे रसादि प्रत्येकधातु एक महीनेमें शुक्र होता है
कहतेहैं । और स्त्रियोंके रज होताहै जैसे "रसादेव रजः स्त्रीणां मासि मासि त्र्यहं भवेत् । तद्वर्षाद्
दूर्ध्वं याति पंचाशतः क्षयम् ॥" उक्तश्लोकमें तथा इस पदके ग्रहणसे यह दिखाया कि स्त्रि
शुक्र होता है, क्योंकि द्रावणादिप्रयोगमें प्रत्यक्ष देखाजाताहै । अन्यथा उनको मैथुनानंद
होता है तथा लिखाभी है–" सौम्यत्वगाश्रयं स्वच्छं स्निग्धं योनिमुखोद्गतम् । स्त्रीणां शुक्रं न
भवेद्गर्भाय चार्तवम् ॥" अब कहतेहैं एक मासमें रसका शुक्र होताहै उसका हिसाब इस प्र
कि, आहारका रस एकही दिनमें होता और रक्तादिधातु पांच २ दिनमें होती हैं । विशेष
हो तो हमारे बनाये " बृहन्निघंटुरत्नाकर " में देखलेवे ।

अर्थ—मनके संकल्पकरके स्त्रीपुरुषोंका रतिसंग होनेसे शुद्ध शोणित (आर्त्तव) और शुद्ध धातु इनके मिलापकरके स्त्रियोंके गर्भाशयमें गर्भधारण होता है जब वह गर्भ प्रगट होताहै तब उसको बालक कहते हैं ॥

पुत्रकन्या होनेमें कारण।

आधिक्ये रजसः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत् ॥ १२ ॥
नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी ॥

अर्थ—गर्भाधानकालमें ऋतुसम्बन्धी रक्तकी आधिक्यतासे कन्या होती है और शुक्रधातुके आधिक्य होनेसे पुत्र होता है तथा आर्त्तव और शुक्रधातुके समान होनेसे नपुंसक संतान होती है। इसका कारण कर्मके अनुसरणादि परमेश्वरकी इच्छा है ॥

बालककी मात्राका प्रमाण।

बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका ॥ १३ ॥ अवलेहीकृतैके-
व क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः ॥ वर्द्धयेत्तावदेकैकां यावद्भवति वत्सरः ॥
॥ १४ ॥ माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद्यावत्षोडशवत्सरः ॥ ततः
स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः ॥ १५ ॥ ततो बालकवन्मात्रा
ह्रसनीया शनैः शनैः ॥ मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां
चतुर्गुणा ॥ १६ ॥

अर्थ—बालकको प्रथम महीनेमें दूध, सहत, खांड और घृत इनमेंसे जो उपयुक्त होय उसीके साथ एक रत्ती सुवर्णादिक औषधं डाल अवलेहभूत (चाटनेके योग्य) करके देवे।

---

१ शुद्धआर्तवके लक्षण—"शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसंति यद्वासो न विरंजयेत्। त्र्यहं गत्वाऽप्रवृत्तिं च कुरुते शोणितं स्त्रियः। व्युपद्रवा स्रंसते या गर्भस्तस्या ध्रुवं भवेत्।" २ शुद्धशुक्रके लक्षण—"स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च। शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा। वातादिदूषितं पूतिकुणपग्रंथिरूपिणम्। क्षीणमूत्रपुरीषाभ्यां गंधशुक्रं तु निष्फलम्।" ३ बालशब्द कन्या पुरुष और नपुंसक तीनोंका वाचक है।

४ "यथेच्छा" इस पदके कहनेसेही यमल (जोडला) होनेकी सूचना की है अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे दो वा तीन इत्यादिकभी बालक होते हैं। जैसे लिखा है—" बीजेन्तर्वायुनाभिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ। यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ।" ५ बालक तीन प्रकारके होते हैं, एक तो दूध पीनेवाला, दूसरा दूध अन्नका आहारकर्ता और तीसरा केवल अन्नका भोजनकर्ता जानना। इनको क्रमसे दूध सहत और खांडके साथ औषधि देनी चाहिये। ६ प्रथमग्रहण इस जगह बालकके जन्मदिनसे कहाहै। ७ घृत गौका लेवे।

८ औषधि इस जगह सुश्रुतोक्त लेनी चाहिये जैसे लिखाहै—"सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा। मत्स्याक्ष्याख्या शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकांचनम्। अर्कपुष्पीघृतं क्षौद्रचूर्णितं कनकं वचा। हेमचूर्णानि

दूसरे महीनेमें दो रत्ती, तीसरे महीनेमें तीन रत्ती, इस प्रकार एक एक रत्तीके हिसाबसे धकी वृद्धि एक वर्ष करानी चाहिये तो मासेके प्रमाण होय । दूसरे वर्षमें दो मासे, तीन मासे इस प्रमाण मासे २ औषधकी वृद्धि सोलह वर्षपर्यंत करनी चाहिये । सोलह उपरांत सत्तर वर्षकी अवस्था पर्यंत औषध भक्षणमें सोलह मासेकाही प्रमाण जानना । सत्तरवर्षके उपरान्त उस मात्राको जैसे बालकको बढाई थी उसी प्रमाण क्रमसे मा घटाता चलाआवे । इसका यह कारण है कि बालक और वृद्ध इनकी समान चिकि तथा कल्करूप चूर्णरूप और काढा इनकी मात्रा बालकसे चौगुनी देनी चाहिये ॥

अंजनादि करनेका काल ।

अंजनं च तथा लेपः स्नानमभ्यंगकर्म च ॥
वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—बालकोंके नेत्रोंमें काजल आदिका लगाना, उबटना करना, स्नान (न्हव करना, तैलादिककी मालिश करना, उलटी करना और प्रतिमर्श (निरूहणबस्ति गुदामें पिचकारी देना) इत्यादि कर्म बालकके जन्मसेही हितकारी है ॥

वमनविरेचनादिकर्म ।

कवलः पंचमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्म च ॥
विरेकः षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम् ॥ १८ ॥

अर्थ--पांचवर्षके उपरांत कवल (गंडूषभेद जो औषधादि करके कुल्ले करना) करे (वर्षके भीतर न करे) । आठवर्ष उपरांत नस्य (नास) लेवे, सोलह वर्षके पश्चात् वि (जुलाब[2]) देवे वीसैंवर्षके[3] पश्चात् मैथुन करना चाहिये ॥

कैडर्यः श्वेतादूर्वाघृतंमधु । चत्वारोभिहिताः प्राश्याः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि ॥ " "कुमाराणां धावलपुष्टिविवर्द्धनाः" इति । कोई आचार्य प्राचीन विश्वामित्रोक्त मात्रा बालकको कहते हैं "विडंगफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धितम् । कोलास्थि क्षीरादेर्दद्याद्भैषज्यकोविदः । क्षीरान्नादेः कोलमात्रमन्नादेर्दुंबरोपमम् ।" इति ।

[1] मासा इस जगह मागधोक्तपरिभाषानुसार छः रत्तीका लेनाचाहिये ।

[2] इस जगह तीक्ष्ण जुलाब देना वर्जित है परन्तु मृदु जुलाबका निषेध नहीं है । जैस लिख "अग्निक्षारविरेकैस्तु बालवृद्धौ विवर्जयेत् । तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वींकुर्याल्लघुक्रियाम् ।"

[3] बीसवर्षका ग्रहण पुरुषके प्रति है स्त्रियोंके प्रति नहीं है क्योंकि स्त्रियोंको १६ वर्षकी अव समानवीर्यत्व कहा है यथा " पंचविंशतिमे वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे । समत्वागतवीर्यौ तौ जानी कुशलो भिषक् ॥"

बाल्यादिदशपदार्थोंका ह्रास।

बाल्यं वृद्धिर्वपुर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ ॥
बुद्धिः कर्मेंद्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—जन्म होनेके दश वर्ष पश्चात् बाल्यावस्था नष्ट होती है। बीस वर्षके पश्चात् शरीरका बढना नष्ट होता है। तीस वर्षके पश्चात् शरीर मोटा नहीं होता इस श्लोकमें "छविर्मेधा" ऐसा पाठभी है उस पक्षमें तीस वर्ष पर्यन्त कांति रहती है फिर नहीं रहती। चालीस वर्षके उपरान्त ग्रंथ पढकर याद रखनेकी शक्ति नहीं रहता[1]। पचास वर्षके पश्चात् शरीरकी त्वचा शिथिल होती है। साठ वर्षके उपरान्त दृष्टिकी तेजी नष्ट होती है अर्थात् दृष्टि मन्द पडजाती है। सत्तर वर्षके उपरान्त वीर्य नहीं रहता। अस्सी वर्षके पश्चात् पराक्रम नष्ट होजाता है। नब्बे वर्षके पश्चात् बुद्धि नहीं रहती। सौवर्ष पश्चात् इस प्राणीकी कर्मेंद्रियोंके चलनवलनादि धर्म जाते रहते हैं। एकसौ दश वर्षके पश्चात् चैतन्य नष्ट होताहै और एकसौ बीसवर्षके पश्चात् जीव नष्ट होता है अर्थात् मरता है। इस प्रकार दश दश वर्षके अनन्तर एक एकका ह्रास (हानि) होताहै ॥

वातप्रकृतिके लक्षण।

अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्चलमानसः ॥
आकाशचारी स्वप्नेषु वातप्रकृतिको नरः ॥ २० ॥

अर्थ—छोटे २ बाल, कृश और रूखा (तेजरहित) शरीर, वाचाल (बकवादी), चञ्चलचित्त, स्वप्नमें आकाशमें गमन करे इत्यादि लक्षण वातप्रकृतिवाले मनुष्यके होते हैं ॥

पित्तप्रकृतिमनुष्यके लक्षण।

अकाले पलितैर्व्याप्तो धीमान्स्वेदी च रोषणः ॥
स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः ॥ २१ ॥

अर्थ—विना समय बाल सफेद होजावें, बुद्धिमान् हो, अत्यन्त पसीना आता हो, क्रोधी हो और स्वप्नमें नक्षत्र अथवा अग्न्यादिकको देखे, उस पुरुषकी पित्तप्रकृति जाननी ॥

कफप्रकृतिवालेके लक्षण।

गंभीरबुद्धिः स्थूलांगः स्निग्धकेशो महाबलः ॥
स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ २२ ॥

---

[1] यह १२० वर्षकी मनुष्योंकी परमायु जानना। यथा—"समाः षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पंच च निशा हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पंचककृतिः। विरूपासाप्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनां स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः षट्चपरमम्।"

[2] "क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्माशिरोगतः। पित्तं चकेशान्पचति पलितं तेन जायते।"

दूसरे महीनेमें दो रत्ती, तीसरे महीनेमें तीन रत्ती, इस प्रकार एक एक रत्तीके हिसावसे धकी वृद्धि एक वर्ष करानी चाहिये तो मासेके प्रमाण होय । दूसरे वर्षमें दो मासे, तीन मासे इस प्रमाण मासे २ औषधकी वृद्धि सोलह वर्षपर्यंत करनी चाहिये । सोलह उपरांत सत्तर वर्षकी अवस्था पर्यंत औषध भक्षणमें सोलह मासेकाही प्रमाण जानना । सत्तरवर्षके उपरान्त उस मात्राको जैसे बालकको बढाई थी उसी प्रमाण क्रमसे घटाता चलाआवे । इसका यह कारण है कि बालक और वृद्ध इनकी समान चिकि तथा कल्करूप चूर्णरूप और काढा इनकी मात्रा बालकसे चौगुनी देनी चाहिये ॥

अंजनादि करनेका काल ।

अंजनं च तथा लेपः स्नानमभ्यंगकर्म च ॥
वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ–बालकोंके नेत्रोंमें काजल आदिका लगाना, उबटना करना, स्नान (न्हा करना, तैलादिकको मालिश करना, उलटी करना और प्रतिमर्श (निरूहणवस्ति गुदामें पिचकारी देना) इत्यादि कर्म बालकके जन्मसेही हितकारी है ॥

वमनविरेचनादिकर्म ।

कवलः पंचमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्म च ॥
विरेकः षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम् ॥ १८ ॥

अर्थ--पांचवर्षके उपरांत कवल (गंडूषभेद जो औषधादि करके कुल्ले करना) करे (वर्षके भीतर न करे) । आठवर्ष उपरांत नस्य (नास) लेवे, सोलह वर्षके पश्चात् वि (जुलाब) देवे वीसँ[३]वर्षके पश्चात् मैथुन करना चाहिये ॥

कैडर्यः श्वेतादूर्वाघृतंमधु । चत्वारोभिहिताः प्राश्याः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि ॥ ” “कुमाराणां धाबलपुष्टिविवर्द्धनाः” इति । कोई आचार्य प्राचीन विश्वामित्रोक्त मात्रा बालकको कहते हैं “विडंगफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धितम् । कोलास्थि क्षीरादेर्दद्याद्भैषज्यकोविदः । क्षीरान्नादेः कोलमात्रमन्नादेर्दुंबरोपमम् ।” इति ।

[१] मासा इस जगह मागधोक्तपरिभाषानुसार छः रत्तीका लेनाचाहिये ।

[२] इस जगह तीक्ष्ण जुलाब देना वर्जित है परन्तु मृदु जुलाबका निषेध नहीं है । जैस लिख “अग्निक्षारविरेकैस्तु बालवृद्धौ विवर्जयेत् । तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वींकुर्याल्लघुक्रियाम् ।”

[३] बीसवर्षका ग्रहण पुरुषके प्रति है स्त्रियोंके प्रति नहीं है क्योंकि स्त्रियोंको १६ वर्षकी अवस्था समानवीर्यत्व कहा है यथा “ पंचाविंशतिमे वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे । समत्वागतवीर्यौ तौ जानी कुशलो भिषक् ॥ ”

बाल्यादिदशपदार्थोंका ह्रास।

बाल्यं वृद्धिर्वपुर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ ॥
बुद्धिः कर्मेंद्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—जन्म होनेके दश वर्ष पश्चात् बाल्यावस्था नष्ट होती है। बीस वर्षके पश्चात् शरीरका बढना नष्ट होता है। तीस वर्षके पश्चात् शरीर मोटा नहीं होता इस श्लोकमें "छविर्मेधा" ऐसा पाठभी है उस पक्षमें तीस वर्ष पर्यन्त कांति रहती है फिर नहीं रहती। चालीस वर्षके उपरान्त ग्रंथ पढकर याद रखनेकी शक्ति नहीं रहता[१]। पचास वर्षके पश्चात् शरीरकी त्वचा शिथिल होती है। साठ वर्षके उपरान्त दृष्टिकी तेजी नष्ट होती है अर्थात् दृष्टि मन्द पडजाती है। सत्तर वर्षके उपरान्त वीर्य नहीं रहता। अस्सी वर्षके पश्चात् पराक्रम नष्ट होजाता है। नव्वे वर्षके पश्चात् बुद्धि नहीं रहती। सौवर्ष पश्चात् इस प्राणीकी कर्मेंद्रियोंके चलनवलनादि धर्म जाते रहते हैं। एकसौ दश वर्षके पश्चात् चैतन्य नष्ट होताहै और एकसौ बीसवर्षके पश्चात् जीव नष्ट होता है अर्थात् मरता है। इस प्रकार दश दश वर्षके अनन्तर एक एकका ह्रास (हानि) होताहै ॥

वातप्रकृतिके लक्षण।

अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्चलमानसः ॥
आकाशचारी स्वप्नेषु वातप्रकृतिको नरः ॥ २० ॥

अर्थ—छोटे २ बाल, कृश और रूखा (तेजरहित) शरीर, वाचाल (बकवादी), चञ्चलचित्त, स्वप्नमें आकाशमें गमन करे इत्यादि लक्षण वातप्रकृतिवाले मनुष्यके होते हैं ॥

पित्तप्रकृतिमनुष्यके लक्षण।

अकाले पलितैर्व्याप्तो धीमान्स्वेदी च रोषणः ॥
स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः ॥ २१ ॥

अर्थ—बिना समय बाल सफेद होजावें, बुद्धिमान् हो, अत्यन्त पसीना आता हो, क्रोधी हो और स्वप्नमें नक्षत्र अथवा अग्न्यादिकको देखे, उस पुरुषकी पित्तप्रकृति जाननी ॥

कफप्रकृतिवालेके लक्षण।

गंभीरबुद्धिः स्थूलांगः स्निग्धकेशो महाबलः ॥
स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ २२ ॥

---

[१] यह १२० वर्षकी मनुष्योंकी परमायु जानना। यथा—" समाः षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पंच च निशा हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पंचककृतिः। विरूपासाप्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनां स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः षट्चपरमम्।"

[२] " क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्माशिरोगतः। पित्तं चकेशान्पचाति पलितं तेन जायते।"

अर्थ-गंभीर (संपूर्ण कार्यमें क्षमाशील बुद्धि जिसकी) हो, पुष्ट शरीर, चिकने बाल जिसकी देहमें बहुत बल हो तथा सपनेमें जलाशयों (तालाब सरोवर आदि) को देखे मनुष्यकी कफकी प्रकृति जाननी ॥

द्विदोषज और त्रिदोषज प्रकृतिके लक्षण ।

ज्ञातव्या मिश्रचिह्नैश्च द्वित्रिदोषोल्वणा नराः ॥

अर्थ-दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषज प्रकृतिवान् जानना और तीन दोषोंके लक्षणों मनुष्य त्रिदोषजन्य प्रकृतिवाला जानना चाहिये ॥

निद्रादिकोंकी उत्पत्ति ।

तमःकफाभ्यां निद्रा स्यान्मूर्च्छा पित्ततमोभवा ॥ २३ ॥
रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्रा श्लेष्मतमोनिलैः ॥

अर्थ--तमोगुण और कफके संसर्गसे निद्रा आती है, पित्त और तमोगुण करके मूर्च्छा[1] आती है, रजोगुण पित्त और वायु इन करके भ्रम[2] होता है, कफ, तम और वायु इन करके घटपटादि पदार्थोंका ज्ञान होकर शरीर गुरु (भारी) होय, जँभाई और क्लम कहिये परिश्रम विना श्रम ये लक्षण होते हैं इस स्थितिको तन्द्रा[3] कहते हैं ॥

ग्लानिके लक्षण ।

ग्लानिरोजःक्षयाद्दुःखादजीर्णाच्च श्रमाद्भवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ-संपूर्ण धातुओंके सारभूत ओजके क्षय करके दुःखसे अजीर्णसे और श्रम[4] करके ग्लानि होती है । ग्लानि[5] शब्द क्लमका दूसरा पर्यायवाचक नाम है अर्थात् हर्षक्षय जानना ॥

आलस्यके लक्षण ।

यः सामर्थ्येऽप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते ॥

---

[1] रूपादिके अविज्ञानको मूर्च्छा कहतेहैं अर्थात् मोहसंज्ञक अचेतनरूप जाननी । यद्यपि वाता दिक तीनों दोषोंसे और रुधिरसे मूर्च्छा होतीहै तथापि पित्त प्रधान होनेसे ग्रहण किया है लिखा है-वातादिभिः शोणितेन मद्येन च-विशेषतः । षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते

[2] "येनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः । श्रमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ।"

[3] "इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवं जृम्भणंक्लमः । निद्रार्त्तस्येव यस्येहे तस्य तंद्रांविनिर्दिशेत् ॥" दुःख तीन प्रकारका है आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक । [4] शरीरके परिश्रम करनेको (दण्ड कसरतको) परिश्रम कहते हैं "शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते ।"

[5] ग्लानिके लक्षण तंत्रांतरमें इस प्रकार लिखेहैं "येनायासश्रमो देहे हृदयोद्वेष्टनं क्लमः । नवा श्रमभिकांक्षेत ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत् ।"

अर्थ–देहमें सामर्थ्य होनेपरभी काम करनेमें उत्साहरहित हो उसको आलस्य कहते हैं ॥

जंभाईके लक्षण ।

चैतन्यशिथिलत्वाद्यः पीत्वैकश्वासमुद्धरेत् ॥ २५ ॥
विदीर्णवदनः श्वासं जृंभा सा कथ्यते बुधैः ॥

अर्थ–चेतनके शिथिल होनेसे मनुष्य एक श्वासको पी कुछ देर मुखमें रखकर फिर उसको मुख फाडकर बाहर निकाले उसको जंभाई कहते हैं ॥

छींकके लक्षण ।

उदानप्राणयोरूर्ध्वयोगान्मौलिकफस्रवात् ॥ २६ ॥
शब्दः संजायते तेन क्षुतं तत्कथ्यते बुधैः ॥

अर्थ–उदान (कंठस्थित) वायु और प्राण (हृदयस्थ) वायु इनका ऊपर मस्तकमें संयोग हो उससे (मस्तकसे) कफ गिरे, इन दोनोंके संयोग होनेसे जो शब्द होय उसको क्षुत (छींक) कहते हैं ॥

डकारके लक्षण ।

उदानकोपादाहारस्यास्थितत्वाच्च यद्भवेत् ॥
पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते ॥ २७ ॥

अर्थ–उदान (कंठस्थित) वायुके कुपित होनेसे तथा अन्नादिकोंके आहारको अपने स्थानमें आयके सुस्थिर रहनेसे जो वायुका ऊर्ध्वगमन होता है उसको उद्गार (डकार) कहते हैं ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां कलादिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

प्रथमाध्यायमें यह कहआये हैं कि-"रोगाणां गणना चेति" अतएव उसी रोगोंकी गणनाको दिखाते हैं ।

रोगाणां गणना पूर्वं मुनिभिर्या प्रकीर्तिता ॥
मयात्र प्रोच्यते सैव तद्भेदा बहवो मताः ॥ १ ॥

---

१ आलस्यके लक्षण–सुखस्पर्शिप्रसंगित्वदुःखद्वेषमलोलता । शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते । २ जृंभाके लक्षणान्तर–पीत्वैकमनिलश्वाससुद्वमेद्विवृताननः । यन्मुंचति च नेत्रांभः सजृंभ इति कीर्तितः । ३ नस्तइतिपाठांतरम् । अन्यत्राप्युक्तम् 'प्राणोदानौयदास्यातां मूर्ध्नि श्रोत्रपथिस्थितौ । नस्तः प्रवर्त्तते शब्दः क्षुतं तदभिनिर्दिशेत् । '

अर्थ-ज्वरादिरोगोंकी गणना (संख्या) प्रथम जो मुनिश्वरोंने कही है उसी संख्याको इस ग्रंथमें कहते हैं क्योंकि उन रोगोंके अनेक भेद मुनीश्वरोंने कहे हैं तात्पर्य यह है कि इस ग्रंथमें रोगोंकी गणनामात्र कहीं है अन्य नहीं संख्याभी इस ग्रंथमें प्रयोजनके वास्ते कहीं है क्योंकि निदानादि पंचक रोगज्ञानके उपाय हैं। तिन्होंमें संप्राप्ति जो कही है उसीका दूसरा नाम संख्या है। जैसे लिखाहै " संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः । सा भिद्यते यथात्रै वक्ष्यंतेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ "

ज्वररोगसंख्या ।

पंचविंशतिरुद्दिष्टा ज्वरास्तद्भेद उच्यते ॥ २ ॥ पृथग्दोषैस्तथा द्वंद्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः ॥ एकश्च संनिपातेन तद्भेदा बहवः स्मृताः ॥ ३ ॥ प्रायशः सन्निपातेन पंच स्युर्विषमज्वराः ॥ तथागंतुज्वरोऽप्येकस्त्रयोदशविधो मतः ॥ ४ ॥ अभिचारग्रहावेशशापैरागंतुकास्त्रिधा ॥ श्रमाद्दाहात्क्षताच्छेदाच्चतुर्धा घातकज्वरः ॥ ५ ॥ कामाद्भीतेः शुचो रोषाद्विषादौषधगंधतः ॥ अभिषंगज्वराः षट्स्युरेवं ज्वरविनिश्चयः ॥ ६ ॥

अर्थ-ज्वर पचीस प्रकार कहा है उसके भेद कहते हैं। १ वातज्वर[१] २ पित्त ३ कफज्वर[३] ४ वातपित्तज्वर[४] ५ वातकफज्वर[५] ६ पित्तकफज्वर[६] ७ वातादि तीनों दोषों

---

[१] शरीरमें कंप ज्वरका विषमवेग (कभी अधिक कभी थोडा), कंठ, होठ, मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छींक न आवें, देहका रूखापन, मस्तक और अंगोंमें पीडा, मुखका विरस होना, मलका न उतरना, शूल, अफरा और जंभाई ये वातज्वरके लक्षण हैं।

[२] ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार, अल्पनिद्रा, वमन, कण्ठ, होठ, मुख, नाक इनका पकना, पसीने आवें, अनर्थ बकना, मुखमें कडुआट, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, मल, मूत्र, नेत्र और त्वचाका पीला होना और भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरके हैं।

[३] गीले वस्त्रसे अंगोंको ढकनेके समान देहका होना, ज्वरका मंदवेग, आलस्य, मुख मीठा, मलमूत्र सफेद हो, देहका जकडजाना, अन्नमें अरुचि, देह भारी, शीत लगे, सूखी उलटियोंका आना, रोमांचोंका होना, अतिनिद्रा, नाडियोंका रुकना, थोडा दस्त हो, सरेकमा, मुखमें नोनकासा स्वाद, देह थोडा गरम, रद्दका होना, लारका गिरना, मुखपाक, तथा नाक और मुखसे कफका स्राव, खांसी, नेत्रोंका सफेद रंग तथा देहमें पीडा, शीतका लगना, गरमी प्यारी लगे और मंदाग्नि हो, ये कफज्वरके लक्षण हैं। [४] प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कंठ मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, जोडोंमें पीडा और जंभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं। [५] देहमें आर्द्रता, संधियोंमें पीडा, निद्रा आना, देह भारी, मस्तक भीरा, नाकसे पानीका गिरना, खाँसी पसीने, दाह और ज्वरका मध्यम वेग हो ये वातकफज्वरके लक्षण हैं।

[६] कफसे लिहसा मुख तथा मुखमें कडुआट, तंद्रा, मूर्च्छा, खाँसी, अरुचि, प्यास, बारंवार दाह और शीत लगे तथा पसीने, कफ पित्तका गिरना ये कफपित्तज्वरके लक्षण हैं।

मिलनेसे एक सन्निपातज्वर[1] तथा सन्निपातज्वरके भेद अनेक हैं तिनमें प्रायः करके पांच विषमज्वर हैं--जैसे संतत[2], सतत[3], अन्येद्य[4], तृतीयक[5], चतुर्थक[6] ।

एक प्रकारका आगंतुकज्वर। उसके तेरह भेद हैं उनको कहता हूं। अभिचार[7]ज्वर, ग्रहावेश[8]ज्वर और शाप[9]ज्वर ये तीन प्रकारके ज्वर आगंतुक ज्वर हैं। श्रमसे उत्पन्न हुआ ज्वर अग्न्यादि दाह करके उत्पन्न हुआ, घावसे उत्पन्न, शस्त्रादिके प्रहारसे उत्पन्न, ये चार ज्वर ' अभिघात ' संज्ञक जानने । तथा मनमें इच्छित स्त्रीके प्राप्त न होनेसे जो ज्वर होता है उसको कामज्वर कहते हैं। और भीति (डरने) से जो होय उसे भयज्वर कहते हैं। शोक (सोच) से होय सो शोकज्वर । क्रोधसे होय सो क्रोधज्वर, स्थावर कहिये वच्छनागादिक विष तथा जंगम कहिये सर्पादिकविष इनके सेवनसे जो ज्वर होवे उसको विषज्वर कहते हैं । तीव्र औषधिके गन्धसे जो ज्वर होता है उसको गन्धज्वर कहते हैं, वे छः प्रकारके ज्वर ' अभिषंग ' संज्ञक हैं। इस प्रकार तेरह प्रकारके आगन्तुक ज्वर और पहले बारह: ज्वर सब मिलानेसे पचीस प्रकारके ज्वर होते हैं॥

---

[1] एकाएक क्षणमें दाह लगे, क्षणमें शीत लगे, हड्डी जोड और मस्तकमें दर्द, आँसू भरे काले और लाल तथा फटे हुएसे नेत्र हों, कानोंमें शब्द और दर्द, कंठमें काँटे पडजावें, तंद्रा, बेहोशी, अनर्थभाषण, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम, जलीके माफिक काली और खरदरी तथा शिथिल जीभ होवे, रुधिर मिला थूके, शिरको इधर उधर पटके, अत्यंत प्यासका लगना, निद्रा जाती रहे, छातीमें पीडा, पसीने आवें, कभी २ बहुत देरमें मलमूत्र थोडे २ उतरे, कंठमें घर्घर्र कफका बोलना, देहमें काले लाल चकत्तोंका होना, बहुत धीरे बोलना, कान, नाक, मुख इत्यादि छिद्रोंका पकना, पेट भारी हो, वात, पित्त और कफका देरमें पाक, शीत लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, रात्रिमें जागना, अथवा बिलकुल निद्राका नाश होना, कभी गावे, कभी रोवे, कभी नाचे, कभी हँसे और देहकी चेष्टा जाती रहै ये सब लक्षण सन्निपातज्वरके हैं। बाकी और जो तेरह संनिपात हैं उनके लक्षण माधवनिदानमें देखो ।

[2] सातादिन वा दशदिन, वा बारहदिन जो देहमें एकसा ज्वर रहे उसको संतत ज्वर कहते हैं।

[3] दिनरात्रिमें दोबार आवे उसको सततज्वर कहते हैं ।

[4] दिनरात्रिमें एकसा ज्वर आवे उसको अन्येद्यु (इकतरा) कहते हैं ।

[5] जो एक दिन बीचमें देकर आवे उस ज्वरको तृतीयक (तिजारी) कहते हैं ।

[6] दो दिन बीचमें देकर जो तीसरे दिन आवे उस ज्वरको चातुर्थिक (चौथिया) जानना ।

[7] श्येनादिक (शत्रुमारणार्थ शिकराआदिके) होम करनेसे जो ज्वर उत्पन्न हो अथवा विमंत्र करके सरसोंका हवन करनेसे जो ज्वर उत्पन्न होवे उसको आभिचारिक ज्वर जानना ।

[8] ब्रह्मराक्षसादिके संबन्धसे जो ज्वर होवे उसको ग्रहावेश ज्वर कहते हैं ।

[9] ब्राह्मण, गुरु, सिद्ध और वृद्ध इनके शापसे जो ज्वर हो उसको शापज्वर जानना ।

अतिसार रोग ।

पृथक्त्रिदोषैः सर्वैश्च शोकादामाद्भयादपि ॥ ७ ॥
अतिसारः सप्तधा स्यात् ॥

अर्थ–अतिसाररोग सात प्रकारका है जैसे १ वात २ पित्त ३ कफ ४ सन्निपात ५ शोके ६ आमँ और ७ भयँसे उत्पन्न होनेवाला, इनके लक्षण नीचे लिखे अनुसार जानने ॥

संग्रहणी रोग ।

ग्रहणी पंचधा मता ॥ पृथग्दोषः सन्निपातात्तथाचामेन पंचमी ॥ ८ ॥

अर्थ–संग्रहणी रोग पांच प्रकारका है । जैसे १ वातसंग्रहणी, २ पित्तसंग्रहणी, ३ कफ-

---

१ कुछ ललाईको लिये, झाग मिला तथा रूखा, थोडा थोडा और वारंवार आम मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले, तथा मल उतरते समय शब्द होवे तो वातातिसार जानना । २ पित्तसे पीला, काला, धूँसरे रंगका मल उतरे तथा तृष्णा, मूर्च्छा, दाह, गुदा पकजाय ये लक्षण पित्तातिसारके हैं ।

३ कफातिसारवाले पुरुषका मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गंधयुक्त और शीतल उतरे, तथा रोमांच खडे होंय, ये लक्षण कफातिसारके जानने । ४ सूकरकी चरबी सदृश अथवा मांसके धोये हुए पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहेहैं उन लक्षणसंयुक्त हो उस त्रिदोषजनित अतिसारको कष्टसाध्य जानना ।

५ जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश होजावे वह उसी २ वस्तुका शोच करे इसीसे क्षुधा मन्द होनेसे (धातुक्षय होय) उस प्राणीके बाष्प, नेत्र, नासा, गले आदिसे जो शोकद्वारा जल गिरे सो और ऊष्मा कहिये शोकजन्य देहका तेज ये दोनों बाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्त हो अग्निको मंद कर रुधिरको कुपित करें, तब यह रुधिर चिरमिटीके रंगसदृश गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गन्धयुक्त अथवा गन्धरहित दस्त उतरे इसको शोकातिसार कहते हैं. इसी प्रकार भयातिसारभी जान लेना ।

६ अन्नके न पचनेसे दोष (वात पित्त कफ) स्वमार्गको छोडकर कोठेमें प्राप्त हो कोठेको दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको वारंवार गुदाके मार्गसे बाहर निकालें और इसका रंग अनेक प्रकारका होय, तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं ।

७ भयसे होनेवाले अतिसारमें जिस दोषका कोप हो उसी दोषके समान लक्षण होते हैं ।

८ वातग्रहणीवालेके अन्न दुःखसे पचे, अन्नका पाक खट्टा होय, अंगमें कर्कशता (यह वायुके त्वचाके चिकनेपनको सोखनेसे होता है), कंठ मुखका सूखना, भूख प्यास न लगै । मन्द दीखै, कानोंमें शब्द हो, पसवाडे, जाँघ, पेडू और कंधोंमें पीडा होवे, विषूचिका हो (अर्थात् दोनों द्वारसे कचे अन्नकी प्रवृत्ति होवे), हृदय दूखे, देह दुबला हो जाय, जीभका स्वाद जाता रहै, गुदामें कतरनेकीसी पीडा हो, मीठेसे आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा, मनमें ग्लानि, अन्न पचे उपरांत पेटका फूलना, भोजन करनेसे स्वस्थता, पेटमें गोला, हृद्रोग, तापतिल्लीकीसी शंका, वातके योगसे खाँसी, श्वाससे पीडित, बहुत देरमें बडे कष्टसे कभी पतला कभी गाढा थोडा शब्द और झाग मिला वारंवार दस्त आवे।

९ जिस पुरुषके कटु, अजीर्ण, मिरच आदि तीखी दाहकारक (वंश करीलकी कोपल आदि)

संग्रहणी ४ त्रिदोषजसंग्रहणी और पांचवीं आमजन्य संग्रहणी, इस प्रकार संग्रहणीके पांच भेद जानने ॥

प्रवाहिका रोग ।

प्रवाहिका चतुर्धा स्यात्पृथग्दोषैस्तथास्रतः ॥

अर्थ–प्रवाहिका रोग चार प्रकारका है । जैसे १ वातकी प्रवाहिका २ पित्तकी प्रवाहिका ३ कफकी प्रवाहिका और ४ रुधिरकी प्रवाहिका । इस प्रकार प्रवाहिकाके चार भेद जानने ॥

अजीर्ण रोग ।

अजीर्णं त्रिविधं प्रोक्तं विष्टब्धं वायुना मतम् ॥ ९ ॥ पित्ताद्विदग्धं विज्ञेयं कफेनामं तदुच्यते ॥ विषाजीर्णं रसादेकं-

---

खट्टी खारी (ओंगा आदिका खार) नोन, गरम पदार्थसेवन इन कारणोंसे कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको बुझायदे और कचाई नीले पीले रंगके पतले मलको निकाले, तथा धूमयुक्त डकार आवे, हिये और कंठमें दाह होवे, अरुचि और प्यासकरके पीडित होवे यह पित्तकी संग्रहणीके लक्षण हैं ।

१ भारी, अत्यंत चिकने, शीतल आदि पदार्थके खानेसे, अतिभोजनसे तथा भोजन करके सोनेसे कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांत करै तब इसके खाया हुआ अन्न कष्टसे पचे, हृदयमें पीडा होय, वमन, अरुचि, मुख कफसे लिसासा, तथा मुखका मीठा रहना, खाँसी, कफ थूके, सरेकमा होय, हृदय पानीसे भरे सदृश होय, पेट भारी और जड हो, दुष्ट और मीठी डकार आवे, अग्नि शांत हो, स्त्रीरमणमें अरुचि, पतला आम कफ मिला और भारी ऐसा मल निकले, बल विना शरीर पुष्ट दिखे आलस्य बहुत आवै यह कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं। २ वातादि तीनों दोषोंके जो लक्षण कहेहैं वे सब जिसमें मिलतेहों उसको त्रिदोषकी संग्रहणी जानिये । ३ आमवातसे जो आमसंग्रहणी उत्पन्न होती है उसके ये लक्षण हैं कि कभी आठ दिनमें, कभी चौदह दिनमें अथवा नित्य आम गिरे उसको आमसंग्रहणी कहतेहैं ।

४ वातकी प्रवाहिकामें शूल होताहै, वातकी प्रवाहिका रूखे पदार्थसे होती है ।

५ पित्तकी प्रवाहिका तीक्ष्णपदार्थसे होतीहै, उसमें दाह होताहै ।

६ कफकी प्रवाहिका चिकने पदार्थसे होतीहै, उसमें कफ बहुत होता है ।

७ रुधिरकी प्रवाहिका रक्तयुक्त होतीहै, वह खट्टे पदार्थसे होती है ।

अर्थ—अजीर्ण रोग तीन प्रकारका है तहां वायुसे विष्टब्धाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण, कफ आमाजीर्ण होता है, अन्नके रससे जो अजीर्ण होवे उसको विषाजीर्ण कहते हैं ॥

अलसकविषूच्यादि रोग ।

दोषैः स्यादलसस्त्रिधा ॥ १० ॥ विषूची त्रिविधा प्रोक्ता
दोषैः सा स्यात्पृथक्पृथक् ॥ दण्डकालसकश्चैक एकैव
स्याद्विलम्बिका ॥ ११ ॥

अर्थ—वात पित्त और कफ इन तीन दोषोंसे पृथक् २ लक्षण करके 'अलस' रोग तीन प्रकारका है यह अजीर्णसे उत्पन्न होता है। उसी प्रकार विषूचिका (हैजा) वातादि भेदोंसे पृथक् २ लक्षणों करके तीन प्रकारका है उसको 'मोडी निवाही' कहते हैं । 'दंडकालसक' और विलंबिका ये दो रोग उसी मोडीके भेद हैं ॥

मूलव्याधि (बवासीर)।

अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्रतः ॥ संनिपाताच्च
संसर्गात्तेषां भेदो द्विधा स्मृतः ॥ १२ ॥ सहजोत्तरजन्म-
भ्यां तथा शुष्कार्द्रभेदतः ॥

---

१ शूल, अफरा, अनेक वातकी पीडा मल और अधोवायुका रुकजाना, देहका जकडजाना मार और देहमें पीडा होना ये विष्टब्ध अजीर्णके लक्षण हैं ।

२ विदग्ध अजीर्णमें भ्रम प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होतेहैं और पित्तके अनेक रोग प्रकट होतें तथा धुएँके साथ खट्टी डकार आवे, पसीना आवे और दाह होय ।

३ कूख और पेटमें अफरा हो, मोह होय, पीडासे पुकारे, पवन चलनेसे रुककर कूखमें और कंठादिस्थानोंमें फिरे मल मूत्र और गुदाकी पवन रुके, प्यास बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण जिसमें होंय उसको अलसक रोग कहतेहैं । ४ मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, जांघोंमें पीडा, जंभाई, दाह, देहका विवर्ण, कम्प, हृदयमें पीडा और मस्तकमें पीडा ये लक्षण हों उसको विषूचिका कहतेहैं इसीको महामारी अथवा हैजा कहतेहैं ।

५ दंडके समान मनुष्योंको नवाय देवै उसको दंडकालसक कहतेहैं । वह दंडकालसक विलंबिकाके बहुत कुपित होनेसे होताहै. वह वातादि तीन दोषोंकरके व्याप्त रहताहै. उनके होनेसे प्राणका नाश शीघ्रही होताहै। ६ जिस मनुष्यके भोजन कियाहुआ अन्न कफवातकरके दूषित होय ऊपर नीचे नहीं आवे अर्थात् वमन विरेचन न होय, उसको वैद्यविद्याके जाननेवाले जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसा विलंबिकारोग कहते हैं

अर्थ-अर्श (बवासीर) रोग ६ प्रकारका है जैसे १ वातोर्श २ पित्तोर्श ३ कफार्श ४ संनिपातार्श ५ रक्तोर्श ६ संसर्गार्श । इस प्रकार छः प्रकारकी बवासीर है, इसको

---

१ वाताधिक्यसे गुदाके अंकुर सूखे (स्रावरहित) चिमचिम पीडायुक्त, मुरझाये हुए, काले, लाल, टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न हों, बांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, बेर, खजूर, कपासके फलसदृश हों, कोई कदंबके फलसमान हों, कोई सरसोंके सदृश हों, शिर, पसवाडे, कन्धा, कमर, जाँघ, पेडू इनमें अधिक पीडा हो, छींक, डकार, दस्तका न होना, हृदय पकडासा मालूम हो, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निका विषम होना अर्थात् कभी अन्न पचे कभी नहीं पचे, कानोंमें शब्द होय, भ्रम होय, उस बवासीरकरके पीडित मनुष्यके पत्थरके समान थोडा शब्दयुत और बातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल, झाग, चिकना इन लक्षणसंयुक्त होके २ दस्त होय, उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, मुख ये काले हों, गोला, तापतिल्ली (उदररोग), अष्ठीला (वातकी गांठ) रोगोंके ये उपद्रव जिस बवासीरमें होते हैं उसको वातार्श कहते हैं।

२ मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और सुफेदी लिये होवे, उन मस्सोंमेंसे महीन धारसे रुधिर चुचाय और रुधिरकी वास आवे, महीन और कोमल शीतल हों और उनका आकार तोतेकी जीभ कलेजा और जोंकके मुखके समान हो और देहमें दाह हो, गुदाका पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये हों और हाथके स्पर्श करनेसे गरम मालूम होवे और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय, जवके समान बीचमें मोटे हों और जिसकी त्वचा, नख, नेत्रादिक ये पीले हरतालके समान और हलदीके समान हों ये लक्षण पित्ताधिक बवासीरके हैं।

३ कफकी बवासीरके लक्षण ये हैं. जैसे कि गुदाके मस्से, महामूल (दूर धातुके प्रति जानने-वाले), कठिन, मंद पीडाके करनेवाले, सफेद, लंबे, मोटे, चिकने, करडे, गोल, भारी, स्थिर, गाढे, कफसे लिपटे, मणिके समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यारी लगे, करील कटहर इनके कांटेके समान होय, गायके थनके सदृश होय, पेडूमें अफरा करनेवाले, गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले, श्वास, खांसी, लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, अग्निका मंद होना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोगके करनेवाले, वसा (चर्बी) और कफ मिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्न करनेवाले और मस्सोंमेंसे रुधिर न निकले, गाढा मल होनेसेभी मस्से न फूटें और शरीरका रंग पीला और चिकना हो ये कफकी बवासीरके लक्षण हैं ।

४ जो पूर्व वातादिक तीनों दोषोंकी बवासीरोंके लक्षण कहे सो सब लक्षण मिलते हों उसको संनिपातकी बवासीर जानना और येही लक्षण सहज बवासीरके हैं ।

५ गुदाके मस्सोंका रंग चिरमिटीके रंगके समान होवे, अथवा वटके अंकुरसे हों और पित्तकी बवासीरके लक्षण जिसमें मिलतेहों, मूँगाके सदृश हों और दस्त कठिन उतरनेसे मस्से दबें तब मस्सोंमेंसे दुष्ट और गरमागरम रुधिर पडे और रुधिरके बहुत पडनेसे वर्षाऋतुके मेंढकके समान पीला रंग होजाय, रुधिरके निकलनेसे जो प्रगट त्वचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना और खट्टी वस्तु तथा शीतकी इच्छा इत्यादि दुःख तिनसे पीडित होय, हीनवर्ण, बल, उत्साह, पराक्रमका नाश होय, संपूर्ण इंद्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, अपानवायु सरे नहीं, यह लक्षण ' खूनी ' बवासीरके जानने चाहिये ।

६ कुलपरंपराकरके देहके साथ उत्पन्न होय उसको संसर्गार्श जानना ।

कोई कोई देशवाले मूलव्याधिभी कहते हैं । इस छः प्रकारकी अर्शके भेद दो हैं सहज कहिये देहके साथ उत्पन्न हो वह, दूसरी उत्तर प्रगटे अर्थात् जन्म होनेके उपरांत आहार विहारादिकरके वातादि कुपित हो उत्पन्न करे ये एवं आर्द्र और शुष्क भेदोंसे दो प्रकारकी है । आर्द्र कहिये गीली और शुष्क कहिये सूखी । लौकिकमें इनको और वादी ऐसा कहा है ॥

चर्मकील रोग ।

त्रिधैव चर्मकीलानि वातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३ ॥

अर्थ–चर्मकील रोगभी तीन प्रकारका है, जैसे १ वातजचर्मकील २ पित्तजचर्मकील ३ कफजचर्मकील इस प्रकार चर्मकीलके तीन भेद कहे हैं ॥

कृमिरोग ।

एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधोच्यते ॥ बाह्यास्तथाभ्यन्तरे च तेषु यूका बहिश्चराः ॥ १४ ॥ लिख्याश्चान्येन्तरचराः कफात्ते हृदयादकाः ॥ अन्त्रादा उदरावेष्टाश्चुरवश्च महागुहाः ॥ १५॥ सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताश्च मातराः ॥ सौरसा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा ह्युदुम्बराः ॥ १६ ॥ केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता मकेरुकाः ॥ लेलिहाश्च मलूनाश्च सौसुरादाः कधेरुकाः ॥ १७ ॥ तथान्यः कफरक्ताभ्यां संजातः स्नायुकः स्मृतः ॥

अर्थ–इक्कीस भेदकरके कृमिरोग बाहर और भीतरके भेदसे दो प्रकारका है यूकाँ (जूआ) लीखें चमजूआँ यह तीन प्रकारकी कृमि देहके बाहर रहतीह

---

१ वातसे सुईके चुभाने जैसी पीडा होय ।

२ पित्तसे कठोरता होय ।

३ कफसे काला और कुछ लाल तथा चिकनी गांठके समान देहके वर्णके समान वर्ण

४ देहमें केश और मलीनवस्त्रके आश्रयसे जो कृमि रहती है उसको यूका (जूँ) कहते हैं। यूका तिलके सदृश होकर काली और सफेद होती हैं. इनके बहुत पांव होते हैं. वे जूँ होते हैं।

५ बहुतही बारीक होती हैं वे लीख कहाती हैं ।

६ चमजूंआं एक जूंआंकाही भेद है. इसकेभी बहुत पैर होते हैं ।

अठारह प्रकारकी कृमि देहके भीतर रहती हैं । उनको लौकिकमें जन्तु कहते हैं । उनके भेद मैं कहता हूँ–१ हृदयादक २ अंत्राद ३ उदरावेष्ट ४ चुरव (चिनूना जो बालकोंके होते हैं) ५ महागुह ६ सुगन्ध ७ दर्भकुसुम ये सात प्रकारके कृमि कफ[2]से उत्पन्न होते हैं । १ मातर २ सौरस ३ लोमाविध्वंस ४ रोमद्वीप ५ उदुम्बर ६ केशाद ये छः प्रकारकी कृमि [3]रुधिरसे उत्पन्न होती हैं । १ मकेरुक २ लेलिह ३ मद्धन ४ सौसुराद ५ ककेरुक ये पांच प्रकारकी [4]कृमि मलसे उत्पन्न होतीहै । इस प्रकार अठारह प्रकारकी भीतरकी कृमि और तीन प्रकारके पूर्वोक्त बाहरके कृमि ये सब मिलकर २१ प्रकारके कृमि होते हैं । उसी प्रकार कफ रक्तसे जो उत्पन्न होता है उसको स्नायुक (नहरुआ अथवा नारू) कहते हैं ॥

पांडुरोग ।

पाण्डुरोगाश्च पंच स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥ त्रिदोषैर्मृत्तिकाभिश्च

अर्थ–पांडुरोग पांच प्रकारका है जैसे १ [6]वातपांडु २ पित्त[7]पांडु ३ [8]कफपांडु ४ सन्निपात-

---

१ देहमें अठारह प्रकारके कृमि हैं, उनका कोप होनेसे ये सामान्य लक्षण होतेहैं. ज्वर, शरीरमें निस्तेजपन, शूल, हृदयमें पीडा, वमन, भ्रम, अन्नका द्वेष और अतिसार इस प्रकार सामान्य लक्षण जानने । २ कफसे आमाशयमें प्रगट हुई कृमि जब बढजाती हैं तब चारों तरफ डोलती हैं, कोई चामके सदृश, कोई गिंडोहेके आकार, कोई धान्यके अंकुरके समान होती हैं. कितनीही छोटी बडी चौडी होती और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका ताँबेके समान होता है । उन्होंके सात नाम हैं. इन कृमियोंसे वमनकीसी इच्छा होय, मुखसे पानी गिरे, अन्नका पाक न हो, अरुचि, मूर्च्छा, बमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश हो, सूजन और पीनस इतने विकार होते हैं । ३ रुधिरकी वहनेवाली नाडीमें रुधिरसे प्रगट कृमि बारीक, पादरहित, गोल, ताँबेके रंगकी होती हैं. कोई बहुत बारीक होती हैं वे देखनेसेभी नहीं दीखतीं ये कुष्ठको पैदा करती हैं । ४ पक्वाशयमें विष्ठासे प्रगट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकसती हैं जब ये बढ जाती हैं तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी वास आने लगती है । ये कृमि बडी छोटी, गोल, मोटी, रंगमें काली, पीली, सफेद, नीली होती हैं । जब ये मार्गको छोड अन्य मार्गमें जाती हैं तब इतने रोग प्रकट करती हैं दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमें कृशता तथा कठोरता, पांडुरोग, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजलीका होना ।

५ वातादि दोष कुपित होकर रुधिरको दूषित करके शरीरकी त्वचाको पांडुरवर्ण (पीली) करतेहैं उसको पांडुरोग (पीलिया) कहते हैं। ६ वातके पांडुरोगमें त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमें रूखापन और कालापन होता है तथा कंप सुई छेदनेकासा चभका, अफरा, भ्रम, मेद और शूलादिक होते हैं । ७ पित्तपांडुरोगकि ये लक्षण होते हैं मल, मूत्र और नेत्र पीले हों, दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीडित हो, मल पतला हो और उस रोगकि देहकी कांति अत्यंत पीली होती है। ८ मुखसे कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलस्य, शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख इनका सफेद होना इन लक्षणोंसे कफका पांडुरोग जानना । ९ ज्वर, अरुचि, ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त

पांडु ९ मृत्तिका भक्षणसे जो होता है वह मृत्तिका भक्षणका पांडु इस प्रकार पांडुरोगके प्र
प्रकार हैं ॥

कामला कुंभकामला व हलीमक रोग ।

तथैका कामला स्मृता ॥ स्यात्कुंभकामला चैका तथैव च
हलीमकम् ॥ १८ ॥

अर्थ—कामला रोग एक प्रकारका है यह रोग पांडुरोगकी अपेक्षा करनेसे होता है। तथा
यह स्वतंत्र है और उस कामलाके दो भेद हैं एक कुंभकामला और दूसरा हलीमक ॥

रक्तपित्त रोग ।

रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंगतम् ॥
अधोगं मारुताज्ज्ञेयं तद्द्वयेन द्विमार्गम् ॥ १९ ॥

अर्थ--रक्तपित्त तीन प्रकारका है एक ऊर्ध्वगामी दूसरा अधोगामी और तीसरा

त्रिदोषजन्य पांडुरोग होता है, इस पांडुरोगसे रोगीके इन्द्रियोंकी अपना अपना विषय ग्रहण क
नेकी शक्ति जाती रहती है ।

१ मिट्टी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पडजाय उसके वातादिक दोष कुपित होते हैं।
माटीसे वात, खारी माटीसे पित्त और मीठी माटीसे कफ कुपित होताहै । फिर वही मिट्टी पे
जाकर रसादिक धातुओंको रूखा करतीहै जब रौक्ष्यगुण प्रगट होजाय तब जो अन्न खाय सो रू
होजाताहै फिर वही मिट्टी पेटमें विना पके रसको रस बहनेवाली नसोंमें प्राप्त कर उनके मार्ग
रोकदेती है । रसके वहनेवाली नसोंका मार्ग जब रुकजाताहै तब इंद्रियोंका बल अर्थात् अ
विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट होजाती है, शरीरकी कांति तेज और ओज कहिये सब धातुओं
सार (हृदयमें रहता है सो) क्षीण होकर पांडुरोग प्रगट होताहै, उसमें बल, वर्ण और अग्नि
नाश होताहै, नेत्र, कपोल, भ्रुकुटी, पैर, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो और कोठेमें कृमि प
जाँय, तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे । सब पांडुरोगमें जब पेटमें कृमि पडजाते हैं तब
(पूर्वोक्त) लक्षण होते हैं ।

२ वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायास श्रम इनसे पीडित तथा श्वास खां
इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुंभकामलावाला रोगी मरजाता है ।

३ पांडुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला होजाय और बल व उत्साह इनका नाश, तन्द्रा, मंदा
महीनज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश, अंगोंका टूटना, दाह, प्यास, अन्नमें अप्रीति और
ये उपद्रव वातपित्तसे प्रगटे हलीमक रोगके हैं ।

४ धूपमें बहुत डोलनेसे, अति परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत मार्ग चलनेसे, अतिमैथुन
नेसे, मिर्च आदि तीखी वस्तु खानेसे, अग्निके तापनेसे, जवाखार आदि खारे पदार्थ नोनको आदि
लवणके पदार्थ, खट्टी, कड़वी ऐसी वस्तुके खानेसे कोपको प्राप्त भया जो पित्त सो अपने ती
द्रव पूति इत्यादि गुणोंसे रुधिरको बिगाडताहै तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके मार्ग

जो ऊपर और नीचे दोनों मार्गसे जावे । इनमें जो ऊर्ध्वगामी अर्थात् जो मुखादि मार्गसे गिरता है वह कफसंबन्ध करके होता है और अधोमार्ग कहिये गुदादि द्वारा गिरे वह वातके संबन्धसे होता है और दोनों मार्ग अर्थात् गुदा और मुखसे गिरनेवाला रक्तपित्त कफ और वादीके संबन्धसे गिरता है । रक्त पित्तके ये तीन भेद जानने ॥

कासरोग ।

कासाः पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रयस्तु त्रिभिर्मलैः ॥
उरःक्षताच्चतुर्थः स्यात्क्षयाद्धातोश्च पंचमः ॥ २० ॥

अर्थ—कास (खाँसी) का रोग पांच प्रकारका है १ वातकास २ पित्तकास ३ कफकास ४ छातीमें कुठार आदिके प्रहारके समान पीडा होकर होता है वह उरःक्षतकास

दोनों मार्ग होकर प्रवृत्त हो (निकले) ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनके द्वारा निकले और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनि इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यन्त कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमांचोंसे निकलता है, उसको रक्तपित्त कहते हैं ।

१ नाक, मुखमें धूर वा धूआँ जानेसे, दंडकसरत, रूक्षान्न इनके नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मल मूत्रके रोकनेसे, उसी प्रकार छिक्का अर्थात् आती हुई छींकको रोकनेसे, प्राणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर और दुष्ट उदान वायुसे मिलकर कफ पित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले उसका शब्द फूटे कांस्यपात्रके समान होय उसको विद्वान्लोग कास (खाँसी) कहते हैं ।

२ हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुँह उतरजाय, बल, स्वर, पराक्रम क्षीण पडजाय, वारंवार खाँसीका उठना, स्वरभेद और सूखी खाँसी उठे यह वातकी खाँसीके लक्षण हैं ।

३ पित्तकी खाँसीसे हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना इनसे पीडित हो, मुख कडुआ रहै, प्यास लगे, पीले रंगकी और कडवी पित्तके प्रभावसे वमन होय, रोगीका पीला वर्ण होजाय और सब देहमें दाह होय ।

४ कफकी खाँसीसे मुख कफसे लिपटा रहै, मथवाय रहै और सब देह कफसे परिपूर्ण रहैं, अन्नमें अरुचि, शरीर भारी रहै, कंठमें खुजली और रोगी बारंबार खाँसे । कफकी गाँठ थूकनेसे सुख माल्म होवे ।

५ बहुत स्त्रीसंग करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्ध (कुश्ती) करनेसे, हाथी, घोडा दौडानेसे, रोकनेसे, रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायु कुपित होकर खाँसीको प्रगट करता है सो पुरुष प्रथम सूखा खाँसे, पीछे रुधिर मिला थूके, कंठ अत्यंत दूखे, हृदय फूटे सदृश माल्म होय और तीखी सुईकेसे चमके चले उसको हृदयका स्पर्श नहीं सुहावे, दोनों पसवाडोंमें शूल तथा दाह होय, गांठ गांठमें पीडा होय, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय, खाँसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घूं घूं शब्द करे, ये लक्षण उरःक्षतकासके हैं ।

और धातु[1]क्षयकास ऐसे कास (खांसी) का रोग पांच प्रकारका है ॥

क्षयरोग ।

क्षयाः पंचैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ॥
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमः स्यादुरःक्षतात् ॥ २१॥

अर्थ-क्षय[2]रोग पांच प्रकारका है जैसे १ वात[3]क्षय २ पित्त[4]क्षय ३ कफ[5]क्षय ४ सन्नि क्षय[6] पांचवां उरःक्षत[7]के होनेसे इस प्राणीके होता है. इस भांति क्षयरो

---

१ कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे, अतिमैथुनसे, मल मूत्र आदिका वेग धारनेसे, अति करनेसे , अतिशोक करनेसे अग्नि मंद होय, अर्थात् आहार थककर वायु कुपित हो अग्निको करे, तब तीनों दोष कोपको प्राप्त हो क्षयजन्य देहकी नाशक खाँसीको प्रगट करें तब वह देहको क्षीण करे, शूल, ज्वर, दाह और मोह ये होंय तब यह प्राणका नाश करे, सखी रुधिर मांस और शरीरको सुखावे, रुधिर और राध थूके ये सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा नेमें अतिकाठिन ऐसी इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते हैं ।

२ क्षयरोगका पूर्वरूप-श्वास, हाथ पैरका गलना, कफका थूकना, तालुएका सूखना, वमन, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होतेहैं । उस मनुष्यके सफेद होते हैं और मांस खानेपर तथा स्त्रीसंग करनेकी इच्छा होतीहै । वह सपनेमें कौआ, सेह, नीलकंठ (मोर), गीध, बंदर, करकैटा इनपर अपनेको बैठा देखे, और जलहीन नदीको तथा पवन, धूर और धुआँ इनसे पीडित वृक्ष देखे, ये सब स्वप्न क्षयरोग होनेके दीखतेहैं, और पसवाडेमें पीडा, हाथ पैरमें जलन और सर्व अगोंमें ज्वर ये तीन लक्षण क्षयके होते हैं । ३ बादीके प्रभावसे स्वरभेद, कंधा और पसवाडे इनसे संकोच और पीडा होतीहै ४ पित्तसे ज्वर, दाह, अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना । ५ कफके कोपसे मस्तकका भारी अन्नसे द्वेष, खांसी, स्वरभेद ये लक्षण होतेहैं । ६ वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षणों करके युक्त होता है उसको संनिपातक्षय कहते हैं । ७ बहुत तीरंदाजी करनेसे, बहुत भारी वस्तु उठाने बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करनेसे, ऊँचे स्थानसे गिरनेसे, बैल, घोडा, हाथी, ऊँट इत्यादि दौ ते हुओंको थामनेसे, भारी शत्रुको मारनेवाला, शिला, लकडे, पत्थर, निर्घात (अस्त्रविशेष) फेंकनेसे, जोरसे वेदादिक शास्त्र पढनेसे, अथवा दूर दिशावर शीघ्र चलकर जानेसे, गंगा नादि महानदीको तरनेवाला, अथवा घोडेके साथ दौडनेवाला, अकस्मात् कला खानेवाला, जल्दी बहुत नाँचनेसे, इसी प्रकार दूसरे मल्लयुद्धादि क्रूरकर्म करनेसे उर (छाती) फटजाती ऐसी पुरुषकी छाती दूखनेसे बलवान् उरःक्षतरूप व्याधि उत्पन्न होती है और रूखा थोडा कुभ तथा छातीमें चोट लगनेसे, अत्यन्त स्त्रीरमण करने और रूखा थोडा और अनुमानका भोजन क वाले पुरुषका हृदय फटेके सदृश मालूम हो अथवा हृदयके दो टूक कर डाले ऐसे मालूम और हृदय तथा पसवाडोंमें अत्यन्त पीडा होय, अंग सब सूखने और थरथर काँपने लगे, मांस, वर्ण, रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घटने लगे ज्वर रहैं, व्यथा होय, मनमें संताप दीन होजाय, अग्नि मन्द होनेसे दस्त होने लगे, और वारंवार खाँसते २ दुष्ट काला, दुर्गंधयुक्त, पीला, गाँठिके समान-बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इस प्रकार क्षत अत्यंत क्षीण होय सो केवल क्षतसेही क्षीण होजाय ऐसा नहीं किंतु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र ओज (सब धातुओंका तेज) का क्षय होनेसे मनुष्य क्षीण होताहै ये उरःक्षतरोगके लक्षण हैं।

पांच प्रकारका जानना । इसको क्षयी राजयक्ष्मा और राजरोगभी कहते हैं ॥

शोषरोग ।

शोषाः स्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसंगाच्छुचो व्रणात् ॥
अध्वश्रमाच्च व्यायामाद्वार्धक्यादपि जायते ॥ २२ ॥

अर्थ—क्षयरोगका भेद शोष[1]रोग है । उसके कारण अत्यंत स्त्रीप्रसंग करना, अति शोक करना, घाव, अत्यन्त रस्ता चलना, बहुत दंड कसरत करना और वृद्धावस्था आना है । इस छः कारणोंसे शोषरोग (जिसमें देह सूखजाता है वह रोग) होताहै ॥

श्वासरोग ।

श्वासाश्च पंच विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा ॥
ऊर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पंचमः ॥ २३ ॥

अर्थ—श्वासरोग पांच प्रकारका है १ क्षुद्रश्वास[2] २ तमकश्वास[3] ३ ऊर्ध्वश्वास[4]

---

१ रसादि सात धातुके शोषण (सूखने) से शरीर क्षीण होताहै इस रोगको शोष कहते हैं ।

२ रूखा पदार्थ खाने और श्रम करनेसे प्रगट हुआ जो श्वास सो पवनको ऊपर लेजाता है। यह क्षुद्रश्वास अत्यंत दुःखदायक नहीं और अंगोंको कुछ विकार नहीं करता जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक हैं ऐसे यह नहीं हैं यह भोजनपानादिकोंकी उचित गतिको नहीं करता, न इंद्रियोंको पीडा करता और न कोई रोग प्रगट करता यह क्षुद्रश्वास साध्य कहागयाहै ।

३ जिस कालमें शरीरकी पवन उलटी गतिसे नाडियाक छिद्रमें प्राप्त होकर मस्तक तथा कंठका आश्रय कर कफसंयुक्त होताहै तब कफसे रुककर अति वेगपूर्वक कंठमें घुरघुर शब्द करता है और मस्तकमें पीनस रोग करता है वह अत्यंत तीव्रवेगसे हृदयको पीडित करनेवाले श्वासको उत्पन्न करता है उस श्वासके वेगसे रोगी मूर्च्छित होताहै त्रासको प्राप्त होताहै चेष्टारहित होजाता है और खाँसीके उठनेसे बडे मोहको वारंवार प्राप्त होताहै, जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटनेके बाद दो घडीपर्यंत सुख पावे, कंठमें खुजली चले, बडे कष्टसे बोले, श्वासकी पीडासे नींद न आवे, सोवे तो वायुसे पसवाडोंमें पीडा होय, बैठेही चैन पडे और गरमीके पदार्थसे सुख होय, नेत्रोंमें सूजन होय, ललाटमें पसीना आवे अत्यंत पीडा होय, मुख सूखे, बारंबार श्वास और बारंवार हाथीपर बैठनेके सदृश सर्व देह चलायमान होवे यह श्वास मेघके वर्षनेसे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे बढता है । यह तमकश्वास याप्य है यदि नया प्रगट भया होय तो साध्य होय है ।

४ बहुत देरपर्यंत ऊंचा श्वास लेय, नीचे आवे नहीं कफसे मुख भरजावे और सब नाडियोंके मार्ग कफसे बंद होजाँय, कुपितवायुसे पीडित होय, ऊपरको नेत्र कर चंचलदृष्टिसे चारों ओर देखे, मूर्च्छा और पीडासे अत्यंत पीडित होय, मुख सूखे तथा बेहोश होय ये ऊर्ध्वश्वासके लक्षण हैं ।

४ महाश्वास[१] और ५ छिन्नश्वास[२] इस प्रकार श्वास रोग पांच प्रकारके हैं ।

हिक्कारोग ।

कथिताः पञ्च हिक्कास्तु तासु क्षुद्रान्नजा तथा ॥
गम्भीरा यमला चैव महती पंचमीतिच ॥ २४ ॥

अर्थ–हिक्का हिचकी रोग पांच प्रकारका है । उसमें १ क्षुद्रा[३]हिचकी २ अन्नजा[४] हिचकी ३ गंभीरा[५] हिचकी ४ यमला[६] हिचकी और पाँचवीं महती[७] हिचकी इस प्रकार हिचकी पांच प्र रकी है ।

जठराग्निके विकार ।

चत्वारोऽग्निविकाराः स्युर्विषमो वातसम्भवः ॥
तीक्ष्णः पितात्कफान्मन्दो भस्मको वातपित्तकः ॥ २५ ॥

अर्थ–जठर अर्थात् उदरकी अग्निके चार प्रकारके विकार हैं । जैसे वा

---

१ जिसका वायु ऊपरको जायके प्राप्त होय ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दयुक्त श्वा ऊँचे स्वर निकाले अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे इस प्रकार रात्रिदिन श्वाससे पीडित होक का ज्ञान विज्ञान जाता रहै, नेत्र चंचल होय और जिसका श्वास लेनेमें नेत्र और मुख फट मल मूत्र बंद होजाय, नहीं बोलाजाय अथवा बोले तो मंद बोले, मन खिन्न होय और जिसका दूरसे सुनाईदेय यह महाश्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल मरणको प्राप्त होय ।

२ जो पुरुष टहर ठहरकर जितनी शक्ति उतनी शक्तिसे श्वासको त्याग करे, अथवा क्लेशयो हो श्वासको नहीं छोडे और मर्म कहिये हृदय वस्ति (मूत्रस्थान) और नाडियोंको मानो कोई करे ऐसी पीडा होय, पेटका फूलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित होय वस्ति (मूत्रस्थान) जलन होय, नेत्र चलायमान होंय, अथवा नेत्र आँसुओंसे भरे होंय, श्वास लेते लेते थक ज तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल होजाय, उद्विग्न चित्त होजाय, मुख सूखे, देहका वर्ण प जाय, बकवाद करे, संधिके सब बंध शिथिल होजाँय, इस छिन्नश्वासकरके मनुष्य शीघ्र प्रा त्याग करता है ।

३ जो हिचकी बहुत देरमें कंठ हृदयकी संधिसे मन्दमन्द चले उसको क्षुद्रानामहिचकी कहते

४ अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात् कुपित हो ऊर्ध्वगामी होकर मनु अन्नजा हिचकी प्रगट करता है ।

५ हिचकी नाभिके पाससे उठ गंभीर शब्द करे और जिसमें प्यास, ज्वरादि अनेक उपद्र उसको गंभीराहिचकी कहते हैं ।

६ ठहर ठहरके दो दो हिचकी चलें, शिर कँधाको कँपावें उसको यमला हिचकी जाननी।

७ जो हिचकी मर्मस्थानमें पीडा करतीहुई और सर्व गात्रको कँपातीहुई सर्वकाल प्रवृत्त उसको महती हिक्का कहते हैं ।

विषमाग्नि होती है, पित्तसे तीक्ष्णाग्नि होती है, कफसे मंदाग्नि होतीहै और वातपित्तसे भस्माग्नि होती है ॥

अरोचक रोग ।

पञ्चैवारोचका ज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ संनिपातान्मनस्तापाच्च-

अर्थ—अरोचक रोग पांच प्रकारका है १ वातारोचक २ पित्तारोचक ३ कफारोचक ४ संनिपातारोचक और ५ मनको दुःख होनेसे जो संताप होताहै उससे (इस प्रकार उत्पन्न होनेवाला) पांच प्रकारका अरोचक (अरुचि) रोग जानना ॥

छर्दिरोग ।

छर्दयः सप्तधा मताः ॥ २६ ॥ त्रिभिर्दोषैः पृथक्तिस्रः कृमिभिः संनिपाततः ॥ घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते ॥ २७ ॥

अर्थ—छर्दि कहिये वमनरोग सात प्रकारका है । जैसे १ वातकी छर्दि,

---

१ कभी कभी अन्नका पचन होता है और कभी कभी नहीं होता, उसको विषमाग्नि जानना, यह वातकी प्रकृतिसे होती है ।

२ भोजनके ऊपर भोजन करनेसे भी सुखकरके अन्नपाक होजाता है सो तीक्ष्णाग्नि जानना यह पित्तकी प्रकृतिसे होता है ।

३ थोडा भोजन करनेसेभी अन्नका पाक नहीं होता उसको मंदाग्नि जानना, यह कफकी प्रकृतिसे होता है ।

४ भूख अत्यंत प्रबल लगती है इस कारण वारंवार भोजन करता है तोभी वह अन्न पचन हो जाता है परंतु उस अन्नके रससे शरीरमें पुष्टता नहीं आती और शरीर कृश होता है उसको भस्मकाग्नि जानना । अन्य ग्रंथोंमें भस्मकाग्निका तीक्ष्णाग्निमेंही अन्तर्भाव् माना है ।

५ वातकी अरुचिसे दाँत खट्टे होंय और मुख कषैला होता है ।

६ पित्तकी अरुचिसे कडुआ, खट्टे, गरम, विरस, दुर्गन्धयुक्त मुख होजाता है ।

७ कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छिल, भारी, शीतल होता है और मुख बँधासरीखा अर्थात् खाय नहीं और आँत कफसे लिप्त होजाय ।

८ संनिपातकी अरुचिसे अन्नमें अरुचि तथा मुखमें अनेक रस मालूम हों ।

९ शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य (अर्थात् मनको बुरी लगे ऐसी वस्तु) अपवित्रवास इनसे प्रगट हुई अरुचिमे मुख स्वाभाविक रहै, अर्थात् वातजादिकोंके सदृश कषैला, खट्टा आदि नहीं होय ।

१० हृदय और पसवाडोंमें पीडा और मुखशोष होवे, मस्तक और नाभिमें शूल होय, खाँसी, स्वरभेद और सुई चुभनेकीसी पीडा होय, डकारका शब्द प्रबल होय, वमनमें झाग आवे, ठहर ठहरकर वमन होय, तथा थोडी होय, वमनका रंग काला होय, पतली और कषैली होय, वमनका वेग बहुत होय परंतु वमन थोडा होय और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं ।

२ पित्तकी छर्दि ३ कफकी छर्दि ४ कृमियोंके विकारकी छर्दि ५ संनिपातकी छर्दि ६ अमे
और दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके दुर्गंधसे तथा मनके तिरस्कार होनेसे होतीहै, सातवीं छर्दि स्त्रियो
गर्भ रहनेके पश्चात् होती है। इस प्रकारसे सात प्रकारकी छर्दि जानना ।

स्वरभेदरोग ।

स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः ॥
मेदसा संनिपातेन क्षयात्षष्ठः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥

अर्थ– स्वरभेद (गलेका बैठजाना) रोगके छः प्रकार हैं। जैसे १ वातका स्वरभेद
पित्तका स्वरभेद ३ कफका स्वरभेद ४ मदं बढनेका स्वरभेद ५ सन्निपातका स्वरभे

---

१ मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमें संताप अर्थात् ये तपायमान हो
अन्धेरा आवे, चक्कर आवे, रोगी पीला, हरा, गरम, कडुआ, धुआँके रंगका और दाहयुक्त पित्त
वमन करे यह पित्तकी छर्दीके लक्षण हैं।

२ तंद्रा, मुखमें मिठास, कफका पडना, संतोष (अन्नमें अरुचि), निद्रा, अरुचि, भारीप
इनसे पीडित हो, चिकना, गाढा, मीठा, सफेद कफको वमन करे और जब रद्द करे तब पी
थोडी होय, रोमांच होय, ये कफकी छर्दीके लक्षण हैं।

३ कृमिकी छर्दीमें शूल, खाली रद्द ये विशेष होते हैं, बहुधा कृमि और हृदयरोगके लक्ष
सदृश इसके लक्षण जानने ।

४ शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसे प्रबल भई जो वमन हो
सन्निपातसे होती है। रद्द करनेवालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, संघट्ट (जिसको देशवारे मनु
जाडी कहते हैं), गरम, लाल ऐसी होती है।

५ अमेध्य मांस मछली आदि पदार्थोंके दुर्गंधसे मनको तिरस्कार आके जो वमन होवे
उसमें जिस दोषका कोप हो उस दोषकी रद्द जाननी । स्त्रियोंके गर्भ रहने पश्चात् जो वमन हो
है, उसके भी ऐसेही लक्षण जानने ।

६ बहुत जोरसे बोलनेसे, विषके खानेसे, ऊँचे स्वरसे पाठ करनेसे (अर्थात् वेदादिपा
करनेसे),कंठमें लकडी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे कोपको प्राप्त हुए जो वात, पित्त, कफ
कंठमें बहनेवाली चार नसें हैं उनमें प्राप्त हो अथवा उनमें वृद्धिको प्राप्त कर स्वरका नाश करे उस
स्वरभेद रोग कहते हैं।

७ वायुसे स्वरभेद होय तो रोगीके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये काले होंय वह पुरुष
हुआ शब्द बोले, अथवा गधाके स्वरप्रमाण कर्कश बोले ।

८ पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये पीले होते हैं और बोलते सम
गलेमें शोष होता है।

९ कफके स्वरभेदसे कंठ कफसे रुकारहै, मन्दमन्द तथा थोडा बोले और दिनमें बहुत बोले।

१० मेदके संबंधसे कफ अथवा मेदसे गला लिप्त होय, अथवा मेदसे स्वरके मार्ग रुकजावें
प्यास बहुत लगे, गलेके भीतर और मंद बोले ।

११ संनिपातके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं सो स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषि कहतेहैं।

और छठा छयरोगका[1] स्वरभेद ऐसे स्वरभेदरोग छः प्रकारका जानना ॥

तृष्णारोग ।

तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात्पित्तात्कफादपि ॥
त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद्धातोश्च षष्ठिका ॥ २९ ॥

अर्थ—तृष्णारोग छः प्रकारका है जैसे १ वाततृष्णा[2] २ पित्ततृष्णा[3] ३ कफतृष्णा[4] ४ त्रिदोषतृष्णा[5] ५ आगंतुक जो शस्त्रादिकों करके क्षत होनेसे होती है सो उपसर्गज[6] तृष्णा और जो धातुक्षयसे होती है सो ६ धातुक्षयजन्य[7] तृष्णा ऐसे छः प्रकारका तृष्णा (प्यास) रोग है मनुष्योंको जो वारंवार पानी पीनेकी इच्छा होती है और पानी पीनेसे भी प्यास जाती नहीं फिर फिर इच्छा होती है उसको तृष्णा कहते हैं ॥

मूर्च्छारोग ।

मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक् ॥
चतुर्थी संनिपातेन—

---

१ क्षयीके स्वरभेदवाले पुरुषके बोलते समय मुखसे धुआँसा निकले और वाणी क्षय होजाय अर्थात् यथार्थ स्वर. नहीं निकले इस स्वरभेदमें जिस समय वाणी हत होजाय, अर्थात् ओजका क्षय होनेसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होताहै ओजका क्षय (नाश) नहीं होय तो साध्य है ।

२ वातकी तृषा (प्यास) में मुख उतर जाय, अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकानेमें नोचनेके समान पीडा होय और जल बहनेवाली नाडियोंका मार्ग रुकजाय, मुखका स्वाद जाता रहै और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढे । ३ पित्तकी तृषामें मूर्च्छा, अन्नमें अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यंत शोष शीतपदार्थकी इच्छा, मुखमें कडुआट और संताप ये लक्षण होते हैं । ४ अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होती है तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके बहनेवाली नाडियोंको सुखाय कफकी तृषाको प्रगट करती है । केवल कफसे तृषाका प्रगट होना असंभव है, केवल कफ बढे भयेका द्रवीभूतधर्म होनेसे प्यासकर्तृत्व असंभव है । और वातपित्तकी तृषा होनेसे होता है सो ग्रंथांतरमें लिखाभी है. इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृष्णा नहीं कही, सुश्रुतने चिकित्सामें भेद होनेसे कही है । हारीतनेभी सपित्तकफकी तृषा मानी है केवल कफकी नहीं मानी इस तृषामें निद्रा, भारीपन, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं, इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यंत सूख जाता है । ५ वात, पित्त, कफ इन तीनोंके तृष्णाके समान जिस तृष्णामें लक्षण होय उसको त्रिदोषज तृष्णा कहते हैं । ६ हीनस्वर, मोह, मनमें ग्लानि होय, मुख दीन होजाय, हृदय, गला और तालु सूख जाय ये तृष्णाके उपद्रव हैं, कि जो मनुष्यको सुखाय डालते हैं और व्याधिके कारण शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य होजाय है वे उपद्रव ये हैं. ज्वर, मोह, क्षय, खाँसी, श्वास, अतिसारादिक । ये रोग जिसकी तृष्णा कष्टसाध्य जाननी । ७ रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होते हैं सोही सब क्षयजतृष्णामें होते हैं । तिससे पीडित पुरुष रात्रिदिन वारंवार पानी पीवे परंतु संतोष नहीं होता ।

अर्थ—मूर्च्छा चार प्रकारकी है १ वातकी मूर्च्छा २ पित्तकी मूर्च्छा ३ कफकी मूर्च्छा चौथी संन्निपातकी मूर्च्छा है । इस प्रकार चार प्रकारकी मूर्च्छा जानना ॥

तहां पित्त तमोगुणसे मोह उत्पन्न होता है । संज्ञा और चेष्टाके बहनेवाले छिद्र ना विकारसे, आच्छादित होनेसे, अकस्मात् शरीरमें तमोगुण बढकर सुख दुःखका ज्ञान जाता और मनुष्य लकडीके समान पृथ्वीपर गिरजावे उसको मूर्च्छा कहते हैं ।

भ्रम, निद्रा, तंद्रा, संन्यास रोग ।

-तथैकश्च भ्रमः स्मृतः ॥ ३० ॥
निद्रा तन्द्रा च संन्यासो ग्लानिश्चैकैकशः स्मृतः ॥

अर्थ—भ्रम १ निद्रा २ तंद्रा ३ संन्यास ४ ग्लानि ५ ये पांच रोग एक एक प्रका हैं इनके क्रमसे लक्षण कहते हैं । रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम उत्पन्न होता है तमोगुण और कफ इन दोनास उत्पन्न हो इन्द्रिय और मन इनको मोहित कर वाह्य घटप दिक पदार्थोंका ज्ञान न रहे उस अवस्थाको निद्रा कहते हैं । और इन्द्रियोंको मोहित कुछ सोवै और कुछ जागता रहनेपर नेत्र खुले मूँदे रहैं उसको तन्द्रा कहते हैं । देह, इनका व्यापार बन्द होकर मरेके समान लकडीसा गिर पडे उसको वाणीसंन्यास कहते है यह एक घोर निद्राकी अवस्था है ग्लानिके लक्षण इसी खण्डके छठे अध्यायके अन्तमें आये हैं सो जानना ॥

मदरोग ।

मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ३१ ॥

---

१ जो मनुष्य नीले अथवा लाल रंगके आकाशको देखे पीछे मूर्च्छाको प्राप्त होय और जल्दी बेहोश हो जाय, देहमें कंप, अंगोंका फुटना, हृदयमें पीडा होय, शरीर कृश होजाय, शरीरका काला लाल पडजाय, उसको वातकी मूर्च्छा जानना ।

२ जिसको आकाश लाल, हरा, पीला दीखे मूर्च्छा आवै और सावधान होते समय पसीना आवे, प्यास होय, संताप होय, नेत्र लाल पीले होंय, मल पतला होय, देहका वर्ण पीला होय, लक्षण पित्तकी मूर्च्छाके हैं ।

३ कफकी मूर्च्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अन्धकारके समान अथवा बद्दल इन व्याप्त देखकर मूर्च्छागत होय, देरमें सावधान होय, देहपर भारी बोझासा भार मालूम होय अथ गीला चमडा धारण किया हुआसा मालूम होय, मुखसे पानी गिरे, रद्द होयगी ऐसा मालूम होय

४ संनिपातकी मूर्च्छामें सब दोषोंके लक्षण होते हैं, इस रोगको दूसरा अपस्मार (मृगी जानना चाहिये परंतु अपस्मारमें दाँतका चबाना, मुखसे झाग गिरना, नेत्रोंका हाल औरही प्रका रका हो जाना इत्यादिक लक्षण होते हैं, सो इस रोगमें नहीं होते, इतनाही भेद है ।

५ संन्यास रोगका उपाय जल्दी होवे तो मनुष्य बचताहै नहीं तो मरताहै. उसका उपाय यह है कि, हाथ पैरोंकी उँगलियोंको सुईस छेदन करे अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले ।

त्रिदोषैरसृजो मद्याद्विषादपि च सप्तमः ॥

अर्थ—मदरोग सात प्रकारका है जैसे १ वातमद २ पित्तमद ३ कफमद ४ त्रिदोषमद ५ रुधिर कुपित होनेसे जो होय और ६ प्रमाणसे अधिक मद्य पीनेसे होय सो तथा ७ वच्छनाग आदि विष भक्षण करनेसे होय सो इस प्रकार सात प्रकारके मदरोग जानने । सुपारी, कोदों धान्य, धतूरा इत्यादिके भक्षण करनेसे जैसे मतवाला आदमी होजाता है उसी प्रकारका वातादि दोष दुष्ट होकर मनको विभ्रम करते हैं उसको मद कहते हैं इसमें जिस दोषका अधिक कोप होताहै उसी दोषके लक्षण होते हैं, इस रोगवालेको मतवाला कहते हैं ॥

मदात्ययरोग ।

मदात्ययश्चतुर्धा स्याद्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ ३२ ॥
त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा ॥ पानाजीर्णं तथा चैकं
तथैकः पानविभ्रमः ॥ ३३ ॥ पानात्ययस्तथा चैकः—

अर्थ—मद्यका प्रमाण इस प्रकार लेना कि प्रातःकाल दांतन आदि शरीरकी शुद्धिके कर्मसे निबटकर ८ तोले मद्य पीवे । दुपहरको चिकने पदार्थ घी मिला गेहूंका चून (मैदा आदि) तथा मांस इत्यादिकोंके साथ पीवे । तथा रात्रिके आरंभमें चौगुनी पीवे परन्तु जितना अपनी देहको सहन होवे उतनाही पीवे बढती न पीवे इस प्रकार सेवन करनेसे वह मद्य रसायनरूप होकर आयुष्यकी तथा शरीरकी वृद्धि करता है तथा बल देता है और अमृतके समान हितकारक होता है । इसमें अन्तर पडनेसे अर्थात् जितनी सेवन करते हैं उससे अधिक सेवन करनेसे बुद्धिभ्रंश होवे तथा वह मद्य विषके समान होकर दाहादिक उपद्रवके चिह्न करता हैं । प्राण व्याकुल होते हैं तथा कहीं २ प्राणहानिभी होती है । उसको मदात्यय रोग कहते हैं वह मदात्यय वात[1], पित्त[2], कफ[3], त्रिदोष[4] इन भेदोंसे चार प्रकारका है । परमद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम और पानात्यय ये चार मदात्यय रोगके भेद जानने । यदिमद्य पीने आदिके गुणागुण अधिक जानने हों तो चरक सुश्रुत आदि बृहद्ग्रन्थोंको देखो ।

---

[1] हिचकी, श्वास, मस्तकका कंप होना, पसवाडोंमें पीडा, निद्राका नाश और अत्यंत बकवाद ये लक्षण जिसमें होंय उसको वातप्रधान मदात्यय रोग जानना ।

[2] प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान होय), देहका वर्ण हरा होय, इन लक्षणोंसे पित्तप्रधान मदात्यय जानन

[3] वमन (रद्द), अन्नमें अरुचि, खाली रद्द (आकारी), तन्द्रा, देह गीली, भारी और शीत लगे, इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना ।

[4] जिससे त्रिदोषमदात्ययके लक्षण मिलते हों उसको संनिपातप्रधान मदात्यय जानना ।

दाहरोग ।

दाहाः सप्त मतास्तथा ॥ रक्तपित्तात्तथा रक्तात्तृष्णायाः पित्त-
तस्तथा ॥ ३४ ॥ धातुक्षयान्मर्मघाताद्रक्तपूर्णोदरादपि ॥

अर्थ–देहमें जो जलन होती है उसको दाह रोग कहते हैं यह सात प्रकारका है १ पित्त[1] कुपित होनेसे होय सो २ रुधिरके[2] कोपसे होय सो ३ तृषाके[3] रोकनेसे ४ पित्तके[4] ५ रसादिक धातुओंके क्षय करके ६ मर्मस्थलमें[6] चोट लगनेसे जो होय और जो ७ बडे घोर शस्त्रादिका प्रहार होकर कोठेमें रुधिर जमनेके कारणसे होवे । इस प्रकार दाह रोग प्रकारका जानना ॥

उन्मादरोग ।

उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ॥
संनिपाताद्विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः ॥ ३५ ॥

---

१ जिसमें कुछ लक्षण रक्तके मिलते हों और कुछ पित्तके हों उसको रक्तपित्तज दाह कहते

२ सर्व देहका रुधिर कुपित होकर अत्यंत दाह करे और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे तपता है ऐसा तपे, प्यासयुक्त ताम्रके रंग सदृश देहका रंग होय और नेत्रभी लाल होंय, मुखसे और देहसे तप्त लोहेपर जल डालनेकीसी गंध आवे और अंगमें मानो किसीने अग्नि लगा दीनी है ऐसी वेदना होय उसे रुधिरके कोपसे उपजी दाह कहते हैं ।

३ प्यासके, रोकनेसे जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढावे तब गरमी देहके बाहर और भीतर दाह करे । इस दाहसे रोगी बेसुध होय और गला, तालु, होठ अत्यंत सूखे और जीभको बाहर काढदे, काँपे ।

४ पित्तसे जो दाह होय उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं । उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये, पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें इतना अन्तर है कि पित्तज्वरमें अग्नि और आमाशयका होना होता है और पित्तके दाहमें नहीं होता है और सब लक्षण एकही हैं ।

५ धातुक्षयसे जो दाह होय उससे रोगी मूर्च्छा प्यास इनसे युक्त स्वरभंग तथा चेष्टाहीन है इस दाहमें पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरणको प्राप्त होताहै ।

६ मर्मस्थान (हृदय-शिर-वस्ति) में चोट लगनेसे होय जो दाह सो असाध्य है ।

७ शस्त्र कहिये तल्वार आदिके लगनेसे प्रगट रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भरजावे तब दुःसह दाह प्रगट होता है एवं क्षतजदाहसे कोष्ठ शब्दसे यहांपर हृदय आमाशय आदि स्थान उससे आहार थोडा रह जावे, अनेक प्रकारके शोक करे दाह होय और इस दाह करके दाह होय तथा प्यास, मूर्च्छा और प्रलाप (बकवाद) ये लक्षण होंय ।

अर्थ—उन्माद रोग छः प्रकारका है जैसे १ वातोन्माद[1] २ पित्तोन्माद[2] ३ कफोन्माद[3] ४ संन्निपातोन्माद[4] ५ विष[5] सेवनका उन्माद ६ धनबंधुनाशजन्य मनको दुःख होनेसे होता है सो शोकज[6] उन्माद वातादिक दोषोंके बढनेसे अपना २ नित्यका मार्ग छोडकर अन्य मनोवाहिनी नाडियोंमें जायके चित्तको विभ्रम करै है इसीसे इस रोगको उन्माद कहते हैं ॥

भूतोन्मादरोग ।

भूतोन्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि ॥ गन्धर्वात्किंनराद्यक्षात्पितृभ्यो गुरुशापतः ॥ ३६ ॥ प्रेताच्च गुह्यकाद्वृद्धात्सिद्धाद्भूतात्पिशाचतः ॥ जलाद्देवतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात् ॥ ३७ ॥ राक्षसादपि कूष्माण्डात्कृत्यावेतालयोरपि ॥

अर्थ—भूतोन्माद बीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं जैसे १ देवग्रह[7] कहिये गणमातृका-

---

१ रूखा, थोडा और शीतल अन्न, धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे अत्यंत बढी जो वायु सो चिंता शोकादि करके युक्त होकर हृदय (मन) को अत्यंत दुष्ट कर बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करती है, हँसनेके कारण विना हँसे, मन्द मुसकान करें, नाचे, विना प्रसंगके गीत गावे और बोले, हाथोंको सर्वत्र चलावे, रोवे और शरीर रूखा तथा कृश और लाल होजाय और आहारका परिपाक भये पर जियादह जोर होय ये वातउन्मादके लक्षण हैं ।

२ अधकच्ची, कडवी, खट्टी, दाह करनेवाली और गरम वस्तुका भोजन करनेसे संचित भया जो पित्त सो तीव्रवेग होकर अजितेन्द्री पुरुषके हृदयमें प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करता है इस उन्मादसे असहनशील, हाथ पैरोंको पटकना, नग्न होजाय, डरपे, भाजने लगे, देह गरम होजाय, क्रोध करे, छायामें रहे, शीतल अन्न और शतिल जल इनकी इच्छा, पीला मुख होजाय यह लक्षण पित्तज उन्मादके हैं । ३ मन्द भूखमें पेटभर भोजन कर कुछ परिश्रम न करे ऐसे पुरुषके पित्तयुक्त कफ हृदयमें अत्येन्त बढकर बुद्धि, स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करता है और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करता है उस विकारसे बाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द होय, अरुचि होय, स्त्री प्यारी लगे, एकान्त वास करे, निद्रा अत्यन्त आवे, वमन होय, मुखसे लार बहे, भोजन करनेके पीछे रोगका जोर हो, नख त्वचा मूत्र नेत्रादिक सफेद होवें यह लक्षण कफके उन्मादके हैं ।

४ जो उन्माद वातादिक तीनों दोषोंके कारण करके होता है वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होता है उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं । इसमें विरुद्ध औषधकी विधि वर्जित है यह उन्माद वैद्योंकरके त्याज्य है कारण कि यह असाध्य है । ५ विषसे प्रकट उन्मादमें नेत्र लाल होंय, बल इंद्रिय और शरीरकी कांति नष्ट होजाय, अति दीन होजाय, उसके मुखपर कालोंच आय जाय और संज्ञा जाती रहे । ६ चोरोंने, राजाके मनुष्योंने अथवा शत्रुओंने उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि किसीने त्रास दिया होय अथवा धन बन्धुके नाश होनेसे इस पुरुषका अन्तःकरण अत्यन्त दूखे अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होय, पुरुष गुप्तबातको भी कहने लगे और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान होय, गावे, हँसे और रोवे तथा मूर्ख होजाय । ये लक्षण शोकज उन्मादके हैं । ७ देवग्रह जो गणमातृकादिक पीडित मनुष्य सदा सन्तोषयुक्त रहै, पवित्र रहै, देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगन्ध, नेत्रोंके पलक लगे नहीं, सत्य और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी स्थिरदृष्टि वरका देनेवाला 'तेरा कल्याण हो' ऐसा वर देय और ब्राह्मणसे प्रीति रक्खे ।

दिक २ दानव (पापबुद्धि असुर) ३ गन्धर्व[2] (देवताओंके आगे गान करनेवाले) ४ कि
(उन्हीं गंधर्वोंका भेद है) ५ यक्ष[4] ६ पितर[5] (अग्निष्वात्तादिक) ७ गुरु[6] ८ प्रे
गुह्यक १० वृद्ध ११ सिद्ध १२ भूत १३ पिशाच[7] १४ जलादिदेवता[8] १५ नागे
ब्रह्मराक्षस[10] १७ राक्षस[11] १८ कूष्मांडराक्षस १९ कृत्या २० वेताल इस प्रकार बीस

---

१ पसीनायुक्तदेह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषारोपण करनेवाला, टेढी दृष्टिसे देखनेवा निर्भय, वेदविरुद्धमार्गका चलनेवाला और बहुत अन्न जलसे भी तिसके संतोष न होय और बुद्धि ऐसे मनुष्यको दैत्यग्रहपीडित जानना ।

२ गन्धर्वग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नचित्त, पुलिन और बाग बगीचामें रहनेवाला, आनो आचारका करनेवाला, गान, सुगन्ध और पुष्प ये जिसको प्यारे लगे ऐसा होता है। वही पु नाचे, हँसे सुन्दर बोले, थोडा बोले ।

३ किन्नर ग्रहसे पीडित मनुष्योंके लक्षण गन्धर्वग्रहके सदृशही होते हैं ।

४ यक्षपीडित मनुष्यके नेत्र लाल होतेहैं और वह सुंदर बारीक ऐसे रक्त वस्त्रका धारण करे वाला, गंभीर, बुद्धिमान्, जलदी चलनेवाला, प्रमाणका बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, कि क्या देऊँ ऐसे बोलनेवाला होता है ।

५ कुशोंके ऊपर प्रेतोंको (पितरोंको) पिंड देय, चितमें भ्रांति रहे और उत्तरीय वस्त्र सव्य करके तर्पण भी करे, मांस खानेकी इच्छा होय, तथा तिल, गुड, खीर इनपर मन (इस कहनेका प्रयोजन यह है कि, जिसकी जिस पदार्थपर इच्छा होय उसको उसी पदार्थ बली देनेसे उस ग्रहकी शांति होती है ऐसेही सर्वत्र जानना यह डल्लनका मत है) और वह मनु पितरोंकी भक्ति करे। ये लक्षण पितृग्रहपीडित मनुष्यके हैं ।

६ गुरु कहिये ब्राह्मणादिक माता पिता आदि बडोंके अपराध करनेसे जो शाप होता है तिस मनुष्योंको उन्माद उत्पन्न होता है उसके लक्षण प्रेत, गुह्यक, वृद्ध, सिद्ध और भूत इनके लक्षणों सदृशही होते हैं ।

७ पिशाचजुष्टके लक्षण ये हैं कि, जो अपने हाथ ऊपरको करे, नंगा होजाय, तेजरहित, बहु देर पर्यन्त बकनेवाला, जिसके देहमें अपवित्र दुर्गन्ध आवे तथा अतिचञ्चल कहिये सब अन्नपान इच्छा करनेवाला, खानेको मिलै तो बहुत भोजन करे, एकान्त वनान्तरोंमें रहनेवाला, विरुद्ध चे करनेवाला, रुदनकर्ता, डोलनेवाला ऐसा मनुष्य होता है ।

८ जलादि देवता कहिये जलदेवता अप्सरा आदिक और स्थलदेवताभी: इनके लक्षण अनुमा करके समझ लेना ।

९ जो मनुष्य सर्पके समान पृथ्वीमें लोटा करे, अर्थात् छातीके बल चले तथा सर्पके समा अपने ओष्ठप्रान्त (होठों) को चाटा करे, सदा क्रोधी रहै, सहत, गुड, दूध और खीरकी इ रहै उसे सर्पग्रहग्रस्त जानना ।

१० देव, ब्राह्मण, गुरुसे द्वेषकर्ता, वेद और वेदके अंग (शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द निघण्टु, निरुक्त) का पढाभया, शत्रि पीडाका कर्ता, हिंसा करे नहीं, ये लक्षण ब्रह्मराक्षसपीडि मनुष्यके हैं ।

११ राक्षसोंसे पीडित जो उन्मादरोगी वह मांस, रुधिर और नाना प्रकारके मद्य इनमें प्रीति

देवतादि ग्रहोंके कहे हैं । तिनमें ग्रहका शरीरमें संचार होकर उस ग्रहकीसी चेष्टाके समान मनुष्य चेष्टा करते हैं उसको भूतोन्माद कहते हैं ॥

अपस्मार रोग ।

अपस्मारश्चतुर्धा स्यात्समीरात्पित्ततस्तथा ॥ ३८ ॥
श्लेष्मणोपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः संनिपाततः ॥

अर्थ–अपस्मार रोग चार प्रकारका है जैसे १ वातापस्मार २ पित्तापस्मार ३ कफापस्मार और ४ सन्निपातापस्मार इस प्रकारसे अपस्मार (मृगी) रोगको चार प्रकारका जानना ॥

आमवातरोग ।

चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ३९ ॥ चतुर्थसंनि-

अर्थ–आमवात रोग चार प्रकारका है । जैसे १ वातामवात २ पित्तामवात

रखनेवाला और निर्लज्ज होता है अर्थात् नंगा रहनेसेभी लाज नहीं धरता निर्दय होता है शूरता दिखाता है, क्रोध, बलिष्ठ, रात्रिमें भटकनेवाला और अच्छे कर्मोंसे द्वेष करनेवाला होता है इसीके सदृश कूष्मांड राक्षस कृत्या और वेताल इनकरके पीडित मनुष्योंके लक्षण अनुमानसे जानलेना ।

१ चिंता, शोक, क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित जो दोष वात, पित्त, कफ सो हृदयमें स्थित जो मनको वहनेवाली नाडी उनमें प्राप्त हो स्मरण (ज्ञान) का नाश कर अपस्मार रोगको प्रगट करते हैं ।

२ वातके अपस्मारमें रोगी कांपे दाँतोंको चबावे मुखसे लार गेरे और श्वास भरे तथा कर्कश अरुणवर्ण मनुष्योंको देखै अर्थात् कोई नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है ऐसा देखै ।

३ पित्तकी मिरगीवालेके झाग, देह, नेत्र और मुख ये पीले होते हैं और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमीके साथ अग्निसे व्याप्त भया ऐसा सब जगत्को देखे और मेरे पास पीले वर्णका पुरुष दौडा आता है ऐसा देखे ।

४ कफकी मृगीवालेके झाग, अंग, मुख और नेत्र सफेद होंय, देह शीतल होय, देह तथा देहके रोमांच खडे रहें, भारी होय और सब पदार्थ सफेद दीखें और सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है ऐसा देखे । यह अपस्मार (मिरगी) रोग देरमें छोडे अर्थात् वातपित्तकी मृगी जल्दी रोगको छोड देती है ।

५ जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज अपस्मार जानना यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुषके होयँ वह भी असाध्य है, तथा पुराना पडगया हो वह भी अपस्मार (मिरगी) रोग असाध्य है ।

६ अंगोंका टूटना, अरुचि, प्यास, आलसक, भारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना और देहमें शून्यता हो जाय इस रोगको आमवात कहते हैं ।

७ वातके आमवातमें शूल होता है ।

८ पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लालरंग होता है ।

३ कफामवात ४ सांन्निपातामवात । इन भेदोंसे आमवात रोग चार प्रकारका है ।

शूलरोग ।

पाताच्च शूलान्यष्टौ बुधा जगुः ॥ पृथग्दोषैस्त्रिधाद्वन्द्वभेदेन त्रि
धान्यपि ॥ ४० ॥ आमेन सप्तमं प्रोक्तं संनिपातेन चाष्टमम् ।

अर्थ–शूलरोग आठ प्रकारका है । १ वातशूल २ पित्तशूल ३ कफशूल ४
पित्तशूल ५ पित्तकफशूल ६ कफवातशूल ७ आमशूल ८ सन्निपातशूल इस

---

१ कफसंबंधी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और भारीपन तथा खुजली चलती है । २
षसे प्रगट आमवातमें तीनों दोषाके लक्षण होते हैं, यह कष्टसाध्य है । ३ दंड, कसरत, बहुत
अतिमैथुन, अत्यंत जागना, बहुत शीतल जल पीना, कांगनी, मूँग, अरहर, कोदों अत्यंत
पदार्थके सेवनसे और अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), लकडी आदिके लगनेसे, कषैला,
भीजा अन्न जिसमें अंकुर निकस आये हों, विरुद्ध क्षीर, मछली आदि, सूखा मांस, सूखा
(कचरिया आदि) इनके सेवनसे, मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु इनके वेगको रोकनेसे,
उपवासके करनेसे, अत्यंत हँसनेसे, बहुत बोलनेसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो बढकर
पसवाडा, पीठ, त्रिकस्थान, मूत्रस्थानमें शूलको करे और भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें,
कालमें, शीतकालमें इन दिनोंमें शूल अत्यंत कोप करे और वारंवार कोप होय, मल,
अवरोध, पीडा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन
दिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूल शांत होता है ।

४ यवक्षार आदि खार, मिरच आदि तीक्ष्ण और गरम, विदाहकारक बाँस और करील
तेल, सिंबी, खल, कुलथीका यूष, कडुआ, खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष), सुराविकार (काँजी
दिक), क्रोधसे, अग्निके समीप रहनेसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलनेसे, अति मैथुन
नेसे, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे
शूल तृषा, मोह, दाह, पिडा, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको करे, दुपहरके समय, मध्यरात्रि
अन्नके विदाहकालमें, शरद्कालमें शूल अधिक होय । शीतकालमें शीतल पदार्थसे और
मधुर (मीठा) शीतल अन्नसे यह शूल शांत होय ।

५ जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, मछली आदिका मांस दही, घृत, मक्खन
दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पिसा अन्न, खिचडी, तिल, पूरी कचोडी आदि और
रक पदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलरोगको प्रगट करे, उसे सूखी रद,
ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो ये लक्षण होंय, भोजन करते
पीडा होय, सूर्योदयके समय, शिशिरऋतुमें और वसंतकालमें शूल बहुत होय ।

६ दाह ज्वर करनेवाला, ऐसा भयंकर शूल होय सो वातपित्तका जानना ।

७ कूख, हृदय, नाभि और पसवाडे इनमें पित्तकफका शूल होता है ।

८ वस्ति (मूत्रस्थान), हृदय, कंठ, पसवाडे इन ठिकाने शूल हो उसे कफवातका शूल जान

९ पेटमें गुडगुडाहट होय, उबकियोंका आना, रद, देह भारी, मन्दता, अफरा, मुखसे
स्राव इन लक्षणोंसे तथा कफशूल लक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं ।

१० जिसमें तीन (वात, पित्त, कफ) के लक्षण मिलते हों उसको संनिपातका शूल कहते
मांस, बल और अग्नि क्षीण होगये हों ऐसा शूलरोग असाध्य जानना ।

आठ प्रकारका शूलरोग है, इन आठोंमें बहुधा वायु मुख्य शूलकर्ता है ॥

परिणामशूलरोग ।

परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ मलैर्यैः शूलसंख्या स्यात्तैरेव परिणामजे ॥ अन्नद्रवभवं शूलं जरत्पित्तभवं तथा ॥ ४२ ॥ एकैकं गणितं सुज्ञैः—

अर्थ—भोजन पचनेपर जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं। वह वातादि दोषों करके आठ प्रकारका है, उन्हीं दोषों करके यह परिणामशूल आठ प्रकारका है। अन्नद्रव[1] शूल और जरत्पित्त[2]शूल ये दो शूल एक एक प्रकारके जानने ॥

उद्दावर्तरोग ।

उदावर्तास्त्रयोदश ॥ एकः क्षुधानिग्रहजस्तृष्णारोधाद्द्वितीयकः ॥ ४३ ॥ निद्राघातात्तृतीयः स्याच्चतुर्थः श्वासनिग्रहात् ॥ छर्दिरोधात्पंचमः स्यात्षष्ठः क्षवथुनिग्रहात् ॥ ४४ ॥ जृम्भारोधात्सप्तमः स्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः ॥ नवमः स्यादश्रुरोधाद्दशमः शुक्रवारणात् ॥ ४५ ॥ मूत्ररोधान्मलस्यापि रोधाद्वातविनिग्रहात् ॥ उदावर्तास्त्रयश्चैते घोरोपद्रवकारकाः ॥ ४६ ॥

अर्थ—उदावर्त रोग १३ प्रकारका है जैसे १ क्षुधा[3] २ तृषा[4] ३ निद्रा[5] ४ श्वास[6] ५ वमन[7]

---

[1] अन्न पचगया होय अथवा पचरहा हो अथवा अजीर्ण हो, अर्थात् सर्वदा जो शूल प्रगट होय, वह पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेके नियमसे शांत नहीं होय उसको अन्नद्रव शूल कहते हैं, यह शूल त्रिदोषविकृतिसे एक प्रकारका है, परंतु असाध्य नहीं है, क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है।

[2] अम्लपित्तसे जो शूल होता है, उसको जरत्पित्त शूल कहते हैं।

[3] क्षुधा (भूख) रोकनेसे तंद्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टिका मंद होना ये रोग प्रगट होंय।

[4] प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे मंद सुनना और हृदयमें पीडा ये लक्षण होंय।

[5] आतीहुई निद्राको रोकनेसे जंभाई, अंगोंका टूटना, नेत्र और मस्तकका अत्यंत जड होना और तंद्रा होय।

[6] जो मनुष्य हारगयाहो और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और वायुगोला इतने रोग होंय।

[7] जो मनुष्य आतीहुई वमनके वेगको रोके उसके अंगोंमें खुजली चले, देहमें चकत्ते होजाँय, अरुचि, मुखपर झाँईसी पडे, सूजन, पांडुरोग, ज्वर, कुष्ठ, खाली रद, विसर्प ये रोग होंय।

६ छींके ७ जंभाई[2] ८ डकार[3] ९ नेत्रसंबंधी[4] जल १० शुक्रधातु ११ मूत्र[6] १२ मल और वायु इन तेरह प्रकारके वेगोंको रोकनेसे तेरह प्रकारका उदावर्त उत्पन्न होता है इनमें मल और वायु इन तीनोंके रोकनेसे जो उदावर्त हो वह घोर उपद्रव करता है ॥

आनाहरोग ।

आनाहो द्विविधः प्रोक्त एकः पक्वाशयोद्भवः ॥
आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते ॥ ४७ ॥

अर्थ--आनाहरोग दो प्रकारका है । एक पक्वाशयमें होनेसे पेटको फुलाता है, आमाशयमें होता है जिसको प्रत्यानाह कहते हैं । इस प्रकार दो प्रकारका आनाह रोग अफरा रोग जानना ॥

---

[1] आतीहुई छींकके रोकनेसे मन्या (कहिये नाडके पिछाडीकी नस) का स्तंभ कहिये डजाना, शिरमें शूलका चलना, अधोमुख टेढा हो जाय, अर्धांगवात और इंद्री दुर्बल होजाय रोग होते हैं ।

[2] आतीहुई जंभाईको रोकनेसे मन्या कहिये नाडके पीछेकी नस और गला इनका और वातजन्य विकार मस्तकमें होय उसी प्रकार नेत्ररोग, नासारोग, मुखरोग और कर्णरो तीव्र होतेहैं ।

[3] आतीहुई डकारके वेगको रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं, कंठ और मुख मा मालूम होय, अत्यंत नोचनेकीसी पीडा होय, अव्यक्त भाषण (अर्थात् जो समझमें आवे) होय ।

[4] आनंदसे अथवा शोकसे प्रगट अश्रुपातोंको जो मनुष्य नहीं त्याग करे उसके इतने प्रगट होंय. मस्तक भारी रहै, नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हों ।

[5] मैथुन करते समय वीर्य निकलतेको जो मनुष्य रोके, अथवा और प्रकारसे शुक्रके वे रोके उसके मूत्राशयमें सूजन होय, तथा गुदामें और अंडकोशोंमें पीडा होय, मूत्र बडे कष्टसे शुक्राश्मरी होय, शुक्रका स्राव होय ऐसे अनेक प्रकारके रोग होंय ।

[6] मूत्रका वेग रोकनेसे बस्ति (मूत्राशय) और शिश्नइंद्रीमें पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, कमें पीडा, पीडासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमें अफरा होय ।

[7] मलका वेग रोकनेसे गुडगुडाहट होय, शूल होय, गुदामें कतरनेकीसी पीडा होय, मल नहीं, डकार आवे अथवा मल मुखके द्वारा निकले ।

[8] अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द होंय, पेट फूल जाय, अनायास श्रम पेटमें बादीसे पीडा होय तथा अन्य वातकृत (तोद शूलादिक) पीडा होय ।

[9] आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित होकर विगुणवायुसे वारंवार विरुद्ध होकर अपने अच्छी तरह प्रवृत्त होय नहीं, इस विकारको आनाह कहते हैं ।

[10] पक्वाशयमें आनाहरोग होनेसे आध्मान वातरोधादि आलसरोगोक्त लक्षण होतेहैं ।

[11] आमसे प्रगट आनाहरोगमें प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, देहमें वना, हृदयका जकडजाना, शूल, मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका रुकना, शूल, और विष्ठा मिलीहुई रद और श्वास ये लक्षण होते हैं ।

उरोग्रह और हृदयरोग।

उरोग्रहस्तथाचैको हृद्रोगाः पंच कीर्तिताः ॥ वातादयस्त्रयः
प्रोक्ताश्चतुर्थः संन्निपाततः ॥ ४८ ॥ पंचमः कृमिसंजातः—

अर्थ—छातीमें खींचनेके समान पीडा होवे उसे उरोग्रह[१] कहते हैं उसे एक प्रकारका जानना। तथा हृदयरोग पांच प्रकारका है। जैसे १ वातहृद्रोग[२] २ पित्तहृद्रोग[३] ३ कफहृद्रोग[४] ४ सन्निपातज[५] हृद्रोग तथा ५ कृमिरोगजन्य[६] हृद्रोग इस प्रकार हृद्रोग पांच प्रकारका है॥

उदररोग।

तथाष्टावुदराणि च ॥ वातात्पित्तात्कफात्त्रीणि त्रिदोषेभ्यो
जलादपि ॥ ४९ ॥ प्लीह्नः क्षताद्बद्धगुदादष्टमं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ—उदररोग[७] आठ प्रकारका है १ वातोदर[८] २ पित्तोदर[९] ३ कफोदर[१०] ४ त्रिदोषोदर[११]

---

[१] उरोग्रह यह हृद्रोगका एक भेद है। उसका विशेष लक्षण यह है कि रक्त, मांस, प्लीहा और यकृत् इनकी उरोग्रह होतेही समय वृद्धि होती है ऐसा जानना और वातादिदोष कुपित होकर रसधातु दूषित करके हृदयमें जाकर हृदयको पीडा करे।

[२] वातज हृदयरोगमें हृदय ऐंचने सरीखा, सुईसे टोचने सरीखा, फोडने सरीखा, दो टुकडे करनेके समान, मथनेके समान, कुल्हाडीसे फाडनेके समान पीडा होती है।

[३] पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयसे धुआं निकलतासा मालूम होय, मूर्च्छा पसीना और मुखका सूखना ये लक्षण होते हैं।

[४] कफके हृदयरोगमें भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकड जाय, मंदाग्नि, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं।

[५] जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलतेहों उसे त्रिदोषका हृद्रोग जानना। इसमें कुछभी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है, उस गांठसे कृमि पैदा होते हैं ऐसा चरकमें लिखा है।

[६] तीव्र पीडा करके तथा नोचनेकीसी पीडा करके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना, उत्क्लेद (ओकारी आनेके समान मालूम हो), थूकना, तोद (सुई चुभानेकीसी पीडा), शूल, हृल्लास, अंधेरा आने, अरुचि, नेत्र काले पडजायँ और मुखशोष ये लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं।

[७] अफरा, चलनेकी शक्तिका नाश, दुर्बलता, मंदाग्नि, सूजन, अंगग्लानि, वायुका तथा मलका रुकना, दाह, तंद्रा ये लक्षण सब उदररोगमें होते हैं।

[८] वातोदरमें हाथ, पैर, नाभि और कूख इनमें सूजन होय, संधियोंका टूटना तथा कूंख, पसवाडे, पेट, कमर इनमें पीडा, सूखी खांसी, अंगोंका टूटना, कमरसे नीचे भागमें भारीपना, मलका संग्रह होना, त्वचा, नख, नेत्रादिका काला लाल होना, पेट अकस्मात् (निमित्तके विना) बडा हो जाय, छोटी सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय, पेटमें चारों तरफ बारीक काली शिरा (नाडियों) से व्याप्त

५ जलोदर[1] ६ प्लीहोदर[2] ७ क्षतोदर[3] ८ बद्धगुदोदर इस प्रकार आठ प्रकारके उदररोग जा

गुल्मरोग ।

गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ८० ॥ द्व
भेदात्त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः सन्निपाततः ॥ रक्तस्त्वष्टम आख्यात

होय, चुटकी मारनेसे फूली पखालके समान शब्द होय, इस उदरमें वायु चारों तरफ डोलकर करता तथा गूँजता है ।

९ पित्तके उदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमें कडुआस, भ्रम, अतिसार, त्वचा, नेत्र इनमें पीलापना, पेट हरा होय, पीली ताँबेके रंगकी नाडियोंसे उदर व्याप्त हो, पसीना आवे, मीसे सब देहमें दाह होय, आँतोंसे धुआँसा निकलता दीखे, हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम शीघ्र पाक होय अर्थात् जलोदरत्वको प्राप्त होय और उसमें घोर पीडा होय ।

१० कफके उदररोगमें हाथ, पैर आदि अंगोंमें शून्यता हो और जकड जांय, सूजन होय, भारी होजाय, निद्रा आवे, वमन होयगी ऐसा मालूम होय, अरुचि होय, खांसी होय, त्वचा नेत्रादिक सफेद हों, पेट निश्चल, चिकना, सफेद, नाडियोंसे व्याप्त हो, इसकी वृद्धि बहुत होय, पेट करडा और शीतल मालूम होय, तथा भारी और स्थिर होय ।

११ खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख, केश (बार), मल, मूत्र और आर्तव (दर्शका रुधिर) मिला अन्न पान देय, अथवा जिसका शत्रु विष देवे, अथवा दुष्टांबु (जहर मि मछली तिनका पत्ता आदि औटाहुआ ऐसा जल) और दूषी विष (मन्दविष) इनके सेवन रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यंत भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न हैं, वे शीतकालमें अथवा पवन चलते समय, अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगे उस दिन करके कोपको प्राप्त होते हैं और दाह होय, वह रोगी निरंतर विषके संयोगसे मूर्च्छित होय, पीलावर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय, इसी सन्निपातोदरको दूष्योदर कहते हैं ।

---

१ जिसने स्नेह घृत तैलादि पान किया होय, अथवा अनुवासन वस्ति की हो, वमन किया अथवा दस्त किये हो, अथवा निरूहवस्ति कीहो, ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जल वाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होते हैं । वे उदक बहनेवाले स्रोत (मार्ग) स्नेहसे उपलिप्त (चि होनेसे उदरको उत्पन्न करते हैं, वह जलोदर होता है. उसमें चिकनापन दीखे, ऊंचा होय, ना पास बहुत ऊँचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय, जैसे पानीसे पखालमें जल हिलता है उसी प्रकार हिले, गुडगुड शब्द करे, काँपे इसको जलोदर अर्थात् दररोग कहते हैं ।

२ विदाही (वंशकरीरादि) अर्थात् दाह करनेवाली और अभिष्यंदि (दध्यादि) अर्थात् रोकनेवाले ऐसे अन्न निरन्तर सेवन करनेवाले मनुष्यके अत्यंत दुष्ट भये जो रुधिर और कफ (बढकर प्लीह (तापतिल्ली) को बढाते हैं, इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते हैं । यह बांईतरफ बढता इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाता है, देहमें मंद ज्वर होय, मंदाग्नि होय तथा कफपित्तोद लक्षण इसमें मिलते हों, बल क्षीण होय और अत्यंत पीला वर्ण होजाय ।

अर्थ—गुल्म (गोलेका) रोग आठ कारका है जैसे १ वातगोला २ पित्तगोला ३ कफगुल्म ४ वातपित्तगुल्म ५ पित्तकफगुल्म ६ कफवातगुल्म ७ संनिपातगुल्म ८ रक्तगुल्म इस प्रकार आठ प्रकारका गुल्मरोग जानना ॥

---

३ काँटा धूल आदि अन्नके साथ मिलकर पेटमें चला जाय, अर्थात् पक्वाशयमें विलोम (टेढा तिरछा) चलाजाय तब आँतोंको काटे और सीधा जाय तो नहीं काटे, अथवा जँभाई, अतिअशन करनेसे अर्थात् रोकनेसे आँतें फटजायँ। उन फटे आँतोंसे गलित पानीके समान स्राव गुदाके मार्ग होकर झरे, नाभिके नीचेका भाग बढे, नोचनेकीसी तथा भेद (चीरने) कीसी पीडासे अत्यंत व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रंथातरमें परिस्रावि उदर कहते हैं और कहीं छिद्रोदर कहते हैं ऐसा यह क्षतोदर है।

४ जिस पुरुषकी आँत उपलेपी अर्थात् गाढे अन्न (शाकादिक) करके अथवा वाल तथा वारीक पत्थरके टुकडे करके बद्ध होजाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आँतडीकी नलीमें होकर जैसे बुहारीसे झारा तृण धूर आदि क्रमसे बैठता है उसी प्रकार यही बढता है। और वह मल बडे कष्टसे गुदद्वारा थोडा थोडा निकलता है। जब मलका निकसना बंद होजाय, तब मल दोषों-करके गुदासे ऊपर आता है, इसीसे उदर बढता है अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपक-स्थानकी वृद्धि हो इसीसे इस उदरको बद्धगुदोदर कहते हैं। अथवा गुदाके ऊपर आँतोंको बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते हैं।

---

१ जो गुल्म कभी नाभि, कभी वस्ति, कभी पसवाडेमें चलाजाय, तथा कभी लंबा, कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय, तथा उसमें कभी थोडी, कभी बहुत पीडा होय, तोद भेद (सुई चुभाने-कीसी पीडा) होय, अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय, मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे, शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाडे, कंधा और मस्तक इनमें पीडा होय। जो गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे और भोजन करनेके पिछाडी नरम होजाय, वह गोला वादीसे प्रगट होता है। उसमें रूखा, कषैला, कडुआ, तीखा पदार्थ खानेसे सुख नहीं होता।

२ ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें ललाई, अन्न पचनेके समय अत्यंत शूल होय, पसीना आवे, जलन होय, फोडाके समान स्पर्श न सहजाय ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं।

३ देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी ग्लानि, सूखी रद (उबाकी), खांसी, अरुचि, भारी-पन, शीतका लगना, थोडी पीडा होय, गुल्म (गोला) कठिन होय और ऊँचा होय ये सब कफा-त्मक गुल्मके लक्षण हैं।

४ जिस गुल्ममें वात और पित्त इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको वातपित्तका गुल्म जानना।

५ जिस गुल्ममें पित्त और कफ इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको पित्तकफका गुल्म जानना।

६ जिस गुल्ममें कफ और वात इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसे कफवातका गुल्म जानना।

७ भारी पीडा करनेवाला, दाह करके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन, तथा ऊँचा और शीघ्र दाह करके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला ऐसे त्रिदोषज गुल्मको असाध्य जानना।

मूत्राघातरोग ।

मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ९१ ॥ वातकुण्डलिकापूर्वं वाताष्ठीला ततः परम् ॥ वातबस्तिस्तृतीयः स्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः ॥९२॥ पंचमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः ॥ मूत्रोत्सर्गः सप्तमः स्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाष्टमः ॥९३॥ मूत्रशुक्रं तु नवमं विड्घातो दशमः स्मृतः ॥ मूत्रसादश्चोष्णवातो बस्तिकुण्डलिका तथा ॥ ९४ ॥ त्रयोऽप्येते मूत्रघाताः पृथग्घोराः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थ—मूत्राघातरोग १३ प्रकारका है । जैसे १ वातकुंडलिका २ वाताष्ठीला ३
तवस्ति ४ मूत्रातीत ५ मूत्रजठर ६ मूत्रक्षय ७ मूत्रोत्सर्ग ८ मूत्रग्रंथि ९ मूत्र

---

८ नई प्रसूत भई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे अथवा अपक्व गर्भपात होनेसे अथवा ऋतु समय अपथ्य भोजन करनेसे वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर (जो ऋतुसमय निकले) लेकर गुल्म करता है वह गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होता है । यह गुल्म बहुत देरमें गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नहीं हिले, शूलयुक्त होय, गर्भके समान सब लक्ष (अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पडजाय, स्तनका अग्रभाग काला होजाय और दोह लक्षण सब मिलें ये लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते हैं) यह रक्तजगुल्म स्त्रियोंके होता है. दश म व्यतीत होजाय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

---

१ मूत्रके वेग रोकनेसे कुपित भये दोषोंसे वातकुंडलिकादिक तेरह प्रकारके मूत्राघात रोग होते

२ रूखे पदार्थ खानेसे अथवा मल मूत्रादिके वेगोंके धारण करनेसे कुपित भई जो वायु सो (मूत्राशय) में प्राप्त हो पीडा करे और मूत्रसे मिलकर मूत्रके वेगको विगुण (उलटा) वहां आप कुंडलके आकार (गोलाकार) मूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीडि मूत्रको बारंबार थोडा २ पीडाके साथ त्याग करे । इस दारुण व्याधिको वातकुंडलिका कहते हैं।

३ वस्ति और गुदा इनमें वह वायु अफरा करे, तथा गुदाकी वायुको रोककर चंचल और (ऊँची) ऐसी अष्ठीला (पत्थरकी पिण्डीके सदृश) को प्रगट करे, यह मूत्रके मार्गको रोक और भयंकर पीडा करनेवाली है । उसको वाताष्ठीला कहते हैं ।

४ जो मनुष्य अड (जिद) से मूत्रबाधाको रोकता है उसको वस्ति (मूत्राशय) के मुख बन्द कर देता है तब उसका मूत्र बंद होजाय और वह वायु वस्तिमें और कूखमें पीडा करे व्याधिको वातवस्ति कहते हैं, यह बडे कष्टसे साध्य होती है ।

५ मूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वह जल्दी नहीं उतरे और मूतते समय धीरे धीरे रोगको मूत्रातीत कहते ।

६ मूत्रके वेगको रोकनेसे मूत्रवेगधारणजनित और उदावर्तका कारणभूत ऐसा

१० विड्घात ११ मूत्रसाद १२ उष्णवात १३ वस्तिकुंडलिका ऐसे तेरह प्रकारके मूत्राघात जानने । तिनमें मूत्रसाद उष्णवात वस्ति कुंडलिया ये तीन बडे भारी प्राणसंकट करनेवाले हैं । पीडा थोडी होकर मूत्रका रुकना अधिक होवे उस व्याधिको मूत्राघात कहते हैं । और मूत्रकृच्छ्र मेंमूत्रका रुकना अल्प होकर पीडा अत्यंत होती है इतना मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्रमें भेद है ॥

मूत्रकृच्छ्र ।

मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ५५ ॥ संनि-

---

कुपित होनेसे पेट बहुत फूल जाय और नाभिके नीचे तीव्र वेदना संयुक्त अफरा कर, अधावस्तिका रोध करनेवाला ऐसे इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं ।

७ रूखा अथवा श्रांत (थक गया) देह जिसका ऐसे पुरुषके वस्तिमूत्राशयमें रहे जो पित्त और वायु सो मूत्रका क्षय करे और पीडा तथा दाह होता है, उसको मूत्रक्षय कहते हैं ।

८ प्रवृत्त भया मूत्र वस्तिमें अथवा शिश्न (लिङ्ग) में अथवा शिश्नके अग्रभागमें अटक जाय और बलसे मूत्रको करे भी तो वादीसे वस्तिको फाडकर जो मूत्र निकले वह मन्द मन्द थोडा पीडाके साथ अथवा पीडारहित रुधिरसहित निकले ऐसी विगुण वायुसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्सर्ग कहते हैं ।

९ वस्तिके मुखमें गोल स्थिर छोटीसी गाँठ अकस्मात् होय, उसमें पथरीके समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रंथि कहते हैं ।

१० मूत्रबाधाको रोकके जो पुरुष स्त्रीसंग करे उसका वायु शुक्रको उडाय स्थानसे भ्रष्ट करे, तब मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानीके समान होय, उसको मूत्रशुक्र कहते हैं ।

---

१ रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत् (मल) जब वायु करके उदावर्तको प्राप्त हो तब वह मल मूत्रके मार्गमें आवे उस समय मनुष्य मूतने लगे तो बडे कष्टसे मूत्र उतरे और उसके मूत्रमें विष्ठाकीसी दुर्गन्ध आवे, उसको विड्घात कहते हैं ।

२ पित्त अथवा कफ वा दोनों वायुकरके बिगडे हुए होंय तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूतनेके समय दाह होय जब वह मूत्र पृथ्वीमें सूख जाय तब गोरोचन शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय अथवा सर्व वर्णका होय, इस रोगको मूत्रसाद कहते हैं ।

३ व्यायाम, दंड, कसरत, अतिमार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपित भया जो पित्त सो वस्तिमें प्राप्त होय वायुसे मिल वस्ति, अंडकोश और गुदा इनमें दाह करे और हल्दीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्र वारंवार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं ।

४ जल्दी जल्दी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, पीडासे वस्ति अपने स्थानको छोड ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहै, उससे शूल, कंप और दाह ये होंय, मूतकी एक एक बूंद गिरे । यदि वस्ति जोरसे पीडित होय तो बडी धार पडे वस्तिमें सूजन होय, पेटमें पीडा होय इस रोगको वस्तिकुंडलिका कहते हैं ।

पाताच्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रं तु पञ्चमम् ॥ विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं घातकृच्छ्रं च सप्तमम् ॥५६॥ अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रं-

अर्थ-मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है। जैसे १ वातमूत्रकृच्छ्र[1] २ पित्तमूत्रकृच्छ्र[2] ३ क मूत्रकृच्छ्र ४ सँन्निपातमूत्रकृच्छ्र[4] ५ शुक्रमूत्रकृच्छ्र[5] ६ विड्मूत्रकृच्छ्र[6] ७ घातुकृच्छ्र[7] ८ अश्मरीकृर्च्छ्र[8]। इस प्रकार मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है। मूत्रकृच्छ्र कहिये वाता दोष अपने २ कारण करके पृथक् २ अथवा मिलकर कुपित हो मूत्राशयमें प्रवेश मूत्रमार्गको पीडित करें। उस समय वह मनुष्य अत्यन्त क्लेश करके मूते उस रो मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥

अश्मरीरोग।

चतुर्धा चाश्मरी मता ॥ वातात्पित्तात्कफाच्छुक्रात्-

अर्थ-अश्मरी (पथरी रोग) चार प्रकारका है। जैसे १ वाताश्मरी[9] २ पि श्मरी ३ कफाश्मरी[11] और ४ शुक्राश्मरी[12]। इस प्रकार चार प्रकारकी पथरी जानने

---

१ वातके मूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण (जांघ और ऊरु इनकी संधि) मूत्राशय और इन्द्री इनमें पी होय और मूत्र वारंवार थोडा उतरे।

२ पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें पीला, कुछ लाल, पीडायुक्त, अग्निके समान वारंवार कष्टसे मूत्र उत

३ कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और मूत्राशय भारी हो, तथा सूजन होय और मूत्र चिकना हो

४ सन्निपातके मूत्रकृच्छ्रमें सर्व लक्षण होते हैं. यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है।

५ दोषोंके योगमें शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे, तब उस मनुष्यके मूत्रा और लिंग इनमें शूल होय और मूतते समय मूत्रके संग वीर्य पतन होय।

६ मल (विष्ठा) के अवरोध होनेसे वायु विगुण (उलटा) होकर अफरा, वात, शूल मूत्रनाश करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय।

७ मूत बहनेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि) से विंधजाय, अथवा पीडित होय उस वातसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होता है, इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्रके समान होते हैं।

८ पथरीके निदानसे जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

९ वायकी पथरीसे रोगी अत्यन्त पीडा करके व्याप्त होय, दांतोंको चबावे, कांपे, लिं हाथसे रगडे, नाभिको रगडे और रातदिन दुःखसे रोवे और मूत्र आनेके समय पीडा हो कारण अधोवायुका परित्याग करे, मूत्र वारंवार टपक टपकके गिरे, उसकी पथरीका रंग और रूखा होय उसके ऊपर कांटे होंय।

१० पित्तकी पथरीसे रोगीके वास्तिमें दाह होय और खारसे जैसा दाह होय ऐसी होय, वस्तिके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालूम होय और भिलावेंकी मींगीके समान होय, पीली, काली होय।

११ कफकी पथरीसे वस्तिमें नोचनेकीसी पीडा होय, शीतलपन होय और पथरी बडी

वायु कुपित हो वस्तिमें जायके मूत्र, शुक्र, धातु, पित्त, कफ इनको सुखायके उसीके मुखमें क्रम करके पाषाणके गोलेके समान गाँठ उत्पन्न करे, इस रोगको पथरी कहते हैं । जैसे गौके पित्तमें क्रमसे गोलोचन होता है उसी प्रकार पथरी होती है. इसमें वस्तिका फूलना, तथा वस्ति, शिश्न (लिंग) और अंडकोश इनमें पीडा तथा मूत्रकृच्छ्र, अरुचि इत्यादिक उपद्रव होते हैं । उस पथरीका पाक होकर बालूके समान मूत्रमार्गमें होकर गिरे, उसको शर्कराश्मरी कहते हैं ॥

प्रमेहरोग ।

तथा मेहाश्च विंशतिः ॥ ५७ ॥ इक्षुमेहः सुरामेहः पिष्टमेहश्च सान्द्रकः ॥ शुक्रमेहोदकाख्यौ च लालामेहश्च शीतकः ॥५८॥ सिकताह्वः शनैर्मेहो दशैते कफसंभवाः ॥ मंजिष्ठाख्यो हरिद्राह्वो नीलमेहश्च रक्तकः ॥ ५९ ॥ कृष्णमेहः क्षारमेहः षडेते पित्तसंभवाः ॥ हस्तिमेहो वसामेहो मज्जामेहो मधुप्रभः॥६०॥ चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः ॥

अर्थ—प्रमेहरोग बीस प्रकारका है । जैसे १ इक्षुप्रमेह[१], २ सुरामेह[२], ३ पिष्टमेह[३], ४ सांद्रमेह[४], ५ शुक्रमेह[५], ६ उदकमेह[६], ७ लालामेह[७], ८ शीतमेह[८], ९ सिकतामेह[९] और १० शनैर्मेह[१०] ये

अंडेके समान, स्वच्छ और मद्य (दारू) के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीलीसी होय । यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके होती है ।

[१२] शुक्राश्मरी शुक्र (वीर्य) के रोकनेसे होती है । यह पथरी बडे मनुष्योंकेही होती है । मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे वीर्य चलायमान होगया हो उस समय मैथुन न करे तब शुक्र (वीर्य) बाहर नहीं निकले भीतरही रहै, तब वायु उस शुक्रको उठाकर सुखा देता है. उसीको शुक्रजा अश्मरी कहते हैं । इस करके अंडकोषोंमें सूजन, वलीमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है । इस शुक्राश्मरीकी आदिमें लिंग और अंडकोष, पेडू इनमें पीडा होती है. वीर्यके नाश होनेके कारण पथरीकी नाईं शर्करा उत्पन्न होती है ।

---

[१] इक्षुप्रमेहसे ईखके रसके समान अत्यन्त मीठा मूत्र होय ।

[२] सुराप्रमेहसे दारूके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा मूते ।

[३] पिष्टप्रमेहसे पिसे चावलोंके पानीके समान सफेद और बहुतसा मूते तथा मूतते समय रोमांच हों ।

[४] सांद्रप्रमेहसे रात्रिमें पात्रमें धरनेसे जैसा मूत्र होवे ऐसा मूत्र होय ।

[५] शुक्रप्रमेहसे शुक्र (वीर्य) के समान अथवा शुक्र मिला होय ।

[६] उदकप्रमेह करके स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, बन्धरहित, पानीके समान कुछ गाढा और चिकना मूत होता है ।

[७] लालाप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होता है ।

दश प्रमेह कफजन्य हैं अर्थात् कफसे प्रगट होते हैं १ मांजिष्ठमेह[1], २ हारिद्रामेह[2], ३ नी ४ रक्तमेह[4], ५ कृष्णमेह[5] और ६ क्षारमेह[6] ये छः प्रमेह पित्तजन्य हैं । १ हस्तिमेह[7], २ व ३ मज्जामेह[9], ४ मधुमेह[10] ये चार प्रकारके प्रमेह वातजन्य हैं अर्थात् वातसे प्रगट होते हैं। प्रकार सब मिलकर बिस प्रकारके प्रमेह जानना ॥

सोमरोग ।

सोमरोगस्तथा चैकः-

अर्थ-सब देहमें उदक क्षोभित होकर योनिमार्गसे सफेद रंगका गिरता है उसको सोम कहते हैं वह एकही प्रकारका है ॥

प्रमेहपिटिका ।

प्रमेहपिटिका दश ॥ ६१ ॥ शराविका[11] कच्छपिका[12] पुत्रिणी विनतालजी ॥ मसूरिका सर्षपिका जालिनी च विदारिका ॥ ६२॥ विद्रधिश्च दशैताः स्युः पिटिका मेहसंभवाः ॥

अर्थ-प्रमेहकी पिटिका (फुन्सी) दश प्रकारकी हैं । जैसे १ शराविका, २ क

---

८ शीतलप्रमेहसे मधुर तथा अत्यंत शीतल ऐसा बारंबार बहुत मूते ।

९ सिकताप्रमेहसे मूत्रके कण और बालूरेतके समान मलके रवा गिरें ।

१० शनैर्मेहसे धीरे धीरे और मन्द मन्द मूते ।

---

१ मांजिष्ठप्रमेहसे आम दुर्गन्ध और मँजीठके समान मूते ।

२ हारिद्रप्रमेहसे तीक्ष्ण, हल्दीके समान और दाहयुक्त मूते ।

३ नीलप्रमेहसे नीले रंगका अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूते ।

४ रक्तप्रमेहसे दुर्गन्धयुक्त गरम खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करे ।

५ कृष्ण (काले) प्रमेहसे स्याहीके समान काला मूते ।

६ क्षारप्रमेहसे खारी जलके समान गन्ध वर्ण रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है ।

७ हस्तिप्रमेहसे मस्तहाथीके समान निरन्तर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहरठहरके

८ वसाप्रमेहसे वसा (चर्बी) युक्त अथवा वसाके समान मूते ।

९ मज्जाप्रमेहसे मज्जाके समान अथवा मज्जा मिला बारंवार मूते ।

१० मधुप्रमेहसे कषैला, मीठा और चिकना ऐसा मूते ।

११ शराविका पिटिका ऊपरके भागमें ऊँची और मध्यमें बैठीसी होय जैसे कि मि शराव होता है ।

१२ कच्छपिका पिटिका कछएकी पीठके समान कुछ दाहयुक्त होय है ।

पिका, ३ पुत्रिणी[1], ४ विनता[2], ५ अलजी[3], ६ मसूरिका[4], ७ सर्षपिका[5], ८ जालिनी[6], ९ विदारिका[7] और १० विद्रधिका । इस प्रकार दश प्रकारकी पिटिका प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे होती हैं । यह संधिमें मर्मस्थलमें तथा जिस जगह मांस विशेष होता है उस जगह तथा देहमें मेद दुष्ट होनेसे उत्पन्न होती हैं ॥

मेदरोग ।

मेदोदोषस्तथा चैकः—

अर्थ—मेदरोग एक प्रकारका है । उसके लक्षण ये हैं कि, कफको उत्पन्न करनेवाला आहार, मधुरान्न, मधुररस, स्नेहान्न कहिये घृतपक्क गोधूमपिष्टादिक लड्डु शकल्पारे इत्यादिकोंके सेवन करनेसे मेद बढता है उससे अन्यधातु अस्थ्यादि शुक्रांत उनका पोषण नहीं होता है किंतु मेद बढता है जिससे मनुष्य सर्व कर्ममें अशक्त होजाता है। और अल्पश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, श्वासावरोध, सोतेमें अत्यंत ठोरना, शरीरमें ग्लानि, छींक, पसीनोंकी दुर्गंधि, अल्पप्राण और अल्पमैथुन इत्यादिक उपद्रव होते हैं। मेद सर्व प्राणिमात्रोंके प्रायः करके रहती है । अतएव जिस मनुष्यको मेद रोग होता है उसको बहुधा पेटकी अधिक वृद्धि होती है और उस मेद करके मार्गरुद्ध होनेपर पवन कोष्ठाग्निमें विशेष करके संचार करने लगताहै और अग्निको प्रदीप्त करके आहारको शोषण करलेता है । इसीसे भोजन कियाहुआ पदार्थ तत्काल जीर्ण होकर दूसरे भोजनकी इच्छा होती है । कदाचित् भोजनका समय टलजावे तो घोर विकार प्रमेह, पिडिका, ज्वर, भंगदर, विद्रधि और वातरोग इनमेंसे कोईसा एक रोग होता है । और विशेष कर अग्नि और वायु ये उपद्रवकारी होनेसे मेदोरोगीके शरीरको जलाते हैं । इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे वनसंबंधी अग्नि वायुकी सहायतासे वनको जलाता है इस प्रकार जलावे तथा वह मेद अत्यंत कुपित होनेसे एकाएकी वातादिदोष कुपित हो घोर उपद्रव करके मनुष्यको शीघ्र मारते हैं । उस मेदके योगसे शरीर अत्यंत मोठा होनेसे मनुष्यका उदर, स्तन और कूले

---

[1] पुत्रिणी पिटिका यह बीचमें बडी फुन्सी होय उसके चारों ओर छोटी छोटी फुन्सियां और होंय उसको पुत्रिणी कहते हैं ।

[2] विनता फुन्सी पीठमें अथवा पेटमें होती है । इसकी पीडा बहुत होय, ठंढी होय तथा बडी और नीले रंगकी होती है ।

[3] अलजी पिटिका लाल, काली, बारीक फोडों करके व्याप्त और भयंकर होती है ।

[4] मसूरिका पिटिका मसूरकी दालके समान बडी होती है ।

[5] सर्षपिका पिटिका सफेद सरसोंके समान बडी होती है ।

[6] जालिनी पिटिका तीव्र दाहकरके संयुक्त और मांसके जालसे व्याप्त होती है ।

[7] विदारिका पिटिका विदारीकन्दके समान गोल और करडी होती है।

[8] विद्रधिका पिटिका विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होती है ।

ये चलते समय थलर २ हिलते हैं तथा विसर्प, भगंदर, ज्वर, अतिसार, प्रमेह, श्लीपद इत्यादि उपद्रव होते हैं। इस प्रकार मेदरोगके लक्षण जानने ॥

शोथ रोग।

शोथरोगा नव स्मृताः ॥६३॥ दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषाद

अर्थ—शोथरोग नौ प्रकारका है १ वातशोथ २ पित्तशोथ ३ कफशोथ ४ वातपि ५ पित्तकफशोथ ६ कफवातशोथ ७ त्रिदोषकी शोथ ८ अभिघातशोथ और ९ वि इस प्रकार शोथ रोग नौ प्रकारका है। इसको लोकमें सूजन कहते हैं। स्वकारणसे कुपित होकर उसी प्रकार दुष्ट हुआ रक्त पित्त और कफ इनको बाहरकी शिराओंमें फिर वह वायु उस रक्तपित्त और कफकरके रुद्धगति हो त्वचा और मांस इनके आश्रित कहिये सूजन उसको अकस्मात् उत्पन्न करे उस रोगको सूजन कहते हैं ॥

---

१ वादीसे सूजन चंचल, त्वचा पतली होजाय, कठोर हो, लाल, काली तथा त्वचा पडजाय, भिन्न भिन्न वेदना होय, अथवा रोमांच और पीडा हो, कदाचित् निमित्तके बिना हो जाय, उस सूजनके दाबनेसे तत्क्षण ऊपरको उठ आवे, दिनमें जोर बहुत करे।

२ पित्तकी सूजन नरम नरम कुछ दुर्गन्धयुक्त काली पीली और लाल होय।

३ कफकी सूजन भारी स्थिर और पीली होती है, इसके योगसे अन्नद्वेष, लारका गिरना, वमन, मंदाग्नि ये लक्षण होंय, तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुत कालमें होय। दबानेसे ऊपरको नहीं उठे, रात्रिमें इसकी प्रबलता होती है।

४ वात, पित्त इन दोनोंके लक्षण जब सूजनमें हों उसको वातपित्तकी सूजन कहते हैं।

५ पित्त और कफ इनके लक्षण जिस सूजनमें मिलते हों उसको पित्त कफकी सूजन जानना

६ कफ और वात इन दोनोंके लक्षण जिस सूजनमें मिले उसको कफ और वातकी जानना।

७ सन्निपातके सूजनमें वात पित्त और कफ इन तीनोंके भी लक्षण होते हैं।

८ अभिघातज सूजन काष्ठादिककी चोट लगनेसे, शस्त्रादिकसे छेदन होनेसे, पत्थर आदिसे नेसे अथवा घावके होनेसे, लकडी आदिके प्रहारसे, शीतल पवन लगनेसे, समुद्रकी पवन भिलावेंका तेल लगजानेसे और कौंचकी फलीका स्पर्श होनेसे जो सूजन होय सो चारों तरफ जाय, उसमें अत्यन्त दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेष करके इसमें पित्तके लक्षण हों

९ विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसे अथवा मूतनेसे, अथवा निर्विष (विषरहित मनु दिक) प्राणीके दाढ, दांत, नख लगनेसे, अथवा सविष प्राणियोंके विष्ठा, मूत्र, शुक्र इनसे अथवा मलिन वस्त्र अंगमें लगनेसे अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसे, अथवा संयोगविष लगनेसे जो सूजन उत्पन्न होय सो विषज कहलाती है। वह सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश नवाला, जल्दी प्रकट होनेवाली, दाह और पीडा करनेवाली होती है।

वृद्धिरोग ।

वृद्धयः सप्त गदिता वातात्पित्तात्कफेन च ॥ ६४ ॥
रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमी ॥

अर्थ—वृषण जिससे बडे होवें उस रोगको वृद्धि कहते हैं । वह रोग सात प्रकारका है जैसे १ वातवृद्धि[१] २ पित्तवृद्धि[२] ३ कफवृद्धि[३] ४ रक्तवृद्धि[४] ५ मेदोवृद्धि[५] ६ मूत्रवृद्धि[६] होय उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण होंय, दाह होय, हाथ लगानेसे दूखे, इसीसे नेत्र लाल होंय, उसमें अत्यंत दाह तथा पाक होंय: और ७ अन्त्रवृद्धि[७] । इस प्रकार वृद्धिरोग सात प्रकारका है । वृद्धिरोग अर्थात् वायु अपने स्वकारण करके कुपित हो सूजन और शूलको करती नीचेके भागमें जायकर वंक्षणद्वारा अंडकोशोंमें जायके वृषणवाहिनी नाडियोंको दूषित कर कफ जैसे वृषणकी गोलाके ऊपरकी त्वचाको बढाय देवै उसको वृद्धि रोग कहतेहैं ॥

---

१ वातसे भरी मस्तक जैसी और हाथके लगनेसे मालूम होय ऐसी मालूम होय, रूक्ष और विना कारण दूखने लगे उसे वातकी अंडवृद्धि जानना ।

२ जिसमें पित्तके लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धिको पित्तकी अंडवृद्धि जानना । इससे अंड पके गूलरके समान होता है तथा, दाह, गरमी और पाक होता है ।

३ कफकी अंडवृद्धिमें अंड शीतल, भारी, चिकना (तथा खुजलीयुक्त) कठिन और थोडी पीडायुक्त होताहै ।

४ काले फोडोंसे व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धिके लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धिको रक्तज अंडवृद्धि कहते हैं ।

५ मेदसे जो अंडवृद्धि होती है वह कफकी वृद्धिके समान मृदु, नरम तथा तालफलके समान अर्थात् पीले रंगकी होय ।

६ मूत्रको रोकनेका जिसको अभ्यास होय उसके यह मूत्रवृद्धिरोग होय है, वह पुरुष जब चले तब पानीसे भरे पखालके समान डबक डबक हिले तथा बजे और उसमें पीडा थोडी हो हाथके छूनेसे नरम मालूम होय, उसमें मूत्रकृच्छ्रकीसी पीडा होय, फल और कोष दोनों इधर उधर चलायमान होंय ।

७ वातकोपकारक आहारके सेवनसे, शीतल जलमें प्रवेश करके स्नान करनेसे, उपस्थित मूत्रादिकके वेगोंके धारण करनेसे, अप्राप्तवेग (अर्थात् करनेकी इच्छा न होय) उसको बलपूर्वक करनेसे, भारी बोझके उठानेसे, अतिमार्गके चलनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा (अर्थात् टेढा तिरछा अंग करके गमनादिक करना), बलवान्से वैर करना, कठिन धनुषका ईंचना इत्यादि ऐसेही और कारणोंसे कुपित भई जो वायु सो छोटी आंतोंके अवयवोंके एक देशको बिगाडकर अर्थात् उनका संकोच कर अपने रहनेके स्थानसे उसको नीचे लेजाय तब वंक्षण संधिमें स्थित होकर उस स्थानमें गांठके समान सूजनको प्रगट करे उसकी उपेक्षा करनेसे (अर्थात् औषध न करनेसे) तथा अंडकोशोंके दाबनेसे जो वायु कौं कौं शब्द करै, तथा हाथके दाबनेसे वायु ऊपरको चढ जाय और छोडनेसे फिर नीचे दबकर अंडोंको फुलायदे यह रोग अंत्रवृद्धि कहलाता है ।

अंडवृद्धिरोग ।

अण्डवृद्धिस्तथा चैकः-

अर्थ-अंडकोशकी वृद्धिको (पोते छिटकना) तथा कुरंड कहते हैं । यह एक प्रकारकी इसके लक्षण बहुधा अंडवृद्धिके समान होते हैं ॥

गंडमाला गलगण्ड और अपचीरोग ।

तथैका गण्डमालिका ॥ ६५ ॥ गण्डापचीति चैका स्यात्-

अर्थ-गंडमाला[1], गंड (गलगण्ड[2]) और अपची[3] ये तीन रोग एक एक प्रकारके हैं। लक्षण नीचे लिखे सो देखना ॥

ग्रंथिरोग ।

ग्रन्थयो नवधा मताः ॥ त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्ताच्छिराभिर्मे-
दसो व्रणात् ॥ ६६ ॥ अस्थ्ना मांसेन नवमः-

अर्थ-ग्रंथिरोग नौ प्रकारका है । १ वातग्रंथि[4] २ पित्तग्रंथि[5] ३ क

---

[1] मेद और कफसे प्रगट भया, कूख, कंधा, नाडके पिछाडी मन्या नाडीमें, गलेमें और (जानुमेढ्रसंधि) इन ठिकानोंमें छोटे बेरके बराबर, बडे बेरके समान, आमलेके समान, ऐसी प्रकारकी गंड होती हैं, वे बहुत दिनमें हौले हौले पके, उनको गंडमाला कहते हैं ।

[2] मन्या, नाडी, ठोडी इन ठिकानेपर अंडके बराबर ग्रंथिरूप सूजन लंबायमान होती है वह सूजन बडी छोटीभी रहती है, उसको गंड अथवा गलगंड कहते हैं, वह गलगंडरोग गलेमें होता है सो वायु और इनके दुष्ट होनेसे होता है और मन्यानाडीमें जो होता है सो मेदके दुष्ट होता है ।

[3] गंडमालाकी गांठ पके नहीं, अथवा पाक होनेसे स्रवे, कोई नष्ट हो जाय, दूसरी नवीन ऐसी पीडा बहुत दिन रहे उसको अपची कहते हैं ।

[4] वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो, सूई चुभनेकी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकीसी पीडा होय, फोरनेकीसी पीडा होय, काला वर्ण बस्तिकी समान चौडी होय और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले ।

[5] पित्तकी गांठ आगसे भरेके समान अत्यंत दाह करे, आँतोंसे धुआँ निकलतासा मालूम हो मानो सिंगी लगायके कोई चूसे है, खार लगानेके सदृश पका मालूम हो, अग्निके समान जलीसी मालूम हो, उस गांठका रंग लाल अथवा किंचित् पीला होय और फूटनेसे उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले

६ कफकी ग्रंथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण (किंचित् विवर्ण), थोडी पीडा हो, खुजली चले, पत्थरके समान कठिन बडी होय और चिरकालमें बढनेवाली होय, फूटनेसे गाढी राध निकले ।

४ रक्तग्रंथि[1] ५ शिराग्रंथि ६ मेदोग्रंथि[3] ७ व्रणग्रंथि[4] ८ अस्थिग्रंथि[5] और ९ मांसग्रंथि[6] । इस प्रकार ग्रंथिरोग नौ प्रकारका है । ग्रंथि कहिये गाँठ । वातादिदोष मांस और रक्त ये दुष्ट होकर मेद और शिरा इनको दूषित कर गोल और ऊंची तथा गांठके समान सूजन उत्पन्न करे उसको ग्रंथि अर्थात् गांठ कहते हैं ॥

अर्बुदरोग ।

षड्विधं स्यात्तथार्बुदम् ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तान्मांसादपि च मे-

अर्थ—अर्बुदरोग[7] छः प्रकारका है । जैसे १ वातार्बुद २ पित्तार्बुद, ३ कफार्बुद, ४ रक्तार्बुद, ५ मांसार्बुद और ६ मेदकी अर्बुद ऐसे अर्बुद रोगको छः प्रकारका जानना ॥

---

१ रक्त दुष्ट होकर उससे जो ग्रन्थि उत्पन्न होती है उसको रक्तग्रन्थि कहते हैं. इसके लक्षण पित्तग्रन्थिके सदृश जानना ।

२ निर्बल पुरुष शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर एकत्र कर और सुखायकर ऊँची गाँठ शीघ्र प्रगट करती है ।

३ मेदकी ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय, चिकनी, बडी, खुजली युक्त, पीडारहित होय और जब वह फूटजाय तब उसमेंसे तिलकल्कके समान अथवा घृतके समान मेदा निकले ।

४ क्षतादिकोंकरके व्रण होकर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको व्रणग्रन्थि कहते हैं ।

५ वातादिक दोष कुपित होकर हड्डियोंको दूषित करें तिनसे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अस्थिग्रंथि कहते हैं ।

६ मांसके दुष्ट होनेपर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको मांसग्रंथि कहते हैं और व्रणग्रन्थि तथा अस्थिग्रंथियोंमें जिस दोषका कोप हो उसीके लक्षणसे जानलेना ।

७ शरीरके किसी भागमें दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिरको दुष्ट कर गोल, स्थिर, मन्द पीडायुक्त पूर्वोक्त ग्रंथियोंसे बडी, बडी जिसकी जड होय, बहुकालमें बढनेवाली तथा पकनेवाली ऐसी मांसकी गाँठ होती है उसको वैद्य अर्बुद कहते हैं ।

८ इन वातादि तीन दोषोंके अर्बुदोंके लक्षण सर्वदा ग्रन्थिके समान होते हैं ।

९ दुष्ट भये जो दोष सो नसोंमें रहा जो रुधिर उसको संकोच कर तथा पीडित कर मांसके गोलेको प्रगट करे वह यत्किञ्चित् पकनेवाला तथा स्रावयुक्त हो और मांसांकुरसे व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला ऐसा होता है, उसमेंसे रुधिर बहाकरै, यह रक्तार्बुद असाध्य है । वह रक्तार्बुदपीडित रोगी रक्तक्षयके उपद्रवों करके पीडित होता है इससे उसका वर्ण पीला होजाता है । ये रक्तार्बुदके लक्षण हैं ।

१० मुक्का आदिके लगनेसे अंगमें पीडा होय, उस पीडासे दुष्ट भया जो मांस सो सूजन उत्पन्न करे । उस सूजनमें पीडा नहीं होय और वह चिकनी, देहके वर्ण होय, पके नहीं, पत्थरके समान कठिन, हले नहीं, ऐसी होती है । जिस मनुष्यका मांस बिगडजाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे, उसके यह अर्बुद रोग होता है । यह मांसार्बुद असाध्य कहागया है । कोई मांसार्बुदका भेद रसोली कहते हैं ।

श्लीपदरोग ।

दसः ॥ ६७ ॥ श्लीपदं च त्रिधा प्रोक्तं वातात्पित्तात्कफादपि ॥

अर्थ-श्लीपद रोग तीन प्रकारका है । १ वातका श्लीपद २ पित्तका श्लीपद ३ क
श्लीपद ऐसे तीन प्रकार जानने ॥

विद्रधिरोग ।

विद्रधिः षड्विधः ख्यातो वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ६८ ॥
रक्तात्क्षतात्त्रिदोषैश्च-

अर्थ-विद्रधिरोग छः प्रकारका है । जैसे १ वातकी विद्रधि २ पित्तकी विद्रधि
कफकी विद्रधि ४ रुधिरजन्यविद्रधि ५ क्षतजन्यविद्रधि और ६ संनिपातकी विद्रधि
प्रकार छः भेद विद्रधिके हैं ॥

---

१ जो सूजन प्रथम वंक्षण (जांघकी संधि) में उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोंमें आवै और
साथ ज्वरभी होय तो इस रोगको श्लीपद कहते हैं । यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न,
नाक इनमें भी होती है ऐसा किसीका मत है ।

२ वातकी श्लीपद काली, रूखी, फटी और जिसमें पीडा होय, विना कारणके दूखे और
ज्वर बहुत होय ।

३ पित्तकी श्लीपद पीले रंगकी दाह और ज्वरयुक्त होय, तथा नरम होय ।

४ कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना सफेद, पीला, भारी और कठिन होता है ।

५ अत्यंत बढे तथा अस्थि (हड्डी) का आश्रय करके रहनेवाले वातादिदोष त्वचा, रुधिर,
और मेद इनको दुष्ट कर धीरेमें भयंकर शोथ उत्पन्न करें, उसकी जड हड्डीपर्यंत पहुँच
उत्पत्तिकालमें अत्यंत पीडाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ (सूजन) होय, उसको वि
कहते हैं ।

६ जो विद्रधि काली, लाल, विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोटी हो, अत्यंत वेद
युक्त और उसका प्रगट होना तथा पाक नाना प्रकारका होय, उसको वातविद्रधि कहते हैं ।

७ पित्तकी विद्रधि पके गूलरके समान होय, अथवा काला वर्ण होय, ज्वर, दाह करने
उसका प्रगट और पाक शीघ्र होय ।

८ कफकी विद्रधि मिट्टीके शरावसदृश बडी होय, पीलावर्ण, शीतल, चिकनी, अल्पपीडा
उसकी उत्पत्ति और पाक देरमें होती है ।

९ काले फोडोंसे व्याप्त, श्यामवर्ण, दाह, पीडा और ज्वर ये उसमें तीव्र होंय, तथा
विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होय, उसको रक्तविद्रधि जानना ।

१० लकडी, पत्थर, ढेला आदिका अभिघात (चोट लगना पिचजाना इत्यादि) हों
अथवा तल्वार, तीर, बरछी इत्यादिक लगनेसे घाव होजानेसे, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कु
वायु करके विस्तृत (फैली) क्षतोष्मा (घावकी गरमी) और रुधिर सहित पित्तको कोप करे
पुरुषके ज्वर, प्यास और दाह होय और उसमें पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलते हों । इसको
विद्रधि जानना । इसकोही आगन्तुज विद्रधि कहते हैं ।

११ संनिपातज विद्रधिमें अनेक प्रकारकी पीडा (जैसे तोद, दाह, खुजली आदि) तथा अनेक

व्रणरोग ।

व्रणाः पंचदशोदिताः ॥ तेषां चतुर्धा भेदः स्यादागंतुर्देहजस्तथा ॥६९॥ शुद्धो दुष्टश्च विज्ञेयस्तत्संख्या कथ्यते पृथक् ॥ वातव्रणः पित्तजश्च कफजो रक्तजो व्रणः ॥७०॥ वातपित्तभवश्चान्यो वातश्लेष्मभवस्तथा ॥ तथा पित्तकफाभ्यां च सन्निपातेन चाष्टमः ॥७१॥ नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः ॥ श्लेष्मरक्तभवश्चान्यो वातपित्तासृगुद्भवः ॥७२॥ वातश्लेष्मासृगुत्पन्नः पित्तश्लेष्मास्रसंभवः ॥ संनिपातासृगुद्भूत इति पंचदश व्रणाः ॥ ७३ ॥

अर्थ—व्रण (घाव) पंद्रह प्रकारके हैं । उनके चार भेद हैं । जैसे १ आगंतुक[1] व्रण २ देहज[2]व्रण ३ शुद्ध[3]व्रण ४ दुष्ट[4]व्रण । इस प्रकार चार प्रकारके व्रण जानने । उनकी संख्या कहते हैं । जैसे १ वातव्रण[5] २ पित्त[6]व्रण ३ कफव्रण[7] ४ रक्तजव्रण[8] ५ वातपित्त[9]व्रण ६ वातकफ[10]व्रण ७ * पित्तकफव्रण ८ संन्निपातव्रण ९ वातरक्तव्रण १० रक्तपित्तव्रण

रका स्राव (जैसे पतला, पीला सफेद स्राव होय, घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरा हो अर्थात् अग्रभाग अति ऊंचा होय), छोटी, बडी, कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके ऐसी होय ।

[1] अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्रोंके अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते हैं उनको आगन्तुकव्रण कहते हैं ।

[2] वात, पित्त, कफ ये दोष दुष्ट होकर उनसे व्रण होता है उसको देहज व्रण कहते हैं ।

[3] जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यन्त नरम होय, स्वच्छ, चिकना, थोडी पीडायुक्त भले प्रकारका होय, दोष रक्तादि स्रावरहित होय उसको शुद्धव्रण जानना ।

[4] जिसमेंसे दुर्गंधयुक्त राध और सडाभया रुधिर बहै, जो ऊपर ऊँचा तथा भीतरसे पोला हो बहुत दिन रहनेवाला होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं, वह शुद्धलिंगके विपरीत होता है ।

[5] बादीसे प्रगट व्रणमें जिकडना, तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय, उसमेंसे थोडा स्राव होय तथा पीडा बहुत होय, तथा सुईके चुभानेकीसी पीडा होय और उसका रंग काला होय ।

[6] प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, चिरासा होय, बास आवे, स्राव हो ये पित्तव्रणके लक्षण हैं

[7] कफका स्राव अत्यन्त गाढा, भारी, चिकना, निश्चल, मन्दपीडा, स्रवनेवाला और बहुत कालमें पके ।

[8] जो रक्तके कोपसे होय वह रक्तव्रण । उसमेंसे रुधिर स्रवे ।

[9] वात और पित्त इसके लक्षण जिस व्रणमें होंय, उसे वातापित्तव्रण जानना ।

[10] वायु और कफके लक्षण जिस व्रणमें हों उसे वातकफजव्रण जानना ।

* इसी प्रकारसे पित्तकफव्रण, संनिपातव्रण और वातरक्तव्रण जानने ।

११ कफरक्तव्रण १२ वातपित्त और रक्तजन्यव्रण १३ वातकफ और रुधिरजन्यव्रण
पित्तकफरुधिरजन्यव्रण १५ संनिपात और रुधिरजन्यव्रण । इस प्रकार पंद्रह प्र
व्रण जानने ॥

आगंतुकव्रणरोग ।

सद्योव्रणस्त्वष्टधा स्यादवक्लृप्तविलम्बितौ ॥
छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः ॥ ७४ ॥

अर्थ—सद्योव्रण (आगंतुक) आठ प्रकारका है जैसे १ अवक्लृप्त[२], २ विलंबित[३] ३
४ भिन्न[५] ५ प्रचलित[६] ६ घृष्ट[७] ७ विद्ध[८] और ८ निपातित[९] । इस प्रकार आगंतुकव्रण
प्रकारके हैं ॥

कोष्ठरोग ।

कोष्ठभेदो द्विधाप्रोक्तच्छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः ॥

अर्थ—कोष्ठभेद दो प्रकारका है जसे १ छिन्नांत्रक[१०] है २ निःसृतांत्रक[११] है ॥

---

१ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्र
आकृतिवाले व्रण होते हैं. उनको आगन्तुक व्रण कहते हैं ।
२ जिस व्रणके भीतर कतरनीसे कतरनेके सदृश पीडा होय, उसको अवक्लृप्त व्रण क
३ जिस व्रणका मांस लटकता है उसको विलंबित व्रण कहते हैं ।
४ जो व्रण तिरछा, सरल (सीधा) अथवा लम्बा होय, उसको छिन्नव्रण कहते हैं।
५ बर्छी, भाला, बाण, तलवारके अग्रभाग विषाण (दाँत सींग) इनसे आशय (को
वेधकर थोडासा रुधिर स्रवे (निकले) उसको भिन्नव्रण कहते हैं ।
६ जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा दबना किंवार आदि इनसे
पिचजाय, तथा मज्जा, रुधिर करके युक्त होय (घाव न हो) उसको प्रचलित व्रण क
इसको कोई पिच्चित व्रणभी कहते हैं ।
७ कठिन वस्त्र आदिके घर्षण (घिसने) से, चोटके लगनेसे जिस अंगके ऊपरकी त्व
रहै, तथा आगके समान गरम रुधिर चुवाय उसको घृष्टव्रण कहते हैं ।
८ बारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्रसे आशय विना जो अंग हैं उनमें के
त्रुण्डित (कहिये उनमेंसे वह शस्त्र न निकला होय) निर्गत (कहिये शस्त्र निकल गया
उसको विद्धव्रण कहते हैं ।
९ जिसमें अंग अतिच्छिन्न तथा अतिभिन्न न भया हो और छिन्नभिन्न इन दोनोंके ल
मिलते हों, तथा व्रण तिरछा बांका होय, उसको निपातितव्रण कहते हैं. इसको क्षतव्रणभी क
१० शस्त्रादिकों करके पेटकी आँत टूटगई हो और शस्त्र और आँत ये दोनों भी
हों उसको छिन्नांत्रक कहते हैं ।
११ शस्त्रादिकोंकरके पेटकी आँत टूटके बाहर निकल आई हो उसको निःसृतांत्रक

अस्थिभंगरोग ।

अस्थिभंगोऽष्टधा प्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारिते ॥ ७५ ॥ विवर्तितश्च विश्लिष्टस्तिर्यक्क्षिप्तस्त्वधोगतः ॥ ऊर्ध्वगः संधिभंगश्च–

अर्थ–अस्थिभंग शब्द करके इस जगह हस्तादिकोंके कांडका भंग और संधिभंग इन दोनोंका ग्रहण है। वह भग्नरोग आठ प्रकारका है। जैसे १ भग्नपृष्ठ[1] २ विदारित[2] ३ विवर्तित[3] ४ विश्लिष्ट[4] ५ तिर्यक्क्षिप्त[5] ६ अधोगत[6] ७ ऊर्ध्वग[7] और ८ संधिभंग[8]। इस रीतिसे आठ प्रकार जानना। हड्डी टूटने आदिको भग्न कहते हैं॥

वह्निदग्धरोग ।

वह्निदग्धश्चतुर्विधः ॥ ७६ ॥ प्लुष्टोऽतिदग्धोदुर्दग्धःसम्यग्दग्धश्च कीर्तितः ॥

अर्थ–अग्निसे जलेहुएको दग्ध कहते हैं। वह रोग चार प्रकारका है। जैसे १ प्लुष्ट[9] २ अतिदग्ध[10] ३ दुर्दग्ध[11]। और ४ सम्यग्दग्ध[12]। इस प्रकार अग्निदग्ध रोग चार प्रकारका जानना॥

---

[1] संधियोंके दोनों तरफकी हड्डियोंके परस्पर घिसनेसे सूजन होती है और रात्रिमें पीडा बहुत होय उसको भग्नपृष्ठ कहते हैं। कोई इसको उत्पिष्ट भी कहते हैं।

[2] विश्लिष्ट संधियोंके दोनों तरफकी हड्डियां टूटके उनमें बहुत पीडा होय, उसको विदारित कहते हैं।

[3] विवर्तित संधियोंमें दोनों तरफसे हाड संधिसे पलटजाँय, तब अत्यंत पीडा होय इस संधिमें हाड दोनों तरफ फिरा करे।

[4] विश्लिष्ट संधिमें सूजन और रात्रिमें पीडा होकर सर्वकालमें अत्यंत पीडा होय। संधि शिथिलमात्र होय, इसमें हाडके हटनेसे बीचमें गढेला होजाय।

[5] हड्डीके तिरछे हटनेसे पीडा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोडकर टेढी होजाय।

[6] संधिकी हड्डी एक नीचेको हट जाय तो पीडा होय और संधिकी विरुद्ध चेष्टा होय इसमें संधिके हाड परस्पर दूर होंय परंतु नीचेको गमन करें।

[7] संधिके ऊपरका हाड संधिसे बाहर होजाय, उसमें पीडा होय, उसको ऊर्ध्वग कहते हैं।

[8] संधिकी हड्डी चूर्ण होजावे, अथवा टूटके दो टुकडे हों, उसको संधिभंग कहते हैं।

[9] अग्नि करके अंग दग्ध होनेसे जो अंगका वर्ण पलटजाय उसको प्लुष्ट कहते हैं।

[10] अग्निसे दग्ध होकर रक्त, मांस, शिरा, स्नायु, संधि और हड्डी दीखनेलगे और ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा इनकरके व्याप्त हो, उसको अतिदग्ध कहते हैं।

[11] अग्निसे दग्ध होनेसे बहुत पीडा होय, अंगमें फोडे हों और वे फोडे जल्दी अच्छे न हों, उसको दुर्दग्ध कहते हैं।

[12] अग्निसे जो अंग दग्ध होय और ताड वृक्षके समान अंग काला हो, उसको सम्यग्दग्ध कहते हैं।

नाडीव्रणरोग ।

नाड्यः पंच समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ७७ ॥
त्रिदोषैरपि शल्येन—

अर्थ—नाडीव्रण[1] (नासूर) पाँच प्रकारके हैं । जैसे १ वातनाडीव्रण[2] २ पित्तनाडी[3] ३ कफनाडीव्रण[4] ४ त्रिदोषनाडीव्रण[5] और ५ शल्यनाडीव्रण[6] । इस प्रकार नाडीव्रण पाँ प्रकारका है ।

भगंदररोग[7] ।

तथाष्टौ स्युर्भगन्दराः ॥ शतपोनस्तु पवनादुष्ट्रग्रीवस्तु
पित्ततः ॥ ७८ ॥ परिस्रावी कफाज्ज्ञेय ऋजुर्वातकफो-
द्भवः ॥ परिक्षेपी मरुत्पित्तादर्शोजः कफपित्ततः ॥ ७९ ॥
आगंतुजातश्चोन्मार्गी शंखावर्तस्त्रिदोषजः ॥

अर्थ—भगंदररोग आठ प्रकारका है । तहां १ वातमें शतपोनक[8] २ पित्तसे उष्ट्र

---

[1] जो मूर्ख मनुष्य पके हुए फोडेको कच्चा समझकर उपेक्षा करे, किंवा बहुत राध पडे फोडे उपेक्षा करदे, तब वह बढी हुई राध पूर्वोक्त त्वङ्मांसादिक स्थानमें जायकर उनको भेदकर भीतर पहुँच जाय, तब एक मार्ग कर उसमें वह राध नाडीके समान बहे, इसीसे इसको नाडी (नासूर) कहते हैं ।

[2] वादीसे नाडीव्रणका मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय, इसमेंसे फेनयुक्त स्राव रात्रिमें अधिक स्रवे ।

[3] पित्तके नाडीव्रणमें प्यास, ज्वर और दाह होय । उसमेंसे पीले रंगका और बहुत गरम स्रवे और दिनमें स्राव अधिक होय ।

[4] कफज नाडीव्रणमें सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले, खुजली चले, रातमें स्राव बहुत हो

[5] जिस नाडीव्रणमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना और तीनों दोषोंके लक्षण उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना । इसे भयंकर–प्राणनाश करनेवाली कालरात्रिके जानना ।

[6] किसी प्रकारसे शल्य (कंटकादि) रक्त, मांस, राध आदिके स्थानमें पहुँचकर टूट जा नाडीव्रणको उत्पन्न करै. उस नाडीव्रणमें झाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके समान गरम निक बहै, तथा पीडा होय ।

[7] गुदाके समीप दो अंगुल ऊँची पिछाडी एक पिटिका (फुन्सी) होय उसमें बहुत पीडा और वह पिटिका फूट जाय. उसको भगंदर रोग कहते हैं. यदाह भोजः–"भगं परिसम गुदवस्तिं तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगंदरः " इति ।

[8] कषैले और रूखे पदार्थ खानेसे वायु अत्यंत कुपित होकर गुदास्थानमें जो पि (फुन्सी) करे, उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुंसी पके और फूट जायँ तब पीडा होय

३ कफसे परिस्रावी ४ वातकफसे ऋजु ५ वातपित्तसे परिक्षेपी ६ कफपित्तसे अर्शोज ७ आगंतुज उन्मार्गी और त्रिदोषसे ८ शंखावर्त भगंदर होता है इस प्रकार आठ प्रकारके भगंदर जानने ॥

उपदंशरोग ।

मेढ्रेपंचोपदंशाःस्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ८० ॥ संनिपातेनरक्ताच्च-

अर्थ–लिंगमें उपदंश रोग पांच प्रकारका होता है । जैसे वात, पित्त, कफ, संनिपात और रक्तसे उपजाहुआ तहां लिंगेन्द्रीमें किसी कारणसे हस्तका कठोर स्पर्श होनेसे, बडी कामबाधा प्राप्त हो नख (नाखून) दांत इनका अभिघात होनेसे, मैथुनके पश्चात् लिंग न धोनेसे, दासी आदिके साथ अत्यंत विषय करनेसे, दीर्घ, कठोर, केश

लाल झाग मिली राध बहे, तथा अनेक छिद्र होजायँ । उन छिद्रोंमें होकर मूत्र, मल और शुक्र (रेत) बहे, चालनीकेसे अनेक छिद्र होंय, इसी कारण इस रोगको शतपोनक कहते हैं । शतपोनक नाम संस्कृतमें चालनीका है ।

९ पित्तकारक पदार्थ खानेसे कुपित भया जो पित्त सो गुदामें लाल रंगकी पिटिका उत्पन्न करे वे शीघ्र पकजाय और उनमेंसे गरम राध बहे । पिटिका (फुन्सियां) ऊंटकी नाडके समान. होय इसीसे इनको उष्ट्रग्रीव कहते हैं ।

---

१ कफसे प्रगट भये भगन्दरमें खुजली चले तथा उनमेंसे गाढी राध वहे वो पिटिका कठिन होय उसमेंसे पीडा थोडी होय और उसका वर्ण सफेद होय उसको परिस्रावी भगन्दर कहते हैं ।

२ जो भगन्दर वात और कफके लक्षणों करके युक्त होय और सीधा वहता हो उसको ऋजुभगन्दर कहते हैं ।

३ जो भगन्दर वात और पित्तके लक्षणों करके युक्त हो उसको परिक्षेपी भगन्दर कहते हैं ।

४ जो कफ पित्तके लक्षणों करके युक्त हो उसको अर्शोज भगन्दर कहते हैं ।

५ गुदामें कांटे आदिके लगनेसे क्षत (घाव) होजाय उस घावकी उपेक्षा करनेसे उसमें कृमि पडते जायँ वे कृमि उस क्षतको विदारण करें ऐसे वह घाव बढकर गुदापर्यन्त पहुँचे तथा कृमि उसमें अनेक मुख कर लेवें उसको उन्मार्गी भगन्दर कहते हैं ।

६ जिसमें गौके थनके समान अनेक पिडिका होंय, उनका रंग पीला और स्राव अनेक प्रकारका होय और व्रण शंखके आँटेके समान गोल होय, इसको शंखावर्त अथवा शंबुकावर्त भी कहते हैं ।

७ लिङ्गेन्द्रीके ऊपर काले फोडे उठें, उनमें तोडनेकीसी पीडा होय और स्फुरण हो ये लक्षण वातोपदंशके जानने ।

८ पित्तके उपदंश करके पीले रंगके फोडे होते हैं । उनमेंसे पानी बहुत वहै, दाह होय ।

९ कफके उपदंश करके सफेद मोटा फोडा होय उसमें खुजली चलै, सूजन होय और गाढी राध वहै ।

१० जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्राव और पीडा होय । वह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है ।

११ रुधिरके उपदंशसे मांसके समान लाल रंगके फोडे होंय ।

तथा रोगादि करके दूषित योनि जिसकी हो उस दोषसे, ब्रह्मचारिणी (रजस्वला) गमनादि तथा वाजीकरणादिकके अनेक उपचार करनेसे इन सब कारणोंसे लिंगेन्द्रीमें रो प्रगट होवे उसको उपदंश कहते हैं.॥

शूकरोग ।

मेढ्रशूकामयास्तथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता लिंगार्शो ग्रथितं तथा ॥८१॥ निवृत्तमवमंथश्च मृदितं शतपोनकः ॥ अष्ठीलिकासर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिका ॥ ८२ ॥ मांसपाकःस्पर्शहानिर्विरुद्धमणिरुद्धतः ॥ मांसार्बुदं पुष्करिका संमूढपिटिकालजी ॥ ८३ ॥ रक्तार्बुदं विद्रधिश्च कुंभिका तिलकालकः ॥ निरुद्धं प्रकाशिः प्रोक्तस्तथैवपरिवार्तिका ॥ ८४ ॥

अर्थ–लिंगेन्द्रीमें शूकरोग चौवीस प्रकारका होता है। जैसे १ लिंगार्श २ ग्रथित ३ निवृत्त ४ अवमन्थ ५ मृदित ६ शतपोनक ७ अष्ठीलिका ८ सर्षपिका ९ त्वक्पाक

---

१ जो मन्दबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्त क्रमके विना लिंगको मोटा किया चाहै तो विषकृमिक लिंगके ऊपर लेपादिक करे अथवा जलयोग वात्स्यायन ऋषिके कहे उनका साधन करे, उसके लिंगपर शूकरोग होता है, शूक नाम जलके मलसे उत्पन्न जलजन्तुका है उसके सदृश यह रोग होनेसे इसका भी नाम शूक कहा है।

२ लिंगार्श शूकरोगमें अर्शके लक्षण जानना।

३ निरन्तर शूकका लेप करनेसे लिङ्गेन्द्रीके ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रथित कहते हैं।

४ निवृत्त रोगमें कफका सम्बन्ध ज्यादा रहता है।

५ कफ रक्तसे लिंगेन्द्रीके बाह्य प्रदेशमें लम्बी लम्बी पिटिका होती हैं और वे पिटिका फूट फूट भीतर फैलती हैं उसको अवमन्थ-रोग कहते हैं।

६ वायुके कोपसे लिंगमें फुन्सी होय, उससे लिंगको पीडा होय, लिंग जोरसे ठाढा होय, सूजन आवे, इसको मृदित कहते हैं।

७ जिस पुरुषके लिंगमें बारीक छिद्र हो जायँ वह व्याधि वातशोणितसे प्रगट होती है, इसको शतपोनक कहते हैं।

८ शूकके लेपसे वायु कुपित होकर करडी निहाईके समान पिडिका होय, और कोई छोटी कोई बडी टेढे ऐसे मांसांकुरोंसे व्याप्त होय इसको अष्ठीलिका कहते हैं।

९ दुष्ट जलजन्तुका दुष्ट रीतिसे लेप करनेसे कफवात कुपित होकर सफेद सरसोंके समान जो फुन्सी होय इसको सर्षपिका कहते हैं।

१० वातपित्तसे लिंगकी त्वचा पकजाय उसको त्वक्पाक कहते हैं इसमें ज्वर और दाह होता है।

१० अवपीडिका[१] ११ मांसपाक[२] १२ स्पर्शहानि[३] १३ निरुद्धमणि[४] १४ मांसार्बुद[५] १५
पुष्करिका[६] १६ संमूढपिटिका[७] १७ अलजी[८] १८ रक्तार्बुद[९] १९ विद्रधि[१०] २० कुंभिका[११]
२१ तिलकालक[१२] २२ निरुद्ध[१३] २३ प्रकश और २४ परिवर्तिका । इस प्रकार शूकरोग
चौबीस प्रकारका जानना ॥

कुष्ठरोग ।

कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात्कापालिकं भवेत् ॥ पित्तेनौदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचर्चिके ॥ ८५ ॥ मरुत्पित्तादृक्षजिह्वं श्लेष्मवाताद्विपादिका ॥ तथा सिध्मैककुष्ठं च किटिभं चालसं तथा ॥ ८६ ॥ कफपित्तात्पुनर्दद्रूः पामा विस्फोटकं तथा ॥ महाकुष्ठं चर्मदलं पुण्डरीकं शतारुकम् ॥ ८७ ॥ त्रिदोषैः काकणं ज्ञेयं तथान्यच्छ्वित्रसंज्ञितम् । तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधा भवेत् ॥ ८८ ॥

---

[१] अवपीडिका शूकरोगमें लिंग फटासा मालूम होय ।

[२] जिसकी इन्द्रीका मांस गलजाय और अनेक प्रकारकी पीडा हो इस. व्याधिको मांसपाक कहते हैं । यह व्याधि त्रिदोषज है ।

[३] शूकका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे ।

[४] निरुद्धमणि शूकरोगमें लिंगकी मणिकी चेतना जाती रहती है ।

[५] मांस दुष्ट होनेसे मांसार्बुद प्रगट होता है ।

[६] पित्त रक्तसे उत्पन्न भई पिटिका उसके चारोंतरफ अनेक छोटी छोटी फुंसिया होयँ और कमलकी भीतरकी केसरके समान सब फुन्सी होयँ उसको पुष्करिका कहते हैं ।

[७] लेप करनेके अनंतर जब लिंगमें खुजली चलै तब उसको दोनों हाथोंसे खूब खुजानेसे एक मूढ (विना मुखकी) पिटिका होय, उसको संमूढपिटिका कहते हैं ।

[८] यह पिटिका प्रमेहपिटिकामें जो अलजी नाम पिटिका कह आये हैं उसके समान लाल काले फोडोंसे व्याप्त होय, तथा उसके लक्षण उस अलजीके समान होते हैं ।

[९] जिस पुरुषके लिंगेंद्रीके ऊपर काले, लाल फोडे उत्पन्न हों उसको रक्तार्बुद कहते हैं ।

[१०] विद्रधिके लक्षणमें जो संनिपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं, वेही यहां विद्रधि शूकके लक्षण जानने ।

[११] रक्तपित्तसे जामुनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिटिका होय, उसको कुंभिका कहते हैं ।

[१२] काले अथवा चित्र विचित्र रंगके विषशूकोंके लेप करनेसे तत्काल सर्वलिंग पकजाय तथा सब मांस तिलके समान काला होकर गलजाय । इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधिको तिलकालक कहते हैं ।

[१३] निरुद्ध, प्रकाश और परिवर्तिक इनके लक्षण ग्रंथांतरमें निदानस्थानमें क्षुद्ररोगोंमें लिखे हैं उनके समान शिश्नमें रोग होते हैं ऐसा जानना ।

अर्थ–कुष्ठरोग[1] अठारह प्रकारका है । जैसे १ कापालिक[2] २ औदुंबर[3] ३ मं
४ विचर्चिका[5] ५ ऋक्षजिह्व[6] ६ विपादिका[7] ७ सिध्मकुष्ठ[8] ८ किटिभ[9] ९ अलस[10] १० दद्रु[11] ११ पा

---

१ विरोधी कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे, रद्के वेगको रोकनेसे और मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसे, भोजन करके अत्यंत व्यायाम (दंड कसरत) अथवा अतिसंताप करनेसे, सूर्यका ताप सहनेसे, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनके सेवनोक्त क्रम छोडके सेवन करनेसे, पसीना, श्रम और भय इनसे पीडित हो और उसी समय शीतल जल पीवे इस कारणसे, अजीर्णपर अन्न भक्षण करनेसे, तथा भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंचकर्मके करते समय अपथ्य करनेसे, नया अन्न, दही, मछली, खारी, खट्टे पदार्थके सेवन करनेसे, उडद, पूरी, मिष्टान्न (लड्डू, खजला, फेनी आदि), तिल, दूध, गुड इनके खानेसे, अन्नके पचे विना स्त्रीसंग करनेसे, तथा दिनमें सोनेसे, ब्राह्मण, गुरु इनका तिरस्कार करनेसे, पापकर्मका आचरण करनेसे पुरुषोंके वातादि तीनों दोष त्वचा, रुधिर, मांस और जल इनको दुष्ट कर कुष्ठरोग (कोढ) उत्पन्न करते हैं. कुष्ठ होनेके वातादि दोष और त्वचादि दूष्य ये सात (वात, पित्त, कफ, त्वचा, रक्त, मांस, जल) पदार्थ अवश्य कारणभूत हैं, इनसे ही अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं, इनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं ।

२ जो चढे, काले तथा लाल खीपडाके सदृश रूखे कठोर पतले ऐसे त्वचावाले तथा नोंचनेकीसी पीडायुक्त होयँ, वे दुश्चिकित्स्य हैं, इसको कापालिक कुष्ठ कहते हैं ।

३ औदुंबरकुष्ठ–यह शूल दाह, लाल और खुजली इनसे व्याप्त होय, इनमें बाल कपिल वर्णके होंय तथा ये गूलरफलके समान होते हैं ।

४ मंडलकुष्ठ सफेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना, जिसका आकार मंडलके सदृश होय तथा एक दूसरेसे मिला होय, ऐसा यह मंडलकुष्ठ असाध्य है ।

५ खुजलीयुक्त, काले रंगकी जो फुन्सी (माताके समान) होय तथा उनमेंसे स्राव बहुत होय उसको चर्चिका अथवा विचर्चिका कहते हैं ।

६ ऋक्षजिह्व कुष्ठ कठोर, अंतविषे लाल होय, बीचमें काला होय, पीडा करे, तथा रीछकी जीभके समान होता है, इसको ऋक्षजिह्व कहते हैं ।

७ विपादिकाकुष्ठ जिसमें हाथकी हथेली और पैरके तरवा फटजायँ और पीडा बहुत होय।

८ सिध्मकुष्ठ सफेद, लाल, पतला हो, खुजानेसे भूसीसी उडे, यह विशेष करके छातीमें होता है और घीयाके फूलके आकारका होता है ।

९ किटिभकुष्ठ नीलवर्णका हो, व्रणकी चटके समान कठोर स्पर्श मालूम होय और रूक्ष हो।

१० अलसकुष्ठ–इस कुष्ठमें पीडा बहुत होय, और जिसमें पिडिका पित्तीके समान बहुत और लाल होय, इसमें बहुतसे मूर्ख वैद्य पित्तकी शंका करते हैं ।

११ दद्रुकुष्ठमें खुजली होय, लाल होय और फोडा होय, छोटी और ये ऊँचे उठ आवे, मंडलके आकार गोल उत्पन्न होय इसीसे इसको दद्रुमंडल भी कहते हैं ।

१२ पामाकुष्ठ–जो पिटिका और बहुत होंय उनमेंसे स्राव होय तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं ।

१२ विस्फोटक[1] १३ महाकुष्ठ[2] १४ चर्मदल[3] १५ पुंडरीक[4] १६ शतारुक[5] १७ काकण[6] और १८ श्वित्रकुष्ठ[7] इस प्रकार अठारह प्रकारका कुष्ठ जानना ॥

क्षुद्ररोग, विस्फोटक और मसूरिका रोग ।

क्षुद्ररोगाः षष्टिसंख्यास्तेष्वादौ शर्करार्बुदम् ॥ इंद्रवृद्धा पनसिका
विवृत्तांधालजी तथा ॥ ८९ ॥ वराहदंष्ट्रो वल्मीकं कच्छपी तिल-
कालकः ॥ गर्दभी रकसा चैव यवप्रख्या विदारिका ॥९०॥ कंदरो
मशकश्चैव नीलिका जालगर्दभः ॥ इरिवेल्ली जंतुमणिर्गुदभ्रंशो-
ऽग्निरोहिणी ॥ ९१ ॥ संनिरुद्धगुदः कोठः कुनखोऽनुशयी तथा ॥
पद्मिनीकंटकश्चिप्यमलसो मुखदूषिका ॥ ९२ ॥ कक्षा वृषणक-
च्छूश्च गंधः पाषाणगर्दभः ॥ राजिका च तथा व्यंगश्चतुर्धा परि-
कीर्तितः ॥ ९३ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादित्युक्तं व्यंगलक्ष-
णम् ॥ विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्त्तिताः ॥ ९४ ॥
पृथग्दोषैस्त्रयो द्वन्द्वैस्त्रिविधाः सप्तमोऽसृजः ॥ अष्टमः संनिपातेन

---

[1] विस्फोटककुष्ठ–जो फोडे काले वा लाल रंगके होंय और जिनकी त्वचा पतली होय उसको विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं ।

[2] जो कुष्ठ घर्म (पसीना) से रहित होता है और जिस करके सर्व अंग मक्खियोंके अंगके सदृश होता है और रसादि धातुओंको व्याप्त करता है इसको महाकुष्ठ कहते हैं । कहीं इसको चर्मकुष्ठभी कहते हैं ।

[3] चर्मदलकुष्ठ–यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोडोंसे व्याप्त होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय इसमें त्वचा फटजाती है ।

[4] पुंडरीक कुष्ठ जो कुष्ठ पुंडरीक (कमल) पत्रके समान सफेद होय और उसका अन्तभाग लाल होय, यत्किंचित् ऊंचा निकल आवे और मध्यमें थोडा लाल होता है ।

[5] शतारुक कुष्ठ–जो लाल होय, श्याम होय, जिसमें जलन होय, शूल हो, तथा अनेक फोडे हों उसको शतारुक कुष्ठ कहते हैं ।

[6] काकण कुष्ठ–जो चिरमिटीके समान लाल अथात् बीचमें काला होय और आसपास लाल अथवा बीचमें लाल और पास काला होय, किंचित् पका, तीव्रपीडायुक्त, जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों यह कुष्ठ अच्छा नहीं होता ।

[7] श्वित्रकुष्ठ–पूर्वोक्त कुष्ठोंके समान है निदान और चिकित्सा जिसकी ऐसी होती है और उसमेंसे स्राव होता है और वह श्वित्रकुष्ठ रक्त, मांस और मज्जा इन तीनों धातुओंसे उत्पन्न होता है। यह कुष्ठ वात, पित्त, कफ इनके भेदोंसे तीन प्रकारका होता है। वायुसे रूक्ष और लाल होय पित्तसे लाल कमलपत्रके समान लाल होय, उसमें दाह होय, उसके ऊपरके बाल गिरपडें, कफके योगसे वह कोढ सफेद गाढा और भारी होता है, उसमें खुजली चलती है, ऐसे तीन भेदका श्वित्रकुष्ठ जानना।

**क्षुद्ररुक्षु मसूरिका ॥ ९५ ॥ चतुर्दश प्रकारेण त्रिभिर्दोषैस्त्रिधा
च सा ॥ द्वन्द्वजा त्रिविधा प्रोक्ता संनिपातेन सप्तमी ॥ ९६ ॥
अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया रक्तजा नवमी स्मृता ॥ दशमी मांसजा
ख्याता चतस्रोऽन्याश्च दुस्तराः ॥ मेदोऽस्थिमज्जशुक्रस्थाः
क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥ ९७ ॥**

अर्थ–क्षुद्ररोग ६० साठ प्रकारके हैं जैसे १ शर्करार्बुद[१] २ इन्द्रवृद्धा[२] ३ पनसि
४ विवृत्ता[४] ५ अंधालजी ६ वराहदंष्ट्र[६] ७ वल्मीक[७] ८ कच्छपी[८] ९ तिलकालक[९] १० ग

---

[१] कफ, मेद और वायु ये मांस, शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हो गाँठ करते हैं। जब वह
तब उसमेंसे सहत, घृत, चर्बीके समान स्राव हो तिसकरके वायु पुनः बढकर मांसको सु
उसकी बारीक खिन्नीसी गाँठ करे, उसको शर्करा कहते हैं। शर्करा होनेके अनन्तर नाडि
दुर्गन्धयुक्त क्लेदयुक्त अनेक प्रकारके वर्णका (घृत मेद और वसा इनके वर्णका) रुधिर स्रवे, उ
शर्करार्बुद कहते हैं।

[२] कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडिका होय उसके चारों ओर छोटी छोटी फुन्सियाँ
उसको इद्रवृद्धा कहते हैं, यह वात पित्तसे उत्पन्न होती है।

[३] कानके भीतर वात पित्त कफसे जो फुन्सी उग्रवेदनासहित प्रगट होय और वह स्थित
उसको पनसिका कहते हैं।

[४] पित्तके योगसे कटे मुखकी, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरके समान, चारों ओर बल पडी
जो पिडिका होय उसको विवृत्ता कहते हैं।

[५] कफवातसे प्रगट, कठिन, जिसमें मुख न हो, तथा ऊँची ऐसी पिडिका होय तथा जि
चारों ओर मण्डलाकार हो और जिसमें राध थोडी होय उसको अन्धालजी कहते हैं।

[६] शरीरमें गाँठके समान कठिन सूजन उत्पन्न होय, उसका आकार सूअरकी ठोढीके स
होय, उसमें दाह खुजली और पीडा होय और उसके ऊपरकी त्वचा पकजाय उसको वराह
सूकरदंष्ट्र, वराहडाढभी कहते हैं।

[७] कंठ, कन्धा, कूख, पैर, हाथ, संधि, गला इन ठिकानोंपर तीनों दोषोंसे सर्पकी बाँबीके सम
गाँठ होय उसका उपाय न करै तब वह धीरे धीरे बढे उसमें अनेक मुख होजायँ, उनमेंसे
होय, नोचनेकीसी पीडा होय, तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊंची होकर विसर्पके समान फैल जाय
रोगको वैद्य वल्मीक कहते हैं, इसके ऊपर औषधि उपचार नहीं चले और पुरानी होनेसे
असाध्य जानना।

[८] कफवायुसे प्रगट गाँठ बंधी, पांच अथवा छः काठिन कछुएकी पीठके समान ऊंची
पिडिका होय उनको कच्छपिका कहते हैं।

[९] वात, पित्त, कफके कोपसे काले तिलके समान पीडारहित त्वचासे मिले ऐसे अंगमें
होय, उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं।

[१०] वातपित्तसे प्रगट एक गोल ऊंची तथा लाल और फोडोंसे व्याप्त ऐसा मंडल होय,
बहुत दूखे, उसको गर्दभी अथवा गर्दभिका ऐसे कहते हैं।

११ रकसा[1] १२ यवप्रख्या[2] १३ विदारिका[3] १४ कदर[4] १५ मशक १६ नीलिका[6]
१७ जालगर्दभ[7] १८ इरिवेल्लिका[8] १९ जंतुमणि[9] २० गुदभ्रंश[10] २१ अग्निरोहिणी[11] २२ संनि-
रुद्धगुद[12] २३ कोठ[13] २४ कुनख[14] २५ अनुशयी[15] २६ पद्मिनीकंटक[16] २७ चिप्य[17] २८ अलस[18]

---

१ शरीरमें जो पिटका (फुन्सी) स्रावरहित होकर खुजलीयुक्त हों उनको रकसा कहते हैं ।

२ कफवातसे प्रगट जौंके समान, कठिन, गाँठके सदृश, मांसमिश्रित जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं, तथा इसको अंत्रालजीभी कहते हैं ।

३ विदारीकंदके समान गोल काँखमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गाँठ ताँबेके रंगकीसी हो, उसको विदारिका कहते हैं. यह संनिपातसे होय है अर्थात् इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

४ पैरोंमें कंकर छिदनेसे, अथवा काँटे लगनेसे बेरके समान ऊंची गाँठ प्रगट होय उसको कदर अथवा ठेक कहते हैं. यह कदररोग हाथोंमेंभी होता है. ऐसा भोजका मत है ।

५ वादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान काली, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊँची गाँठसी प्रगट होय, उसको मशक माष मस्सा ऐसे कहते हैं ।

६ व्यंगके लक्षणसदृश जो काला मंडल अंगमें होय, अथवा मुखपर होय, उसको नीलिका कहते हैं ।

७ पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय, उसमें दाह होय और ज्वर होय उसको जालगर्दभ कहते हैं ।

८ त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमें गोल, अत्यंत पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षणसंयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको ईरिवेल्ली कहते हैं ।

९ कफरक्तसे जन्मसेही प्रगट भई समान, तथा कुछ ऊँचा, जिसमें पीडा होय नहीं, ऐसा गोलमंडलके समान देहमें चिह्न होय उसको लक्ष्म कोई लक्ष्य तथा कोई जंतुमणि ऐसे कहते हैं, यह स्त्रीपुरुषोंको अंग भेदकरके शुभाशुभ फलदायक है ।

१० जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहन (कुंथन) तथा अतिसार हेतु करके गुदा बाहर निकल आवे, अर्थात् काँच बाहर निकल आवे उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं, उस रोगमें धातुक्षय होनेसे वात कुपित होय है ।

११ काँखके आसपास मांसके विदारण करनेवाले जो फोडा होते हैं, तिनकरके अंतर्दाह होय, तथा ज्वर होय, वह फोडा प्रदीप्त अग्निके समान लाल होय, इन फोडोंमें वायु अधिक होनेसे सात दिन, पित्ताधिक्यसे बारह दिन और कफाधिक्यसे ५ पांच दिनमें रोगी मरे, यह अग्निरोहिणीनामक त्रिदोषज पीडिका असाध्य है और कठिन है ।

१२ मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर महास्रोत (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे, पीछे मार्ग छोटा होनेसे उस पुरुषका मल बडे कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको संनिरुद्धगुद कहते हैं ।

१३ कफ रक्त पित्त इनके कोपसे देहमें मोहारकी मक्खीके दंशसे जैसे सूजन आती है ऐसी किंचित् लालरंगकी सूजन आवे, उनमें खुजली बहुत चले, क्षणमें उत्पन्न होती है और क्षणमें चली जाती है उसको कोठ ऐसे कहते हैं ।

१४ किसी कठोर पदार्थके अभिघातकरके नख (नाखून) दुष्ट होकर रूक्ष, काले वर्णके और खरदरे हों उनको कुनख कहते हैं ।

२९ मुखदूषिका[1] ३० कक्षा[2] ३१ वृषणकच्छु[3] ३२ गंध[4] ३३ पाषाणगर्दभ ३४ रा
३५ व्यंग (यह १ वात २ पित्त ३ कफ ४ रुधिर इन भेदोंसे चार प्रकारका
सब चौतीस और ये चार ऐसे अडतीस प्रकारके क्षुद्ररोग हुए । तथा स्फोट रो
देहमें फुन्सी होती हैं अतएव उनका क्षुद्ररोगोंमें संग्रह किया । वह विस्
आठ प्रकारका है । १ वातविस्फोटक २ पित्तविस्फोटक ३ कफविस्फोटक ४

---

१५ पैरोंमें त्वचाके समान वर्ण यत्किंचित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय उस
अनुशयी कहते हैं ।

१६ देहमें सफेद रंगका गोल ऐसा मंडल उत्पन्न होता है, उसके ऊपर काँटेके सदृश मां
अंकुर आते हैं और उनमें खुजली बहुत चले उस रोगको पद्मिनीकंटक कहते हैं ।

१७ वायु और पित्त नखोंके मांसमें स्थिर होकर दाह और पाकको करे, इस रोगको चिप
कहते हैं. यह अल्प दोषोंसे होय तो इसको कुनख कहते हैं ।

१८ दुष्ट कींच (वर्षा आदिके पानी और सडी कींच) में डोलनेसे पैरोंकी उँगली गीली
उँगलियोंके बीचमें सफेद सफेद चकत्ता होंय, उनमें खुजली दाह और गीलापन तथा पीडा
उसको अलस अर्थात् खारुआ कहते हैं. यह कफरक्तके दोषसे होता है ।

---

१ कफ वायुके कोपसे सेमरके काँटेके समान तरुण (जवान) पुरुषके मुखके ऊपर जो
होंय उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहाँसे कहते हैं, इनके होनेसे मुख बुरा हो जाता है ।

२ बाहु (भुजा) की जड कंधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फो
व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका होय उसको कक्षा वा कँखलाई कहते हैं ।

३ जो मनुष्य स्नान करते समय लगेहुये मलको नहीं धोवे, उस पुरुषका मल अंडको
संचित होय । पीछे वह पसीना आनेसे गीला होय, तब अंडकोशोंमें घोर पीडा होय और खुज
तत्काल फोडे होंय , पीछे वे फोडे स्रवकर आपसमें मिल जाते हैं । कफरक्तसे होनेवाली
व्याधिको वृषणकच्छु कहते हैं ।

४ पित्तके कोपसे त्वचाके भीतर जो एक पिडिका फोडाके समान बडी होय, उसको गंध
पिटिका कहते हैं ।

५ वातकफसे ठोडीकी संधिमें कठिन मंदपीडा करनेवाली, चिकनी ऐसी सूजन होय, उ
पाषाण गर्दभ कहते हैं ।

६ कफवायुकरके देहमें सरसोंके सदृश फुन्सी होती हैं उनको राजिका कहते हैं. कोई को
कहते हैं ।

७ क्रोध और श्रम इनसे कुपितभया वायु सो पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्त होकर एक
उत्पन्न करे । वह दूखे नहीं, पतला तथा श्यामवर्णका होय, उसको व्यंग (झाँई) ऐसे कहते

८ कडुआ, खट्टा, तीखा (मरिचादि), गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊ
भोजन और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अतियोग अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलट
इन कारणोंसे वातादिदोष कुपित हो त्वचाका आश्रय कर रुधिर, मांस और हड्डी इनको दूषित
भयंकर विस्फोटक (फोडा) उत्पन्न करे । उनके प्रगट होनेके पूर्व घोर ज्वर होता है ।

पित्त[1]विस्फोटक ९ कफपित्त[2]विस्फोटक ६ वातकफ[3]विस्फोटक ७ रक्त[4]विस्फोटक ८ संनिपात[5]विस्फोटक इस प्रकार आठ प्रकारका विस्फोटक जानना । देहमें शीतलारोगसे ये फुन्सियाँ होती हैं । इसवास्ते क्षुद्ररोगमें मसूरिका रोगका संग्रह किया है । वह मसूरिका[6] चौदह प्रकारकी है जैसे १ वात[7]मसूरिका २ पित्त[8]मसूरिका ३ कफ[9]मसूरिका

---

९ मस्तकमें पीडा, शूल, देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, सन्धिमें पीडा, फोडोंका वर्ण काला होय ये वातविस्फोटकके लक्षण हैं ।

१० ज्वर, दाह, पीडा, स्राव, फोडोंका पकना, प्यास, देह पीला अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटकके लक्षण हैं ।

११ वमन, अरुचि, जडता, तथा फोडा खुजलीयुक्त हों, कठिन पीले और उनमें पीडा होय नहीं और वे बहुत कालमें पकें । यह विस्फोटक कफका जानना ।

---

[1] वातपित्तके विस्फोटकमें तीव्र पीडा होती है ।

[2] खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोटक जानना ।

[3] खुजली, गीलापन, भारीपन इन लक्षणोंसे वातकफका विस्फोटक जानना ।

[4] रक्तसे प्रगट भया विस्फोटक ताँबेके रंगका, गुंजा (चिरमिटी) के समान लाल, वह रुधिरके दुष्ट होनेसे अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होता है यह सैकडों अनुभवकारी औषधके करनेसेभी साध्य नहीं होता ।

[5] जो फोडा बीचमें नीचा होय और ओरपाससे ऊँचा होय, कठिन और कुछ पका होय तथा जिसके योगसे दाह, अंगमें लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कंप, तंद्रा ये लक्षण होते हैं उसे संनिपातका विस्फोटक जानना, वह असाध्य है ।

[6] कडुआ, खट्टा, नोनका, खारी, विरुद्धभोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), दुष्ट अन्न, निष्पाव (शिंबीबीज उडद मूँग) आदि शाक, विषैले फूल आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि क्रूरग्रहोंका देखना, इन सब कारणोंकरके शरीरमें वातादिदोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मसूरके समान देहमें अनेक मरोरी करें उनको मसूरिका (माता) ऐसे कहते हैं, तिस माता (शीतला) के पूर्व ज्वर होय, खुजली चले, देहमें फूटनी होवे, अन्नमें अरुचि, भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय, तथा वर्ण पलट जाय, नेत्र लाल होयँ ये शीतलाके पूर्वरूप होते हैं ।

[7] वातमसूरिकाके फोडे काले लाल और रूक्ष होते हैं, उनमें तीव्र पीडा होय, कठिन होय, शीघ्र पकें नहीं, इसके योगसे सन्धि हाड और पर्वोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, खांसी, कम्प, पित्त स्थिर न हो, विना परिश्रमके श्रम होय, तालुआ होठ और जीभ ये सूखने लगें, प्यास, अरुचि हो ये लक्षण होते हैं ।

[8] पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीला, सफेद होता है । उसमें दाह तथा पीडा बहुत होय और यह शीतला शीघ्र पके । इसके योगसे मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होयँ ।

[9] कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय, अंगमें आर्द्रता तथा भारीपन, मस्तकमें शूल, वमन आनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तंद्रा, आलस्य ये होयँ और फोडा सफेद चिकने अत्यन्त मोटे होयँ, इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मन्द होय और वे बहुत दिनमें-पकें ।

४ कफपित्तमसूरिका ५ वातपित्तमसूरिका ६ वातकफमसूरिका ७ संनिपातमसूरिका ८ ब्दोक्त जो रसधातु, उससे होनेवाली मसूरिका ९ रक्तजा १० मांसजा ११ मेदोर्जा अस्थिजा १३ मज्जाजन्य तथा १४ शुक्रधातुसे होनेवाली इनमें अंतकी चार मसूरिका साध्य जाननी इस प्रकार सब १४ मसूरिका ८ विस्फोट और पूर्वोक्त ३८ क्षुद्ररोग सब मि नेसे ६० प्रकारका क्षुद्ररोग जानना ॥

विसर्परोग ।

विसर्परोगा नवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा । त्रिधा च द्वन्द्वभेदेन संनिपातेन सप्तमः ॥९८॥ अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभिघातजः ॥

---

१ कफ पित्तसे केशों (बालों) के छिद्र समान बारीक और लाल ऐसी मसूरिका होती इनके होनेसे खाँसी, अरुचि होय तथा इनके होनेसे ज्वर होय । इनको रोमान्तिक (कसूँभीमा ऐसे कहते हैं ।

२ जिन मसूरिकाओंमें वातपित्तके लक्षण मिलते हों उन्हें वातपित्तकी मसूरिका जाननी।

३ जिनमें वातकफके लक्षण मिलते हों उनको वातकफकी मसूरिका जाननी ।

४ त्रिदोषकी मसूरिकाके फोडे नीले, चिपटे, लम्बे, बीचमें नीचे ऐसे होयँ, उनमें पीडा अत्य होय तथा वे बहुत दिनमें पकें और उनमेंसे दुर्गन्धयुक्त स्राव होय वे सर्व दोषोंके फोडे बहुत होते हैं।

५ रसगत मसूरिका पानीके बबूलेके सदृश हो, इनके फूटनेसे पानी बहै । यह त्वग्गतमसूरिका कारण इसका यह है कि दोष स्वल्प है ।

६ रुधिरगतमसूरिका तांबेके रंगकी और जलदी पकनेवाली होती है, उसके ऊपरकी त्वचा पतल होती है, यह अत्यन्त दुष्ट होनेसे साध्य नहीं हो और इसके फूटनेसे इसमेंसे रुधिर निकले।

७ मांसस्थमसूरिका कठिन और चिकनी होती है, यह बहुत दिनमें पके तथा इसकी त्वचा पतल होय, अंगोंमें शूल होय, चैन पडे नहीं, खुजली चले, मूर्च्छा, दाह और प्यास ये लक्षण होते हैं।

८ मेदोगतमसूरिका मण्डलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम, कुछ ऊँची, मोटी तथा काली होत है, इसके होनेसे भयंकर ज्वर, पीडा, इन्द्रिय मनको मोह, चित्तका अस्थिर होना, संताप ये लक्षण हो हैं, इस मसूरिकासे कोई एकाधही मनुष्य बचता होगा कारण कि यह अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य है।

९ अस्थिगत मसूरिका बहुत छोटी, देहके समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊँची होती है उसे अस्थि गत मसूरिका जाननी ।

१० जिस मसूरिकामें अत्यन्त चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ये होते हैं, वह मर्मस्थानोंके भेद करके शीघ्र प्राण हरण करे । इसके होनेसे सर्व हड्डियोंमें भौंराके काटनेके समान पीडा होत है । उसे मज्जाजन्य मसूरिका जानना ।

११ शुक्रधातुगत मसूरिका पकेके समान चिकनी और अलग अलग होती है । इनमें अत्यन्त पीडा होय, इनके होनेसे गीलापन, अस्वस्थता, मोह, दाह, उन्माद ये लक्षण होते हैं, रोगी बच एस इनमें कोई लक्षण नहीं दीखे, इसीसे इनको असाध्य जानना ।

अर्थ–विसर्प[1]रोग नव प्रकारका है। जैसे १ वात[2]विसर्प २ पित्त[3]विसर्प ३ कफ[4]विसर्प ४ वातपित्त[5]विसर्प ५ कफवात[6]विसर्प ६ कफपित्त[7]विसर्प ७ संनिपात[8]विसर्प ८ जठराग्निताप[9]जन्यविसर्प

---

१ खारी, खट्टा, कडुआ, गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर विसर्परोग होता है, वह सर्वत्र फैलजाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं।

२ वादीसे जो विसर्प होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना, नोंचनेकीसी पीडा, तोडनेकीसी पीडा, दर्द और रोमांच खडे हों तथा वह विसर्प लंबा होता है।

३ पित्तके विसर्पकी गति शीघ्र होय अर्थात् वह जल्दी फैलजाय तथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हों तथा अत्यंत लाल होयँ।

४ कफविसर्पमें खुजली बहुत होय, तथा चिकनी हो और उसमें कालज्वरकीसी पीडा हो।

५ वातपित्तसे प्रगट विसर्प ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास और हडफूटन, मंदाग्नि, अन्धकारदर्शन, अन्नद्वेष इन लक्षणकरके संयुक्त होवे, इनके संयोगसे सर्व शरीर अंगारोंसे भरासा मालूम होय, जिस जिस ठिकाने वह विसर्प फैले उसी २ ठिकानेपर अग्निरहित अंगारके समान काला, लाल होकर शीघ्र सूजे, आगसे फूंकेके समान ऊपर फफोला होय और उस विसर्पकी शीघ्रगति होनेसे जल्दी हृदयमें जायकर मर्मानुसारी विसर्प होय। अथवा वह अत्यन्त बलवान् होय अर्थात् अंगोंको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इनका नाश करे, श्वास बढावे, तथा हिचकी उत्पन्न करे। ऐसी मनुष्यकी अवस्था अस्वस्थ होनेके कारण धरती, तेज, आसन इत्यादिकोंमें सुख होवे नहीं, हिलने चलनेसे क्लेश होवे, मन तथा देहको क्लेश होनेसे उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा (मरणरूपी निद्रा) को प्राप्त होय, इस रोगको अग्निविसर्प कहते हैं।

६ स्वहेतुसे कुपित भया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेदकर अथवा बढे हुए रुधिरको भेदकर त्वचा, नस (नाडी) और मांस इनमें प्राप्त हो और इनको दुष्ट कर लम्बी, छोटी, गीली, मोटी, खरदरी, लाल, गांठोंकी माला प्रगट करे। उन गाठोंमें पीडा अधिक होय, ज्वर, मोह, श्वास, खांसी, अतिसार, मुखमें पपडी परे, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, वर्णका पलटना, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना, मंदाग्नि ये लक्षण होतेहैं, इस रोगको ग्रंथिविसर्प कहते हैं। यह कफवातके कुपित होनेसे उत्पन्न होता है, इसको सुश्रुतमें अपची कहते हैं।

७ कफपित्तके विसर्पमें ज्वर, अंगोंका जिकडना, निद्रा, तंद्रा, मस्तकशूल, अंगग्लानि, हाथपैरोंका पटकना, बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मंदाग्नि, हडफूटन, प्यास, इन्द्रीनका जकडना, आमका गिरना, मुखादिस्रोतों (छिद्रों) में कफका लेप इत्यादि लक्षण होते हैं, तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले उसमें पीडा थोडी होय, सर्वत्र पीली तांबेके रंगकी सफेद रंगकी पिडिका होय, तथा वह विसर्प चिकनी, स्याहीके समान काली, मलिन, सूजनयुक्त, भारी, गंभीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो, उनमें घोर दाह होय और वह दबानेसे तत्क्षण गीली होजाय तथा फटजाय, वह कीचके समान हो और उसका मांस गलजाय, उसमें शिरा, नाडी (नस) ये दीखने लगे, उसमें मुर्दाकीसी बास आवे, इस विसर्पको कर्दमविसर्प कहते हैं।

८ सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षण कहे हैं सो सब होयँ।

९ जठराग्निके बहुत संतप्त होनेसे रक्त दूषित होकर जो विसर्प होता है उसको बहिर्दाहज विसर्प कहते हैं। इसके लक्षण पित्तविसर्पके समान जानना।

आर ९ अभिघातजविसर्प इस प्रकार नव प्रकारका विसर्परोग जानना ॥

शीतपित्तरोग ।

तथैकः श्लेष्मपित्ताभ्यामुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ९९ ॥
वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः ॥

अर्थ–शीतलवायुके संपर्क करके कफ और वायु ये दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर रक्ता धातुमें और बाहर त्वचामें प्रवेश कर देहमें जैसे मोहारकी मक्खीके काटनेके समान ददो उत्पन्न होता है उस प्रकार ददोडा उत्पन्न हो उनमें खुजली पीडा और दाह ये उपद्रव होवें कफ ।पित्तके कोपसे जिसमें खुजली अधिक चले और पीडा न्यून हो उसको उदर्द कहतेहैं वह रोग एक प्रकारका है । वातपित्तके कोप करके जिसमें खुजली थोडी और व्यथा होवे उसको शीतपित्त (पित्ती) कहतेहैं । इतनाही इनमें भेद जानना तथा ज्वर वमन दाह इत्यादि ये दोनोंके साधारण लक्षण जानने ॥

अम्लपित्तरोग ।

अम्लपित्तं त्रिधा प्रोक्तं वातेन श्लेष्मणा तथा ॥ १०० ॥ तृतीयंश्लेष-

अर्थ–अम्लपित्तरोग तीन प्रकारका ह १ वातजअम्लपित्त २ कफजअम्लपित्त ३ औ

---

१ बाह्य कारण करके क्षत (घाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वह रुधिरसहित पित्तको व्रणमें प्राप्त कर विसर्परोग उत्पन्न करे । उसमें कुल्थीके समान श्याम वर्णके फोडे होते हैं, सूजन, ज्वर और दाह होय, उसका रुधिर काला निकले । ये अभिघातज (क्षतज) विसर्पके लक्षण जानने।

२ वरटी (ततैया) के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ते होजायँ, उनमें खुजली चले और सूई चुभानेकीसी पीडा होय, उसके संयोगसे वमन, सन्ताप और दाह होय, इसको उदर्द कहते हैं।

३ शीतल पवनके लगनेसे कफ, वायु दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादिकोंमें और बाहर त्वचामें विचरे, प्यास, अरुचि, मुखमेंसे पानी गिरना, अंग गलना और भारी होना, नेत्रमें लाली ये शीतपित्त होनेके पूर्व होतेहैं । शीतापित्तको लौकिकमें पित्ती कहते हैं । इसमें खुजली होती है सो कफसे जानना । चोंटनी बादीसे होती है । ओकारी, संताप और दाह पित्तसे होते हैं ऐसे जानना ।

४ विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढानेवाला ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे, वर्षादि ऋतुमें जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणसे संचित भया पित्त दुष्ट होय, उसको अम्लपित्त कहते हैं, अन्नका न पचना, विना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, कडुवी तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहै, हृदय और कंठमें दाह होय, अरुचि होय ये लक्षण होनेसे अम्लपित्त जानना ।

कफवातज अम्लपित्त[1] इस प्रकार अम्लपित्तके तीन भेद जानने चाहियें ॥

वातरक्तरोग ।

वाताभ्यां वातरक्तं तथाष्टधा ॥ वाताधिक्येन पित्ताच्चकफाद्दोष-त्रयेणच ॥१०१॥ रक्ताधिक्येनदोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधःस्मृतः ॥

अर्थ—वातरक्तरोग[2] आठ प्रकारका है । जैसे वायुकी आधिक्यता जिस वातरक्तमें है वह १ वातज[3] २ पित्तजवातरक्त[4] ३ कफजवातरक्त[5] ४ त्रिदोषजवातरक्त[6] और ५ रक्तके

---

५ वातयुक्त अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमा (चैंटी काटनेसे प्रगट खुजलीके समान), देहग्लानि, पेट दूखना, नेत्रोंके आगे अन्धकार दीखे, भ्रांति होना, इन्द्री मनको मोह, रोमांच खडे हों ये लक्षण होते हैं ।

६ कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके ढेले गिरें, शरीरका अत्यन्त जड पडना, अरुचि, शीत लगे, अंग-ग्लानि, वमन, मुख कफसे लिहसा रहे, मंदाग्नि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होते हैं ।

---

१ वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहेहुए दानोंके लक्षण होते हैं ।

२ नोन, खटाई, कडवी,. खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे, सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके मांससे, पिण्याक (खर), मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव (सेम), शाक (तरकारी), पलल (तिलकी चटनी), ईख, दही, कांजी, सौवीरमद्य, सुक्त (सिरका आदि), छाछ, दारु, आसव (मद्यविशेष), विरुद्ध (जैसे दूध मच्छली), अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणोंसे विशेष करके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय, तथा सूखा होय ऐसे मनुष्यके वातरक्त रोग होता है । हाथी, घोडा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे (यह वायुके बढनेका और विशेष करके रुधिरके उतरनेका कारण है), विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके (इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है), गरमागरम अन्नके खानेवाले पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर घराम इकट्ठा होय और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले । इस रोगमें वायु प्रबल है, इसीसे इस रोगको वातरक्त कहते हैं ।

३ वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चोंटनेकीसी पीडा ये अधिक होते हैं, सूजन, रूखापन, नीलापन, अथवा श्यामवर्णता, एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय और क्षणभरमें ह्रास (कम) हों, धमनी और अँगुलियोंकी सन्धिमें संकोच होय, शरीर जकडबन्ध होय, अत्यन्त पीडा होय, सर्दी बुरी लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कंप और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं ।

४ पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह, इन्द्री मनको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम होय, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटे २ पीरे फोडे, अत्यन्त गरमी ये लक्षण होते हैं ।

५ कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपडोंसे आच्छादित समान), भारीपना, शून्यता, चिकनापन, शीतलता, खुजली और मन्दपीडा ये लक्षण होते हैं ।

६ तीनों दोषों (वात, पित्त, कफ) के वातरक्तमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

आधिक्यसे होनेवाला रक्तज[1] । दोषोंसे प्रगट द्वंद्वज[2] वातरक्त तीन प्रकारके होतेहैं । ऐसे
मिलायके वातरक्तरोग आठ प्रकारका जानना ॥

वातरोग ।

अशीतिर्वातजारोगाःकथ्यन्तेमुनिभाषिताः ॥१०२॥ आक्षेप-
कोहनुस्तंभऊरुस्तंभःशिरोग्रहः ॥ बाह्यायामोऽन्तरायामःपा-
र्श्वशूलःकटिग्रहः॥१०३॥ दण्डापतानकःखल्ली जिह्वास्तंभस्त-
थार्दितः॥पक्षाघातःक्रोष्टुशीर्षोमन्यास्तंभश्चपंगुता ॥ १०४॥
कलायखंजतातूनीप्रतितूनी च खञ्जता ॥ पादहर्षोगृध्रसीच
विश्वाचीचावबाहुकः॥१०५॥अपतानोव्रणायामोवातकण्टोऽ-
पतन्त्रकः॥अंगभेदोंऽगशोषश्च मिम्मिणत्वंचकल्लता ॥१०६॥
प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकाचवामनत्वंचकुब्जता ॥ अंगपीडांगशूलंच
संकोचस्तंभरूक्षताः१०७॥अंगभंगोंऽगविभ्रंशो विड्ग्रहोबद्ध-
विट्कता ॥ मूकत्वमतिजृम्भास्यादत्युद्गारोंऽत्रकूजनम्॥१०८॥
वातप्रवृत्तिःस्फुरणं शिराणां पूरणं तथा ॥ कंपःकार्श्यंश्यावता
च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता ॥१०९॥ निद्रानाशःस्वेदनाशोदुर्बलत्वं
बलक्षयः ॥ अतिप्रवृत्तिःशुक्रस्यकार्श्यंनाशश्चरेतसः॥११०॥
अनवस्थितचित्तत्वंकाठिन्यंविरसास्यता ॥कषायवक्त्रताध्मा-
नप्रत्याध्मानंचशीतता ॥१११॥रोमहर्षश्चभीरुत्वंतोदःकंडूर-
साज्ञता ॥ शब्दाज्ञताप्रसुप्तिश्चगंधाज्ञत्वं दृशःक्षयः ॥११२॥

अर्थ–बादीका रोग ८० प्रकारका ऋषियोंने कहा है । उनके नाम कहते हैं १ आ

---

[1] रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीडा हो और उसमेंसे ताँबेके रंगका क्लेद बहे।
सूजनमें चिमचिम वेदना होय, स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थसे शान्त न होय, उस सूजनमें
होय और पानी निकले ।

[2] दो दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं । वातपित्त, वातकफ, कफपित्त इन
दोषोंके लक्षण जिसमें हों उसे द्विदोषज जानना ।

[3] जिस कालमें वायु कुपित होकर सब धमनी नाडियोंमें जायकर प्राप्त होय, तब उस
बारंबार संचार करके देहको आक्षिप्त करती है अर्थात् हाथीपर बैठनेवाले पुरुषके समान सब
चलायमान करती है उस बारंबार चलनेको आक्षेपरोग कहते हैं ।

२ हनुस्तभं १ ऊरुस्तंभे[2] ४ शिरोग्रह[3] ५ वाह्यायाम[4] ६ अभ्यंतरायाम[5] ७ पार्श्वशूल[6]
८ कटिग्रह[7] ९ दंडापतानक[8] १० खल्ली[9] ११ जिह्वास्तंभ[10] १२ अर्दित[11] १३ पक्षाघात[12]
१४ क्रोष्टुशीर्ष[13] १५ मन्यास्तंभ[14] १६ पंगु[15] १७ कलायखंज[16] १८ तूनी[17] १९ प्रतितूनी[18]

---

१ जिह्वाके अतिघर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तुके खानेसे, अथवा किसी प्रकारकी चोटके लगनेसे हनुमूल (कपोल) क अर्थात् डाढकी जडमें रहा जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचे कर मुखको खुलाही रख दे, अथवा मुखको बंद करदे, उसको हनुस्तंभ अथवा हनुग्रह कहतेहैं।

२ वायु कफ और मेद इनसे मिलकर जाँघोंमें जाके जाँघोंको जड करके जकडता है, उस करके जाँघें अचेतन होती हैं, हिलने चलनेका सामर्थ्य नहीं रहता उसको ऊरुस्तंभ कहते हैं।

३ वायु रुधिरका आश्रय कर मस्तकके धारण करनेवाली नाडियोंको रूखी, पीडायुक्त और काली करदे। यह शिरोग्रह रोग असाध्य है। इसको शिराग्रहभी कहते हैं।

४ बाहरकी नसोंमें रहती जो वात सो वाह्यायाम अर्थात् पीठको बाँकी करदे, उरःस्थल, जाँघों और कमरको मोडदे, ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य बाह्यायाम कहते हैं।

५ पैरकी उँगली, घोंटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमें रहनेवाला वायु सो वेगवान् होकर वहांके नसोंके जाल उसको सुखाय बाहर निकालदे, उस मनुष्यके नेत्र स्थिर होजायँ मेंज रहिजाय, पसवाडोंमें पीडा होय, मुखसे कफ गिरे और जिस समय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नमजाय तब यह बली वायु अन्तरायाम रोगको करे, इसको धनुर्वात भी कहते हैं।

६ कोष्ठाशयमें वायु कुपित होकर पसवाडोंमें शूल करे उसको पार्श्वशूल कहते हैं।

७ जो वायु कमरको स्तंभन करे उसको कटिग्रह कहते हैं।

८ वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनी नाडियोंमें प्राप्त होकर सब देहको दंड (लकडी) के समान तिरछा करदे यह दंडापतानक रोग कष्टसाध्य है।

९ जो वायु पैर, जंघा, ऊरु और हाथके मूलमें कंपन करे उसको खल्ली (मलाम्नाय) रोग कहतेहैं।

१० वायु वाणीकी वहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त हो जिह्वाका स्तंभन करदे, उसको जिह्वास्तंभ रोग कहते हैं। यह अन्न पान तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाश करे।

११ ऊँचे स्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे अथवा कठिन पदार्थ सुपारी आदिके खानेसे बहुत हँसने और बहुत जंभाईके लेनेसे, ऊँचे नीचे स्थानमें सोनेसे, विषमाशन (विरुद्ध भोजन) के करनेसे कोपको प्राप्त भई जो वायु सो मस्तक, नाक, होठ, ठोढी, ललाट और नेत्र इनकी सन्धियोंमें प्राप्त हो मुखमें पीडा करे अर्थात् अर्दित रोगको उत्पन्न करे। उस पुरुषका मुख आधा टेढा होजाय, उसकी नाड मुडे नहीं, मस्तक हिलाकरे, अच्छी तरह बोला नहीं जाय, नेत्र, भ्रुकुटी, गाल इनकी विकृति कहिये पीडा, फरकना, टेढा होना इत्यादि होंय और जिस तरफ अर्दित रोग होय उस तरफकी नाड, ठोढी और दाँत इनमें पीडा होय, इस व्याधिको अर्दित रोग कहते हैं।

१२ वायु आधे शरीरको पकड सब शरीरकी नसोंको सुखाकर दहने अंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करनेको असामर्थ्य करदे और संधिके बंधनोंको शिथिल करदे पीछे उस रोगीके सब वा आधे अंग हिलेचलें नहीं और उसको देखने स्पर्श करने आदिका थोडाभी ज्ञान नहीं रहे, इसको एकांगरोग अथवा पक्षवध किंवा पक्षाघात कहते हैं।

१३ वातरक्तसे जानु, घोंटू इन दोनोंकी संधिमें अत्यंत पीडाकारक सूजन हो और स्यारके मस्तकसमान मोटी हो, उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं।

२० खंज २१ पादहर्ष[2] २२ गृध्रसी[3] २३ विश्वाची[4] २४ अवबाहुक[5] २५ अपतंत्रक[6]
२६ व्रणायाम[7] २७ वातकंटक[8] २८ अपतानक[9] २९ अंगभेद ३० अंगशोष ३१ मिमि

---

१४ दिनमें सोनेसे, अन्न, स्नान, ऊँचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इन कारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो कफयुक्त होकर मन्यानाडीको स्तंभन करे । इस रोगको मन्यास्तंभ कहते हैं (अर्थात् गर्दन रहजावे) ।

१५ दोनों जाँघोंकी नसोंको पकड दोनों पैरोंको स्तंभित करदे, उसको पाँगुला कहते हैं ।

१६ जो पुरुष चलते समय थरथर काँपे और खञ्ज अर्थात् एक पैरसे हीन मालूम होय । इस रोगमें संधिके बन्धन शिथिल होते हैं, इस रोगको कलायखंज कहते हैं ।

१७ पक्वाशय और मूत्राशयमें उठी जो पीडा सो नीचे जायकर प्राप्त हो और गुदा तथा उप कहिये स्त्रीपुरुषोंके गुह्यस्थान इनमें भेद करे अर्थात् पीडा करे, उसको तूनीरोग कहते हैं ।

१८ गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा, सो उलटी ऊपर जायकर प्राप्त हो और जोर पक्वाशयमें प्राप्त हो और तूनीके समान पीडा करे, उसको प्रतितूनी अथवा प्रतूनी भी कहते हैं ।

१ कमरमें रहा जो वात सो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पगको स्तंभित करदेय, उस खञ्ज (खोडा) रोग कहते हैं ।

२ जिसके पैर हर्षयुक्त (कहिये झनझनाहट पीडायुक्त) होंय, उसको पादहर्ष कहते हैं, य रोग कफवातके कोपसे होता है ।

३ प्रथम स्फिक् कहिये कमरके नीचेका भाग जिसको कूला कहते हैं उसको स्तंभित करे पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पग इनको स्तंभित करदे, अर्थात् ये रहिजाँय, वेद और तोद कहिये चोंटनेकीसी पीडा होय और वारंवार कंप होय, यह गृध्रसीरोग बादीसे होता और वातकफसे होय तो इसमें तंद्रा और भारीपना और अरुचि ये विशेष होते हैं ।

४ बाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपर भागपर्यन्त प्रत्येक उँगलियोंके नीचे मोटी नसें उनको दुष्ट कर हाथसे लेना, देना, पसारना, मुट्ठी मारना इत्यादिक कार्योंका नाशकर्ता जो रोग हो उसको विश्वाची रोग कहते हैं ।

५ कंधामें रहै जो वायु सो नसोंका संकोच करता है, उसको अवबाहुक अथवा अपबाहुक रो कहते हैं ।

६ दृष्टिका स्तंभन होजाय, संज्ञा जाती रहै, गलेमें घुरघुर शब्द होय, वायु जब हृदयको छों तब रोगीको होश होय और वायु हृदयको व्याप्त करै तब फिर मोह होजाय इस भयंकर रोग अपतानक कहते हैं। गर्भपातके होनेसे, अथवा अतिरिक्तस्रावके होनेसे, अथवा अभिघात की दंडादिकोंकी चोट लगनेसे जो प्रगट अपतन्त्रक रोग सो असाध्य है ।

७ जो वायु अभिघात करके व्रण उत्पन्न होनेसे उसमें पीडा करता है, उसको व्रणायाम कहते

८ ऊँची नीची जगहमें पैर पडनेसे, अथवा श्रमके होनेसे वायु कुपित होकर टकनोंमें होकर पीडा करे, उस रोगको वातकंटक कहते हैं ।

९ रूक्षादि स्वकारणोंसे कोपको प्राप्त हुई जो वायु सो अपने स्वस्थानको छोड ऊपर जा प्राप्त हो और हृदयमें जायकर पीडा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीडा करे और देहको ध षको समान नवाय देवे और चलै तो मूर्च्छित करदे, वह रोगी बडे कष्टसे श्वास लेय, नेत्र मि जावें, अथवा टेढे होजाँय, कबूतरके समान गूँजे, तथा बेहोश होय इस रोगको अपतानक कहते

३२ कल्लता[१] ३३ प्रत्यष्ठीलिका[२] ३४ अष्ठीला[३] ३५ वामनत्वं[४] ३६ कुब्जत्वं[५] ३७ अंगपीडा[६]
३८ अंगशूल[७] ३९ संकोचं[८] ४० स्तंभं[९] ४१ रूक्षता[१०] ४२ अंगभंग[११] ४३ अंगविभ्रंश[१२]
४४ विड्ग्रहं[१३] ४५ बद्धविट्कता[१४] ४६ मूकत्वं[१५] ४७ अतिजृंभ[१६] ४८ अत्युद्गार[१७] ४९ अंत्रकूजन[१८]
५० वातप्रवृत्ति[१९] ५१ स्फुरण[२०] ५२ शिरापूरण[२१] ५३ कंपवायु[२२] ५४ कार्श्य[२३] ५५ श्यावता[२४]

---

१० जो वायु सब अंगोंका भेद करता है अर्थात् अंगमें फूटन उपजाता है उसको अंगभेद कहते हैं।

११ जो वायु सब अंगोंको सुखाय देता है उस रोगको अंगशोष कहते हैं।

१२ कफयुक्त वायु शब्दके बहनेवाली नाडीमें प्राप्त होकर मनुष्योंके वचनको क्रियारहित मिम्मिण ऐसा करदे। मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोलना।

---

१ जिस वायु करके कण्ठमें स्पष्ट शब्द नहीं निकले है उसको कल्लरोग कहते हैं।

२ जो वाताष्ठीला अत्यन्त पीडायुक्त हो वात, मूत्र, मलकी रोधन करनेवाली और तिरछी प्रगट भई होय उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं।

३ नाभिके नीचे उत्पन्न हो और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला गोल, पाषाणके समान कीठन और ऊपरका भाग कुछ लंबा होय और आडी कुछ ऊँची होय और बहिर्मार्ग कहिये अधोवायु, मल, मूत्र इनका अवरोध कहिये रुकना हो ऐसी गाँठको अष्ठीला अथवा वाताष्ठीला कहते हैं।

४ दुष्ट हुआ वायु गर्भाशयमें जाकर गर्भको विकार करता है, उस करके मनुष्य बोना होता है, इस रोगको वामनरोग कहते हैं।

५ शिरागत वायु दुष्ट होकर पीठ अथवा छातीको कुबडा करदे उसको कुब्जरोग कहते हैं।

६ जिस वायु करके सब अंगोंको पीडा होती है उस रोगको अंगपीडा कहते हैं।

७ जिस वायु करके सब अंगोंमें शूल (चमका) चले उसको अङ्गशूल कहते हैं।

८ जिस वायु करके सब अंगोंका संकोच (सुकडना) होय उसको संकोच कहते हैं।

९ जिस वायु करके सब अंगोंका स्तम्भ होवे (सब अङ्ग स्तब्ध होवे) उसको स्तम्भ कहते हैं।

१० जो वायु शरीरको तेजहीन करता है, उसको रूक्ष कहते हैं।

११ जिस वायु करके अंगमें पीडा होती है उसको अंगभंग कहते हैं।

१२ जिस वायु करके शरीरका कोई एक अवयव काष्ठ (लकडी) के समान चेतनारहित हो उसको अंगविभ्रंश कहते हैं।

१३ जिस वायुकरके मलका अवरोध हो अर्थात् मल साफ नहीं निकले उसको विड्ग्रह कहते हैं।

१४ जिस वायु करके मल पक्वाशयमें संघट्ट (गाढा) हो उसको बद्धविट्क कहते हैं।

१५ कफयुक्त वायु शब्दके बहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर मनुष्योंको वचनक्रियारहित करदे उसको मूकरोग कहते।

१६ वायु दुष्ट होकर जम्भाई बहुत लावे उसको अतिजृम्भ कहते है।

१७ आमाशयमें वायु दुष्ट होनेसे बहुत डकार आती हैं उसको अत्युद्गार कहते हैं।

१८ जो वायु पक्वाशयमें रहकर आँतोंमें जाकर शब्द करता है उसको अन्त्रकूजन कहते हैं।

१९ जो वायु गुदाके द्वारा बाहर निकले उसको वातप्रवृत्ति कहते हैं।

२० जिस वायुकरके अङ्ग फुरफुराता है उसको स्फुरण कहते हैं।

२१ वायु शिरा (नाडी) गत होनेसे शूल, नाडीका संकोच और स्थूलत्व करे और बाह्यायाम, अभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबडापन इन रोगोंको उत्पन्न करे। इसको शिरापूरण कहते हैं।

५६ प्रलाप ५७ क्षिप्रमूत्रता[2] ५८ निद्रानाश[3] ५९ स्वेदनाश[4] ६० दुर्बलत्व[5] ६१ के
६२ शुक्रातिप्रवृत्ति[7] ६३ शुक्रकार्श्य[8] ६४ शुक्रनाश[9] ६५ अनवस्थितचित्तत्व[10] ६६ काठि
६७ विरसास्यता[12] ६८ कषायवक्त्रता[13] ६९ आध्मान[14] ७० प्रत्याध्मान[15] ७१ शै
७२ रोमहर्ष[17] ७३ भीरुत्व[18] ७४ तोद[19] ७५ कंडू[20] ७६ रसाज्ञता[21] ७७ शब्दा

---

२२ सब अङ्गोंको और मस्तकको कंपावे उस वायको वेपथु (कंप) वायु कहते हैं।

२३ जो वायु सब अङ्गोंको कृश करदे उसको कार्श्य कहते हैं।

२४ जिस वायु करके सब शरीर काले वर्णका हो जावे उसको श्याव कहते हैं।

---

१ अपने हेतुसे कुपित भई जो वात सो असंबद्ध (अर्थरहित) वाणी बोले अर्थात् बकवाद अथवा बडबड शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं।

२ जिस वायु करके वारंवार मूते उसको क्षिप्रमूत्ररोग कहते हैं।

३ जिस वायु करके निद्रा न आवे उसको निद्रानाश कहते हैं।

४ जिस वायु करके शरीरको स्वेद (पसीना) नहीं आवे उसको स्वेदनाश कहते हैं।

५ जिस वायु करके पुरुषका बल हीन होवे उसको दुर्बलता (दुबलेपना) कहते हैं।

६ जिस वायु करके शरीरके बलका क्षय होवे उसको बलक्षय कहते हैं।

७ शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वह वायु बहुत शुक्र (वीर्य) को जल्दी पतन करे शुक्रातिपात कहते हैं।

८ जो वायु शुक्र (वीर्य) धातुको क्षीण करदे उसको शुक्रकार्श्य कहते हैं।

९ जिस वायु करके शुक्र (वीर्य) नाश होवे उसको शुक्रनाश कहते हैं।

१० जिस वायु करके मन इन्द्रीको स्वस्थता नहीं रहती है उसको अनवस्थितचित्तत्व कहते

११ जिस वायु करके शरीर कठिन रहता है उसको काठिन्य कहते हैं।

१२ जिस वायु करके मुखमें स्वाद नहीं रहै उसको विरसास्य कहते हैं।

१३ जिस वायु करके मुख कषैला होवे उसको कषायवक्त्र कहते हैं।

१४ गुडगुड शब्दयुक्त, अत्यन्त पीडायुक्त ऐसा उदर (पक्काशय) अत्यन्त फूले अर्थात् भरकर चमडेकी थैलीके समान होजाय इस भयंकर रोगको आध्मान कहते हैं। यह वातके रुकनेसे होती

१५ वही पूर्वोक्त आध्मान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तो उसको प्रत्याध्मान कहते हैं। पसवाडे और हृदय इनमें पीडा नहीं होय और वायु कफ करके व्याकुल होता है।

१६ जिस वायु करके देह शीतल होय उसको शैत्यरोग कहते हैं।

१७ वायु त्वचागत होनेसे सब शरीरमें रोमांच खडे हों उसको रोमहर्ष कहते हैं।

१८ जिस वायु करके भय उत्पन्न होता है उसको भीरुरोग कहते हैं।

१९ जिस वायु करके शरीरमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो उसको तोद कहते हैं।

२० जिस वायु करके शरीरमें खुजली चले उसको कण्डू कहते हैं।

२१ जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादिक रसोंका होय उस रोगको रसाज्ञान कहते हैं।

२२ कान इन्द्रीमें वायु कुपित होनेसे शब्दका ज्ञान जाता है अर्थात् कोई शब्द करे नेमें आवे नहीं उसको शब्दाज्ञान कहते हैं।

७८ प्रसुप्ति[1] ७९ गंधाज्ञत्व[2] और ८० दृशःक्षय[3] इस प्रकार वादीके अस्सी भेद जानने ॥

पित्तरोग ।

अथ पित्तभवारोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः ॥ धूमोद्गारो विदाहःस्यादुष्णांगत्वं मतिभ्रमः ॥ ११३ ॥ कांतिहानिःकंठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ॥ तिक्तास्यताम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोऽगपाकता॥ ११४॥क्लमोहरितवर्णत्वमतृप्तिःपीतकामता॥रक्तस्रावोऽगदरणंलोहगंधास्यतातथा॥ ११५॥दौर्गंध्यं पीतमूत्रत्वमरतिःपीतविट्कता ॥ पीतावलोकनंपीतनेत्रतापीतदंतता ॥११६॥ शीतेच्छापीतनखतातेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ॥ कोपश्चगात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमंधता॥११७॥ उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वंमूत्रस्यचमलस्यच ॥ तमसोऽदर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ॥११८॥ निःसरत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद्रुजः स्मृताः ॥

अर्थ-पित्तरोग. ४० चालीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं-१ धूमोद्गार[4] २ विदाह[5] ३ उष्णांगत्व[6] ४ मतिभ्रम[7] ५ कांतिहानि[8] ६ कंठशोष[9] ७ मुखशोष[10] ८ अल्पशुक्रता[11]

---

[1] जिस वायु करके त्वचामें स्पर्श करनेसे मृदु, कठिन, शीत, उष्ण पदार्थका ज्ञान नहीं होवे उसको प्रसुप्ति कहते हैं ।

[2] जिस वायु करके घ्राणेन्द्रियका ज्ञान जाता रहे अर्थात् सुगन्ध वा दुर्गन्ध कुछ भी समझनेमें नहीं आवे उसको गन्धाज्ञान कहते हैं ।

[3] जिस वायु करके दृष्टिका नाश होता है अर्थात् कुछ पदार्थ नहीं दीखता उसको दृशःक्षय (दृष्टिका नाश) कहते हैं ।

[4] डकार आते समय मुखमेंसे धुआँसा निकले वह धूमोद्गाररोग पित्तके कुपित होनेसे होता है ।

[5] जिस पित्तसे शरीरमें बहुत दाह होय उसको विदाह कहते हैं ।

[6] जिस पित्तसे सब अंग उष्ण होवे उसको उष्णांग कहते हैं ।

[7] जिस पित्त करके बुद्धिकी चेष्टा ठिकानेपर न रहे उसको मतिभ्रम कहते हैं ।

[8] जिस पित्त करके शरीरके तेजका नाश होता है उसको कांतिहानि कहते हैं ।

[9] जिस पित्त करके कंठका शोष (सूखना) होता है उसको कंठशोष कहते हैं ।

[10] जिस पित्त करके मुख सूखजाता है उसको मुखशोष कहते हैं ।

[11] जिस करके शुक्र (वीर्य) थोडा उत्पन्न होवे उसको अल्पवीर्य जानना ।

९ तिक्तास्यता[1] १० अम्लवक्त्रत्व[2] ११ स्वेदस्राव[3] १२ अंगपाकता[4] १३ क्लम[5] १४ हरितवर्णत्व[6] १५ अतृप्ति[7] १६ पीतकायता[8] १७ रक्तस्राव[9] १८ अंगदरण[10] १९ लोहगंधास्यता[11] २० दौर्गंध्य[12] २१ पीतमूत्रत्व[13] २२ अरति[14] २३ पीतविट्कता[15] २४ पीतावलोक[16] २५ पीतनेत्रता[17] २६ पीतदंतता[18] २७ शीतेच्छा[19] २८ पीतनखता[20] २९ तेजोद्वेष[21] ३० अल्पनिद्रता[22] ३१ कोप[23] ३२ गात्रसाद[24] ३३ भिन्नविट्कत्व[25] ३४ अंधता[26] ३५ उष्णोच्छ्वास

---

१ जिस पित्तसे मुख कडुआ होता है उसको तिक्तास्य कहते हैं।

२ जिस पित्त करके मुख खट्टासा रहे उसको अम्लवक्त्र कहते हैं।

३ जिस पित्तसे देहमें पसीना बहुत आवे उसको स्वेदस्राव कहते हैं।

४ जिस पित्तसे अंग पकजाय उसको अंगपाक कहते हैं।

५ जिस पित्तके योगसे शरीरमें ग्लानि उत्पन्न होय उसको क्लम कहते हैं।

६ जिस पित्त करके देहका वर्ण हरा, नीला होजावे उसको हरितवर्ण कहते हैं।

७ जिस पित्तके योगसे कितना भी अच्छा भोजन पान किया हो तोभी भोजनपानकी इच्छा निवृत्ति नहीं होती है उसको अतृप्ति कहते हैं।

८ जिसमें सब शरीरका वर्ण पीला दीखे उसको पीतकाय कहते हैं।

९ जिस पित्तसे स्रोतों (छिद्रों) मेंसे अर्थात् मुख, नाक आदिसे रुधिरका स्राव होवे उसको रक्तस्राव कहते हैं।

१० जिस पित्तसे अंग फटजाय उसको अंगदरण कहते हैं।

११ जिस पित्तसे मुखमेंसे अग्निमें तपाये लोहेके गंधके सदृश गंध आवे उसको लोहगंधास्य कहते हैं।

१२ जिस पित्त करके सब अंगसे बुरा गंध आवे उसको दौर्गंध्य कहते हैं।

१३ जिस पित्त करके मूत्रका वर्ण पीला होवे उसको पीतमूत्र कहते हैं।

१४ जिस पित्त करके मनकी कभी पदार्थमें प्रीति नहीं रहती है उसको अरति कहते हैं।

१५ जिस पित्त करके मल (विष्ठा) का वर्ण पीला होवे इसको पीतविट्क कहते हैं।

१६ जिस पित्त करके पुरुष सब पदार्थोंका पीला वर्ण देखे उसको पीतावलोकन कहते हैं।

१७ जिस पित्त करके नेत्र पीले वर्णके रहें उसको पीतनेत्र कहते हैं।

१८ जिस पित्तसे दाँत पीले वर्णके होवें उसको पीतदंत कहते हैं।

१९ जिस पित्तसे पुरुषको शीतल जलादिककी इच्छा रहे उसको शीतेच्छा कहते हैं।

२० जिस पित्तसे पुरुषके नख पीले हों उसको पीतनख कहते हैं।

२१ जिस पित्तसे पुरुषसे सूर्यादिकोंका तेज नहीं देखा जाय उसको तेजोद्वेष कहते हैं।

२२ जिस पित्तसे पुरुषको निद्रा थोडी आवे उसको अल्पनिद्रता कहते हैं।

२३ जिस पित्त करके पुरुषको हर किसीभी पदार्थपर सदा क्रोध आवे उसको कोप कहते हैं।

२४ जिस पित्तसे शरीरके संधिभाग दूखें उसको गात्रसाद कहते हैं।

२५ जिस पित्तसे पुरुषका मल (विष्ठा) पतला होवे उसको भिन्नविट्क कहते हैं।

२६ जिस पित्तसे दृष्टिसे कुछ देखनेमें नहीं आवे उसको अन्ध कहते हैं।

२७ जिस पित्तसे नासिकाके द्वारा गरम २ पवन निकले उसको उष्णोच्छ्वास कहते हैं।

३६ उष्णमूत्रत्व[1] ३७ उष्णमलत्व[2] ३८ तमोदर्शन[3] ३९ पीतमंडलदर्शन[4] और ४० निःसरत्व[5]। इस प्रकार चालीस प्रकारका पित्तरोग जानना ॥

कफरोग।

कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तंद्रातिनिद्रता ॥ ११९ ॥ गौरवंमुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता ॥ श्वेतावलोकनंश्वेतविट्कत्वंश्वेतमूत्रता ॥ १२० ॥ श्वेतांगवर्णताशैत्यमुष्णेच्छातिक्तकामिता ॥ मलाधिक्यंचशुक्रस्यबाहुल्यंबहुमूत्रता ॥ १२१ ॥ आलस्यंमन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ॥ अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजा गदाः ॥ १२२ ॥

अर्थ—कफरोग बीस प्रकारका है जैसे १ तन्द्रा[6] २ अतिनिद्रा[7] ३ गौरव[8] ४ मुख मीठा[9] रहना ५ मुखलेप[10] ६ प्रसेकता[11] ७ श्वेत देखना[12] ८ श्वेतविष्टाका[13] उतरना ९ श्वेतमूत्र[14] होना १० देहका[15] वर्ण सफेद होना ११ शैत्यता[16] १२ उष्णेच्छा[17] १३ तिक्तकामिता[18] १४ मलाधिक्य[19]

---

[1] जिस पित्तसे पुरुषका मूत्र गरम उतरे उसको उष्णमूत्र कहते हैं।

[2] जिस पित्तसे मल (विष्ठा) गरम उतरे उसको उष्णमल कहते हैं।

[3] जिससे नेत्रके सामने अन्धेरासा दीखे उसको तमोदर्शन कहते हैं।

[4] जिस पित्तसे देहके ऊपर पीले वर्णके चकत्ते देखनेमें आवें उसको पीतमंडलदर्शन कहते हैं।

[5] जो पित्त मुख तथा नासिकाके द्वारा गिरे उसको निःसर कहते हैं।

[6] जिस कफसे नेत्र भारी होते हैं उसको तन्द्रा कहते हैं।

[7] जिस कफसे बहुत निद्रा आवे उसको अतिनिद्रता कहते हैं।

[8] जिस कफसे सब शरीरमें जडता हो उसको गौरव कहते हैं।

[9] जिस कफसे मुखमें निरन्तर मीठासा स्वाद आता रहे उसको मुखमाधुर्य कहते हैं।

[10] जिस कफसे मुख कफ करके लिपटारहे उसको मुखलेप कहते हैं।

[11] जिस कफसे मुखमेंसे लार गिराकरे उसको प्रसेक कहते हैं।

[12] जिस कफसे सब पदार्थ सफेद दीखें उसको श्वेतावलोकन कहते हैं।

[13] जिस कफसे मल (विष्ठा) सफेद उतरे उसको श्वेतविट्क कहते हैं।

[14] जिस कफ करके मूत्र सफेद उतरे उसको श्वेतमूत्र कहते हैं।

[15] जिस कफसे सब अंगोंका वर्ण सफेद हो जाय उसको श्वेतांगवर्ण कहते हैं।

[16] जिस कफसे शर्दी बहुत होवे उसको शैत्य कहते हैं।

[17] जिस कफ करके उष्ण सूर्य अग्नि आदिके तापकी इच्छा होवे उसको उष्णेच्छा कहते हैं।

[18] जिस कफ करके तिक्त पदार्थ (मिरच) आदिके खानेकी इच्छा चले उसको तिक्तकामिता कहते हैं।

[19] जिस कफके योगमें मल (विष्ठा) बहुत उतरे उसको मलाधिक्य कहते हैं।

१५ शुक्रबाहुल्यं[1] १६ बहुमूत्रता[2] १७ आलस्य[3] १८ मन्दबुद्धि[4] १९ तृप्ति[5] २० घर्घरवाक्[6] २१ अचैतन्य[7] इस प्रकार कफसे बीस रोग जानने । परन्तु यहाँ संख्या करनेपर २१ हो सो शैत्य और उष्णेच्छा एक माननेसे संख्या ठीक हो जाती है ॥

रक्तरोग ।

रक्तस्य च दशप्रोक्ताव्याधयस्तस्यगौरवम् ॥ रक्तमंडलता रक्तनेत्रत्वंरक्तमूत्रता ॥ १२३ ॥ रक्तष्ठीवनतारक्तपिटिकानां च दर्शनम् ॥ उष्णत्वं पूतिगंधित्वं पीडापाकश्च जायते ॥ १२४ ॥

अर्थ-रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले १० रोग हैं। जैसे १ गौरव[8] २ रक्तमंडलता[9] ३ रक्तने[10] रक्तमूत्रता[11] ५ रक्तष्ठीवता[12] ६ रक्तपिटिकादर्शन[13] ७ उष्णत्व[14] ८ पूतिगंधित्व[15] ९ पीडा[16] और पाक[17] एस दश प्रकारके रक्तरोग हैं ॥

ओष्ठरोग ।

चतुःसप्ततिसंख्याका मुखरोगास्तथोदिताः ॥ तेष्वोष्ठरोगागणितएकादशमिताबुधैः ॥ १२५ ॥ वातपित्तकफैस्त्रेधात्रिदोषैरसजस्तथा ॥ क्षतमांसार्बुदंचैव खंडौष्ठश्च जलार्बुदम् ॥ १२६ ॥

---

[1] जिस कफ करके शुक्र (वीर्य) बहुत होवे तथा उतरे उसको शुक्रबाहुल्य कहते हैं।

[2] जिस कफ करके मूत्र बहुत उतरे उसको बहुमूत्र कहते हैं ।

[3] जिस कफसे मनुष्य भारी रहे, कोई काम करनेमें उत्सुकता नहीं रहे उसको आल कहते हैं ।

[4] जिस कफसे बुद्धि मन्द होवे उसको मन्दबुद्धि कहते हैं ।

[5] जिस कफ करके खाने पीनेमें इच्छा न चले उसको तृप्ति कहते हैं ।

[6] जिस कफसे बोलते समय कण्ठमेंसे घरड घरड आवाज निकले उसको घर्घरवाक्य कहते

[7] जिस कफसे मनुष्य चैतन्यतामें मन्द होय उसको अचैतन्यता कहते हैं ।

[8] जिस रक्तसे अंग जड होता है उसको रक्तगौरव कहते हैं ।

[9] जिस रक्तसे शरीरके ऊपर लालवर्णके चकत्ते उठें उसको रक्तमण्डल कहते हैं ।

[10] जिस रक्तसे नेत्र लालवर्णके हों उसको रक्तनेत्र कहते ह ।

[11] जिस रक्तसे लालवर्णका मूत्र मूते उसको रक्तमूत्र कहते हैं ।

[12] जिस रक्तसे लालवर्णका थूके उसको रक्तष्ठीवन कहते हैं ।

[13] जिस रक्तसे लालवर्णके फोडे (फुन्सी) अंगपर दीखें उसको रक्तपिटिकादर्शन कहते

[14] जिस रक्तसे शरीरमें गरमी मालूम हो उसको उष्णत्व कहते हैं ।

[15] जिस रक्तसे शरीरमेंसे दुर्गन्ध आवे उसको पूतिगन्ध कहते हैं ।

[16] शरीरमें रक्त करके जो पीडा होती है उसको रक्तपीडा कहते हैं ।

[17] शरीरमें जो रुधिर पकता है उसको रक्तपाक कहते हैं ।

मेदोऽर्बुदंचार्बुदंचरोगाएकादशौष्ठजाः ॥

अर्थ—मुखके रोग चौहत्तर हैं उनमें ओष्ठरोग ग्यारह प्रकारके हैं जैसे १ वातज[१] २ पित्तज[२] ३ कफज[३] ४ सन्निपातज[४] ५ रक्तज[५] ६ क्षतज[६] ७ मांसार्बुद[७] ८ खंडौष्ठ[८] ९ जलार्बुद[९] १० मेदोर्बुद[१०] ११ अर्बुद[११] ये ओष्ठके ग्यारह रोग हैं ॥

दंतरोग ।

दन्तरोगादशाख्याता दालनः कृमिदंतकः ॥ १२७ ॥
दंतहर्षः करालश्च दंतचालश्च शर्करा ॥
अधिदंतःश्यावदंतो दंतभेदः कपालिका ॥ १२८ ॥

अर्थ—दांतके १० रोग हैं उनको कहते हैं १ दालन[१२] २ कृमिदंत[१३] ३ दंतहर्ष[१४]

---

[१] बादीके कोपसे होठ कर्कश, खरदर, कठोर, काले होते हैं उनमें तीव्र पीडा हो और दो टुकडोंके समान होजाते हैं तथा होठकी त्वचा किंचित् फटजाती है ।

[२] पित्तसे होठ चारों ओरसे फुन्सियोंसे व्याप्त हों, उनमें पीडा होय, तथा पक जावें और पीलेसे दीखें ।

[३] कफसे होठ त्वचाके समान वर्णवाले फुन्सियोंसे व्याप्त होंय, कुछ दूखें, तथा मलाईके समान चिकने और शीतल तथा भारी हों ।

[४] सन्निपातसे होठ कभी काले, कभी पीले, उसी प्रकार कभी सफेद, तथा अनेक प्रकारकी फुन्सियोंसे व्याप्त होंय ।

[५] रक्तसे होठोंमें खजूर फलके वर्णकी फुन्सी होय उनमेंसे रुधिर गिरे, तथा वह होठ रुधिरके समान लाल होय ।

[६] अभिघातसे (चोट लगनेसे) होंठ सर्वत्र चिरजाय, पीडा होय, उनमें गाँठ होजाय तथा खुजली चलते समय पीब बहै ।

[७] मांस दुष्ट होनेसे होठ जड (भारी) मोटे होतेहैं, मांसपिंडके समान ऊँचे होंय इस रोगवाले मनुष्यके दोनों होंठोंमें अथवा होठोंके प्रांतभागमें कीडे पडजावें ।

[८] होठोंके एक भागमें चीराजावे और उसमेंसे स्राव होय उसको खंडौष्ठ कहते हैं ।

[९] मांसके भाग बढके होठ ऊँचे और मोटे होकर उनमेंसे पानी स्रवे उसको जलार्बुद कहते हैं ।

[१०] मेदसे होठ घृतके झागसमान खुजलीसंयुक्त तथा भारी होंय, तथा स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होय, इसमें भया हुआ व्रण नहीं भरता है तथा उसमें मृदुता नहीं रहती है ।

[११] वातादिक दोष कुपित होनेसे होठोंमें ग्रंथि उत्पन्न होती है, उसको अर्बुद कहते हैं ।

[१२] जिसके दांतोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, उसको दालनरोग कहतेहैं, यह रोग बादीसे होताहै ।

[१३] बादीके योगसे दाँतोंमें काले छिद्र पड जाँय, तथा हिलने लगें उनमेंसे स्राव होय, शोथयुक्त पीडा होनेवाले और कारण विना दुखनेवाले ऐसे दाँत होंय, उसका कृमिदंतरोग कहते हैं, यहां दाँतोंमें काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि दुष्टरुधिरसे कृमि (कीडा) पैदा होकर दाँतोंमें छिद्र करते हैं ।

[१४] शीतल, रूक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो दांत नहीं सहसके, उसको दंतहर्ष कहते हैं । यह रोग पित्तवायुके कोपसे होता है । यह रोग वातज होनेपरभी उष्ण (गरमी) को नहीं सहि सके, यह व्याधिका स्वभाव है ।

४ कराल ५ दंतचाल ६ दंतशर्करा[3] ७ अधिदंत ८ श्यावदंत[5] ९ दंतभेद[6] और १० कपालि
इस प्रकार दश भेद जाननें ॥

दन्तमूलरोग ।

तथा त्रयोदशमिता दंतमूलामयाः स्मृताः ॥ शीतादोपकुशौ द्वौतु दंतविद्रधिपुप्पुटौ ॥ १२९ ॥ अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिरसौषिरौ ॥ तथैवगतयः पंचवातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३० ॥ संनिपातगतिश्चान्या रक्तनाडीचपंचमी ॥

अर्थ—अब दंतमूलके रोगोंको कहते हैं । तहां दाँतकी जडके रोग तेरह हैं । जैसे
शीताद २ उपकुश ३ दंतविद्रधि ४ पुप्पुट[11] ५ अधिमांस[12] ६ विदर्भ ७ महासौषिर[14] ८ सौ

---

१ बादी धीरे धीरे मसूढेका आश्रय लेकर दांतोंको टेढे तिरछे करे उसको करालरोग कहते
यह रोग साध्य नहीं होता ।

२ बादीके योगसे तिस तिस अभिघातादिक करके हनुसंधि (ठोडी) में चोट लगनेसे
चलायमान होजायँ उसको दंतचाल अथवा हनुमोक्ष कहते हैं ।

३ दांतोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस
दंतशर्करा कहते हैं ।

४ बादीके योगसे दाँतके ऊपर दूसरा दाँत ऊगे उस समय पीडा होय जब वह दाँत ऊग
तब पीडा शांत होय उसको अधिदंत अथवा खल्लीवर्द्धन कहते हैं ।

५ जो दाँत रुधिरसे मिले पित्तसे जलेके समान सब काले होजाँय उसको श्यावदंत कहते हैं

६ जिस व्याधि करके मुख टेढा होकर दाँत फूटने लगें, उसको दंतभेद कहते हैं, यह
कफ करके होती है, इस दंतभंगकारी दोषके प्रभावसे मुखभी टेढा होता है ।

७ कपाल कहिये मट्टीके घडा आदिके जैसे टूक होते हैं ऐसे दांत मल करके सहित हों
उसको कपालिका ऐसे कहते हैं, यह रोग दांतोंका सदा नाश करता है ।

८ जिसके मसूढेमेंसे अकस्मात् रुधिर बहे और दांतोंका मांस दुर्गंधयुक्त, काला, पीवसहित
नरम होकर गिरे और एक दांतका मसूढा पकनेसे दूसरे मसूढेको पकावे, इस कफरुधिरसे
व्याधिको शीताद नाम कहते हैं ।

९ जिसके मसूढेमें दाह होकर पाक होय और दांत हिलने लगें, मसूढोंमें घिसनेसे रुधिर
पीडाके साथ निकले, रुधिर निकलनेके पिछाडी फिर मसूढे फूल आवें और मुखमें बास आवे ।
पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं ।

१० वातादिक दोष और रक्त कुपित होकर दांतोंके मसूढोंके भीतर और बाहर सूजन करे
रुधिरसे मिली राध गिरावे, पीडा और दाह होय इसको दंतविद्रधि कहते हैं ।

११ जिसके दो अथवा तीन दांतोंकी जडमें महान् सूजन होय, उसको दंतपुप्पुट रोग कहते
यह व्याधि कफरक्तसे होती है ।

१२ जिसके पीछेकी डाढके नीचे अर्थात् मसूढेमें बहुत सूजन होय और घोर पीडा होय,
लार बहुत बहे, उसको अधिमांसक कहते हैं । यह कफके कोपसे होता है ।

९ वात[1]नाडी १० पित्त[2]नाडी ११ कफ[3]नाडी १२ सं[4]निपातनाडी और १३ रक्त[5]नाडी ऐसे तेरह प्रकारके दंतमूलरोग हैं ॥

जिह्वारोग ।

तथा जिह्वामयाःषट् स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥१३१॥ अलसश्च
चतुर्थः स्यादधिजिह्वश्चपंचमः ॥ षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्-

अर्थ—जीभके रोग छः प्रकारके हैं उनके नाम १ वातज[6] २ पित्तज[7] ३ कफज[8] ४ अलस[9] ५ अधिजिह्व[10] और ६ उप[11]जिह्व । इस प्रकार जिह्वाके रोग छः प्रकारके हैं ॥

---

१३ मसूढे रगडनेसे सूजन बहुत होय और दांत हिलने लगें उसको विदर्भ कहते हैं । यह रोग चोटके लगनेसे होता है ।

१४ जिस त्रिदोष व्याधिसे मसूढेके समीपसे दांत हलें और तालुएमें छिद्र पडजायँ, दांत और होठ भी फटजायँ, उसको महासौषिर रोग कहते हैं । यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मारडालता है ।

१५ कफरुधिरसे दांतोंकी जडमें सूजन होय, उसमें पीडा और स्राव होय, उसको सौषिररोग कहते हैं ।

---

१ दंतमूलमें व्रण होनेसे उसके बीच नली होजाती है । उस नलीमेंसे दुर्गन्धयुक्त राध बहने लगे उसको नाडी कहते हैं । जिसमें वात दुष्ट होनेसे शूलादिक होते हैं उसको वातनाडी कहते हैं ।

२ उस पूर्वोक्त नाडीकी नलीमें दाहादिक पित्तके लक्षण होनेसे पित्तनाडी जानना ।

३ जिस नाडीमेंसे गाढी और सफेद राध वहे उसमें खुजली और जडपना इत्यादिक कफके लक्षण हो उसको कफनाडी कहते हैं ।

४ जो नाडी तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होती है उसको सन्निपातनाडी कहते हैं ।

५ जिस नाडीमेंसे लाल वर्णकी और दाहयुक्त राध बहे और उसमे पित्तके दाहादिक लक्षण हों उसको रक्तनाडी कहते हैं ।

६ वादीसे जीभ फटीसी, प्रसुप्त (अर्थात् रसका ज्ञान जाता रहे) और पर्वतीय वृक्षके पत्रसमान काँटेयुक्त खरदरी हो ।

७ पित्तसे जीभ पीली हो, उसमें दाह होय तथा लंबे लंबे ताँबेके समान काँटे होंय, इस रोगको लौकिकमें जाली अथवा जोडी कहते हैं ।

८ कफसे जीभ मोटी भारी होती है और उसमें सेमरकेसे काँटेके समान मांसके अंकुर होते हैं ।

९ जीभके नीचे कफरुधिरसे प्रगट ऐसा भयंकर सूजन होय उसको अलस कहते हैं उसके बढनेसे स्तंभ होय तथा जीभके मूलमें सूजन होय, यह रोग असाध्य है ।

१० कफरक्तके विकारसे जीभके ऊपर जीभके अग्रभागके समान अंकुर आवे उसको अधिजिह्व कहते हैं ।

११ कफरुधिरसे जिह्वाग्रके समान जैसा जीभका आगेका भाग होता है ऐसी सूजन जीभको नीची दबायकर उत्पन्न होय उसके योगसे लार बहुत बहे और उसमें खुजली तथा दाह होय । इस रोगको वैद्य उपजिह्व कहते हैं ।

तालुरोग ।

तथाष्टौ तालुजागदाः ॥ १३२ ॥ अर्बुदंतालुपिटिकाकच्छपीमांससंहतिः ॥ गलशुंडीतालुशोषस्तालुपाकश्चपुप्पुटः ॥ १३३ ॥

अर्थ--तालुएके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे १ अर्बुद २ तालुपिटिका ३ क ४ मांससंहति ५ गलशुंडी ६ तालुशोष ७ तालुपाक और ८ पुप्पुट ऐसे हैं ॥

गलरोग ।

गलरोगास्तथाख्याताअष्टादशमिताबुधैः ॥ वातरोहिणिकापूर्वं द्वितीया पित्तरोहिणी॥१३४॥ कफरोहिणिकाप्रोक्ता त्रिदोषैरपि रोहिणी॥ मेदोरोहिणिकावृंदोगलौघोगलविद्रधिः॥१३५॥स्वरहातुंडिकेरीचशतघ्नीतालुकोऽर्बुदम्॥ गिलायुर्वलयश्चापिवातगंडःकफस्तथा॥१३६॥ मेदोगंडस्तथैवस्यादित्यष्टादशकंठजाः॥

अर्थ--कंठरोग अठारह प्रकारके हैं. जैसे--१ वातरोहिणी २ पित्तरोहि

---

१ रुधिरसे तालुएमें कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय और उसमें पीडा थोडी होय उस अर्बुद कहते हैं।

२ रुधिरसे तालुएमें लाल, स्तब्ध (लठर ऐसी सूजन होय) उसमें पीडा और स्वर हो उसको तालुपिटिका अथवा अध्रुव कहते हैं।

३ कफसे तालुएमें कछुएकी पीठके समान ऊंची सूजन होय उसमें पीडा थोडी होय वह बढे नहीं, उसको कच्छपी कहते हैं।

४ कफ करके तालुएमें दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय और वह दूखे नहीं, उसको मां संहति कहते हैं।

५ कफरुधिरसे तालुएके मूलमें फूली बस्तीके समान सूजन होय, इसके प्रभावसे प्यास, खां श्वास ये होते हैं। इस रोगको गलशुंडी कहते हैं।

६ बादीसे तालु अत्यंत सूखकर फटजाय, तथा भयंकर श्वास होय, उसको तालुशोष कहते है

७ पित्त कुपित होकर तालुएमें अत्यन्त भयंकर पाक (पकी फुन्सी) उत्पन्न करे उसको ता पाक कहते हैं।

८ मेदयुक्त कफ करके तालुएमें पीडारहित आर स्थिर तथा बेरके समान सूजन होय उस पुप्पुट वा तालुपुप्पुट कहते हैं।

९ जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होंय, उनसे कंठका अवरोध है तथा कंप, विनाम (कंठ नवै), स्तंभ आदि वातके विकार होते हैं इसको वातरोहिणी कहते

१० पित्तसे प्रगट भई रोहिणी शीघ्रही बढे तथा पके, उसके योगसे तीव्र ज्वर होय।

३ कफरोहिणी[1] ४ सन्निपातरोहिणी[2] ५ मेदोरोहिणी[3] ६ वृन्द[4] ७ गलौघ[5] ८ गलविद्रधि[6] ९ स्वरहा[7] १० तुंडिकेरी ११ शतघ्नी १२ तालुक १३ अर्बुद १४ गिलायु १५ वलय १६ वातगंड १७ कफगंड १८ मेदोगंड इस प्रकार अठारह प्रकारके कंठरोग हैं ॥

मुखान्तर्गतरोग।

मुखांतःसश्रयारोगा ह्यष्टौख्यातामहर्षिभिः ॥१३७॥ मुखपाकोभवेद्वातात्पित्तात्तद्वत्कफादपि ॥ रक्ताच्चसंनिपाताच्चपूत्यास्योर्ध्वगुदावपि ॥१३८॥ अर्बुदंचेतिमुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः ॥

अर्थ—मुखके भीतरके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे १ वातमुखपाक २ पित्तमुखपाक[9] ३ कफमुखपाक[10] ४ रक्तमुखपाक[11] ५ संनिपातमुखपाक[12] ६ दुर्गंधास्य[13] ७ ऊर्ध्वगुद[14] और ८ अर्बुद[15] इस प्रकार मुखपाक रोग आठ प्रकारका है ॥

---

१ जो रोहिणी कण्ठके मार्गको रोध करे (रोकदे) तथा हौले हौले पके तथा जिसके अंकुर कठिन होय, उसे कफजन्यरोहिणी जाननी।

२ त्रिदोषसे उत्पन्न भई रोहिणी गम्भीरपाकिनी होती है। तिन करके गला रुक जाता है, ज्वरयुक्त जो उसमें राव बहुत हो जिसमें औषधिका प्रभाव नहीं चले और तीन दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होय यह तत्काल प्राणोंको हरण करे।

३ मेद दुष्ट होनेसे गलेमें फुंसी उत्पन्न होती हैं उसको मेदोरोहिणी कहते हैं।

४ गलेमें ऊंची गोल तीव्रदाह तथा सूजन होय, उसको वृन्द कहते हैं। यह वृन्द रक्तपित्तके कोपसे होता है। इसमें वायुका संबंध होनेसे चोंटनेकीसी पीडा होय।

५ रक्तयुक्त कफसे गलेमें भारी सूजन होय उसके योगसे कण्ठमें अन्नजलका अवरोध (रुकावट) होय, तथा वायुका सञ्चार होय नहीं, इसको गलौघ कहते हैं।

६ जो सूजन सब गलेमें व्याप्त होवे, तथा जिसमें सर्वप्रकारकी पीडा हो उसको विद्रधि कहते हैं।

७ वायुका मार्ग कफसे लिप्त होनेसे वारंवार नेत्रोंके आगे अन्धकार आकर जो पुरुष श्वासको छोडे, अथवा मूर्च्छा आकर जिसका श्वास निकले, जिसका स्वर भिन्न होय, कण्ठ सूखे और विमुक्त कहिये कण्ठ स्वाधीन नहीं अर्थात् थोडा भी अन्न खाया हो तथापि कण्ठके नीचे न उतरे इस वातजरोगको स्वरहा (स्वरघ्न) कहते हैं।

८ वादीके योगसे मुखमें सर्वत्र छाले होजांय और चिनमिनावें, मुख, जिह्वा, गला, होठ, मसूडे, दांत और तालु इन सबमें व्याप्त होता है। इस रोगको मुखपाक (मुख आना) अथवा सर्वसर कहते हैं।

९ पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होंय और दाह होवे।

१० कफसे मुखमें मंद पीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होंय।

११ रक्तके कोपसे मुखमें लाल फोडे होते हैं उनके लक्षण पित्तके सदृश होंय। उसको रक्तज मुखपाक कहते हैं।

कर्णरोग ।

**कर्णरोगाः समाख्याता अष्टादशमिताबुधैः ॥ १३९ ॥
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपाताच्चविद्रधिः ॥ शोथोर्बुदंपू-
तिकर्णःकर्णार्शःकर्णहल्लिका ॥ १४० ॥ बाधिर्यंतंत्रिकाकं-
डूःशष्कुलिःकृमिकर्णकः ॥ कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश
कर्णजाः ॥ १४१ ॥**

अर्थ—कर्णरोग १८ प्रकारके हैं जैसे—१ वात[1] २ पित्त[2] ३ कफ[3] ४ रक्त[4] ५ संनि
६ विद्रधि[6] ७ शोथ[7] ८ अर्बुद ९ पूतिकर्ण १० कर्णार्श[10] ११ कर्णहल्लिका[11] १२ बाधि

---

१२ मुखमें जो फोडे होते हैं उनमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण मिलनेसे उन्हें संनि तज मुखपाक कहते हैं ।

१३ मुखमें फोडेकीसी दुर्गन्ध आवे उसको पूत्यास्य अर्थात् दुर्गन्धमुख कहते हैं ।

१४ मुखमें जो फोडे होते हैं उनके फूटनेसे उनका आकार गुदाके सदृश होवे उसको कं कहते हैं ।

१५ संनिपातके योगसे मुखमें गोल आकारवाली ग्रन्थि उत्पन्न होती है उसको अर्बुद कहते

---

१ बादीसे कानमें शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूखजाय, पतला स्राव होय, सु नहीं देवे अर्थात् बहरा होजाय ।

२ पित्तसे कानमें सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, चिरासा होजाय, तथा किंचित् दुर्गन्धियुक्त स्राव होय ।

३ कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले, कठिन सूजन होय, सफेद और चिकना स्राव होय ।

४ पित्तके लक्षणसे रक्तज कर्णरोग जानना ।

५ संनिपानसे सब लक्षण होंय, स्राव होय, वा जौनसा दोष अधिक होय वैसेही दोषानु कर्णका स्राव होय ।

६ कानमें खुजानेसे व्रण होजाय, अथवा चोट लगनेसे कानमें व्रण होकर विद्रधि होय, प्रकार वातादि दोषों करके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होय है, जब वह फूटे तब उससे लाल पीला वहै, नोचनेकीसी पीडा होय, धूंआसा निकलता मालूम होवे, दाह होवे, चूसनेकीसी पीडा होवे

७ सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एकसाथ बहुत बढावे तो कानकी लौरमें होकर फूलजावे और पूर्ण हो उसको कर्णशोथ कहते हैं ।

८ त्रिदोषके कोपसे कानमें गोलाकार मांसकी फुन्सी उत्पन्न होवे उसको कर्णार्बुद कहते हैं।

९ कानमेंसे राध निकले और दुर्गन्ध आवे उसको कर्णपूति कहते हैं ।

१० वातादिक दोष कुपित होनेसे कानमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं, उनमें शूल, कण्डू, ये उपद्रव होते हैं उसको कर्णार्श कहते हैं ।

१३ तंत्रिका १४ कंडू[2] १५ शष्कुल १६ कृमिकर्णक १७ कर्णनाद और १८ प्रतीनाह । इस प्रकार कानके रोग अठारह प्रकारके जानने ॥

कर्णपाली रोग

कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः ॥
उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्द्धनः ॥ १४२ ॥
परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः ॥

अर्थ–कर्णपालीके रोग सात प्रकारके हैं । जैसे १ उत्पात २ पालिशोष ३ विदारी ४ दुःखवर्धन ५ पारिपोट[11] ६ लेही[12] और ७ पिप्पली[13] ॥

---

११ पतंग, कानखजूरा, गिजाई आदिके कानमें घुसनेसे बेचैनी होय, जीव व्याकुल होय और कानमें पीडा होय तथा कानमें नोचनेकीसी पीडा होय वह कीडा कानमें फडके और फिरे उस समय घोर कानमें पीडा होय, और जब वह बन्द होय, तब पिडा बन्द होय इसको कर्णहल्लिका कहते हैं ।

१२ जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द बहनेवाली नाडियोंमें स्थित होजाय, तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नहीं देता अर्थात् बहरा होजाता है उसको बाधिर्य कहते हैं ।

---

१ पित्तादि दोषों करके युक्त वायुसे कानोंमें वेणु (वंशी) का शब्द सुनाई देता है, उसको तंत्रिक अथवा कर्णक्ष्वेड कहते हैं ।

२ कफसे मिला हुआ वायु कानोंमें खुजली उत्पन्न करता है उसको कर्णकण्डू कहते हैं ।

३ मस्तकमें पाषाण, लकडी आदिका अभिघात होनेसे अथवा पानीमें गोता मारनेसे, अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे वायु कुपित होकर कानमेंसे राध बहे उसको कर्णशष्कुलि अथवा कर्णस्राव कहते हैं ।

४ जिस समय कानमें कृमि पडजायँ, अथवा मक्खी अण्डा धरे, तब कृमिके लक्षण होते हैं । इसको कृमिकर्ण कहते हैं ।

५ वायु कानके छिद्रमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर, तथा भेरी, मृदंग और शंख इनके सदृश शब्द सुनाई देवे इस रोगको कर्णनाद कहते हैं ।

६ जिस समय कानका मैल पतला होकर मुखमें और नाकमें उतरता है उसको प्रतीनाह रोग कहते हैं, इसमें आधा मस्तक दूखता है ।

७ कानमें भारी आभरण (गहना) पहननेसे, चोटके लगनेसे अथवा कानको खींचनेसे रक्तपित्त कुपित होकर कानकी पालीमें हरा, नीला, अथवा लाल सूजन होय, उसमें दाह होय, पीडा होवे और रक्त बहे, इस रोगको उत्पात कहते हैं ।

८ वायुके कोपसे कानकी पाली सूखजाय उसको पालीशोष कहते हैं ।

९ कानकी लौर फटकर उसमें खुजली चले उसको विदारी कहते हैं ।

१० दुष्टरीति करके कानको छेदने तथा बढानेसे खुजली दाह पीडायुक्त सूजन होय, वह पकजाय, उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं ।

कर्णमूलरोग ।

कर्णमूलामयाः पंचवातात्पित्तात्कफादपि ॥ १४३ ॥ संनिपाता

अर्थ—कर्णमूलरोगको[1] वात, पित्त, कफ, सन्निपात आर रक्त इन भेदोंसे पांच प्रकार

जानना ॥

नासारोग ।

रक्ताच्च तथानासाभवागदाः ॥ अष्टादशैवसंख्याताः प्रतिश्या-
यास्तुतेष्वपि ॥ १४४ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपातेन
पंचमः ॥ आपीनसः पूतिनासोनासार्शो भ्रंशथुः क्षवः॥१४५॥
नासानाहः पूतिरक्तमर्बुदं दुष्टपीनसम् ॥ नासाशोषो घ्राणपाकः
पुटस्रावश्च दीप्तकः ॥ १४६ ॥

अर्थ—नासारोग कहिये नाकमें होनेवाले रोग अठारह हैं. १ जैसे वातप्रतिश्याय[2] २ पि प्रतिश्याय[3] ३ कफप्रतिश्याय[4] ४ रक्तप्रतिश्याय ५ संन्निपातप्रतिश्याय[6] ६ आपी

---

११ सुकुमार स्त्री अथवा बालकोंके कानोंमें अलंकार (गहने) पहनानेके लिये प्रथम छिद्र क कोई दिन उनमें गहने नहीं पहने, फिर किसी कालमें कानमें गहने पहननेका समय आवे तब ये छि मोटे होनेके वास्ते कानमें सींक आदि डालकर बढानेको चाहे, तब उससे काले वर्णकी वा वर्णकी सूजन उत्पन्न होवे उसमें पीडा होवे, वह वादीसे होती है, उसको परिपोट कहते हैं।

१२ कफ, रक्त, कृमिसे उत्पन्न भई तथा सर्वत्र विचरनेवाली जो सूजन कानकी पालीमें होव कानकी पालीको खाय जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे उसको परिलेही ऐसे कहते हैं।

१३ कानको बलपूर्वक पालीमें (लौरमें) वायु कुपित होकर कफको संग लेकर कठिन मन्द पीडायुक्त सूजनको प्रकट करे, उसमें खुजली चले इस कफवातजन्य विकारको पिप्पली उन्मन्थक कहते हैं।

---

१ कानके नीचे मूलकी जगहपर गांठके आकार सूजन उत्पन्न हो । उसमें जिस दोषका हुआ हो उसके लक्षण होते हैं । जैसे वायुका कोप होनेसे पीडा होती है, पित्तका कोप होनेसे होता है, कफका कोप होनेसे खुजली होती है, सन्निपातसे तीनों लक्षण होते हैं और रक्तसे होता है, इस प्रकार करके पांच कर्णमूल रोग जानने ।

३ जिसके नाकका मार्ग रुकजाय, आच्छादित होजाय और उसमेंसे पतला पानी नि गला, तालु, होंठ ये सूख जायँ और कनपटी दूखे, गला बैठजाय ये वातके प्रतिश्याय (पी के लक्षण जानने।

३ जिसकी नाकसे दाह और पीला स्राव निकले, वह मनुष्य पीला और कृश होजाय दह गरम रहे, नाकसे अग्निके समान धूआँ निकले ये पित्तके पीनसके लक्षण है।

७ पूतिनास ८ नासार्श ९ भ्रंशथु १० क्षव ११ नासानाह १२ पूतिरक्त १३ अर्बुद १४ दुष्टपीनस १५ नासाशोष १६ घ्राणपाक १७ पुटस्राव और १८ दीप्तक ऐसे ये अठारह नासिकाके रोग हैं ॥

---

४ नाकसे सफेद पीला बहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद होजाय, नेत्रोंके ऊपर सूजन होय और मस्तक भारी रहे तथा गला, तालु, तथा होठ और शिर इनमें खुजली विशेष चले ये कफके पीनसके लक्षण हैं ।

५ रुधिरकी पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होंय, उरःक्षतकी पीडाके सदृश पीडा होंय, श्वास अथवा मुखमें बास आवे, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय ये रक्तके पीनसके लक्षण हैं ।

६ जिसके नाकमें वात, पित्त कफके पीनसके लक्षण होंय, तथा वह पीनस वारंवार होकर पककर अथवा विना पके नष्ट होजाय, उसको संनिपातकी पीनस कहते हैं । यह विदेह आचार्यके मतसे साध्य है ।

७ जिसका नाक रुकजाय, वात, शोणित कफसे नाक भीतरसे सूखासा रहे, गीला रहे, धुआँसा निकले, जिसके नाकमें सुगंध दुर्गंध मालुम न हो उसके पीनस प्रगट भई जाननी । इस वातजन्य विकारको आपीनस कहते हैं ।

---

१ गले और तालुएमें दुष्ट भया पित्त रक्तादिदोष करके वायुमिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गसे दुर्गंधि निकले इस रोगको पूतिनस्य कहते हैं ।

२ वात, पित्त, कफ ये दूषित होकर त्वचा, मांस और मेदा इनको दूषित करते हैं उससे नाकमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं उसको नासार्श कहते हैं ।

३ सूर्यकी गरमी करके, मस्तक तप्त होनेसे पूर्व संचित भया .विदग्ध, गाढा, खारी ऐसा कफ वा कस गिरे, उस व्याधिको भ्रंशथुरोग कहते हैं ।

४ नासिकाश्रित मर्म (शृंगाटक मर्म) के विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले, इसको क्षव (छींक) कहते हैं ।

५ वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बंद करे, तब नाकका स्वर अच्छी रीतिसे नहीं चले, इसको नासानाह कहते हैं ।

६ जो दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोट लगनेसे नाकमेंसे राध और रुधिर बहे, इसको पूतिरक्त अथवा पूयरक्त कहते हैं ।

७ वातादिदोष कुपित होनेसे नाकमें ऊँची गाँठ उत्पन्न होती है उसको नासार्बुद कहते हैं ।

८ वारंवार जिसकी नाक झडा करे और सूखजाय नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुकजाय और फिर खुलजाय । श्वास लेनेमें वास आवे तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधिका ज्ञान न रहै ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्ट प्रतिश्याय वा दुष्टपीनस कहते हैं यह कष्टसाध्य है ।

९ वायुसे नासिकाका द्वार अत्यंत तप्त होकर सूखजाय, तब मनुष्य बडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय, उस रोगको नासाशोष कहते हैं ।

१० जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुन्सी प्रगट करे और नाक भीतरसे पकजाय उसको घ्राणपाक कहते हैं ।

११ नाकसे गाढा, पीला अथवा सफेद, पतला दोष (कफ) स्रवे, उसको पुटस्राव कहते हैं ।

१२ नाक अत्यंत दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धुएँके सदृश विचरे और नाक प्रदीप्त अर्थात् गरम होवे उसको दीप्तक कहते हैं ।

शिरोरोग ।

तथा दश शिरोरोगा वातेनार्धावभेदकः ॥ शिरस्तापश्च वातेन पित्तात्पीडातृतीयका ॥ १४७ ॥ चतुर्थी कफजापीडा रक्तजा संनिपातजा ॥ सूर्यावर्ताच्छिरःपाकात्क्रृमिभिः शंखकेनच॥१४८

अर्थ—मस्तकरोग दश प्रकारका है । जैसे—१ अर्धावभेदक २ वातजशिरोभि ३ पित्तजशिरोभिताप ४ कफजशिरोभिताप ५ रक्तजशिरोभिताप ६ सन्निपातजशि भिताप ७ सूर्यावर्त्त ८ शिरपाक ९ क्रृमिज और १० शंखक ऐसे मस्तकके दश रोग हैं

---

१ रूखे अन्नसे, अत्यंत भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), पूर्व दिशाकी पवनके करनेसे, बर्फसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण करनेसे, परिश्रम और दंडकसरत करनेसे कारणोंसे कुपित भई जो केवल वात अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहण कर मन्याना भ्रुकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखें, कुल्हाडीसे घाव क कीसी, अथवा अरणिके (आंच लगानेके काठके) मथनेकीसी पीडा होय उसको अर्ध भेदक अर्थात् आधाशीशी कहते हैं । यह रोग जब बहुत बढ जाता है तब एक ओरके का बहरापन होजाता है । अथवा एक ओरकी आँख मारी जाती है जिस ओरको पीडा होय उस उपद्रव होते हैं ।

२ जिसका मस्तक अकस्मात् दूखे और रात्रिमें विशेष दूखे, बाँधनेसे अथवा सेकनेसे हो, उसको वातजशिरस्ताप कहते हैं ।

३ जिसका मस्तक अंगारसे तपायेके समान गरम होवे और नाकमें दाह होय, शीतल पदा किंवा रात्रिमें शांत हो, उस मस्तकशूलको पित्तका जानना ।

४ जिसका मस्तक भीतरसे कफ करके लिप्त (लिहसासा) होवे, भारी, बँधासा और शीतल तथा नेत्र सुजाकर मुखको सुजाय देवे इस मस्तकरोगको कफके कोपका जानना ।

५ रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृत मस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं तथा मस्तकका स्पर्श नहीं जाता यह विशेष होता है ।

६ त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण होते हैं ।

७ सूर्यके उदय होनेसे धीरेधीरे मस्तक दूखनेका आरंभ होय और जैसे जैसे सूर्य बढे तैसे वह शूल नेत्र और भ्रुकुटी (भौंह) में दो प्रहर दिन बढेतक बढता जाय और सूर्यके साथ फिर जैसे सूर्य अस्त होय तैसे २ पीडा मंद होती जाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे म सुख होय इस सांनिपातिक विकारको सूर्यावर्त कहते हैं ।

८ मस्तकके रुधिर, वसा, कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यंत भयंकर मस्तकशूल छींक बहुत आवे, मस्तक गरम होवे, तथा उसमें स्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य और रुधिर लना ये कर्म करनेसे यह मस्तकशूल बढता है इसको शिरःपाक अथवा क्षयजशिरोरोग कह

९ जिसके मस्तकमें टाँकीके तोडनेकीसी पीडा होवे, तथा क्रृमि भीतरसे मस्तक खाकर

कपालरोग।

तथा कपालरोगाःस्युर्नवतेषूपशीर्षकम् ॥ अरूंषिकाविद्रधिश्च दारुणं पिटिकार्बुदम् ॥ १४९ ॥ इन्द्रलुप्तं च खालित्यं पलितं चेति ते नव ॥

अर्थ–कपालके रोग नव प्रकारके हैं । जैसे १ उपशीर्षक २ अरुंषिका ३ विद्रधि ४ दारुण ५ पिटिका ६ अर्बुद ७ इन्द्रलुप्तं ८ खालित्यं और ९ पलितं । ऐसे नव प्रकारके कपालके रोग हैं ॥

करदेवे, तथा भीतरसे मस्तक फडके तथा नाकमें रुधिर, राध और कीडे पडें यह कृमिजशिरोरोग बडा भयंकर है ।

१० दुष्ट भये जो पित्त रक्त और वायु सो विशेष बढकर नेत्रोंमें भयंकर सूजन उत्पन्न करें इसमें घोर पीडा होय, घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुत हों यह विषके वेगके समान बढकर गलेमें जाकर गलेको रोकदे इस शंखक रोगसे रोगीके तीन दिनमें प्राणोंका नाश होवे इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषध पहुँचनेसे रोगी बचे, परन्तु प्रथम निश्चय करके चिकित्सा करना ।

---

१ वातादिक दोष कुपित होनेसे मस्तकके समीप माथेके ऊपरके भागपर सूजन उत्पन्न होती है उसको उपशीर्षक कहते हैं ।

२ रुधिर, कफ और कृमिके कोपसे माथेमें बहुत फुन्सी होजायँ उनमेंसे चेप विशेष निकले और क्लेद युक्त होय इन फुन्सीको अथवा व्रणोंको अरुंषिका कहते हैं ।

३ वातादिक दोषोंसे माथेमें गांठ होकर पके और फूटे उसमें शूल दाह ये होंय उसको विद्रधि कहते हैं ।

४ कफ वायुके कोपसे केशोंकी जमीन अति कठिन होकर खुजावे, खरदरी होय तथा बारीक फुन्सी होकर पके उसको दारुण कहते हैं, कफवातके कोपसे यह रोग होता है इसका कारण यह है कि, विना पित्तके पाक नहीं होय ।

५ त्रिदोषके कोपसे मस्तकमें गोल फुन्सी होती है उससे शूल दाह आदि पीडा होवे उसको पिटिका कहते हैं ।

६ माथेमें वातादि दोष कुपित होकर रुधिर और मांसको दूषित कर मोटी और गोल ऐसी गांठ उत्पन्न करे उसमें पीडा थोडी होवे उसकी जड नीचे रहती है यह गांठ बहुत देरमें बढती और बहुत देरमें पकती है उसको अर्बुद ऐसे कहते हैं ।

७ पित्त वादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमें अर्थात् बालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो, तब मस्तक अथवा अन्यस्थानके बाल झडने लगें पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये बालोंके प्रगट होनेके स्थानको रोकदे उससे फिर बाल नहीं ऊगे इस रोगको इन्द्रलुप्त अर्थात् चाईरोग कहते हैं यह रोग स्त्रियोंके नहीं होता कारण यह कि, उनका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता है और निकलतारहता है इसीसे वह रोमकूपोंको नहीं रोकता ।

८ इन्द्रलुप्त सदृशही खालित्यरोगके लक्षण हैं । तहां इन्द्रलुप्त रोग मूँछ डाढीमें होता है और खालित्य रोग शिरमें होता है ।

९ क्रोध, शोक और श्रमके करनेसे शरीरमें उत्पन्न भई जो ऊष्मा (गरमी) और पित्त सो मस्तकमें जायकर बालोंको पकाय दे अर्थात् सफेद करदे यह पलित रोग होता है ।

वर्त्मरोग ।

**तथानेत्रभवाः ख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः ॥ १५० ॥ तेषुवर्त्म-
गदाःप्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसंज्ञिताः ॥ कृच्छ्रोन्मीलःपक्ष्मशातः
कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः ॥ १५१ ॥ अरुङ्निमेषःकथितो
रक्तोत्क्लिष्टः कुकूणकः ॥ पक्ष्मार्शःपक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च
पोथकी ॥ १५२ ॥श्लिष्टवर्त्माचबहलः पक्ष्मोत्संगस्तथार्बुदम्॥
कुंभिकासिकतावर्त्मालगणोंऽजननामिका ॥ १५३॥ कर्दमः
श्याववर्त्मादि विसवर्त्म तथालजी ॥ उत्क्लिष्टवर्त्मोंतिगदाःप्रोक्ता
वर्त्मसमुद्भवाः ॥ १५४ ॥**

अर्थ—नेत्रके रोग ९४ हैं उनमें पलकोंके रोग २४ हैं, जैसे—१ कृच्छ्रोन्मील २ पक्ष्मशात ३ कफोत्क्लिष्ट ४ लोहित ५ अरुङ्निमेष ६ रक्तोत्क्लिष्ट ७ कुकूणक ८ पक्ष्मा ९ पक्ष्मरोध १० पित्तोत्क्लिष्ट ११ पोथकी १२ श्लिष्टवर्त्म १३ बहल १४ पक्ष्मो

---

१ वातादि दोष जब कोएके मार्गको संकुचित करें तब मनुष्य नेत्रको उघाडकर नहीं दे सके । उस रोगको कुंचन अथवा कृच्छ्रोन्मील कहते हैं ।

२ पलकोंकी जडमें रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रोंके बाल जिनको बरूनी अथवा वां कहते हैं उनका नाश करे नेत्रोंमें खुजली चले और दाह होय, उसको पक्ष्मशात कहते हैं।

३ कोएमें अल्पपीडा तथा बाहरसे सूजा हुआ अत्यन्त कीचडसे व्याप्त हो उसको कफोत्क्लिष्ट क्लिन्नवर्त्म कहते हैं ।

४ रुधिरके संबंधसे नेत्रके कोएके भीतरके भागमें लाल तथा नरम अंकुर बढै उसको शोणित वा लोहित कहते हैं इसको जैसे जैसे काटे तैसे तैसे बढता है इस रक्तज व्याधिको विदेहाचा असाध्य मानते हैं ।

५ वर्त्माश्रित (कोएमें आस्थित) जो वायु सो निमेष (कहिये पलकके उघाडने मूंदनेवाली नसमें प्रविष्ट होकर वारंवार पलकोंको चलायमान करे उसको अरुङ्निमेष (नेत्रका मिचकाना कहते हैं । यह रोग सांन्निपातज है ।

६ नेत्रके कोएमें लम्बे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे मांसांकुर होते हैं उसको शुष्कार्श अथ रक्तोत्क्लिष्ट कहते हैं ।

७ दूधके विकारसे छोटे बालकोंके नेत्रमें खुजली, दाह और वारंवार स्राव होता है उसको कु णक कहते हैं ।

८ ककडीके बीजके बराबर, मन्दपीडायुक्त, पृथक् देखी फुन्सी कोएमें उठे उसको पक्ष्मार्श क है. वह सन्निपातात्मक है ऐसा निमि और विदेह आचार्यका मत है ।

९ जिसके नेत्रके कोयोंमें सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आयजावे उससे उस मनुष्यको कुछ दीखे । इस रोगको पक्ष्मरोध वा वर्त्मबन्ध कहते हैं ।

१० वादीसे चलायमान कोएके बाल नेत्रमें प्रवेश करें और वे वारंवार नेत्रसे रगडे जायँ इस

१५ अंबुर्द १६ कुंभिका १७ सिकतावर्त्म १८ अलँगण १९ अंजननामिका २० कँदर्म २१ श्याववर्त्म २२ विर्सवर्त्म २३ अलेजी और २४ उत्क्लिष्टवर्त्म इस प्रकार चौवीस प्रकारके पलकोंके रोग हैं॥

नेत्रके काले वा सफेद भागमें सूजन होय, वह केश (बाल) जडसे टूटजावें, अतएव इस व्याधिको पक्ष्मकोप, उपपक्ष्म, अथवा पित्तोत्क्लिष्टभी कहतेहैं।

११ कोयोंमें लाल सरसोंके समान रुधिरस्रावयुक्त, खुजलीसंयुक्त, भारी, तथा पीडासंयुक्त ऐसी फुन्सी होय उसको पोथकी कहते हैं।

१२ नेत्रके वर्त्म धोनेसे अथवा नहीं धोनेसे वारंवार चिपकजावे, कोए पककर राधसे नहीं चिकटें तो इस रोगको अक्लिष्टवर्त्म अथवा क्लिष्टवर्त्म कहते हैं।

१३ नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन फुन्सीसे व्याप्त होय, उस रोगको बहल वर्त्मरोग कहते हैं।

१४ नेत्रके ढकनेवाली बाफणी अर्थात् कोएमें फुन्सी होय और उसका मुख भीतर होय, वह लाल बडी तथा खुजली संयुक्त होय, उसको पक्ष्मोत्संग पिटिका कहते हैं, यह त्रिदोषजन्य है।

---

१ नेत्रके कोएके भीतर गोल मंद वेदनायुक्त, कुछ लाल, जल्दी बढनेवाली ऐसी जो गाँठ होय उसको अर्बुद कहते हैं, यह संनिपातज है।

२ पलकोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान फुन्सी होय वह पककर फूटजाय और फूटकर बहे उसको कुंभिका कहते हैं, कोई आचार्य कहते हैं कि, कच्छदेशमें दाडिम (अनार) के बीजके आकार कुंभिका होती है।

३ कोएमें जो पिडिका कठिन और बडी होकर सर्वत्र छोटी छोटी फुन्सियोंसे व्याप्त होय उसको वर्त्मशर्कर, अथवा सिकतावर्त्म कहते हैं।

४ नेत्रके कोएमें बेरके समान बडी कठिन खुजलीसंयुक्त चिकनी गाँठ होय उसको अलगण कहते हैं। यह रोग कफजन्य है इसमें पीडा और पकना नहीं होता।

५ दाह, तोद (चोंटनी) संयुक्त, लाल, नरम, छोटी, मंद पीडा करनेवाली ऐसी फुन्सी नेत्रके कोएमें होय उसको अंजना कहते हैं. यह संनिपातज है।

६ क्लिष्टवर्त्मरोग (जो पूर्व कहा) फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहन करे तब वह दही दूध माखनके समान गीला होजाय अतएव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं।

७ जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन तथा पीडा होय। उसको श्याववर्त्म कहते हैं। यह वाताधिक त्रिदोषजन्य है।

८ तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको सुजाय देवें, तथा उनमें छिद्र होजाय, उन कोयोंमेंसे कमलतंतुके समान भीतरसे पानी झरे इस रोगको विसवर्त्म कहते हैं।

९ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें ताँबेके समान बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं।

१० जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् होंय तथा जिसके पलक मीचें और खुलें नहीं ऐसे नेत्रके कोए मिले नहीं उसको उत्क्लिष्टवर्त्म कहते हैं। इसकोही शालाक्यसिद्धांतवाला बातहतवर्त्मकैहता हैं।

नेत्रसंधिगतरोग ।

नेत्रसंधिसमुद्भता नवरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी ॥ १९५ ॥ पूयस्रावः कृमिग्रन्थिरुपनाहस्तथा लजी ॥ पूयालस इति प्रोक्ता रोगानयनसंधिजाः ॥ १९६ ॥

अर्थ—नेत्रोंकी संधिके रोग नौ हैं । १ जलस्राव[1] २ कफस्राव[2] ३ रक्तस्राव[3] ४ पर्वणी[4] पूयस्राव[5] ६ कृमिग्रंथि[6] ७ उपनाह[7] ८ अलजी[8] और ९ पूयालस[9] । इस प्रकार नेत्रके ९ रोग हैं

नेत्रके सफेद बबूलेके रोग ।

तथा शुक्लगता रोगा बुधैःप्रोक्तास्त्रयोदश ॥ शिरोत्पातःशिराहर्ष शिराजालं च शुक्तिकः ॥२९७॥ शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्य र्मचापिष्टकः ॥ शिराजापिटिकाचैवकफग्रंथितकोऽर्जुनः ॥ १९८॥ स्नाय्वर्मचाधिमांसः स्यादिति शुक्लगतागदाः ॥

अर्थ—नेत्रके सफेद भागके ऊपर तेरह रोग होते हैं जैसे १ शिरोत्पात[10] २ शि

---

[1] जिसकी संधिमें पित्तसे पीला गरम जल बहे उसको जलस्राव कहते हैं ।

[2] जिसमेंसे सफेद, गाढी और चिकनी राध बहे उसको कफस्राव कहते हैं ।

[3] जिस विकारमेंसे विशेष गरम रुधिर बहे, उसको रक्तस्राव कहते हैं ।

[4] नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें ताँबेके समान छोटी गोल जो फुन्सी होवे और वह फुन्सी होकर पके उसका पर्वणी कहते हैं ।

[5] नेत्रकी संधिमें सूजन होकर पके तथा उसमें राध बहे, उसको पूयस्राव कहते हैं । यह संनिपातात्मक है ।

[6] जिसके नेत्रके शुक्लभागकी संधिमें और पलकोंकी संधिमें उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी खुजली और गाँठ उत्पन्न करे और नेत्रकी पलक और सफेदी भागके संधिमें प्राप्त होकर भीतरके भागको दूषित करे, भीतर फिरे, उसको कृमिग्रंथी कहते हैं ।

[7] नेत्रकी संधिमें बडी गाँठ होवे, वह थोडी पके, उसमें खुजली बहुत हो, दूखे नहीं उस उपनाह कहते हैं ।

[8] नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांबेके समान बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं।

[9] नेत्रकी संधिमें सूजन होवे और पककर फूटजाय, उसमेंसे दुर्गंधि आवे और राध बहे, तोद (सुई छेदनेकीसी पीडा) होय, उसको पूयालस कहते हैं ।

[10] जिसके नेत्रकी नस पीडासहित अथवा पीडारहित तांबेके समान लाल रंगकी हो और वह बराबर अधिकाधिक (जियादहसे जियादह) लाल होजाय इस रोगको शिरो (सबलवायु) कहते हैं । यह रोग रक्तजन्य है ।

[11] अज्ञान करके शिरोत्पात (सबलवायु) की उपेक्षा करनेसे शिराहर्षरोग होता है । इलाज न करनेसे शिराहर्ष रोग होताहै उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरें और उस रोगी नेत्रसे कुछ दिखलाई न देवे ।

३ शिराजाल ४ शुक्तिकं[2] ५ शुक्लार्म[3] ६ अधिमांसार्म[4] ७ प्रस्तार्यर्म[5] ८ पिष्टकं[6] ९ शिराजपिटिका[7] १० कफग्रथितक[8] ११ अर्जुन[9] १२ स्नाय्वर्म[10] १३ अधिमांस[11] इस प्रकार नेत्रके सफेद भागमें होनेवाले १३ रोग जानने ॥

नेत्रके काले बवूलेके रोग ।

तथा कृष्णसमुद्भूताः पञ्चरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १५९ ॥
शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाजकः ॥
शिरासंगश्चसर्वेऽपि प्रोक्ताः कृष्णगता गदाः ॥ १६० ॥

अर्थ—नेत्रके काले भागमें होनेवाले रोग ५ हैं. जैसे १ शुद्धशुक्रं[12] २ शिराशुक्रं[13]

---

[1] नेत्रके सफेद भागमें शिरा (नस) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे इसको शिराजाल कहते हैं ।

[2] नेत्रके सफेद भागमें श्यामवर्ण मांसतुल्य सीपीके समान जो बिन्दु होय उसको शुक्तिक कहते हैं ।

[3] नेत्रके शुक्ल भागमें सफेद मृदु मांस बहुत दिनमें बढे, उसको शुक्लार्म कहते हैं ।

[4] नेत्रमें जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान (कुछ लाल काला) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते हैं ।

[5] नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, श्यामवर्ण तथा लाल ऐसा मांस बढे, उसको प्रस्तारिअर्मरोग कहते हैं ।

[6] कफवायुके कोपसे शुक्लभागमें पिष्ट (पिसा) सा जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते हैं, वह मलसे मिले अर्श (बवासीर) के समान होता है ।

[7] नेत्रके शुक्लभागमें शिरा (नसों) से व्याप्त सफेद फुन्सी होय, उसको शिराजपिटिका कहते हैं । वह कृष्णभागके समीप होती है ।

[8] नेत्रके सफेद भागमें कांसेके समान कठिन अथवा पानीके बूंदके समान कुछ ऊँची जो गांठ होय उसको कफग्रथितक अथवा बलास कहते हैं ।

[9] शुक्लभागमें खरगोशके रुधिरके समान जो बिंदु (बूँद) नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं ।

[10] नेत्रमें जो कठिन तथा फैलनेवाला स्रावरहित मांस बढे उसको स्नाय्वर्म कहते हैं ।

[11] नेत्रके सफेद भागमें लालकमलके सदृश लाल वर्णका और मृदु ऐसा मांस बढता है उसको अधिमांस अथवा रक्तार्म कहते हैं ।

[12] नेत्रके काले भागमें अभिष्यन्दसे सींग तुमडीकी पीडायुक्त, शंख, चन्द्र, कुन्दपुष्प इनके समान सफेद, आकाशके समान पतला जो व्रणरहित शुक्र कहिये फूला होय उसको शुद्धशुक्र कहते हैं, यह सुखसाध्य है ।

[13] जिस शुक्रके बीचका मांस गिरजाय इसीसे शुक्रके स्थानमें गढेला हो जाय, अथवा उसके विपरीत पिपितावृत (अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय) चञ्चल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओं करके व्याप्त हो, बारीक होगयाहो, दृष्टिका नाश करनेवाला, दो पटल कहिये परदोंके भीतर भयाहो, चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र (फूला) हो इसको शिराशुक्र कहते हैं, यह असाध्य है ।

३ क्षतशुक्र ४ अजक ५ शिरासंग इस प्रकार पांच भेद जानने ॥

काचबिंदुरोग ।

काचंतुषड्विधंज्ञेयं वातात्पित्तात्कफादपि ॥
सन्निपाताच्च रक्ताच्च षष्ठं संसर्गसम्भवम् ॥ १६१ ॥

अर्थ—वातादिदोष कुपित हो दृष्टिके पटलमें प्राप्त हो कॉचरोगको प्रगट करते हैं। यह
प्रकारका है, जैसे १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ सन्निपातज ५ रक्तज ६ संसर्गज
मोतियाबिन्दु छः प्रकारके हैं ॥

---

१ नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलासा होजाय और भीतरसे गढासा होय उसमें सु
छेदके समान छिद्र पडाहुआ देखनेमें आवे, तथा नेत्रोंमेंसे अति गरम और बहुतसा स्राव हो
इस रोगको क्षतशुक्र कहते हैं। इसमें पीडा बहुत होती है।

२ काले भागमें बकरीकी शुष्क विठाके समान, दूखनेवाला लाल हो और गाढा, कुछ का
आँसू बहें उसको अजक कहते हैं।

३ नेत्रके कृष्ण भागमें वातादि दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद शुक्र (फूला) फैल जावे,
संनिपातजन्य शिरासंग अथवा अक्षिपाकात्यय रोग जानना।

४ दृष्टिके सर्व पटलोंके भीतर कालिकास्थिके समीप पहले पडदेमें तथा दूसरे पडदेमें वाता
दोष प्राप्त होकर मनुष्य, नेत्रके आगे अनेक प्रकारके स्वरूप देखे उसको तिमिर कहते हैं।
वही तिमिर कुछ दिन रोग दशाको प्राप्त होता है उसको काच (मोतियाबिंदु) कहते हैं।

५ बादीके काच (मोतियाबिंदु) में रोगीको मलीन, कुछ लाल तिरछी और भ्रमती ऐसी व
दीखे, इसे वातजकाचबिंदु जानना।

६ जिस मोतियाबिन्दुसे रोगीको सूर्य खद्योत (पटबीजना), इन्द्रधनुष बिजली और नाचने
मोर तथा सर्व वस्तु नीली दीखें, वह पित्तजकाचबिंदु कहाता है।

७ चिकनी और सफेद तथा पानीमें कर निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप कफज का
रोगसे दीखे।

८ अनेक प्रकारके विपरीत (अर्थात् एकके अनेक, दो अथवा अनेक प्रकारके रूप दीखें
हीन अंगके अथवा अधिक अंगके रूप दीखें और ज्योतिःस्वरूपसे सब पदाथ दीखें, इस का
बिंदुको सन्निपातज जानना।

९ रक्तज काचबिंदुरोगमें लाल और अनेक प्रकारका तथा अन्धकार किंचित् सफेद, का
और पीली ऐसी वस्तु दीखें।

१० रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे संसर्गज काचबिंदु होता है इसके योगसे रोगीको दि
आकाश और सूर्य ये पीले दीखे, उसे सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखें तथा वृक्षभी तेजस्वरूपसे दी
इसको परिम्लायि रोगभी कहते हैं, परिम्लायि पित्तको नील कहते हैं, इस रोगको कोई आ
रक्तपित्तसे होता है ऐसा कहते हैं।

तिमिररोग ।

तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥
संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात्संनिपाततः ॥ १६२ ॥

अर्थ—नेत्रक पटल (पडदे) वातादि दोषोंसे दुष्ट हो तिमिरोगको प्रगट करते हैं । तिस करके मनुष्य नानावर्ण और विपरीत स्वरूप देखता है । उन दोषोंके लक्षण दृष्टिके पहले पटलमें वातादि दोष जानेसे इस प्राणीको रूपवान् पदार्थ धुंवरे २ से दीखें तथा वातादि दोषोंके समान उन पदार्थोंके वर्ण दाखे, अर्थात् बादीसे काजलके समान, पित्तसे नीले रंगके, कफसे सफेद रंगके, रुधिरसे लाल रंगके और सन्निपातसे अनेक वर्णके दीखते हैं । ऐसे लक्षण सर्व पटलोंम जानने । दूसरे पडदोंमें वातादि दोष जानेसे दृष्टि विह्वल होती है । अर्थात् नेत्रके सामने मच्छर, मुली बाल, मंडल, जाली, पताका, किरण, कुंडल, वर्षा बादल ये सब अंधेरेके समूह और जालसे देखते हैं । दूरका पदार्थ समीप और समीपका पदार्थ दूर है ऐसा मालूम होवे । बडे यत्नसेभी सुई पिरोनेमें न आवे इत्यादि नेत्रके तीसरे पडदेमें, दोष पहुंचनेसे ऊपरके पदार्थ कपडेसे मढेहुयेसे दीखें और नीचेके बिलकुल नहीं दीखें । नाक और कानके विना मुख दीखे इत्यादि वह तिमिर वात, पित्त, कफ, संसर्ग, रक्त और संनिपात इनसे प्रगट छः प्रकारका है, उनके लक्षण मोतियाबिंदु जो छः प्रकारके प्रथम लिख आये हैं, उसके समान जानना ॥

लिंगनाशरोग ।

लिंगनाशः सप्तधा स्याद्वातात्पित्तात्कफेनच ॥
त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा ॥ १६३ ॥

अर्थ—तिमिररोग नेत्रके चतुर्थ पटल (पर्दे) में पहुंचनेसे संपूर्ण दृष्टिको व्याप्त कर न दीखने समान करता है उसको लिंगनाश कहते हैं । वह लिंगनाश १ वातजन्य[1] २ पित्तजन्य[2] ३ कफजन्य[3] ४ त्रिदोषजन्य[4] ५ उपसर्गजन्य[5] ६ संसर्गज[6] और ७ रक्तज[7] इन सात कारणोंसे सात-प्रकारका है ॥

---

[1] वातके लिंगनाशमें दृष्टिके ऊपर मोटा काँचके समान लाल मंडल होता है, वह चंचल और खरदरा होता है ।

[2] पित्तसे दृष्टिमंडल किंचित् नीला तथा कांचके समान पीला होवे ।

[3] कफसे भारी, चिकना, कुंदफूलके समान और चंद्रके समान सफेद होय और उसके नेत्रमें हलनेवाले कमलपत्रके ऊपर पानीकी बूँदके समान टेढी तिरछी सफेद बूँद फैलीसी दिखलाई दे ।

[4] त्रिदोषज लिंगनाशमें तरह तरहके मंडल होंय तथा सर्व दोषोंके लक्षण न्यारे न्यारे दीखें ।

दृष्टिरोग।

अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम् ॥ अम्लपित्तविदग्धं
च तथैवोष्णविदग्धकम् ॥ १६४ ॥ नकुलांध्यं धूसरांध्यं रात्र्यांध्य
ह्रस्वदृष्टिकः ॥ गंभीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगताः स्मृताः ॥१६

अर्थ–दृष्टिमंडलमें जो रोग होते हैं उनको दृष्टिरोग कहते हैं वे १ पित्तविदग्ध[1] २ अम् [2]त्तविदग्ध ३ उष्णविदग्ध[3] ४ नकुलांध्य[4] ५ धूसरांध्य ६ रात्र्यांध्य[6] ७ ह्रस्वदृष्टि[7] ८ गंभीर आठ प्रकारके हैं ॥

---

५ उपसर्गज अर्थात् अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है। एक निमित्तजन्य और दूसरा अ मित्तजन्य। तिनमें शिरोभिताप करके (विषवृक्षके फलसे मिले पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे) उसको निमित्तजन्य कहते हैं. इसमें रक्ताभिष्यंदके लक्षण होते हैं. देव, ऋषि, गंधर्व, महास सूर्य इनके सम्मुख दृष्टिको लगाकर (टकटकी लगाकर) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट उसको अनिमित्तज लिंगनाश कहते हैं इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और दृष्टि वैडूर्यमणिके स्वच्छ कहिये श्यामवर्ण होय।

६ संसर्गज लिंगनाशमें पित्त दुष्ट हुए रुधिरसे दूषित होनेसे दृष्टिका मंडल लाल और होता है।

७ रुधिरसे दृष्टिमंडल मूँगके समान अथवा लाल कमलके समान लाल होवे।

---

१ पित्त दुष्ट होकर बढनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय तथा उसके योगसे उस मनु सर्व पदार्थ पीले रंगके दीखें, उस दृष्टिको पित्तविदग्ध कहते हैं।

२ अम्लपित्त करके मनुष्यको रद्द करनेके समय दृष्टिको अभिघात होनेसे सर्व पदार्थ सफेद दीखने लगजाते हैं उस दृष्टिरोगको अम्लपित्तविदग्ध कहते हैं।

३ तीसरे पटलमें दोष (पित्त) जानेसे दिनमें रोगीको नहीं दीखे, रात्रिमें शीतलताके पित्त कम होनेसे दीखे इसको उष्णविदग्ध अथवा दिवांध रोग कहते हैं।

४ जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिसे समान चमके वह पुरुष दिनमें प्रकारके रूप देखे, इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं।

५ शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तकताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमें होय, उससे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूँएके रंगके दीखें इस रोगको धूसरांध्य, धूमदर्शी शोकविदग्ध दृष्टि कहते हैं।

६ जो दोष (कफ) तीनों पटलोंमें रहे वह नक्तांध्य (रतौंधा) को उत्पन्न करे वह पुरुष सूर्यके तेजसे कफ कम होनेसे देखे, रातको नहीं देखे, उसको रात्र्यांध्य अथवा नक्त्यांध्य कह

७ दृष्टिके मध्यगत पित्त दुष्ट होनेसे मनुष्यको दिनमें बडे पदार्थ छोटे दीखें, और रात्रिमें दीखें उसको ह्रस्वदृष्टि कहते हैं।

८ जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरसे संकुचित होवे, तथा उसमें पीडा होवे, उसको दृष्टि कहते हैं।

अभिष्यन्दरोग ।

अभिष्यन्दाश्च चत्वारो रक्ताद्दोषैस्त्रिभिस्तथा ॥

अर्थ—संपूर्ण नेत्ररोगोंके कारणभूत ऐसे अभिष्यंद रोग चार हैं । १ रक्ताभिष्यंद २ वाताभिष्यंद ३ पित्ताभिष्यंद और ४ कफाभिष्यंद ॥

अधिमंथरोग ।

चत्वारश्चाधिमंथाः स्युर्वातपित्तकफास्रतः ॥ १६६ ॥

अर्थ—उस अभिष्यंद रोगकी उपेक्षा करनेसे उससे वात, पित्त, कफ और रक्त इन चार कारणोंसे चार प्रकारके अधिमंथ रोग उत्पन्न हों उनके निस्तोद (चपका) स्तंभ इत्यादि पूर्वोक्त अभिष्यंदोंके लक्षण होते हैं. कलासे गिरते हुए प्रतीत हों, नेत्रोंमें कोई धसगया ऐसा मालूम हो, आधा मस्तक बहुत दूखे ये इसके विशेष लक्षण हैं. अधिमंथ वातज होनेसे वातके लक्षण शूलादिक, पित्तज होनेसे पित्तके लक्षण दाहादिक और कफज होनेसे कफके लक्षण खुजली आदि होते हैं । इस अधिमंथमें अंजनादिक मिथ्या उपचार करनेसे दृष्टि नष्ट होती है । वह प्रकार इस प्रकार है जैसे कफाधिमंथ मिथ्योपचारसे कुपित होनेसे सात दिनमें, रक्ताधिमंथ पांच दिनमें, वाताधिमंथ छः दिनमें और पित्ताधिमंथ तत्काल दृष्टि नाश करता है ॥

सर्वाक्षिरोग ।

सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः ॥ अल्पशोथोऽ-
न्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः ॥ १६७ ॥ शुष्काक्षि-
पाकश्च तथा शोफोऽभ्युषित एव च ॥ हताधिमंथ इत्येते
रोगाः सर्वाक्षिसंभवाः ॥ १६८ ॥

---

१ रक्ताभिष्यंदसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय और नेत्रोंके ओर पास रेखासी लाल दीखे और जो पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहे हैं ये सब लक्षण इसमें होवें ।

२ वादीसे नेत्र दूखने आये हों उनमें सुई चुभानेकीसी पीडा होय, नेत्रोंका स्तंभन (ठहरजाना) रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरनेसमान खटके तथा रूक्ष होय मस्तकमें पीडा हो, नेत्रोंसे पानी गिरे परन्तु नेत्र सूखेसे रहें और नेत्रोंसे जो पानी गिरे वह शीतल होय ।

३ पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमें बहुत दाह हो, नेत्र पकजाँय, उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआँ निकले अथवा नेत्रोंमें धुआँ जानेकीसी पीडा होय तथा नेत्रोंसे अश्रु (आँसू) बहुत पडें और गरम पानी निकले आँख पीलीसी मालूम पडे ।

४ कफसे नेत्र दूखने आये हों इसको गरम वस्तु नेत्रोंमें लगानेसे आराम मालूम हो (अर्थात्) नेत्रमें सेक अच्छा मालूम हो तथा नेत्र भारी होय, सूजन हो, खुजली चले, कीचडसे नेत्र दूषित हों और शीतल हो, उनमेंसे स्राव होय सो गाढा और बहुत होय ।

अर्थ—संपूर्ण नेत्रमें व्याप्त जो रोग होते हैं उनको सर्वाक्षिरोग कहते हैं। वे आठ प्रका जैसे—१ वातविपर्यय २ अल्पशोथ ३ अन्यतोवात ४ पाकात्यय ५ शुष्काक्षिपाक ६ औ अँध्युषित ८ हताधिमंथ इस प्रकार सर्वाक्षिरोग आठ हैं इस प्रकार सब नेत्ररोग मिलानेसे होते हैं ॥

षंढरोग।

पुंस्त्वदोषाश्चपंचैव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः ॥
आसेक्यश्चैव कुंभीकः सुगंधिः षंढसंज्ञकः ॥ १६९ ॥

अर्थ—पुंस्त्वदोष कहिये वीर्यक्षीणताके कारण मनुष्यको नपुंसकत्व प्राप्त होता है उसे। २ आसेक्य ३ कुंभिक ४ सुगंधि ५ षंढ इस प्रकार पांच प्रकारका जानना ॥

---

१ वायु क्रमसे कभी भ्रुकुटीमें प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर अनेक प्रका तीव्र पीडा करे उसको वातविपर्यय कहते हैं।

२ नेत्रोंमें सूजन आकर पकजाय, उनमें आँसू बहें और पके गूलरके समान लाल होय ये शोथके लक्षण हैं यह अल्पशोथ त्रिदोषज है।

३ घाटी (घार), कान, मस्तक, ठोढी, मन्यानाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित हो भ्रुकुटी (भौंह) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे, इस रोगको अन्यतोवात कहते हैं अर्थात् स्थानोंमें स्थित होकर अन्य स्थानोंमें पीडा करे इसीसे इसको अन्यतोवात कहते हैं।

४ वातादि दोषों करके नेत्रके काले भागपर छर होके सब नेत्र सफेद होजावें और तीव्र वे होय उसको पाकात्यय कहते हैं।

५ नेत्र खुलें नहीं अर्थात् संकुचित होजायँ, जिनकी वाफणी कठिन और रूक्ष होय, जि नेत्रोंमें दाह विशेष होय, यथार्थ दीखे नहीं, खोलनेमें बहुत दुःख होय उसको शुष्काक्षिपाक कहते हैं। यह रोग रक्तसहित बादीसे होता है।

६ नेत्रोंमें सूजन आकर पकजाँय, उनमें आँसू बहें और पके गूलरके समान लाल होंय। लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं यह व्याधि त्रिदोषजन्य है।

७ मध्यमें कुछ नीलवर्ण और आसपास लाल भरा हो ऐसे सब नेत्र पकजाँय और उनमें रंगकी फुन्सी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय, तथा नेत्रोंसे पानी झरे यह अम्ल (खटाई) खानेसे होताहै। इसको अध्युषित वा अम्लाध्युषित कहते हैं।

८ वातज अधिमंथकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे. उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद (चुभानेकीसी पीडा) दाहादि भारी पीडा होय यह हताधिमंथनामक नेत्ररोग असाध्य है। इ दृष्युःक्षेपण, दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोष ऐसे कहते हैं। इस रोगसे नेत्र सूखे कमलसे होजाते

९ जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक नपुंसक कह इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम दृग्योनि है।

शुक्ररोग।

शुक्रदोषास्तथाष्टौ स्युर्वातात्पित्तात्कफेन च ॥
कुणपंचास्रपित्ताभ्यांपूयाभं श्लेष्मपित्ततः ॥ १७० ॥
क्षीणंचवातपित्ताभ्यां ग्रन्थिलं श्लेष्मवाततः ॥
मलाभं संनिपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः ॥ १७१ ॥

अर्थ-१ वातजन्य[1] २ पित्तजन्य[2] ३ कफजन्य[3] ४ रक्तपित्तजन्य[4] कुणपसंज्ञक ५ कफपित्त-जन्य पूयाभ[5] ६ वातपित्तजन्य क्षीण ७ कफवातजन्यग्रंथिल ८ संनिपातजन्य मलाभ ऐसे आठ पुरुषोंके शुक्रधातुके दोष हैं ॥

---

१० मातापिताके अल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वह आसेक्यनामक नपुंसक होता है. वह अन्य पुरुषसे अपने मुखमे मैथुन कराकर उसके वीर्यको खाजाय, तब उसको चैतन्यता (अर्थात् लिंग सतर) होवे तब स्त्रीसे मैथुन करे इसका दूसरा नाम मुखयोनि है।

११ जो पुरुष पहले अपनी गुदा भंजन करावे जब उसको चैतन्यता प्राप्त हो तब स्त्रीके विषे पुरुषके समान प्रवृत्त होय उसको कुंभिक नपुंसक कहते हैं. इसका गुदायोनि यह पर्याय शब्द है। इस कुम्भिक नपुंसककी उत्पत्ति ऐसे होती है कि, ऋतुकालमें अल्परजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवाले पुरुषके संभोग करनेसे उस स्त्रीका कामदेव शांत न हो, इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे संभोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुम्भिकनामक नपुंसक होता है. कोई आचार्य कुम्भिक नपुंसकका लक्षण ऐसा कहते हैं कि, जो पुरुष लौंडेबाजी करते हैं. वे पहले स्त्रीके पीछे बैठकर पशुके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुदा भंजन करें। इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्त हो तब मैथुन करें। इसको कुम्भिकनामक नपुंसक कहते हैं।

१२ जो पुरुष दुष्ट योनिमें उत्पन्न होय उसको योनि तथा लिंगके सूंघनेसे चैतन्यता प्राप्त होय उसको सुगंधि वा सौगंधिक तथा नासायोनि कहते हैं।

१३ जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होवे अर्थात् आप नीचेसे सीधा होकर ऊपर स्त्रीको चढायकर मैथुन करे। उससे जो गर्भ रहे वह पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे और स्त्रीके आकार होय स्त्रीकी चेष्टा करै (अर्थात् स्त्रीके समान नीचे सोकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर वीर्य पतन करावे)।

---

[1] बादीसे शुक्र झागवाला, सूखा, कुछ गाढा और थोडा तथा क्षीण हो यह गर्भके अर्थका नहीं है.

[2] पित्तसे दूषित शुक्र नीला, पीला अत्यन्त गरम होता है उससे बुरी बास आवे और जब निकले तब लिंगमे दाह होय।

[3] कफसे शुक्र (वीर्य) शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे अत्यंत गाढा होजाता है।

[4] कुणप शुक्र दोषमें शुक्रकी गन्ध मुर्देके सदृश आवे।

[5] पित्त कफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी बास आवे।

स्त्रियोंके आर्तवदोष ।

अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः ॥
अष्टावार्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १७२ ॥
पूयाभं कुणपं ग्रन्थि क्षीणं मलसमंतथा ॥

अर्थ-स्त्रियोंका आर्तव कहिये ऋतुसमयका रुधिर बहता है जिसको रज कहते हैं उ दोष आठ प्रकारके हैं जैसे-१ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ पूयाभ ५ कुणप ६ ग्रंथि क्षीण और ८ मलसम इस प्रकार आर्तवदोष आठ प्रकारके हैं ॥

प्रदररोग ।

तथाच रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम् ॥ १७३ ॥
वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं संनिपाततः ॥

अर्थ-रक्तप्रदरके १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य और ४ संनिपातजन्य इसप्रका चार भेद हैं ॥

---

६ पित्तवादीसे शुक्र क्षीण होजाता है ।

७ कफवादीसे शुक्र गांठदार होता है ।

८ संनिपातसे दूषित हुए शुक्रमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं और पीडा होय तथा उसमें मूत्र विष्ठाकीसी बास आवे ।

---

१ आर्तव अर्थात् स्त्रियोंके यौवनमें महीनेके महीने जो योनिके द्वारा रज निकलता है सो आ प्रकारके दोष वात, पित्त, कफ, रक्त, द्वंद्व और सन्निपात इन करके दुष्ट होनेसे गर्भ धारणके अयो होता है तिन वा तिन दोषोंके अनुसार शुक्र दोषोंके लक्षण जानलेना ।

२ विरुद्ध मद्यसेवन, अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, अत्यंत भोजन, अत्यंत बोझेका उठाना त दिनमें सोना इत्यादिक सर्व कारणों करके स्त्रियोंका रज दुष्ट होकर प्रवाह बहै उसको प्रदर कहते हैं उसके पूर्वरूप ये हैं अंगोंका टूटना, पीडा, दुर्बलता, ग्लानि, मूर्च्छा, प्यास, दाह, प्रलाप, दे पिलास, नेत्रोंमें तन्द्रा और वातजन्य रोग इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

३ वातसे प्रदर रूक्ष, लाल, झागसंयुक्त मांसके और सफेद पानीके समान थोडा बहै उ बादीकी आक्षेपकादि पीडा होती है ।

४ पित्तसे किञ्चित् पीला, नीला, काला, लाल, गरम ऐसा प्रदर बहै उसमें दाह विसर्प पीडा होय तथा उसका वेग अत्यन्त होय ।

५ कफसे आमरस (कच्चा रस) संयुक्त, चिकना, किञ्चित् पीला, मांसके धुले जलके त स्राव होय इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं ।

६ जो प्रदर शहद, घृत, हरिताल और मज्जा इनके रंगके समान तथा मुर्दाकी दुर्गंधियुक्त इसको त्रिदोषज प्रदर जानना यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे ।

योनिरोग।

विंशतिर्योनिरोगाः स्युर्वातपित्तकफादपि ॥ १७४ ॥
संनिपाताच्च रक्ताच्चलोहितक्षयतस्तथा ॥
शुष्काचवामिनीचैव षण्ढीचांतर्मुखीतथा ॥ १७५ ॥
सूचीमुखी विप्लुताच जातघ्नी च परिप्लुता ॥
उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्चकर्णिका ॥ १७६ ॥
स्यान्नन्दा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः ॥

अर्थ–१ वातला[1] २ पित्तला[2] ३ श्लेष्मला[3] ४ सन्निपातजा[4] ५ रक्तजा[5] ६ लोहितक्षया[6] ७ शुष्का[7] ८ वामिनी[8] ९ षंढी[9] १० अंतर्मुखी[10] ११ सूचीमुखी[11] १२ विप्लुता[12] १३ पुत्रघ्नी[13] १४ परिप्लुता[14] १५ उपप्लुता[15] १६ प्राक्चरणा[16] १७ महायोनि[17] १८ कर्णिका[18] १९ नंदा[19] और २० अतिचरणा[20] ऐसे बीस प्रकारके योनिरोग हैं ॥

---

१ जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं।

२ जो योनि दाह, पाक, ज्वर आदि पित्तके लक्षणोंसे युक्त होय और उसमेंसे नीला, पीला, काला, आर्तव (रज) निकले उसको पित्तला कहते हैं।

३ जो योनि बहुत शीतल और सेमरके गोंदके समान चिकनी होय तथा उसमें खुजली चले उसको श्लेष्मला कहते हैं।

४ जिस योनिमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण मिलें उसको सन्निपातजा कहते हैं।

५ जो योनि स्थानभ्रष्ट होय, वह बडे कष्टसे बालकको प्रसूत करे उसको रक्तजा वा प्रसंसिनी कहते हैं। जिस योनिका अंग बाहर निकल आवे और इसे विमर्दित करनेसे प्रसव योग नहीं होता है।

६ जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर बहे उसको लोहितक्षया कहते हैं।

७ जिस योनिका आर्तव नष्ट हो उसको शुष्का अथवा वन्ध्या कहते हैं।

८ जिसमें रजोयुक्त शुक्रवायु बराबर बहे उसको वामिनी कहते हैं।

९ जो योनि आर्तवसे रहित रहती है उस स्त्रीके स्तन नहीं होते और मैथुनके समय जिस योनिका खरदरा स्पर्श मालूम होय उसको षण्ढी कहते हैं।

१० बडे लिंगवाले पुरुषको तरुण स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे उस स्त्रीके योनिके बाहर दोनों तरफ अण्डकोशके समान मांसकी दो गाँठें उत्पन्न हों उस योनिको अन्तर्मुखी कहते हैं।

११ जिस योनिका छिद्र सुईके अग्रभागके समान सूक्ष्म होता है उसको सूचीमुखी कहते हैं।

१२ जिस योनिमें निरन्तर पीडा हो उसको विप्लुता कहते हैं।

१३ जिस योनिमें रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको जातघ्नी वा पुत्रघ्नी कहते हैं।

१४ जिसके मैथुन करनेमें अत्यन्त पीडा होय उसको परिप्लुता कहते हैं।

१५ जिस योनिसे झागसे मिला आर्तव (रज) ऊपरके भागमें बडे कष्टसे उतरे उसको उपप्लुता कहते हैं।

योनिकन्दरोग ।

चतुर्विधं योनिकन्दं वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १७७ ॥
चतुर्थ संनिपातेन-

अर्थ—योनिकंद रोग १ वातज २ पित्तज ३ कफज और ४ संनिपातज ऐसे योनि रोग चार प्रकारके हैं ॥

गर्भके रोग ।

तथाष्टौ गर्भजा गदाः ॥ उपविष्टकगर्भः स्यात्तथा नागोदरः
स्मृतः ॥ १७८ ॥ मक्कल्लो मूढगर्भश्च विष्टम्भो गूढगर्भकः ॥
जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः ॥ १७९ ॥

अर्थ—गर्भसंबंधी रोग आठ प्रकारके हैं. जैसे—१ उपविष्टकगर्भ २ ना

---

१६ जो योनि थोडे मैथुनसे लिंगसे पहले स्रवे उसको प्राक्चरणा कहते हैं। उसमें गर्भ नहीं होता है।

१७ जिस योनिका मुख निरन्तर फटारहे उसको महायोनि वा विवृता कहते हैं।

१८ जिसमें कफ रुधिर करके कर्णिका (कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकन्द) उसको कर्णिका कहते हैं।

१९ जो योनि अति मैथुनसे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं होवे उसको नन्दा कहते हैं।

२० जो योनि बहुवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे (छूटे) उसको अतिचरणा योनि हैं। यह कफजनित रोग है।

---

१ दिनमें सोनेसे, अतिक्रोध, अतिशय परिश्रम, अत्यन्त मैथुन करनेसे और योनिमें नख क्षत पडनेसे, वातादिक दोष कुपित होनेसे योनिमें संतराके आकारका राधसे मिला ऐसा गोला होता है उसको योनिकन्द कहते हैं।

२ बादीसे योनिकन्द रूक्ष, विवर्ण और तनाहुआ ऐसा होता है।

३ पित्तसे योनिकन्द लाल दाह और ज्वर इन करके युक्त होता है।

४ कफसे योनिकन्द नीला और कण्डूयुक्त होता है।

५ संनिपातज योनिकन्द वात, पित्त, कफ इनके लक्षणोंसे युक्त होता है।

६ स्त्रीको गर्भ रहनेके पश्चात् विदाही और तीक्ष्ण पदार्थ खानेसे देहमें गरमी बढती है योनिके द्वारा रक्तस्राव होता है। रक्तस्राव होनेसे गर्भ बढता नहीं और पेटमें किञ्चित् हले उपविष्ट गर्भ कहते हैं।

७ शुक्र धातु और आर्तव इनका संयोग होते समय वायु उस गर्भका आकार सर्पके सदृ उसको नागोदर कहते हैं। यह गर्भ निर्बल होकर पडता है अथवा पेटमेंही नष्ट होजाता है

३ मक्कल ४ मूढगर्भ[२] ५ विष्टंभ[३] ६ गूढगर्भ[४] ७ जरायुदोष[५] और ८ गर्भपात[६] ऐसे आठ प्रकारके गर्भपात रोग हैं ॥

स्तनरोग ।

पञ्चैवस्तनरोगाःस्युर्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ सांनिपातात्क्षताच्चैव तथा स्तन्योद्भवा गदाः ॥ १८० ॥ बालरोगेषु गदिताः-

अर्थ—स्तनरोग[७] १ वातजन्य[८] २ पित्तजन्य[९] ३ कफजन्य[१०] ४ सन्निपातजन्य[११] और

---

१ माताके मानसिक तथा आगंतुक दुःखसे प्रसूत होनेके प्रथम वायु कुपित होकर कूखमें शूल उत्पन्न करके गर्भको मारदे । इसको गर्भमक्कल कहते हैं और प्रसूतिके अनन्तर वायु कुपित होकर योनिसे रुधिर, जाल आदि जो गिरते हैं उनको रोककर ऊपर जाके हृदय, वस्ति, मस्तक और कूखमें शूल उत्पन्न करे इसको प्रसूतिमक्कल कहतेहैं । यह योनिके संकोच और घोर ऊर्ध्व श्वासको उत्पन्न करके प्रसूत भई स्त्रीको मारदेताहै ।

२ मूढ (कुंठितगति) वायु गर्भको मूढ (टेढा) करदेताहै और योनि तथा पेटमें शूल उत्पन्न करे और मूत्रोत्संग (धीरे धीरे पीडासहित मूत निकलना) करे, इसको मूढगर्भ कहते हैं । इस मूढ गर्भकी आठ प्रकारकी गति होती है । विगुण वायुसे गर्भ विपरीत (टेढा) होकर अनेक प्रकार करके योनिके द्वारमें आयकर अडजाताहै ।१ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बंद करदेता है, २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय, ३ कोई शरीरके विपरीतपनसे योनिके मार्गको रोकदेय, ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोकदेय, ५ कोई दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोकदे, ६ कोई गर्भ तिर्छा होकर योनिके मार्गको रोकदे, ७ कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय वह योनिके द्वारको रोकदे, ८ कोई गर्भ पार्श्वभंग (पसवाडे भंग) होनेसे योनिके द्वारको रोकदेय इस प्रकारसे मूढगर्भकी आठ गति जाननी ।

३ जो स्त्री गर्भिणी होनेसे पश्चात् अकालमें भोजन करे और रूक्षादि पदार्थ खावे उसके गर्भको वायु कुपित होकर सुखायदेयहै उस करके उस स्त्रीकी कूख बडी नहीं दीखती वह गर्भ वायुसे पीडित होकर उत्नेका उतनाही रहे बढे नहीं इसको विष्टंभगर्भ कहते हैं ।

४ गर्भ रहकर बढे नहीं और कुछ कालसे पेटमेंही जीर्ण होजाय उसको गूढगर्भ कहते हैं ।

५ गर्भशय्यामें गर्भके वेष्टनके अर्थ जरायु (झिल्ली) रहती है, उसके दोषसे जो गर्भको विकार होता है उसको जरायुदोष कहते हैं ।

६ अभिघात (चोट) विषमाशन (विषम भोजन) पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पकाहुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणभरमें गिरजाता है, उसी प्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोंसे गिरता है, चौथे मासपर्यन्त गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्रवे उसे स्राव कहते हैं और पांचवें छठे महीने पर्यंत शरीर बनने ऊपर जो गर्भ निकले उसे गर्भपात कहते हैं ।

७ वातादि दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्त हो मांस रक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे ।

८ वादीसे होनेवाले स्तनरोगमें शूल, तोद आदि पीडा होती है ।

९ पित्तसे ज्वर, दाह आदिक होते हैं ।

१० कफसे थोडी पीडा और खुजली होय ।

११ संनिपातज स्तनरोगमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

५ क्षतजन्य ऐसे पांच हैं । स्त्रियोंके दूधसंबंधी रोग बालरोगप्रकरणमें कहे हैं ॥

स्त्रीदोष ।

स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः ॥ अदक्षपुरुषोत्पन्नः सपत्नीविहित-
स्तथा ॥ १८१ ॥ दैवाज्जातस्तृतीयस्तु–

अर्थ–स्त्रियोंको दुःख उत्पन्न करनेवाले तीन दोष हैं जैसे –१ अदक्षपुरुषोत्पन्न २ स विहित ३ दैविक इस प्रकार स्त्रियोंमें तीन दोष हैं ॥

प्रसूतिरोग ।

तथाच सूतिकागदाः ॥ ज्वराद्याश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं
यथाबलम् ॥ १८२ ॥

अर्थ–बालक होनेसे पश्चात् ज्वरादिरोग उत्पन्न होते हैं उनको प्रसूतिके रोग कहते है रोगोंका दोषानुसार बलाबल विचार चिकित्सा करनी ॥

बालरोग ।

द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः ॥ वातात्पित्तात्कफा-
च्चैव दंतोद्भेदश्चतुर्थकः ॥ १८३ ॥ दंतघातो दंतशब्दोऽकालदं-
तोऽहिपूतनम् ॥ मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षके ॥ १८४ ॥
पार्श्वारुणस्तालुकण्टो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः ॥ दौर्बल्यं गात्र-

---

१ अभिघात (चोट) आदिके लगनेसे स्तनमें सूजन उत्पन्न होती है । उसमें व्रण पड़ बावादिकोंके लक्षण होते हैं, उसको क्षतज स्तनरोग कहते हैं ।

२ जो पुरुष स्त्रीके कामदेवकी शांति करनेमें समर्थ नहीं हो और मूर्ख होय, तथा य न जाने ऐसा पति होनेसे जो संताप होता है उस करके जो रोग होय उसको अदक्षपु स्त्रीरोग कहते हैं ।

३ जिस स्त्रीके सपत्नी (सौत) होवे उसको अपने पतिकी प्रीति दूसरी स्त्रीके अ दुःखसे जो रोग होता है उसको सपत्नीविहित स्त्रीरोग कहते हैं ।

४ अपने पतिका मरण होनेसे उसके साथ सती होनेकी इच्छा जो करे उसकी इच्छा होनेसे शोकादिक करके जो रोग होता है उसको दैविक स्त्रीरोग कहते हैं ।

५ जिस स्त्रीके बालक प्रकट होचुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे दोषजनक अ सेवन करनेसे कोपके करनेसे अथवा अजीर्णपर भोजनादिक करनेसे प्रसूतिरोग होता है ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफवातजन्य रोगमें उत्पन्न होनेवाले अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना आदि विकार, अशक्तता, मंदाग्नि ये होते हैं इन सब कोंको प्रसूतिरोग कहतेहैं इन सबमें एक रोग प्रधान होता है और बाकीके उपद्रव कह

शोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः ॥ १८५ ॥ रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृताः ॥

अर्थ—बालकोंके जो रोग होतेहैं उनको बालरोग कहते हैं। वे रोग २२ बाईस हैं तिनमें स्त्रीके स्तनसबंधी दूध दुष्ट होनेसे उत्पन्न होनेवाले १ वातजन्य २ पित्तजन्य और ३ कफजन्य ऐसे तीन प्रकारके हैं। ४ दंतोद्भेद ५ दंतवात ६ दंतशब्द ७ अकालदंत ८ अहिपूतनरोग ९ मुखपाक १० मुखस्राव ११ गुदपाक १२ उपशीर्षक १३ पार्श्वारुण १४ तालुकण्ट १५ विच्छिन्न

---

१ जो बालक वातदूषित दूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं उसका शब्द क्षीण होजाय, शरीर कृश होय और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे।

२ जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला होजाय, कामलारोग होय तथा पित्तके औरभी रोग होंय (प्यासका लगना, सर्वांगमें दाह आदि अनेक रोग होंय)।

३ जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे, तथा कफके रोग होंय (निद्रा आवे, अंग भारी होय, सूजन होय, वमन होय, खुजली चले)।

४ बालकोंके प्रथम दाँत उत्पन्न होते समय ज्वर, अतिसार, खाँसी, मस्तकमें पीडा, वमन, अशक्तता इत्यादि उपद्रव होते हैं, उस रोगको दंतोद्भेद कहते हैं।

५ सातवें वा आठवें वर्षमें बालकके दाँत गिरते हैं उस समय जो ज्वरादि उपद्रव होते हैं उस रोगको दंतघात कहते हैं।

६ निद्रामें जो बालक दाँतसे दाँत घिसके बजाता है उसको दंतशब्द कहते हैं।

७ जिस बालकके दाँत जिस कालमें गिरते हैं उसके प्रथमही गिरे उसको अकालदंत कहते हैं।

८ बालकके मलमूत्र करनेके अनंतर गुदाके न धोनेसे अथवा पसीना आनेसे तथा धोनेके अनंतर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय तदनंतर खुजानेसे शीघ्र फोडा उत्पन्न होय और उससे स्राव होय, पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करे, इसको अहिपूतन कहते हैं। यह रोग ग्रंथांतरमें क्षुद्ररोगोंमें कहागया है परन्तु यह रोग बालकोंके होता है अतएव इसको बालरोगोंमें कहा है। यह रोग माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होता है।

९ बालकका मुख पकजावे उसको मुखपाक कहते हैं।

१० बालकके मुखमेंसे लार बहे उसको मुखस्राव कहते हैं।

११ बालककी गुदा पके उसको गुदपाक कहते हैं।

१२ बालकके कपालमें व्रण होवे, उससे ज्वर आदि होता है, उसको उपशीर्षक कहते हैं।

१३ बालकके भीतर त्रिदोषसे महापद्म विसर्परोग होताहै, वह दो प्रकारका १ शीर्षज २ वस्तिज, जो शंखभागसे लेकर हृदयतक बडे वेगसे दुःख देता है उसको शीर्षज कहते हैं। उसमें मुख और तालुए बाह्यदेशमें लालकमलके सदृश लाल होते हैं और हृदयसे गुदातक वेगसे दुःख देता है इसको वस्तिज कहते हैं। उसमें वस्ति और गुदा लाल कमलके समान लाल होय इसीको पार्श्वारुण कहते हैं।

१६ पारिगर्भिकं १७ दौर्बल्यं १८ गात्रसादं १९ शय्यामूत्रं २० कुकूणकं २१ रोदन अजगल्ली ऐसे सब बाईस रोग हैं ॥

तथा बालग्रहाः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः ॥ १८६ ॥ स्कंदग्रहो विशाखःस्यात्स्वग्रहश्च पितृग्रहः ॥ नैगमेयग्रहस्तद्वच्छकुनिः शीतपूतना ॥ १८७ ॥ मुखमंडनिका तद्वत्पूतना चांधपूतना ॥ रेवती चैव संख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती ॥

अर्थ--बालग्रह १२ बारह प्रकारके हैं जैसे १ स्कंदग्रह २ विशाखग्रह ३

---

१४ बालकके तालुएमें जो मांस होता है, उससे कफ कुपित होनेसे तालु काँटेके समान होवे उसको तालुकंटक कहते हैं।

१५ बालकके तालुएमें घाव पडनेसे उसको स्तनपान करनेमें कष्ट होवे, पतला मल प्यास बहुत लगे, नेत्र और कण्ठ इनमें विकार होवे, मन्यानाडी धरे नहीं, दूधकी रद करदे, विच्छिन्नरोग कहते हैं।

---

१ बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे खाँसी, मंदाग्नि, वमन, तंद्रा, अरुचि, कृशता भ्रम ये होंय और उसके पेटकी वृद्धि होय, इस रोगको पारिगर्भिक अथवा परिभव ऐसे कहते इस रोगमें अग्नि दीपनकर्ता औषधि बालकको देना चाहिये।

२ जिस दोष करके देह दुर्बल (बलरहित) होवे उसको दौर्बल्य कहते हैं।

३ जिस दोषसे बालकके अंग सूख जाते हैं उसको गात्रशोष कहते हैं।

४ बालक वातादि दोषों करके शय्यामें ही मूतदे उसे ज्ञान नहीं रहे उसको शय्यामूत्र कहते

५ कुकूणक यह रोग बालकोंके दूधके दोषसे होता है। इस रोगके होनेसे बालकके नेत्र और पानी बहे। नेत्रोंमें कीचड आनेसे वह ललाट नेत्र और नाकको रगडे, धूपके सामने न दे जाय और उसके नेत्र खुलें नहीं। इसको लौकिकमें कोथलाव कहते हैं। यह रोग बालकों होता है।

६ बालक थोडा वा बहुत रोनेलगे तब युक्ति करके रोगके अनुसारसे बडा अथवा छोटा जानना इसको रोदन कहते हैं।

७ बालकके कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णवाली, गाँठसी बँधी, पीडारहित, तथा मूँगके जो पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते हैं।

८ स्कंदादिक बारह ग्रहोंसे गृहीत बालकके ये सामान्य लक्षण होते है। जैसे कभी क्षणभर बालक विह्वल होजाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दाँतोंसे अपने शरीर और माता खसोटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकारी मारे, जँभाई लेय, भौंहको तिर्छी करे, दाँ होठोंको खाय और वारंवार मुखसे झाग डाले, वह अत्यंत क्षीण होय, रात्रिमें सोवे नहीं, सूजन होय, मल पतला होय और स्वर बैठ जाय, उसके देहमेंसे रुधिर मांसकी बास आ जितना पहिले खाता होय उतना नहीं खाय, ये सामान्यग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं।

४ पितृग्रह ५ नैगमेय ६ शकुनि ७ शीतपूतना ८ मुखमंडनिका ९ पूतना १० अन्धपूतना
११ रेवती १२ शुष्करेवती ऐसे बारह बालग्रह जानने ॥

अनुरक्तरोगोंका संग्रह ।

तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये ॥१८८॥ द्विचत्वारिंशदुक्तास्तेरोगेष्वेवमुनीश्वरैः ॥ द्विषष्टिर्दोषभेदाःस्युःसन्निपातादिकाश्च ये ॥ तेऽपि रोगेषु गणिताःपृथक्प्रोक्ता न ते क्वचित् ॥ १८९ ॥

अर्थ—वातरक्त, पाद, सुप्तिपाद, स्तंभ, पाक तथा फूटन इत्यादि पैरोंके रोग किसी आचार्यने बयालीस प्रकारके कहे हैं । उसी प्रकार सन्निपातादिक जो बासठ प्रकारके

---

९ बालकके एक नेत्रसे पानी गिरे और अंगमें स्राव (कहिये पसीना) बहे, एक ओरका अंग फडके तथा थरथर काँपे, वह बालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढा हो जाय, रुधिरकीसी दुर्गंध आवे वह बालक दाँतोंको चबावे, अंग शिथिल हो जाय, स्तनको नहीं पीवे और थोडा रोवे ये स्कन्दग्रह लगे बालकके लक्षण हैं ।

१० विशाखग्रह करके पीडित बालकके ज्वर, ऊर्ध्वदृष्टि आदिक लक्षण होते हैं ।

११ बालक बेसुधि होय, मुखसे झाग डाले, जब होश हो तब रोवे, उसके देहमें राधसे मिले रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे इन लक्षणों करके स्वग्रहगृहीत बालक जानना । इस स्वग्रहको स्कन्दापस्मारभी कहते हैं ।

---

१ पितृग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, पसीना, दाह आदि उपद्रव होते हैं ।

२ वमन, कंप, कंठ मुखका सूखना, मूर्च्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखे, दाँतोंको चबावे, इन लक्षणोंसे नैगमेय ग्रहकी बाधा जाननी ।

३ शकनिग्रहसे पीडित बालकके अंग शिथिल होय, भयसे चकित होय, उसके अंगमें पक्षीके अंगके समान बास आवे, घाव हों, उसमेंसे लस बहे, सब अंगोंमें फोडा उत्पन्न होय और वह पके तथा दाह होय ।

४ शीतपूतनाग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति क्षीण हो जाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गंधि आवे, वमन होय और दस्त होय ।

५ मुखमंडनिकाग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति सुंदर होय और देहकी कांति सुन्दर होय, शिरासे बँधा देह होजाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवे, यह बालक बहुत भक्षण करे ।

६ पूतनाग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढी दृष्टिसे देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय, शिथिल होजाय ये लक्षण होते हैं ।

७ अन्धपूतनाग्रहकी पीडासे बालकके वमन होय, खाँसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गन्ध, बहुत रोना, दूध पीवे नहीं, अतिसार ये लक्षण होते हैं ।

८ रेवतीग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोडे होंय उनमेंसे रुधिर बहे, उनमेंसे कीचकीसी बास आवे, दस्त होय, ज्वर होय, अंगमें दाह होय ।

९ शुष्करेवतीग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, शूल, अजीर्ण, मस्तकमें पीडा, मुख और हृदय इनका शोष ये लक्षण होते हैं ।

वातादिदोषोंके भेद कहे हैं वे ऋषियोंने कहीं भी पृथक् नहीं कहे किन्तु उनकी गणना अनुक्र वातरोगमें तथा वातव्याधिमेंही की है ॥

पंचकर्मोंके मिथ्यादि योगसे होनेवाले रोग ।

हीनमिथ्यातियोगानां भेदैः पंचदशोदिताः ॥
पंचकर्मभवा रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्तिताः ॥ १९० ॥

अर्थ—१ वमन २ विरेचन ३ निरूहणवस्ति ४ अनुवासनवस्ति और ५ नस्य ये पांच उत्तरखंडमें कहे हैं । इन पांचकर्मोंमें जिसका हीनयोग मिथ्यायोग किंवा अतियोग होवे तो कर्म इन तीन कारणोंसे तीन प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं ऐसे पांचोंके मिलनेसे १५ होते हैं उनका अन्तर्भाव उक्त रोगोंमेंही जानना ॥

स्नेहादिकोंसे होनेवाले रोग ।

स्नेहस्वेदौ तथा धूमो गंडूषोऽञ्जनतर्पणे ॥
अष्टादशैतज्जाः पीडास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः ॥ १९१ ॥

अर्थ—१ स्नेहपान २ स्वेदविधि ३ धूमपान ४ गंडूष ५ अंजन ६ तर्पण ६ इन छ प्रत्येकके हीनयोग मिथ्यायोग और अतियोग इन तीन भेद करके अठारह भेद होते हैं उनसे जो होनेवाले रोग हैं वे भी सब उक्त रोगोंमें संगृहीत किये गये हैं ॥

---

१ औषधादिकों करके रद करानेके प्रयोगको वमन कहते हैं ।

२ औषधादिकों करके दस्त करानेके प्रयोगको विरेचन कहते हैं ।

३ स्नेहादि औषधसे गुदामें पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणवस्ति कहते हैं ।

४ अनुवासनवस्तिभी निरूहण वस्तिके सदृशही होती है ।

५ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्य कहते हैं ।

६ कहे हुए प्रमाणसे कम प्रमाणका उपयोग करनेको हीनयोग कहते हैं ।

७ प्रमाणसे रहित उपयोग करनेको मिथ्यायोग कहते हैं ।

८ अधिक प्रमाणसे उपयोग करनेको अतियोग कहते हैं ।

९ स्नेहपान तैल घृत आदि स्निग्ध पदार्थ पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं ।

१० अंगको पसीना लानेके प्रयोगको स्वेदविधि कहते हैं ।

११ गुडगुडी हुक्का आदिमें औषध डालके पीनेके प्रयोगको धूमपान कहते हैं ।

१२ कषाय और रसादिकोंसे कुरला करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते हैं ।

१३ नेत्रमें औषध डालनेके प्रयोगको अंजनाविधि कहते हैं ।

१४ औषधादि करके धातुओंकी वृद्धि करनेके विषयक जो प्रयोग करते हैं उसको तर्पण क हैं, अथवा नेत्रकी तृप्ति करनेके प्रयोगको तर्पण कहते हैं ।

शीतादिकोंसे होनेवाले रोग।

शीतोपद्रव एकः स्यादेकश्चोष्णोपतापकः ॥
शल्योपद्रवएकश्च क्षाराच्चैकः स्मृतस्तथा ॥ १९२ ॥

अर्थ—अत्यंत सरदीके योग करके मनुष्यको ठंडकका उपद्रव होवे वह १, अत्यंत गरमीसे मनुष्यके उष्णताका उपद्रव होवे वह २ शल्य कहिये नख, केश, काँटा, खोपरा, हाड, सींग इत्यादिक पदार्थ एक साथ पेटमें जानेसे जो रोग होवे उसको शल्य कहते हैं वह ३ और तीक्ष्णक्षारादिकसे पेटमें अथवा बाह्यस्पर्श करके जो उपद्रव होवे वह ४ इस प्रकार ४ प्रकारके उपद्रव वैद्यको जानने चाहिये ॥

विषरोग।

स्थावरं जंगमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम् ॥ तेषां च कालकूटाद्यैर्नवधा
स्थावरं विषम् ॥ १९३ ॥ जंगमं बहुधा प्रोक्तं
तत्र लूता भुजंगमाः ॥ वृश्चिकामूषकाःकीटाःप्रत्येकं ते चतुर्विधाः
॥ १९४ ॥ दंष्ट्राविषनखविषवालशृंगास्थिभिस्तथा ॥
मूत्रात्पुरीषाच्छुक्राच्च दृष्टेर्निःश्वासतस्तथा ॥१९५॥ लालायाः
स्पर्शतस्तद्वत्तथा शंकाविषं मतम् ॥ कृत्रिमं द्विविधं प्रोक्तं
गरदूषीविभेदतः ॥ १९६ ॥

अर्थ—स्थावर जंगम और कृत्रिम ऐसे तीन प्रकारके विष हैं उनमें स्थावर विष कालकूट बच्छनागादि विषोंका भेद करके नौ प्रकारके हैं। जंगम विष बहुत प्रकारके हैं जैसे—लूता, सर्प, बिच्छू, साँप, कीडा इनके वात, पित्त, कफ और संनिपात भेदसे एक एकके चार २ भेद हैं। जिन ठिकानोंपर विष है उनका ठिकाना जातिभेदसे पृथक् २ है जैसे—डाढ, नख, केश, सींग, हाड, मूत्र, मल, शुक्र, धातु, दृष्टि, श्वास, लार, स्पर्श इत्यादि। मनमें विषकी शंका आकर उससे वायु कुपित हो सम्पूर्ण देहको सुजाय देवे तथा ज्वरादिक उपद्रव होवें उसको शंकाविष कहते हैं। यह और दूषीविष (पदार्थके संयोगसे प्रगट) इस भेद करके कृत्रिम विष दो प्रकारके हैं। दूषीविष कहिये विष कुछ काल करके शरीरमें जीर्ण होकर छिपकर रहे, तथा विषका अल्पवीर्य हो इसीसे प्राणनाश नहीं करे परंतु ज्वरादिक उपद्रव करे। तथा देश, काल, अन्न और दिवानिद्रा इन करके दूषित होनेसे रसादि सत धातुओंको दूषित करते हैं। इसीसे इसको दूषीविष कहते हैं इस प्रकार कृत्रिम विष दो प्रकारके जानने ॥

विषके भेद ।

सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम् ॥
तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं ततः ॥ १९७ ॥

अर्थ-सुवर्णादिक सप्तधातुओंकी शुद्धिके विना की हुई भस्म भक्षण करनेसे तथा हो लादिक सात उपधातुओंकी अशुद्ध भस्म आक आदि और अशुद्ध उपविष इनके भक्षण करने ये विषके समान पीडा करते हैं अतएव इनको विषसंज्ञा है ॥

अन्यविषके भेद ।

दुष्टनीरविषं चैकं तथैकं दिग्धजं विषम् ॥

अर्थ-जिस पानीमें कीचड, काई, पत्ते, तिनका, लूतादिक जंतुके मल, मूत्र तथा म और मेंढक मरगये हों तो इन कारणोंसे पानी खराब होजावे उस पानीका दुष्ट नीर कहते हैं उसमें स्नान करे अथवा पीवे तो उससे विषके समान पीडा उत्पन्न होवे । शस्त्रादिकमें विष लेप कर प्रहार करनेसे उससे घाव होजावे और वह जल्दी अच्छा नहीं हो एवं विषके सम ज्वरादिक उपद्रव हों उसको विषदग्ध शस्त्रज जानना ॥

उपद्रव ।

कपिकच्छुभवा कंडूर्दुष्टनीरभवा तथा ॥ १९८ ॥
तथा सूरणकंडूश्च शोथोभल्लातजस्तथा ॥

अर्थ-कौंछ (किंवाछ) की फलीके रुआँ लगनेसे दुष्ट जल और जमींकंद (सूरण) तीनोंका देहमें स्पर्श होनेसे अंगमें अत्यंत खुजली चलती है तथा देहमें दाह होता है। भिलावेके तेलका स्पर्श होनेसे अंगमें सूजन होय और खुजली चले इस प्रकार चार प्रकारके उपद्रव जानना ॥

आगंतुक भेद ।

मदश्चतुर्विधश्चान्यः पूगभंगाक्षकोद्रवैः ॥ १९९ ॥
चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वङ्मूलपत्रजः ॥

अर्थ-सुपारी, भांग, बहेडेके फलके भीतरकी मींगी, कोदों धान्य ये चार पदार्थ भ करनेसे इनसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं सो मदात्यय रोगमें कहा है उसे जान और औषधी, वनस्पति, इनके फल, छाल, मूल और पत्ते इन चारोंके भक्षण करनेसे प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं ॥

इति प्रसिद्धा गणिता ये किलोपद्रवा भुवि ॥
असंख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसंभवाः ॥ २०० ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां प्रथमखंडे रोगगणनानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ–ऐसे प्रसिद्ध रोगरूप उपद्रव इनकी संख्या निश्चय करके शार्ङ्गधराचार्यने कही है इसके सिवाय दूसरे स्वर्णादि धातु, हरतालादिक उपधातु, अनेक प्रकारकी वनस्पति, औषधि और जीवादिकसे उपद्रव होते हैं वे उपद्रव असंख्य (वेशुमार) हैं उनकी संख्या नहीं होती वह अनुमान करके जाननी ॥

इति श्रीमन्माथुरकुलकमलमार्त्तण्डपाठकज्ञातीयश्रीकृष्णलालपुत्रेण दत्तरामेण रचितायां श्रीशार्ङ्गधरसंहितामाथुरभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः परिपूर्णतामगात् ॥ ७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताप्रथमखण्डं संपूर्णम्।

॥ श्रीः ॥

शार्ङ्गधरसंहिता.

भाषाटीकासमेता.

द्वितीय खण्ड २.

पाँच काढे ।

अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफांटकौ ॥
ज्ञेयाः कषायाः पंचैतेः लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अर्थ—१ स्वरस[1] २ कल्क ३ क्वाथ ४ हिम ५ फांट इन पांचोंको कषाय कहते हैं, एककी अपेक्षा दूसरा हलका है । जैसे स्वरसकी अपेक्षा कल्क हलका है, कल्ककी काथ हलका है, काथकी अपेक्षा हिम और हिमकी अपेक्षा फांट हलका है । रोगगण पश्चात् कषायादिकोंका कथन ठीक है अतएव (अथातः) ऐसा श्लोकमें पद कहा है ॥

स्वरस ।

आहृतात्तत्क्षणात्कृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवः ॥
वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते ॥ २ ॥

अर्थ—कीडा, अग्नि, पवन, जल इत्यादिक करके जो बिगडी न हो ऐसी वनस्पतिको उसको उसी समय कूट कपडेमें डालके निचोड लेवे । उस निचोडे हुए रसको स्वरस अंगरस कहते हैं ॥

स्वरसकी दूसरी विधि ।

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं चेद्द्विगुणे जले ॥
अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ३ ॥

अर्थ—एक कुडव[2] सूखी औषधका चूर्ण करे । फिर उस औषधसे दूना जल किसी बडे पात्रमें भरके उस औषधको भिगो देवे । इस प्रकार एक दिन और एक रात्र भीगने दे दिन औषधोंको मसलकर उस पानीको कपडेसे छान लेवे इसकोभी स्वरस कहते हैं ॥

---

[1] वनस्पति आदिके अवयवके रसको अंगरस अथवा स्वरस कहते हैं ।

[2] तोलेके विषयमें मागधपरिभाषाके मतानुसार व्यावहारिक १६ तोले होते हैं ।

स्वरसकी तीसरी विधि ।

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे ॥ जलेऽष्टगुणिते
साध्यं पादशेषं च गृह्यते ॥ ४ ॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं
प्रयोजयेत् ॥ निःशोषितंचाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्॥५॥

अर्थ–यदि गीली वनस्पति न मिले तो सूखी वनस्पतिको लाकर उसमें आठगुना पानी डालके काढा करे । जब जलते २ चौथा हिस्सा जल रहे तब उतारके पानी छान ले यह स्वरसका तीसरा प्रकार है । स्वरस भारी है अतएव दो तोले सेवन करे और जिस औषधिको रात्रिमें भिगोयके प्रातःकाल काढा किया हो वह ४ तोलेके प्रमाण सेवन करे । औषधभक्षणमें कलिंगपरिभाषाका मान लेना चाहिये ॥

स्वरसमें औषध डालनेका प्रमाण ।

मधुश्वेतागुडक्षारान्जीरकं लवणं तथा ॥
घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रं रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–सहत, खांड, गुड, जवाखार, जीरा, सैंधानमक, घृत, तेल तथा चूर्णादि ये स्वरसः डालने हो तो कोल डाले ॥

अमृतादिस्वरस प्रमेहपर ।

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ॥
हारिद्रचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥

अर्थ--गिलोयका स्वरस सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह दूर होवें, अथवा आमलेके स्वरसमें हल्दीका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह नष्ट होवें ॥

वासकादिस्वरस रक्तपित्तादिकोंपर ।

वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित् ॥ ज्वरकासक्षयहरः
कामलाश्लेष्मपित्तहा ॥ ८ ॥ त्रिफलायारसःक्षौद्रयुक्तोदार्वीर-
सोऽथवा ॥ निंबस्य वा गुडूच्यावापीतोजयतिकामलाम् ॥ ९ ॥

अर्थ–अडूसेके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खांसी और क्षयरोगको दूर करे एवं त्रिफला, दारुहल्दी, नीमकी छाल और गिलोय इनमेंसे किसी एकके स्वरसमें सहत मिलाय पीवे तो कामलारोग दूर होवे ॥

---

१ दो तोले भक्षणमें कलिंगपरिभाषाका मान है । उस मानसे तोलेके व्यावहारिक मासे आठ होते हैं । यह मान रोगीका बलाबल देखिके देना चाहिये यह तात्पर्य है ।

२ अडूसेका स्वरस अर्धपल और सहत दो टंकप्रमाण मिलायके सेवन करे तो रक्तपित्तका नाश होवे ।

तुलसी और द्रोणपुष्पी इसका स्वरस विषमज्वरपर ।

पीतो मरिचचूर्णेनतुलसीपत्रजो रसः ॥
द्रोणपुष्पीरसोऽप्येवं निहंति विषमज्वरान् ॥ १० ॥

अर्थ--तुलसीके पत्तोंका स्वरस अथवा द्रोणपुष्पी (गोमा रूखडी) के पत्तोंका स्वरस इन दोनोंमेंसे किसी एकको ले उसमें काली मिरचका चूरा डालके पीवे तो विषमज्वर दूर हों

जम्ब्वादिस्वरस रक्तातिसारपर ।

जंब्वाम्रामलकीनांचपल्लवोत्थोरसोजयेत् ॥
मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तोरक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ११ ॥

अर्थ--जामुन, आम, आमले इनके पत्तोंका स्वरस निकाल सहत घी और दूध मिला पीवे तो घोर रक्तातिसारको दूर करे ॥

स्थूलबब्बुल्यादिस्वरस सब अतिसारोंपर ।

स्थूलबब्बूलिकापत्ररसःपानाद्व्यपोहति ॥
सर्वातिसाराञ्छ्योनाककुटजत्वग्रसोऽथवा ॥ १२ ॥

अर्थ--कांटेरहित वडे बबूलके पत्तोंका स्वरस पीनेसे सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर हों । अथवा टेंटूकी छालका स्वरस अथवा कूडेकी छालका स्वरस इनमेंसे किसी एकको पीवे तो सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर हों ॥

आर्द्रकका स्वरस वृषणवात और श्वासपर ।

आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तोवृषणवातनुत् ॥
श्वासकासारुचीर्हंतिप्रतिश्यायंव्यपोहति ॥ १३ ॥

अर्थ--अदरखके रसमें सहत मिलायके पीवे तो अंडकोशोंकी वादीको दूर करे तथा श्वास खांसी, अरुचि और सरेकमाको दूर करे ॥

बिजोरेका स्वरस पार्श्वादिशूलोंपर ।

बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतोजयेत् ॥
पार्श्वहृद्वस्तिशूलानिकोष्ठवायुंचदारुणम् ॥ १४ ॥

अर्थ--बिजोरेके फलको अथवा जडका स्वरस, सहत और जवाखार मिलायके पी तो कुक्षिशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल तथा दारुण ऐसा कोठेका वायु इन सबको दूर करे

---

१ द्रोणपुष्पी एक जातकी रूँखडी है इसका वृक्ष हाथ डढहाथसे अधिक ऊँचा नहीं होता औ इसकी डण्डीमें फूलके गुच्छ २ से होते हैं। मध्यदेश (दिल्ली, आगरा मथुराके प्रान्तोंमें) इसको गूमा इसको कहते हैं ।

शतावरीका स्वरस पित्तशूलपर तथा घीगुवारका स्वरस तिल्लीपर ।

शतावर्याश्चमधुनापित्तशूलहरोरसः ॥
निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहापचीहरः ॥ १५ ॥

अर्थ–शतावरीके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो पित्तशूल दूर होय तथा घीगुवारका रस हल्दी मिलायके पीवे तो प्लीहा (तिल्ली) का रोग और गण्डमालाका भेद जो अपची है उसको दूर करे ॥

अलंबुषारस गंडमालापर ।

अलंबुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया ॥
अपचीगण्डमालानांकामलायाश्च नाशनः ॥ १६ ॥

अर्थ–गोरखमुंडीका स्वरस दो पल पीवे तो अपची रोग गंडमाला और कामला रोग दूर होवे ॥

शशमुंडीरस सूर्यावर्त्तादिकोंपर ।

रसोमुंड्याःसकोष्णोवामरिचैरवधूलितः ॥
जयेत्सप्तदिनाभ्यासात्सूर्यावर्तार्धभेदकौ ॥ १७ ॥

अर्थ--गोरखमुंडीके स्वरसको कुछ थोडा गरम कर काली मिरचका चूर्ण मिलाय पीवे तो सूर्यावर्त और अर्धावभेद (आधाशीशी) इनको दूर करे ॥

ब्राह्म्यादिका रस उन्मादरोगपर ।

ब्राह्मीकूष्मांडषड्ग्रंथाशंखिनीस्वरसाःपृथक् ॥
मधुकुष्ठयुतःपीतःसर्वोन्मादापहारकः ॥ १८ ॥

अर्थ--ब्राह्मी, पेठा, वच और शंखाहुली इनके स्वरस पृथक् २ निकालके किसी एकको सहत और कूठका चूर्ण मिलायके पीवे तो संपूर्ण उन्मादके रोग दूर होवें ॥

---

१ पेटमें बाँई तरफ रोग होता है उसको कोई कोई फीहा और कोई प्लीह तिल्ली कहते हैं ।

२ भक्षणविषयमें कलिंगपरिभाषाके मानानुसार दो पलके व्यावहारिक छः तोले और आठ मासे होते हैं ।

३ सूर्यावर्त्त कहिये जैसे २ सूर्य चढे तैसे २ मस्तकमें दर्द बढे और जैसे २ अस्त होय तैसे २ पीडाशांति हो उसको सूर्यावर्त्तरोग कहते हैं ।

४ ब्राह्मी रूखडी गंगा यमुनाके किनारे बहुत होती है, इसकी दो जाति हैं एक ब्राह्मी और दूसरी मण्डूकपर्णी । यह प्रसर जातिकी रूखडी है ।

५ शंखाहुलीको शंखपुष्पीभी कहते हैं । इसमें सफेद रंगके परम सुन्दर पुष्प होते हैं । यह प्रसर जातिकी रूखडी है ।

कूष्मांडकरस मेदरोगपर ।

कूष्मांडकस्यस्वरसोगुडेनसहयोजितः ॥
दुष्टकोद्रवसंजातंमदंपानाद्व्यपोहति ॥ १९ ॥

अर्थ–पेठेके रसमें गुड मिलायके सेवन करे तो दुष्ट कोदों धान्यसे उत्पन्न म
दूर करे ॥

गांगेरुकीस्वरस व्रणरोगपर ।

खड्गादिच्छिन्नगात्रस्यतत्कालपूरितोव्रणः ॥
गांगेरुकीमूलरसैर्जायतेगतवेदनः ॥ २० ॥

अर्थ–तल्वार आदि शस्त्रका घाव देहमें होनेसे उसी समय उस घावमें गांगेरुकीके
स्वरसको भर देवे तो मनुष्य पीडारहित होवे ॥

पुटपाक कहनेका कारण ।

पुटपाकस्यकल्कस्यस्वरसोगृह्यतेयतः ॥
अतस्तुपुटपाकानांयुक्तिरत्रोच्यतेमया ॥ २१ ॥

अर्थ–पुटपाक और कल्क इन दोनोंकाही स्वरस लिया जाता है अतएव पुटपाककी
कहते हैं ॥

पुटपाकस्यमात्रेयंलेहस्यांगारवर्णता ॥ लेपंचद्व्यंगुलंस्थूलंकुर्याद्वांगुष्ठमात्रकम् ॥ २२ ॥ काश्मरीवटजंब्वाम्रपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् ॥ पलमात्रंरसोग्राह्यःकर्षमात्रंमधुक्षिपे ॥ २३ ॥
कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तुदेयाः स्वरसवद्बुधैः ॥

अर्थ–गीली वनस्पतिको कूट पीस गोला बनावे उसको कँभारी वड अथवा जामुनके प
लपेट उसपर दो अंगुल मोटा अथवा अंगुष्ठप्रमाण मिट्टीका लेप करे । फिर उस गोलेके
उपले चुनके उसके बीचमें उस गोलेको रखके आंच जलावे । जब गोलेकी मिट्टी लाल हो
तब उसको निकाल मिट्टी और पत्ते ऊपरके दूर करे उसका रस निचोड लेवे यदि वह व
कठोर होवे तो उसके पानीमें अथवा जो द्रव द्रव्य कहे हैं उनमें पीसके इसी प्रकार गोले आ
कृति करके रस काढलेना चाहिये इसके लेनेकी मात्रा एक पलकी जाननी। यदि उस रसमें सहत डा

---

१ गांगेरुकीको भाषामें मंगेर कहते हैं। यह क्षुपजातिकी ओषधि है। गुण दोष बलाचक्षुमें लि

होवे तो अर्द्ध पल डाले । कल्क चूर्ण दूध आदिशब्दसे जो द्रव द्रव्योंका मान जैसा स्वरसमें डालना लिखाहै उसी प्रकार इस जगह डालना चाहिये ॥

कुटजपुटपाक सर्वातिसारोंपर ।

तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तंडुलवारिणा ॥ २४ ॥ पिष्टां चतुःपलमितां जंबूपल्लववेष्टिताम् ॥ सूत्रेण बद्धां गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम् ॥ २५ ॥ लिप्तां च घनपंकेन गोमयैर्वह्निनादहेत् ॥ अंगारवर्णां चमृदंदृष्ट्वावह्नेः समुद्धरेत् ॥२६॥ ततो रसंगृहीत्वा च शीतं क्षौद्रयुतांपिबेत् ॥ जयेत्सर्वानतीसारान्दुस्तरान्सुचिरोत्थितान् ॥ २७ ॥

अर्थ–तत्कालकी लाई कुडेकी छाल ४ पल ले । उसको उसी समय चावलोंके धोवनके जलमें पसिके गोला बनावे । फिर उसको जामुनके पत्तोंसे लपेट सूतसे बाँधदेवे । उसके ऊपर गेहूंके चूनको सानके लपेट देवे और उसके ऊपर गाढी २ मिट्टीका लेप करे । फिर उसको आरने उपलोंमें रखके फूँकदेवे । जब गोलेकी मिट्टी आगके वेगसे लाल होजावे तब निकाल ले, उसकी मिट्टी और पत्ते आदि दूर कर किसी स्वच्छ कपडे आदिमें दवायके रस निचोडलेवे । जब यह रस शतिल हो जावे तब सहत मिलायके पीवे तो बहुत कालका दुर्घट अतिसार रोग दूर होवे ॥

चावलोंके धोनेकी विधि ।

कंडितं तंडुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत् ॥
भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥ २८ ॥

अर्थ–एक पल बीने और फटकेहुए चावलोंमें आठगुना अर्थात् ८ पल जल मिलाय हाथोंसे मसलके चावलोंको धोवे फिर चावलोंका धुलाहुआ पानी सब कार्यमें लेना चाहिये ॥

अरलुपुटपाक ।

अरलुत्वक्कृतश्चैव पुटपाकोऽग्निदीपनः ॥
मधुमोचरसाभ्यां च युक्तः सर्वातिसारजित् ॥ २९ ॥

अर्थ–टेंटूकी गीली छालको लायके उसी समय कूटके गोला बनावे । फिर पूर्वोक्त विधि जो पुटपाककी कहीहै उसके अनुसार पुटपाक सिद्ध करे । फिर रस निकाल उसमें सहत और मोचरसका चूर्ण डालके पीवे तो सब प्रकारके अतिसार रोग दूर हों ॥

न्यग्रोधादि पुटपाक ।

न्यग्रोधादेश्चकल्केनपूरयेद्गौरतित्तिरेः ॥ निरंत्रमुदरं सम्यक्पुटपाके-
न तत्पचेत् ॥३०॥ तत्कल्कः स्वरसः क्षौद्रयुक्तः सर्वातिसारनुत् ॥

अर्थ–१ बड, २ गूलर, ३ पापरी, ४ जलवेंत, ५ पीपर इनकी छालका चूर्ण का पानीसे पीस कल्क करके उसको सफेद तीतरके पेटमें भरके पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे उसक पुटपाक करलेवे फिर अग्निसे निकाल, पत्ते मिट्टी आदिको दूर कर, उस तीतर पक्षीके पे कल्कको निकालके रस निचोड उसम सहत मिलायके पीवे तो सब अतिसार नष्ट होवें ॥

दाडिमादिपुटपाक ।

पुटपाकेन विपचेत्सुपक्वं दाडिमीफलम् ॥ ३१ ॥
तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातिसारनाशनः ॥

अर्थ–पकेहुए अनारको पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे । फिर रक्तवर्ण होनेपर अग्निसे निका पत्ते मिट्टी आदिको दूर कर उस अनारको निकाल दाबकर रस निकाल लेवे । उसमें सह मिलायके पीवे तो संपूर्ण अतिसार रोग दूर होवे ॥

बीजापुरादिपुटपाक ।

बीजपूराम्रजंबूनांपल्लवानिजटाः पृथक् ॥ ३२ ॥ विपचेत्पुटपाकेन
क्षौद्रयुक्तश्चतद्रसः ॥ छर्दिंनिवारयेद्धोरांसर्वदोषसमुद्भवाम् ॥३३॥

अर्थ–बिजौरा, आम और जामुन इनके गीले पत्ते और जड लायके उसी समय कूट गोला बनाय पूर्वोक्त रीतिसे अग्नि देवे । फिर उस गोलेको बाहर निकाल दाबके रस नि लेवे । उस रसमें सहत मिलायके पीवे तो सर्व दोषजन्य दुर्घट ओकारीका रोग दूर हो ॥

पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ॥
मधुयुक्तो जयेद्रक्तपित्तकासज्वरक्षयान् ॥ ३४ ॥

अर्थ–अडूसेके गीले पत्तोंको उसी समय कूट गोला बनावे । फिर पूर्वोक्त वि

---

१ पापरी यह एक जातिका बडा भारी वृक्ष होता है । इसके छोटे २ पत्ते होते हैं उनको पर घिसनेसे दादको दूर करे हैं ।

२ जलवेतस जलमें होनेवाले वेतको कहते हैं ।

३ उस तीतरके पेटकी आँतडी आदि निकाल कर साफ कर ले फिर कल्कको भरे ।

अग्नि देकर उसमेंसे, रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, श्वास, ज्वर और क्षयरोग दूर होवे ॥

कंटकारीपुटपाक ।

पचेत्क्षुद्रां सपंचांगां पुटपाकेन तद्रसः ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासकफापहः ॥ ३५ ॥

अर्थ—छोटी कटेरीके संपूर्ण वृक्षको फलसहित लाकर उसी समय कूटके गोला बनावे : फिर पुटपाकको विधिसे पकाय रस निकाल उस रसमें पीपलका चूर्ण मिलाय पीवे तो श्वास खाँसी और कफ ये दूर हों ॥

विभीतकपुटपाक ।

बिभीतकफलं किंचिद्घृतेनाभ्यज्य लेपयेत् ॥ गोधूमपिष्टेनांगारै-
र्विपचेत्पुटपाकवत् ॥ ३६ ॥ ततः पक्कं समुद्धृत्य त्वचं तस्य
मुखे क्षिपेत् ॥ कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभंगाञ्जयेत्ततः ॥ ३७ ॥

अर्थ—बहेडेके फलमें घी चुपडके उसपर गेहूंके चूनका लेप कर पुटपाककी विधिसे अंगारोंपर भूने फिर उसके टुकडे करके मुखमें रक्खे तो श्वास[१], कास[२] खाँसी, सरेकमां और स्वरभंग इन सब रोगोंको शीघ्र दूर करे ॥

शुंठीपुटपाक आमातिसारपर ।

चूर्णं किंचिद्घृताभ्यक्तं शुंठ्या एरंडजैर्दलैः ॥ वेष्टितं पुटपाकेन
विपचेन्मंदवह्निना ॥ ३८ ॥ तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सि-
तान्वितम् ॥ तेन यांति शमं पीडा आमातिसारसंभवाः ॥ ३९ ॥

अर्थ—सोंठके चूर्णमें थोडा घी मिलाय गोला करे फिर उसको अंडीके[३] पत्तोंसे लपेट उस गोलेको सूतसे लपेट ऊपर मिट्टीका लेप करे । फिर उसको पुटपाककी विधिसे पक्व करे । पीछे उस गोलेको आगसे निकाल उस सोंठके चूर्णको खाँडके साथ नित्य प्रातःकाल खाय तो आमातिसारसे उत्पन्न हुई जो पीडा सो सब दूर होवे ॥

दूसरा शुंठीपुटपाक आमवातपर ।

शुंठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरंडमूलजैः ॥ विपचेत्पुटपाकेन तद्रसः
क्षौद्रसंयुतः ॥ ४० ॥ आमवातसमुद्भूतां पीडां जयति दुस्तराम् ॥

---

[१] मनुष्यके दम चढनेकी अर्थात् दमेके रोगको श्वास रोग कहते है ।

[२] गोली अथवा सूखी खांसीको कास कहते हैं ।

[३] अण्डके कहनेसे सूरती अण्ड लेना उसके अभावमें दूसरा लेना ।

अर्थ–अंडकी जडके रसमें सोंठके चूर्णको सानके गोला बनावे उसको पुटपाककी विधि पकायके रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो आमवायुसे होनेवाली घोर पी दूर होवे ॥

सूरणपुटपाक बवासीरपर ।

सौरणं कंदमादाय पुटपाकेन पाचयेत् ॥ ४१ ॥
सतैललवणस्तस्य रसश्चार्शोविकारनुत् ॥

अर्थ–सूरन (जमीकंद) को कूटके गोला बनावे फिर पुटकी विधिसे पका करके निचोड लेवे । उसमें तिलका तेल और सैंधानिमक डालके पीवे तो बवासीरका विकार दूर होवे ॥

मृगशृंगपुटपाक हृदयशूलपर ।

शरावसंपुटे दग्धं शृंगं हरिणजं पिबेत् ॥
गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ–मिट्टीके शरावेमें हरणके सींगके टुकडे रखके उसको दूसरे शरावेसे ढककर उप रखके फूंक देवे । फिर इस भस्मको गौके घीमें मिलायके चाटे तो हृदयका दूर होवे ॥

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपाठकतनयदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहितार्थबोधिनीमाथुरी-
भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

काढे करनेकी विधि ।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे क्वाथयेद्ग्राह
मष्टमांशावशेषितम् ॥ १ ॥ तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्व
ग्निसाधितम् ॥ शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ २ ॥
आहाररसपाके च संजाते द्विपलोन्मितम् ॥ वृद्धवैद्योपदेशेन पिबे
त्क्वाथं सुपाचितम् ॥ ३ ॥

अर्थ–एक पल औषधको जौकूट कर १६ पल पानीमें डालके हलकी अ औटावे । जब दो पल पानी शेष रहे तब उतारके छानले इसको कुछ २ गर

पीवे तथा रोगीको भले प्रकार अन्नपचन होनेके पश्चात् वृद्ध वैद्यको विचार करके काढा देना चाहिये । १ श्रृत, २ क्काथ, ३ कषाय और ४ निर्यूह ये काढेके पर्यायवाचक नाम हैं ॥

काढेमें खाँड और सहत डालनेका प्रमाण ।

क्काथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ॥
वातपित्तकफातंके विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—काढेमें खाँड डालनी होवे तो वातरोगमें काढेकी चौथाई, पित्तरोग होवे तो आठवाँ हिस्सा और कफरोग होवे तो काढेका सोलहवां भाग डाले । तथा सहत—पित्तरोग होय तो काढेका सोलहवाँ हिस्सा, वातरोग होय तो आठवाँ हिस्सा और कफरोग होवे तो चतुर्थांश सहत डाले ॥

काढेमें जीरा आदि करडे और दूध आदि पतले पदार्थ मिलानेका प्रमाण ।

जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु ॥
हिंगु त्रिकटुकं चैव क्काथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ ५ ॥
क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद्रवं तथा ॥
कल्कं चूर्णादिकं क्काथे निक्षिपेत्कर्षसंमितम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जीरा, गूगल, जवाखार, सैंधानिमक, शिलाजीत, हींग, त्रिकुटा ये पदार्थ काढेमें डालने हों तो शाणप्रमाण डाले और दूध, घी, गुड, तेल, मूत्र तथा अन्य दूसरे पतले पदार्थ कल्क चूर्णादिक एक एक कर्ष (२ तोले) डाले ॥

काढेके पात्रको ढकनेका निषेध ।

अपिधानमुखे पात्रेजलंदुर्जरतांव्रजेत् ॥
तस्मादावरणं त्यक्त्वाक्काथादीनां विनिश्चयः ॥ ७ ॥

अर्थ—काढा होते समय उस पात्रको ढके नहीं क्योंकि काढेके पात्रको ढकनेसे काढा भारी होजाता है । इस कारण काढा करते समय उसके मुखपर ढकना न देय यह नियम सर्वत्र है ॥

गुडूच्यादिकाढा सर्वज्वरपर ।

गडूचीधान्यकारिष्टरक्तचंदनपद्मकैः ॥ गुडूच्यादिगणक्काथःसर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ ८ ॥ दीपनोदाहहृल्लासतृष्णाछर्द्यरुचर्जियेत् ॥

अर्थ—१ गिलोय, २ धनिया, ३ नीमकी छाल, ४ पद्माख और ५ रक्तचन्दन इन पांच

औषधोंका काढा करके पीवे तो जठराग्निको दीपन करके सर्व ज्वरोंको दूर करे । उसी प्रका दाह, वमन और अरुचि इन सब रोगोंको दूर करे । इसे गुडूच्यादि काथ कहते हैं ॥

नागरादि वा शुण्ठ्यादिकाढा सर्वज्वरपर ।

नागरं देवकाष्ठं च धान्याकं बृहतीद्वयम् ॥ ९ ॥
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम् ॥

अर्थ-१ सोंठ, २ देवदारु, ३ धनिया, ४ कटेरी और ५ बडी कटेरी (भटकटैया) इ पांच औषधोंको छदाम २ भर ले काढा कर प्रथम ज्वरके पचानेको यह पाचन काढा देवे त ज्वर दूर हो ॥

क्षुद्रादिकाथ ।

क्षुद्रा किराततिक्तं च शुण्ठी छिन्नासपौष्करम् ॥ १० ॥
कषाय एषां शमयेत्पीतश्चाष्टविधं ज्वरम् ॥

अर्थ-१ कटेरी, २ चिरायता, ३ कुटकी, ४ सोंठ ५ गिलोय और ६ अंडकी जड इ छः औषधोंका काढा करके पीवे तो आठ प्रकारके ज्वर दूर हों ॥

गुडूच्यादिकाथ ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् ॥ ११ ॥
दद्याद्वातज्वरे पूर्णलिंगे सप्तमवासरे ॥

अर्थ-१ गिलोय, २ पीपरामूल और ३ सोंठ इन तीन औषधोंका काढा वातज्वर पूर्णलिं होनेपर सातवें दिनके पश्चात् पाचन देवे तो वातज्वर नष्ट होवे ॥

शालपर्ण्यादिकाढा वातज्वरपर ।

शालिपर्णी बला रास्ना गुडूची सारिवा तथा ॥ १२ ॥
आसां क्वाथं पिबेत्कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥

अर्थ-१ शालपर्णी, २ खरेंटी, ३ रास्ना, ४ गिलोय और ५ सरिवन इन पांच औषधोंका काढा थोडा गरम २ पीवे तो तीव्र वातज्वर दूर होय ॥

काश्मर्यादिकाथ वातज्वरपर ।

काश्मरीसारिवारास्नात्रायमाणामृताभवः ॥ १३ ॥
कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ॥

अर्थ-१ कंभारी, २ सरवन, ३ रास्ना, ४ त्रायमाण और ५ गिलोय इन पांच औषधोंका काढा कर गुड मिलायके पीवे तो वातज्वर दूर हो ॥

कट्फलादिपाचन पित्तज्वरपर ।

कट्फलेन्द्रयवांबष्ठातिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ॥ १४ ॥
पाचनं दशमेऽह्नि स्यात्तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम् ॥

अर्थ–१ कायफर, २ इन्द्रजौ, ३ पाढ, ४ कुटकी और ५ नागरमोथा इन पांच औषधोंका काढा तीव्र पित्तज्वरके दश दिन जानेपर यह पाचन देवे तो पित्तज्वर दूर होवे ॥

पर्पटादिक्वाथ पित्तज्वरपर ।

पर्पटो वासकस्तिक्ता किरातो धन्वयासकः ॥ १५ ॥
प्रियंगुश्च कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः ॥
पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं पित्तज्वरं जयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–१ पित्तपापडा, २ अडसा, ३ कुटकी, ४ चिरायता, ५ धमासा और ६ फूलप्रियंगु इनका काढा करके खाँड मिलायके पीवे तो प्यास, दाह और रक्तपित्त इनसे युक्त पित्तज्वर दूर होय ॥

द्राक्षादिकाढा पित्तज्वरपर ।

द्राक्षा हरीतकी मुस्तं कटुका कृतमालकः ॥
पर्पटश्च कृतः क्वाथ एषां पित्तज्वरापहः ॥ १७ ॥
तृण्मूर्च्छादाहपित्तासृक्छमनो भेदनः स्मृतः ॥

अर्थ–१ दाख, २ छोटी हरड, ३ नागरमोथा, ४ कुटकी, ५ किरवारेका गूदा और ६ पित्तपापडा इन छः औषधोंका काढा पित्तज्वरको दूर करे तथा तृषा, मूर्च्छा, दाह, रक्तपित्त इनको शान्त करे, एवं भेदक (बँधेहुए मलको तोडनेवाला) है ॥

बीजपूरादिपाचन कफज्वरपर ।

बीजपूरशिवापथ्यानागरग्रंथिकैः शृतम् ॥ १८ ॥
सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे ॥

अर्थ–१ बिजोरेकी जड, २ छोटी हरड, ३ सोंठ और ४ पीपरामूल इन चार औषधोंका काढा करके उसमें जवाखार मिलाय बारह दिनके पश्चात् कफज्वरपर पाचन देवे तो कफज्वर दूर होय ॥

भूनिंबादिक्वाथ कफज्वरपर ।

भूनिम्बनिम्बपिप्पल्यः शठी शुण्ठी शतावरी ॥ १९ ॥
गुडूची बृहती चेति क्वाथो हन्यात्कफज्वरम् ॥

अर्थ-१ चिरायता, २ नीमकी छाल, ३ पीपर, ४ कचूर, ५ सोंठ, ६ सतावर, ७ गिलोय और ८ कटेरी इन आठ औषधोंका काढा करके पीवे तो कफज्वरको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा कफज्वरपर ।

पटोलत्रिफलातिक्ताशठीवासामृताभवः ॥ २० ॥
क्काथो मधुयुतः पीतो हन्यात्कफकृतं ज्वरम् ॥

अर्थ-१ पटोलपत्र, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आमला, ५ कुटकी, ६ कचूर, ७ अडूसा और ८ गिलोय इन आठ औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो कफज्वरको नष्ट करे॥

पर्पटादिकाढा वातपित्तज्वरपर ।

पर्पटाब्जामृताविश्वकिरातैः साधितं जलम् ॥ २१ ॥
पञ्चभद्रमिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम् ॥

अर्थ-१ पित्तपापडा, २ नागरमोथा, ३ गिलोय, ४ सोंठ और ५ चिरायता इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातपित्तज्वर दूर होवे ॥

लघुक्षुद्रादिकाढा वातकफज्वरपर ।

क्षुद्राशुण्ठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च ॥ २२ ॥
कफवाताधिके पेयो ज्वरे वापि त्रिदोषजे ॥
कासश्वासरुचिकरे पार्श्वशूलविधायिनि ॥ २३ ॥

अर्थ-१ कटेरी, २ सोंठ, ३ गिलोय और ४ अडकी जड इन चार औषध पीनेसे जिस ज्वरमें कफवायु प्रबल हो उसको हरे और खाँसीको दूर करे, एवं श्वास, खाँसी, अरुचि, पीठका शूल इन उपद्रव करके युक्त ऐसा त्रिदोषज ज्वर दूर होवे ॥

आरग्वधादिकाढा वातकफज्वरपर ।

आरग्वधकणामूलमुस्ततिक्ताभयाकृतः ॥
क्काथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम् ॥ २४ ॥
आमशूलप्रशमनो भेदी दीपनपाचनः ॥

अर्थ-१ अमलतासका गूदा, २ पीपरामूल ,३ नागरमोथा, ४ कुटकी और ५ जंगी हरड इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातकफज्वर और आमका शूल तत्काल नष्ट होवे तथा मल उत्तम होकर दीपन पाचन करे ॥

अमृताष्टक पित्तश्लेष्मज्वरपर ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेन्द्रयवनागरैः ॥ २५ ॥ पटोलचन्दना-

भ्यां च पिप्पलीचूर्णयुक्छृतम् ॥ अमृताष्टकमेतच्च पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ २६ ॥ छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम् ॥

अर्थ–१ गिलोय, २ नीमकी छाल, ३ कुटकी, ४ नागरमोथा, ५ इन्द्रजौ, ६ सोंठ ७ पटोलपत्र और ८ लालचंदन इन आठ औषधोंका काढा करके पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो पित्तकफज्वर दूर होवे तथा वमन, अरुचि, हुल्लास, दाह और प्यासको नष्ट करे ॥

पटोलादिकाढा पित्तकफज्वरपर।

पटोलं चंदनं मूर्वा तिक्तापाठामृतागणः ॥ २७ ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकंडूविषापहः ॥

अर्थ–१ पटोलपत्र, २ रक्तचंदन, ३ मूर्वा, ४ कुटकी, ५ पाढ और ६ गिलोय इन छः औषधोंका काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर, वमन, दाह, खुजली और विषबाधा इनको दूर करे ॥

कंटकार्यादिपाचन सर्वज्वरपर।

कंटकारीद्वयं शुंठी धान्यकं सुरदारु च ॥ २८ ॥
एभिःशृतं पाचनं स्यात्सर्वज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ–१ कटेरी, २ छोटी कटेरी, ३ सोंठ, ४ धनिया और ५ देवदारु इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो सर्व प्रकारके ज्वर दूर हों इसको पाचन कहते हैं ॥

दशमूलादिकाढा वातकफज्वरादिपर।

शालिपर्णीपृष्ठपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ २९ ॥ बिल्वाग्निमंथस्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः ॥ दशमूलमितिख्यातंक्वथितंतज्जलं पिबेत् ॥३०॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तंवातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ सन्निपातज्वरहरं सूतिकादोषनाशनम् ॥ ३१ ॥ शोषशैत्यभ्रमस्वेदकासश्वासविकारनुत् ॥ हृत्कंपग्रहपार्श्वार्तितन्द्रामस्तकशूलहृत् ॥ ३२ ॥

अर्थ–१ शालपर्णी, २ पिठवन, ३ छोटी कटेरी, ४ बडी कटेरी, ५ गोखरू, ६ बेलगिरा, ७ अरनी, ८ टेंटू, ९ कंभारी और १० पाढल इन दश मूलका काढा पिप्पलीका चूर्ण डालके

पीवे तो वातकफज्वर, संनिपातज्वर, प्रसूतिका रोग, शोष[1] सरदीका लगना, भ्रम, पसीने, खाँसी और श्वास इन रोगोंको दूर करे ॥

अभयादिकाढा त्रिदोषज्वरपर ।

अभयामुस्तधान्याकरक्तचन्दनपद्मकैः ॥ वासकेंद्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ॥३३॥ पाठानागरतिक्ताभिः पिप्पलीचूर्णयुक्छृतम् ॥ पिबेत्रिदोषज्वरजित्पिपासादाहकासनुत् ॥३४॥ प्रलापश्वासतन्द्राघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ विण्मूत्रानिलविष्टंभवमिशोषारुचिच्छिदम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–१ जंगीहरड, २ नागरमोथा, ३ धनिया, ४ लालचंदन, ५ पद्माख, ६ अडूसा, ७ इन्द्रजौ, ८ खस, ९ गिलोय, १० अमलतासका गूदा, ११ पाढ, १२ सोंठ और १३ कुटकी इनका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो त्रिदोषज्वर, प्यास, दाह, खाँसी, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा इनको दूर करे । दीपन और पाचन है । एवं मल, मूत्र, अधोवायु इनके रुकनेको तथा वमन, शोष और अरुचि इनको दूर करे ।

अष्टादशांगकाढा सन्निपातादिकोंपर ।

किरातकटुकीमुस्ताधान्येंद्रयवनागरैः ॥ दशमूलमहादारुगजपिप्पलिकायुतैः ॥ ३६ ॥ कृतःकषायःपार्श्वार्तिसन्निपातज्वरं जयेत् ॥ कासश्वासवमीहिक्कातन्द्राहृद्ग्रहनाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ--१ चिरायता, २ कुटकी, ३ नागरमोथा, ४ धनिया, ५ इन्द्रजौ, ६ सोंठ, १० दशमूल मिलायकर १६ हुए, १७ देवदारु और १८ गजपीपल इन अठारह औषधोंका काढा करके पीवे तो पार्श्वशूल और सन्निपातज्वर ये दूर हों । उसी प्रकार श्वास, खाँसी, वमन, हिचकी, तंद्रा और हृदयपीडा इनको दूर करे ॥

यवान्यादिकाढा श्वासादिकोंपर ।

यवानी पिप्पली वासा तथा वत्सकवल्कलः ॥
एषां क्वाथं पिबेत्कासे श्वासे च कफजे ज्वरे ॥ ३८ ॥

अर्थ--१ अजमायन, २ पीपल, ३ अडूसेके पत्ते और ४ कूडेकी छाल इन चार औषधोंका काढा करके पीवे तो खाँसी, श्वास और कफज्वर इनका नाश करे ॥

---

[1] 'शोषशैत्य' इस ठिकाने 'शाखाशैत्य' ऐसा पाठ है तहां हाथ पैरमें सरदी होना ऐसा अर्थ जानना चाहिये ।

कट्फलादिकाढा कासादिपर।

कट्फलांबुदभार्ङ्गीभिर्धान्यरोहिषपर्पटैः ॥
वचाहरीतकीशृंगदेवदारुमहौषधैः ॥ ३९ ॥
क्राथः कासं ज्वरं हंति श्वासश्लेष्मगलग्रहान् ॥

अर्थ–१ कायफल, २ नागरमोथा, ३ भारंगी, ४ धनिया, ५ रोहिषतृण[1], ६ पित्तपापडा, ७ वच, ८ हरड, ९ काकडासिंगी, १० देवदारु और ११ सोंठ इन ग्यारह औषधोंका काढा पीनेसे खाँसी, ज्वर, श्वास, कफ और कंठका रुकना इन सबको दूर करै॥

गुडूच्यादिकाढा तथा पर्पटादिकाढा।

क्राथो जीर्णज्वरं हंति गुडूच्याः पिप्पलीयुतः ॥ ४० ॥
तथा पर्पटजः क्राथः पित्तज्वरहरः परम् ॥
किं पुनर्यदि युज्येत चंदनोदीच्यनागरैः ॥

अर्थ–गिलोयका काढा सिद्ध होनेपर पपिलका चूर्ण डालके पीवे तो बहुत दिनका ज्वर जाय। उसी प्रकार केवल पित्तपापडेका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो पित्तज्वर नष्ट होय। यदि लालचन्दन, नेत्रबाला, सोंठ इनको मिलायके पित्तपापडेका काढा करके सेवन करे तो पित्तज्वर चलाजाय इसमें क्या कहना है॥

निदिग्धिकामृताशुंठीकषायं पाययेद्भिषक् ॥ ४१ ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं श्वासकासार्दितापहम् ॥
पीनसारुचिवैस्वर्यशूलजीर्णज्वरच्छिदम् ॥ ४२ ॥

अर्थ–१ कटेरी, २ गिलोय, ३ सोंठ इन औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण मिलायके सेवन करे तो श्वास, खाँसी, अर्दितवायु, सरेकमां, अरुचि, स्वरभंग, शूल और जीर्णज्वर इनको दूर करे॥

देवदार्वादिकाढा प्रसूतिदोषपर।

१ द्रव्यं हिंगु भ्रष्ट ।

देवदारुवचाकुष्ठं पिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ कट्फलं मुस्तभूनिंब-
तिक्तधान्याहरीतकी ॥ ४३ ॥ गजकृष्णाच[2]दुस्पर्शागोक्षुरंधन्व-
यासकम् ॥ बृहत्यतिविषाच्छिन्नाकर्कटीकृष्णजीरकम् ॥ ४४ ॥

लवणं प्रवि
[illegible]

---

[1] रोहिष तृणके प्रतिनिधिमें चिरायता डालनेकी सम्प्रदाय है।

[2] यहां दुःस्पर्शा और धन्वयासक दोनों शब्दोंका अर्थ धमासाही होता है अत एव परिभाषामें कहे प्रमाण धमासा दूना लेना अथवा दुःस्पर्शा शब्द करके कौंचके बीज लेने चाहिये।

**काथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ शूलकासज्व-
रश्वासमूर्च्छाकंपशिरोर्तिजित् ॥ ४५ ॥**

अर्थ--१ देवदारु, २ वच, ३ कूठ, ४ पीपल, ५ सोंठ, ६ कायफर, ७ नागरमोथा, चिरायता, ९ कुटकी, १० धनिया, ११ जंगीहरड, १२ गजपीपल, १३ लाल धमासा, १४ गोखरू, १५ धमासा, १६ कटेरी, १७ अतीस, १८ गिलोय, १९ काकडासिंगी २० कालाजीरा इन बीस औषधोंका अष्टावशेष काढा करके पीवे तो प्रसूतिरोग, शूल, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कंपवायु और मस्तकपीडा इन सबको दूर करे ॥

क्षुद्रादिकाढा सर्वशीतज्वरोंपर ।

**क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः ॥ रक्तचंदनभूनिंबपटो-
लवृषपौष्करैः ॥ ४६ ॥ कटुकेंद्रयवारिष्टभार्ङ्गीपर्पटकैःसमैः ॥
काथं प्रातर्निषेवेत सर्वशीतज्वरच्छिदम् ॥ ४७ ॥**

अर्थ--१ कटेरी, २ धनिया, ३ सोंठ, ४ गिलोय, ५ नागरमोथा, ६ पद्माख, ७ चंदन, ८ चिरायता, ९ पटोलपत्र, १० अडूसा, ११ अंडकी जड, १२ कुटकी, १३ १४ नीमकी छाल, १५ मारंगी और १६ पित्तपापडा इन सोलह औषधोंका प्रातःकालमें पीवे तो सर्वशीतज्वर दूर हों ॥

मुस्तादिकाढा विषमज्वरपर ।

**मुस्ताक्षुद्रामृताशुंठीधात्रीकाथः समाक्षिकः ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ४८ ॥**

अर्थ--१ नागरमोथा, २ कटेरी, ३ गिलोय, ४ सोंठ और ५ आमले इन पांच काढा सहत और पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होय ॥

पटोलादिकाढा एकाहिकज्वरपर ।

**पटोलत्रिफलानिंबद्राक्षाशम्पाकवासकैः ॥
काथः सितामधुयुतो जयेदेकाहिकं ज्वरम् ॥ ४९ ॥**

अर्थ--१ पटोलपत्र, २ त्रिफला, ३ नीमकी छाल, ४ मुनक्कादाख, ५ अमलतासका ६ अडूसा इन छः औषधोंका काढा सहत और खांड डालके पीवे तो नित्य आनेवाला दूर होवे ॥

पटोलेन्द्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः ॥ मधुकामृतवासा

क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥५०॥ संतते सतते चैव द्वितीयकतृतीयके ॥ एकाहिके वा विषमे दाहपूर्वे नवज्वरे ॥ ५१ ॥

अर्थ–१ पटोलपत्र, २ इन्द्रजौ, ३ देवदारु, ४ त्रिफला, ५ नागरमोथा, ६ मुनक्का दाख, ७ मुलहटी, ८ गिलोय और ९ अडूसा इन नव औषधोंका काढा कर सहत मिलायके पीवे तो संततज्वर, सततज्वर, द्वितीयकज्वर, तृतीयकज्वर, एकाहिज्वर, विषमज्वर, दाहपूर्वकज्वर और नवज्वर इतने रोगोंको दूर करे ॥

गुडूच्यादिकाढा तृतीयज्वरपर।

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चंदनोशीरनागरैः ॥ कृतं क्वाथं पिबेत्क्षौद्रसितायुक्तं ज्वरातुरः ॥ ५२॥ तृतीयज्वरनाशाय तृष्णादाहनिवारणम् ॥

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया, ३ नागरमोथा, ४ लालचन्दन, ५ नेत्रवाला और ६ सोंठ इन छः औषधोंका काढा सहत और खांड डालके पीवे तो तिजारी आना दूर होवे ॥

देवदार्वादिकाढा चातुर्थिकज्वरपर।

देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ॥ ५३ ॥
धात्रीयुतं शृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम् ॥
चातुर्थिकज्वरश्वासकासे मंदानले तथा ॥ ५४ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ जंगीहरड, ३ अडूसा, ४ सालपर्णी, ५ सोंठ और ६ आमले इन छः औषधोंका काढा करके शीतल होनेपर सहत और खांड मिलायके पीवे तो चौथेया ज्वर, श्वास और खांसी दूर हो तथा अग्नि प्रदीप्त होती है ॥

गुडूच्यादिकाढा ज्वरातिसारपर।

गुडूचीधान्यकोशीरशुंठीवालकपर्पटैः ॥ बिल्वप्रतिविषापाठारक्तचंदनवत्सकैः ॥५५॥ किरातमुस्तेंद्रयवैः क्वथितं शिशिरं पिबेत् ॥ सक्षौद्रं रक्तपित्तघ्नं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया, ३ खस, ४ सोंठ, ५ नेत्रवाला, ६ पित्तपापडा, ७ बलगिरि, ८ अतीस, ९ पाढ, १० लालचन्दन, ११ कुटजकी छाल, १२ चिरायता, १३ नागरमोथा और १४ इन्द्रजौ इन चौदह और औषधोंका काढा शीतल कर सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और ज्वरातिसार दूर होवे ॥

नागरादिकाढा ज्वरातिसारपर ।

नागरं कुटजो मुस्तममृतातिविषा तथा ॥
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—१ सोंठ, २ कुडेकी छाल, ३ नागरमोथा, ४ गिलोय और ५ अतीस इन पांच औषधोंका काढा पीवे तो ज्वरातिसार शान्त होवे ॥

धान्यपंचक आमशूलपर ।

धान्यवालकबिल्वाब्दनागरैः साधितं जलम् ॥
आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—१ धनियाँ, २ नेत्रवाला, ३ बेलगिरी, ४ नागरमोथा और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा पीनेसे आमशूल दूर करके मलका अवष्टंभ दूर करे और दीपन पाचन करे ॥

धान्यकादिकाढा दीपन पाचनपर ।

धान्यनागरजःक्वाथो दीपनः पाचनस्तथा ॥
एरंडमूलयुक्तश्च जयेदामानिलव्यथाम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—१ धनिया, २ सोंठ इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे दीपन पाचन करे और यदि इसमें अंडकी जड डाल लेवे तो आमवायुको दूर करता है ॥

वत्सकादिकाढा आमातिसार और रक्तातिसारपर ।

वत्सकातिविषाबिल्वामुस्तवालकमाशृतम् ॥
अतिसारं जयेत्सामं चिरजं रक्तशूलजित् ॥ ६० ॥

अर्थ—१ कुडेकी छाल, २ अतीस, ३ बेलगिरी, ४ नागरमोथा और ५ नेत्रवाला इन पांच औषधोंका काढा बहुत दिनके आमातिसारको और शूलसहित रक्तातिसारको दूर करे ॥

कुटजाष्टककाढाअतिसारादिकोंपर ।

कुटजातिविषापाठाधातकीलोध्रमुस्तकैः ॥ ह्रीबेरदाडिमयुतैः
कृतः क्वाथः समाक्षिकः ॥ ६१ ॥ पेयो मोचरसेनैव कुटजाष्टक-
संज्ञकः ॥ अतिसाराञ्जयेद्दातरक्तशूलामदुस्तरान् ॥ ६२ ॥

अर्थ—१ कुडेकी छाल, २ अतीस, ३ पाढ, ४ धायके फूल, ५ लोध, ६ नागरमोथा, ७ नेत्र-वाला और ८ अनारकी छाल इन आठ औषधोंका काढा सहत और मोचरस मिलायके पी तो जिस अतिसारमें दाह रक्तशूल और आम होय ऐसे घोर अतिसारको नष्ट करे ॥

ह्रीबेरादिकाढा अतिसारादिरोगोंपर।

ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठालज्जालुवत्सकैः॥
धान्यकातिविषामुस्तगुडूचीबिल्वनागरैः॥ ६३॥
कृतः कषायः शमयेदतिसारं चिरोत्थितम्॥
अरोचकामशूलास्रज्वरघ्नः पाचनः स्मृतः॥ ६४॥

अर्थ-१ नेत्रवाला, २ धायके फूल, ३ लोध, ४ पाढ, ५ लजालू, ६ कुडेकी छाल, ७ धनिया, ८ अतीस, ९ नागरमोथा, १० गिलोय, ११ बेलगिरी और १२ सोंठ इन बारह औषधोंका काढा पीवे तो बहुत दिनका अतिसार, अरुचि, आमशूल, रुधिरविकार और ज्वर इनको दूर करे इसको पाचन कहा है॥

धातक्यादिकाढा बालकोंके सब अतिसारोंपर।

धातकीबिल्वलोध्राणि वालकं गजपिप्पली॥
एभिः कृतं शृतं शीतं शिशुभ्यः क्षौद्रसंयुतम्॥ ६५॥
प्रदद्यादवलेहं वा सर्वातिसारशांतये॥

अर्थ-१ धायके फूल, २ बेलगिरी, ३ लोध, ४ नेत्रवाला और ५ गजपीपल इन पाँच औषधोंके काढेको शीतल कर सहत मिलायके बालकको चटावे तो बालकका अतिसाररोग दूर होवे॥

शालपर्ण्यादिकाढा संग्रहणीपर।

शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुण्ठीकृतं शृतम्॥ ६६॥
आध्मानशूलसहितां वातजां ग्रहणीं जयेत्॥

अर्थ-१ शालपर्णी, २ खरेटी, ३ बेलगिरी ४ धनियां और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो पेटका फूलना और शूल इन करके युक्त वातज संग्रहणीको दूर करे॥

चतुर्भद्रादिकाढा आमसंग्रहणीपर।

गुडूच्यतिविषाशुण्ठीमुस्तैः क्वाथः कृतो जयेत्॥ ६७॥
आमानुषक्तां ग्रहणीं ग्राही पाचनदीपनः॥

अर्थ-१ गिलोय २ अतीस ३ सोंठ और ४ नागरमोथा इन चार औषधोंका काढा पीवे तो आमयुक्तग्रहणी दूर होवे तथा ग्राही कहिये मलको अवष्टंभ करनेवाला होकर दीपन पाचन करता है॥

इन्द्रयवादिकाढा सब अतिसारोंपर।

यवधान्यपटोलानां क्वाथः सक्षौद्रशर्करः॥ ६८॥

योज्यः सर्वातिसारेषु बिल्वाम्रास्थिभवस्तथा ॥

अर्थ-१ इन्द्रजौ, २ धनिया आर ३ पटोलपत्र इन तीन औषधोंके काढेमें मिश्री और सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण अतिसार दूर होवे । इसी प्रकार बेलगिरीका अथवा आमकी गुठलीका अथवा आमकी गुठली और बेलगिरीका काढा करके सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और दुर्घट श्वास और खाँसी दूर हो ॥

त्रिफलादिकाढा कृमिरोगपर ।

त्रिफला देवदारुश्च मुस्ता मूषककर्णिका ॥ ६९ ॥
शिग्रुरेतैः कृतः क्राथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥
विडंगचूर्णयुक्तश्च कृमिघ्नः कृमिरोगहा ॥ ७० ॥

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ देवदारु, ५ नागरमोथा, ६ मूसाकणा और सहिंजनेकी छाल इन सात औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण वा वायविडंगका चूर्ण मिलायके पीवे तो कृमिज्वर और विवर्णतादि जंतुविकार दूर होंय ॥

फलत्रिकादिकाढा कामला पांडुरोगपर ।

फलत्रिकामृतातिक्तानिम्बकैरातवासकैः ॥
जयेन्मधुयुतः क्राथः कामलां पांडुतां तथा ॥ ७१ ॥

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ गिलोय, ५ कुटकी, ६ नीमकी छाल, ७ चिराय और ८ अडूसेके पत्ते इन आठ औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो कामल और पांडुरोगको दूर करे ॥

पुनर्नवादिकाढा पांडुकासादिरोगपर ।

पुनर्नवाभयानिम्बदार्वीतिक्तापटोलकैः ॥
गुडूचीनागरयुतैः क्राथो गोमूत्रसंयुतः ॥ ७२ ॥
पांडुकासोदरश्वासशूलसर्वांगशोथहा ॥

अर्थ--१ सोंठकी जड, २ हरड, ३ नीमकी छाल, ४ दारुहलदी, ५ कुटकी, ६ पटो पत्र, ७ गिलोय और ८ सोंठ इनका काढा गोमूत्र मिलायके पीवे तो पांडुरोग, खाँसी, उद रोग, श्वास, शूल और सर्वांगकी सूजनको नष्ट करे ॥

वासादिकाढा ।

वासाद्राक्षाभयाक्राथः पीतः सक्षौद्रशर्करः ॥ ७३ ॥
निहन्ति रक्तपित्तार्तिश्वासकासान्सुदारुणान् ॥

---

१ किसी २ आचार्यंने कटुपटोल फल कहे हैं परन्तु "पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफाप इस प्रमाणसे इस जगह परवलके पत्तेही लेने चाहियं ।

अर्थ-१ अडूसा, २ दाख, ३ हरड इनके काढेमें सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो रक्तपित्तकी पीडा, श्वास और दारुण खाँसी इन सबको दूर करे॥

बांसेका काढा रक्तपित्तक्षयादिपर।

रक्तपित्तक्षयं कासं श्लेष्मपित्तज्वरं तथा॥ ७४॥
केवलो वासकक्काथः पीतः क्षौद्रेण नाशयेत्॥

अर्थ-केवल अडूसेके काढेमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, क्षय, खाँसी और श्लेष्मपित्तज्वरको दूर करे॥

वासादिकाढा ज्वरखांसीपर।

वासाक्षुद्रामृताक्काथः क्षौद्रेण ज्वरकासहा॥ ७५॥

अर्थ-१ अडूसा, २ कटेरी और ३ गिलोय इनके काढेमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खांसी दूर होवे॥

क्षुद्रादिकाढा खाँसीपर।

कासघ्नः पिप्पलीचूर्णयुक्तः क्षुद्राशृतस्तथा॥

अर्थ-कटेरीके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो खाँसी दूर हो॥

क्षुद्रादिकाढा श्वासखाँसीपर।

क्षुद्राकुलित्थवासाभिर्नागरेण च साधितः॥ ७६॥
क्काथः पौष्करचूर्णाढ्यः श्वासकासौ निवारयेत्॥

अर्थ-१ कटेरी, २ कुलथी, ३ अडूसा और ४ सोंठ इनके काढेमें पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो श्वास खांसीको दूर करे॥

रेणुकादिकाढा हिक्कापर।

रेणुकापिप्पलीक्काथो हिंगुकल्केन संयुतः॥ ७७॥
पानादेव हि पंचापि हिक्का नाशयति क्षणात्॥

अर्थ-१ रेणुका और २ पीपल इनके काढेमें हींगका कल्क मिलायके पीवे तो पांच प्रकारकी हिचकियोंको तत्काल दूर करे॥

हिंग्वादिकाढा गृध्रसीरोगपर।

हिंगुपुष्करचूर्णाढ्यं दशमूलशृतं जयेत्॥ ७८॥
गृध्रसीं केवलः क्काथः शैफालीपत्रजस्तथा॥

अर्थ-१ दशमूलके काढेमें भुनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो गृध्रसी

नाम वातका रोग दूर होवे अथवा केवल निर्गुंडीके पत्तोंके काढेमें भुनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो भी गृध्रसी वायु दूर होवे ॥

बिल्वादि वा गुडूच्यादि क्काथ ।

बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्काथः क्षौद्रेण संयुतः ॥ ७९ ॥
जयेत्रिदोषजां छर्दिं पर्पटः पित्तजां तथा ॥

अर्थ--बेलकी छाल अथवा गिलोयके काढेमें सहत डालके पीवे तो सन्निपातकी छर्दि (वम-नरोग) को दूर करे अथवा पित्तपापडेका काढा सहत मिलायके पीनेसे पित्तजन्य छर्दिको दूर करे॥

रास्नादि पंचक क्काथ सर्वांगवातपर ।

रास्नामृतामहादारुनागरैरंडजं कृतम् ॥ ८० ॥
सप्तधातुगते वाते सामे सर्वांगजे पिबेत् ॥

अर्थ--१ रास्ना, २ गिलोय, ३ देवदारु, ४ सोंठ और ५ अण्डकी जड इनका काढा रसधातु-गत वायु, आमवात और सर्वांगगतवातके रोगमें पीना चाहिये ॥

रास्नासप्तक ।

रास्नागोक्षुरकैरण्डदेवदारुपुनर्नवाः ॥ ८१ ॥
गुडूच्यारग्वधौ चैव क्काथ एषां विपाचयेत् ॥
शुण्ठीचूर्णेन संयुक्तः पिबेज्जंघाकटिग्रहे ॥ ८२ ॥
पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवाते सुदुस्तरे ॥

अर्थ- १ रास्ना, २ गोखरू, ३ अण्ड, ४ देवदारु, ५ पुनर्नवा, ६ गिलोय और ७ अ तासका गूदा इनके काढेमें सोंठका चूर्ण मिलायके जंघा और कमरके रहजानेमें एवं पसवाडे, पं ऊरुकी पीडा आर आमवात इन रोगोंमें यह काढा पीना चाहिये तो उक्त रोग दूर हों ॥

महारास्नादि काढा संपूर्णवायुपर ।

रास्नाद्विगुणभागा स्यादेकभागास्तथा परे ॥ ८३ ॥ धन्वयास
लैरण्डदेवदारुशठीवचा ॥ वासको नागरं पथ्याचव्यामुस्तापुनर्न
वा ॥८४॥ गुडूचीवृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः ॥ अश्वगन्ध
प्रतिविषाकृतमालः शतावरी ॥ ८५ ॥ कृष्णासहचरश्चैव धान्य
बृहतीद्वयम् ॥ एभिः कृतं पिबेत्काथं शुंठीचूर्णेनसंयुतम् ॥८६

कृष्णचूर्णेनवायोगराजगुग्गुलुनाथवा ॥ अजमोदादिनावापितैलेनैरंडजेनवा ॥८७॥ सर्वांगकंपेकुब्जत्वेपक्षाघातेऽपबाहुके ॥ गृध्रस्यामामवातेचश्लीपदेचापतानके ॥ ८८ ॥ अंडवृद्धौतथाध्मानेजंघाजानुगदार्दिते ॥ शुक्रामयेमेढ्ररोगेवंध्यायोन्याशयेषु च ॥ ८९ ॥ महारास्नादिराख्यातोब्रह्मणागर्भकारणम् ॥

अर्थ-१ रास्ना दो तोले और २ धमासा, ३ खिरेंटी, ४ अंडकी जड, ५ देवदारु, ६ कचूर, ७ वच, ८ अडूसेका पंचांग, ९ सोंठ, १० हरडकी छाल, ११ चव्य, १२ नागरमोथा, १३ सोंठकी जड, १४ गिलोय, १५ विधायरा, १६ सौंफ, १७ गोखरू, १८ असगंध, १९ अतीस, २० अमलतासका गूदा, २१ शतावर, २२ छोटी पीपल, २३ बियाबांसा, २४ धनिया और २५-२६ दोनों छोटी बडी कटेरी एक २ तोले । इन छब्बिस औषधोंके काढेमें सोंठका चूर्ण मिलायके अथवा पीपलके चूर्णको मिलायके अथवा योगराजगूगलके साथ अथवा अजमोदादिचूर्णके साथ अथवा अंडीके तेलके साथ इस काढेको पीवे तो सर्वांगकंप, कुबडापना, पक्षाघात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानवायु, अंडवृद्धि, अफरा, जंघा जानुकी पीडा, शुक्रके दोष, लिंगके रोग, वंध्याके योनिकी और गर्भाशयके रोग इन सबको दूर करे । ब्रह्मदेवने गर्भस्थापनके कारण यह महारास्नादि काथ कहा है ॥

एरंडसप्तक स्तनादिगतवायुपर ।

एरंडो बीजपूरश्च गोक्षुरोबृहतीद्वयम् ॥९०॥ अश्मभेदस्तथा बिल्वएतन्मूलैः कृतः शृतः ॥ एरंडतैलहिंग्वाढ्यः सयवक्षारसैंधवः ॥ ९१ ॥ स्तनस्कंधकटीमेढ्रहृदयोत्थव्यथां जयेत् ॥

अर्थ-१ अंडकी जड, २ बिजोरेकी जड, ३ गोखरू, ४ छोटी कटेरी, ५ बडी कटेरी, ६ पाषाणभेद और ७ बेलगिरि इन सात औषधोंकी जडके काढेमें अंडीका तेल और भुनी हींग तथा जवाखार और सैंधानमक इनका चूर्ण मिलायकर पीवे तो स्तन, कन्धा, कमर, लिंग और छाती इन ठिकानोंपर होनेवाली वातसंबंधी पिडाको दूर करे ॥

नागरादिकाढा वातशूलपर ।

नागरैरंडयोः क्काथः क्काथ इंद्रयवस्यवा ॥ ९२ ॥ हिंगुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥

अर्थ-१ सोंठ २ अंडकी जड इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें भुनी हींग और कालानमक मिलायके पीवे तो अथवा इन्द्रजौके काढेमें कालानमक और हींग मिलायके पीवे तो वातसंबंधी पीडा दूर होवे ॥

त्रिफलादिकाढा पित्तशूलपर ।

त्रिफलारग्वधक्काथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥ ९३ ॥
रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः ॥

अर्थ—१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला और ४ अमलतास इन चार औषधोंके काढेमें खाँ और सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, दाह और पित्तशूल ये दूर हों ॥

एरंडमूलकादिकाढा कफशूलपर ।

एरंडमूलं द्विपलं जलेऽष्टगुणिते पचेत् ॥ ९४ ॥
तत्क्काथो यावशूकाढ्यः पार्श्वहृत्कफशूलहा ॥

अर्थ—१ अंडकी जड दो पल ले उसमें आठ पल पानी मिलायके काढा करे जब अष्टमां काढा होजावे तब उतार छान उसमें जवाखार मिलायके पीवे तो पसवाडे और हृदयमें होने वाले कफके शूलका नाश होवे ॥

दशमूलादिकाढा हृद्रोगादिकोंपर ।

दशमूलकृतः क्काथः सयवक्षारसैंधवः ॥ ९५ ॥
हृद्रोगगुल्मशूलार्तिकासश्वासांश्चनाशयेत् ॥

अर्थ—दशमूलका काढा कर उसमें जवाखार और सैंधानमक मिलायके पीवे तो हृदयरोग, गोला, शूल, श्वास और खाँसी इनका नाश करे ॥

हरीतक्यादिकाढा मूत्रकृच्छ्रपर ।

हरीतकीदुरालभाकृतमालाकगोक्षुरैः ॥ ९६ ॥ पाषाणभेदसहित
क्काथोमाक्षिकसंयुतः ॥ विबंधेमूत्रकृच्छ्रेचसदाहेसरुजेहितः ॥९७

अर्थ—१ छोटीहरड, २ धमासा, ३ अमलतासका गूदा, ४ गोखरू और ५ पाषाणभेद इ पाँच औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो दाह, मूत्रका रुकना तथा वायुका अ रोध इन उपद्रवयुक्त मूत्रकृच्छ्र दूर होवे ॥

वीरतर्वादिकाढा मूत्राघातादिकोंपर ।

वीरतरुर्वृक्षवंदाकाशः सहचरत्रयम् ॥ कुशद्वयनलोगुंद्राबकपु-
ष्पोऽग्निमंथकः ॥ ९८ ॥ मूर्वापाषाणभेदश्चस्योनाकोगोक्षुर-
स्तथा ॥ अपामार्गश्चकमलंब्राह्मीचेतिगणोवरः ॥ ९९ ॥

---

१ मागधपरिभाषाके मानसे दो पलके व्यावहारिक आठ तोले होते हैं ।

वीरतर्वादित्युक्तः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ॥ मूत्राघातं वायुरोगा-न्नाशयेन्निखिलानपि ॥ १००

अर्थ--१ कोहवृक्षकी छाल, २ बाँदा, ३ कांस, ४ सफेद, ५ पीला और ६ काला ऐसा पियाबाँसा, ७ कुशा, ८ डाभ, ९ देवनल, १० गुंद्रों[1] (पटेरे), ११ वकपुष्प (शिवलिंगी), १२ अरनीकी जड, १३ मूर्वा, १४ पाषाणभेद, १५ टेंटूकी जड, १६ गोखरू, १७ ओंगा (चिरचिटा), १८ कमल और १९ ब्राह्मीके[2] पत्ते इन उन्नीस औषधोंका काढा करके पीवे तो यह वीरतर्वादिकाथ शर्करा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और सर्व प्रकारके बादीके रोगोंका दूर करे ॥

एलादिकाढा पथरीशर्करादिकपर।

एलामधुकगोकंटरेणुकैरंडवासकः ॥ कृष्णाश्मभेदसहितः क्वाथ एषां सुसाधितः ॥१०१॥ शिलाजतुयुतःपेयःशर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ॥

अर्थ--१ छोटी इलायचीके बीज, २ मुलहटी, ३ गोखरू, ४ रेणुकाबीज[3], ५ अंडकी जड, ६ अडूसा, ७ पीपर और ८ पाषाणभेद इन आठ औषधोंका काढा करके उसमें शिलाजीत मिलायके पीवे तो शर्करा पथरी और मूत्रकृच्छ्र इनको दूर करे ॥

समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः ॥१०२॥
नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ॥

अर्थ--जडसहित गोखरूके वृक्षका काढा कर उसमें खाँड और सहत मिलायके पीवे तो मूत्रकृच्छ्र और उष्णवात (गरमीका रोग) दूर होता है ॥

त्रिफलादिकाढा प्रमेहपर।

वरदार्व्यब्ददारूणां क्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ॥ १०३ ॥
वत्सकात्रिफला दार्वी मुस्तको बीजकस्तथा ॥

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ दारुहलदी, ५ नागरमोथा और ६ देवदारु इनका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेह दूर हो। १ कुडेकी छाल, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आमला, ५ दारुहल्दी, ६ नागरमोथा, ७ बीजक इन सात औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेहको दूर करे ॥

---

[1] गुन्द्राको हिन्दीमें पटेरे और मरैठीमें गोंदणी गवत कहते हैं। [2] ब्राह्मी रूखडी गंगायमुनानदीके खादरमें बहुत होती है। इसका पृथ्वीमें फैला हुआ छत्ता होता है। पत्ते गोल कुछ सुकडे हुए होते हैं। इसके दो भेद हैं एक ब्राह्मी दूसरी मंडूकपर्णी। [3] रेणुकाबीज प्रसिद्ध है. इसके दाने काले २ होते हैं।

दूसरा फलत्रिकादिकाढा प्रमेहपर ।

फलत्रिकाब्ददार्वीणां विशालायाः शृतं पिबेत् ॥ १०४॥
निशाकल्कयुतं सर्वप्रमेहविनिवृत्तये ॥

अर्थ--१ हरड, २ बहेडा, ३ आँवला, ४ दारुहल्दी, ५ नागरमोथा और ६ इन्द्रायनकी जड इन छः औषधोंके काढेमें हल्दी मिलायके पीवे तो सर्व प्रकारके प्रमेह दूर होवें ॥

दार्व्यादिकाढा प्रदररोगपर ॥

दार्वीरसांजनंमुस्तंभल्लातःश्रीफलंवृषः ॥ कैरातश्चपिबेदेषांक्काथं
शीतंसमाक्षिकम् ॥ जयेत्सशूलंप्रदरंपीतश्वेतासितारुणम् ॥१०५॥

अर्थ--१ दारुहल्दी, २ रसोत, ३ नागरमोथा, ४ भिलावा, ५ बेलगिरी, ६ अडूसा और ७ चिरायता इन सात औषधोंके काढेको शीतल करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो शूलसहित पीला सफेद काला और लाल ऐसे रंगवाला स्त्रियाका प्रदररोग दूर हो ॥

न्यग्रोधादिकाढा व्रणादिरोगोंपर ।

न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसोबदरीतुणिः ॥ मधुयष्टिप्रियालुश्चलो-
ध्रद्वयमुदुंबरः ॥ १०६ ॥ पिप्पलश्चमधूकश्चतथापारिसपि-
प्पलः ॥ सल्लकीतिंदुकीजंबूद्वयमाम्रतरुः शिवा ॥ १०७॥
कदंबककुभौचैवभल्लातकफलानिच ॥ न्यग्रोधादिगणक्काथंय-
थालाभंच कारयेत् ॥ १०८ ॥ अयंक्काथोमहाग्राहीव्रण्योभग्नं
चसाधयेत् ॥ योनिदोषहरोदाहमेदोमेहविषापहः ॥ १०९ ॥

अर्थ--१ बडकी छाल, २ पाखरकी छाल, ३ अंबाडेकी छाल, ४ वेतकी छाल, ५ बेरकी छाल, ६ तुनी (तूत वृक्षकी छाल), ७ मुलहठी, ८ चिरोंजी, ९ लाल लोध, १० सफेद लोध, ११ गूलरकी छाल, १२ पीपलकी छाल, १३ महुआकी छाल, १४ पारिसपीपलकी छाल, १५ सालई वृक्षकी छाल, १६ तेंदू, १७ छोटी जामुन, १८ बडी जामुनकी छाल, १९ आम, २० छोटी हरड, २१ कदंबकी छाल, २२ कोहकी छाल और २३ भिलावें इन तेईस औषधोंका काढा करके पीवे तो मलका अवष्टंभ होकर व्रणरोग, अस्थिभंग, योनिदोष, दाह, मेदोरोग और विषदोष ये नष्ट होवें ॥

बिल्वादिकाढा मेदोरोगपर ।

बिल्वोग्निमंथः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा ॥

क्काथ एषां जयेन्मेदोदोषं क्षौद्रेण संयुतः ॥ ११० ॥

अर्थ—१ बेलगिरी, २ अरनी, ३ टेंटू, ४ कंभारी, ५ पाटल इस बृहत्पंचमूलका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो सब शरीरमें मेद बढकर जो पीडा होती है वह दूर होवे ॥

दूसरा त्रिफलादिकाढा।

क्षौद्रेणत्रिफलाक्काथः पीतो मेदोहरः स्मृतः ॥
शीतीभूतंतथोष्णांबुमेदोहृत्क्षौद्रसंयुतम् ॥ १११ ॥

अर्थ—त्रिफलाका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेदरोग नष्ट होवे उसी प्रकार औटे हुए जलका शीत कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेदरोग दूर होवे ॥

चव्यादिकाढा उदररोगपर।

चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवदारुणा ॥
क्काथस्त्रिवृच्चूर्णयुतोगोमूत्रेणोदराञ्जयेत् ॥ ११२ ॥

अर्थ—१ चव्य, २ चीतेकी छाल, ३ सोंठ और ४ देवदारु इन चार औषधोंका काढा कर उसमें निशोथका चूर्ण और गोमूत्र मिलायके पीवे तो संपूर्ण उदररोग दूर होवें ॥

पुनर्नवादिकाढा शोथोदरपर।

पुनर्नवामृतादारुपथ्यानागरसाधितः ॥
गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्काथः शोथोदरापहा ॥ ११३ ॥

अर्थ-१ साँठीकी जड, २ गिलोय, ३ देवदारु, ४ जगीहरड और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल और गोमूत्र मिलाकर पीनेमे सूजनवाला उदररोग नष्ट होवे ॥

पथ्यादिकाढा यकृत्प्लीहादिकोंपर।

पथ्यारोहितकक्काथं यवक्षारकणायुतम् ॥
प्रातः पिबेद्यकृत्प्लीहगुल्मोदरनिवृत्तये ॥ ११४ ॥

अर्थ—१ जंगीहरड, २ रक्तरोहिडा[1] इन दोनों औषधोंका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण और जवाखार मिलायके प्रातःकाल पीवे तो [2]यकृत् रोग प्लीहाका रोग तथा गुल्मोदर इनको दूर करे ॥

---

[1] रक्तरोहिडा प्रसिद्ध वृक्ष है। [2] यकृत् और प्लीहा ये दोनों मांसके पिंड हैं (जिनको इनके विशेष लक्षण जानने होवे प्रथम खंडमें शारीरकमें देखलेवे) सूजन आयकर जिसमें रुधिर नष्ट होजावे या राध वगैरह होय उस रोगको क्रमसे प्लीहोदर और यकृदाल्युदर कहते हैं।

पुनर्नवादिकाढा सूजनपर ।

पुनर्नवादारुनिशानिशाशुण्ठीहरीतकी ॥
गुडूचीचित्रकोभार्ङ्गीदेवदारुचतैःशृतः ॥ ११५ ॥
पाणिपादोदरमुखप्राप्तशोफंनिवारयेत् ॥

अर्थ—१ सोंठकी जड, २ दारुहल्दी, ३ हल्दी, ४ सोंठ, ५ जंगीहरड, ६ गिलोय, ७ चीतेकी छाल, ८ भारंगी, ९ देवदारु इन नौ औषधयोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण अंगकी सूजन दूर होवे ॥

त्रिफलादिकाढा वृषणशोथपर ।

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैवपाययेत् ॥ ११६ ॥
वातश्लेष्मकृतं हंति शोथं वृषणसंभवम् ॥

अर्थ—१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला इन तीन औषधोंका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो वातकफजन्य जो अंडकोषोंकी सूजन है वह दूर होवे ॥

रास्नादिकाढा अन्त्रवृद्धिपर ।

रास्नाऽमृताबलायष्टीगोकण्टैरंडजःशृतः ॥ ११७ ॥
एरंडतैलसंयुक्तोवृद्धिमन्त्रोद्भवां जयेत् ॥

अर्थ—१ रास्ना, २ गिलोय, ३ खरेंटी, ४ मुलहटी, ५ गोखरू, ६ अंडकी जड इन छः औषधोंका काढा करके उसमें अंडीका तेल मिलायके पीवे तो अंत्रवृद्धि (अर्थात् अन्तर्गत वायु कि जिससे अण्डकोश बडे होते हैं) रोग दूर होवे ॥

कांचनारादिकाढा गण्डमालापर ।

कांचनारत्वचःक्वाथशुण्ठीचूर्णेननाशयेत् ॥ ११८ ॥
गण्डमालांतथा क्वाथःक्षौद्रेणवरुणत्वचः ॥

अर्थ--कचनार वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सोंठका चूर्ण मिलायके पीवे अथवा उसी प्रकार वरना वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो गण्डमाला दूर होवे ॥

शाखोटकादिकाढा गण्डमालापर ।

शाखोटवल्कलक्वाथंगोमूत्रेणयुतंपिबेत् ॥ ११९ ॥
श्लीपदानां विनाशायमेदोदोषनिवृत्तये ॥

अर्थ–सहोडाकी छालका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो श्लीपदरोग (कि जो विशेष करके पैरोंमें होताहै जिसको पीलपाव कहते हैं वह) और मेदोरोग ये दूर हों ॥

पुनर्नवादि काढा अन्तर्विद्रधिपर ।

पुनर्नवावरुणयोः क्वाथोऽतर्विद्रधीञ्जयेत् ॥ १२० ॥
तथा शिग्रुमयः क्वाथो हिंगुकल्केन संयुतः ॥

अर्थ--१ पुनर्नवा, २ वरना इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे अंतर्विद्रधिको दूर करे अथवा सहँजनेकी छालका काढा करके उसमें भुनी हींग डालके पीवे तो भी अंतर्विद्रधि रोग दूर होय ॥

वरुणादिकाढा मध्यविद्रधिपर ।

वरुणादिगणक्वाथमपक्के मध्यविद्रधौ ॥ १२१ ॥
ऊषकादिरजो युक्तं पिबेच्छमनहेतवे ॥

अर्थ--वरुणादिक औषधोंका गण जो आगे कहेंगे उसका काढा करके तथा ऊषकादि औषधोंका चूर्ण जो आगे कहेंगे उसका चूर्ण करके उस काढेमें मिलायके पीवे तो पक्व नहीं हुआ जो विद्रधिरोग सो दूर होवे ॥

वरुणादिकाढा ।

वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः ॥ १२२ ॥
अग्निमंथद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम् ॥
सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः ॥ १२३ ॥
अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी ॥
वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः ॥ १२४ ॥
हंति गुल्मं शिरःशूलं तथाभ्यंतरविद्रधीन् ॥

अर्थ--१ वरनाकी छाल, २ शिवलिंगी, ३ कोमल बेलफल, ४ ओंगा, ५ चित्रक, ६ छोटी अरनी, ७ बडी अरनी, ८ कडुआ सहँजना, ९ मीठा सहँजना, १० छोटी कटेरी, ११ बडी कटेरी, १२ पीले फूलका पियाबांसा, १३ सफेद फूलका पियावांसा, १४ काले फूलका पियावांसा, १५ मूर्वा, १६ काकडासिंगी, १७ चिरायता, १८ मेंढासिंगी, १९ कडुई कंदूरीकी जड अथवा पत्ते, २० कंजा और २१ शतावर इन इक्कीस औषधोंका काढा करके पीवे तो कफमेदरोग, मस्तकशूल और गोलाका रोग ये दूर हों. अंतर्विद्रधि नामका

---

१ इस जगह बकपुष्प करके कमल लेना अथवा फुलप्रियंगु लेना चाहिये ।

२ मेषशृंगी प्रसिद्ध है इसकी बेल होती है उसको लौकिकमें मेढासिंगी कहते हैं ।

रोग होताहै वह दूर हो, मूलके श्लोकमें (तथा विद्रधिपीनसान्) ऐसाभी पाठ है उस पक्षमें पीनसरोगकोभी दूर करे ऐसा अर्थ जानना ॥

ऊषकादिगण ।

ऊषकस्तुत्थकं हिंगुकाशीसद्वयसैंधवम् ॥ १२५ ॥
सशिलाजतु कृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम् ॥

अर्थ--१ खारीमिट्टी, २ मोचरस शुद्ध किया हुआ, ३ भुनी हींग, ४ सफेद हीराकसीस, ५ पीला हीराकसीस (इसको शुद्ध करके लेना चाहिये), ६ सेंधानिमक और ७ शिलाजीत इन सात औषधोंका चूर्ण सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गोला और मेदरोगको दूर करे ॥

खादिरादिकाढा भगंदररोगपर ।

खदिरत्रिफलाक्काथो महिषीघृतसंयुतः ॥ १२६ ॥
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगंदरविनाशनः ॥

अर्थ--१ खैरसार, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आमला इन चार औषधोंका काढा कर उसमें भैंसका घी और वायविडंगका चूर्ण मिलाय पीवे तो भगंदर रोग दूर होवे ॥

पटोलादिकाढा उपदंशपर ।

पटोलत्रिफलानिंबकिरातखदिरासनैः ॥ १२७ ॥
क्काथः पीतोजयेत्सर्वानुपदंशान्सगुग्गुलः ॥

अर्थ--१ पटोलपत्र, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आमला, ५ नीमकी छाल, ६ चिरायता, ७ खैरसार और ८ विजैसार इन आठ औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे तो संपूर्ण उपदंश (गरमीके रोग) दूर हों ॥

अमृतादिकाढा वातरक्तपर ।

अमृतैरंडवासानां क्काथ एरंडतैलयुक् ॥ १२८ ॥
पीतः सर्वाङ्गसञ्चारिवातरक्तंजयेद्ध्रुवम् ॥

अर्थ-१ गिलोय, २ अंडकी जड और ३ अडूसा इन तीन औषधोंका काढा कर उसमें अंडीका तेल मिलायके पीवे तो संपूर्ण अंगमें विचरनेवाला वातरक्त रोग दूर होवे ॥

दूसरा पटोलादिकाढा ।

पटोलं त्रिफला तिक्ता गुडूची च शतावरी ॥ १२९ ॥

---

१ असन शब्दके दो अर्थ हैं एक विजयसार दूसरा बनकुलथी परंतु इस जगह विजयसारही लेना चाहिये ।

एषक्काथोजयेत्पीतो वातास्रं दाहसंयुतम् ॥

अर्थ–१ पटोलपत्र, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आमला, ५ कुटकी, ६ गिलोय और ७ शतावर इन सात औषधोंका काढा करके पीवे तो दाहयुक्त जो वातरक्त सो दूर हो ॥

अवल्गुजादिकाढा श्वेतकुष्ठपर ।

काथोऽवल्गुजचूर्णाढ्योधात्रीखदिरसारयोः ॥ १३० ॥
जयेत्सशीलितो नित्यं श्वित्रं पथ्याशिनांनृणाम् ॥

अर्थ–आमला और खैरसार इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें बावचीका चूर्ण मिलायके पीवे तो पथ्यसे रहनेवाले मनुष्यका सफेद कुष्ठ दूर हो ॥

लघुमंजिष्ठादिकाढा वातरक्तकुष्ठादिकोंपर ।

मंजिष्ठात्रिफलातिक्तावचादारुनिशामृता ॥ १३१ ॥
निंबश्चैषांकृतः काथो वातरक्तविनाशनः ॥
पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमंडलजिन्मतः ॥ १३२ ॥

अर्थ–१ मंजीठ, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आमला, ५ कुटकी, ६ वच, ७ दारुहल्दी, ८ गिलोय और ९ नीमकी छाल इन नौ औषधोंका काढा करके पीवे तो वातरक्त खाज और कापालिककुष्ठ तथा रुधिरके विकार (देहमें कोले चकत्तोंका होना) इतने रोग दूर होवें ॥

बृहन्मंजिष्ठादिकाढा कुष्ठादिकोंपर ।

मंजिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः ॥ भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिंब-
निशाद्वयफलत्रिकैः ॥ १३३ ॥ पटोलकटुकामूर्वाविडंगासन-
चित्रकैः ॥ शतावरीत्रायमाणकृष्णेंद्रयववासकैः ॥ १३४ ॥
भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचंदनैः ॥ त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुची-
कृतमालकैः ॥ १३५ ॥ शाखोटकमहानिंबकरंजातिविषा-
जलैः ॥ इंद्रवारुणिकानंतासारिवापर्पटैः समैः ॥ १३६ ॥
एभिःकृतंपिबेत्काथंकणागुग्गुलुसंयुतम् ॥ अष्टादशसुकुष्ठेषुवा-
तरक्तादिंततथा ॥ १३७ ॥ उपदंशेश्लीपदेचप्रसुप्तौपक्षघातके ॥
मेदोदोषेनेत्ररोगेमंजिष्ठादिप्रशस्यते ॥ १३८ ॥

अर्थ-१ मंजीठ, २ नागरमोथा, ३ कुडेकी छाल, ४ गिलोय, ५ कूठ, ६ सोंठ, ७ भारंगी, ८ कटेरीका पञ्चांग, ९ वच, १० नीमकी छाल, ११ हल्दी, १२ दारुहल्दी, १३ हरड, १४ बहेडा, १५ आंवला, १६ पटोलपत्र, १७ कुटकी, १८ मूर्वा, १९ वायविडंग, २० विजयसार, २१ चीतेकी छाल, २२ शतावर, २३ त्रायमाण, २४ पीपल, २५ इन्द्रजौ, २६ अडूसेके पत्त, २७ भाँगरा, २८ देवदारु, २९ पाठ, ३० खैरसार, ३१ लालचन्दन, ३२ निसोथ, ३३ वरनाकी छाल, ३४ चिरायता, ३५ बावची, ३६ अमलतासका, गूदा, ३७ सहोडाकी छाल, ३८ बकायन, ३९ कंजा, ४० अतीस, ४१ नेत्रवाला, ४२ इन्द्रायनकी जड, ४३ धमासा, ४४ सारिवा और ४५ पित्तपापडा इन पैंतालीस औषधोंको कूट पीस जवकूट करके एक तोलेका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण और गूगल मिलायके पीवे तो अठारह प्रकारके कोढ रोग, वातरक्त, उपदंश अर्थात् गरमीका रोग, श्लीपदरोग, अंगशून्य होना, पक्षाघात वायु, मेदरोग और नेत्ररोग ये सब दूर हों॥

यदि इसमें कचनारकी छाल बबूलका छाल सालसाकी लकडी और सरफोंका ये मिलायकर काढा करे अथवा इसका भभकेमें अर्क निकाल लेवे तो यह खूनकी सब बीमारियोंको दूर करे, यदि इसमें सहत अथवा उन्नावका शरबत मिलाय लिया जावे तो परमोत्तम है यह हमारा अनुभव किया हुआ है।

पथ्यादिकाढा शिरोरोगादिकोंपर।

पथ्याक्षधात्रीभूनिंबनिशानिंबामृतायुतैः॥ कृतःक्काथः षडंगोऽयं सगुडः शीर्षशूलहा ॥१३९॥ भ्रूशंखकर्णशूलौचतथार्धशिरसोरुजम् ॥ सूर्यावर्तंशंखकंचदंतघातंचतद्रुजम् ॥ १४०॥ नक्तांध्यंपटलंशुक्रंचक्षुःपीडांव्यपोहति ॥

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ चिरायता, ५ हल्दी, ६ नीमकी छाल और ७ गिलोय इन सात औषधोंका काढा करके उसमें ~~गूगल~~ गुड मिलायके पीवे तो मस्तकशूल, भौंह, शंख (कनपटी) और कानसंबधी शूल, आधाशीशी, सूर्यावर्त्त (सूर्योदयसे दो पहरपर्यन्त जो शूल मस्तकमें बढती है वह है), शंखका शूल, दाँतोंके हिलनेसे जो पीडा होती है वह, साधारण दन्तशूल, रतौंध, नेत्रोंके पटलगत रोग होते हैं वे सब नेत्रका फूला तथा नेत्रोंका दुखना इन सब उपद्रवसहित रोगोंको यह पथ्यादि काढा दूर करताहै॥

वासादिकाढा नेत्ररोगपर।

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचंदनचित्रकैः ॥ १४१ ॥ भूनिंबनिंब-

---

१ कुडेकी जड लेना ऐसाभी किसी २ आचार्यका मत है।

कटुकापटोलत्रिफलांबुदैः ॥ यवकालिंगकुटजैः क्वाथः सर्वाक्षिरोगहा ॥ १४२ ॥ वैस्वर्यपीनसंश्वासंनाशयेदुरसः क्षतम् ॥

अर्थ—१ अड्सा, २ सोंठ, ३ गिलोय, ४ दारुहल्दी, ५ लालचंदन, ६ चीतेकी छाल, ७ चिरायता, ८ नीमकी छाल, ९ कुटकी, १० पटोलपत्र, ११ हरड, १२ बहेडा, १३ आमला, १४ नागरमोथा, १५ जौ, १६ इन्द्रजौ और १७ कुडेकी छाल इन सत्रह औषधोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग, स्वरभंग, पीनसरोग, श्वास और उरःक्षत ये संपूर्ण रोग दूर होवैं ॥

दूसरा अमृतादिकाढा ।

अमृतात्रिफलाक्काथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ १४३ ॥
सक्षौद्रः शीलितोनित्यंसर्वनेत्रव्यथांजयेत् ॥

अर्थ--१ गिलोय, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आमला इन चार औषधोंका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग दूर होते हैं ॥

व्रणादिक प्रक्षालन करनेका काढा ।

अश्वत्थोदुंबरप्लक्षवटवेतसजं शृतम् ॥ १४४ ॥
व्रणशोथोपदंशानांनाशनंक्षालनात्स्मृतम् ॥

अर्थ--१ पीपल, २ गूलर, ३ पाखर, ४ बड और ५ वेत[१] इन पाँच औषधोंके छालके काढेसे व्रण, सूजन, गर्मीका रोग (जो लिंगमें होता है) तीन वार धोनेसे नष्ट होता है ॥

प्रमथ्यादिकषायभेद ।

प्रमथ्याप्रोच्यतेद्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात् ॥ १४५ ॥
तोयेष्टगुणितेतस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥

अर्थ--एक पल औषध लेकर उसको कूटपीसकर कल्क करे । यदि औषध सूखी हुई हो तो उसको भिगोकर कल्क करे । उसम अठगुना जल डालके औटावे । जब दो पल जल शेष रहे तब उतारले इसको प्रमथ्या कहते हैं । इसके सेवन करनेका प्रमाण दो पल है ॥

मुस्तादिप्रमथ्या रक्तातिसारपर ।

मुस्तकेंद्रयवैः सिद्धाप्रमथ्यापि पलोन्मिता ॥ १४६॥
सुशीतामधुसंयुक्तारक्तातिसारनाशिनी ॥

अर्थ--१ नागरमोथा और २ इन्द्रजौ इन दोनों औषधोंको १ पल ले कूट पीसके कल्क

---

[१] यदि वेत न मिले तो जलवेतस लेनी चाहिये ।

करै। उसमें आठगुना जल मिलायके २ पल शेष रहने पर्यंत औटावे। फिर उतार शीतल करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे ॥

यवागूका विधान।

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपले जले ॥ १४७ ॥
तत्क्वाथेनार्धशिष्टेन यवागूं साधयेद्घनाम् ॥

अर्थ—चार पल औषध लेकर कुछ थोडीसी कूटके उसमें ६४ चौसठ पल पानी मिलायके औटावे। जब आधा जल शेष रहे तब उतार ले। फिर उसको छानके दूसरे द्रव्य चावल आदि जो कहे हैं वे मिलायके फिर औटावे और जब गाढी होजावे तब उतार ले। इसे यवागू कहते हैं॥

आम्रादियवागू संग्रहणीपर।

आम्राम्रातकजंबूत्वक्कषाये विपचेद्बुधः ॥ १४८ ॥
यवागूंशालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत् ॥

अर्थ--१ आम, २ अंबाडा, ३ जामुन इन तीन वृक्षोंकी चार पल छालको जवकूट कर चौसठगुने पानीमें डालके औटावे। जब आधा पानी रह जावे तब उतारके इस जलको छानले। फिर उसमें चार पल चावल डालके फिर औटाव। जब औटाते २ गाढा होजावे तब उतार ले इसे आम्रादि यवागू कहते हैं इस यवागूके भोजन करनेसे संग्रहणी रोग दूर होवे॥

कल्कद्रव्यपलंशुंठीपिप्पलीचार्धकार्षिकी ॥ १४९ ॥
वारिप्रस्थेनाविपचेत्सद्रवोयूषउच्यते ॥

अर्थ--कल्ककी औषध सामान्यता करके १ पल लेय। तथा जिस प्रयोगमें सोंठ और पीपल हो उस जगह वह तीक्ष्ण होनेके कारण आधा, २ कर्ष लेवे अथवा दोनों मिलाकर अर्ध कर्ष लेवे फिर उनका कल्क करके उसमें जल एक प्रस्थ (सेरभर) डालके मिलाय लेवे। उसको चूल्हेपर रखके पेजके समान गाढी करे उसको यूष ऐसे कहते हैं॥

सप्तमुष्टिकयूष संनिपातादिकोंपर।

कुलित्थयवकोलैश्चमुद्गैर्मूलकशुण्ठिकैः ॥ १५० ॥

---

१ औषधोंका काढा करे जब आधा रहे तब उसको छानके उसमें चावल डालके यवागू करे। तथा दूसरे प्रकारकी यवागू जो कहेंगे उसमें चावल और दूसरे धान्य जो कहेंगे इनमें पानी छगुना डालके यवागू बनावे इतनाही भेद है।

२ मागध परिभाषाके मानसे पलके व्यावहारिक चार तोले जानने।

शुण्ठीधान्यकयुक्तैश्चयूषः श्लेष्मानिलापहः ॥
सप्तमुष्टिकइत्येषसन्निपातज्वरंजयेत् ॥ १५१ ॥
आमवातहरः कण्ठहृद्वक्त्राणांविशोधनः ॥

अर्थ-१ कुलथी, २ जौ, ३ बेर, ४ मूँग, ५ छोटी मूली, ६ सोंठ और ७ धनियां इन सात औषधोंको एक २ पल लेकर सोलहगुने पानीमें डालके गाढा होने पर्यंत औटावे। इसको सप्तमुष्टिक यूष कहते हैं। यह यूष पीनेसे कफ वायु संनिपात ज्वर और आमवात इनको दूर करे तथा कंठ हृदय मुख इनको शुद्ध करे॥

पानादिकल्पना।

क्षुण्णंद्रव्यं पलंसाध्यंचतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ॥ १५२ ॥
अर्धशिष्टंचतद्देयंपानेभक्तादिसंनिधौ ॥

अर्थ—एक पल औषध ले जवकूट कर उसको ६४ चौसठ पल जलमें डालके औटावे। जब औटते २ आधा पानी रहजावे तब उतारके कपडेसे छान ले। इसको जब २ प्यास लगे तब और भोजनके समय थोडा २ पीवे। वह प्रकार आगे लिखा जाताहै॥

उशीरादिपानक पिपासाज्वरपर।

उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचन्दनैः ॥ १५३ ॥
जलंशृतंहिमंपेयंपिपासाज्वरनाशनम् ॥

अर्थ--१ खस, २ पित्तपापडा, ३ नेत्रवाला, ४ नागरमोथा, ५ सोंठ और ६ रक्तचंदन इन छः औषधोंको मिलाय चार तोले लेवे। जवकूट करके उसको २५६ तोले जलमें डालके आधा पानी रहते पर्यंत औटावे फिर उसको उतारके छान लेवे। शीतल होनेपर जिस ज्वरमें प्यास अत्यंत लगती हो उसमें थोडा २ क्रमसे पीनेको देवे तो प्यास और ज्वर ये दूर होवें॥

गरमजलकी विधि ज्वरादिकोंपर।

अष्टमेनांशशेषेणचतुर्थेनार्धकेनवा ॥ १५४ ॥
अथवाक्वथनेनैवसिद्धमुष्णोदकंवदेत् ॥

अर्थ--पानीको औटायके आठवाँ हिस्सा चौथा हिस्सा अथवा अर्धावशेष रक्खे अथवा उत्तम रीतिसे खूब औटावे। इसको उष्णोदक (गरमजल) कहते हैं॥

रात्रिमें गरमजलकी विधि।

श्लेष्मामवातमेदोघ्नंवस्तिशोधनदीपनम् ॥ १५५ ॥

कासश्वासज्वरहरंपीतमुष्णोदकंनिशि ॥

अर्थ--रात्रिमें गरमजल पीनेसे कफ आमवात मेदरोग खाँसी श्वास और ज्वर नष्ट होवे तथा पेट शुद्ध होकर अग्नि प्रदीप्त होय ॥

दूधके पाककी विधि आमशूलपर ।

क्षीरमष्टगुणंद्रव्यात्क्षीरान्नीरंचतुर्गुणम् ॥ १५६ ॥
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवंजयेत् ॥

अर्थ–औषधोंका आठगुना गौका दूध लेवे और दूधसे चौगुना पानी ले सबको एकत्र करके दूध शेष रहनेपर्यंत औटावे फिर उस दूधको पीवे तो आमशूल दूर होवे ॥

पञ्चमूलीक्षीरपाक सर्वजीर्णज्वरोंपर ।

सर्वज्वराणांजीर्णानांक्षीरंभैषज्यमुत्तमम् ॥ १५७ ॥
श्वासात्कासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ॥
मुच्यतेज्वरितः पीत्वापञ्चमूलीशृतंपयः ॥ १५८ ॥

अर्थ--१ शालपर्णी, २ पृष्ठपर्णी, ३ छोटी कटेरी, ४ बडी कटेरी और ५ गोखरू इन पांच औषधोंकी जडको जवकूट कर आठगुने दूधमें और दूधसे चौगुने पानीमें डालके औटावे । जब औटते २ केवल दूधमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसके पीनेसे श्वास, खाँसी, मस्तक-शूल, पसवाडोंका शूल, पीनस और जीर्णज्वर ये दूर हों । यह दूध संपूर्ण जीर्णज्वरोंकी उत्तम औषधि है ॥

त्रिकण्टकादिक्षीरपाक ।

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीकुष्ठनागरसाधितम् ॥
वर्चोमूत्रविबंधघ्नंकफज्वरहरंपयः ॥ १५९ ॥

अर्थ–१ गोखरू, २ खरेंटी, ३ कटेरीकी जडका वक्कल, ४ कुष्ठ और ५ सोंठ इन पांच औषधोंको आठगुने दूध और दूधसे चौगुने पानीमें औटावे । जब दूधमात्र बाकी

---

१ " कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासवे । पित्तमद्यविशेषोत्थे तिक्तकैः शृतशीतलम् ॥ १ ॥ अर्थ–तिक्त कहिये १ नागरमोथा, २ पित्तपापडा, ३ नेत्रबाला, ४ चंदन, ५ खस और ६ सोंठ इन छः औषधोंको कूटके औटते हुए पानीमें डालके उतारले फिर शीतल करके इसे पित्त और मद्यसे प्रगट ज्वर प्यास कफज्वर वातज्वर और कफवातज्वर इनमें देवे ऐसाही ग्रंथान्तरमें पाठ है ।

२ औषध इस जगह अनुक्त हैं इस वास्ते १ सोंठ, २ भूयआँवला और ३ अंडके बीज इन औषधोंका आठगुना जल लेना चाहिये ।

रहे तब उतार ले इस दूधको पीनेसे मल और मूत्र ये उत्तम रीतिसे उतरें तथा कफज्वर दूर होवे ॥

अन्नस्वरूप यवागू ।

अथान्नप्रक्रियात्रैवप्रोच्यतेनातिविस्तरात् ॥ यवागूःषड्गुणजले
सिद्धास्यात्कृशराघना ॥ १६० ॥ तंदुलैर्माषमुद्गैश्चतिलैर्वासा-
धिताहिता ॥ यवागूर्ग्राहिणीबल्यातर्पिणीवातनाशिनी ॥१६१॥

अर्थ—अन्नप्रक्रिया कहिये अन्नस्वरूप यवागू विलेपी और पेया इनके तैयार करनेकी विधि संक्षेप करके कहता हूँ । चावल अथवा मूग किंवा उडद न होय तो तिल इनमेंसे जिस द्रव्यकी यवागू बनानी हो उसको लेकर उसमें उससे छःगुना पानी डालके जबतक गाढी न होवे तबतक औटावे उसको अन्नयवागू कहते हैं । उस यवागूके दो नाम हैं एक कृशरा और दूसरी घना । वह मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली, बल देनेवाली, शरीरको पुष्ट करनेवाली तथा वायुका नाश करनेवाली जाननी ॥

विलेपीके लक्षण और गुण ।

विलेपीचघनासिक्थासिद्धानीरेचतुर्गुणे ॥
बृंहणीतर्पणीहृद्यामधुरापित्तनाशिनी ॥ १६२ ॥

अर्थ—द्रव्यसे चौगुना पानी डालके औटावे । जब लहापसीके समान गाढी और लिपटनेवाली होजावे उसको विलेपी कहते हैं । यह धातुकी वृद्धि करनेवाली, शरीरपुष्टिकर्त्ता, हृदयको हितकारी, मधुर और पित्तका नाश करनेवाली है ॥

पेयालक्षण ।

द्रवाधिकास्वल्पसिक्थाचतुर्दशगुणेजले ॥
सिद्धापेयाबुधैर्ज्ञेयायूषः किंचिद्घनः स्मृतः ॥ १६३ ॥
पेयालघुतराज्ञेयाग्राहिणी धातुपुष्टिदा ॥
यूषोबल्यस्ततः कंठ्योलघूपायःकफापहः ॥ १६४ ॥

अर्थ—द्रव्यसे चौदहगुने पानीमें डालके पतली पेजके समान और कुछ लहसदार होने पर्यन्त औटानेसे उसको पेया कहते हैं । पेयाकी अपेक्षा कुछ गाढीको यूष कहते हैं । वह पेया बहुत हलकी होकर मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली और धातु पुष्ट करनेवाली है और यूष बलको देनेवाली, कंठको हितकारी, हलकी तथा कफको दूर करनेवाली जानना ॥

भात करनेका प्रकार ।

जलेचतुर्दशगुणेतन्दुलानांचतुःपलम् ॥

विपचेत्स्रावयेन्मंडं स भक्तो मधुरोलघुः ॥ १६५ ॥

अर्थ—चार पल बीने फटके बारीक चावलोंको चौदहगुने जलमें डालके औटावे जब सीज जावे तब मांड निकाल ले यह चावलोंका भात मधुर तथा हलका होता है ॥

शुद्धमंड ।

नीरेचतुर्दशगुणेसिद्धोमंडस्त्वासिक्थकः ॥
शुंठीसैंधवसंयुक्तः पाचनो दीपनःपरः ॥ १६६ ॥

अर्थ—शुद्ध चावलोंको चौदहगुने पानीमें डालके औटावे । जब चावल सीजजावें तब मांड निकाल लेवे । इस मांडको शुद्धमंड कहते हैं । इसमें सोंठ और सेंधानमक मिलायके पीवे तो अन्नका पचन और अग्निका दीपन होवे ॥

अष्टगुणमण्ड ।

धान्यत्रिकटुसिंधूत्थमुद्गतंदुलयोजितः ॥
भृष्टश्चहिंगुतैलाभ्यांसमंडोऽष्टगुणःस्मृतः ॥ १६७ ॥
दीपनः प्राणदोवस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ॥
ज्वरजित्सर्वदोषघ्नोमंडोऽष्टगुणउच्यते ॥ १६८ ॥

अर्थ—१ धनिया, २ सोंठ, ३ मिरच, ४ पीपल, ५ सेंधानमक, ६ मूंग, ७ चावल, ८ हींग और ९ तेल इन नौ औषधोंमेंसे प्रथम तेलमें हींग मिलायके उसमें मूंग एक पल तथा चावल दो पल लेकर दोनोंको भूने । फिर दूसरी औषध रही हुई वह थोडी २ खारी और चरपरी न होवे इस प्रकार मूंग चावलोंमें मिलायके चौदहगुने पानीमें डालके औटावे । जब सीज जावे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । इसको पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होकर प्राणोंमें तेज आता है तथा बस्तिका शोधन होकर रुधिरकी वृद्धि होती है, ज्वर और वातादि तीन दोष दूर होवें । इसको अष्टगुण मण्ड कहते हैं ॥

वाट्यमंड कफपित्तादिरोगोंपर ।

सुकंडितैस्तथाभृष्टैर्वाट्यमंडोयवैर्भवेत् ॥
कफपित्तहरः कंठ्योरक्तपित्तप्रसादनः ॥ १६९ ॥

अर्थ—उत्तम जवोंको उत्तम रीतिसे कूट फटककर भूने फिर बीन फटककर उनमें चौदह गुना पानी चढायके सिजावे फिर उस पानीको छानके सेवन करे इसको वाट्यमण्ड कहते हैं। यह मण्ड पीवे तो कफ पित्तका प्रकोप दूर होवे, कण्ठको हितकारक होय है तथा रक्तपित्तका प्रकोप दूर होय है ॥

१—१ क्षुधानाशक, २ मूत्रवस्तिशोधक, ३ बलवर्द्धक, ४ रक्तवर्द्धक, ५ ज्वरनाशक, ६ कफनाशक, ७ पित्तनाशक तथा ८ वायुनाशक ऐसे इसमें आठ गुण जानने ।

लाजामण्ड कफपित्तज्वरादिकोंपर ।

लाजैर्वातण्डुलैर्भृष्टैर्लाजमण्डःप्रकीर्तितः ॥
श्लेष्मपित्तहरोग्राहीपिपासाज्वरजिन्मतः ॥ १७० ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने
क्वाथादिकल्पनानामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ–धानकी भुनी खील अथवा चावलोंको भूनके उसमें चौदहगुना पानी डालके औटावे फिर उसको पसायके मांड निकाल लेवे इसे लाजमंड कहते हैं । यह मंड पीवे तो कफपित्तका प्रकोप दूर होकर संग्रहणी और अतिसार इनका स्तंभन होय, तथा जिस ज्वरमें प्यास अधिक लगे सो दूर होय ॥

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मितमाथुरीभाषाटीकायांचिकित्सास्थाने
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

क्षुण्णेद्रव्यपलेसम्यग्जलमुष्णंविनिक्षिपेत् ॥
मृत्पात्रेकुडवोन्मानंततस्तुस्रावयेत्पटात् ॥ १ ॥
सस्याच्चूर्णद्रवःफांटस्तन्मानंद्विपलोन्मितम् ॥
मधुश्वेतागुडादींश्चक्वाथवत्तत्रनिक्षिपेत् ॥ २ ॥

अर्थ–एक पल औषधोंको लेकर अच्छी रीतिसे कूट एक कुडव[1] प्रमाण जलको किसी पात्रमें भरके जब अच्छी तरह गरम होजावे तब पूर्वोक्त कूटी हुई औषधोंको डालके खूब औटावे । फिर उस पानीको कपडेसे छान लेवे । इसको फांट तथा चूर्णद्रव कहते हैं । इस फांटके पीनेका प्रमाण दो पल है । तथा उस फांटमें सहत, मिश्री, खाँड, गुड आदिशब्दसे अन्य पदार्थ.डालना होय तो जिस प्रकार काढेमें सहत मिश्री आदिका डालना लिखा है उसी प्रमाण इस जगह फांटमें डालना चाहिये ॥

मधूकादिफांट वातपित्तज्वरपर ।

मधूकपुष्पंमधुकंचंदनंसपरूषकम् ॥
मृणालंकमलंलोध्रंगम्भारींनागकेशरम् ॥ ३ ॥
त्रिफलांसारिवांद्राक्षांलाजान्कोष्णेजलेक्षिपेत् ॥

---

[1] कुडवके व्यावहारिक १६ सोलह तोले होते हैं ।

सितामधुयुतोपेयःफांटोन्नासौहिमोऽथवा ॥ ४ ॥
वातपित्तज्वरंदाहंतृष्णामूर्च्छारतिभ्रमान् ॥
रक्तपित्तंमदंहन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥ ५ ॥

अर्थ–१ महुआके फूल, २ मुलहटी, ३ लाल चन्दन, ४ फालसे, ५ कमलकी डंडी, ६ कमल, ७ लोध, ८ कंभारी, ९ नागकेशर, १० त्रिफला, ११ सारिवा, १२ मुनकादाख और १३ धानकी खील। इन तेरह औषधोंको कूटकर इसमेंसे १ पल लेवे। फिर चार पल पानीको चूल्हेपर चढायके खूब गरम करे जब जल खदबदाने लगे तब उक्त कूटी हुई १ पल औषधोंको इसमें गेर देवे। जब खूब औटावे तब उस पानीको उतारके छान लेवे। इसको मधुकादि फांट कहते हैं। यह फांट खांड और सहत मिलायके पीवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, अरति, भ्रम, रक्तपित्त और मदरोग ये दूर होवें इसमें सन्देह नहीं है। तथा ये तेरह औषध रात्रिमें पानीमें भिगोदेवे। प्रातःकाल उस पानीको छानके सेवन करे इसको हिमविधि कहते हैं। इस हिमके पीनेसे यह भी फांटके समान गुण करता है॥

आम्रादिफांट पिपासादिकोंपर।

आम्रजम्बूकिसलयैर्वटशुङ्गप्ररोहकैः ॥
उशीरेणकृतःफांटःसक्षौद्रोज्वरनाशनः ॥ ६ ॥
पिपासाच्छर्द्यतीसारान्मूर्छांजयतिदुस्तराम् ॥

अर्थ–१ आम और २ जामुन इनके कोमल पत्ते और वडकी कलीके भीतरके पत्ते तथा उसके कोमल २ पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंका पूर्वरीतिसे फांट करके पीवे तो ज्वर, प्यास, वमन, अतीसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छाके रोग दूर हों॥

मधुकादिफांट पित्ततृष्णादिकोंपर।

मधूकपुष्पगम्भारीचन्दनोशीरधान्यकैः ॥ ७ ॥
द्राक्षयाचकृतःफांटःशीतःशर्करयायुतः ॥
तृष्णापित्तहरःप्रोक्तोदाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ–१ महुआके फूल, २ कंभारी, ३ लालचन्दन, ४ नेत्रवाला, ५ धनियां और ६ दाख इन छः औषधोंका फांट करके पीवे तो प्यास, पित्त, दाह, मूर्च्छा और भ्रम ये दूर हों॥

मन्थकल्पना।

मन्थोऽपिफांटभेदःस्यात्तेनचात्रैवकथ्यते ॥

अर्थ–मंथभी फांटका हा भेद है इसीसे उसको भी इसी जगह कहते हैं।

---

१ फालसे मेवामें प्रसिद्ध हैं।

मन्थकी विधि ।

जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं पिबेत् ॥ ९ ॥
मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक्तस्माच्चद्विपलं पिबेत् ॥

अर्थ–एक पल औषधको अच्छी रीतिसे कूटे । फिर चार पल शीतल पानीको मटकेमें भरके उसमें उस कूटी हुई औषधको डालके रईसे मंथन करे । जब अत्यन्त झाग उठे तब उसको छानले इसे मन्थ कहते हैं । इस मन्थके पीनेकी मात्रा दो पलकी है ॥

खर्जूरादिमन्थ सर्वमद्यविकारोंपर ।

खर्जूरदाडिमद्राक्षातित्तिडीकाम्लिकामलैः ॥ १० ॥
सपरूषैःकृतोमन्थः सर्वमद्यविकारनुत् ॥

अर्थ–१ खर्जूर, २ अनारदाने, ३ दाख, ४ तंतडीक, ५ इमली, ६ आमले और ७ फालसे इन सात औषधोंको कूटके एक पल लेवे । फिर चार पल शीतल जलको मटकेमें भरके उस कूटी हुई औषधको डालके रईसे खूब मथे । फिर उस पानीको नितारके छान लेय । इसको पीवे तो संपूर्ण मद्यविकार, सुपारीका मद, कोदोंधान्यका मद तथा आसवोंका मद ये सब मद दूर होयँ ॥

मसूरादिमन्थ वमनरोगपर ।

क्षौद्रयुक्तामसूराणांसक्तवोदाडिमांभसा ॥ ११ ॥
मथितावारयंत्याशुछर्दिंदोषत्रयोद्भवाम् ॥

अर्थ–सावत मसूरको भुनायके चून कराय ले । फिर पकेहुए अनारदानेका पानी करके उसमें उस मसूरके चूनको मिलायके पीवे तो वातपित्तसे उत्पन्न हुई जो वमन वह दूर हो ॥

यवोंका मन्थ तृष्णादिकोंपर ।

प्लावितैःशीतनीरेणसघृतैर्यवसक्तुभिः ॥ १२ ॥
मथितावारयंत्याशुच्छर्दिंदोषत्रयोद्भवाम् ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने
फांटादिकल्पनाध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥

अर्थ–सावत जवोंको भुनायके चून पिसवाय ले उसको शीतल जलमें इस प्रकार मिलावे जिसमें न बहुत पतला होवे न बहुत गाढा होवे । फिर मथके उसमें घी मिलायके पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त ये दूर हों ॥

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मितशार्ङ्गधरमाथुरीभाषाटीकायां
चिकित्सास्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

हिमकल्पना ।

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्नीरपलैःप्लुतम् ॥
निःशेषितं हिमःसस्यात्तथाशीतकषायकः ॥ १ ॥
तन्मानं फांटवज्ज्ञेयं सर्वत्रैषविनिश्चयः ॥

अर्थ—एक पल औषधको जवकुट कूटके फिर छः पल जलको किसी मटकेमें भरके उसमें उस कूटी हुई औषधको मिलायके रात्रिमें भिगो देवे । प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे। इसको हिम अथवा शीत काढा इस प्रकार कहते हैं । इसके पीनेका मान फांटके समान दो पल जानना ॥

आम्रादिहिम रक्तपित्तपर ।

आम्रं जम्बू च ककुभं चूर्णीकृत्यजलेक्षिपेत् ॥ २ ॥
हिमं तस्य पिबेत्प्रातःसक्षौद्रं रक्तपित्तजित् ॥

अर्थ–१ आमकी छाल, २ जामुनकी छाल और ३ कोहकी छाल इन तीन छालोंको एक पल प्रमाण लेकर चूर्ण करे । फिर छः पल पानी किसी मिट्टीके पात्रमें भरके पूर्वोक्त कुटी हुई छालोंके चूर्णको उसमें भिगो देवे, रात्रिभर भीगने दे प्रातःकाल उस पानीको छान सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त दूर होवे ॥

मरीचादिहिम तृष्णादिकोंपर ।

मरीचं मधुयष्टिं च काकोदुंबरपल्लवैः ॥
नीलोत्पलं हिमस्तज्जस्तृष्णाछर्दिनिवारणः ॥ ३ ॥

अर्थ–१ काली मिरच, २ मुलहटी, ३ कठूमरके पत्ते और ४ नीला कमल इन चार औषधोंको एक पल ले सबको जौकुट करे । फिर छः पल पानीको एक पात्रमें भरके उसमें पूर्वोक्त औषधोंको भिगोय देवे । प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे तो प्यास और वमन इनको दूर करे॥

नीलोत्पलादिहिम वातपित्तज्वरपर ।

नीलोत्पलं बलाद्राक्षा मधूकं मधुकं तथा ॥ ४ ॥
उशीरं पद्मकं चैव काश्मरीं च परूषकम् ॥
एतच्छीतकषायश्च वातपित्तज्वराञ्जयेत् ॥ ५ ॥
स प्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः ॥

अर्थ--१ नीला कमल, २ खरेटीकी छाल, ३ दाख, ४ महुआ, ५ मुलहटी, ६ नेत्रवाला,

७ पद्माख, ८ कंभारी और ९ फालसे इन नौ औषधोंका पूर्व विधिसे हिम बनायके पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्च्छा और प्यास ये रोग दूर होंवे ॥

अमृतादिहिम जीर्णज्वरपर ।

अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहरः स्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त विधिसे गिलोयका हिम करके पीवे तो जीर्णज्वर दूर होवे ॥

वासाहिम रक्तपित्तज्वरपर ।

वासायाश्च हिमः कासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥

अर्थ–अडूसेका हिम करके पीवे तो खांसी और रक्तपित्तज्वर ये दूर हों ॥

धान्यादिहिम अन्तर्दाहपर ।

प्रातःसशर्करःपेयो हिमो धान्याकसंभवः ॥ ७ ॥
अन्तर्दाहं तथा तृष्णां जयेत्स्रोतोविशोधनः ॥

अर्थ–रात्रिको पानीमें धनियेको भिगोय देवे । प्रातःकाल उस पानीको खांड मिलायके पीवे तो शरीरके भीतरका दाह और प्यास ये दूर हों तथा मूत्रादि मार्गोंका शोधन होय ॥

धान्यादिहिम रक्तपित्तादिकोंपर ।

धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः ॥
रक्तपित्तज्वरं दाहं तृष्णां शोथं च नाशयेत् ॥ ८ ॥
इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने
हिमकल्पनाध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

अर्थ–१ धनियाँ, २ आंवले, ३ अडूसा, ४ दाख और ५ पित्तपापडा इन पांचोंका हिम करके पीवे तो रक्तपित्तज्वर, दाह, प्यास और शोष इनको दूर करे ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

कल्ककी कल्पना ।

द्रव्यमार्द्रंशिलापिष्टं शुष्कं वासजलं भवेत् ॥
प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसंमितम् ॥ १ ॥
कल्के मधुघृतं तैलं देयंद्विगुणमात्रया ॥
सितागुडौ समौ दद्याद्द्रवादेयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥

अर्थ-गीली औषधको चटनीकी समान बारीक पीसे । यदि सूखी औषध होय तो उसमें पानी डालके पीसनी चाहिये इसको कल्क कहते हैं । इसके सेवन करनेकी मात्रा १ कर्ष, अर्थात् एक तोला कही है, तथा उसके दो नाम हैं एक प्रक्षेप और दूसरा आवाप । यदि कल्कमें सहत घी और तैल डालने हों तो कल्कसे दुगुने डाले, खाँड गुड ये पदार्थ डालने हों तो कल्कके समान डाले । दूध पानी आदिशब्दसे पतले पदार्थ डालने हों तो कल्कसे चौगुने डालने चाहिये॥

वर्धमानपिप्पली पांडुरोगादिकोंपर ।

त्रिवृद्ध्यापंचवृद्ध्यावासप्तवृद्ध्याथवाकणाः ॥
पिबेत्पिष्ट्वादशदिनंतास्तथैवापकर्षयेत् ॥ ३ ॥
एवंविंशद्दिनैः सिद्धं पिप्पलीवर्द्धमानकम् ॥
अनेनपांडुवातास्रकासश्वासारुचिज्वराः ॥ ४ ॥
उदरार्शःक्षयश्लेष्मवातानश्यंत्युरोग्रहाः ॥

अर्थ-आज तीन, कल्ह छः, परसों नौ इस प्रकार वृद्धि करके अथवा पांचसे वा सातसे वृद्धि करके पीपर बारीक कल्क करे । उस कल्कमें कल्कसे चौगुना दूध अथवा पानी मिलाय दश दिनपर्यंत पीवे । फिर जिस क्रमसे बढाई हो उसी क्रमसे दश दिनमें घटाय लावे । इस प्रकार बीस दिन पीपल पीवे तो पांडुरोग, वातरक्त, खाँसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, बवासीर, क्षय, कफ, वायु और उरोग्रह ये रोग दूर होवे । इस औषधको वर्धमानपीपल कहते हैं । मथुराआदिके प्रान्तोंमें उस पीपलको विषमज्वरमें दूधमें औटाकर देते हैं॥

निंबकल्क व्रणादिकोंपर ।

लेपान्निंबदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः ॥ ५ ॥
भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मकृमीञ्जयेत् ॥

अर्थ-नीमके पत्तोंको पानीसे बारीक पीस कल्क करे । उस कल्कका लेप व्रण (घाव) पर करनेसे तथा इसकी टिकिया बाँधनेसे उस व्रणका शोधन होकर घाव भर जाता है तथा इस कल्कको खानेसे वमन, कुष्ठ और पित्त कफकी बीमारीसम्बन्धी कृमिरोग दूर हो ॥

महानिम्बकल्क गृध्रसीपर ।

महानिंबजटाकल्को गृध्रसीनाशनः स्मृतः ॥ ६ ॥

---

१ दूध अथवा पानीमें पीपल पीसके कल्क करे उसमें दूध अथवा पानी डालनेका हो वह दो तीन दिन चार २ तोले मिलावे फिर कल्कसे चौगुना मिलावे परंतु वैद्यकी संप्रदाय दूध मिलानेकी है । इस मथुरा आगरेके वैद्य पीपलोंको क्रमसे बढाय आधा दूध और आधा पानी डालके औटाते हैं, जब जल मात्र जरजावे तब उस दूधमेंही उन पीपलोंको पीसके देते हैं, कोई पीपलोंको निकालके फेंक देते हैं परतु फेंकनेसे कुछ गुण नहीं होता । यह विधि प्रायः विषमज्वर और मंदाग्निपर करते हैं

अर्थ–बकायनकी जडको पानीसे पीस कल्क करके पीवे तो गृध्रसी वायु जो बादीके रोगोंमें कही है वह दूर होवे ॥

रसोनकल्क वायु और विषमज्वरपर ।

शुद्धकल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः ॥
वातरोगाञ्जयेत्तीव्रान्विषमज्वरनाशनः ॥ ७ ॥

अर्थ–लहसनका कल्क करके उसमें तिलका तेल मिलायके पीवे तो दारुण वायुका रोग और विषमज्वर दूर होवे ॥

दूसरा रसोनकल्क वातरोगपर ।

पक्वकंदरसोनस्य गुलिका निस्तुषाकृता ॥
पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदंकुरम् ॥ ८ ॥
तदुग्रगंधनाशाय रात्रौ तक्रे विनिक्षिपेत् ॥
अपनीय च तन्मध्याच्छिलायां पेषयेत्ततः ॥ ९ ॥
तन्मध्ये पंचमांशेन चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ॥
सौवर्चलं यमानीं च भर्जितं हिंगुसैंधवम् ॥ १० ॥
कटुत्रिकं जीरकं च समभागानि चूर्णयेत् ॥
एकीकृत्य ततः सर्वं कल्कं कर्षप्रमाणतः ॥ ११ ॥
खादेदग्निबलापेक्षी ऋतुदोषाद्यपेक्षया ॥
अनुपानं ततः कुर्यादेरंडशृतमन्वहम् ॥ १२ ॥
सर्वांगैकाङ्गजं वातमर्दितं चापतंत्रकम् ॥
अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तंभं च गृध्रसीम् ॥ १३ ॥
उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां कृमीञ्जयेत् ॥
अजीर्णमातपं रोषमतिनीरं पयोगुडम् ॥ १४ ॥
रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरंतरम् ॥
मद्यं मांसं तथाम्लं च रसं सेवेत नित्यशः ॥ १५ ॥

अर्थ–उत्तम इकपोती लहसनकी गांठोंको लाकर उनके ऊपरका छिलका उतारके दूर करे। फिर उस लहसनकी बास दूर करनेको रात्रिमें छाछमें भिगोकर रख छोडे । प्रातःकाल उनको निकाल शिल और लोढेसे बारीक पीसकर कल्क करे । फिर १ संचरनोन, २ अजमोद, ३ भुनी हुई हींग, ४ सैंधानमक, ५ सोंठ, ६ कालीमिरच, ७ पीपल और ८

जीरा इन आठ औषधोंके चूर्णको उस लहसनके कल्कका पांचवाँ हिस्सा लेकर मिलावे । सबको एकत्र कर अंडीके जडका काढा करके उस कल्कमें १ तोला मिलायके पीवे तथा अपनी शक्तिको विचारके और ऋतु कौन है उसका विचार करके जैसा आपको हित होवे उसी प्रकार सेवन करे तो सर्वांगवात, एकांगवात, मुखका टेढा होना ऐसा अर्दित वायु, धनुर्वात, मृगी, उन्माद, ऊरुस्तंभ, वायु, गृध्रसीवायु, उर, पीठ, कमर तथा पसवाडा इन सबका शूल और कृमिरोग इनको दूर करे । लहसनका खानेवाला अजीर्णकारी पदार्थ, धूपमें रहना, क्रोध करना, अत्यंत जल पीना, दूध, गुड इन सब पदार्थोंको सर्वथा त्याग देवे । तथा मद्यपान मांसभक्षण, खटाईवाले पदार्थ इनको सदैव सेवन करा करे ये पथ्य हैं ॥

पिप्पल्यादिकल्क ऊरुस्तंभादिकोंपर ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च ॥
एतत्कल्कश्चसक्षौद्र ऊरुस्तंभनिवारणः ॥ १६ ॥

अर्थ–१ पीपर, २ पीपरामूल, ३ भिलावेंके फल इन तीन औषधोंको पानीमें पीस कल्क करके उसमें सहत मिलायके सेवन करनेसे ऊरुस्तंभ वायु दूर हो ॥

विष्णुक्रान्ताकल्क परिणामशूलपर ।

विष्णुक्रांताजटाकल्कः सिताक्षौद्रघृतैर्युतः ॥
परिणामभवं शूलं नाशयेत्सप्तभिर्दिनैः ॥ १७ ॥

अर्थ--विष्णुक्रांता (कोयल) की जडका कल्क करके उसमें खाँड और सहत तथा घी मिलायके सेवन करे तो परिणामशूल दूर होवे । यह सात दिन रहता है ॥

दूसरा शुंठीकल्क ।

शुंठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् ॥
परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ–१ सोंठ, २ तिल समान ले दोनोंकी बराबर गुड लेवे इन तीन औषधोंका कल्क करके गौके चौगुने दूधमें मिलायके सेवन करे तो परिणामशूल तथा आमवात ये दूर होवें । अन्नके पचनेके समय जो शूल होता है उसको परिणामशूल कहते हैं ॥

अपामार्गकल्क रक्तार्शपर ।

अपामार्गस्यबीजानां कल्कस्तंडुलवारिणा ॥
पीतो रक्तार्शसांनाशं कुरुते नात्रसंशयः ॥ १९ ॥

अर्थ--ओंगा (चिरचिरा) के बीजोंका कल्क करके चावलोंके धोवनके पानीसे पीवे तो खूनी बवासीर दूर होय ॥

---

१ चावलके धोवनमें पीसे अथवा कल्कका चौगुना चावलोंका धोवन लेवे ।

बदरीमूलकल्क रक्तातिसारपर ।

बदरीमूलकल्केन तिलकल्कश्चयोजितः ॥
मधुक्षीरयुतःकुर्याद्रक्तातिसारनाशनम् ॥ २० ॥

अर्थ–झरबेरीकी जड और तिल इनके कल्क पृथक् २ तैयार करके दोनोंको मिलाय उसमें सहत मिलाय गौके दूधमें अथवा बकरीके दूधमें मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे ॥

लाक्षाकल्क रक्तक्षयादिकोंपर ।

कूष्मांडकरसोपेतां लाक्षां कर्षद्वयं पिबेत् ॥
रक्तक्षयमुरोघातं क्षयरोगं च नाशयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–बेरकी अथवा पीपरकी लाख दो तोलेका बारीक चूर्ण कर चौगुना पेठेका रस मिलायके पीवे तो रक्तक्षय तथा जिस रोगसे छाती दुखे वह और क्षयरोग दूर होय ॥

तंदुलीयकल्क रक्तप्रदरपर ।

तंदुलीयजटाकल्कः सक्षौद्रः सरसांजनः ॥
तंदुलोदकसंपीतोरक्तप्रदरनाशनः ॥ २२ ॥

अर्थ–चौलाईकी जडको पीस कल्क करके उसमें सहत और रसोत मिलाय चावलोंके धोवनसे पीवे तो स्त्रियोंका रक्तप्रदर नष्ट होवे (इस रोगमें स्त्रीकी योनिसे लाल २ पानी गिरा करता है) ॥

अंकोलकल्क अतिसारपर ।

अंकोलमूलकल्कश्च सक्षौद्रस्तंदुलांबुना ॥
अतिसारहरः प्रोक्तस्तथाविषहरः स्मृतः ॥ २३ ॥

अर्थ--अंकोल वृक्षकी जडको कूट पीस कल्क करे, उसमें सहत मिलायके चावलोंके धोवनके जलसे पीवे तो अतिसार दूर होय । तथा सिंगिया विषादिका विष और सर्पादिकोंका विष ये भी दूर हों ॥

कर्कोटिकाकल्क विषोंपर ।

वंध्याकर्कोटिकामूलं पाटलाया जटा तथा ॥
घृतेनबिल्वमूलं वा द्विविधं नाशयेद्विषम् ॥ २४ ॥

अर्थ--१बाँझककोडाकी जड, २ पाढ पाटलाकी जड, ३ बेलकी जड इन तीन जडोंमेंसे जो मिले उस जडको कूट पीस कल्क करके घीमें मिलायके पीवे तो बच्छनागादिक विष तथा सर्पादिकोंका विष दूर होवे ॥

---

१ कल्ककी अपेक्षा धोवन चौगुना लेवे, इस प्रकारका पानी दूध इत्यादिक सर्वत्र चौगुने लेने ।

अभयादिकल्क दीपनपाचनपर ।

अभयासैंधवकणाशुंठीकल्कस्त्रिदोषहा ॥
पथ्यासैंधवशुंठीभिः कल्कोदीपनपाचनः ॥ २५ ॥

अर्थ--१ जंगीहरड, २ सेंधानमक, ३ पीपल और ४ सोंठ इन चार औषधोंके चूर्णको पानीमें पीसके कल्क करे । इस कल्कके पीनेसे वात, पित्त, कफ इनका प्रकोप दूर होय। उसी प्रकार १ छोटी हरड, २ सेंधानमक और ३ सोंठ इन तीन औषधोंका कल्क करके पीवे तो अन्नका पचन होय तथा अग्नि प्रदीप्त होवे ॥

त्रिवृतादिकल्क कृमिरोगपर ।

त्रिवृत्पलाशबीजानि पारसीययवानिका ॥
कंपिल्लकं विडंगं च गुडश्च समभागकः ॥ २६ ॥
तक्रेण कल्कमेतेषां पिबेत्कृमिगणापहम् ॥

अर्थ--१ निसोथ, २ पलास (ढाक) के बीज, ३ किरमानी अजमायन, ४ कवीलो[1] और ५ वायविडंग इन पांच औषधोंका चूर्ण कर उसके समान गुड मिलायके सबको मिलायके कल्क करे । इसको छाछमें मिलायके पीवे तो कृमिरोग दूर होय । ग्रन्थान्तरमें इस प्रकार है कि किरमानी अजमायनको प्रातःकाल शीतल जलसे पीवे तो कृमिविकार दूर होय ॥

नवनीतकल्क रक्तातिसारपर ।

नवनीततिलैः कल्कोजेतारक्तार्शसांस्मृतः ॥ २७ ॥
नवनीतसितानागकेशरैश्चापितद्विधः ॥

अर्थ--तिलोंको पीस उसका मक्खनमें कल्क[1] करके सेवन करे । अथवा नागकेशरको पीस मक्खन और मिश्रीमें कल्क करके पीवे तो खूनी बवासीरके कारण जो रुधिर निकला को वह बन्द हो जावे ॥

मसूरकल्क संग्रहणीपर ।

पीतोमसूरयूषेण कल्कः शुंठीशलाटुजः ॥
जयेत्संग्रहणींतद्वत्तक्रेणबृहतीभवः ॥ २८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणाविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने
कल्ककल्पनाध्यायः पंचमः ॥ ५ ॥

---

[1] कवीला लालवर्णका मिट्टीकासा चूर्ण होता है ।

[1] कल्क एक भाग लेके दुगुनी लोनीमें मिलायके सेवन करे ।

अर्थ–१ सोंठ और २ छोटे कच्चे बेलका फल इन दोनों औषधोंका कल्क करे फिर मसूरका यूष जो प्रथम कह आये हैं उस प्रकार बनाय उसमें इस कल्कको मिलायके पीवे। इसी प्रकारका कटेरीके फलका कल्क करके छाल मिलायके पीवे तो संग्रहणीका रोग दूर होवे॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायां पञ्चमोध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ६।

चूर्णकी कल्पना।

अत्यन्तशुष्कंयद्द्रव्यंसुपिष्टंवस्त्रगालितम्॥
तत्स्याच्चूर्णरजः क्षोदस्तन्मात्राकर्षसंमिता॥ १॥
चूर्णेगुडः समोदेयः शर्कराद्विगुणाभवेत्॥
चूर्णेषुभार्जितंहिंगुदेयंनोत्क्लेदकृद्भवेत्॥ २॥
लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः॥
पिबेच्चतुर्गुणैरेवंचूर्णमालोडितंद्रवैः॥ ३॥
चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम्॥
पित्तवातकफातंकेत्रिद्व्येकपलमाहरेत्॥ ४॥
यथातैलंजलेक्षिप्तंक्षणेनैवप्रसर्पति॥
अनुपानबलादंगेतथासर्पतिभेषजम्॥ ५॥
द्रवेणयावतासम्यक्चूर्णंसर्वंप्लुतंभवेत्॥
भावनायाः प्रमाणंतुचूर्णेप्रोक्तंभिषग्वरैः॥ ६॥

अर्थ--अत्यन्त सूखी औषधको कूट पीस कपडछान करे उसको चूर्ण कहते हैं। उस चूर्णके दो नाम हैं एक रज, दूसरा क्षोद। इस चूर्णके भक्षणकी मात्रा एक कर्ष अर्थात् तोलेभरकी है। यदि चूर्णमें गुड मिलाना होय तो चूर्णकी बराबर डालना चाहिये, यदि हींग डालनी होय तो घीमें भूनके हींग डाले तो विकलता नहीं करे। घी और सहत आदि चिकने पदार्थके साथ चूर्ण लेना होय तो वे पदार्थ चूणसे दुगुने लेवे। तथा दूध, गोमूत्र, पानी और अन्य पतली वस्तु चूर्णमें डालनी होय तो चूर्णसे चौगुनी लेकर उसमें चूर्ण मिलायके पीवे। चूर्ण, अवलेह, गुटिका और कल्क इनके जो अनुपान कहे हैं वे यदि पित्तरोग होय तो तीन पल लेवे। वातरोग होय तो दो पलके अनुमान लेवे। और कफके रोगमें एक पल लेवे तो औषधि उत्तमताके साथ

देहमें फैल जाती है । इस विषयमें दृष्टांत देते हैं कि जैसे जलमें तेलकी बूँद डालनेसे फैल जाती है उसी प्रकार अनुपानके बलसे देहमें औषध फैलजाती है । तथा चूर्णमें नींबूके रसके अथवा दूसरी वनस्पतिके रसका पुट देना होवे तो चूर्ण रसमें बूड जाय तबतक पुट देवे । इस प्रकार सब चूर्णोंके बनानेकी विधि जाननी ॥

आमलक्यादिचूर्ण सर्वज्वरोंपर ।

आमलं चित्रकः पथ्या पिप्पली सैन्धवं तथा ॥
चूर्णितोऽयं गणोज्ञेयः सर्वज्वरविनाशनः ॥ ७ ॥
भेदीरुचिकरः श्लेष्मा जेतादीपनपाचनः ॥

अर्थ–१ आमले, २ चीतेकी छाल, ३ जंगी हरड, ४ पीपल और ५ सैंधानमक येपांच वस्तु समान भाग लेकर चूर्ण करके सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर हों । यह दस्तावर है, रुचि प्रकटकर्त्ता है, तथा कफको दूर करे, अग्नि प्रदीप्त हो और अन्नका पाचन होवे ॥

पिप्पलीचूर्ण ज्वरपर ।

मधुना पिप्पलीचूर्णं लिहेत्कासज्वरापहम् ॥ ८ ॥
हिक्काश्वासहरं कंठ्यं प्लीहघ्नं बालकोचितम् ॥

अर्थ–एक मासे पीपलके चूर्णको सहतमें मिलायके चाटे तो खाँसी, ज्वर, हिचकी, प्यास ये दूर हों । यह चूर्ण कंठको हितकारी है, प्लीह रोगको दूर करे तथा बालकोंको उपयोगी पडता है॥

त्रिफलादिचूर्ण ज्वरपर ।

एकाहरीतकीयोज्या द्वौचयोज्यौ बिभीतकौ ॥ ९ ॥
चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषाप्रकीर्तिता ॥
त्रिफलामोहशोथघ्नी नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ १० ॥
दीपनी श्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहंत्री रसायनी ॥
सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सेवनेत्रामयाञ्जयेत् ११ ॥

अर्थ–हेरड एक, बहेडे दो, आमले चार इन तीन औषधोंका चूर्ण करे । इसे त्रिफला कहते हैं । इस त्रिफलाचूर्णके सेवन करनेसे प्रमेह, सूजन, विषमज्वर, कफ, पित्त और कु

---

१ तात्पर्य यह है कि उत्तम मोटी हरड दो कर्षकी होती है, बहेडा एक कर्षका होता है और आमला अर्धकर्षका तोलमें होता है इसीसे एक हरड दो बहेडे चार आमले लेनेसे समभाग हो जाता है । यह मत बहुवैद्यसंमत है । कोई एक भाग हरड दो भाग बहेडा चार भाग आँवले [illegible] है।

ये दूर हों अग्नि प्रदीप्त हो । यह त्रिफला रसायन[1] है । घी और सहत ये दोनों विषम[2] भाग ले एकत्र उसमें इस त्रिफलेके चूर्णको मिलाय सेवन करे तो संपूर्ण नेत्रके विकार दूर हों ॥

त्र्यूषणचूर्ण कफादिकोंपर ।

पिप्पली मरिचं शुंठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते ॥
दीपनं श्लेष्ममेदोघ्नं कुष्ठपीनसनाशनम् ॥ १२ ॥
जयेदरोचकंसामंमेहगुल्मगलामयान् ॥

अर्थ--१ पीपल, २ काली मिरच और ३ सोंठ इन तीन औषधोंको त्र्यूषण ऐसा कहते हैं । इसका चूर्ण करके सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त हो, कफ, मेद, कुष्ठ, पीनस, अरुचि, आमदोष, प्रमेह, गोला और कंठरोग ये दूर हों ॥

पंचकोलचूर्ण अरुच्यादिकोंपर ।

पिप्पलीचव्यविश्वाह्वपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ १३ ॥
पंचकोलमितिख्यातं रुच्यं पाचनदीपनम् ॥
आनाहप्लीहगुल्मघ्नं शूलश्लेष्मोदरापहम् ॥ १४ ॥

अर्थ--१ पीपल, २ चव्य, ३ सोंठ, ४ पीपरामूल और ५ चीतेकी छाल इन पांच औषधोंको पंचकोल कहते हैं । इस पंचकोलका चूर्ण करके सेवन करे तो यह पाचन और दीपन है । इससे अफरा, प्लीहा, गोलेका रोग, शूल और कफोदर ये दूर होयँ ॥

त्रिगंध तथा चतुर्जातचूर्ण ।

त्रिगंधमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातंसकेशरम् ॥
त्रिगंधं सचतुर्जातं रूक्षोष्णं लघुपित्तकृत् ॥ १५ ॥
वर्ण्यं रुचिकरंतीक्ष्णं पित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥

अर्थ--छोटी इलायची, दालचीनी और पत्रज इन तीन औषधोंको त्रिगंध कहते हैं । इसमें चौथी केशर मिलावे तो इसीको चतुर्जात कहते हैं । तहां त्रिगंध और चतुर्जात इनका चूर्ण वीर्य करके रूक्ष, गरम, पाककालमें हलका, पित्तको बढानेवाला, कांतिका दाता, रुचिकारी, तीक्ष्ण और पित्तकफसंबंधी रोगोको दूर करनेवाला है ॥

---

[1] जो देहको वृद्धावस्था और रोगोंका नाश करे उसको रसायन कहते हैं ।

[2] घी और सहत समान लेनेसे विष होजाता है वह देहमें अनेक विकार करता है । अतएव विषमभाग करके लेना चाहिये ।

कृष्णादिचूर्ण बालकोंके ज्वरातिसारपर ।

कृष्णारुणामुस्तकशृंगिकाणां तुल्येन चूर्णेन समाक्षिकेण ॥ १६॥
ज्वरातिसारःप्रशमंप्रयातिसश्वासकासःसवमिःशिशूनाम् ॥

अर्थ-१ पीपल, २ अतीस, ३ नागरमोथा आर ४ काकडासिंगी इन चार औषधोंके चूर्णको सहतमें मिलायके बालकको चटावे तो श्वास, खाँसी, वमन इन उपद्रवोंकरके युक्त ज्वरातिसार नष्ट होय ॥

जीवनीयगण तथा उसके गुण ।

काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा ॥ १७ ॥
मेदा चान्या महामेदा जीवन्ती मधुकंतथा ॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयोगणस्त्वयम् ॥ १८ ॥
जीवनीयोगणःस्वादुर्गर्भसंधानकृद्गुरुः ॥
स्तन्यकृद्बृंहणोवृष्यःस्निग्धः शीतस्तृषापहः ॥ १९ ॥
रक्तपित्तं क्षयं शोषं ज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ॥

अर्थ-१ काकोली, २ क्षीरकाकोली, ३ जीवक, ४ ऋषभक, ५ मेदा, ६ महामेदा, ७ जीवन्ती, ८ मुलहटी, ९ मुद्गपर्णी, १० माषपर्णी इन दश औषधोंके समुदायको जीवनीयगण कहते हैं। यह जीवनीयगण मधुर, गर्भस्थापक, भारी, स्तनोंमें दूध उत्पन्न करनेवाला, शरीरको पुष्ट करनेवाला, स्त्रीगमनमें हर्ष देनेवाला, स्निग्ध तथा शीतल होकर प्यास, रक्तपित्त, क्षय, शोष, ज्वर, दाह और वायु इनका नाश करे ॥

अष्टवर्ग तथा उनके गुण ।

द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ॥ २० ॥ ऋद्धिवृद्धी च तैःसर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः ॥ अष्टवर्गो बुधैःप्रोक्तो जीवनीयसमोगुणैः ॥ २१ ॥

अर्थ-१ मेदा, २ महामेदा, ३ काकोली, ४ क्षीरकाकोली, ५ जीवक, ६ ऋषभक, ७ ऋद्धि और ८ वृद्धि ये आठ औषधें समीप नहीं मिलतीं किन्तु कश्मीर काबुल आदि देशोंमें औ हिमालयपर्वतपर तलाश करनेसे मिलती हैं अतएव इनके अभावमें औषध कहते हैं-मेदा औ महामेदा इन दोनोंके अभावमें मुलहठी लेनी, काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनोंके अभाव असगंध लेनी, जीवक और ऋषभकके अभावमें विदारीकंद लेना और ऋद्धि तदा वृद्धि इ दोनोंके अभावमें वाराहीकन्द वैद्यको लेना चाहिये । इस अष्टवर्गकेभी गुण जीवनीयगणके समान जानने ॥

लवणपंचकचूर्ण तथा गुण ।

सिंधु सौवर्चलं चैव विडंसामुद्रिकंगडम् ॥
एकाद्वित्रिचतुःपंचलवणानिक्रमाद्विदुः ॥ २२ ॥
तेषुमुख्यंसैंधवंस्यादनुक्तेतच्चयोजयेत् ॥
सैंधवाद्यं रोमकांतं ज्ञेयं लवणपंचकम् ॥ २३ ॥
मधुरंसृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं मलापहम् ॥
वीर्योष्णंदीपनंतीक्ष्णंकफपित्तविवर्धनम् ॥ २४ ॥

अर्थ--१ सेंधानमक, २ संचरनमक, ३ विडनमक[1], ४ सामुद्रनमक[2] और ५ साम्हरनमक इन पांचोंमें पहिला एक लवण, पहिला और दूसरा इनको द्विलवण, पहला, दूसरा और तीसरा इनको त्रिलवण, पहला, दूसरा, तीसरा और चतुर्थ इनको चतुर्लवण, एवं पहला, दूसरा, तीसरा, चतुर्थ और पांचवां इनको पंचलवण कहते हैं। तथा इन पांचोंमें सैंधानमक उत्तम है । अतएव जिस जगह लवण डाले ऐसा बिना नामके कहा हो वहांपर सैंधानमक डालना चाहिये । यह लवणपंचक मधुर है । इससे मूत्र और मल अच्छी रीतिसे उतरते हैं। ये (पञ्चलवण) स्निग्ध और सूक्ष्म होकर बलहीन करते हैं। उष्ण वीर्यवाले होनेसे अग्नि प्रदीप्त करते हैं तथा तीक्ष्ण हैं अतएव कफ पित्तको बढाते हैं ॥

क्षार गुल्मादिकोंपर ।

स्वर्जिकायावशूकश्चक्षारयुग्ममुदाहृतम् ॥
ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ॥ २५ ॥
क्षाराश्चाऽन्येपिगुल्मार्शोग्रहणीरुक्छिदःसराः ॥
पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरिनाशनाः ॥ २६ ॥

अर्थ--१ सज्जीखार, २ जवाखार ये दोनों खार अग्निके समान पाचक हैं इस प्रकार जानना । तथा आक, इमली, ओंगा, थूहर, केला, अमलतास, मोखा इत्यादिक जो अन्य औषधोंके खार हैं वे गोला, बवासीर और संग्रहणी इनको दूर करते हैं। दस्तकारक होकर अग्निको दीप्त करते हैं तथा कृमिविकार, पुरुषत्व और शर्करापथरीको नष्ट करते हैं ॥

सुदर्शनचूर्ण सब ज्वरोंपर ।

त्रिफला रजनीयुग्मं कंटकारीयुगंसटी ॥ त्रिकटुग्रंथिकं मूर्वा गुडू-
ची धन्वयासकः ॥ २७ ॥ कटुका पर्पटोमुस्तं त्रायमाणा च वाल-

---

[1] प्रसारणीका कल्क करके नमकके साथ अग्निके संयोग करके जो होवे वह कृत्रिम विडनमक कहलाता है। [2] दक्षिण समुद्रके समीप उत्पन्न होनेवालेको सामुद्रनमक कहते हैं।

कम् ॥ निंबः पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम् ॥२८॥ यवानींद्रयवोभार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा ॥ वचात्वक्पद्मकोशीरचंदनातिविषाबलाः ॥ २९ ॥ शालिपर्णी पृष्ठपर्णी विडंगं तगरं तथा ॥ चित्रकोदेवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥ ३० ॥ जीवकर्षभकौ चैव लवंगं वंशरोचना ॥ पुंडरीकं च काकोलि पत्रकं जातिपत्रकम् ॥३१॥ तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् ॥ सर्वचूर्णस्य चार्धांशं किरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ ३२ ॥ एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् ॥ ज्वरांश्च निखिलान्हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥ पृथग्द्वंद्वागंतुजांश्च धातुस्थान्विषमज्वरान् ॥ सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपिनाशयेत् ॥ ३४ ॥ शीतज्वरैकाहिकादीन्मोहं तंद्रांभ्रमं तृषाम् ॥ श्वासं कासं च पांडुं च हृद्रोगं हंतिकामलाम् ॥ ३५ ॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम् ॥ शीतांबुनापिबेद्धीमान्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ३६ ॥ सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् ॥ तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदंचूर्णं विनाशनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ--१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ छोटी कटेरी, ७ बडी कटेरी, ८ कचूर, ९ सोंठ, १० मिरच, ११ पीपल, १२ पीपरामूल, १३ मूर्वा, १४ गिलोय, १५ धमासा, १६ कुटकी, १७ पित्तपापडा, १८ नागरमोथा, १९ त्रायमाण, २० नेत्रवाला, २१ नीमकी छाल, २२ पुहकरमूल, २३ मुलहटी, २४ कुडेकी छाल, २५ अजमायन, २६ इन्द्रजौ, २७ भारंगी, २८ सँहजनेके बीज, २९ फिटकरी, ३० वच, ३१ दालचीनी, ३२ पद्माख, ३३ चन्दन, ३४ अतीस, ३५ खरेंटी, ३६ शालपर्णी, ३७ पृष्ठपर्णी, ३८ वायविडंग, ३९ तगर, ४० चीतेकी छाल, ४१ देवदारु, ४२ चव्य, ४३ पटोलपत्र, ४४ जीवक, ४५ ऋषभक, ४६ लौंग, ४७ वंशलोचन, ४८ सफेद कमल, ४९ काकोली[2], ५० पत्रज, ५१ जावित्री तथा ५२ तालीसपत्र इन बावन औषधोंको समान भाग ले और सब औषधोंका आधा चिरायता मिलावे सबको कूटके दरदरा चूर्ण करे इसको सुदर्शन कहते हैं । इस चूर्णको शीतल जलसे सेवन करे तो वात पित्त कफ द्वन्द्व सन्नि-

---

[1] जीवक ऋषभक ये दोनों नहीं मिलते अतएव इनके प्रातिनिधिमें विदारीकन्द लेवे।

[2] काकोलीके अभावमें मुलहटी डालनी चाहिये ।

पात इनसे होनेवाले ज्वर, विषमज्वर आगंतुकज्वर वातुजन्यज्वर मानसज्वर इत्यादि संपूर्णज्वर, शीतज्वर एकाहिक आदि ज्वर, मोह तंद्रा श्रम तृषा श्वास खासी पांडुरोग हृदयरोग कामला, त्रिक पीठ कमल जानु पसवाडा इनका शूल ये सब दूर होवें । जैसे सुदर्शनचक्र दैत्योंका नाश करता है उसी प्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सब ज्वरोंका नाश करता है ॥

त्रिफलापिप्पलीचूर्ण श्वासखाँसीपर ।

कासश्वासज्वरहरा त्रिफला पिप्पलीयुता ॥
चूर्णितामधुनालीढा भेदिनी चाग्निबोधिनी ॥ ३८ ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला और ४ पीपर इन चार औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलायके चाटे तो मलका भेद हो (दस्त साफ हो) कर अग्नि प्रदीप्त होवे और श्वास खाँसी तथा ज्वर ये दूर हों ॥

कट्फलादिचूर्ण ज्वरादिकोंपर ।

कट्फलं मुस्तकं तिक्ता शुंठी शृंगी च पौष्करम् ॥ चूर्णमेषां
च मधुना शृंगवेररसेन वा ॥ ३९ ॥ लिहेज्ज्वरहरं कण्ठयं
कासश्वासारुचीर्जयेत् ॥ वायुं छर्दिं तथा शूलं क्षयं चैव
व्यपोहति ॥ ४० ॥

अर्थ–१ कायफर, २ नागरमोथा, ३ कुटकी, ४ सोंठ, ५ काकडासिंगी और ६ पुहकर मूल इन छः औषधोंका चूर्ण करके सहत अथवा अदरखके रससे सेवन करे तो ज्वर दूर होवे, तथा खाँसी, श्वास, अरुचि, वादी, वमन, शूल और क्षयका रोग दूर होवे ॥

दूसरा कट्फलादिचूर्ण कफशूलादिकोंपर । (बहन्तिव क्ष:

कट्फलं पौष्करं शृंगी मुस्तात्रिकटुकंशठी ॥ समस्तान्येकशो
वापि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥४१॥ आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्क-
फविनाशनम् ॥ शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ॥४२॥

अर्थ–१ कायफर, २ पुहकरमूल, ३ काकडासिंगी, ४ नागरमोथा, ५ सोंठ, ६ मिरच, ७ पीपल और ८ कचूर इन आठ औषधोंको पृथक् २ कूटके अथवा सबको एकही जगह कूट चूर्ण करे । फिर अदरखके रससे अथवा सहतके साथ मिलाकर दे तो कफ, शूल, वादी, अरुचि, ओकारी, खाँसी, श्वास और क्षयरोग ये दूर होवें ॥

तथा कट्फलादिचूर्ण कफादिकोंपर ।

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृंगी च मधुनासह ॥
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफांतकृत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-१ कायफर, २ पुहकरमूल, ३ पीपल, ४ काकडासिंगी इन चार औषधोंका चूर्ण कर सहतसे चाटे तो श्वास खांसी और कफज्वर इनको नष्ट करे ॥

शृंग्यादिचूर्ण बालकोंके कासज्वरपर ।

शृंगीप्रतिविषाकृष्णा चूर्णिता मधुनालिहेत् ॥
शिशोः कासज्वरच्छर्दिशांत्यै वा केवलाविषा ॥ ४४ ॥

अर्थ-१ काकडासिंगी, २ अतीस और ३ पपिर इन तीन औषधोंका चूर्ण कर सहत मिलाय बालकोंको चटावे । अथवा एक अतीसकाही चूर्ण करके सहत मिलायके चटावे तो बालककी खाँसी ज्वर और वमन ये दूर होवें ॥

यवक्षारादि चूर्ण बालकोंके पांचों खाँसीपर ।

यवक्षारविषाशृंगीमागधीपौष्करोद्भवम् ॥
चूर्णं क्षौद्रयुतं लीढं पंचकासाञ्जयेच्छिशोः ॥ ४५ ॥

अर्थ-१ जवाखार, २ अतीस, ३ काकडासिंगी, ४ पीपल, ५ पुहकरमूल इन पांच औषधोंका चूर्ण बालकोंको सहतमें चटावे तो पांच प्रकारकी खाँसीका रोग दूर हो ॥

शुण्ठ्यादि चूर्ण आमातिसारपर ।

शुंठीप्रतिविषाहिंगुमुस्ताकुटजचित्रकैः ॥
चूर्णमुष्णांबुनापीतमामातिसारनाशनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ-१ सोंठ, २ अतीस, ३ हींग, ४ नागरमोथा, ५ इन्द्रजौ और ६ चीतेकी छाल इन छः औषधोंके चूर्णको चौगुने गरम जलसे पीवे तो आमातिसार दूर हो ॥

दूसरा हरीतक्यादि चूर्ण ।

हरीतकी प्रतिविषासिंधुसौवर्चलं वचा ॥
हिंगु चेतिकृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४७ ॥
आमातिसारशमनं ग्राहिचाग्निप्रबोधनम् ॥

अर्थ-१ जंगीहरड, २ अतीस, ३ सैंधानमक, ४ संचरनमक, ५ वच और ६ भुनी हींग इन छः औषधोंका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीवे तो आमातिसार दूर होवे, मलका अवष्टंभ होकर अग्नि प्रदीप्त होती है ॥

लघुगंगाधरचूर्ण सर्व अतिसारोंपर ।

मुस्तमिंद्रयवंबिल्वंलोध्रंमोचरसंतथा ॥ ४८ ॥ धातकीचूर्णयेत्तं
क्रगुडाभ्यांपाययेत्सुधीः ॥ सर्वातिसारशमनंनिरुणद्धिप्रवाहि

---

१ इस योगको कोई २ वैद्य हरडके विनाभी बनाते हैं ।

२ (तक्रशुंठीभ्याम्) ऐसाभी पाठान्तर है ।

काम् ॥ ४९ ॥ लघुगङ्गाधरं नाम चूर्णं संग्राहकं परम् ॥

अर्थ–१ नागरमोथा, २ इन्द्रजौ, ३ बेलगिरी, ४ लोध पठानी, ५ मोचरस और ६ धायके फूल इन छः औषधोंका चूर्ण कर छाछमें गुड मिलाय उसके साथ इस चूर्णको पीवे तो संपूर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका रोग दूर होवें । इस चूर्णको लघुगंगाधर चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण मलका अवष्टंभ करनेवाला है ॥

वृद्धगंगाधरचूर्ण सर्व अतिसारोंपर ।

मुस्तारलूकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवालकैः ॥ ५० ॥
बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः ॥
आम्रबीजं प्रतिविषालज्जालुरितिचूर्णितम् ॥ ५१ ॥
क्षौद्रतन्दुलपानीयैः पीतैर्याति प्रवाहिका ॥
सर्वातिसारग्रहणीप्रशमंयातिवेगतः ॥ ५२ ॥
वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगविबन्धकम् ॥

अर्थ–१ नागरमोथा, २ टेंटू, ३ सोंठ, ४ धायके फूल, ५ लोध, ६ नेत्रवाला, ७ बेलगिरी, ८ मोचरस, ९ पाढ, १० इन्द्रजौ, ११ कुडेकी छाल, १२ आमकी गुठली, १३ अतीस और १४ लजालु इन चौदह औषधोंका चूर्ण करके चावलोंके धोवनके जलमें सहत मिलाय इसके साथ पीवे तो प्रवाहिका रोग, संपूर्ण अतिसार और संग्रहणी ये शीघ्र दूर हों । इस चूर्णको वृद्धगंगाधर चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण अतिसारके नदी समान वेगको भी दूर करता है ॥

अजमोदादिचूर्ण अतिसारपर ।

अजमोदा मोचरसं सशृंगवेरंसधातकीकुसुमम् ॥
मथितेनयुतं पीतं गङ्गामपिवाहिनींरुन्ध्यात् ॥ ५३ ॥

अर्थ–१ अजमोदा, २ मोचरस, ३ अदरख और ४ धायके फूल इन चार औषधोंका चूर्ण करके विना पानीके जमाये हुए गौके दहीमें मिलायके पीवे तो गंगाके समान भी दस्तोंके वेगको यह बन्द करता है ॥

मरिचादिचूर्ण संग्रहणीपर ।

तक्रेण यः पिबेन्नित्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ ५४ ॥
चित्रसौवर्चलोपेतं ग्रहणी तस्यनश्यति ॥
उदरप्लीहमन्दाग्निगुल्मार्शोनाशनंभवेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ–१ कालीमिरच, २ चीतेकी छाल, ३ संचरनमक इन तीन औषधोंका चूर्ण छाछमें

मिलायके नित्य पीवे तो संग्रहणी, उदर, प्लीहा, मन्दाग्नि, गोला और बवासीर इनको दूर करे॥

कपित्थाष्टकचूर्ण संग्रहणीआदिपर ।

अष्टौभागाःकपित्थस्यषड्भागाशर्करामता॥दाडिमंतिंतडीकंचश्रीफलंधातकीतथा ॥ ५६ ॥ अजमोदाचपिप्पल्यःप्रत्येकंस्युस्त्रिभागिकाः ॥ मरिचंजीरकंधान्यग्रन्थिकं वालकं तथा ॥ ५७ ॥ सौवर्चलंयवानीचचातुर्जातंसचित्रकम् ॥ नागरंचैकभागाःस्युःप्रत्येकंसूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ५८ ॥ कपित्थाष्टकसंज्ञंस्याच्चूर्णमेतद्गलामयान् ॥ अतिसारंक्षयंगुल्मंग्रहणींचव्यपोहति ॥ ५९ ॥

अर्थ—कैथका गूदा ८ तोले, मिश्री ६ तोले और १ अनारदाना, २ इमली ३ बेलगिरी, ४ धायके फूल, ५ अजमोद और ६ पीपली इन छः औषधोंको तीन २ तोले लेवे, १ कालीमिरच, २ जीरा, ३ धनिया, ४ पीपरामूल, ५ नेत्रवाला, ६ संचरनोन, ७ अजमायन, ८ दालचीनी, ९ इलायचीके बीज, १० तमालपत्र, ११ नागकेशर, १२ चीतेकी छाल और १३ सोंठ इन तरह औषधोंको एक एक तोला लेवे । सबका बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको कपित्थाष्टक चूर्ण कहते हैं । इसके सेवन करनेसे कंठके रोग अतिसार क्षय गोला और संग्रहणी ये दूर होंय॥

पिप्पल्यादि चूर्ण संग्रहणीपर ।

पिप्पलीबृहतीव्याघ्रीयवक्षारकलिंगकाः ॥ चित्रकं सारिवा पाठासठीलवणपञ्चकम् ॥ ६० ॥ तच्चूर्णंपाययेद्दध्नासुरयोष्णांबुनापिवा ॥ मारुतग्रहणीदोषशमनं परमं हितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—१ पीपल, २ कटेरी, ३ बडी कटेरी, ४ जवाखार, ५ इन्द्रजौ, ६ चीतेकी छाल, ७ सारिवन, ८ पाढ, ९ कपूरकचरी और १४ पांचों नमक इन चौदह औषधोंका चूर्ण कर दही मद्य अथवा गरम जलके साथ पीवे तो वातकी संग्रहणी नष्ट होय ॥

दाडिमाष्टकचूर्ण संग्रहण्यादिकोंपर ।

दाडिमाद्विपलाग्राह्याखंडाचाष्टपलानिवा ॥ त्रिगंधस्यपलंचैकंत्रिकटुस्यात्पलत्रयम् ॥ ६२ ॥ एतदेकीकृतंसर्वंचूर्णंस्याद्दाडिमाष्टकम् ॥ रुचिकृद्दीपनंकण्ठ्यंग्राहिकासज्वरापहम् ॥ ६३॥

अर्थ—अनारदाना २ पल, मिश्री ८ पल, दालचीनी इलायची और तमालपत्र ये तीनों मिलायके १ पल लेवे, तथा सोंठ कालीमिरच और पीपल ये तीनों औषध एक एक पल ले सबको कूट पीस चूर्ण करे । इसको दाडिमाष्टक चूर्ण कहते हैं । इस चूर्णके

सेवन करनेसे मुखमें रुचि आवे, अग्नि प्रदीप्त होवे, कंठको हितकारी और मलका अवष्टंभकर्ता होकर खाँसी और ज्वरको दूर करे ॥

वृद्धदाडिमाष्टक अतिसारादिकोंपर।

दाडिमस्यपलान्यष्टौशर्करायाः पलाष्टकम् ॥ पिप्पलीपिप्प-
लीमूलंयवानीमरिचंतथा ॥ ६४ ॥ धान्यकंजीरकंशुंठीप्रत्येकं
पलसंमितम् ॥ कर्षमात्रातुगाक्षीरीत्वक्पत्रैलाश्च केसरम्
॥ ६५ ॥ प्रत्येकंकोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णंदाडिमाष्टकम् ॥
अतिसारंक्षयंगुल्मंग्रहणींचगलग्रहम् ॥ ६६ ॥ मंदाग्निपीनसं
कासंचूर्णमेतद्व्यपोहति ॥

अर्थ—अनारदाना और मिश्री प्रत्येक आठ २ पल लेवे, १ पीपल, २ पीपरामूल, ३ अजमोदा, ४ कालीमिरच, ५ धनिया, ६ जीरा, ७ सोंठ प्रत्येक एक एक पल लेवे। वंशलोचन १ तोला ले और १ दालचीनी, २ तमालपत्र, ३ इलायची, ४ नागकेशर ये चार औषध आठ २ मासे लेवे। इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे इसको वृद्धदाडिमाष्टक कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे अतिसार, क्षय, गुल्म, संग्रहणी, कंठरोग, मंदाग्नि, पीनस और खाँसी ये रोग दूर हों ॥

तालीसादिचूर्ण अरुचि आदिरोगोंपर।

तालीसंमरिचंशुंठीपिप्पलीवंशरोचना ॥ ६७ ॥
एकद्वित्रिचतुःपंचकर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥
एलात्वचोस्तुकर्षार्धंप्रत्येकं भागमावहेत् ॥ ६८ ॥
मृतंवंगंमृतंताम्रंसमभागानिकारयेत् ॥
द्वात्रिंशत्कर्षतुलिताप्रदेयाशर्कराबुधैः ॥ ६९ ॥
लीसाद्यमिदंचूर्णंरोचनंपाचनंस्मृतम् ॥
कासश्वासज्वरहरंछर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ७० ॥
शोषाध्मानहरंप्लीहग्रहणीपांडुरोगजित् ॥

अर्थ—१ तालीसपत्र एक तोला, २ सोंठ तीन तोले, ३ पीपल चार तोले, ४ वंशलोचन पांच तोले, ५ इलायचीके दाने और ६ दालचीनी छः छः मासे ७ वंगभस्म और ८ ताम्रभस्म ये दोनों आठ ८ तोले और मिश्री ३२ तोले ले सबका चूर्ण कर मिश्री मिलाय सेवन करे तो यह तालीसचूर्ण रोचक, पाचक हो, खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, प्लीहा, संग्रहणी और पांडुरोग इनको नष्ट करता है ॥

---

[१] मागध परिभाषाके मान अनुसार एककर्षका व्यावहारिक १ तोला होता है। पलके ४ तोले होते हैं।

लवंगादिचूर्ण हृद्रोगादिपर । रु' रि

लवंगंशुद्धकर्पूरमेलात्वङ्नागकेशरम् ॥ ७१ ॥ जातीफलमुशीरंचना-
गरंकृष्णजीरकम् ॥ कृष्णागुरुस्तुगाक्षीरीमांसीनीलोत्पलंकणा ॥७२॥
चंदनंतगरंवालंकंकोलंचेतिचूर्णयेत् ॥ समभागानिसर्वाणिसर्वेभ्योर्धा
सिताभवेत् ॥ ७३ ॥ लवंगाद्यमिदंचूर्णं राजार्हंवह्निदीपनम् ॥ रोचनं
तर्पणंवृष्यंत्रिदोषघ्नंबलप्रदम् ॥ ७४ ॥ हृद्रोगंकण्ठरोगंचकासंहिक्कांच
पीनसम् ॥ यक्ष्माणंतमकंश्वासमतीसारमुरःक्षतम् ॥ ७५ ॥ प्रमेहा-
रुचिगुल्मादीन्ग्रहणीमपिनाशयेत् ॥

अर्थ-१ लौंग, २ भीमसेनीकपूर, ३ इलायची, ४ दालचीनी, ५ नागकेशर, ६ जायफल, ७ खस, ८ सोंठ, ९ काला जीरा, १० कालीअगर, ११ वंशलोचन, १२ जटामांसी, १३ नीला कमल, १४ पीपल, १५ सफेद चंदन, १६ तगर, १७ नेत्रवाला और १८ कंकोल इन अठारह औषधोंको समान भाग लेकर चूर्ण करे। चूर्णसे आधी मिश्री मिलावे, इस चूर्णको लवंगादि चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण राजाओंको देनेके योग्य है। इस चूर्णसे अग्नि प्रदीप्त होय और यह रुचिकारी है, शरीर पुष्ट होवे, स्त्री भोगनेकी शक्ति हो, वात, पित्त, कफ इनके प्रकोपको दूर करे, बल करे, हृदयरोग, कंठरोग, खाँसी, हिचकी, पीनस, क्षय, तमकश्वास, अतिसार, अरुचि, प्रमेह, गोला और संग्रहणी इन सब रोगोंको दूर करता है ॥

जातीफलादि चूर्ण संग्रहणी आदिपर ।

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेशरम् ॥ ७६ ॥ कर्पूरचंदन-
तिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः॥ तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरक-
चित्रकैः ॥ ७७ ॥ शुंठीविडंगमरिचान्समभागान्विचूर्णयेत् ॥
यावंत्येतानिसर्वाणिकुर्याद्भंगांचतावतीम् ॥ ७८ ॥ सर्वचूर्णस-
मादेयाशर्कराचाभिषग्वरैः ॥ कर्षमात्रंततः खादेन्मधुनाप्लावितं
सुधीः ॥ ७९ ॥ अस्यप्रभावाद्ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ॥
वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यांति वेगतः ॥ ८० ॥

अर्थ-१ जायफल, २ लौंग, ३ इलायची, ४ तमालपत्रक, ५ दालचीनी, ६ नागकेसर, ७ कपूर[1], ८ सफेद चंदन, ९ काले तिल, १० वंशलोचन, ११ तगर, १२ आँवले,

---

[1] कपूरके तीन भेद हैं ईशावास हिम और पोताश्रित परंतु राजनिघंटुमें बरास, चीनिया और कपूर भेद माने हैं। शुद्ध कपूरको भीमसेनी कपूरको बरास कहते हैं।

१३ तालीसपत्र, १४ पीपल, १५ हरड, १६ काला जीरा, १७ चीतेकी छाल, १८ सोंठ, १९ वायविडंग और २० काली मिरच ये बीस औषध समान भाग लेवे तथा इन सब औषधोंके समान भाग शुद्ध भांग मिलाकर सबका चूर्ण कर चूर्णकी बराबर सफेद मिश्री मिलावे। सबको एकत्र कर १ तोला नित्य सहतके साथ सेवन करे तो संग्रहणी, खांसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वातकफके विकार और पीनस ये रोग शीघ्र दूर होवें॥

महाखांडवचूर्ण अरुचि आदिपर।

मरिचंनागपुष्पाणितालीसंलवणानि च ॥ प्रत्येकमेकभागाः स्युःपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ ८१ ॥ त्वक्कणातिंतिडीकं चजीरकंचद्विभागकम् ॥ धान्याम्लवेतसौविश्वभद्रैलाबदराणि च ॥ ८२ ॥ अजमोदाजलधरःप्रत्येकंस्युस्त्रिभागिकाः ॥ सर्वौषधचतुर्थांशंदाडिमस्यफलंभवेत् ॥ ८३ ॥ द्रव्येभ्योनिखिलेभ्यश्चसितादेयार्धमात्रया ॥ महाखांडवसंज्ञंस्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम् ॥ ८४ ॥ अग्निदीप्तिकरंहृद्यंकासातीसारनाशनम् ॥ हृद्रोगकण्ठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ॥ ८५ ॥ विषूचिकांतथाध्मानमर्शोगुल्मकृमीनपि ॥ छर्दिपञ्चविधांश्वासंचूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ ८६ ॥ अनुपान मधु - उष्णोदकं च

मात्रा 3 मा
ग्रा-पूर्ण

अर्थ—१ काली मिरच, २ नागकेसर, ३ तालीसपत्र, ४ सैंधवनमक, ५ संचरनमक, ६ विडनमक, ७ समुद्रनमक और ८ रेहका नमक ये आठ औषध एक एक तोला लेवे। तथा १ पीपरामूल, २ चित्रक, ३ दालचीनी, ४ पीपल, ५ इमलीकी छाल, ६ जीरा ये औषध दो दो तोले लेवे। १ धनिया, २ अमलवेत[1], ३ सोंठ, ४ बडी इलायचीके दाने, ५ छोटे बेर, ६ अजमोद और ७ नागरमोथा ये सातों औषध तीन २ तोले लेवे और सब औषधोंका चतुर्थ भाग अनारदाना ले, फिर सब औषधोंका चूर्ण कर इस चूर्णसे आधी सफेद मिश्री मिलावे, सबको एकत्र करे इसको महाखांडव चूर्ण कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे रुचि हो, अग्नि यथा प्रदीप्त हो, यह हृदयको हितकारी, खाँसी, अतिसार, हृद्रोग, कंठरोग, उदररोग, मुखरोग, विषूचिका (हैजा), अफरा, बवासीर, गोला, कृमिरोग, पांच प्रकारका छर्दिरोग तथा श्वास ये दूर होवें॥

नारायणचूर्ण उदररोगपर।

चित्रकंत्रिफलाव्योषंजीरकंहपुषावचा ॥ यवानीपिप्पलीमूलं

---

[1] अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है। यदि कहीं न मिले तो उसके अभावमें चूका अथवा चनाकी खटाई डालनी चाहिये।

शतपुष्पाजगंधिका ॥ ८७ ॥ अजमोदाशठीधान्यंविडंगंस्थूलजीरकम् ॥ हेमाह्वापौष्करंमूलंक्षारौलवणपंचकम् ॥ ८८ ॥ कुष्ठंचेतिसमांशानिविशालास्याद्विभागिका ॥ त्रिवृत्त्रिभागाविज्ञेयादंत्याभागत्रयंभवेत् ॥ ८९ ॥ चतुर्भागाशातलास्यात्सर्वाण्येकत्रचूर्णयेत् ॥ पाचनंस्नेहनाद्यैश्चस्निग्धकोष्ठस्यरोगिणः ॥९० ॥ दद्याच्चूर्णंविरेकायसर्वरोगप्रणाशनम् ॥ हृद्रोगेपांडुरोगेचकासेश्वासेभगंदरे ॥ ९१ ॥ मंदेऽग्नौचज्वरेकुष्ठेग्रहण्यांचगलग्रहे ॥ दद्याद्युक्तानुपानेनतथाध्मानेसुरादिभिः ॥ ९२ ॥ गुल्मेबदरनीरेणविड्भेदेदधिमस्तुना ॥ उष्णांबुभिरजीर्णेचवृक्षाम्लैःपरिकर्तिषु ॥ ९३ ॥ उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषुतथातक्रेणवागवाम् ॥ प्रसन्नयावातरोगेदाडिमांभोभिरर्शसि॥९४॥ द्विविधेचविषेदद्याद्घृतेनविषनाशनम् ॥ चूर्णंनारायणंनामदुष्टरोगगणापहम ॥ ९५ ॥

अर्थ--१ चीतेकी छाल, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आंवला, ५ सोंठ, ६ मिरच, ७ पीपल, ८ जीरा, ९ हाऊवेर, १० वच, ११ अजमायन, १२ पीपरामूल, १३ सौंफ, १४ बर्बरी (वनतुलसी), १५ अजमोदा, १६ कचूर, १७ धनिया, १८ वायविडंग, १९ मगरेल, (कलौंजी), २० पुहकरमूल, २१ सज्जीखार, २२ जवाखार, २३ सैंधवनमक, २४ संचरनमक, २५ विडनमक, २६ समुद्रनमक, २७ कचिया नमक और २८ कूट इन अट्ठाईस औषधोंको एक एक तोला लेवे। इन्द्रायणकी जड २ तोले, निसोथ ३ तोले और दंतीकी जड ३ तोले एवं पीली थूहर ४ तोले इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे फिर पाचन करके और स्नेहादि करके [1]जिस मनुष्यका चिकना कोठा होगया हो उस मनुष्यको दस्त होनेके वास्ते यह चूर्ण देवे तो संपूर्ण रोग दूर होवें, हृदयरोग, पांडुरोग, खाँसी,श्वास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कोढ, संग्रहणी इन रोगोंमें मद्य आदि अनुपानके साथ देवे। पेटके फूलनेपर दारूके साथ देवे। गोलेके रोगमें बेरके काढेके साथ देवे। मलबद्धवालेको दहीके जलसे देवे। अजीर्ण रोगीको गरम जलके साथ देवे। गुदाम कतरनीकीसी पीडा होती होवे तो तंतडीकके काढेके सात देवे। उदररोग (जलंधर) में ऊँटनीके दूधके साथ अथवा गौके तक्रके साथ देवे। बादीके रोगोंमें

---

[1] मनुष्यको आरग्वधादि पंचकके काढेसे पाचन देकर तथा उत्तरखण्डमें जो घृतपानकी विधि कही है उसी प्रकार घी पीनेको देकर कोठेको चिकना करे पीछे चूर्णको देवे।

प्रसन्ना मद्यके साथ देवे । बवासीरमें अनारदानेके जलके साथ देवे तो सर्व रोग नष्ट हों । स्थावर और जंगम विषोंमें घृतके साथ देवे तो दोनों प्रकारके विष दूर हों, इसको नारायणचूर्ण कहते हैं, इससे संपूर्ण दुष्ट रोग दूर होते हैं ॥

हपुषादिचूर्ण अजीर्णउदरादिकोंपर ।

हपुषात्रिफलाचैवत्रायमाणाचपिप्पली ॥
हेमक्षीरीत्रिवृच्चैवशातलाकटुकावचा ॥ ९६ ॥
नीलिनीसैंधवंकृष्णलवणंचेतिचूर्णयेत् ॥
उष्णोदकेनमूत्रेणदाडिमत्रिफलारसैः ॥ ९७ ॥
तथामांसरसेनापियथायोग्यंपिबेन्नरः ॥
अजीर्णप्लीहगुल्मेषुशोफार्शोविषमाग्निषु ॥ ९८ ॥
हलीमकामलापांडुकुष्ठाध्मानोदरेष्वपि ॥

अर्थ–१ हाऊबेर, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आँवला, ५ त्रायमाण[1], ६ पीपल, ७ चौक, ८ निसोथ, ९ पीली थूहर, १० कुटकी, ११ बच, १२ नीली[2], १३ सैंधानमक, १४ कालानमक प्रत्येक समान भाग लेवे । सबका चूर्ण कर गरम जलके साथ वा गोमूत्रके साथ वा अनारदानेके रससे अथवा त्रिफलाके काढेके साथ अथवा वनके हरिणादिकोंके मांसरससे योग्यता विचारके देवे तो अजीर्ण, प्लीहा, गोला, सूजन, बवासीर, मंदाग्नि, हलीमक, कामला, पांडुरोग, कुष्ट, अफरा आर उदररोग इन सबको दूर करे ॥

पंचसमचूर्ण[3] शूलआदिपर ।

शुंठीहरीतकीकृष्णात्रिवृत्सौवर्चलंतथा ॥ ९९ ॥ समभागानि
सर्वाणिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ ज्ञेयंपंचसमंचूर्णमेतच्छूलहरं
परम् ॥ १०० ॥ आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरंस्मृतम् ॥

अर्थ–१ सोंठ, २ हरड, ३ पीपल, ४ निसोथ और ५ संचरनमक ये पांचों औषधि समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे । इसको पंचसम चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण सेवन करनेसे शूलरोग, पेटका फूलना, मंदाग्नि, बवासीर, आमवायु ये रोग दूर हों ।

पिप्पल्यादिचूर्ण अफराआदिपर ।

कर्षमात्राभवेत्कृष्णात्रिवृतास्यात्पलोन्मिता ॥१०१॥ खण्डात्प-

---

[1] त्रायमाण इसी नामसे प्रसिद्ध है । इसके पत्ते जामुनकेसे होते हैं ।

[2] नीलीके वृक्ष छोटे २ होते हैं, यह नीलवृक्षके नामसे प्रसिद्ध है इसमेंसे नीला रंग उत्पन्न होताहै ।

[3] यह पंचसमचूर्ण प्रायः शूलरोगपर बहुत चलता है और गुणभी शीघ्र दिखलाता है ।

लंचविज्ञेयंचूर्णमेकत्रकारयेत् ॥ कर्षोन्मितंलिहेदेतत्क्षौद्रेणाध्माननाशनम् ॥ १०२ ॥ गाढविट्कोदरकफान्पित्तंशूलंचनाशयेत् ॥

अर्थ—पीपल १ तोला, निसोथ ४ तोले, मिश्री ४ तोले इनका एकत्र चूर्ण कर सहतसे सेवन करे तो पेटका अफरा दूर होय । तथा मलबद्धता, उदररोग, कफ, पित्त और शूलको नाश करे ॥

लवणत्रितयादिचूर्ण यकृत्प्लीहादिकोंपर ।

लवणत्रितयंक्षारौशतपुष्पाद्वयंवचा ॥ १०३ ॥ अजमोदाजगंधाचहपुषाजीरकद्वयम् ॥ मरिचंपिप्पलीमूलंपिप्पलीगजपिप्पली ॥ १०४ ॥ हिंगुश्चहिंगुपत्रीचशटीपाठोपकुंचिका ॥ शुण्ठीचित्रकचव्यानिविडंगंचाम्लवेतसम् ॥ १०५ ॥ दाडिमंतिंतिडीकंच त्रिवृद्दंतीशतावरी ॥ इन्द्रवारुणिकाभार्ङ्गीदेवदारु यवानिका ॥ १०६ ॥ कुस्तुंबुरुस्तुंबुरूणिपौष्करंबदराणिच ॥ शिवाचेति समांशानिचूर्णमेकत्रकारयेत् ॥ १०७ ॥ भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा ॥ तत्पिबेत्सर्पिषाजीर्णमद्येनोष्णोदकेनवा ॥१०८॥ कोलांभसावातक्रेणदुग्धेनोष्ट्रेणमस्तुना ॥ यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् ॥ १०९ ॥ अर्शोविष्टंभमन्दाग्निगुल्माष्ठीलोदराणिच ॥ हिक्काध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्नसंशयः ॥ ११० ॥ एतैरेवौषधैः सम्यग्घृतंवासाधयेद्भिषक् ॥

अर्थ--१ सैंधानिमक, २ संचरनमक, ३ बिडनोन, ४ सर्जाखार, ५ जवाखार, ६ साफ, ७ मगरेला (कलौंजी), ८ वच, ९ अजमोद, १० बर्बरी (वनतुलसी), ११ हाऊबेर, १२ सफेद, १३ कालाजीरा, १४ कालीमिरच, १५ पीपलामूल, १६ पीपर, १७ गजपीपर, १८ हींग भुनी, १९ हिंगुपत्री, २० कचूर, २१ पाढ, २२ छोटी इलायची, २३ साठ, २४ चव्य, २५ चीतेकी छाल, २६ वायविडंग, २७ अमलवेत, २८ अनारदाना, २९ तन्तडीक, ३० निशोथ, ३१ दन्ती, ३२ सतावर, ३३ इन्द्रायणका गूदा, ३४ भारंगी, ३५ देवदारु, ३६ अजवायन, ३७ धनिया, ३८ चिरफल, ३९ पुहकरमूल, ४० बेर और ४१ छोटी छोटी हरडे

---

१ अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है यदि कहीं न मिलता होवे तो अमलवेतके अभावमें चूका डाले अथवा चनाखार डाले ।

२ इन्द्रायणको हमारे इस मथुराप्रान्तके मनुष्य फरफेंदू कहते हैं । इसकी बेल होती है और पीले रंगका बडा बेलकी बराबर फल लगता है, यह अत्यंत कडुआ होताहै, यदि इसका फल न मिलै तो इसकी जड लेना चाहिये ।

इकतालीस औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे । फिर उस चूर्णको अदरखके रसकी एक तथा बिजोरेके रसकी एक पुट देकर सुखाय लेवे । इस चूर्णको घी, पुराना मद्य, गरम जल अथवा बेरका काढा, गौकी छाछ, ऊँटनीका दूध, दहीका पानी इनमेंसे जो अनुपान रोगीको हितकारी होय वह उसके साथ देवे तो कलेजेका रोग, प्लीहा (फीहा), कमरका दर्द, गुदाका रोग, कूखका शूल, हृदयरोग, बवासीर, मलका अवरोध, मंदाग्नि, गोला, अष्ठीला, उदर, हिचकी, अफरा, श्वास और खांसी ये रोग दूर होवें । अथवा इस चूर्णमें कही हुई औषधोंका काढा करके उसमें घी मिलायके साधन करे । जब घी सिद्ध होजावे तब उतारले । इस घृतके सेवन करनेसे ऊपर कहे हुए संपूर्ण रोग दूर होंय ॥

तुंबर्वादिकचूर्ण शूलादिकोंपर ।

तुंबरूणित्रिलवणंयवानीपुष्कराह्वयम् ॥ १११ ॥ यवक्षाराभयाहिंगुविडंगानिसमानिच ॥ त्रिवृत्त्रिभागाविज्ञेयासूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ ११२ ॥ पिबेदुष्णेनतोयेनयवक्काथेनवापिबेत् ॥ जयेत्सर्वाणिशूलानिगुल्माध्मानोदराणिच ॥११३॥

अर्थ—१ धनिया अथवा चिरफल, २ सैंधानमक, ३ संचरनमक, ४ विडनमक, ५ अजमोद, ६ पुहकरमूल, ७ जवाखार, ८ हरड, ९ भुनी हुई हींग और १० वायविडंग इन दश औषधोंको समान भाग लेवे । तथा निसोथ तीन भाग ले सब औषधोंका बारीक चूर्ण कर गरम जलसे अथवा जवोंके काढेसे सेवन करे तो सर्व प्रकारके शूल गोला अफरा और उदररोग दूर होवें ॥

चित्रकादिचूर्ण गुल्मादिकोंपर ।

चित्रकोनागरंहिंगुपिप्पलीपिप्पलीजटा ॥ चव्याजमोदामरिचं प्रत्येकंकर्षसंमितम् ॥ ११४ ॥ स्वर्जिकाचयवक्षारः सिंधुसौवर्चलंविडम् ॥ सामुद्रंरोमकंचकोलमात्राणिकारयेत् ॥११५॥ एकीकृत्वाखिलं चूर्णंभावयेन्मातुलुंगजैः ॥ रसैर्दाडिमजैर्वापिशोषयेदातपेनच ॥ ११६ ॥ एतच्चूर्णं जयेद्गुल्मंग्रहणीमामजांरुजम् ॥ अग्निंचकुरुतेदीप्तंरुचिकृत्कफनाशनम् ॥ ११७ ॥

अर्थ—१ चीतकी छाल, २ सोंठ, ३ भुनी हुइ हींग, ४ पीपर, ५ पीपरामूल, ६ चव्य, ७ अजमोद, ८ कालीमिरच इन आठ औषधोंको तोले २ भर लेवे । तथा १ सज्जीखार, २ जवाखार, ३ सैंधवनमक, ४ संचरनमक, ५ विडनोन, ६ समुद्रनमक और ७ रेहका नमक

इन सात खारोंको आठ मासे लेवे । फिर सब औषधोंका चूर्ण कर बिजोरेके रसकी एक भावना देवे । अथवा अनारदानेके रसका एक पुट देवे । फिर धूपमें धरके सुखाय लेवे । इस चूर्णके सेवन करनेसे गोला, संग्रहणी, आम ये दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त हो, रुचि करे तथा कफ दूर होय ॥

वडवानलचूर्ण मंदाग्नि आदिरोगोंपर ।

सैंधवंपिप्पलीमूलंपिप्पलीचव्यचित्रकम् ॥
शुंठीहरीतकीचेतिक्रमवृद्ध्याविचूर्णयेत् ॥ ११८ ॥
वडवानलनामैतच्चूर्णंस्यादग्निदीपनम् ॥

अर्थ—१ सैंधानमक एक भाग, २ पीपरामूल दो भाग, ३ पीपर तीन भाग, ४ चव्य चार भाग, ५ चीतेकी छाल पांच भाग, ६ सोंठ छः भाग, ७ जंगी हरड सात भाग इस क्रमसे ये औषध लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको वडवानलचूर्ण कहते हैं इसका सेवन करनेसे अग्नि दीप्त होय ॥

अजमोदादिचूर्ण आमवातपर ।

अजमोदाविडंगानिसैंधवंदेवदारुच ॥ ११९ ॥ चित्रकःपिप्प-
लीमूलं शतपुष्पाचपिप्पली ॥ मरिचंचेतिकर्षांशंप्रत्येकंकार-
येद्बुधः ॥१२०॥ कर्षास्तुपंचपथ्यायादशस्युर्वृद्धदारुकात् ॥
नागराच्चदशैवस्युः सर्वाण्येकत्रकारयेत् ॥ १२१ ॥ पिबेत्को-
ष्णजलेनैवचूर्णंश्वयथुनाशनम् ॥ आमवातरुजंहंतिसंधिपीडांच
गृध्रसीम् ॥ १२२ ॥ कटिपृष्ठगुदस्थांचजंघयोश्चरुजंजयेत् ॥
तूणीप्रतूणीविश्वाचींकफवातामयाञ्जयेत् ॥ समेनवा गुडेना-
स्यवटकान्कारयेत्सुधीः ॥ १२३ ॥

अर्थ—१ अजमोदा, २ वायाविडंग, ३ सैंधानमक, ४ देवदारु, ५ चित्रक, ६ पीपरामूल, ७ सौंफ, ८ पीपर और ९ काली मिरच इन नौ औषधोंको तोला २ लेवे । तथा जंगी हरड ५ तोले ले विधायरा १० तोले और सोंठ दश तोले सब औषधोंको कूटपीस और छानके चूर्ण करे । इसको गरम जलके साथ लेय तो सूजन, आमवात, संधियोंका दूखना, गृध्रसी वायु (जो कमरसे लेकर पैर पर्यन्त पीडा होती है वह), कमर, पीठ, गुदा, जंघा और पोडरियोंकी पीडा, तूणी वायु, प्रतूणी वायु तथा विश्वाची वायु तथा कफवायुके विकार ये संपूर्ण रोग दूर होवें । अथवा इस चूर्णके समान भाग गुड मिलायके गोली बनायके खाय तो चूर्ण खानेसे जो रोग नष्ट होते हैं वेही इस गोलीके सेवनसे नष्ट होंय ॥

शुण्ठ्यादिचूर्ण श्वासादिकपर।

शुण्ठीसौवर्चलंहिंगुदाडिमंचाम्लवेतसम् ॥
चूर्णमुष्णाम्बुनापेयंश्वासहृद्रोगशांतये ॥ १२४ ॥

अर्थ-१ सोंठ, २ संचरनमक, ३ भुनीहुई हींग, ४ अनारदाना और ५ अमलवेत इनका चूर्ण गरम जलके साथ लेय तो श्वास और हृदयरोग नष्ट होवें ॥

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर।

हिंगूग्रगंधाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ॥
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराह्वंहिमांभसाशूलहृदामयघ्नम् ॥ १२५ ॥

अर्थ-१ हींग, २ वच, ३ विडनोन, ४ सोंठ, ५ पीपल, ६ कूट, ७ हरड, ८ चीतेकी छाल, ९ जवाखार, १० संचरनमक और ११ पुहकरमूल इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण कर शीतल जलके साथ पीवे तो शूल और हृदयरोग शांत होव ॥

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर।

हिंगुपाठाभयाधान्यंदाडिमंचित्रकंशठी ॥ अजमोदात्रिकटुकं
हपुषाचाम्लवेतसम् ॥ १२६ ॥ अजगन्धातितिडीकं जीरकं
पौष्करंवचा ॥ चव्यंक्षारद्वयंपञ्चलवणानीतिचूर्णयेत् ॥१२७॥
प्राग्भोजनस्यमध्येवाचूर्णमेतत्प्रयोजयेत् ॥ पिबेद्वाजीर्णमद्येन
तक्रेणोष्णोदकेनवा ॥ १२८ ॥ गुल्मेवातकफोद्भूतेविड्ग्रहे-
ऽष्ठीलिकासुच ॥ हृद्बस्तिपार्श्वशूलेषु शूले चगदयोनिजे ॥
॥ १२९ ॥ मूत्रकृच्छ्रेतथानाहेपांडुरोगेऽरुचौ तथा ॥ हिक्कायां
यकृतिप्लीह्निश्वासेकासेगलग्रहे ॥ १३० ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषु
चूर्णमेतत्प्रशस्यते ॥ भावितंमातुलुङ्गस्यबहुशः स्वरसेनवा
॥ १३१ ॥ कुर्याच्चगुटिकाः पथ्यावातश्लेष्मामयापहाः ॥

अर्थ-१ भुनी हींग, २ पाढ, ३ जंगीहरड, ४ धनिया, ५ अनारदाना, ६ चीतेकी छाल, ७ कचूर, ८ अजमोदा, ९ सोंठ, १० मिरच, ११ पीपल, १२ हाऊबेर, १३ अमलवेत, १४ वनतुलसी, १५ तंतडीक अथवा इमली, १६ जीरा, १७ पुहकरमूल, १८ वच, १९ चव्य, २० सज्जीखार, २१ जवाखार, २२ सेंधानोन, २३ संचरनोन, २४ बिडनोन, २५ बांगड खार

और २६ समुद्रका नोन । इन छव्वीस औषधोंको कूट पीसके चूर्ण करे, इसको भोजनके आदिमें अथवा भोजनके मध्यमें खाय अथवा बहुत दिनके पुराने मद्यके साथ सेवन करे अथवा गौकी छाल एवं गरम जलके साथ सेवन करे तो वात कफसे उत्पन्न होनेवाला गोलेका रोग, हृद्रोग, अष्ठीला इस नामसे पेटमें होनेवाला बादीका रोग, हृदय, कूख इनका शूल, तथा गुदाका शूल, योनिशूल, मूत्रकृच्छ्र, मलबद्धता, पांडुरोग, अरुचि, हिचकी, यकृद्रोग, तिल्लीका रोग, श्वास, खांसी, कंठरोग, संग्रहणी, बवासीर ये संपूर्ण रोग दूर हों । इस चूर्णको बिजोरेके रसके सात पुट देकर गोली बनाके सेवन करे तो वात कफसे होनेवाले रोग दूर होवें ॥

यवानीखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर ।

यवानीदाडिमंशुण्ठींतिंतिडीकाम्लवेतसौ ॥ १३२ ॥ बदराम्लं च कुर्वीतचतुःशाणमितानिच ॥ सार्द्धद्विशाणंमरिचं पिप्पलीदशशाणिका ॥ १३३ ॥ त्वक्सौवर्चलधान्याकं जीरकंद्विद्विशाणिकम् ॥ चतुःषष्टिमितैःशाणैःशर्करामत्रयोजयेत् ॥ १३४ ॥ चूर्णितंसर्वमेकत्रयवानीखांडवाभिधम् ॥ चूर्णंजयेत्पांडुरोगंहृद्रोगंग्रहणीज्वरम् ॥ १३५ ॥ छर्दिशोषातिसारांश्चप्लीहानाहविबन्धताम् ॥ अरुचिंशूलमन्दाग्निअर्शोजिह्वागलामयान् ॥ १३६ ॥

अर्थ—१ अजमोद, २ अनारदाना, ३ सोंठ, ४ तंतडीक अथवा इमली, ५ अमलबेत और ६ बेर खट्टे । ये छः औषध चार २ शाण लेवे । काली मिरच ढाई शाण, पीपर द शाण, दालचीनी, संचरनमक, धनिया, जीरा ये प्रत्येक दो दो शाण और मिश्री चौंसठ शा ले । फिर सब औषधोंको कूटकर चूर्ण करे । इस चूर्णको यवानीखांडव चूर्ण कहते हैं। इ चूर्णके सेवन करनेसे पांडुरोग, हृद्रोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, तिल्ली, बद्धता, अरुचि, शूल, मंदाग्नि, बवासीर, जीभके रोग, कंठके रोग ये सब दूर होते हैं ॥

तालीसादिचूर्ण अरुचि आदिरोगोंपर ।

तालीसंमरिचंशुण्ठीपिप्पलीवंशरोचना ॥ एकद्वित्रिचतुःपञ्चकर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥ १३७ ॥ एलात्वचोस्तुकर्षार्धंप्रत्येकं भागमावहेत् ॥ द्वात्रिंशत्कर्षतुलितात्प्रदेयाशर्कराबुधैः ॥ १३८ ॥ तालीसाद्यमिदंचूर्णरोचनंपाचनंस्मृतम् ॥ कासश्वासज्वरहरं

छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ १३९ ॥ शोषा[1]ध्मानहरंप्लीहग्रहणीपांडु-
रोगजित् ॥ पक्त्वावाशर्करांचूर्णंक्षिपेत्स्याद्गुटिकां[2]ततः ॥ १४० ॥

अर्थ—तालीसपत्र १ तोला, कालीमिरच २ तोले, सोंठ ३ तोले, पीपर ४ तोले, वंशलोचन ५ तोले, छोटी इलायची और दालचीनी दोनों छः छः मासे मिश्री ३२ तोले ले फिर सबको कूट पीस चूर्ण करके सेवन करे तो रुचि होय, अन्न पचे तथा खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, तिल्ली, संग्रहणी और पांडुरोग ये दूर हों। अथवा मिश्रीकी चासनी करके उसमें इस चूर्णको डाल गोली बनाय लेवे तो यह चूर्णके समान गुण करती है ॥

सितोपलादिकचूर्ण खांसीक्षयपित्तादिकोंपर।

सितोपलाषोडशस्यादष्टौस्याद्वंशरोचना ॥ पिप्पलीस्याच्चतुः-
कर्षास्यादेलाचद्विकर्षिका ॥१४१॥ एकःकर्षस्त्वचःकार्यश्चूर्ण-
येत्सर्वमेकतः ॥ सितोपलादिकंचूर्णंमधुसर्पिर्युतंलिहेत् ॥ १४२॥
श्वासकासक्षयहरंहस्तपादांगदाहजित् ॥ मंदाग्निंशून्यजिह्वत्वंपा-
र्श्वशूलमरोचकम् ॥१४३॥ ज्वरमूर्ध्वगतंरक्तंपित्तमाशुव्यपोहति ॥

अर्थ—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपर ४ तोले, छोटी इलायचीके बीज २ तोले, दालचीनी १ तोला इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे इसको सितोपलादि चूर्ण कहते हैं और इस चूर्णको सहत और घीके साथ मिलायके खाय तो श्वास, खाँसी, क्षय, हाथ पैरोंका तथा अंगोंका दाह, मंदाग्नि, जीभकी शून्यता, पसलीका शूल, अरुचि, ज्वर, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त (नाकमुखसे रुधिर आना) ये सब तत्काल दूर होवें ॥

लवणभास्कर चूर्ण संग्रहणी गुल्मादिकोंपर।

सामुद्रलवणंकार्यमष्टकर्षमितंबुधैः ॥१४४॥ पञ्चसौवर्चलंग्रा-
ह्यंविडंसैंधवधान्यके ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंकृष्णजीरकपत्र-
कम् ॥१४५॥ नागकेसरतालीसमम्लवेतसकंतथा ॥ द्विकर्ष-
मात्राण्येतानिप्रत्येकंकारयेद्बुधः ॥ १४६ ॥ मरिचंजीरकंविश्व-
मेकैकंकर्षमात्रकम् ॥ दाडिमंस्याच्चतुःकर्षंत्वगेलाचार्धकार्षि-

---

[1] 'शोफाध्मानहरं' कहीं ऐसा पाठ है तहां शोफ कहिये सूजन ऐसा अर्थ जानना।

[2] 'मधुसर्पिर्युतं लिहेत्' क्वचित् ऐसा पाठ है तहां सहत और घी दोनों विषम भाग ले इसमें चूर्णको मिलायके सेवन करे ऐसा अर्थ जानना।

की ॥१४७॥ बीजपूररसेनैवभावितंसप्तवारकम् ॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वंलवणंभास्कराभिधम् ॥ शाणप्रमाणंदेयंतुमस्तुतक्रसुरासवैः ॥ १४८ ॥ वातश्लेष्मभवंगुल्मंप्लीहानमुदरंक्षयम् ॥ अर्शांसि ग्रहणींकुष्ठंविबन्धंचभगन्दरम् ॥ १४९ ॥ शोफंशूलं श्वासकासमामदोषंचहृद्रुजम् ॥ मन्दाग्निंनाशयेदेतद्दीपनंपाचनंपरम् ॥ १५० ॥ सर्वलोकहितार्थायभास्करेणोदितंपुरा ॥

अर्थ—सामुद्रनमक ८ तोले, संचरनोन ५ तोले, १ बिडनोन, २ सैंधानमक, ३ धनिया, ४ पीपल, ५ पीपरामूल, ६ कालाजीरा, ७ पत्रज, ८ नागकेशर, ९ तालीसपत्र और १, अम्लवेत ये दश औषधी प्रत्येक दो दो तोले लेय; कालीमिरच, जीरा और सोंठ य तीन औषध एक २ तोला लेय, तथा अनारदाना ४ तोले, दालचीनी और इलायची छः छः मासे। इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इसको दहीके जलसे वा दहीकी मलाईसे छाछ और मद्य (दारू) इनमेंसे रोगानुसार अनुपानके साथ ४ मासे देवे तो वातकफसे उत्पन्न होनवाल गोला, फीहा, उदर, क्षय, बवासीर, संग्रहणी, कोढ, मलबद्धता (बद्धकोष्ट), भगंदर, सूजन, शूल, श्वास, खाँसी, आमवात, हृद्रोग और मंदाग्नि ये सब रोग दूर हों। अग्नि प्रदीप्त हो तथा अन्नका परिपाक होवे। यह चूर्ण लोकोंके हितके वास्ते सूर्यने कहा है इसीसे इसका नाम लवणभास्कर चूर्ण विख्यात है ॥

एलादिचूर्ण वमनपर ।

एलाप्रियंगुमुस्तानिकोलमज्जाचपिप्पली ॥ १५१ ॥ श्रीचंदनं तथालाजालवङ्गंनागकेसरम् ॥ एतच्चूर्णीकृतंसर्वंसिताक्षौद्रयुतं लिहेत् ॥ १५२ ॥ वातपित्तकफोद्भूतांछर्दिंहन्त्यतिवेगतः ॥

अर्थ--१ छोटी इलायचीके बीज, २ फूलप्रियंगु, ३ नागरमोथा, ४ बेरकी गुँठली, पीपर, ६ सफेदचंदन, ७ खील, ८ लौंग, ९ नागकेशर इन नौ औषधोंको कूट पीस चू करके सहत और मिश्रीके साथ खाय तो वात पित्त और कफसे उत्पन्न हुआ वमन (रद) सब रोग तत्काल दूर हों ॥

पञ्चनिम्बचूर्ण कुष्ठादिकोंपर । ([illegible] हरन्ति न.५ वैद

मूलंपत्रंफलंपुष्पंत्वचंनिम्बात्समाहरेत् ॥ १५३ ॥ सूक्ष्मचूर्णमिदंकुर्यात्पलैःपञ्चदशोन्मितैः ॥ लोहभस्महरीतक्यौचक्रमर्दकाचित्रकौ ॥ १५४ ॥ भल्लातकाविडंगानिशर्करामलकंनिशा ॥

पिप्पलीमरिचंशुंठीबाकुचीकृतमालकः ॥ १५५ ॥ गोक्षुरश्चपलोन्मानमेकैकंकारयेद्बुधः ॥ सर्वमेकीकृतंचूर्णंभृंगराजेनभावयेत् ॥ १५६ ॥ अष्टभागावशिष्टेनखदिरासनवारिणा ॥ भावयित्वाचसंशुष्कंकर्षमात्रंततःक्षिपेत् ॥ १५७ ॥ खदिरासनतोयेन सर्पिषा पयसाथवा ॥ मासेन सर्वकुष्ठानि विनिहंति रसायनम् ॥ १५८ ॥ पंचनिंबमिदंचूर्णंसर्वरोगप्रणाशम् ॥

अर्थ–१ जड, २ पत्ते, ३ फल, ४ फूल और ५ छाल ये पांच अंग नीमके १५ पल लेय उनको चूर्ण करे । उसमें १ लोहेकी भस्म, २ जंगीहरड, ३ पँवाडके बीज, ४ चीतेकी छाल, ५ भिलावें, ६ वायविडंग, ७ मिश्री, ८ आमलक, ९ हल्दी, १० पीपर, ११ काली मिरच, १२ सोंठ, १३ बावची, १४ अमलतासका गूदा और १५ गोखरू ये पन्द्रह औषध प्रत्येक एक एक पल लेकर इन सबका चूर्ण करे । फिर पूर्वोक्त नीमका चूर्ण और पंद्रह औषधोंका चूर्ण मिलाय एकत्र करके भांगरेके रसकी भावना देकर सुखाय ले । पश्चात् खैरकी छालका काढा करके उसका एक पुट दे । फिर विजयसारकी छालका काढा करके एक पुट देकर सुखाय लेवे । १ तोले इस चूर्णको खैरकी छालके काढेसे पीवे । अथवा विजयसारके काढेसे वा घी या गौके दूधसे पीवे तो एक महीनेमें संपूर्ण कोढ दूर होवें । इस चूर्णको पंचनिंबचूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण रसायन है ॥

शतावरीचूर्ण वाजीकरणपर ।

शतावरीगोक्षुरश्चबीजंचकपिकच्छुजम् ॥ १५९ ॥ गांगेरुकीचातिबलाबीजमिक्षुरकोद्भवम् ॥ चूर्णितंसर्वमेकत्रगोदुग्धेनपिबेन्निशि ॥ १६० ॥ नतृप्तियातिनारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः ॥

अर्थ–१ शतावर, २ गोखरू, ३ कौंचके बीज, ४ गंगेरनकी छाल, ५ कंगहीकी छाल, ६ तालमखाना इन छः औषधोंका चूर्ण कर रात्रिमें गौके दूधके साथ सेवन करे तो बहुत स्त्री भोगनेसेभी इच्छाकी तृप्ति नहीं हो ऐसा इस चूर्णका प्रभाव है ॥

अश्वगंधादिचूर्ण पुष्टाईपर ।

अश्वगंधादशपलातन्मात्रोवृद्धदारकः ॥ १६१ ॥ चूर्णीकृत्योभयंविद्वान्घृतभांडेनिधापयेत् ॥ कर्षैकंपयसापीत्वानारीभिर्नैवतृप्यति ॥ १६२ ॥ अगत्वाप्रमदांभूयोवलीपलितवर्जितः ॥

अर्थ–असगन्ध १० पल, विधायरा ११ पल इन दोनोंका चूर्ण कर घीके बासनमें

भरके रात्रिको रख देवे फिर इनमेंसे २ तोले चूर्णको गौके दूधसे सेवन करे तो बहुतसी स्त्रियोंसे भोग करनेपर भी तृप्त न हो और यदि स्त्रीसेवनको त्यागके इस चूर्णको सेवन करे तो अंगमें गुजलटोंका पडना और बालोंका सफेद होना ये रोग दूर हों और बुड्ढेसे जवान हों ॥

मूसलीचूर्ण धातुवृद्धिपर ।

मुसलीकंदचूर्णंतुगुडूचीसत्वसंयुतम् ॥ १६३ ॥ सक्षीरीगोक्षुराभ्यांचशाल्मलीशर्करामलैः ॥ आलोड्यघृतदुग्धेनपाययेत्कामवर्धनम् ॥ १६४ ॥

अर्थ—१ सफेद मूसली, २ गिलोयका सत्व, ३ कौंचके बीज, ४ गोखरू, ५ सेमरका मूसल ६ मिश्री और ७ आंवले इन सात औषधोंका चूर्ण करके गौके दूधमें घी मिलाय इस चूर्णको पीवे तो धातुकी वृद्धि होकर काम बढे ॥

नवायसचूर्ण पांडुरोगादिकोंपर ।

चित्रकंत्रिफलामुस्तंविडंगंत्र्यूषणानिच ॥ समभागानिसर्वाणिनवभागोहतायसः ॥ १६५ ॥ एतदेकीकृतंचूर्णंमधुसर्पिर्युतंलिहेत्॥ गोमूत्रमथवातक्रमनुपानेप्रशस्यते ॥१६६॥ पांडुरोगंजयत्युग्रंत्रिदोषंचभगंदरम् ॥ शोथकुष्ठोदरार्शांसिमंदाग्निमरुचिंकृमीन् ॥ १६७ ॥

अर्थ—१ चीतेकी छाल, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आंवला, ५ नागरमोथा, ६ वायविडंग, ७ सोंठ, ८ काली मिरच और ९ पपिल ये नौ औषध समान भाग ले चूर्ण करके उस चूर्णके समान लोहभस्म मिलावे । फिर इस चूर्णको सहत और घीके साथ अथवा गोमूत्रसे अथवा गौकी छाछसे सेवन करे तो बडा भारी घोर पांडुरोग, त्रिदोष, भगन्दर, सूजन, कोढ, उदररोग, बवासीर, मन्दाग्नि, अरुचि और कृमिरोग इन सबको नष्ट करे ॥

अकारकरभादिचूर्ण स्तंभनपर ।

अकारकरभःशुंठीकंकोलंकुंकुमंकणा ॥ जातीफलंलवंगंचचंदनंचेतिकार्षिकान् ॥ १६८॥ चूर्णानिमानतःकुर्यादहिफेनंपलोन्मितम् ॥ सर्वमेकीकृतंसूक्ष्मंमाषैकंमधुनालिहेत् ॥ १६९ ॥ शुक्रस्तंभकरंचूर्णंपुंसामानंदकारकम् ॥ नारीणांप्रीतिजननंसेवेतनिशिकामुकः ॥ १७० ॥

अर्थ—अकरकरा, २ सोंठ, ३ कंकोल, ४ केशर, ५ पीपल, ६ जायफल, ७ लौंग और ८ सफेद चन्दन ये आठ औषध एक एक तोला लेवे तथा अफीम चार तोले लेवे। इन सबका एकत्र चूर्ण करके १ मासेके अनुमान इस चूर्णको सहतसे रात्रिके समय सेवन करे तो वातुका स्तंभन होकर पुरुषको आनन्द होय तथा स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न होय ॥

मंजन।

बकुलत्वग्भवंचूर्णंघर्षयेद्दंतपंक्तिषु ॥
वज्रादपिदृढीभूतादन्ताः स्युश्चपलाध्रुवम् ॥ १७१ ॥
इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने
चूर्णकल्पनाध्यायःषष्ठः ॥ ६ ॥

अर्थ—मौलसिरीकी छालके चूर्णको दांतोंमें घिसाकरे तो हिलते हुएभी दांत वज्रके समान दृढ होवें इसमें सन्देह नहीं ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे माथुरभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

वटिकाश्चाथकथ्यंतेतन्नामगुटिकावटी ॥ मोदकोवटिकापिंडी
गुडोवर्तिस्तथोच्यते ॥ १ ॥ लेहवत्साध्यतेवह्नौगुडोवाशर्कराथवा
॥ गुग्गुलुंवाक्षिपेत्तत्रचूर्णंतन्निर्मितावटी ॥ २ ॥ प्रकुर्याद्वह्निसिद्धेनक्वचिद्गुग्गुलुनावटी ॥ द्रवेणमधुनावापिगुटिकां कारयेद्बुधः
॥ ३ ॥ सिताचतुर्गुणादेया वटीषुद्विगुणोगुडः ॥ चूर्णाच्चूर्णसमः कार्योगुग्गुलुर्मधुतत्समम् ॥ ४ ॥ द्रवंचद्विगुणंदेयं
मोदकेषुभिषग्वरैः ॥ कर्षप्रमाणातन्मात्राबलंदृष्ट्वाप्रयुज्यताम्॥५॥

अर्थ—१ गुटिका, २ वटी, ३ मोदक, ४ वटिका, ५ पिंडी, ६ गुड और ७ बत्ती ये सात वटिका अर्थात् गोलीके पर्याय शब्द हैं। इनका बनाना इस प्रकार है कि गुड, खांड अथवा गूगलका पाक करके उसमें चूर्ण मिलायकर गोली बनानी चाहिये। यदि पाक करे विना गोली बनानी होवे तो गूगलको शोध पीस उसमें चूर्ण मिलायके घीसे गोली बनाय लेवे। अथवा जल दूध सहत आदि पतली वस्तुओंमें चूर्ण डालके खरल कर गोली बनाय लेवे। यदि खांड मिश्री आदि डालके गोली बनानी होवे तो चूर्णसे चौगुनी मिश्री मिलायके गोली बनावे।

यदि गुड मिलायके गोली करनी होवे तो चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे । कभी गूगल और सहत दोनों डालके गोली बनानी हो तो गूगल और सहत ये दोनों चूर्णके समान भाग लेकर गोली बनावे । और पानी दूध इत्यादि द्रव पदार्थसे गोली बनानी होवे तो चूर्णसे दूना डालके गोली बनानी चाहिये । चूर्णके सेवनकी मात्राका प्रमाण १ तोला है अथवा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार वैद्यको मात्रा देनी चाहिये ॥

बाहुशालगुड बवासीरपर ।

इंद्रवारुणिकामुस्तंशुंठीदंतीहरीतकी ॥ त्रिवृत्सटीविडंगानिगोक्षुरश्चित्रकस्तथा ॥ ६ ॥ तेजोह्वाचाग्निकर्षाणिपृथग्द्रव्याणिकारयेत् ॥ सूरणस्यपलान्यष्टौवृद्धदारुचतुष्पलम् ॥ ७॥ चतुःपलंस्याद्भल्लातः क्वाथयेत्सर्वमेकतः ॥ जलद्रोणेचतुर्थांशंगृहीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥ ८ ॥ क्वाथ्यद्रव्यात्त्रिगुणितंगुडं क्षिप्त्वा पुनःपचेत् ॥ सम्यकपक्वंचविज्ञायचूर्णमेतत्प्रदापयेत् ॥ ९ ॥ चित्रकस्त्रिवृतादंतीतेजोह्वापालिकाःपृथक् ॥ पृथक्त्रिपलिकाः कार्याव्योषैलामरिचत्वचः ॥ १० ॥ निक्षिपेन्मधुशीतेचतस्मिन्प्रस्थप्रमाणतः ॥ एवंसिद्धोभवेच्छ्रीमान्बाहुशालगुडः शुभः ॥ ११ ॥ जयेदर्शांसिसर्वाणिगुल्मंवातोदरं तथा ॥ आमवातंप्रतिश्यायंग्रहणीक्षयपीनसान् ॥ १२ ॥ हलीमकं पांडुरोगंप्रमेहंचरसायनम् ॥

अर्थ—१ इन्द्रायनकी जड, २ नागरमोथा, ३ सोंठ, ४ दन्ती, ५ जंगीहरड, ६ निसोथ, ७ कचूर, ८ वायविडंग, ९ गोखरू, १० चीतेकी छाल, ११ तेजबल ये ग्यारह औषध प्रत्येक दो दो तोले लेवे, जमीकन्द (सूरन) आठ पल, विधायरा १६ तोले, भिलावें ४ पल ले । इन सब औषधोंको एकत्र कूट पीस उसमें दो द्रोण जल डालके अग्निपर चढाय मन्दी २ आंचसे चतुर्थांश जल शेष रहे पर्यन्त काढा करे । और सब औषधोंसे तिगुना गुड डालके फिर औटायके पाक करे फिर इस पाकमें आगे कही हुई औषधोंका चूर्ण डाले । जैसे—चीतेकी छाल, निशोथ, दन्ती, तेजबल ये चार औषध एक २ पल ले । सोंठ, मिरच, पीपल, आंवले, दालचीनी ये पांच औषध तीन पल ले । सबका चूर्ण कर उस पाकमें मिलावे । इसको बाहुशाल गुड कहते हैं । इस गुडके खानेसे संपूर्ण बवासीर, गुल्म, वातोदर, बादीसे अंगोंका जकडना, आमवात, सरेकमा, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पांडुरोग और प्रमेह दूर होवे । यह बाहुशाल गुड रसायन है ।

मरिचादिगुटिका खाँसीपर ।

मरिचंकर्षमात्रंस्यात्पिप्पलीकर्षसंमिता ॥१३॥ अर्धकर्षोयवक्षारः कर्षयुग्मंचदाडिमम् ॥ एतच्चूर्णीकृतंयुंज्यादष्टकर्षगुडेनहि ॥ १४ ॥ शाणप्रमाणांगुटिकांकृत्वावक्त्रेविधारयेत् ॥
अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपिकासायांत्येवसंक्षयम् ॥ १५ ॥

अर्थ—कालीमिरच और पीपल २ तोले, जवाखार आधा तोला, अनारकी छाल २ तोले इन चार औषधोंका चूर्ण कर ८ आठ तोले गुड मिलायके ४ मासेकी गोली बनावे । फिर इस गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण जातिकी खाँसी दूर होवे इसमें संशय नहीं ॥

व्याघ्रीआदिगुटिका ऊर्ध्ववातपर ।

व्याघ्रीजीरकधात्रीणांचूर्णमधुयुतंलिहेत् ॥
ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यतेक्षणात् ॥ १६ ॥

अर्थ—१ कटेरी, २ जीरा और ३ आँवला इन तीन औषधोंका चूर्ण करके सहत मिलायके चाटे तो ऊर्ध्ववायु, महाश्वास और तमकश्वास ये सब रोग तत्काल दूर हों ॥

गुडादिगुटिका श्वासखाँसीपर ।

गुडशुंठीशिवामुस्तैर्गुटिकांधारयेन्मुखे ॥
श्वासकासेषुसर्वेषुकेवलंवाविभीतकम् ॥ १७ ॥

अर्थ—१ सोंठ, २ जंगी हरड और ३ नागरमोथा इन तीन औषधोंको कूट पीस इसमें दूना गुड मिलायके गोली बनावे । फिर एक गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण खाँसी और श्वास ये दूर हों । अथवा साबत बहेडेकी छालको मुखमें रखनेसे श्वास और खाँसी दूर होवे ॥

आमलक्यादिगुटिका मुखशोषादिपर ।

आमलंकमलंकुष्ठंलाजाश्चवटरोहकम् ॥ एतच्चूर्णस्यमधुनागुटिकांधारयेन्मुखे ॥ १८ ॥ तृष्णांप्रवृद्धांहंत्येषामुखशोषंचदारुणम् ॥

अर्थ—१ आमला, २ कमल ३ कूट, ४ खील और ५ बडकी कोपल इन पांच औषधोंको सहतमें मिलायके गोली बनावे । इसको मुखमें रक्खे तो अत्यंत प्यासका लगना और मुखके घोर शोषको यह दूर करे ॥

संजीवनीगुटिका सन्निपातादिकोंपर ।

विडंगंनागरंकृष्णापथ्यामलबिभीतकौ ॥ १९ ॥ वचागुडूची

[illegible] एकभाग [illegible]

भल्लातंसविषंचात्रयोजयेत् ॥ एतानिसमभागानिगोमूत्रेणैवपेषयेत्॥२०॥
गुंजाभागुटिकाकार्यादद्यादार्द्रकजैरसैः॥ एकामजीर्णगुल्मेषुद्वेविषूच्यांचदापयेत् ॥ २१॥
तिस्रश्चसर्पदष्टेतुचतस्रः संनिपातके॥ वटीसंजीवनीनाम्नासंजीवयतिमानवम् ॥२२॥

अर्थ—१ वायविडंग, २ सोंठ, ३ पीपल, ४ जंगीहरड, ५ आँवला, ६ बहेडा, ७ वच, ८ गिलोय, ९ भिलावें, १० बच्छनाग (शुद्ध किया हुआ) इन दश औषधोंको समान भाग लेकर गौके मूत्रमें पीसके एक २ रत्तीकी गोली बनावे। फिर इसको अदरखके रससे अजीर्ण रोगमें तथा गोलाके रोगमें १ गोली सेवन करे, विषूचिका (हैजा) में दो गोली, सर्पके विषपर तीन गोली, सन्निपातमें चार गोली सेवन करे। यह गोली मनुष्योंको संजीवन करनेवाली है इसीसे इसको संजीवनी गुटिका कहते हैं ॥ [illegible] २५ दिन [illegible]

गोलीबनानी.

व्योषादिगुटिका पीनसपर

व्योषाम्लवेतसंचव्यंतालीसंचित्रकस्तथा ॥ जीरकंतिंतडीकंचप्रत्येकंकर्षभागिकम् ॥ २३ ॥
त्रिसुगंधंत्रिशाणंस्याद्गुडः स्यात्कर्षविंशतिः ॥ व्योषादिगुटिकासामपीनसश्वासकासजित् ॥ २४ ॥
रुचिस्वरकराख्याताप्रतिश्यायप्रणाशिनी ॥

अर्थ—१ सोंठ, २ कालीमिरच, ३ पीपल, ४ अमलवेत, ५ चव्य, ६ तालीसपत्र, ७ चित्रक, ८ जीरा, ९ इमलीकी छाल इन नौ औषधोंको एक २ तोला लेवे। तथा १ दालचीनी, २ इलायचीदाने, ३ पत्रज ये तीन औषध तीन २ शाण लेवे। फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें २० तोले गुड मिलायके गोली बनाय लेवे। यह व्योषादि गुटिका आमपीनसको रोग, श्वास, खाँसी इन सब रोगोंको दूर करे तथा मुखमें रुचि प्रगट करे इससे स्वर (आवाज) शुद्ध हो तथा सरेकमा दूर होय ॥ गोलीकी चासनी [illegible]

[illegible] गुडकी चासनी [illegible] करके [illegible]

गुडवटिकाचतुष्टय आमादिकोंपर। बनाना -

आमेषुसगुडांशुंठीमजीर्णेगुडपिप्पलीम् ॥ २५ ॥
कृच्छ्रेजीरगुडंदद्यादर्शःसुचगुडाभयाम् ॥

अर्थ—सोंठके चूर्णमें गुड मिलायके गोली बनाकर भक्षण करे तो आँव दूर होवे। गुड और पीपल एकत्र करके गोली बनावे इसके सेवनसे अजीर्ण दूर हो। गुड और जीरेको एकत्र कूट पीस गोली बनावे आर इसको सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र दूर हो, एवं छोटी हरडके चूर्णमें गुड मिलायके गोली बनावे। इसको सेवन करे तो बवासीरका रोग दूर होवे ॥

वृद्धदारकमोदक बवासीरपर।

वृद्धदारकभल्लातशुंठीचूर्णेनयोजितः ॥ २६ ॥
मोदकः सगुडो हन्यात्षड्विधार्शःकृतांरुजम् ॥

अर्थ—१ विधायरा, २ भिलावें और ३ सोंठ इन तीन औषधोंके समान भागका चूर्ण कर चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे। इसके खानेसे छः प्रकारका बवासीररोग नष्ट होय ॥

सूरणवटक बवासीरपर।

शुष्कसूरणचूर्णस्यभागान्द्वात्रिंशदाहरेत् ॥ २७ ॥
भागान्षोडशचित्रस्यशुंठ्याभागचतुष्टयम् ॥
द्वौभागौमरिचस्यापिसर्वाण्येकत्रकारयेत् ॥ २८ ॥
गुडेनपिंडिकांकुर्यादर्शसांनाशिनींपराम् ॥

अर्थ—१ जमींकंदको सुखायके चूर्ण कर ३२ तोले ले। चीतेकी छाल १६ तोले, सोंठ ४ तोले और काली मिरच २ तोले ले सबका कूट पीस चूर्ण करे। चूर्णके समान गुड मिलायके गोली बनावे। इस गोलीको नित्य खानेसे छः प्रकारकी बबासीर नष्ट होवे। यह सूरणवटक कहाता है ॥

बृहत्सूरणवटक बवासीरपर। आर्द्रसूरणं गुडपक्वं द्विगुण मत्र योज्यम्।

सूरणोवृद्धदारश्चभागैः षोडशभिः पृथक् ॥२९॥ मुसलीचित्रकौज्ञेयावष्टभागमितौपृथक् ॥ शिवाविभीतकोधात्रीविडंगं नागरंकणा ॥ ३० ॥ भल्लातः पिप्पलीमूलंतालीसंचपृथक्पृथक् ॥ चतुर्भागप्रमाणानित्वगेलामरिचंतथा ॥ ३१ ॥ द्विभागमात्राणि पृथक्ततस्त्वेकत्रचूर्णयेत् ॥ द्विगुणेनगुडेनाथवटकान्धारयेद्बुधः ॥ ३२ ॥ प्रबलाग्निकराह्येषातथाशोनाशनापरम् ॥ ग्रहणीं वातकफजांश्वासंकासंक्षयानयम्॥३३॥प्लीहानंश्लीपदं शोफं हिक्कांमेहंभगंदरम् ॥ निहन्युः पलितंवृष्यास्तथामेध्यारसायनाः ॥ ३४ ॥

अर्थ—जमींकंद १६ तोले, विधायरा १६ तोले, मूसरी ८ तोले, चीतेकी छाल ८ तोले लेवे। १ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ वायविडंग, ५ सोंठ, ६ पीपल, ७ भिलावें, ८ पीपरामूल और ९ तालीसपत्र ये नौ औषध चार २ तोले लेय। एवं १ दालचीनी, २ इलायची,

३ काली मिरच ये तीन औषध दो दो तोले लेय । इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें सब चूणस दूना गुड मिलायके गोली बनावे इसको सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त होय और बवासीरका रोग, वात कफसे उत्पन्न हुई संग्रहणी, श्वास, खाँसी, क्षय, पेटमें होनेवाला प्लीहाका रोग, श्लीपदरोग, सूजन, हिचकी, प्रमेह, भगंदर और जिससे सफेद बाल होवें ऐसा पलित रोग ये सब दूर होवे । यह गोली स्त्रीगमनकी इच्छा करती है तथा बुद्धि देती है एवं शरीरकी वृद्धावस्थाको दूर करती है ॥

नोट- यदि इस योग में से- दालचीनी- दारुहल्दी- स्वर्ण माक्षिक भस्म- करदी जायतो
यह- यकृत रक्त मंडूर होजाता है
[illegible] प्रयोग

मंडूरवटक कामलादिकोंपर ।

त्रिफलंत्र्यूषणंचव्यंपिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ दारुमाक्षिकधातुस्त्वग्दार्वीमुस्तांविडंगकम् ॥ ३५ ॥ प्रत्येकंकर्षमात्राणिसर्वद्विगुणितंतथा ॥ मंडूरंचूर्णयेत्सर्वंगोमूत्रेऽष्टगुणेक्षिपेत् ॥३६॥ पक्त्वाचवटकान्कृत्वादद्यात्तक्रानुपानतः ॥ कामलापांडुमेहार्शःशोथकुष्ठकफामयान् ॥ ३७ ॥ ऊरुस्तंभमजीर्णंचप्लीहानं नाशयंतिच ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ सोंठ, ५ मिरच, ६ पीपल, ७ चव्य, ८ पीपरामूल, ९ चीतेकी छाल, १० देवदारु, ११ सुवर्णमाक्षिककी भस्म, १२ दालचीनी, १३ दारुहलदी, १४ नागरमोथा और १५ वायविडंग इन पंद्रह औषधोंको तोल २ भर लेकर चूर्ण करे इस चूर्णसे दूनी मंडूर मिलावे और सबसे आठगुना गोमूत्र लेकर उसमें उस चूर्ण और मंडूरको डालके औटाकर गाढा करे । जब गोली बँधने योग्य होय तब गोली बनाय लेवे । इस गोलीको छाँछके साथ सेवन करे तो नेत्रोंमें जो कमलवायुरोग (पीलियाका भेद) होता है सो दूर होवे । तथा पांडुरोग, प्रमेह, बवासीर, सूजन, कोढ, कफके विकार, जिस करके जाँघोंका स्तंभन होय वह वायु, अजीर्ण, प्लीहा इन सबको दूर करे ॥

पिप्पलीमोदक धातुज्वरादिकोंपर ।

क्षौद्राद्द्विगुणितंसर्पिर्घृताद्द्विगुणपिप्पली ॥ ३८ ॥ सिताद्विगुणितातस्याःक्षीरंदेयंचतुर्गुणम् ॥ चातुर्जातंक्षौद्रतुल्यंपक्त्वाकुर्याच्चमोदकान् ॥ ३९ ॥ धातुस्थांश्चज्वरान्सर्वाञ्छ्वासंकासंचपांडुताम् ॥ धातुक्षयंवह्निमांद्यंपिप्पलीमोदकोजयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ–सहतसे दूना घी और घीसे दूनी पीपल, पीपलकी दूनी मिश्री, मिश्रीका चौगुना दूध ले तथा १ दालचीनी, २ तमालपत्र, ३ इलायचीके बीज और ४ नागकेशर इन चारोंका चूर्ण सहतके समान लेना चाहिये । फिर सबका पाक करके लड्डू बनावे । एक लड्डू नित्य सेवन करे तो धातुगतज्वर, श्वास, खाँसी, पांडुरोग, धातुक्षय, मंदाग्नि इन सब विकारोंको नष्ट करता है ॥

चन्द्रप्रभागुटिका प्रमेहादिकोंपर ।

चन्द्रप्रभावचामुस्तंभूनिम्बामृतदारुकम् ॥ हरिद्रादिविषादार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ४१ ॥ धान्याकंत्रिफलंचव्यंविडङ्गंगजपिप्पली ॥ व्योषंमाक्षिकधातुश्चद्वौक्षारौलवणत्रयम् ॥४२॥ एतानिशाणमात्राणिप्रत्येकंकारयेद्बुधः ॥ त्रिवृद्दन्तीपत्रकंचत्वगेलावंशरोचना ॥ ४३ ॥ प्रत्येकंकर्षमात्रंचकुर्यादेतानि बुद्धिमान् ॥ द्विकर्षंहतलोहंस्याच्चतुःकर्षासिताभवेत् ॥४४॥ शिलाजत्वष्टकर्षंस्यादष्टौकर्षास्तुगुग्गुलोः॥एभिरेकत्रसंक्षुण्णैः कर्तव्यागुटिकाशुभा ॥ ४५ ॥ चन्द्रप्रभेतिविख्यातासर्वरोगप्रणाशिनी ॥ प्रमेहान्विंशतिंकृच्छ्रंमूत्राघातंतथाश्मरीम् ॥४६॥ विबंधानाहशूलानिमेहन्यग्रन्थिमर्बुदम् ॥ अण्डवृद्धिंतथापांडुंकामलांचहलीमकम् ॥ ४७ ॥ अन्त्रवृद्धिंकटिशूलंकासंश्वासंविचर्चिकाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसिकण्डूंचप्लीहोदरभगन्दरे ॥ ४८ ॥ दन्तरोगंनेत्ररोगंस्त्रीणामार्तवजांरुजम् ॥ पुंसांशुक्रगतान्दोषान्मन्दाग्निमरुचिंतथा ॥ ४९ ॥ वायुंपित्तंकफंहन्याद्बल्यावृष्यारसायनी ॥ चन्द्रप्रभायांकर्षस्तुचतुःशाणोविधीयते ॥ ५० ॥

अर्थ—१ कपूर, २ वच, ३ नागरमोथा, ४ चिरायता, ५ गिलोय, ६ देवदारु, ७ हल्दी, ८ अतीस, ९ दारुहल्दी, १० पीपरामूल, ११ चीतेकी छाल, १२ धनिया, १३ हरड, १४ बहेडा, १५ आमला, १६ चव्य, १७ वायविडंग, १८ गजपीपल, १९ सोंठ, २० कालीमिरच, २१ पीपल, २२ सुवर्णमाक्षिककी भस्म, २३ सज्जीखार, २४ जवाखार, २५ सैंधवनमक, २६ संचर नमक और २७ विडनमक ये सत्ताईस औषध एक एक शाण प्रमाण लेवे । तथा १ निसोथ, २ दंती, ३ तमालपत्र, ४ दालचीनी, ५ इलायचीके दाने और ६ वंशलोचन ये छः औषध सोलह २ मासे लेकर इन सबका चूर्ण करे । फिर लोहभस्म दो तोले, मिश्री चार तोले, शिलाजीत ८ तोले लेवे । इन सब औषधोंको एक जगह कूट पीस एक जीव करके एक कर्ष अर्थात् चार शाणकी गोली बनावे । इस रसायनके विषयमें कर्षशब्द चार शाणका बोधक है । इस योगको 'चन्द्रप्रभा' इस प्रकार कहते हैं । यह संपूर्ण रोगोंको दूर करनेमें विख्यात है । इससे २० प्रकारके प्रमेह रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, मलबद्धता, पेटका फूलना, शूल, प्रमेह,

पिडिका, जिस करके अण्डकोश बढजावे वह रोग, पांडुरोग, कामला, हलीमक, अन्त्रवृद्धि, कमरकी पीडा, श्वास, खाँसी, विचर्चिका, कोढ, बवासीर, खुजली, प्लीहोदर, भगंदर, दाँतके रोग, नेत्रके रोग, स्त्रियोंके रजोधर्मसंबन्धी रोग, पुरुषोंके वीर्यके विकार, मन्दाग्नि, अरुचि, वात, पित्त और कफ इनका प्रकोप ये संपूर्ण रोग दूर होवें तथा यह चन्द्रप्रभावटी वल देनेवाली, स्त्रीगमनकी इच्छा करनेवाली तथा रसायन है ॥

कांकायनगुटिका गुल्मादिरोगोंपर ।

यवानीजीरकंधान्यमरीचंगिरिकर्णिका ॥ अजमोदोपकुञ्ची
चचतुःशाणापृथक्पृथक् ॥५१॥ हिंगुषट्शाणिकंकार्यंक्षारौल-
वणपञ्चकम् ॥ त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकंकल्पयेत्सुधीः
॥ ५२ ॥ दन्तीशटीपौष्करंचविडङ्गंदाडिमंशिवा ॥ चित्रोऽ-
म्लवेतसः शुण्ठीशाणैःषोडशभिःपृथक् ॥ ५३ ॥ बीजपूरर-
सेनैषांगुटिकाःकारयेद्बुधः ॥ घृतेनपयसामद्यैरम्लैरुष्णोदकेन
वा ॥ ५४ ॥ पिबेत्कांकायनप्रोक्तांगुटिकांगुल्मनाशिनीम् ॥
मद्येनवातिकंगुल्मंगोक्षीरेणचपैत्तिकम् ॥ ५५ ॥ मूत्रेणकफ-
गुल्मंचदशमूलैस्त्रिदोषजम् ॥ उष्ट्रीदुग्धेननारीणांरक्तगुल्मंनिवा-
रयेत् ॥ ५६ ॥ हृद्रोगंग्रहणीं शूलंकृमीनर्शांसिनाशयेत् ॥

अर्थ—१ अजमायन, २ जीरा, ३ धनिया, ४ कालीमिरच, ५ विष्णुक्रान्ता (कोयल), ६ अजमोदा और ७ कलौंजी ये सात औषध चार २ शाण लेवे । भुनी हींग छः शाण लेवे । १ जवाखार, २ सज्जीखार, ३ सैंधानमक, ४ संचरनमक, ५ बिडनोन, ६ समुद्रका नमक, ७ बांगडका नमक, ८ निसोथ ये आठ औषधि आठ २ शाण लेवे । तथा १ दंती, २ कचूर, ३ पुहकरमूल, ४ वायविडंग, ५ अनारकी छाल, ६ जंगीहरड, ७ चीतेकी छाल, ८ अमलवेत, ९ सोंठ ये औषध कूटी हुई सोलह २ शाण लेवे । फिर सब औषधोंको कूटपीस चूर्ण करे इस चूर्णको बिजोरेके रसमें खरल कर गोली बनाय लेवे । इसको (काकांयनगुटिका) कहते हैं । यह गुटिका घी, गौका दूध, खट्टा मद्य अथवा गरम पानी इनमेंसे किसी एकके साथ अनुपान माफिक गोला दूर होनेके वास्ते देवे । यह गोली मद्यके साथ लेनेसे वायुगोला दूर होय । गौके दूधसे सेवन करे तो पित्तका गोला नष्ट होवे । गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफगुल्म दूर होवे । दशमूलके काढेके साथ सेवन करे तो त्रिदोष अर्थात् सन्निपातका गोला दूर होवें । ऊँटनीके दूधके साथ खानेसे स्त्रियोंका

रक्तगुल्म दूर होवे । तथा यथायोग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे यह हृदयरोग, संग्रहणी, शूल, कृमिरोग और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट कर ॥

योगराजगूगल वातादिरोगोंपर ।

नागरंपिप्पलीचव्यंपिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ५७ ॥ भृष्टंहिंग्वजमोदंचसर्षपाजीरकद्वयम् ॥ रेणुकेंद्रयवापाठाविडंगगजपिप्पली ॥ ५८ ॥ कटुकातिविषाभार्ङ्गीवचामूर्वेतिभागतः ॥ प्रत्येकंशाणिकानिस्युर्द्रव्याणिमानिविंशतिः ॥ ५९ ॥ द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्चत्रिफलाद्विगुणाभवेत् ॥ एभिश्चूर्णीकृतैःसर्वैः समोदेयस्तुगुग्गुलुः ॥ ६० ॥ वंगंरौप्यंचनागंचलोहसारंतथाभ्रकम् ॥ मंडूरंरससिंदूरंप्रत्येकंपलसंमितम् ॥ ६१ ॥ गुडपाकसमंकृत्वाइमंदद्याद्यथोचितम् ॥ एकपिंडंततः कृत्वाधारयेद्घृतभाजने ॥ ६२॥ गुटिकाःशाणमात्रास्तुकृत्वाग्राह्यायथोचिताः॥गुग्गुलुर्योगराजोयंत्रिदोषघ्नोरसायनम् ॥६३॥ मैथुनाहारपानानांत्यागोनैवात्रविद्यते ॥ सर्वान्वातामयान्कुष्ठानर्शांसिग्रहणीगदम् ॥ ६४ ॥ प्रमेहंवातरक्तंच नाभिशूलंभगंदरम् ॥ उदावर्तंक्षयंगुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥ ६५ ॥ मन्दाग्निश्वासकासांश्चनाशयेदरुचिंतथा ॥ रेतोदोषहरः पुंसांरजोदोषहरःस्त्रियाम् ॥ ६६॥ पुंसामपत्यजनकोवंध्यानांगर्भदस्तथा ॥ रास्नादिक्वाथसंयुक्तोविविधंहंतिमारुतम् ॥ ६७ ॥ काकोल्यादिशृतात्पित्तंकफमारग्वधादिना ॥ दार्वीशृतेनमेहांश्चगोमूत्रेणैवपांडुताम् ॥ ६८ ॥ मेदोवृद्धिंचमधुनाकुष्ठंनिंबशृतेन वा ॥ छिन्नाक्वाथेनवातास्रंशोथंशूलंकणाशृतात् ॥ ॥ ६९ ॥ पाटलाक्वाथसहितोविषंमूषकजंजयेत् ॥ त्रिफलाक्वाथसहितोनेत्रार्तिं हंतिदारुणाम् ॥७०॥ पुनर्नवादेः क्वाथेनहन्यात्सर्वोदराण्यपि॥

अर्थ—१ सोंठ, २ पीपल, ३ चव्य, ४ पीपरामूल, ५ चीतेकी छाल, ६ भुनीहुई हींग,

५ केमिकल वैद्यरत्नु वंगभस्म [illegible]

७ अजमोद, ८ सरसों, ९ जीरा, १० कालाजीरा, ११ रेणुका, १२ इन्द्रजौ, १३ पाढ, १४ वायविडंग, १५ गजपीपल, १६ कुटकी, १७ अतीस, १८ भारंगी, १९ वच और २० मूर्वा ये वसि औषध एक एक शाण लेवे । इन औषधोंका दुगुना त्रिफला लेवे । फिर इन सब औषधोंको कूटकर चूर्ण करके इस चूर्णके समानभाग शुद्ध गूगल लेकर खरलमें डालके खूब बारीक पीसके गुडके पाकसमान पतला करके उसमें पूर्वोक्त चूर्णको मिलाय देवे । पश्चात् वंग, रूपरस, नागेश्वर, लोहसार, अभ्रक, मण्डूर और रससिंदूर इन सातोंकी भस्म चार २ तोले लेकर उस गूगलमें मिलाय देवे । सबका एक गोला बनावे । फिर इनमेंसे चार २ मासेकी गोलियां बनावे । इनको घीके चिकने बासनमें भरके धर रक्खे इसको योगराजगूगल कहते हैं । यह गूगल सेवन करनेसे त्रिदोषको दूर करे तथा रसायन है । इसके ऊपर मैथुन करना खाना पीना इनका निषेध नहीं है । विना पथ्यके भी गुण करता है । इससे संपूर्ण वादीके रोग, कोढ, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिका शूल, भगन्दर, उदावर्त, क्षयरोग, गोलेका रोग, मृगीरोग, उरोग्रह, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास और अरुचि ये सब रोग नष्ट होते हैं । यह योगराजगूगल पुरुषोंके धातुविकारको दूर करता है और स्त्रियोंके रजोदर्शनसंबन्धी रोगोंको दूर करता है। पुरुषोंके धातुकी वृद्धि करके पुत्र देता है । बाँझ स्त्रियोंको गर्भ देता है । रास्नादि काढेके साथ सेवन करनेसे अनेक प्रकारके वायु दूर होंय । काकोल्यादि काढेसे सेवन करे तो पित्तरोग दूर होवे और आरग्वधादि काढेके साथ सेवन करे तो कफविकार दूर हो । दारुहल्दीके काढेसे सेवन करे तो प्रमेहको दूर करे । गोमूत्रसे सेवन करे तो पांडुरोगको नष्ट करे । जो प्राणी मेदाके बढनेसे अधिक मोटा हो गया हो वह सहतके साथ इसे सेवन करे । कुष्ठरोगमें नीमकी छालके काढेसे सेवन करे । वातरक्तरोगमें गिलोयके काढेसे खाय । शूल और सूजन इनमें पीपलके काढेसे सेवन करे । मूसेके विषपर पाडलके काढेसे सेवन करे । नेत्ररोगमें त्रिफलाके काढेसे साधन करे । और पुनर्नवादि काढेके साथ संपूर्ण उदरके रोगोंपर सेवन करना चाहिये । इस प्रकार इस योगराजगूगलके अनुपान हैं, बाकी अपनी बुद्धिसे वैद्य कल्पना करै ॥

८ कैशोरगूगल वातरक्तादिकोंपर ।

त्रिफलायास्त्रयःप्रस्थाः प्रस्थैकाचामृताभवेत् ॥ ७१ ॥ संकुच्यलोहपात्रेषुसार्धद्रोणांबुनापचेत् ॥ जलमर्धशृतंज्ञात्वागृहीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ७२ ॥ क्वाथेक्षिपेत्तुशुद्धंचगुग्गुलुंप्रस्थसंमितम् ॥ पुनः पचेदयःपात्रेदर्व्यासंघट्टयेन्मुहुः ॥७३ ॥ सांद्रीभूतंचतंज्ञात्वागुडपाकसमाकृतिम् ॥ चूर्णीकृत्यततस्तत्रद्रव्याणीमानिनिक्षिपेत् ॥७४॥ त्रिफलार्द्धपलाज्ञेयागुडूचीपलिका

मता ॥ षडक्षंत्र्यूषणंप्रोक्तंविडङ्गानांपलार्धकम् ॥ ७५ ॥ दंती कर्षमिताकार्यात्रिवृत्कर्षमितास्मृता ॥ ततःपिण्डीकृतंसर्वं घृतपात्रेविनिक्षिपेत् ॥ ७६ ॥ गुटिकाशाणिकाकार्यायुंज्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥ अनुपानेभिषग्दद्यात्कोष्णनीरंपयोथवा ॥ ७७ ॥ मञ्जिष्ठादिशृतंवापियुक्तियुक्तमतःपरम् ॥ जयेत्सर्वाणिकुष्ठानिवातरक्तंत्रिदोषजम् ॥ ७८ ॥ सर्वव्रणांश्चगुल्मांश्च प्रमेहपिडिकास्तथा ॥ प्रमेहोदरमन्दाग्निकासश्वयथुपांडुजान् ॥ ७९ ॥ हन्तिसर्वामयान्नित्यमुपयुक्तोरसायनम् ॥ कैशोरकाभिधानोयंगुग्गुलुःकांतिकारकः ॥ ८० ॥ वासादिनानेत्रगदान्गुल्मादीन्वरुणादिना ॥ क्काथेनखदिरस्यापि व्रणकुष्ठानि नाशयेत् ॥ ८१ ॥ अम्लंतीक्ष्णमजीर्णंचव्यवायंश्रममातपम् ॥ मद्यंरोषंत्यजेत्सम्यग्गुणार्थीपुरसेवकः ॥ ८२॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ गिलोय ये चारों औषध एक २ प्रस्थ लेवे । इनको कुछ कूटकर लोहेकी कढाईमें डेढ द्रोण पानी डालके उसमें इन औषधोंको डालके आधा पानी रहनेपर्यन्त औटावे, फिर इसको दूसरे पात्रमें कपडेमें छानके इसमें शुद्ध किया हुआ गूगल १ प्रस्थ प्रमाण लेकर बारीक कूटके मिलाय देवे । फिर इस गूगलयुक्त काढेको अग्निपर लोहेकी कढाईमें चढायके लोहेकी कलछीसे वारंवार चलाता जावे । इस प्रकार गुडके पाकसमान होने पर्यन्त गाढा करे । फिर इसमें आगे लिखी हुई औषधोंका चूर्ण करके डाले । उन औषधोंको कहते हैं–१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ गिलोय ये चार औषध आधे २ पल लेय । १ सोंठ, २ कालीमिरच और ३ पीपल ये तीन औषध दो दो अक्ष लेवे, वायविडंग आधा पल लेय, दंती एक कर्ष, निसोथ एक कर्ष इन सब औषधोंका चूर्ण कर उस गूगलके पाकमें मिलायके कूट डाले जब एक जीव होजावे तब एक एक शाणकी गोली बनाय लेवे । इनको घीके चिकने बासनमें रख देवे । इसको कैशोरगूगल कहते हैं । इस गूगलको गरम जलके साथ अथवा दूधके साथ अथवा मंजिष्ठादि काढेसे सेवन करे । यह गोली रोगीकी शक्तिका तथा रोगका तारतम्य देखके अनुपानके साथ देवे तो संपूर्ण कुष्ठ तथा त्रिदोषसे उत्पन्न हुए वातरक्त तथा संपूर्ण व्रण, गोला, प्रमेह, उदर, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास और पांडुरोग ये दूर होवें । यह कैशोरगूगल कांतिको देता है । वासकादि काढेके साथ सेवन करनेसे नेत्रके रोग दूर हों तथा वरुणादि काढेके साथ सेवन करनेसे गुल्मादिक रोग दूर हों । खदिरादि

काढेके साथ सेवन करनेसे व्रण और कुष्ठरोग दूर होवें । अब गूगलसेवनकर्त्ता प्राणीको इसका पथ्य कहते हैं । जैसे कि खटाई, तक्षिण पदार्थ, अजीर्ण, स्त्रीसे मैथुन करना, परिश्रम करना, धूपमें रहना, मद्य पीना तथा क्रोध करना, ये सब वस्तु गूगलसेवनकर्त्ता जिस प्राणीको गुणकी इच्छा हो उसको त्याज्य हैं । जो अपथ्यको त्याग पथ्यके साथ गूगल सेवन करता है उसकोही गुण होता है, अन्यथा गुणके बदले अवगुण होता है । इति कैशोरगुग्गुलु ॥

त्रिफलागूगल भगन्दररोगादिकोंपर ।

त्रिपलंत्रिफलाचूर्णंकृष्णाचूर्णपलोन्मितम् ॥ गुग्गुलुःपञ्चपलिकःक्षोदयेत्सर्वमेकतः ॥ ८३ ॥ ततस्तुगुटिकांकृत्वाप्रयुंज्याद्वह्न्यपेक्षया ॥ भगन्दरंगुल्मशोथावर्शांसिचाविनाशयेत् ॥ ८४ ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला और ४ पीपल ये चार औषध एक एक पल लेकर चूर्ण करे । फिर शुद्ध किया हुआ गूगल ५ पल ले इन सबको बारीक कूट पीसके गोली बनावे । रोगीके जठराग्निका बलाबल विचारके इसे देवे तो भगन्दररोग, गोलेका रोग, सूजन और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करे ॥

गोक्षुरादिगूगल प्रमेहादिरोगोंपर ।

अष्टाविंशतिसंख्यानिपलान्यानीयगोक्षुरात् ॥ विपचेत्षड्गुणेनीरेक्काथोग्राह्योऽर्धशेषितः ॥ ८५ ॥ ततःपुनःपचेत्तत्रपुरंसप्तपलंक्षिपेत् ॥ गुडपाकसमाकारं ज्ञात्वा तत्र विनिक्षिपेत् ॥ ८६ ॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्तंचूर्णितंपलसप्तकम् ॥ ततःपिंडीकृतंचास्य गुटिकामुपयोजयेत् ॥ ८७ ॥ हन्यात्प्रमेहंकृच्छ्रंच प्रदरंमूत्रघातकम् ॥ वातास्रंवातरोगांश्चशुक्रदोषंतथाश्मरीम् ॥ ८८ ॥

अर्थ–अट्ठाईस पल (११२ तोले) गोखरू लेकर जवकूट करके छः गने पानीमें चढायके जबतक आधा न जले तबतक औटावे । जब आधा जल रहे तब शुद्ध किया गूगल ७ पल प्रमाण लेकर उत्तम रीतिसे कूट पीसके उस काढेमें मिलाय देवे । फिर उस काढेका गुड़के समान पाक करे । जब गाढा हो जावे तब आगे लिखी हुई औषधोंको मिलावे । जैसे १ सोंठ, २ कालीमिरच, ३ पीपल, ४ हरड, ५ बहेडा, ६ आंवला, ७ नागरमोथा ये सात औषध एक एक पल प्रमाण लेवे । सबका चूर्ण करके उस पाककी चासनीमें मिलायके एक गोला बनाय ले । फिर इसकी गोली बनाय ले । इसके सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, स्त्रियोंका प्रदररोग, मूत्राघात, वातरक्त, बादीके रोग, धातुके विकार अर्थात् वीर्यसंबन्धी रोग और पथरी इन स रोगोंको दूर करे ॥

चंद्रकलागुटिका प्रमेहपर ।

एलासकर्पूरसितासधात्रीजातीफलं गोक्षुरशाल्मलीत्वक् ॥ सूतेंद्रवंगायसभस्मसर्वमेतत्समानंपरिभावयेच्च ॥ ८९ ॥ गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्धमात्रामधुनाततश्च ॥ बद्धा गुटी चंद्रकलेतिनाम्नामेहेषुसर्वेषुचयोजनीया ॥ ९० ॥

अर्थ–१ इलायचीके दाने, २ कपूर शुद्ध, ३ मिश्री आंवले, ४ जायफल, ५ गोखरू, ६ कांटेदार सेमरकी छाल, ७ रससिंदूर, ८ वंगभस्म और ९ लोहभस्म ये नौ औषध समान भाग लेकर इनको गिलोय और सेमरके काढेकी भावना देकर दो दो मासेकी गोली बनावे । इनको सहतमें मिलायके खावे तो सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होव ॥

त्रिफलादिमोदक कुष्ठादिकोंपर ।

त्रिफलात्रिपलाकार्याभल्लातानांचतुःपलम् ॥ बाकुचीपंचपलिकाविडंगानांचतुःपलम् ॥ ९१ ॥ हतलोहंत्रिवृच्चैवगुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ एकैकंपलमात्रंस्यात्पलार्धंपौष्करंभवेत् ॥ ९२ ॥ चित्रकस्यपलार्धंस्यात्त्रिशाणंमरिचंभवेत् ॥ नागरंपिप्पली मुस्ता त्वगेलापत्रकुंकुमम् ॥ ९३ ॥ शाणोन्मितंस्यादेकैकं चूर्णयेत्सर्वमेकतः ॥ ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णंपक्वखंडेचतत्समे ॥ ॥ ९४ ॥ मोदकान्पलिकान्कृत्वाप्रयुंजीतयथोचितम् ॥ हन्युः सर्वाणिकुष्ठानित्रिदोषप्रभवामयान् ॥ ९५ ॥ भगंदरप्लीहगुल्माञ्जिह्वातालुगलामयान् ॥ शिरोक्षिभ्रूगतान्रोगान्मन्यापृष्ठगतानपि ॥ ९६ ॥ प्राग्भोजनस्यदेयंस्यादधःकायस्थिते गदे ॥ भेषजं भक्तमध्ये चरोगेजठरसंस्थिते ॥ ९७ ॥ भोजनस्योपरिग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषुच ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला ये तीन औषध आठ पल लेय । भिलावे चार पल, बावची पांच पल, वायविडंग चार पल प्रमाण और १ लोहभस्म, २ निसोथ, ३ गूगल, ४ शिलाजीत ये चार औषध एक २ पल प्रमाण लेनी चाहिये । गांठदार पुहकरमूल आधा पल, चीतेकी छाल आधा पल, कालीमिरच दो शाण, एवं १ सोंठ, २ पीपल, ३ नागरमोथा, ४

दालचीनी, ५ इलायची, ६ तमालपत्र और ७ नागकेशर ये सात औषधी एक २ शाण लेव। सबको कूट पीस चूर्ण करे। इस चूर्णके समान मिश्री लेके पाक करे। उसमें इस चूर्णको डालके सबको एक जीव करके एक २ पलके मोदक बनावे। इस मोदकके सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ रोग दूर हों, त्रिदोषसे उत्पन्न भगन्दर रोग, नेत्रोंके रोग, प्लीहरोग, गोलेका रोग, जीभ, तालु, गला, शिर, नेत्र, भौंह इनके रोग, गरदन, पीठ इनके रोग इत्यादिक सब रोग दूर होव। कमरसे लेकर नीचे पैरोंतक रोग होवे तो प्रातःकाल औषध सेवन करे। यदि पेटके रोग होवें तो भोजनके समय ग्रास (गस्सा) के साथ सेवन करे। छातीसे लेकर माथे पर्यन्तके रोगोंमें भोजन करनेके पश्चात् इस त्रिफलादि मोदकको सेवन करना चाहिये ॥

कांचनारगूगल गंडमालादिकोंपर।

कांचनारत्वचोग्राह्यंपलानांदशकंबुधैः ॥ ९८ ॥ त्रिफलाषट्-
पलाकार्यात्रिकटुस्यात्पलत्रयम् ॥ पलैकंवरुणंकुर्यादेलात्वक्प-
त्रकंतथा ॥ ९९ ॥ एकैकंकर्षमात्रंस्यात्सर्वाण्येकत्रचूर्णयेत् ॥
यावच्चूर्णमिदंसर्वंतावन्मात्रस्तुगुग्गुलुः ॥ १०० ॥ संकुट्यस-
र्वमेकत्रपिंडंकृत्वाचधारयेत् ॥ गुटिकाःशाणिकाःकार्याःप्रात-
र्ग्राह्यायथोचिताः ॥ १०१ ॥ गंडमालांजयत्युग्रामपचीमर्बुदानि
च ॥ ग्रंथीन्व्रणांश्चगुल्मांश्चकुष्ठानिचभगंदरम् ॥ १०२ ॥
प्रदेयश्चानुपानार्थंक्वाथोमुंडानिकाभवः ॥ क्वाथःखदिरसारस्य
पथ्याक्वाथोष्णकंजलम् ॥ १०३ ॥

अर्थ—कचनार वृक्षकी छाल १० पल लेवे तथा १ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला ये तीन औषध दो दो पल प्रमाण अर्थात् सब छः पल ले। और १ सोंठ, २ मिरच, ३ पीपल ये तीनों औषध एक २ पल प्रमाण लेनी। तथा बरना एक पल, १ इलायची २ दालचीनी ३ तमालपत्र ये तीन औषध एक २ कर्ष लेनी चाहिये। फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इस चूर्णके समान भाग शुद्ध किये हुए गूगलको कूट पीसके उस चूर्णमें मिलाय देवे। फिर कूटके एक गोला करके एक २ शाणकी गोलियां बनावे। प्रातःकाल मुंडी अथवा खै सार अथवा हरडके काढेसे या गरम जलके साथ एक २ गोली सेवन करे तो घोर दुर्ग गण्डमालाका रोग तथा गण्डमालाका भेद अपची रोग, अर्बुद, गांठ, व्रण, गोला, कोढ, भगन्दर ये सब रोग दूर होवें ॥

---

१ इसको गोरखमुंडी कहते हैं।

माषादिमोदक धातुपुष्टिपर ।

निस्तुषंमाषचूर्णंस्यात्तथागोधूमसंभवम् ॥ निस्तुषंयवचूर्णंच शालितंदुलजंतथा ॥ १०४ ॥ सूक्ष्मंचपिप्पलीचूर्णंपालिकान्युपकल्पयेत् ॥ एतदेकीकृतंसर्वंभर्जयेद्गोघृतेनच ॥ १०५ ॥ अर्धमात्रेणसर्वेभ्यस्ततः खंडंसमांक्षिपेत् ॥ जलंचद्विगुणंदत्त्वापाचयेच्च शनैः शनैः ॥ १०६ ॥ ततः पक्वंसमुद्धृत्यवृत्तान्कुर्वीतमोदकान् ॥ भुक्त्वासायंपलैकंचापिबेत्क्षीरंचतुर्गुणम् ॥ १०७ ॥ वर्जनीयौविशेषेण क्षाराम्लौद्वौरसावपि ॥ कृत्वैवंरमयेन्नारीर्बह्वीर्नक्षीयतेनरः ॥ १०८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविराचितायांसंहितायांचिकित्सास्थानें
वटककल्पनानामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ—उडदकी दालका चून, गेहूंका चून, तुषरहित जौका चून, चावलोंका चून और पीपलका चूर्ण ये सब औषधि एक २ पल लेवे । सबको एकत्र करके इन सबका आधा शुद्ध गौका घी कडाहीमें डालके उन सबको मन्द २ अग्निसे भूने । फिर सबकी बराबर खाँडकी चासनी दूना जल डालके करे । उसमें पूर्वोक्त भुने हुए चूनको मिलायके एक २ पल अर्थात् चार २ या पांच तोलेके लड्डू बनाय लेवे । इसको रात्रिके समय खायकर ऊपरसे पावभर दूध पीवे तथा खटाई और खारी पदार्थ न खाय इस प्रकार करनेसे मनुष्य बहुत स्त्रियोंसे भोग करनेपर भी क्षीण बल नहीं होता ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे द्वि० भाषाटीकायां समाप्तोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८।

अवलेहोंकी योजना ।

क्वाथादीनांपुनः पाकाद्घनत्वंसारसक्रिया ॥ सोवलेहश्चलेहः स्यात्तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता ॥ १ ॥ सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णाच्चद्विगुणोगुडः ॥ द्रवंचतुर्गुणंदद्यादितिसर्वत्रनिश्चयः ॥ २ ॥ सुपक्वेतंतुमत्त्वंस्यादवलेहोप्सुमज्जति ॥ खरत्वंपीडितेमुद्रागंध-

वर्णरसोद्भवः ॥ ३ ॥ दुग्धमिक्षुरसंयूषंपंचमूलकषायजम् ॥
वासाक्काथंयथायोग्यमनुपानंप्रशस्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—औषधोंके कषाय और फांट आदिकोंको पुनः औटायके गाढा करनेसे जो रसकर्म होता है उसको अवलेह और लेह कहते हैं । उस अवलेहकी मात्रा १ पल अर्थात् ४ चार तोले भरकी है, उसमें खाँड डालनी होवे तो जितना चूर्ण होवे उससे चौगुनी डालनी और गुड डालना होवे तो जितना चूर्ण होवे, उससे दुगुना डालना । दूध, मूत्र, पानी आदिक पतले पदार्थ डालने हों तो जितना चूर्ण हो उससे चौगुने डालना । ऐसा सर्व अवलेहप्रकरणमें निश्चय है सो जानना । वह अवलेह अच्छा पका या नहीं इसकी परीक्षा कहते हैं । उस अवलेहका अच्छी रीतिसे पाक हो जानेसे तांत छूटते हैं और पानीमें वह अवलेह डालनेसे डूब जाता है और अंगुलियों करके दबानेसे करडा और चिकना होता है, तथा उसमें दूसरेही किसी एक प्रकारका अपूर्व गन्ध, वर्ण और स्वाद उत्पन्न होते हैं । इन लक्षणोंसे अवलेह परिपक्व हुआ ऐसा जानना । दूध, ईखका रस, पंचमूलके काढेका यूष और अडूसेका काढा ये इस अवलेहके अनुपान हैं । तिनमेंसे. रोगकी योग्यता विचारके जो अनुपान देनेका होवे सो देना चाहिये ॥

कंटकारीअवलेह हिचकीश्वासकासोंपर ।

कंटकारीतुलांनीरद्रोणेपक्त्वाकषायकम् ॥ पादशेषंगृहीत्वाच
तस्मिंश्चूर्णानिदापयेत् ॥ ५ ॥ पृथक्पलानिचैतानिगुडूचीच-
व्यचित्रकाः ॥ मुस्तंकर्कटशृंगीचत्र्यूषणंधन्वयासकः ॥ ६ ॥
भार्ङ्गीरास्नाशटीचैवशर्करापलविंशतिः ॥ प्रत्येकंचपलान्यष्टौ
प्रदद्याद्घृततैलयोः ॥ ७ ॥ पक्त्वालेहत्वमानीयशीतमधुप-
लाष्टकम् ॥ चतुःपलंतुगाक्षीर्याः पिप्पलीनांचतुःपलम् ॥८॥
क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढेमृन्मयेभाजनेशुभे ॥ लेहोऽयंहंति
हिक्कार्तिंश्वासकासानशेषतः ॥ ९ ॥

अर्थ—भटकटैया ४०० तोले प्रमाण लेके थोडी २ कूटकर उसमें एक द्रोण (१०२४ तोले) पानी डालके चौथाई पानी शेष रहे तबतक कषाय करके फिर उस काढेको छानना और उसमें इन औषधोंका चूर्ण मिलाना गिलोय, चव्य, चीता, नागरमोथा, काकडासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा, भारंगी, रास्ना, कचूर ये बारह औषध चार २ तोले लेके इनका चूर्ण कर उस काढेमें डाले, खांड ८० तोले घृत और तेल ३२ तोले डालना । ये सब औषध डालके औटायके अवलेह करके ठंढा करना । फिर उसमें बत्तीस तोले सहत और सोलह तोले वंशलोचन, तथा पीपलियोंका चूर्ण उस अवलेहमें मिलायके दृढ मिट्टीके पात्रमें डालके अच्छी रीतिसे

रखना। यह अवलेह नित्य सेवन करनेसे हिचकीकी पीडा, श्वास और कास इन सब रोगोंको नष्ट कर देता है ॥

क्षयादिकोंपर च्यवनप्राशावलेह।

**पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः ॥ पर्ण्यौबृहत्यौपिप्पल्यः
शृंगीद्राक्षामृताभयाः ॥ १० ॥ बलाभूम्यामलीवासाऋद्धिर्जीवंतिकाशटी
॥ जीवकर्षभकौमुस्तंपौष्करंकाकनासिका
॥११॥ मुद्गपर्णीमाषपर्णी विदारीचपुनर्नवा ॥ काकोल्यौकमलंमेदेसूक्ष्मैलागरचंदनम् ॥ १२ ॥ एकैकंपलसंमानंस्थूलचूर्णितमौषधम्
॥ एकीकृत्यबृहत्पात्रेपंचामलशतानिच ॥ १३ ॥
पचेद्द्रोणजलेक्षिप्त्वाग्राह्यमष्टांशशेषितम् ॥ ततस्तुतान्यामलानिनिष्कुलीकृत्यवाससा ॥ १४ ॥ दृढहस्तेनसंमर्द्य क्षिप्त्वातत्र
ततोघृतम् ॥ पलसप्तमितंतानिकिंचिद्भृष्ट्वाल्पववह्निना ॥ १५ ॥
ततस्तत्रक्षिपेत्क्वाथंखंडंचार्धतुलोन्मितम् ॥ लेहवत्साधयित्वाचचूर्णानिमानिदापयेत् ॥ १६ ॥ पिप्पलीद्विपलाज्ञेया
तुगाक्षीरीचतुःपला ॥ प्रत्येकंचत्रिशाणाः स्युस्त्वगेलापत्रकेसराः ॥ १७ ॥ ततस्त्वेकीकृतेतस्मिन्क्षिपेत्क्षौद्रंचषट्पलम् ॥
इत्येवच्यवनप्रोक्तंच्यवनप्राशसंज्ञकम् ॥ १८ ॥ लेहंवह्निबलंदृष्ट्वाखादेत्क्षीणोरसायनम् ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणानारीक्षीणाश्चशोषिणः ॥ १९ ॥ हृद्रोगिणःस्वरक्षीणायेनरास्तेषुयुज्यते ॥
कासंश्वासं पिपासांचवातास्रमुरसोग्रहम् ॥ २० ॥ वातंपित्तंशुक्रदोषंमूत्रदोषंचनाशयेत् ॥ मेधांस्मृतिंस्त्रीषुहर्षकान्तिवर्णप्रसन्नताम् ॥ २१ ॥ अस्यप्रयोगादाप्नोतिनरोऽजीर्णविवर्जितः ॥**

अर्थ—सिरस, अरनी, काश्मर्य, बेलवृक्षकी जड, स्योनापाढा, गोखरू, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, दोनों कटेली, तीनों पीपल, काकडासिंगी, दाख, गिलोय, हरड, खरेंटी, भूमिआँवला, अरूसा, ऋद्धि, जीवंतिका, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पोहकरमूल, कौवाठोडी, मूंगपर्णी, माषपर्णी, विदारीकंद, साँठी, काकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी इला-

यची, अगर, चंदन ये सब औषध चार २ तोले लेकर थोडा २ कूट इकट्ठा करे । फिर बडे २ आँवले ५०० लेकर बडे मटकेमें डाल तिसमें १०२४ तोले पानी डालके पकावे । जब उसका आठवाँ हिस्सा शेष रहे तब उन औषधोंमेंसे ५०० सौ आँवलोंको निकाल लेवे। पीछे उन आँवलोंको छीलकर कलई किये हुए पात्रके ऊपर वस्त्रको दृढ बांधिके उसके ऊपर धरके करडे हाथसे अत्यंत मर्दन करे। तिस पीछे नीचे उतरे हुए आंवलोंके मगजमें २८ तोलेभर घृत डालके मंद अग्निके ऊपर थोडासा भूनकर पीछे तिसमें पूर्व किया हुआ काथ और अर्धतुला परिमाण खाँड डालना । जबतक वह कठिन न होवे तबतक उसे पकाना । ऐसे इसको लेहकी रीतिसे सिद्ध करे । पीछे ये औषध डाले, पीपल ८ तोलेभर, वंशलोचन १६ तोलेभर और दालचीनी, इलायची और तेजपात ये औषध ३ शाण परिमाण । तब अवलेहको इकट्ठा करके उसमें २४ तोले सहत मिलावे । यह च्यवनऋषिका कहा हुआ च्यवनप्राशसंज्ञक अवलेह है, क्षीण हुए पुरुषको रसायनरूप लेहको अग्निका बलाबल देखके खाना चाहिये। यह च्यवनप्राशावलेह बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, नपुंसक, शोषरोगी, हृद्रोगी, स्वरक्षीण इन पुरुषोंमें युक्त है और यह श्वास, कास, पिपासा, वातरक्त, उरोग्रह, वात, पित्त, वीर्यके दोष, मूत्रके दोष इतने रोगोंका नाश करता है । इस अवलेहके प्रयोगसे पुरुष बुद्धि, स्मरणशक्ति, स्त्रीके साथ संग करनेकी इच्छा, शरीरकी कांति और वर्ण, अंतःकरणके संतोषको प्राप्त होता है और अजीर्ण करके रहित होता है ॥

कूष्मांडकावलेह रक्तपित्तादिकोंपर ।

निष्कुलीकृतकूष्मांडखंडान्पलशतंपचेत् ॥ २२ ॥ निक्षिप्य
द्वितुलंनीरमर्धांशिष्टंचगृह्यते॥तानिकूष्मांडखंडानिपीडयेदृढवा-
ससा ॥ २३ ॥ आतपेशोषयेत्किंचिच्छूलाग्रैर्बहुशोव्यधेत् ॥
क्षिप्त्वाताम्रकटाहेचदद्यादष्टपलंघृतम् ॥ २४ ॥ तेनकिंचिद्भ-
र्जयित्वापूर्वोक्तंचजलंक्षिपेत् ॥खंडंपलशतंदत्त्वासर्वमेकत्रपाच-
येत् ॥ २५ ॥ सुपक्वेपिप्पलीशुंठीजीराणांद्विपलंपृथक् ॥
पृथक्पलार्धंधान्याकंपत्रैलामरिचंत्वचम् ॥ २६ ॥ चूर्णीकृत्य
क्षिपेत्तत्रघृतार्धंक्षौद्रमावपेत् ॥ खादेदग्निबलंदृष्ट्वारक्तपित्तीक्षय-
ज्वरी ॥ २७ ॥ शोषतृष्णातमश्छर्दिकासश्वासक्षतातुरः ॥
कूष्मांडकावलेहोऽयंबालवृद्धेषुयुज्यते ॥ २८ ॥ उरःसंधानकृ-
द्वृष्योबृंहणोबलकृन्मतः ॥

अर्थ–उत्तम पके हुए पेठेके ऊपरका छिलका कतरके तथा भीतरके बीजोंको निकालके छांटे २ टुकडे कर १०० पल लेवे। उनमें दो तुला जल डालके औटावे जब आधा अर्थात् एक तुला जल रहे तब उतार ल। उस जलको छानके एक जगह रख देवे। फिर उन पेठेके टुकडोंको कपडेमें बांधके निचोड लेवे। पश्चात् उनको कुछ गरम बाफ देकर सूएसे अत्यंत छेंदे। तांबेके पात्रमें ८ पल घी डाल उन टुकडोंको धीमी आँचपर भूने। पश्चात् पूर्वोक्त पेठेके निचुडे हुए पानीमें इस भुने पेठेको डाले। तथा १०० पल मिश्री मिलायके पाक करे। जब पाक सिद्ध होनेपर आवे तब आगे लिखी औषधें डाले। जैसे–१ पीपल, २ सोंठ, ३ जीरा ये तीन औषध दो दो पल, तथा १ धनिया, २ पत्रज, ३ इलायचीके दाने, ४ काली मिरच, ५ दालचीनी ये पांच औषध आधे २ पल लेवे। फिर सबका चूर्ण करके पाकमें मिलाय देवे और सहत ४ पल मिलावे। इसको कूष्मांडावलेह कहते हैं। यह अवलेह रोगीको अपना बलाबल विचारके सेवन करना चाहिये। इससे रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, शोष, तृषा, नेत्रोंके आगे अंधेरीका आना, वमन, खाँसी, श्वास और उरःक्षत ये रोग दूर होवें। यह अवलेह बालक और बुड्ढोंके उपयोगी है। छातीमें अन्नका रस आता है उसका साधक होता है। स्त्रीप्रसंगकी इच्छा प्रकट करे, धातुवृद्धि करे तथा बल बढावे॥

कूष्मांडखंडलेह बवासीरपर।

युक्त्याकूष्मांडखंडंचसूरणंविपचेत्सुधीः॥ २९॥
अर्शसांमूढवातानांमंदाग्निनांचयुज्यते॥

अर्थ–पेठेके बारीक २ टुकडे तथा सूरण (जमीकंद) का सीरा इन दोनोंको मिलायके घीमें भून दुगुनी मिश्री मिलायके पाक करे अर्थात् अवलेह बनावे। इससे बवासीर, मूढवादी (अधोवायुका नीचे न उतरना) ये दूर हों तथा जठराग्नि प्रदीप्त हो॥

अगस्त्यहरीतकी क्षयादिकोंपर।

हरीतकीशतंभद्रंयवानामाढकंतथा॥ ३०॥ पलानिदशमूल-
स्यविंशतिश्चनियोजयेत्॥ चित्रकःपिप्पलीमूलमपामार्गः
शटीतथा॥ ३१॥ कपिकच्छूःशंखपुष्पीभार्ङ्गीचगजपिप्प-
ली॥ बलापुष्करमूलंचपृथग्द्विपलमात्रया॥ ३२॥ पचेत्पं-
चाढके नीरेयवैःस्विन्नैःशृतंनयेत्॥ तत्राभयाशतंदद्यात्क्वाथेत-
स्मिन्विचक्षणः॥३३॥ सर्पिस्तैलाष्टपलकंक्षिपेद्गुडतुलांतथा॥
पक्त्वालेहत्वमानीयसिद्धशीतेपृथक्पृथक्॥ ३४॥ क्षौद्रंचपि-

प्पलीचूर्णंदद्यात्कुडवमात्रया ॥ हरीतकीद्वयंखादेत्तेनलेहेननित्यशः ॥ ३५ ॥ क्षयंकासंज्वरंश्वासंहिक्काशोंऽरुचिपीनसान् ॥ ग्रहणींनाशयत्येषवलीपलितनाशनः ॥ ३६ ॥ बलवर्णकरः पुंसामवलेहोरसायनम् ॥ विहितोऽगस्त्यमुनिनासर्वरोगप्रणाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ--१ आढक जव ले, उनको जवकूट करके चौगुना जल मिलायके औटावे । जब चौथाई जल रहे, तब उतार छानके धर रक्खे और उन औटे हुए जवोंको फेंक देवे । फिर दशमूलकी औषध बसि पल लेय, १ चित्रक, २ पीपरामूल, ३ ओंगा, ४ कचूर, ५ कौंचके बीज, ६ शंखपुष्पी, ७ भारंगी, ८ गजपीपल, ९ खरेटीकी जड और १० गांठदार पुहकरमूल ये दश औषध दो दो पल लेय । इस प्रकार बीसों औषधोंको एकत्र करके जवकूट कर लेवे। इनमें ५ आढक जल मिलायके औटावे । जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको पूर्वोक्त जौके काढेमें मिलाय देवे । पीछे इसमें बडी २ हरड १०० नग डाले। घी और तिलोंका तेल आठ २ पल लेवे, गुड १ तुलाभर ले सबको काढेमें मिलाय पाक करे । जब गाढा होय तब उतार ले । फिर शीतल होनेपर पीपलका चूर्ण और सहत ये दोनों कुडव २ अर्थात् पाव २ भर लेकर उस पाकमें मिलाय देवे । इस प्रकार अगस्त्यऋषिके कहे हुए अवलेहको अगस्त्यहरीतकी कहते हैं। इसमेंसे दो हरड अवलेहके साथ खाय तो क्षय, खांसी, ज्वर, श्वास, हिचकी, मूलव्याधि (बवासीर), अरुचि, पीनसरोग जो नाकमें होता है वह तथा संग्रहणी, गुलजट पडे वे दूर हों, सफेद बाल काले होंय, बल और कांति आवे, यह अवलेह रसायन है इससे संपूर्ण रोग दूर होंय ॥

कुटजावलेह अर्शादिकपर ।

कुटजत्वक्तुलांद्रोणेजलस्यविपचेत्सुधीः ॥ कषायंपादशेषंच गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ३८ ॥ त्रिंशत्पलंगुडस्यात्रदत्त्वाच विपचेत्पुनः॥ सांद्रत्वमागतंज्ञात्वाचूर्णानीमानिदापयेत्॥३९॥ रसांजनंमोचरसंत्रिकटुत्रिफलांतथा ॥ लज्जालुंचित्रकंपाठांबिल्वमिंद्रयवंवचाम् ॥ ४० ॥ भल्लातकंप्रातिविषांविडंगानिचवालकम् ॥ प्रत्येकंपलसंमानंघृतस्यकुडवंतथा ॥ ४१ ॥ सिद्धशीतेततोदद्यान्मधुनःकुडवंतथा ॥ जयेदेषोवलेहस्तुसर्वाण्य-

र्शांसिवेगतः ॥ ४२ ॥ दुर्नामप्रभवान्रोगानतीसारमरोचकम् ॥ ग्रहणींपांडुरोगंचरक्तपित्तंचकामलाम् ॥ ४३ ॥ अम्लपित्तंतथाशोषंकार्श्यंचैवप्रवाहिकाम् ॥ अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजंतक्रं पयोदधि ॥ ४४ ॥ घृतंजलंवाजीर्णेचपथ्यभोजीभवेन्नरः ॥

अर्थ–कूडेकी छाल एक तुला (४०० तोले) लेवे, उसको जवकूट कर एक द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । इसमें गुड ३० पल डालके फिर औटावे । जब गाढा होनेपर आवे तब आगे लिखी औषध मिलावे । जैसे–१ रसोत, २ मोचरस, ३ सोंठ, ४ मिरच, ५ पीपल, ६ हरड, ७ बहेडा, ८ आँवला, ९ लजालू, १० चीतेकी छाल, ११ पाढ, १२ कच्चा बेलफल, १३ इन्द्रजौ, १४ वच, १५ भिलावें, १६ अतीस, १७ वायविडंग, १८ नेत्रवाला । ये अठारह औषध एक २ पल लेवे सबका चूर्ण करके पाकमें मिलावे । घी एक कुडव डाले । जब पाक शीतल हो जावे तब सहत एक कुडव मिलावे पश्चात् इस अवलेहको बकरीके दूध छाँछ दही अथवा घी मिलायके लेवे तथा औषध पचनेपर उत्तम भोजन करे तो सम्पूर्ण बवासीरके तथा बवासीरके कारणसे होनेवाले दूसरे भगन्दरादि रोग, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पांडुरोग, रक्तपित्त, नेत्रोंमें कामला रोग होता है वह, अम्लपित्त, सूजन, कृशता और प्रवाहिका रोग अतिसारका भेद ये सब रोग दूर होवें ॥

दूसरा कुटजावलेह अतिसारआदिरोगोंपर ।

कुटजत्वक्तुलामार्द्रांद्रोणनीरेविपाचयेत् ॥ ४५ ॥ पादशेषंशृतंनीत्वाचूर्णान्येतानिदापयेत् ॥ लज्जालुर्धातकीबिल्वंपाठामोचरसस्तथा ॥ ४६ ॥ मुस्तंप्रतिविषाचैवप्रत्येकं स्यात्पलंपलम् ॥ ततस्तुविपचेद्भूयोयावद्दर्वीप्रलेपनम् ॥ ४७ ॥ जलेनच्छागदुग्धेनपीतोमण्डेनवाजयेत् ॥ सर्वातिसारान्घोरांस्तुनानावर्णान्सवेदनान् ॥ असृग्दरंसमस्तंचसर्वार्शांसिप्रवाहिकाम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने अवलेहकल्पनानामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–कुडेकी गीली छाल १ तुला प्रमाण लेय उसको जवकूट करके एक द्रोण जल मिलाय काढा करे । जब चतुर्थांश शेष रहै तब उतारके उसके जलको कपडेमें छान लेवे । इसमें

डालनेकी औषध इस प्रकार हैं—१ लजालु, २ धायके फूल, ३ कोमल बेलगिरी, ४ पाठ, ५ मोचरस, ६ नागरमोथा, ७ अतीस ये सात औषध एक २ पल प्रमाण लेय सबका चूर्ण करके उस काढेमें मिलाय देवे। फिर उस काढेको लोहेकी कडाहीमें चढायके पाक करे, अवलेह कलछीमें लिपटने लगे इतना गाढा करे फिर यह अवलेह जल अथवा बकरीके दूधसे किंवा मंडके साथ सेवन करे तो वेदनायुक्त तथा नीलपीतादिक अनेक प्रकारके रंगका घोर अतिसार रोग संपूर्ण दूर होय। स्त्रियोंके सर्व प्रकारके असृग्दरादि रोग, संपूर्ण मूलव्याधि (ववासीर) और प्रवाहिका रोग जो अतिसारका भेद है ये सब दूर होय॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे द्वि० भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

घृततैलआदिस्नेहोंका साधनप्रकार।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतंवातैलमेववा ॥ चतुर्गुणेद्रवेसाध्यंतस्यमात्रापलोन्मिता ॥ १ ॥ निक्षिप्यक्वाथयेत्तोयंक्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टंगृहीत्वाचस्नेहंतेनैवसाधयेत् ॥ २ ॥ चतुर्गुणंमृदुद्रव्येकठिनेऽष्टगुणंजलम् ॥ तथाचमध्यमेद्रव्येदद्यादष्टगुणंपयः ॥ ३ ॥ अत्यन्तकठिनेद्रव्येनीरंषोडशिकंमतम् ॥ कर्षादितःपलंयावत्क्षिपेत्षोडशिकंजलम् ॥ ४ ॥ तदूर्ध्वंकुडवंयावत्क्षिपेदष्टगुणंपयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरंखारीयावच्चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥ अम्बुक्वाथरसैर्यत्रपृथक्स्नेहस्यसाधनम् ॥ कल्कस्यांशंतत्रदद्याच्चतुर्थंषष्ठमष्टमम् ॥ ६ ॥ दुग्धेदधिरसेतक्रेकल्कोदेयोऽष्टमांशकः ॥ कल्कस्यसम्यक्पाकार्थंतोयमत्रचतुर्गुणम् ॥ ७ ॥ द्रव्याणियत्रस्नेहेषुपञ्चादीनिभवन्तिहि ॥ तत्रस्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वंचतुर्गुणम् ॥ ८ ॥ द्रव्येणकेवलेनैवस्नेहपाकोभवेद्यदि ॥ तत्राम्बुपिष्टःकल्कःस्याज्जलंचात्रचतुर्गु-

---

१ चावलोंमें चौदहगुना जल डालके औटावे। जब चावल गल जावें तब उसके मांडको निकाल लेवे इसको मंड कहते हैं।

णम् ॥ ९ ॥ क्वाथेनकेवलेनैवपाकोयत्रेरितःक्वचित् ॥ क्वाथ्यद्रव्यस्यकल्कोपितत्रस्नेहेप्रयुज्यते ॥ १० ॥ कल्कहीनस्तुयः स्नेहःससाध्यःकेवलद्रवे ॥ पुष्पकल्कस्तुयःस्नेहस्तत्रतोयंचतुर्गुणम् ॥ ११ ॥ स्नेहेस्नेहाष्टमांशश्चपुष्पकल्कःप्रयुज्यते ॥ वर्तिवत्स्नेहकल्कःस्याद्यदांगुल्याविमर्दितः ॥ १२ ॥ शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तःस्नेहःसिद्धोभवेत्तदा॥ यदाफेनोद्भवस्तैलफेनशांतिश्चसर्पिषि ॥ १३ ॥ गन्धवर्णरसोत्पत्तिःस्नेहसिद्धिस्तदाभवेत् ॥ स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखरस्तथा ॥१४॥ ईषत्सरसकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् ॥ मध्यपाकस्यसिद्धिश्च कल्केनीरसकोमले ॥ १५ ॥ ईषत्कठिनकल्कश्चस्नेहपाको भवेत्खरः ॥ तदूर्ध्वंदग्धपाकःस्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥१६॥ आमपाकश्चनिर्वीर्योवह्निमांद्यकरोगुरुः ॥ नस्यार्थंस्यान्मृदुः पाकोमध्यमः सर्वकर्मसु ॥ १७ ॥ अभ्यङ्गार्थंखरः प्रोक्तो युंज्यादेवंयथोचितम् ॥ घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवासरे ॥ १८ ॥ प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येतेविशेषाद्गुणसञ्चयम् ॥

अर्थ—कल्ककी औषधोंसे चौगुना घृत अथवा तेल लेवे, तथा उस घृत तलका चौगुना दूध, गौ आदिका मूत्र इत्यादिक द्रवपदार्थ ले । सबको एकत्र कर अग्निके संयोगसे उस द्रवपदार्थको जलायके घृत तथा तेल शेष रक्खे । इसी प्रकार सिद्ध हुए घृत और तेलकी भक्षण करनेकी मात्रा वातादि रोगोंपर १ पलकी जाननी । काढेकी औषधोंम चौगुना पानी डालके औटावे जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार लेय । उसमें घृत अथवा तेल डालके औटावे । जब घृत तथा तेल मात्र बाकी रहे तब सिद्ध हुआ जानना । यदि नरम गुडूच्यादि औषध हों तो इनमें चौगुना पानी डाले । अमलतास आदि कठिन औषधोंमें तथा दशमूलादि जो मध्यम औषध हैं, उनमें काढेके वास्ते आठगुना जल मिलावे । पद्माखादि जो अत्यंत कठोर औषधि हैं उनमें जल सोलहगुना डालना चाहिये । कर्षसे लेकर पलपर्यंत मान कही हुई औषधोंका यदि काढा करना होय तो पानी सोलहगुना डाले । पलसे लेकर कुडवमान पर्यंत औषधोंका काढा करना होय तो पानी आठगुना मिलावे । प्रस्थसे लेकर खारीमान पर्यंत औषधोंका काढा करना होय तो चौगुना जल डाले । केवल जलमें स्नेह सिद्ध करना होय तो स्नेहका चतुर्थांश कल्क डाले । काढेमें स्नेह सिद्ध

करना होय तो उसमें स्नेहका षष्ठांश कल्क मिलावे । मांसके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क डाले । दूध, दही अथवा धतूरे आदिके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क मिलावे । कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते स्नेहका चौगुना जल डाले । स्नेहमें दूध गोमूत्र इत्यादि पांच द्रव पदार्थोंसे अधिक द्रवपदार्थ डालने होय तो दूध और गोमूत्रादिक स्नेहके समानभाग लेवे । यदि द्रवपदार्थ पांचसे न्यून होवे तो स्नेहके चौगुने ले । जिस ठिकाने केवल एकही द्रव्यसे स्नेहपाक साधन लिखा होय वहां कल्कको पानीमें पीसके उसका चौगुना पानी डाले । यदि काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो कल्क द्रव्यको पानीमें पीस कल्क कर स्नेहमें डाल उसमें स्नेहका चौगुना जल डाले । अथवा किसी प्रयोगमें काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो काढेकी औषधोंका कल्क करके स्नेहमें मिलाय उसमें पानी चौगुना डाल औटावे । जब द्रवपदार्थ जल जावे तब स्नेहका चौगुना जल डाले । फूलोंका कल्क स्नेहका अष्टमांश डालना । अब इसके उपरांत उत्तम सिद्ध हुए स्नेहके लक्षणोंको लिखते हैं । जो स्नेह उँगलीके पोरुओंके लगानेसे और मिडनेसे बत्तीसा हो जावे तथा उस कल्कको अग्निपर गेरनेसे चटचटाहट शब्द न करे, तेलके पाकमें झाग आनेसे तथा घृतके पाकमें झाग आकर शांत हो जानेसे, तथा उस पाकका सुगंध करके रक्तादिवर्ण करके, मधुरादि रसोंकरके युक्त होनेसे स्नेह सिद्ध होगया इस प्रकार वैद्य जाने ॥

स्नेहका पाक तीन प्रकारका है । जैसे—नम्र मध्यम और कठिन उनके लक्षण कहते हैं कि, जिस स्नेहमें कल्ककी कुछ २ आर्द्रता बनी रहै अर्थात् वह कल्क समग्र न जले उसको नम्रपाक हुआ जानना ॥

जिस स्नेहमें कल्ककी मृदुता होनेसे जलका अंश सर्वथा न रहे उस पाकको मध्यम पाक जानना । और जिस स्नेहका पाक किंचित् अर्थात् कल्क सर्वथा जलकर भी कुछ तेल जलगया हो वह स्नेह दाहकारी और निष्प्रयोजक है अर्थात् कुछ कामका नहीं है ॥

कच्चा पाक रहनेसे उसमें पराक्रम नहीं रहता, अग्निको मंद करता है तथा भारी होता है। स्नेहका पाक नरम होनेसे वह स्नेह नाकमें नस्य देनेके विषयमें योग्य होता है । मध्यपाक वह स्नेह सर्व कर्ममें वर्तना चाहिये, कठिन पाक होनेसे उस स्नेहको देहमें मालिश करनेमें लेवे ।

घृत, तेल, गुडादि ये बनाने होय तो एक दिनमें ही सिद्ध न करे । इनके[1] संपूर्ण द्रव्योंके एकत्र कर एक रात्रि भिगो देवे दूसर दिन सिद्ध करे इस प्रकार स्नेहक साधनकी क्रिया जानना । इसमें भी प्रथम घृत और पश्चात् तेल बनाना इस अध्यायमें कहा जावेगा ॥

---

१ वैद्यको उचित है कि जब तेल घृत आदि कोईसी वस्तु बनानी होय तो इस स्नेहसाधनके अनुसार कल्क काढा दूध गोमूत्रादिक डाले तो ठीक बनेगा अन्यथा बिगड जावेगा ।

घृतका साधनप्रकार तिनमें प्रथम क्षीरघृत प्लीहादिकोंपर ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ १९ ॥ ससैंधवैश्च
पलिकैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ क्षीरंचतुर्गुणंदत्त्वाततिसिद्धंप्लीह-
नाशनम् ॥ २० ॥ विषमज्वरमंदाग्निहरंरुचिकरंपरम् ॥

अर्थ-१ पीपल, २ पीपरामूल, ३ चव्य, ४ चित्रक, ५ सोंठ, ६ सधानमक ये छः औषध एक २ पल ले कल्क करक एक प्रस्थ गौके घीमें मिलावे । और घास चौगुना जल मिलाय फिर गौका दूध उसमें मिलावे । कल्कको पाक उत्तम होनेके वास्ते घृतसे चौगुना पानी डालके पाक करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसके सेवन करनेसे पेटमें बाईं तरफ जो प्लीहा (तिल्ली) का रोग होता है, वह और विषमज्वर मन्दाग्नि ये रोग दूर होवें, मुखमें उत्तम रुचि आवे ॥

चांगेरीघृत अतिसारसंग्रहणीपर ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली ॥ २१ ॥ श्वदंष्ट्रानां
गरंधान्यंपाठाबिल्वंयवानिका ॥ द्रव्यैश्चपलिकैरेतैश्चतुःषष्टिः
पलंघृतम् ॥ २२ ॥ घृताच्चतुर्गुणंदद्याच्चांगेरीस्वरसंबुधः ॥
तथा चतुर्गुणंदत्त्वादधिसर्पिर्विपाचयेत् ॥ २३ ॥ शनैःशनैर्वि-
पक्वंच चांगेरीघृतमुत्तमम् ॥ तद्घृतंकफवातघ्नंग्रहण्यर्शोविका-
रनुत् ॥ २४ ॥ हंत्यानाहंगुदभ्रंशंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् ॥

अर्थ-१ पीपल, २ पीपरामूल, ३ चित्रक, ४ गजपीपर, ५ गोखरू, ६ सोंठ, ७ धनिया, ८ पाठ, ९ बेलगिरी, १० अजमोद ये दश औषध एक २ पल लेवे । कल्क करके चौसठ पल घी लेवे । उसमें इस कल्कको मिलाय तथा घृतसे चौगुना चूकेका रस और दहीकी छाछ डालके मन्दाग्निसे परिपक्व करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार छानके धर रक्खे । इसको चांगेरी-घृत कहते हैं । इसका सेवन करनेसे कफवायु, संग्रहणी, मूलव्याधि (बवासीर), मलबद्धता, कांचका निकलना, मूत्रकृच्छ्र और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर होते हैं ॥

मसूरादिघृत अतिसारआदिपर ।

मसूराणांपलशतंनीरद्रोणेविपाचयेत् ॥ २५ ॥ पादशेषंशृतं
नीत्वादत्त्वाबिल्वपलाष्टकम् ॥ घृतप्रस्थंपचेत्तेनसर्वातिसारना-
नम् ॥ २६ ॥ ग्रहणींभिन्नविट्कां चनाशयेच्चप्रवाहिकाम् ॥

अर्थ—मसूर सौ पलमें एक द्रोण जल डालके औटावे, जब चौथाई जल रहे, तब उतारके जलको छान लेवे । इसमें आठ पल बेलगिरीका बारीक चूर्ण करके डाले तथा घी एक प्रस्थ मिलाय पाक करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके घीको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके रख देवे । इस घृतके सेवन करनेसे संपूर्ण अतिसार, संग्रहणी, मलके चिथडे और टुकडे २ गिरें और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर होंय ॥

कामदेवघृत रक्तपित्तादिकोंपर ।

**अश्वगंधातुलैकास्यात्तदर्धोगोक्षुरः स्मृतः ॥ २७ ॥ बलामृता
शालिपर्णीविदारीचशतावरी ॥ पुनर्नवाश्वत्थशुंठीकाश्मर्या-
स्तु फलान्यपि ॥२८॥ पद्मबीजंमाषबीजंदद्याद्दशपलंपृथक्॥
चतुर्द्रोणांभसापक्त्वापादशेषंशृतंनयेत् ॥ २९ ॥ जीवनीयग-
णः कुष्ठंपद्मकंरक्तचंदनम् ॥ पत्रकं पिप्पलीद्राक्षाकपिकच्छुफ-
लंतथा ॥ ३० ॥ नीलोत्पलंनागपुष्पंसारिवेद्वेबले तथा ॥ पृथ-
क्कर्षसमाभागाः शर्करायाः पलद्वयम् ॥ ३१ ॥ रसश्चपौंड्रके-
क्षूणामाढकैकंसमाहरेत् ॥ घृतस्यचाढकंदत्वापाचयेन्मृदुना-
ग्निना ॥३२॥ घृतमेतन्निहंत्याशुरक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ हलीमकं
पांडुरोगंवर्णभेदंस्वरक्षयम् ॥ ३३ ॥ वातरक्तंमूत्रकृच्छ्रंपार्श्व-
शूलंचकामलान् ॥ शुक्रक्षयमुरोदाहंकार्श्यमोजःक्षयंतथा
॥ ३४ ॥ स्त्रीणांचैवाप्रजातानां गर्भदंशुक्रदंनृणाम् ॥ कामदेव-
घृतंनामहृद्यंबल्यंरसायनम् ॥ ३५ ॥**

अर्थ—असगन्ध १ तुला, गोखरू दक्षिणी अर्द्धतुला और १ चीतेकी छाल, २ गिलोय, ३ शालपर्णी, ४ विदारीकन्द, ५ शतावर, ६ पुनर्नवा (सांठ), ७ पपिरामूल, ८ साठ, ९ कंभारीके फल, १० कमलगट्टा और ११ उडद ये ग्यारह औषध हश २ पल लेकर एकत्र कूट इसमें चार द्रोण जल मिलाकर काढा कर । जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतारके इसको छान लेवे । फिर १० जीवनीयगणकी औषधी, ११ कूठ, १२ पद्माख, १३ लाल-चन्दन, १४ तमालपत्र, १५ पीपल, १६ दाख, १७ कौंचके बीज १८ नीलाकमल, १९ नागकेशर, २० कालीसारिवा, २१ सफेदसारिवा, २२ बला, २३ नागबला ये तेईस औषध एक २ कर्ष ले कल्क करके पूर्वोक्त काढेमें मिलाय देवे । खांड दो पल डाले । सफेद ईखका रस और घृत ये दोनों एक २ आढक लेके उस काढेमें मिलाय देवे । फिर

भट्टीपर चढाय मन्दाग्निसे घृतका पाक करे । जब सब पदार्थ जलके घृतमात्र रहे तब उतारके इसको छान लेवे। इसके सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत राग, पांडुरोगका भेद हलीमक रोग, स्वरभंग, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, पीठका दर्द, नेत्रोंका पीला होना, धातुक्षय, उरः (छाती) का दाह, शरीरकी कृशता, शरीरके तेजका क्षय ये संपूर्ण रोग दूर होवें । यह घृत जिस स्त्रीके सन्तान न होती हो उसके वास्ते देनेसे पुत्र देवे, पुरुषोंके वीर्य प्रगट करे, हृदयको हितकारी, बल देवे तथा यह रसायन है । इसको कामदेव घृत ऐसा कहते हैं ॥

पानीयकल्पनाघृत अपस्मारादिकोंपर ।

त्रिफलाद्वेनिशेकौन्तीसारिवेद्वेप्रियंगुका ॥ शालिपर्णीपृष्ठपर्णी देवदार्व्येलवालुकम् ॥ नतंविशालादन्तीचदाडिमंनागकेशरम् ॥ ३६ ॥ नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठाविडंगंकुष्ठपद्मकम् ॥ जातीपुष्पंचन्दनंचतालीसंबृहतीतथा ॥ एतैः कर्षसमैः कल्कैर्जलंदत्त्वाचतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ घृतप्रस्थंपचेद्धीमानपस्मारेज्वरेक्षये ॥ उन्मादेवातरक्तेचकासेमन्दानलेतथा ॥ ३८ ॥ प्रतिश्यायेकटीशूलेतृतीयकचतुर्थके ॥ मूत्रकृच्छ्रेविसर्पेचकण्ड्वांपाण्ड्वामयेतथा ॥ ३९ ॥ विषद्वयेप्रमेहेषु सर्वथैवोपयुज्यते ॥ वंध्यानांपुत्रदंभूतयक्षरक्षोहरंस्मृतम् ॥ ४० ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ रेणुकाबीज, ७ काली सारिवा, ८ सफेदसारिवा, ९ फूलप्रियंगु, १० शालपर्णी, ११ पृष्ठपर्णी, १२ देवदारु, १३ एलवालक, १४ तगर, १५ इन्द्रायनकी जड, १६ अनारकी छाल, १७ दन्ती, १८ नागकेशर, १९ नीले कमल, २० इलायचा, २१ मंजीठ, २२ वायविडंग, २३ कूठ, २४ पद्माख, २५ चमेलीके फूल, २६ चन्दन, २७ तालीसपत्र और २८ कटेरी ये अट्ठाईस औषध एक एक कर्ष लेवे । कल्क कर इसमें कल्कका चौगुना जल मिलाय दे । फिर १ प्रस्थ घी मिलायके मन्दाग्निसे पचन करावे जब घृतमात्र शष रहे तब उतारके छानले और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे । इसके सेवन करनस मृगी, ज्वर, क्षयरोग, उन्माद, वातरक्त, खांसी, मन्दाग्नि, पीनस, कमरका शूल, तृतायक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्परोग जो पैरोंमें होता है, खुजली, पाण्डुरोग, सर्पादिकोंके विषविकार, वच्छनागादि स्थावर विषोंके विकार तथा प्रमेह ये सब रोग दूर हाय । यह घृत वंध्या स्त्रियोंको पुत्र दता है । इस घृतके सेवन करनेसे भूतबाधाभी दूर होती है ॥

अमृताघृत वातरक्तपर ।

अमृताक्काथकल्काभ्यांसक्षीरंविपचेद्घृतम् ॥
वातरक्तंजयत्याशुकुष्ठंजयतिदुस्तरम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-गिलोयको जवकूट कर उसमें चौगुना पानी डालके औटावे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे । फिर इस काढेमें इस काढेका चतुर्थांश घी मिलावे और घीका चतुर्थांश गिलोयका कल्क डाले, दूध घृतसे चौगुना डाले । फिर अग्निपर चढायके सिद्ध करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसके सेवन करनेसे वातरक्त और कुष्ठ ये रोग बहुत जल्दी दूर होवें ॥

महातिक्तक.घृत वातरक्तकुष्ठादिकोंपर ।

सप्तच्छदः प्रतिविषाशम्याकः कटुरोहिणी ॥ पाठामुस्तमुशीरंचत्रिफलापर्पटस्तथा ॥४२॥ पटोलनिंबमंजिष्ठाः पिप्पलीपद्मकंशटी ॥ चंदनंधन्वयासश्चविशालाद्वेनिशेतथा ॥ ४३॥ गुडूचीसारिवेद्वेचमूर्वावासाशतावरी ॥ त्रायन्तींद्रयवायष्टीभूनिम्बश्चाक्षभागिकाः ॥ ४४ ॥ घृतंचतुर्गुणं दद्याद्घृतादामलकीरसः ॥ द्विगुणः सर्पिषश्चात्रजलमष्टगुणंभवेत् ॥ ४५ ॥ तत्सिद्धंपाययेत्सर्पिर्वातरक्तेषुसर्वथा ॥ कुष्ठानिरक्तपित्तंचरक्तार्शांसि चपांडुताम् ॥४६॥ हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरान्गंडमालिकाम् ॥ क्षुद्ररोगाञ्ज्वरांश्चैवमहातिक्तमिदंजयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ--१ सतोना, २ अतीस, ३ अमलतासका गुदा, ४ कुटकी, ५ पाड, ६ नागरमोथा, ७ खस, ८ हरड, ९ बहेडा, १० आंवला, ११ पित्तपापडा, १२ पटोलपत्र, १३ नीमकी छाल, १४ मजीठ, १५ पीपल, १६ पद्माख, १७ कचूर, १८ सफेद चन्दन, १९ धमासा, २० इन्द्रायणकी जड, २१ हल्दी, २२ दारुहल्दी, २३ गिलोय, २४ काली सारिवा, २५ सफेद सारिवा, २६ मूर्वा, २७ अडूसा, २८ सतावर, २९ त्रायमाण, ३० इन्द्रजौ, ३१ मुलहटी और ३२ चिरायता ये बत्तीस औषध एक २ कर्ष लेवे । कल्क कर कल्कका चौगुना घी लेकर उसमें कल्कको मिलाय दे और घीसे दुगुना आंवलोंका रस एवं आठगुना जल डालके मन्दाग्निपर परिपक्व करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे । इसके सेवन करनेसे वातरक्त अवश्य दूर होवे तथा कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्तमूलव्याधि अर्थात् खूनी बवासीर, पांडुरोग, हृदयरोग, गोला, विसर्परोग, प्रदररोग, गंडमाला, क्षुद्ररोग और ज्वर ये रोग दूर हों ॥

सूर्यपाकसिद्ध कासीसाद्यघृत कुष्ठदद्रुपामा इत्यादिकोंपर ।

कासीसंद्वेनिशेमुस्तंहरितालंमनःशिलाम् ॥ कंपिल्लकंगंधकंच
विडंगंगुग्गुलुंतथा ॥ ४८ ॥ सिक्थकंमरिचंकुष्ठंतुत्थकंगौरसर्षपान्
॥ रसांजनंचसिंदूरंश्रीवासंरक्तचंदनम् ॥ ४९ ॥ अरिमेदं
निंबपत्रंकरंजंसारिवांवचाम् ॥ मंजिष्ठांमधुकंमांसींशिरीषंलोध्रपद्मकम्
॥ ५० ॥ हरीतकींप्रपुन्नाटंचूर्णयेत्कार्षिकान्पृथक् ॥
ततश्चचूर्णमालोड्यत्रिंशत्पलमितेघृते ॥ ५१ ॥ स्थापयेत्ताम्रपात्रेचघर्मेसप्तदिनानिच
॥ अस्याभ्यंगेनकुष्ठानिदद्रुपामाविचर्चिकाः
॥ ५२ ॥ शूकदोषाविसर्पाश्चविस्फोटावातरक्तजाः ॥
शिरःस्फोटोपदंशाश्चनाडीदुष्टव्रणानिच ॥ ५३ ॥ शोथोभगंदरश्चैवलूताः
शाम्यंतिदेहिनाम् ॥ शोधनंरोपणंचैवसुवर्णकरणं
घृतम् ॥ ५४ ॥

अर्थ–१ हिराकसीस, २ हल्दी, ३ दारुहल्दी, ४ नागरमोथा, ५ हरताल, ६ मनसिल, ७ कपीला, ८ गंधक, ९ वायविडंग, १० गूगल, ११ मोम, १२ काली मिरच, १३ कूठ, १४ सफेद सरसों, १५ रसांजन, १६ सिंदूर, १७ गंधाविरोजा, १८ लालचन्दन, १९ खैरकी छाल, २० नीमके पत्ते, २१ कंजाके बीज, २२ सारिवा, २३ वच, २४ मजीठ, २५ मुलहटी, २६ जटामांसी, २७ सिरसकी छाल, २८ लोध, २९ पद्माख, ३० जंगी हरड और ३१ पमारके बीज ये एकतीस औषध एक एक कर्ष लेवे । सबका चूर्ण कर तीस पल घी तांबेके पात्रमें डाल चूर्ण मिलाय सात दिन धूपमें धरा रहने देवे । फिर इस घीको देहमें लगावे तो सर्व कुष्ठ, दाह, खाज, जिससे पैर फट जाते हैं ऐसी विचर्चिका, लिंगेन्द्रियका शूलसंज्ञक रोग, विसर्परोग, वातरक्तसे जो विस्फोटक रोग होता है वह, मस्तकके फोड, उपदंश (गरमीका रोग), नाडीव्रण (नासूरका घाव), दुष्टव्रण, सूजन, भगंदर और लूता ये संपूर्ण रोग दूर होवें । यह घृत व्रणादिकोंका शोधन करके व्रणको भरलाता है तथा त्वचाकी कांति जैसी प्रथम थी उसी प्रकारकी करता है ॥

जात्यादिघृत व्रणपर ।

जातिंनिंबपटोलाश्चद्वेनिशेकटुकीतथा ॥ मंजिष्ठामधुकंसिक्थं
करंजोशीरसारिवाः ॥ ५५ ॥ तुत्थंचाविपचेत्सम्यक्कल्कैरेभिर्घृतंबुधः
॥ अस्यलेपात्प्ररोहंतिसूक्ष्मनाडीव्रणाअपि ॥ ५६ ॥
मर्माश्रिताः क्लेदिनश्च गंभीराः सरुजो व्रणाः ॥

अर्थ–१ चमेलीके पत्ते, २ नीमके पत्ते, ३ पटोलपत्र, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ कुटकी, ७ मजीठ, ८ मुलहटी, ९ मोम, १० कंजा, ११ खस, १२ सारिवा और १३ नीलाथोथा ये तेरह औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेनी। इनका कल्क करके उस कल्कका चौगुना घी ले, उसमें कल्कको मिलाय धूपमें एक दिन धरा रहने दे, फिर अग्निपर धरके घृतको सिद्ध करे। इस घृतका नाडीव्रण कहिये नासूरके घावमें लेप करे, तथा मर्मस्थलमें होय और राध आदि करके गीले गंभीर और पीडायुक्त ऐसे व्रणोंमें इसका लेप करे तो व्रण भरके अच्छा होय॥

बिंदुघृत उदरादिकोंपर।

चित्रकः शंखिनीपथ्याकंपिल्लस्त्रिवृतायुगम् ॥ ५७ ॥ वृद्धदारश्चशम्याकोदंतीदंतीफलंतथा ॥ कोशातकीदेवदालीनीलिनीगिरिकर्णिका ॥ ५८ ॥ सातलापिप्पलीमूलंविडंगंकटुकीतथा ॥ हेमक्षीरीचविपचेत्कल्कैरेतैःपिचून्मितैः ॥ ५९ ॥ घृतप्रस्थं स्नुहीक्षीरेषट्पलेतुपलद्वये ॥ अर्कक्षीरस्यमतिमांस्तत्सिद्धंगुल्मकुष्ठनुत् ॥ ६० ॥ हंतिशूलमुदावर्तंशोथाध्मानंभगंदरम् ॥ शमयत्युदराण्यष्टौनिपीतंबिंदुसंख्यया ॥ ६१ ॥ गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेनकौलत्थेनशृतेनवा ॥ उष्णोदकेनवापीत्वाबिंदुवेगैर्विरिच्यते ॥ ६२ ॥ एतद्बिंदुघृतंनामनाभिलेपाद्विरेचयेत् ॥

अर्थ–१ चीतेकी छाल, २ शंखपुष्पी (शंखाहूली), ३ हरड, ४ कपीला, ५ सफे निसोथ, ६ कालीनिसोथ, ७ विधायरा, ८ अमलतासका गूदा, ९ दंतीकी जड, १० जमा लगोटा, ११ कडुई तोरई, १२ वंदाल, १३ नील, १४ विष्णुक्रांता (कोयल), १५ पा रंगकी थूहर, १६ पीपरामूल, १७ वायविडंग, १८ कुटकी, १९ चूक ये उन्नीस औषध ए एक कर्ष प्रमाण लेवे। सबका कल्क कर एक प्रस्थ घीमें उसको मिलाय थूहरका दूध पल और आकका दूध दो पल मिलावे। कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते उस घीका चौगु जल डालके मंदाग्निसे घृत शेष रक्खे। इस प्रकार जब घृत सिद्ध हो जावे तब इस छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे। इसको बिंदुघृत कहते हैं। इसके सेवन कर गोला, कोढ, शूल, उदावर्त, सूजन, अफरा, भगंदर, आठ प्रकारके उदररोग ये संपूर्ण दूर होवें। इसका अनुपान गौका अथवा ऊँटनीका दूध, कुलथीका काढा अथवा गरम इतने अनुपानोंमेंसे जैसा रोगका तारतम्य देखे उसी प्रकार देवे। इस घृतके जितने बिंदु (डालके पीवे उतनेही दस्त होते हैं। इस घृतका नाभिपर लेप करनेसे भी दस्त होते हैं॥

त्रिफलाघृत नेत्ररोगपर।

त्रिफलायारसप्रस्थंप्रस्थंवासारसोद्भवम् ॥ ६३ ॥ भृङ्गराजरसप्रस्थंप्रस्थमाजंपयःस्मृतम् ॥ दत्त्वातत्रघृतप्रस्थंकल्कैः कर्षमितैःपृथक् ॥ ६४ ॥ त्रिफलापिप्पलीद्राक्षाचन्दनसैंधवं बला ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीमेदामरिचनागरम् ॥ ६५ ॥ शर्करापुण्डरीकंचकमलंचपुनर्नवा ॥ निशायुग्मंचमधुकंसर्वैरेभिर्विपाचयेत् ॥ ६६ ॥ नक्तांध्यंनकुलांध्यंचकण्डूंपिल्लंतथैवच ॥ नेत्रस्रावंचपटलंतिमिरंचाजकंजयेत् ॥ ६७ ॥ अन्येऽपिप्रशमंयांतिनेत्ररोगाःसुदारुणाः ॥ त्रैफलंघृतमेतद्धिपानेनस्यादिसूचितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आँवला इन तीनोंका स्वरस पृथक् २ एक एक प्रस्थ लेवे। यदि स्वरस न मिल सके तो इनको आठगुने जलमें डालके चतुर्थांश शेष काढा लेवे। इसकी स्वरस संज्ञा है। यह एक २ प्रस्थ लेवे। अरूसेका स्वरस १ प्रस्थ, भांगरेका स्वरस १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ ये संपूर्ण रस और दूधको एकत्र करके इसमें घी एक प्रस्थ डाले फिर कल्क करके डालनेकी जो औषधि हैं उनको कहता हूं। जैसे–१ हरड, २ बहेडा, ३ आँवला, ४ पीपल, ५ दाख, ६ सफेद चन्दन, ७ सैंधानिमक, ८ गंगेरन, ९ काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनोंके अभावमें असगन्ध लेवे), १० मेदाके अभावमें मुलहटी, ११ काली मिरच, १२ सोंठ, १३ खांड, १४ सफेद कमल, १५ कमल, १६ पुनर्नवा (साँठ), १७ हल्दी, १८ दारुहल्दी और १९ मुलहटी ये उन्नीस औषध प्रत्येक कर्ष २ लेवे। कल्क करके इसको १ प्रस्थ घीमे मिलाय मन्दाग्निपर घीको सिद्ध करे। जब तैयार हो जावे तब उतारके छान लेवे, इसको त्रिफलाघृत कहते हैं। इस घृतके सेवन करनेसे रतोंध, तथा नोलाकेसे नेत्र चमके उसको नकुलांध्य कहते हैं वह, नेत्रोंकी खुजली, पिल्लरोग, नेत्रोंके जलका गिरना, नेत्रोंके पटलमें तिमिररोग होता है वह, मोतियाबिन्दु नेत्ररोगका भेद, अजक रोग ये संपूर्ण दूर होवें। इसके सिवाय और जो छोटे बडे नेत्रोंके रोग वे भी दूर हों। यह घृत नाकमें डालनेके भी उपयोगी है ॥

मतांतरसे लिखते हैं कि, त्रिफलाका रस १ प्रस्थ और भांगरेका रस १ प्रस्थ, अडूसेका रस १ प्रस्थ, सतावरका रस १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, गिलोयका रस १ प्रस्थ, आंवलोंका रस १ प्रस्थ इन सब रसोंको एकत्र कर घी १ प्रस्थ डालके पक्व करे। यह वंगसेन ग्रन्थमें लिखा है। यहभी पूर्वोक्त नेत्ररोगोंपर देवे ॥

गौर्याद्यघृत व्रणादिकोंपर ।

द्वेहरिद्रेस्थिरेमूर्वासारिवाचन्दनद्वयैः ॥ मधुपर्णीचमधुकं पद्मकेसरपद्मकैः ॥ ६९ ॥ उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफलापञ्चवल्कलैः ॥ कल्कैःकर्षमितैरेतैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ७० ॥ विसर्पलूताविस्फोटविषकीटव्रणापहम् ॥ गौर्याद्यमितिविख्यातंसर्पिर्विषहरंपरम् ॥ ७१ ॥

अर्थ—१ हल्दी, २ दारुहल्दी, ३ शालपर्णी, ४ मूर्वा, ५ सारिवा, ६ सफेद चन्दन, ७ लालचंदन, ८ माषपर्णी, ९ मुलहटी, १० कमलके भीतरकी केशर, ११ पद्माख, १२ कमल, १३ खस, १४ मेदाके अभावमें मुलहटी, १५ हरड, १६ बहेडा, १७ आँमला, १८ बडकी छाल, १९ गूलरकी छाल, २० पीपरकी छाल, २१ पापरीकी छाल और २२ वेत ये बाईस औषध प्रत्येक एक २ कर्ष लेवे । सबका कल्क करके इसका चौगुना इसमें जल मिलावे। फिर इसमें १ प्रस्थ घी डालके घी शेष रहने पर्यंत पचन करे । जब सिद्ध हो जावे तब उतारके घीको छान लेय । इस घृतके सेवन करनेसे विसर्परोग, लूता, विस्फोटक, विषदोष, क्षुद्रकुष्ठ, व्रण ये रोग दूर होवें । इस घृतके सेवनसे प्रायः विषबाधा दूर होती है ॥

मयूरघृत शिरोरोगादिकोंपर ।

बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः ॥ पृथग्द्विपलिकैरेभिर्द्रोणनीरेणपाचयेत् ॥ ७२ ॥ मयूरंपक्षपित्तांत्रयकृत्पादास्यवर्जितम् ॥ पादशेषंशृतंनीत्वाक्षीरंदत्त्वाचतत्समम् ॥ ७३ ॥ घृतप्रस्थंपचेत्सम्यग्जीवनीयैःपिचून्मितैः ॥ तत्सिद्धंशिरसःपीडांमन्याग्रीवाग्रहंतथा ॥ ७४ ॥ अर्दितंकर्णनासाक्षिजिह्वागलरुजोजयेत् ॥ पानेनस्येतथाभ्यंगेकर्णपूरेषुयुज्यते ॥७५॥ हेमन्तकालशिशिरवसंतेषुचशस्यते ॥

अर्थ—१ गंगेरनकी छाल, २ मुलहटी, ३ रास्ना, १० मूलोंकी जड, ३ त्रिफला इस प्रकार सब मिलायके १६ औषध दो दो पल लेकर जवकूट करके एक द्रोण जलमें डाल देवे। फिर एक मोरको मारके उसके पंख दूर करके कलेजेमें पित्त होता है वह आँतडे और दहनी तरफ जो यकृत् (कलेजा) पैर और मुख ये सब दूर करके उस मोरका शुद्ध मांस लेवे। तथा दूध काढेके समान ले घी १ प्रस्थ ले एवं जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क करके उसमें

डाल देय । फिर घृत मात्र शेष रहे इस प्रकार मंदाग्निपर पचन कर उतारके छान लेवे । पीनेमें, नाकमें-डालनेके विषयमें, देहमें लगाने और कानमें डालनेमें इनमें रोगका तारतम्य देखकर इसकी योजना करे । इसका सेवन हेमंतकालमें शिशिरकालमें तथा वसन्तकालमें करे तो मस्तककी पीडा दूर होय । गर्दन और गला इनका स्तंभ तथा मुख टेढा हो जावे ऐसी अर्दित वायु, कर्णशूल, नाक, नेत्र, जीभ और गला इनकी पीडाको दूर करे । इसे ' मयूरघृत ' कहते हैं ॥

फलघृत वंध्यारोगपर ।

त्रिफलामधुकंकुष्ठंद्वेनिशेकटुरोहिणी ॥ ७६ ॥ विडंगंपिप्पलीमुस्ताविशालाकट्फलंवचा ॥ द्वेमेदेद्वेचकाकोल्यौसारिवेद्वेप्रियंगुका ॥ ७७॥ शतपुष्पाहिंगुरास्नाचंदनंरक्तचंदनम् ॥ जातीपुष्पं तुगाक्षीरिकमलंशर्करातथा ॥ ७८ ॥ अजमोदाचदंतीचकल्कैरेतैश्चकार्षिकैः ॥ जीवद्वत्सैकवर्णायाघृतप्रस्थंचगोः क्षिपेत् ॥ ७९ ॥ चतुर्गुणेनपयसापचेदारण्यगोमयैः॥सुतिथौ पुण्यनक्षत्रेमृद्भांडेताम्रजेतथा ॥ ८० ॥ ततः पिबेच्छुभदिनेनारीवापुरुषोऽथवा ॥ एतत्सर्पिर्नरः पीत्वास्त्रीषुनित्यंवृषायते ॥ ॥ ८१ ॥ पुत्रानुत्पादयेद्धीमान्वंध्यापिलभतेसुतम् ॥ अनायुषं याजनयेद्याचसूता पुनः स्थिता ॥ ८२ ॥ पुत्रंप्राप्नोतिसानारी बुद्धिमंतंशतायुषम् ॥ एतत्फलघृतंनामभारद्वाजेनभाषितम् ॥ ८३ ॥ अनुक्तंलक्ष्मणामूलंक्षिपेत्तत्रचिकित्सकः ॥

अर्थ-१ हरड, २ वहेडा, ३ आँवला, ४ मुलहटी, ५ कूठ, ६ हल्दी, ७ दारुहल्दी, ८ कुटकी, ९ वायविडंग, १० पीपल, ११ नागरमोथा, १२ इन्द्रायणकी जड, १३ कायफल, १४ वच, १५ मेदा और महामेदा (इन दोनोंके अभावमें मुलहटी), १६ काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनोंके अभावमें (असगंध), १७ सफेद सारीवा, १८ कालीसारिवा, १९ फूलप्रियंगु, २० सौंफ, २१ भुनीहींग, २२ रास्ना, २३ सफेद चन्दन, २४ लाल चन्दन, २५ जावित्री, २६ वंशलोचन, २७ कमल, २८ खाँड, २९ अजमोदा, ३० दन्ती ये तीस औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेवे । सबका कल्क कर जिसके बछडा होवे तथा एकवर्णवाली गौका घी एक प्रस्थ लेवे, उसमें उस कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना गौका दूध

डाले। फिर सबको एक ताँबेके पात्रमें भरके अथवा मिट्टीके बासनमें भरके जिस दिन पुष्यनक्षत्र होवे अथवा शुभ दिन होय उस दिन आरने उपलोंकी मंद २ अग्नि देवे। जब घृत शेष रहे तब उतारके छान लेवे इसका फलघृत कहते हैं, यह घृत भारद्वाज ऋषिने कहा है। इसको उत्तम दिनमें पुरुषोंको अथवा स्त्रियोंको देवे, पुरुषोंको देनेसे उनका काम बढकर स्त्रीके साथ नित्य रमण करे, उसके पुत्र बुद्धिमान् होवे, वाँझ स्त्री इसका सेवन करे तो पुत्र प्रगट करे, जिस स्त्रीके बालक होकर मर जावे ऐसी स्त्रीके इसके सेवन करनेसे जो बालक होवे वह सौ वर्ष जीवे तथा बुद्धिमान् होय। इस घृतमें जो लक्ष्मणामूल कहा नहीं है परंतु ये गर्भदाता है इसवास्ते इसकाभी डाले (कई सफेद कटेलीको लक्ष्मणा कहते हैं)॥

पंचतिक्तघृत विषमज्वरादिकोंपर।

वृषनिंबामृताव्याघ्रीपटोलानांशृतेनच॥ ८४ ॥
कल्केनपक्वं सर्पिस्तुनिहन्याद्विषमज्वरान्॥
पांडुंकुष्ठंविसर्पंचकृमीनर्शांसि नाशयेत्॥ ८५ ॥

अर्थ–१ अडूसा, २ नीमके पत्ते, ३ गिलोय, ४ कटेरी और ५ पटोलपत्र इन पांच औषधोंका क्राथ कर उसके चौगुना घी लेवे उसमें उसीके कल्कको मिलावे फिर भट्टीपर चढायके मन्दमन्द अग्निसे घृत सिद्ध करे। फिर इसको छानके धरलेवे इसके सेवन करनेसे विषमज्वर, पांडुरोग, कोढ, विसर्प, कृमिरोग और बवासीर ये सब रोग दूर होवें॥

लघुफलघृत योनिरोगपर।

सहाचरेद्वेत्रिफलांगुडूचींसपुनर्नवाम्॥ शुकनासांहरिद्रेद्वेरास्नां
मेदांशतावरीम्॥ ८६ ॥ कल्कीकृत्यघृतप्रस्थंपचेत्क्षीरेचतुर्गु-
णे॥ तत्सिद्धंपाययेन्नारींयोनिशूलनिपीडिताम्॥ ८७ ॥
पीडिताचलितायाचानिःसृताविवृताचया॥ पित्तयोनिश्चविभ्रां-
ताषंढयोनिश्चयास्मृता॥ ८८ ॥ प्रपद्यंतेहिताः स्थानंगर्भंगृह्णं-
तिचासकृत्॥ एतत्फलघृतंनामयोनिदोषहरंपरम्॥ ८९ ॥

अर्थ–१ पियावाँसा, २ कालेफूलका पियावाँसा, ३ हरड, ४ बहेडा, ५ आमला, ६ गिलोय, ७ पुनर्नवा, ८ टेंटू, ९ हलदी, १० दारुहलदी, ११ रास्ना, १२ मेदाके अभावमें मुलहटी, तथा १३ सतावर इन तेरह औषधोंका कल्क कर एक प्रस्थ प्रमाण घी लेवे। उसमें पूर्वोक्त कल्क मिलावे गौका दूध घीसे चौगुना लेय तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना जल

मिलावे फिर चूल्हेपर चढाय मन्द २ अग्नि देवे जब सब वस्तु जलके केवल घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको जिस स्त्रीके योनिशूल है उसको देवे। मैथुनादिक करके जिसकी योनि पीडित है, जिस स्त्रीकी योनि चलकर पुष्पस्थान भ्रष्ट हुई, तथा योनिका मुख बडा हो गया हो उसको देवे । पित्तयोनि, विभ्रांतयोनि तथा षंढयोनि (जो गर्भधारण न करे) ऐसी स्त्रीको यह घृत देनेसे संपूर्ण योनिके रोग दूर होकर योनि ठिकानेपर आवे और गर्भ धारण करे । इस घृतको लघुफलघृत कहते हैं । यह घृत योनिके दोष हरण करनेमें श्रेष्ठ है ॥

अथ तैलसाधनप्रकारो लिख्यते लाक्षादितैल ।

लाक्षाढकं क्काथयित्वा जलस्य चतुराढकैः ॥ चतुर्थांशंशृतं नीत्वातैलप्रस्थंविनिक्षिपेत् ॥ ९० ॥ मस्त्वाढकंचगोदध्नस्तत्रैवविनियोजयेत् ॥ शतपुष्पामश्वगन्धांहरिद्रांदेवदारुच ॥९१॥ कटुकींरेणुकांमूर्वांकुष्ठंचमधुयष्टिकाम् ॥ चन्दनं मुस्तकंरास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः ॥ ९२ ॥ चूर्णयेत्तत्रनिक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना ॥ अस्याभ्यंगात्प्रशाम्यन्तिसर्वेऽपि विषमज्वराः ॥ ॥ ९३ ॥ कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा ॥ वातं पित्तमपस्मारमुन्मादंयक्षराक्षसान् ॥ ९४ ॥ कण्डूंशूलंचदौर्गंध्यंगात्राणांस्फुरणंजयेत् ॥ पुष्टगर्भाभवेदस्यगर्भिण्यभ्यंगतोभृशम् ॥ ९५ ॥

अर्थ—बेरकी अथवा कुडेकी लाख १ आढक लेके उसमें जल चार आढक डालके औटावे । जब सेरभर जल रहे तब उतारके छान लेवे । उसमें तिल्लीका तेल १ प्रस्थ डाले तथा दहीका तोड एक आढक मिलावे फिर चूर्ण करके डालनेकी औषध इस प्रकार डाले—१ सौंफ, २ असगंध, ३ हल्दी, ४ देवदारु, ५ कुटकी, ६ रेणुकाबीज, ७ मूर्वा, ८ कूट, ९ मुलहटी, १० सफेद चंदन, ११ नागरमोथा और १२ रास्ना ये बारह औषध एक एक कर्ष लेवे । सबका चूर्ण करके उस तेलमें डालके मंदाग्निसे पचन करावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके तेलको छान लेवे । इसकी देहमें मालिश करनेसे संपूर्ण विषमज्वर, खाँसी, श्वास, पीनस, कमरका तथा पठिका शूल, वादीका कोप, पित्तका कोप, मृगी, उन्मादरोग, क्षयरोग, राक्षसादिककी पीडा, खुजली, देहमें दुर्गंधका आना, शूल, अंगस्फुरण ये संपूर्ण रोग दूर होंय । गर्भवती स्त्री भी इसे मर्दन कर सकती है, इससे गर्भ पुष्ट होता है॥

डाले । फिर सबको एक ताँबेके पात्रमें भरके अथवा मिट्टीके वासनमें भरके जिस दिन पुष्यनक्षत्र होवे अथवा शुभ दिन होय उस दिन आरने उपलोंकी मंद २ अग्नि देवे । जब घृत शेष रहे तब उतारके छान लेवे इसका फलघृत कहते हैं, यह घृत भारद्वाज ऋषिने कहा है । इसको उत्तम दिनमें पुरुषोंको अथवा स्त्रियोंको देवे, पुरुषोंको देनेसे उनका काम बढकर स्त्रीके साथ नित्य रमण करे, उसके पुत्र बुद्धिमान् होवे, वाँझ स्त्री इसका सेवन करे तो पुत्र प्रगट करे, जिस स्त्रीके बालक होकर मर जावे ऐसी स्त्रीके इसके सेवन करनेसे जो बालक होवे वह सौ वर्ष जीवे तथा बुद्धिमान् होय । इस घृतमें जो लक्ष्मणामूल कहा नहीं है परंतु ये गर्भदाता है इसवास्ते इसकाभी डाले (कई सफेद कटेलीको लक्ष्मणा कहते हैं) ॥

पंचतिक्तघृत विषमज्वरादिकोंपर ।

वृषनिंबामृताव्याघ्रीपटोलानांशृतेनच ॥ ८४ ॥
कल्केनपक्कं सर्पिस्तुनिहन्याद्विषमज्वरान् ॥
पांडुंकुष्ठंविसर्पंचकृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ—१ अडूसा, २ नीमके पत्ते, ३ गिलोय, ४ कटेरी और ५ पटोलपत्र इन पांच औषधोंका क्वाथ कर उसके चौगुना घी लेवे उसमें उसीके कल्कको मिलावे फिर भट्टीपर चढायके मन्दमन्द अग्निसे घृत सिद्ध करे । फिर इसको छानके धरलेवे इसके सेवन करनेसे विषमज्वर, पांडुरोग, कोढ, विसर्प, कृमिरोग और बवासीर ये सब रोग दूर होवें ॥

लघुफलघृत योनिरोगपर ।

सहाचरेद्वेत्रिफलांगुडूचींसपुनर्नवाम् ॥ शुकनासांहरिद्रेद्वेरास्नां
मेदांशतावरीम् ॥ ८६ ॥ कल्कीकृत्यघृतप्रस्थंपचेत्क्षीरेचतुर्गु-
णे ॥ तत्सिद्धंपाययेन्नारींयोनिशूलनिपीडिताम् ॥ ८७ ॥
पीडिताचलितायाचानिःसृताविवृताचया ॥ पित्तयोनिश्चविभ्रां-
तापंढयोनिश्चयास्मृता ॥ ८८ ॥ प्रपद्यंतेहिताः स्थानंगर्भंगृह्णं-
तिचासकृत् ॥ एतत्फलघृतंनामयोनिदोषहरंपरम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—१ पियावाँसा, २ काले फूलका पियावाँसा, ३ हरड, ४ बहेडा, ५ आमला, ६ गिलोय, ७ पुनर्नवा, ८ टेंटू, ९ हलदी, १० दारुहलदी, ११ रास्ना, १२ मेदाके अभावमें मुलहटी, तथा १३ सतावर इन तेरह औषधोंका कल्क कर एक प्रस्थ प्रमाण घी लेवे । उसमें पूर्वोक्त कल्क मिलावे गौका दूध घीसे चौगुना लेय तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना जद

मिलावे फिर चूल्हेपर चढाय मन्द २ अग्नि देवे जब सब वस्तु जलके केवल घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको जिस स्त्रीके योनिशूल है उसको देवे। मैथुनादिक करके जिसकी योनि पीडित है, जिस स्त्रीकी योनि चलकर पुष्पस्थान भ्रष्ट हुई, तथा योनिका मुख बडा हो गया हो उसको देवे। पित्तयोनि, विभ्रांतयोनि तथा षंढयोनि (जो गर्भधारण न करे) ऐसी स्त्रीको यह घृत देनेसे संपूर्ण योनिके रोग दूर होकर योनि ठिकानेपर आवे और गर्भ धारण करे । इस घृतको लघुफलघृत कहते हैं। यह घृत योनिके दोष हरण करनेमें श्रेष्ठ है॥

अथ तैलसाधनप्रकारो लिख्यते लाक्षादितैल।

लाक्षाढकं क्राथयित्वा जलस्य चतुराढकैः ॥ चतुर्थांशंशृतं नीत्वातैलप्रस्थंविनिक्षिपेत् ॥ ९० ॥ मस्त्वाढकंचगोदध्नस्तत्रैवविनियोजयेत् ॥ शतपुष्पामश्वगन्धांहरिद्रांदेवदारुच ॥९१॥ कटुकींरेणुकांमूर्वांकुष्ठंचमधुयष्टिकाम् ॥ चन्दनं मुस्तकंरास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः ॥ ९२ ॥ चूर्णयेत्तत्रनिक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना ॥ अस्याभ्यंगात्प्रशाम्यन्तिसर्वेऽपि विषमज्वराः ॥ ॥ ९३ ॥ कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा ॥ वातं पित्तमपस्मारमुन्मादंयक्षराक्षसान् ॥ ९४ ॥ कण्डूंशूलंचदौर्गंध्यंगात्राणांस्फुरणंजयेत् ॥ पुष्टगर्भोभवेदस्यगर्भिण्यभ्यंगतोभृशम् ॥ ९६ ॥

अर्थ–बेरकी अथवा कुडेकी लाख १ आढक लेके उसमें जल चार आढक डालके औटावे। जब सेरभर जल रहे तब उतारके छान लेव। उसमें तिल्लीका तेल १ प्रस्थ डाले तथा दहीका तोड एक आढक मिलावे फिर चूर्ण करके डालनेकी औषध इस प्रकार डाले–१ सौंफ, २ असगंध, ३ हल्दी, ४ देवदारु, ५ कुटकी, ६ रेणुकाबीज, ७ मूर्वा, ८ कूट, ९ मुलहटी, १० सफेद चंदन, ११ नागरमोथा और १२ रास्ना ये बारह औषध एक एक कर्ष लेवे । सबका चूर्ण करके उस तेलमें डालके मंदाग्निसे पचन करावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके तेलको छान लेवे। इसकी देहमें मालिश करनेसे संपूर्ण विषमज्वर, खाँसी, श्वास, पीनस, कमरका तथा पीठका शूल, वादीका कोप, पित्तका कोप, मृगी, उन्मादरोग, क्षयरोग, राक्षसादिककी पीडा, खुजली, देहमें दुर्गंधका आना, शूल, अंगस्फुरण ये संपूर्ण रोग दूर होंय। गर्भवती स्त्री भी इसे मर्दन कर सकती है, इससे गर्भ पुष्ट होता है॥

अंगारतैल सर्वज्वरपर।

मूर्वालाक्षाहरिद्रेद्वेमंजिष्ठासैन्द्रवारुणी ॥ बृहतीसैंधवंकुष्ठं रास्ना मांसीशतावरी ॥ ९६ ॥ आरनालाढकेतत्रतैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ तैलमंगारकंनामसर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ ९७ ॥

अर्थ-१ मूर्वा, २ लाख, ३ हल्दी, ४ दारुहल्दी, ५ मजीठ, ६ इन्द्रायणकी जड, ७ कटेरी, ८ सैंधानमक, ९ कूठ, १० रास्ना, ११ जटामांसी और १२ शतावर ये बारह औषधि समान भाग अर्थात् एक एक कर्ष प्रमाण लेवे सबका चूर्ण करे। चार सेर कांजी तथा एक प्रस्थ तिलका तेल इनमें पूर्वोक्त चूर्णको मिलायके औटावे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार ले इस तेलको अंगारतैल कहते हैं। इसको मालिश करनेसे सर्वज्वर दूर होवें ॥

नारायणतैल सर्ववातपर।

अश्वगन्धाबलाबिल्वंपाटलाबृहतीद्वयम् ॥ श्वदंष्ट्रातिबलेनिंबं स्योनाकंचपुनर्नवाम् ॥ ९८ ॥ प्रसारिणीमाग्निमन्थंकुर्याद्दशपलंपृथक् ॥ चतुर्द्रोणेजलेपक्त्वापादशेषंशृतंनयेत् ॥ ९९ ॥ तैलाढकेनसंयोज्यशतावर्यारसाढकम् ॥ क्षिपेत्तत्रचगोक्षीरं तैलात्तस्माच्चतुर्गुणम् ॥१००॥ शनैर्विपाचयेदेभिःकल्कैर्द्विपलिकैःपृथक् ॥ कुष्ठैलाचंदनंमूर्वावचामांसीससैंधवैः ॥१०१॥ अश्वगन्धाबलारास्नाशतपुष्पेंद्रदारुभिः ॥ पर्णीचतुष्टयेनैवतगरेणैवसाधयेत् ॥ १०२ ॥ तत्तैलंनावनेऽभ्यङ्गेपानेवस्तौच योजयेत्॥पक्षाघातंहनुस्तम्भंमन्यास्तम्भंकाट्यग्रहम्॥१०३॥ खञ्जत्वंबाधिरत्वंचगतिभङ्गंगलग्रहम् ॥ गात्रशोषेंद्रियध्वंसावसृक्छुक्रज्वरक्षयान् ॥१०४॥ अण्डवृद्धिंकुरंडंचदंतरोगंशिरोग्रहम् ॥ पार्श्वशूलंचपांगुल्यंबुद्धिहानिंचगृध्रसीम् ॥ १०५ ॥ अन्यांश्चविषमान्वाताञ्जयेत्सर्वांगसंश्रयान् ॥ अस्यप्रभावाद्वन्ध्यापिनारीपुत्रंप्रसूयते ॥ १०६ ॥ मर्त्योगजोवातुरगस्तैलाभ्यङ्गात्सुखीभवेत् ॥ यथानारायणोदेवोदुष्टदैत्यविनाशनः ॥ ॥ १०७ ॥ तथैववातरोगाणांनाशनंतैलमुत्तमम् ॥

अर्थ-१ असगंध, २ गंगेरनकी छाल, ३ बेलगिरी, ४ पाठ, ५ कटेरी, ६ बडी कटरा,

७ गोखरू, ८ अतिबला, ९ नीमकी छाल, १० टेंटू, ११ पुनर्नवा, १२ प्रसारणी और १३ अरनी ये तेरह औषध दश २ पल लेवे । इनको जवकुट करके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब चतुर्थांश रहे तब उतारके काढेको छान लेवे । इसमें तिल्लीका तेल १ आढक डाले, शतावरीका रस १ आढक तथा गौका दूध ४ आढक ले उस तेलमें मिलाय देवे । आगे कल्क करके डालनेकी औषध लिखते हैं । जैसे—१ कूठ, २ इलायची, ३ सफेद चन्दन, ४ मूर्वा, ५ वच, ६ जटामांसी, ७ सैंधानमक, ८ असगन्ध, ९ गंगेरनकी छाल, १० रास्ना, ११ सौंफ, १२ देवदारु, १३ सालपर्णी, १४ पृष्ठपर्णी, १५ माषपर्णी, १६ मुद्गपर्णी और १७ तगर य सब सत्रह औषध दो दो पल लेय सबका कल्क करके उस तेलमें मिलाय देवे । फिर इस तेलको चूल्हेपर चढाय मन्द २ अग्निपर रखके परिपाक करे । जब तेलमात्र आय रहे तब उतारके छान लेवे । इस तेलको नारायणतेल कहते हैं । इस तेलको नाकमें डालना, देहमें लगाना, पीना तथा बस्तिकर्म विषयमें योजना करे । इस तेलसे पक्षाघात कहिये अर्धांगवायु, हनुस्तंभ, मन्यास्तंभ, कटिग्रहवायु, खल्लत्व[१], बहरापन, पैरोंकी वायु, गलग्रह, कमरकी वायु, हाथ पैर आदि गात्रोंका शोषणकर्ता वायु, चक्षुरादि इन्द्रियोंका नाशकर्ता वायु, रुधिरविकार, धातुक्षयरोग, अंत्रवृद्धि, कुरंड (जिससे अण्डकोश बढ जावें), दंतरोग, मस्तकका वायु, पार्श्वशूल जिससे पांगुरापना होय वह वायु, बुद्धिभ्रंश और कमरसे लेकर पैर पर्यन्त गृध्रसी इन नामकी वायु होती है वह ये संपूर्ण बादीके विकार दूर हों । तथा इसके सिवाय दूसरे विषमवायु छोटे बडे सर्वांगमें अथवा अर्द्धांगमें जो हों वे भी दूर होंय । इस तेलके प्रभावसे वंध्या स्त्रियोंके पुत्र होय । यह तेल अंगमें लगानेसे मनुष्योंको सुख होता है, हाथीके तथा घोडोंके अंगमें लगानेसे उनके भी बादीके रोग दूर होते हैं । इसमें दृष्टांत है कि जैसे नारायण दैत्योंका नाश करते हैं उसी प्रकार यह नारायणतैल संपूर्ण वातरोगोंका नाश करता है ॥

वारुण्यादितैल कंपवायुपर ।

वारुण्याह्योत्तरंमूलंकुट्टितंतुपलत्रयम् ॥ १०८ ॥ पलद्वादशकं
तैलंक्षणंवह्नौविपाचितम् ॥ निष्कत्रयंभक्तयुतंसेवतास्माद्विनश्यति ॥१०९॥
हस्तकंपः शिरःकंपः कंपोमन्याशिराभवः ॥

अर्थ—इन्द्रायणकी उत्तर दिशाके तरफ होनेवाली जड ३ पल ले जवकूट करके कल्क कर ले फिर बारह पल तिलोंके तेलमें इस कल्कको मिलाय औटावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । यह तेल (बलाबल विचारके) तोले २ भातके साथ खाय तो हस्तकंप, शिरःकंप, गरदनका हिलना इत्यादिक वातरोग दूर हों ॥

---

[१] जिस वातमें पैर पिंडरी जांघ और पहुँचा मुरजावे उसको खल्लीवात कहते है

बलातैल वातादिकोंपर ।

बलामूलकषायेणदशमूलशृतेनच ॥ ११० ॥ कुलत्थयवकोलानांक्काथेनपयसातथा ॥ अष्टाष्टभागयुक्तेनभागमेकंचतैलकम् ॥ १११॥ गणेनजीवनीयेनशतावर्यैंद्रवारुणा ॥ मंजिष्ठाकुष्ठशैलेयतगरागरुसैंधवैः ॥ ११२ ॥ वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपत्रकैः ॥ शतपुष्पाश्वगंधाभ्यामेलयाचविपाचयेत् ॥ ११३ ॥ गर्भार्थिनीनांनारीणांपुंसांचक्षीणरेतसाम् ॥ व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानांचशुज्यते ॥ ११४ ॥ राजयोग्यमिदंतैलंसुखिनांच विशेषतः ॥ बलातैलमितिख्यातंसर्ववातामयापहम् ॥ ११५ ॥

अर्थ–खरेंटीकी जड ८ प्रस्थ ले उसमें जल बत्तीस प्रस्थ डाले । फिर चूल्हेपर चढाके चौथाई शेष रहे इस प्रकार काढा करे । इसको छानके घर देवे । तथा दशमूलकी दश औषधोंको मिलायके आठ प्रस्थ लेय उनमें ३२ प्रस्थ जल डालके काढा करे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे तथा १ कुलथी, २ जौ और ३ बेरके भीतरका बीज ये तीन औषध पृथक् २ आठ २ प्रस्थ लेके बत्तीस २ प्रस्थ जल डालके चत्तुर्थावशेष काढा करे और पृथक् २ छानके घर लेवे फिर इन पांचों काढोंको मिलायके इसभें गौका दूध आठ प्रस्थ डाले और तिलीका तेल एक प्रस्थ मिलावे । फिर चूर्ण करके डालनेकी औषध इस प्रकार ले । जैसे ७ जीवनीय गणकी औषध सात, ८ सतावर, ९ देवदारु, १० मजीठ, ११ कूठ, १२ पत्थरका फूल, १३ तगर, १४ अगर, १५ सैंधानमक, १६ वच, १७ पुनर्नवा, १८ जटामांसी, १९ सफेद सारिवा, २० कालीसारिवा, २१ पत्रज, २२ सौंफ, २३ असगन्ध आर २४ इलायची ये चौबीस औषध तेलके चतुर्थांश लेकर कल्क करके उस तेलमें डाल देवे । फिर अग्निपर चढायके तेल शेष रहने पर्यन्त औटावे । फिर इसको छान लेवे इसको बलातेल कहते हैं । यह तेल जिस स्त्रीके गर्भकी इच्छा है उसके देहमें लगावे तथा जिस पुरुषकी धातु क्षणि है उसके तथा बहुत दूर जाने आनेके परिश्रम करके क्षीण है, देह जिसका उसके तथा प्रसूता स्त्रियोंके लगावे । यह तल विशेष करके राजाओं और सुखी मनुष्य सेठ साहूकारोंके योग्य है । इससे संपूर्ण बादीके विकार दूर होते हैं ॥

प्रसारिणीतैल वातकफजन्यविकार तथा बादीपर ।

प्रसारिणीपलशतंजलद्रोणेनपाचयेत् ॥ पादशिष्टः शृतो ग्राह्यस्तैलंदधिचतत्समम् ॥ ११६ ॥ कांजिकंचसमंतैलात्क्षीरंते-

लाच्चतुर्गुणम् ॥ तैलात्तथाष्टमांशेनसर्वकल्कांश्चयोजयेत् ॥ ११७ ॥ मधुकंपिप्पलीमूलंचित्रकःसैंधवंवचा ॥ प्रसारिणी देवदारुरास्नाचगजपिप्पली ॥११८॥ भल्लातः शतपुष्पाचमांसीचैभिर्विपाचयेत् ॥ एतत्तैलंवरंपक्कंवातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥ ११९ ॥ कौब्जंखंजत्वपंगुत्वगृध्रसीमर्दितंतथा ॥ हनुपृष्ठशिरोग्रीवाकटिस्तंभंचनाशयेत् ॥ १२० ॥ अन्यांश्चविषमान्वातान्सर्वानाशुव्यपोहति ॥

अर्थ–प्रसारिणी औषध १०० पल ले । उसमें १ द्रोण जल डालके काढा करे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेय । इसमें तेल दही और कांजी ये काढके समान पृथक २ लेके मिलावे । फिर तेलसे चौगुना गौका दूध डाले तथा कल्क करके डालनेकी औषधि इस प्रकार लेनी जैसे १ मुलहठी, २ पीपरामूल, ३ चीतेकी छाल, ४ सैंधानमक, ५ वच, ६ प्रसार्णी, ७ देवदारु, ८ रास्ना, ९ गजपीपल, १० भिलावें, ११ सौंफ और १२ जटामांसी ये बारह औषध तेलके अष्टमांश ले कल्क करके तेलमें मिलाय देवे । फिर अग्निपर चढायके तेलमात्र शेष रक्खे इसको छानके धर ले । इसको देहमें मालिश करे तो वात कफके विकार, जिससे मनुष्य कुबडा होता है वह वायु, खंजवायु, जिससे मनुष्य पांगुला होय सो पंगुवायु, गृध्रसी वायु, हनु (ठोडी), पृष्ठ (पीठ), शिर, गरदन और कमर इनका जकडना ये सब वायु दूर होवें । इसके सिवाय दूसरे विषम वायु जो छोटे बडे हैं वे इस तेलके लगानेसे दूर होवें ॥

माषादितैल ग्रीवास्तंभादिकोंपर ।

माषायवातसीक्षुद्रामर्कटीचकुरंटकः ॥ १२१ ॥ गोकंटटुंटुकश्चैषांकुर्यात्सप्तपलंपृथक् ॥ चतुर्गुणांबुनापक्त्वापादशेषंशृतंनयेत् ॥ १२२ ॥ कार्पासास्थीनिबदरंशणबीजंकुलत्थकम् ॥ पृथक्चतुर्दशपलंचतुर्द्रोणजलेपचेत् ॥ चतुर्थांशावशिष्टंचगृहीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥ १२३ ॥ प्रस्थैकंछागमांसस्यचतुःषष्टिःपलेजले ॥ निक्षिप्यपाचयेद्धीमान्पादशेषंरसंनयेत् ॥ १२४॥ तैलप्रस्थेततः क्काथान्सर्वानेतान्विनिक्षिपेत् ॥ कल्कैरेभिश्चविपचेदमृताकुष्ठनागरैः ॥१२५॥ रास्नापुनर्नवैरंडैः पिप्पल्या शतपुष्पया ॥ बलाप्रसारिणीभ्यांचमांस्याकटुकयातथा ॥१२६॥

पृथगर्धपलैरेतैः साधयेन्मृदुवह्निना ॥ हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं
ग्रीवास्तंभापबाहुकौ ॥१२७॥ अर्धांगशोषमाक्षेपमूरुस्तंभाप-
तानकौ ॥ शाखाकंपं शिरःकंपंविश्वाचीमर्दितंतथा ॥१२८॥
माषादिकमिदंतैलंसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ-१ उडद, २ जव, ३ अलसीके बीज, ४ कटेरी, ५ कौंचके बीज, ६ पियावांसा, ७ गोखरू और ८ टेंटू ये आठ औषध सात २ पल लेवे । सबको जवकूट कर सब औषधोंसे चौगुना जल डालके औटावे । जब चौथाई शेष रहे तब उतारके छान लेवे । १ कपासके बिनोले, २ बेरकी गुठली, ३ सनके बीज, ४ कुलथी ये चार औषध चौदह २ पल लेवे । इनमें चौगुना जल मिलायके चौथाई जल रहने पर्यंत काढा करे । फिर छानके इसको धर लेवे । पश्चात् बकरेका मांस १ प्रस्थ ले उसमें चौसठ पल जल डालके औटावे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेय । फिर तिल्लीका तेल १ प्रस्थ ले और पूर्वोक्त संपूर्ण काढेको एकत्र करके उसमें तेलको मिलाय देवे । इसमें कल्क करके डालनेकी औषध इस प्रकार लेनी-१ गिलोय, २ कूठ, ३ सोंठ, ४ रास्ना, ५ पुनर्नवा, ६ अंडकी जड, ७ पीपल, ८ सौंफ, ९ खेरेंटीकी छाल, १० प्रसारणी, ११ जटामांसी, १२ कुटकी ये बारह औषध आधे २ पल लेय सबका कल्क करके तेलमें मिलाय देवे । फिर इसको चूल्हेपर चढाय मंदाग्निसे पचन करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको माषादि तेल कहते हैं । यह तेल देहमें लगानेसे ग्रीवास्तंभ वायु, अपबाहुकवायु, अर्धांग वायु, आक्षेपक वायु, ऊरुस्तंभ वायु, अपतानक वायु, हस्तपादादि शाखाओंको कंपानेवाला वायु, मस्तक कंपानेवाला वायु, विश्वाची वायु, अर्दित वायु ये संपूर्ण दूर होवें ॥

शतावरीतैल शूलादि वायशादिकोंपर ।

शतावरीबलायुग्मंपर्ण्यौगंधर्वहस्तकः ॥१२९॥ अश्वगधाश्व-
दंष्ट्राचबिल्वः काशः कुरंटकः ॥ एषांसार्धपलान्भागान्कल्पयेच्च
विपाचयेत् ॥ १३० ॥ चतुर्गुणेननीरेणपादशेषंशृतंनयेत् ॥
नियोज्यतैलप्रस्थेचक्षीरप्रस्थंविनिक्षिपेत् ॥ १३१॥ शतावरी
रसप्रस्थंजलप्रस्थंचयोजयेत् ॥ शतावरीदेवदारुमांसीतगरचं-
दनम् ॥ १३२ ॥ शतपुष्पाबलाकुष्ठमेलाशैलेयमुत्पलम् ॥
ऋद्धिर्मेदाचमधुकंकाकोलीजीवकस्तथा ॥ १३३॥ एषां कर्षैः
समैः कल्कैस्तैलंगोमयवह्निना ॥ पचेत्तैनैवतैलेनस्त्रीषुनित्यं

वृषायते ॥ १३४ ॥ नारीचलभतेपुत्रंयोनिशूलंचनश्यति ॥ अङ्गशूलंशिरःशूलंकामलांपांडुतांगरम् ॥ १३५ ॥ गृध्रसीं प्लीहशोषांश्चमेहान्दंडापतानकम् ॥ सदाहंवातरक्तंचवातपित्तगदार्दितम् ॥ १३६ ॥ असृग्दरंतथाध्मानंरक्तपित्तंच नश्यति ॥ शतावरीतैलमिदंकृष्णात्रेयेणभाषितम् ॥ १३७ ॥ नारायणस्वाहा ॥ उत्तराभिमुखोभूत्वाखनेत्खादिरशंकुना ॥ सर्वव्याधिनाशनीयेस्वाहाइतिउत्पाटनमन्त्रः ॥ कुमारजीवनीये स्वाहा ॥ इति पाचनमन्त्रः ॥

अर्थ–१ शतावर, २ खरेटीकी जड, ३ गंगेरन, ४ शालपर्णी, ५ पृष्ठपर्णी, ६ अंडकी जड, ७ असगन्ध, ८ गोखरू, ९ बेलकी जड, १० कांसकी जड, ११ पियावांसा ये ग्यारह औषध डेढ २ पल लेवे उनमें चौगुना जल डालके औटावे जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेवे। इसमें तिलका तेल १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ और जल १ प्रस्थ सबको मिलायके एकत्र करे । इसमें कल्क करके डालनेकी औषधि लिखता हूं–१ शतावर, २ देवदारु, ३ जटामांसी, ४ तगर, ५ सफेद चन्दन, ६ सौंफ, ७ खरेंटीकी जड, ८ कूट, ९ इलायची, १० पत्थरका फूल, ११ कमल, १२ ऋद्धिके अभावमें वाराहीकन्द १३ मेदाके अभावमें मुलहटी, १४ मुलहटी, १५ काकोलीके अभावमें असगन्ध, १६ जीवकके अभावमें विदारीकंद ये सोलह औषधि एक एक २ कर्ष ले सबका कल्क करके उस तेलमें डालके गौके आरने उपलोंकी मन्दाग्निसे तेलको सिद्ध करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे इसको शतावरी तेल कहते हैं । यह तेल कृष्णात्रेय ऋषिने कहा है। इसको मालिस करनेसे पुरुष स्त्रियोंको नित्य अत्यन्त प्रीतिके साथ भोगे तथा स्त्रियोंके देहमें लगानस पुत्रकी प्राप्ति होय । योनिशूल, अङ्गशूल, मस्तकशूल, कामला, पांडुरोग, विषबाधा, गृध्रसीरोग, तिल्ली, शोष, प्रमेह, दंडापतान, वायु, दाहयुक्त वातरक्त तथा वातपित्त ज्वरकरके स्त्रियोंको प्रदर होता है सो, पेटका फूलना और रक्तपित्त ये संपूर्ण रोग दूर हों। अब वनमेंसे शतावर लानेका प्रकार कहते हैं कि, (नारायण स्वाहा) इस प्रकार कहके और नमस्कार कर उत्तरकी तरफ मुख करके खैरकी कीलके समान लकडीसे शतावरको खोदें तथा (सर्वव्याधिनाशिनीये स्वाहा) इस प्रकार कहके और नमस्कार करके उसको उखाडे तथा (कुमारीजीवनीये स्वाहा) ऐसे कहके और नमस्कारकरके इसका पाक करे ॥ इति शतावरीतैलम् ॥

कासीसादितैल बवासीरपर ।

कासीसंलांगलीकुष्ठंशुण्ठीकृष्णाचसैंधवम् ॥ १३८ ॥ मनः-

शिलाश्वमारश्चविडङ्गंचित्रकोवृषः ॥ दन्तीकोशातकीबीजहेमाह्वाहरितालकाः ॥ १३९ ॥ कल्कैःकर्षमितैरेतैस्तैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ सुधार्कपयसीदद्यात्पृथग्द्विपलसंमिते ॥ १४० ॥ चतुर्गुणंगवांमूत्रंदत्त्वासम्यक्प्रसाधयेत् ॥ कथितंखरनादेनतैलमर्शोविनाशनम् ॥ १४१ ॥ क्षारवत्पातयत्येतदर्शांस्यभ्यङ्गतोभृशम् ॥ वलीर्नदूषयत्येतत्क्षारकर्मकरंस्मृतम् ॥ १४२ ॥

अर्थ–१ हीराकसीस, २ कलयारी, ३ कूट, ४ सोंठ, ५ पीपल, ६ सैंधानिमक, ७ मनसिल, ८ सफेद कनेर, ९ वायविडंग, १० चीतकी छाल, ११ अडूसा, १२ दंती, १३ कडुई तोरईके बीज, १४ चौक और १५ हरताल ये १५ औषध एक एक कर्षभर ले सबका कल्क करके तिलके १ प्रस्थ तेलमें मिलाय देवे । थूहरका दूध तथा आकका दूध ये दोनों दो दो पल ले, सबको तेलमें मिलाय देवे और तेलसे चौगुनी गौका मूत्र ले इसको भी तेलमें मिलाय अग्निपर चढायके पाक करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । यह तेल खरनादऋषिने कहा है । यह बवासीरके मस्सोंपर क्षार लगानेके समान लगावे, इसके लेपसे गुदाके भीतरके मस्से विना उपद्रवके जडसे उखडके गिर जाय और यह क्षारके समान गुदाकी वलियोंको नहीं विगाडता ॥

पिंडतैल वातरक्तपर ।

मञ्जिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थ पलोन्मितैः ॥
पिण्डाख्यंसाधयेत्तैलमैरंडंवातरक्तनुत् ॥ १४३ ॥

अर्थ–१ मजीठ, २ सारिवा, ३ रार, ४ मुलहटी, ५ मोम इन औषधोंको एक १ पल ले कल्क करे चौगुना अंडीका तेल लेकर पूर्वोक्त कल्कको मिलाय दे और पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डाले । फिर अग्निपर रखके तेल सिद्ध करे तथा इसमें मोम डाले । जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेवे । यह मल्हम जिस मनुष्यके वातरक्त रोग होय उसके लगाना चाहिये तो वातरक्त रोग दूर होवे ॥

अर्कतैल खुजली और फोडाआदिपर ।

अर्कपत्ररसेपक्वंहरिद्राकल्कसंयुतम् ॥
नाशयेत्सार्षपंतैलंपामांकच्छूंविचर्चिकाम् ॥ १४४ ॥

अर्थ–हल्दीका कल्क करके उस कल्कका चौगुना सरसोंका तेल लेवे । उसमें कल्कको

मिलाय तथा तेलसे चौगुना आकके पत्तोंका रस डालके तेलको परिपक्व करे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छानलेवे । इसको देहमें लगानेसे खुजली, कच्छू, दाद, पैर फूटकर ददरा पड जावे वह और विचर्चिका रोग दूर होय ॥

मरिचादितैल कुष्ठादिकोंपर ।

मरिचंहरितालंचत्रिवृतंरक्तचंदनम् ॥१४५॥ मुस्तंमनःशिला मांसींद्वेनिशेदेवदारुच ॥ विशालकरवीरंचकुष्ठमर्कपयस्तथा ॥१४६॥ तथैवगोमयरसंकुर्यात्कर्षमितान्पृथक् ॥ विषंचार्धपलंदेयंप्रस्थंचकटुतैलकम् ॥ १४७ ॥ गोमूत्रंद्विगुणंदद्याज्जलंचद्विगुणंभवेत् ॥ मरिचाद्यमिदंतैलंसिध्मकुष्ठहरंपरम्॥१४८॥ जयेत्कुष्ठानिसर्वाणिपुण्डरीकंविचर्चिकाम् ॥ पामांसिध्मानिरक्तंचकण्डूंकच्छूंप्रणाशयेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ-१ कालीमिरच, २ हरताल, ३ निशोथ, ४ लाल चन्दन, ५ नागरमोथा, ६ मनसिल, ७ जटामांसी, ८ हल्दी, ९ दारुहल्दी, १० देवदारु, ११ इन्द्रायनकी जड, १२ कनेरकी जड, १३ कूट, १४ आकका दूध, १५ गौके गोबरका रस ये पन्द्रह औषध एक एक कर्ष लेवे, तथा शुद्ध किया हुआ बच्छनागविष आधा पल लेवे सबको एकत्र पीस कल्क करके सरसोंके १ प्रस्थ तेलमें मिलाय दे । तथा तेलसे दुगुना गोमूत्र और पानी डालके औटावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसकी देहमें मालिस करनेसे सिध्म कुष्ठ आदि संपूर्ण कुष्ठ दूर हों । पुंडरीक नामक कुष्ठ, विचर्चिका, खुजली, चित्रकुष्ठ, कंडू, रक्तकुष्ठ और फोडा ये संपूर्ण रोग दूर होवें ॥

त्रिफलातैल व्रणपर ।

त्रिफलारिष्टभूनिंबद्वेनिशेरक्तचंदनम् ॥
एतैः सिद्धमरूषीणांतैलमभ्यंजनेहितम् ॥ १५० ॥

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा ३ आँवला, ४ नीमकी छाल, ५ चिरायता, ६ हल्दी, ७ दारुहल्दी और ८ लाल चन्दन इन आठ औषधोंका कल्क करके तथा कल्कसे चौगुना तिलका तेल लेवे इसमें कल्कको डाले । कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डालके औटावे । जब केवल तलमात्र रहे तब उतारके छान लेय । जिस मनुष्यके अंगपर बहुत व्रण (फोडे) हों तथा मुंडम फोडे होवें उसके लगावे तो सर्व व्रण दूर हों ॥

निंबबीजतैल पलितरोगपर ।

भावयेन्निंबबीजानिभृंगराजरसेनहि ॥ तथासनस्यतोयेनतत्तैलं

हंतिनस्यतः ॥१६१॥ अकालपलितंसद्यः पुंसांदुग्धान्नभोजिनाम् ॥

अर्थ—नीमके बीजोंमें भाँगरेके रसकी पुट दे तथा विजयसारकी छालका रस निकालके पुट देवे फिर उनका यंत्रद्वारा तेल निकाल लेवे इस तेलकी नस्य लेवे और पथ्यमें गौका दूध और भात देवे तो जिस मनुष्यके अकालमें सफेद बाल हो गये हों वे तत्काल काले भौंराके समान हो जावें ॥

मधुयष्टीतैल बाल आनेपर ।

यष्टीमधुकक्षीराभ्यांनवधात्रीफलैः शृतम् ॥ १६२ ॥
तैलंनस्यकृतंकुर्यात्केशाञ्श्मश्रूणिसर्वशः ॥

अर्थ—मुलहटी और नवीन गीले आँवले इन दोनोंका कल्क करे तथा कल्कसे चौगुना तिलोंका तेल लेवे । कल्कको मिलायके तेलसे चौगुना गौका दूध तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल डाले । सबको एकत्र कर अग्निपर चढायके पाक करे । जब तेलमात्र रहे तब उतारके तेलको छान ले । इसकी नस्य देनेसे इस प्राणीके मस्तकके तथा मूछ डाढीके बाल जो उडगये हैं वे जम जाव ॥

करंजादितैल इन्द्रलुप्तपर ।

करंजश्चित्रकोजातीकरवीरश्चपाचितम् ॥ ६३ ॥
तैलमेतद्द्रुतंहन्यादभ्यंगादिंद्रलुप्तकम् ॥

अर्थ—१ करंजेकी छाल, २ चीतेकी छाल, ३ चमेलीके पत्ते, ४ कनेरकी जड ये चार औषध ले कल्क कर तथा कल्कका चौगुना तिल्लीका तेल ले उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डालके औटावे । जब तेल मात्र शेष रहे तब छानके धर रक्खे । यह तेल जिस मनुष्यके मस्तकके अथवा डाढी मूछके बाल जाते रहे (उस रोगको इंद्रलुप्त कहते हैं) उसपर लगानेसे तत्काल बाल जम जावें ॥

नीलकादितैल पलितदारुण आदि रोगोंपर ।

नीलिकाकेतकीकंदंभृंगराजः कुरंटकः ॥ १६४ ॥ तथार्जुनस्य पुष्पाणिबीजकात्कुसुमान्यपि ॥ कृष्णास्तिलाश्चतगरंसमूलंकमलंतथा ॥१६५॥ अयोरजः प्रियंगुश्चदाडिमत्वग्गुडूचिका ॥ त्रिफलापद्मपंकश्चकल्कैरेभिः पृथक्पृथक् ॥ १६६ ॥ कर्षमात्रंपचेत्तैलंत्रिफलाक्वाथसंयुतम् ॥ भृंगराजरसेनैवसिद्धंकेशास्थिरीकृतम् ॥ १६७ ॥ अकालपलितंहंतिदारुणंचोपजिह्वकम् ॥

अर्थ–१ नीलके पत्ते, २ केतकीका कंद, ३ भाँगरा, ४ पियावांसा, ५ कोहवृक्षके फूल, ६ विजयसारके फूल, ७ काले तिल, ८ तगर, ९ कंदसहित कमल, १० लोहचूर्ण, ११ फूलप्रियंगु, १२ अनारकी छाल, १३ गिलोय, १४ हरड, १५ बहेडा, १६ आंवला और १७ कमलसंबंधी कीच ये सत्रह औषध एक एक प्रमाण लेवे । कल्क करके कल्कका चौगुना तिलका तेल लेवे। उसमें वह कल्क डालके तिलके चौगुना त्रिफलेका काढा तथा भांगरेका रस मिलायके औटावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको बालोंमें लगावे तो जमकर दृढ होवें । जिस प्राणीके बाल कुसमयमें सफेद हो गये हों वह इस तेलको लगावे तो काल हो जावें और मस्तकमें जो दारुण रोग होता है वह, उपजिह्व रोग ये दूर होवें । यह बालाम लगानेसे कल्पके समान चमत्कार दिखाता है ॥

भृंगराजतैल पलितादिरोगोंपर ।

भृङ्गराजरसेनैवलोहकिट्टंफलत्रिकम् ॥ १५८ ॥ सारिवांच
पचेत्कल्कैस्तैलंदारुणनाशनम् ॥ अकालपलितंकंडूमिंद्रलु-
प्तंचनाशयेत् ॥ १५९ ॥

अर्थ–१लोहकी कीट अर्थात् मल, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आँवला और ५ सारिवा इन पांच औषधोंका कल्क करे । इस कल्कसे चौगुना तिलका तेल ले उसमें कल्कको मिलाय भाँगरेका रस डालके पकावे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय । इस तेलको मस्तकमें लगानेसे दारुण रोग दूर हो । तथा जिस मनुष्यके छोटी अवस्थामें सफेद बाल होगये हों वे इस तेलके लगानेसे काले हों, कंडूरोग दूर हो, मस्तकके, डाढीके और मूँछोंके बार जो झड गये हों वह ठौर चिकनी होगई हो उस जगहपर भी बाल जम जावें वही कल्प है ॥

अरिमेदादितैल मुखदंतादिरोगोंपर ।

अरिमेदत्वचंक्षुण्णांपचेच्छतपलोन्मिताम् ॥ जलेद्रोणेततःक्वाथं
गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १६० ॥ तैलस्यार्धाढकंदत्त्वाकल्कैः
कर्षमितैःपचेत् ॥ अरिमेदलवंगाभ्यांगैरिकागरुपद्मकैः ॥ १६१ ॥
मंजिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः ॥ त्वग्जातिफलक-
पूरकंकोलखादिरैस्तथा ॥ १६२ ॥ पतंगधातकीपुष्पसूक्ष्मैलाना-
गकेशरैः ॥ कट्फलेनचसंसिद्धंतैलंमुखरुजंजयेत् ॥ १६३ ॥
प्रदुष्टमांसंपलितंशीर्णदंतंचसौषिरम् ॥ शीतादंदंतहर्षंचविद्रधिं

कृमिदंतकम् ॥१६४॥ दंतस्फुटनदौर्गंध्येजिह्वाताल्वोष्ठजांरुजम् ॥

अर्थ–१ काले खैरकी छाल १०० पलको जवकूट करके १ द्रोण जल डालके औटावे, जब चतुर्थांश रहे तब उतारके छान लेय। इसमें तिलका तेल आधा आढक डाले। तथा इसमें चूर्ण करके डालनेकी औषधि इस प्रकार ले–१ काले खैरकी छाल, २ लौंग, ३ गेरू, ४ अगर, ५ पद्माख, ६ मजीठ, ७ लोध, ८ मुलहटी, ९ लाख, १० नागरमोथा, ११ वडकी छाल, १२ दालचीनी, १३ जायफल, १४ कपूर, १५ कंकोल, १६ सफेद खैरकी छाल, १७ पतंग, १८ धायके फूल, १९ इलायची, २० नागकेशर और २१ कायफल ये इक्कीस औषध एक २ कर्ष लेवे। इनका कल्क करके उसको १ प्रस्थ तेलमें मिलायके औटावे। जल तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको मुखसंबंधी पीडापर, दाँतोंका मांस दुष्ट होनेसे उसपर, दाँतोंके हिलनेपर तथा दाँतोंमें छिद्र पडके दूखते हो उसपर, दाँतोंकी सूजन होनेसे लाल हो जावे उसपर, श्यावदन्तरोग, दाँतोंसे शीतल रूखा खट्टा पदार्थ तथा घोर वायु न सही जावे ऐसा प्रहर्ष नामक दंतरोग है उसपर तथा दंतविद्रधिपर, दंतसंबंधी रक्तकृमिरोग इनके दुष्ट होनेसे डाढोंमें काले छिद्र होकर उनसे राध आदि निकलना उसपर, कृमिदंतके रोगपर, दंतस्फुटन रोग, दाँतोंमें दुर्गंधका आना तथा जीभ तालु होठ इनके रोगपर भी लगावे तो ये संपूर्ण विकार दूर होव ॥

जात्यादितैल नाडीव्रणादिकोंपर।

जातिनिंबपटोलानांनक्तमालस्यपल्लवाः ॥ १६५ ॥ सिक्थंसमधुकंकुष्ठंद्वेनिशेकटुरोहिणी ॥ मंजिष्ठापद्मकंलोध्रमभयानीलमुत्पलम् ॥ १६६ ॥ तुत्थकंसारिवाबीजंनक्तमालस्यदापयेत् ॥ एतानिसमभागानिपिष्ट्वातैलंविपाचयेत् ॥ १६७ ॥ नाडीव्रणेसमुत्पन्नेस्फोटकेकच्छुरोगिषु ॥ सद्यःशस्त्रप्रहारेषुदग्धविद्धेषुचैवाहि ॥ १६८ ॥ नखदंतक्षतेदेहेव्रणेदुष्टेप्रशस्यते ॥

अर्थ–चमेली, नीम, परवल और कंजा इनके कोमल २ पत्ते और मोम, मुलहटी, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध, हरड, नीले कमल, सारिवा, अमलतासके बीज ये सब एक २ तोला लेवे। सबका चूर्ण कर १ प्रस्थ तिल्लीके तेलमें इनको पूर्वोक्त विधिसे पचावे। इस तेलकी मालिशसे नाडीव्रण (नासूर), फोडा, जखम, शस्त्रप्रहारजन्य घाव, दग्ध व्रण, नखदन्तादिकसे हुआ व्रण इत्यादि सब नष्ट होवें ॥

हिंग्वादितैल कर्णशूलपर।

हिंगुतुंबरुशुंठीभिःकटुतैलंविपाचयेत् ॥ १६९ ॥

तस्यपूरणमात्रेणकर्णशूलंप्रणश्यति ॥

अर्थ–१ हींग, २ धनिया, ३ सोंठ इन तीन औषधोंका कल्क करके उस कल्कसे चौगुना सरसोंका तेल ले उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। सबको मिलायके पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होय ॥

बिल्वादितैल बधिरपर।

बालबिल्वानिगोमूत्रेपिष्ट्वातैलंविपाचयेत् ॥ १७० ॥
साजक्षीरंचनीरंचबाधिर्यंहंतिपूरणात् ॥

अर्थ–कोमल २ बेलके फलोंको गोमूत्रमें पीस कल्क करे, उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल ले, उसमें बेलफलके कल्कको मिलावे। तथा तेलसे चौगुना बकरीका दूध एवं कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। फिर चूल्हेपर चढायके परिपाक करे। जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेय। इसको कानमें डाले तो बहरापन दूर होवे ॥

क्षारतैल कर्णस्रावादिकोंपर।

बालमूलकशुंठीनांक्षारःक्षारयुतंतथा ॥ १७१ ॥ लवणानिच
पंचैवहिंगुशिग्रुमहौषधम् ॥ देवदारुवचाकुष्ठंशतपुष्पारसांजनम् ॥ १७२ ॥ ग्रंथिकंभद्रमुस्तंचकल्कैः कर्षमितैःपृथक् ॥
तैलंप्रस्थंचविपचेत्कदलीबीजपूरयोः ॥ १७३ ॥ रसाभ्यांमधुसूक्तेनचातुर्गुण्यमितेनच ॥ पूयस्रावंकर्णनादंशूलंबधिरतां
कृमीन् ॥ १७४ ॥ अन्यांश्चकर्णजान्रोगान्मुखरोगांश्च नाशयेत् ॥

अर्थ–१ कोमल मूलियोंका खार, २ सज्जीखार, ३ जवाखार, ४ सैंधानमक, ५ सोंचरनिमक, ६ समुद्रका निमक, ७ बिडनोन, ८ बांगडका खार, ९ हींग, १० सहजनेकी छाल, ११ सोंठ, १२ देवदारु, १३ सौंफ, १४ वच, १५ रसोत, १६ पीपरामूल, १७ नागरमोथा ये सत्रह औषध एक एक कर्ष लेकर सबका कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल ले इसमें कल्कको मिलावे और तेलसे चौगुना केलाके कंदका रस तथा बिजोरेका रस एवं मधुसूक्त[1] ये उस तेलमें मिलाय चूल्हेपर चढायके पाक करे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डालनेसे कानसे राधका बहना दूर होय तथा कर्णनाद, कर्णशूल और

---

[1] कागदी नींबूका रस २ प्रस्थ तथा एक कुडव सहत उसमें डाले एवं पीपलका चूर्ण एक पल डाल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके उसका मुख बंद कर मिट्टीसे लहेस देवे। फिर एक महीने पर्यंत धानकी राशिमें धरा रहने दे इसको मधुसूक्त कहते हैं।

बधिरता (बहरापन) दूर होय । इसके सिवाय और भी अनेक प्रकारके कर्णरोग उत्पन्न होते हैं वे तथा मुखके रोग इससे दूर होते हैं ॥

पाठादितैल पीनसरोगपर ।

पाठाद्विनिशामूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ॥ १७५ ॥
दंत्या च तैलं संसिद्धं नस्यं स्यात्पूतिनस्यजित् ॥

अर्थ—१ पाठकी जड, २ हलदी, ३ दारुहलदी, ४ मूर्वा, ५ पीपल, ६ चमेलीके पत्ते, ७ दंतीकी जड ये सात औषध समान भाग ले कल्क करे । इस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल लेके कल्क मिलाय देवे । तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलायके फिर चूल्हेपर चढायके मंदाग्निसे पकावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसकी नस्य देवे तो और दुर्गंध पीनसका रोग दूर होवे ॥

व्याघ्रीतैल पूय और पीनसरोगपर ।

व्याघ्रीदंतीवचाशिग्रुसुरसव्योषसैंधवैः ॥ १७६ ॥
कल्कैश्च पाचितं तैलं पूतिनासागदापहम् ॥

अर्थ—१ कटेरी, २ दंतीकी जड, ३ वच, ४ सहँजनेकी छाल, ५ तुलसीके पत्ते, ६ सोंठ, ७ काली मिरच, ८ पीपर और ९ सेंधानमक इन नौ औषधोंको समान भाग ले कल्क करे । कल्कसे चौगुना तिलोंका तेल लेवे उसमें कल्कको मिलाय देवे । तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे । फिर इनको मंदाग्निपर पचन करे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जिस मनुष्यके नाकमें पीनस रोग होनेसे राध बहती होवे उसको इसकी नस्य देवे तो पीनसका रोग दूर होय ॥

कुष्ठतैल छींक आनेपर ।

कुष्ठबिल्वकणाशुंठीद्राक्षाकल्ककषायवत् ॥ १७७ ॥
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम् ॥

अर्थ—१ कूठ, २ कोमल बेलफल, ३ पीपर, ४ सोंठ, ५ दाख ये पांच औषध समान भाग ले कल्क करके उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल अथवा घी ले इसमें कल्कको मिला दे, कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल मिलावे फिर इनको मधुरी अग्निसे सिद्ध करे जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेवे इस तेलको जिस प्राणीको अत्यंत छींक आती होंय उसकी नाकमें डाले तो बहुत छींकोंका आना बंद होय ॥

गृहधूमादितैल नासार्शपर ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैंधवैः ॥ १७८ ॥
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥

अर्थ–१ चूल्हेके ऊपरका धूआँ, २ पीपल, ३ देवदारु, ४ जवाखार, ५ कंजेकी छाल, ६ सैंधानमक और ७ ओंगाके बीज ये सात औषध समान भाग ले कल्क करे । कल्कका चौगुना तिलका तेल लेके उसमें कल्कको मिलाय देवे तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले । फिर मधुरी अग्निसे सिद्ध करे । जब केवल तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेवे । इसको जिस मनुष्यकी नाकमें मांसका मस्सा होय उसको नस्य देवे तो मस्सा टूटके गिर जावे । इस नाकके मस्सेको नासार्श अर्थात् नाककी बवासीर कहते हैं ॥

वज्रतैल सर्वकुष्ठोंपर ।

**वज्रीक्षीरंरविक्षीरंद्रवंधत्तूरचित्रकम् ॥ १७९ ॥ महिषीविड्भवं
द्रावंसर्वांशंतिलतैलकम् ॥ पचेत्तैलावशेषंचगोमूत्रेऽथचतुर्गुणे
॥ १८० ॥ तैलावशेषंपक्त्वाचतत्तैलंप्रस्थमात्रकम् ॥ गंधकाग्नि-
शिलातालंविडंगातिविषाविषम् ॥ १८१ ॥ तिक्तकोशातकीकुष्ठं
वचामांसीकटुत्रयम् ॥ पीतदारुचयष्ट्याह्वंसर्जिकाक्षारजीरकम्
॥ १८२ ॥ देवदारुचकर्षांशंचूर्णंतैलेविनिक्षिपेत् ॥ वज्रतैलमिति
ख्यातमभ्यंगात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ १८३ ॥**

अर्थ–थूहरका दूध, आकका दूध, धत्तूरेका रस, चीतेका रस, भैंसके गोबरका रस ये संपूर्ण रस समानभाग, तथा तिलोंका तेल सब रसोंके समान ले इसमें पूर्वोक्त रसोंको मिलायके मंदाग्निपर पचन करे । जब तेलमात्र रहे तब तेलसे चौगुना गोमूत्र डालके औटावे । जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेय । फिर इसमें इतनी औषध मिलावे सो लिखते हैं–१ गंधक, २ चीतेकी छाल, ३ मनशिल, ४ हरताल, ५ वायविडंग, ६ अतीस, ७ शुद्ध किया हुआ सिंगिया विष, ८ कडुई तोरई, ९ कूट, १० वच, ११ जटामांसी, १२ सोंठ, १३ कालीमिरच, १४ पीपल, १५ दारुहल्दी, १६ मुलहटी, १७ सज्जीखार, १८ जीरा, १९ देवदार ये उन्नीस औषध एक एक कर्ष ले सबका बारीक चूर्ण करके उस तेलमें मिलायके तेलकी मालिश करे तो संपूर्ण कुष्ठ दूर होवें ॥

करवीरादितैल लोमशातनपर ।

**करवीरंशिफांदंतींत्रिवृत्कोशातकीफलम् ॥
रंभाक्षारोदकेतैलंप्रशस्तंलोमशातनम् ॥ १८४ ॥**

**इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने
तैलकल्पना नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥**

बधिरता (बहरापन) दूर होय । इसके सिवाय और जो अनेक प्रकारके कर्णरोग उत्पन्न होते हैं वे तथा मुखके रोग इससे दूर होते हैं ॥

पाठादितैल पीनसरोगपर ।

पाठाद्वेचनिशेमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ॥ १७५ ॥
दंत्याचतैलं संसिद्धंनस्यंस्याद्दुष्टपीनसे ॥

अर्थ—१ पाठकी जड, २ हल्दी, ३ दारुहल्दी, ४ मूर्वा, ५ पीपल, ६ चमेलीके पत्ते, ७ दंतीकी जड ये सात औषध समान भाग ले कल्क करे । उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल लेके कल्क मिलाय देवे । तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे फिर चूल्हेपर चढायके मंदाग्निसे पचावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसकी नस्य देय तो घोर दुर्धर पीनसका रोग दूर होवे ॥

व्याघ्रीतैल पूय और पीनसरोगपर ।

व्याघ्रीदंतीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैंधवैः ॥ १७६ ॥
कल्कैश्चपाचितंतैलंपूतिनासागदापहम् ॥

अर्थ—१ कटेरी, २ दंतीकी जड, ३ वच, ४ सहँजनेकी छाल, ५ तुलसीके पत्ते, ६ सोंठ, ७ काली मिरच, ८ पीपर और ९ सैंधानमक इन नौ औषधोंको समान भाग ले कल्क करे। कल्कसे चौगुना तिल्लीका तेल लेवे उसमें कल्कको मिलाय देवे । तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल मिलावे । फिर इसको मंदाग्निपर पचन करे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जिस मनुष्यके नाकमें पीनस रोग होनेसे राध बहती होय उसको इसकी नस्य देवे तो पीनसका रोग दूर होय ॥

कुष्ठतैल छींक आनेपर ।

कुष्ठबिल्वकणाशुंठीद्राक्षाकल्ककषायवत् ॥ १७७ ॥
साधितंतैलमाज्यंवानस्यात्क्षवथुनाशनम् ॥

अर्थ—१ कूठ, २ कोमल बेलफल, ३ पीपर, ४ सोंठ, ५ दाख ये पांच औषध समान भाग ले कल्क करके उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल अथवा घी ले उसमें कल्कको मिला दे, कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल मिलावे फिर इसको मधुरी अग्निसे सिद्ध करे जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेवे इस तेलको जिस प्राणीको अत्यंत छींक आती होय उसकी नाकमें डाले तो बहुत छींकोंका आना बंद होय ॥

गृहधूमादितैल नासार्शपर ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैंधवैः ॥ १७८ ॥
सिद्धंशिखरिबीजैश्चतैलं नासार्शसांहितम् ॥

अर्थ–१ चूल्हेके ऊपरका धूआँ, २ पीपल, ३ देवदारु, ४ जवाखार, ५ कंजेकी छाल, ६ सैंधानमक और ७ ओंगाके बीज ये सात औषध समान भाग ले कल्क करे। कल्कका चौगुना तिलका तेल लेके उसमें कल्कको मिलाय देवे तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। फिर मधुरी अग्निसे सिद्ध करे। जब केवल तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेवे। इसको जिस मनुष्यकी नाकमें मांसका मस्सा होय उसको नस्य देवे तो मस्सा टूटके गिर जावे। इस नाकके मस्सेको नासार्श अर्थात् नाककी बवासीर कहते हैं॥

वज्रीतैल सर्वकुष्ठोंपर।

वज्रीक्षीरंरविक्षीरंद्रवंधत्तूरचित्रकम् ॥ १७९ ॥ महिषीविड्भवं
द्रावंसर्वांशंतिलतैलकम् ॥ पचेत्तैलावशेषंचगोमूत्रेऽथचतुर्गुणे
॥ १८० ॥ तैलावशेषंपक्त्वाचतत्तैलंप्रस्थमात्रकम् ॥ गंधकाग्नि-
शिलातालंविडंगातिविषाविषम् ॥ १८१ ॥ तिक्तकोशातकीकुष्ठं
वचामांसीकटुत्रयम् ॥ पीतदारुचयष्ट्याह्वंसर्जिकाक्षारजरिकम्
॥ १८२ ॥ देवदारुचकर्षांशंचूर्णंतैलेविनिक्षिपेत् ॥ वज्रतैलमिति
ख्यातमभ्यंगात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ १८३ ॥

अर्थ–थूहरका दूध, आकका दूध, धत्तूरेका रस, चीतेका रस, भैंसके गोबरका रस ये संपूर्ण रस समानभाग, तथा तिलोंका तेल सब रसोंके समान ले इसमें पूर्वोक्त रसोंको मिलायके मंदाग्निपर पचन करे। जब तेलमात्र रहे तब तेलसे चौगुना गोमूत्र डालके औटावे। जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेय। फिर इसमें इतनी औषध मिलावे सो लिखते हैं–१ गंधक, २ चीतेकी छाल, ३ मनशिल, ४ हरताल, ५ वायविडंग, ६ अतीस, ७ शुद्ध किया हुआ सिंगिया विष, ८ कडुई तोरई, ९ कूट, १० वच, ११ जटामांसी, १२ सोंठ, १३ कालीमिरच, १४ पीपल, १५ दारुहल्दी, १६ मुलहटी, १७ सर्जाखार, १८ जीरा, १९ देवदार ये उन्नीस औषध एक एक कर्ष ले सबका बारीक चूर्ण करके उस तेलमें मिलायके तेलकी मालिश करे तो संपूर्ण कुष्ठ दूर होवें॥

करवीरादितैल लोमशातनपर।

करवीरंशिफांदंतींत्रिवृत्कोशातकीफलम् ॥
रंभाक्षारोदकेतैलंप्रशस्तंलोमशातनम् ॥ १८४ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने
तैलकल्पना नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ–१ कनेरकी जड, २ दंतीकी जड, ३ निसोथ, ४ कडुई तोरई इन चार औषधोंका कल्क करके उसमें चौगुना तिलोंका तेल मिलाय दे। फिर केलाके कंदकी राख करके उसका क्षार निकाल लेवे। उस क्षारको तेलसे चौगुना जल डालके औटावे जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेय। इस तेलको जिस जगहके बाल दूर करने हों उस जगह लगावे तो बाल उखडकर गिरजावें॥

इति शार्ङ्गधरे माथुरीभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

द्रवेषुचिरकालस्थंद्रव्यंयत्संधितं भवेत् ॥ आसवारिष्टभेदैस्त-
त्प्रोच्यतेभेषजोन्वितम् ॥ १ ॥ यदपक्वौषधांबुभ्यांसिद्धंमद्यं स
आसवः ॥ अरिष्टःक्वाथसिद्धःस्यात्तयोर्मानंपलोन्मितम् ॥२॥
अनुक्तमानारिष्टेषुद्रवद्रोणेतुलागुडम् ॥ क्षौद्रंक्षिपेद्गुडादर्धंप्रक्षे-
पंदशमांशकम् ॥ ३ ॥ ज्ञेयःशीतरसःसीधुरपक्वमधुरद्रवैः ॥
सिद्धःपक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः ॥ ४ ॥ परिपक्वान्नसंधा-
नसमुत्पन्नांसुरांजगुः ॥ सुरामंडः प्रसन्नास्यात्ततःकादंबरीघना
॥ ५ ॥ तदधोजगलोज्ञेयोमेदकोजगलाद्घनः ॥ पुक्कसोहृत-
सारः स्यात्सुराबीजंचकिण्वकम् ॥ ६ ॥ यत्तालखर्जूररसैः
संधितासाहिवारुणी ॥ कंदमूलफलादीनिसस्नेहलवणानिच
॥ ७ ॥ यत्रद्रवेऽभिषूयंतेतत्सूक्तमभिधीयते ॥ विनष्टमम्ल-
तांयातंमद्यंवामधुरद्रवः ॥ ८ ॥ विनष्टः संधितोयस्तुतच्चुक्रम-
भिधीयते ॥ गुडांबुनासतैलेनकंदमूलफलैस्तथा ॥ ९ ॥ संधि-
तंचाम्लतांयातंगुडसूक्तंतदुच्यते ॥ एवमेवेक्षुसूक्तंस्यान्मृद्वी-
कासंभवंतथा ॥ १० ॥ तुषांबुसंधितंज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः ॥
यवैस्तुनिस्तुषैः पक्वैःसौवीरंसंधितं भवेत् ॥ ११ ॥ कुल्मा-

षधान्यमंडादिसंधितंकांजिकंविदुः ॥ शंडाकीसंधिताज्ञेया
मूलकैःसर्षपादिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ–जल आदि द्रव (पतले) पदार्थोंमें औषधको भिगो देवे। फिर उसके मुखको बंद कर मुद्रा देकर १ महीने वा १५ दिनतक उसी रीतिसे धरा रहने देवे तो यह उत्कृष्ट औषध हो वह आसव अरिष्ट इत्यादि भेदोंसे प्रसिद्ध है, ये सब भेद इस प्रकार जानने। १ जल और औषध इनका विना पाक करेही पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध करे उसको आसव कहते हैं। २ काढा करके उसमें औषधोंको डालके पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध किया जावे उसको अरिष्ट कहते हैं। इनकी मात्रा १ पलप्रमाण है। जिस अरिष्ट प्रयोगमें जलादिकोंका मान (तोल) नहीं कहा उसमें जलादिक द्रव पदाथ एक द्रोण डालने चाहिये और उसमें गुड १ तुला (१०० पल) डाले। तथा सहत अर्ध तुला (५० पल) डाले। एवं यदि औषधोंका चूर्ण डालना होय तो गुडके दशमांश डालके अरिष्टको सिद्ध करे। ३ अपक्व ईखके रस आदि मधुर पदार्थोंसे सिद्ध किये हुए मद्यको शीतरस सीधु कहते हैं। ४ ईख आदि मधुर द्रव पदार्थोंको पकायके जो मद्य बनाते हैं उसको पक्वरस सीधु कहते हैं। ५ तंडुल (चावल) आदि धान्यको उबालके अग्निसंयोग करके यंत्रद्वारा जो मद्य बनाते हैं उसको शास्त्रमें सुरा (दारू) कहते हैं। ६ उस सुराके घन (संघट्ट) भागको कादंबरी कहते हैं। ७ और उस सुराके नीचे भागमें जो द्रव (पतला) पदार्थ है उसको जगल कहते हैं। ८ उस जगलमें जो घन (गाढा) भाग है उसको मेदक कहते हैं। ९ मेदकका सार (सत्व) निकले हुए भागको पुक्कस कहते हैं। १० सुराबीजको किण्वक कहते हैं। ११ ताड अथवा खजूरके रससे अग्निसंयोगसे यंत्रद्वारा जो रस खींचते हैं उसको मद्य और वारुणी कहते हैं। लौकिकमें इसको ताडी और खिजूरी दारू कहते हैं। १२ कंदमूल फलादिकको उबालके तैलादिक स्नेह करके मिश्रित कर जल अथवा सिरका आदिमें डालते हैं उसको सूक्त कहते हैं और लौकिकमें इसको आचारसंधान कहते हैं। १३ जो मद्य विना खटाईके आये अथवा विना खट्टे हुए मधुर द्रव पद्रार्थोंको पात्रमें भरके उनका मुख बंद कर उसपर मुद्रा देकर १ महीने अथवा पंद्रह दिन धरा रहनेसे सिद्ध हुए मद्यको चुक्र ऐसे कहते हैं। १४ गुड जल, तेल, कंद, मूल और फल इन सबको किसी पात्रमें भरके उसके मुखको बंद कर मुद्रा देकर महीने या पक्ष मात्र धरा रहने देवे। जब खट्टा होजाय तब अपने कार्यमें लावे उसे गुडसूक्त कहते हैं। इसी प्रकार ईख और दाखका सूक्त बनाना चाहिये। १५ कच्चे जवोंको भूनके किसी पात्रमें भरके उसमें पानी डालके उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर कुछ दिन धरा रहने दे उसको तुषांबु कहते हैं। १६ जवोंके तुष दूर करके उनको अग्निपर पकावे। फिर उनमें पानी डालके उस पात्रका मुख बंद कर मुद्रा कर कुछ दिन धरा रहने देवें उसको सौवीर कहते हैं। १७ कुलथी अथवा चावलोंमें पानी डालके सिवाय उसका मंड (माँड) काढ उसमें सोंठ राई जीरा हींग सधानमक हल्दी इत्यादिक पदार्थ डालके मुख मूँदके मुद्रा कर तीन दिन या चार दिन धरा

रहने दे उसको काँजी कहते हैं। १८ मूलीको कतरके उसमें पानी डालके हल्दी हींग पी सैंधानमक जीरा सोंठ इत्यादिकोंका चूर्ण डाल पात्रका मुख बंद कर ३-४ दिन धरा रहने दे उसको शंडाकी कहते हैं। इस प्रकार आसव और अरिष्टादिकोंकी कल्पना जाननी ॥

उशीरासव रक्तपित्तादिकोंपर।

उशीरंवालकंपद्मंकाश्मरींनीलमुत्पलम् ॥ प्रियंगुपद्मकंलोध्रंमंजिष्ठांधन्वयासकम् ॥ १३ ॥ पाठांकिराततिक्तंचन्यग्रोधोदुंबरंशटीम् ॥ पर्पटंपुंडरीकंचपटोलंकांचनारकम् ॥ १४ ॥ जंबूशाल्मलिनिर्यासंप्रत्येकंपलसंमितान् ॥ भागान्सुचूर्णितान्कृत्वाद्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ १५ ॥ धातकींषोडशपलां जलद्रोणद्वयेक्षिपेत् ॥ शर्करायास्तुलांदत्त्वाक्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥ १६ ॥ मांसंचस्थापयेद्भांडेमांसीमरिचधूपिते ॥ उशीरासवइत्येषरक्तपित्तनिवारणः ॥ १७ ॥ पांडुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ॥

अर्थ—१ खस, २ नेत्रवाला, ३ लाल कमल, ४ कंभारी, ५ नीले कमल, ६ फूलप्रियंगु, ७ पद्माख, ८ लोध, ९ मजीठ, १० धमासा, ११ पाठ, १२ चिरायता, १३ कुटकी, १४ बडकी छाल, १५ गूलरकी छाल, १६ कचूर, १७ पित्तपापडा, १८ सफेद कमल, १९ पटोलपत्र, २० कचनारकी छाल, २१ जामुनकी छाल, २२ सेमरका गोंद ये बाईस औषध एक एक पल, दाख बीस पल और धायके फूल १६ पल इन सबको कूट चूर्ण कर दो द्रोण जलमें भिगो देवे औ खाँड १ तुला डाले। एवं सहत १ तुला डालके प्रथम उस पात्रमें जटामांसी और काली मिर चकी धूनी देकर सब वस्तु भरके मुखको खाँम दे, उसको एक महीने पर्यंत रहने देवे, पश्चा मुद्राको खोलके उस रसको छानके निकास लेवे इसको उशीरासव कहते हैं। इसको पीवे तो रक्तपित्त, पांडुरोग, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, कृमिरोग और सूजन इन सब रोगोंको दूर करे॥

कुमार्यासव क्षयादिकोंपर।

सुपक्वरससंशुद्धंकुमार्याः पत्रमाहरेत् ॥ १८ ॥ यत्नेनरसमादाय पात्रेपाषाणमृन्मये ॥ द्रोणेगुडतुलांदत्त्वाघृतभांडेनिधापयेत् ॥ १९ ॥ माक्षिकंपक्वलोहंचतस्मिन्नर्धतुलंक्षिपेत् ॥ कटुत्रिकंलवंगंचचा-

तुर्जातकमेवच ॥ २० ॥ चित्रकंपिप्पलीमूलंविडंगंगजपिप्पली ॥ चव्यकंहपुषाधान्यंक्रमुकंकटुरोहिणी ॥ २१ ॥ मुस्ताफलत्रिकंरास्नादेवदारुनिशाद्वयम् ॥ मूर्वामधुरसादंतीमूलंपुष्करसम्भवम् ॥ २२ ॥ बलाचातिबलाचैवकपिकच्छुस्त्रिकण्टकम् ॥ शतपुष्पाहिंगुपत्रीह्याकल्लकमुटिंगणम् ॥ २३ ॥ पुनर्नवाद्वयंलोध्रंधातुमाक्षिकमेवच ॥ एषांचार्धपलंदत्त्वाधातक्यास्तुपलाष्टकम् ॥ २४ ॥ पलंचार्धपलंचैवपलद्वयमुदाहृतम् ॥ वपुर्वयःप्रमाणेनबलवर्णाग्निदीपनम् ॥ २५ ॥ बृंहणंरोचनंवृष्यंपक्तिशूलनिवारणम् ॥ अष्टावुदरजान्रोगान्क्षयमुग्रंचनाशयेत् ॥ २६ ॥ विंशतिमेहजान्रोगानुदावर्तमपस्मृतिम् ॥ मूत्रकृच्छ्रमपस्मारंशुक्रदोषंतथाश्मरीम् ॥ २७ ॥ कृमिजंरक्तपित्तंच नाशयेत्तुनसंशयः ॥

अर्थ–पुराने घीगुवारके पट्ठेका रस १ द्रोण, पुराना गुड १०० पल, सहत और लोहचूर ये दोनों औषध आधे तोले, १ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल, ४ लौंग, ५ दालचीनी, ६ पत्रज, ७ इलायचीके दाने, ८ नागकेशर, ९ चित्रक, १० पीपरामूल, ११ वायविडंग, १२ गजपीपल, १३ चव्य, १४ ह्रीबेर (हाऊबेर), १५ धनिया, १६ सुपारी, १७ कुटकी, १८ नागरमोथा, १९ हरड, २० बहेडा, २१ आंवला, २२ देवदारु, २३ हल्दी, २४ दारुहल्दी, २५ मूर्वा, २६ प्रसारणी, २७ दन्ती, २८ पुहकरमूल, २९ खरेंटी, ३० नागबला, ३१ कौंचके बीज, ३२ गोखरू, ३३ सौंफ, ३४ हिंगुपत्री, ३५ अकरकरा, ३६ उटंगनके बीज, ३७ सफेद सांठ (विषखपरा), ३८ सोंठ, ३९ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ये उनतालीस औषध दो दो तोले लेवे । माक्षिकभस्मके सिवाय सबका चूर्ण करे । फिर ऊपर कही हुई औषध तथा धायके फूल ८ पल इनको एकत्र करके घीके चिकने बरतनमें भरके (१ महीने पर्यन्त या पन्द्रह दिन) धरी रहने दे तो यह कुमार्यासव बनके तैयार होवे । इसको बलाबल विचारके १ पल अथवा आधा पल रोगीको देवे तो बल वर्ण और अग्निको बढावे, शरीर पुष्ट होवे, पक्ति (परिणाम) शूल, सर्व प्रकारके उदररोग, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, कृमिरोग और रक्तपित्त ये सब दूर होवें ॥

पिप्पल्यासव क्षयादिरोगोंपर ।

पिप्पलीमरिचंचव्यंहरिद्राचित्रकोघनः ॥ २८ ॥ विडङ्गंक्रमु-

कोलोध्रःपाठाधात्र्येलवालुकम् ॥ उशीरंचन्दनंकुष्ठंलवंगंतगरं तथा ॥ २९ ॥ मांसीत्वगेलापत्रंचप्रियंगुर्नागकेशरम् ॥ एषामर्धपलान्भागान्सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान् ॥ ३० ॥ जलद्रोणद्वयोक्षिप्त्वादद्याद्गुडतुलात्रयम् ॥ पलानिदशधातक्याद्राक्षाषष्टिपलाभवेत् ॥३१॥ एतान्येकत्रसंयोज्यमृद्भांडेचविनिक्षिपेत् ॥ ज्ञात्वागतरसंसर्वंपाययेदग्न्यपेक्षया ॥ ३२ ॥ क्षयगुल्मोदरे कार्श्यंग्रहणींपांडुतांतथा ॥ अर्शांसिनाशयेच्छीघ्रंपिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—१ पीपल, २ काली मिरच, ३ चव्य, ४ हल्दी, ५ चीतेकी छाल, ६ नागरमोथा, ७ वायविडंग, ८ सुपारी, ९ लोध, १० पाढ, ११ आंवले, १२ एलवालुक, १३ खस, १४ सफेद चन्दन, १५ कूठ, १६ लौंग, १७ तगर, १८ जटामांसी, १९ दालचीनी, २० इलायचीके दाने, २१ पत्रज, २२ फूलप्रियंगु और २३ नागकेशर ये तेईस औषध आधे २ पलव । सबका बारीक चूर्ण करके दो द्रोण जलमें डाल देवे और गुड तीन तुला डाले । तथा धायके फूल दश पल और दाख साठ पल इन दोनोंको बारीक कूटके उसी जलमें डाल देवे। फिर उस पात्रके मुखको बन्द करके एक महीने धरा रहने दे जब जाने कि उन औषधोंका उत्तम रस तैयार होगया है तब उस मुद्राको खोलके रसको निकास लेवे । इसको पिप्पल्यासव कहते हैं । इस आसवको जठराग्निका बलाबल विचारके पीवे तो क्षय, गोला, उदर, शरीरकी कृशता, संग्रहणी, पांडुरोग और बवासीर ये सब रोग दूर हों ॥

लोहासव पांडुरोगादिकोंपर ।

लोहचूर्णंत्रिकटुकंत्रिफलांचयवानिकाम् ॥ विडङ्गंमुस्तकं चित्रंचतुःसंख्यापलंपृथक् ॥ ३४ ॥ धातकीकुसुमानांतु प्रक्षिपेत्पलविंशतिम् ॥ चूर्णीकृत्यततःक्षौद्रंचतुःषष्टिपलं क्षिपेत् ॥ ३५ ॥ दद्याद्गुडतुलांतत्रजलद्रोणद्वयंतथा ॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यनिदध्यान्माससमात्रकम् ॥ ३६ ॥ लोहासवममुंमर्त्यः पिबेदग्निकरंपरम् ॥ पांडुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसांरुजम् ॥ ३७ ॥ कुष्ठंप्लीहामयंकण्डूंकासंश्वासं भगन्दरम् ॥ अरोचकंचग्रहणींहृद्रोगंचविनाशयेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—१ लोहभस्म, २ सोंठ, ३ काली मिरच, ४ पीपल, ५ हरड, ६ बहेडा, ७ आंवला, ८ अजमोदा, ९ वायविडंग, १० नागरमोथा और ११ चीतेकी छाल ये ग्यारह औषध चार २ पल लेवे तथा धायके फूल बीस पल ले सबका चूर्ण करे । ६४ पल सहत तथा एक तुला (१०० पल) गुड इन सबको एकत्र करके पूर्वोक्त औषधोंके चूर्णको उसमें मिलाय दो द्रोण जलमें डालके किसी घीके चिकने पात्रमें भरके मुख बन्द कर मुद्रा देकर १ महीने पर्यन्त रखा रहने दे । पश्चात् मुद्रा खोलके निकास लेवे । इसको लोहासव कहते हैं । इस आसवका सेवन करनेसे गुल्म (गोलेका रोग), बवासीर, कोढ तथा पेटमें बांई तरफ फीहा-रोग होताहै वह, खुजली, खांसी, श्वास, भगंदर, अरुचि, संग्रहणी, हृदयरोग ये सब दूर होवें ॥

मृद्वीकासव ग्रहण्यादिरोगोंपर ।

मृद्वीकायाःपलशतंचतुर्द्रोणेम्भसःपचेत् ॥ द्रोणशेषेसुशीते
चपूतेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥३९॥ तुलेद्वेक्षौद्रखंडाभ्यांधातक्याः
प्रस्थमेवच ॥ कङ्कोलकंलवंगचफलंजात्यास्तथैवच ॥ ४० ॥
पलांशकंचमरिचंत्वगेलापत्रकेसराः ॥ पिप्पली चित्रकंचव्यं
पिप्पलीमूलरेणुके ॥ ४१ ॥ घृतभांडेविनिक्षिप्य चन्दनागरु-
धूपिते ॥ कर्पूरवासितोह्येषग्रहण्यांदीपनः परः ॥ ४२ ॥
अर्शसांनाशनेश्रेष्ठउदावर्तस्यगुल्मनुत् ॥ जठरे कृमिकुष्ठानि
व्रणानिविविधानिच ॥ आक्षिरोगाशिरोरोगगलरोगांश्च नाश-
येत् ॥ ४३ ॥

अर्थ—१०० पल मुनक्कादाख ले चार द्रोण जलमें औटावे, जब १ द्रोण जल रहे तब उतार लेवे । जब शीतल जल हो जावे तब छान लेय । फिर आगे लिखी हुई औषध इसमें डाले । सहत और खांड प्रत्येक सौ २ पल, धायके फूल १ प्रस्थ, १ कंकोल, २ लौंग, ३ जायफल, ४ काली मिरच, ५ दालचीनी, ६ इलायचीके बीज, ७ पत्रज, ८ नागकेशर, ९ पीपल, १० चीतेकी छाल, ११ चव्य, १२ पीपरामूल, १३ रेणुका ये तेरह औषध एक २ पल लेवे । सबका चूर्ण करके चंदनकी धूनी दिये हुए घीके चिकने बासनमें सबको भर देवे । मुखपर मुद्रा देकर (पन्द्रह दिन) धरा रहने दे तो यह द्राक्षासव बनके तैयार हो । इसको शुद्ध कपूर करके वासित करनेसे संग्रहणीवालेकी अग्नि प्रदीप्त हो । उसी प्रकार बवासीर, उदावर्त्त, गोला, उदर, कृमिरोग, कोढ, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग और गलेके रोग दूर होवे ॥

लोध्रासव प्रमेहादिकोंपर ।

**लोध्रंशटीपुष्करमूलमेलामूर्वाविडंगंत्रिफलायवानी ॥ चव्यं
प्रियंगुंक्रमुकंविशालांकिराततिक्तंकटुरोहिणींच ॥ ४४ ॥
भार्ङ्गींनतंचित्रकपिप्पलीनांमूलंचकुष्ठातिविषांचपाठाम् ॥
कलिङ्गकंकेसरमिन्द्रसाह्वानंतालिसपत्रंमरिचप्लवंच ॥ ४५ ॥
द्रोणेऽभसःकर्षसमांश्चपक्त्वापूतेचतुर्भागजलावशेषे ॥ रसा-
र्धभागं मधुनः प्रदायपक्षं निधेयोघृतभाजनस्थः ॥ ४६ ॥
लोध्रासवोऽयंकफपित्तमेहान्क्षिप्रंनिहन्याद्द्विपलप्रयोगात् ॥
पांड्वामयार्शांस्यरुचिंग्रहण्यादोषंबलासांविविधंचकुष्ठम् ॥ ४७ ॥**

अर्थ—१ लोध, २ कचूर, ३ पुहकरमूल, ४ इलायची, ५ मूर्वा, ६ वायविडंग, ७ त्रिफला, ८ अजमायन, ९ चव्य, १० फूलप्रियंगु, ११ सुपारी, १२ इन्द्रायन, १३ चिरायता, १४ कुटकी, १५ भारंगी, १६ तगर, १७ चीतेकी छाल, १८ पीपरामूल, १९ कूट, २० अतीस, २१ पाढ, २२ इन्द्रजव, २३ नागकेशर, २४ कोहकी छाल, २५ धमासा, २६ ईख, २७ काली मिरच, २८ क्षुद्रमोथा ये अट्ठाईस औषधि प्रत्येक एक २ तोले लेवे । सबका चूर्ण करके एक द्रोण जलमें डालके पकाके फिर चतुर्थांश रहनेपर छानके शीतल होनेपर काढेका आधा भाग सहत मिलावे । पश्चात् घीके चिकने बासनमें भरके मुखपर मुद्रा देकर १५ दिन पर्यंत धरा रहने देवे तो यह लोध्रासव तैयार होवे । इसको देहका बलाबल विचारके दो पल पर्यन्त देवे तो कफपित्तके विकार, प्रमेह, पांडुरोग, बवासीर, अरुचि, संग्रहणी, अनेक प्रकारके कफ और सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर होवें ॥

कुटजारिष्ट सर्वज्वरोंपर ।

**तुलांकुटजमूलस्यमृद्वीकार्धतुलांतथा ॥ ४८ ॥ मधुकंपुष्प-
काश्मर्यौभागान्दशपलोन्मितान् ॥ चतुर्द्रोणेऽभसःपक्त्वा
क्वाथेद्रोणावशेषिते ॥ ४९ ॥ धातक्याविंशतिपलंगुडस्यच
तुलांक्षिपेत् ॥ मासमात्रंस्थितोभाण्डेकुटजारिष्टसंज्ञितः ॥
॥ ५० ॥ ज्वरान्प्रशमयेत्सर्वान्कुर्यात्तीक्ष्णंधनञ्जयम् ॥**

अर्थ—कुडेकी जड १ तुला, दाख आधी तुला, महुएके फूल और कंभारीकी जड दश १ पल लेवे । इस प्रमाणसे सब औषधोंको ले जवकूट करके ४ द्रोण जलमें डालके औटावे । जब १ द्रोण जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेय । उस जलमें धायके फूलोंका चूर्ण २०

पल डाले तथा गुड एक तुला डालके सबको मिलाय चिकने पात्रमें भरके मुखको बन्द कर मुद्रा देकर एक महीने पर्यंत धरा रहने दे। फिर मुद्राको दूर कर इसको निकास लेवे। इसे "कुटजारिष्ट" कहते हैं। यह अरिष्ट पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होवे और अग्नि प्रदीप्त होवे ॥

विडंगारिष्ट विद्रधिआदिपर।

विडङ्गंग्रंथिकंरास्नाकुटजत्वक्फलानिच ॥ ५१ ॥ पाठैल-
वालुकंधात्रीभागान्पञ्चपलान्पृथक् ॥ अष्टद्रोणेऽभसःपक्त्वा
कुर्याद्द्रोणावशेषितम् ॥ ५२ ॥ पूतेशीतेक्षिपेत्तत्रक्षौद्रं पलश-
तत्रयम् ॥ धातकींविंशतिपलांत्रिजातंद्विपलंतथा ॥ ५३ ॥
प्रियंगुकांचनाराणांसलोध्राणांपलंपलम् ॥ व्योषस्यचपलान्य-
ष्टौचूर्णीकृत्यप्रदापयेत् ॥ ५४ ॥ घृतभांडे विनिक्षिप्यमास-
मेकंविधारयेत् ॥ ततःपिबेद्यथार्हंतुजयेद्विद्रधिमूर्जितम् ॥
॥ ५५ ॥ ऊरुस्तम्भाश्मरींमेहान्प्रत्यष्ठीलाभगंदरान् ॥
गण्डमालांहनुस्तंभंविडंगारिष्टसंज्ञितः ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ वायविडंग, २ पीपरामूल, ३ रास्ना, ४ कूडेकी छाल, ५ इन्द्रजौ, ६ पाढ, ७ एलवालुक और ८ आमले ये आठ औषधी पांच २ पल लेवे जवकूट करके इसमें आठ द्रोण जल डालके औटावे। जब एक द्रोण जल रहे तब उतारके छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब ३०० तीनसौ पल सहत बीस पल धायके फूल १ दालचीनी, २ छोटी इलायचीके दाने, ३ पत्रज ये तीन औषध एक २ पल लेव तथा १ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल इन तीन औषधोंको मिलायके आठ पल लेव। इस प्रमाणसे सब औषधोंको लेकर चूर्ण करके उस काढेमें मिलाय उसको घीके चिकने बरतनमें भरके मुख बन्द कर मुद्रा देकर १ महीने पर्यंत धरा रहने दे, फिर मुद्राको दूर कर निकाल लेवे। इसको विडंगारिष्ट कहते हैं। इस अरिष्टके पीनेसे विद्रधिरोग, ऊरुस्तंभ रोग, पथरीका रोग, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, बादीका रोग, गंडमाला तथा हनुस्तंभ (बादीका रोग) इन सबको यह दूर करता है ॥

देवदार्वरिष्ट प्रमेहादिकोंपर।

तुलार्धंदेवदारुःस्याद्वासाचपलविंशतिः ॥ मञ्जिष्ठेन्द्रयवादंती
तगरंरजनीद्वयम् ॥ ५७ ॥ रास्नाकृमिघ्नमुस्तंचशिरीषंखदिरा-

र्जुनौ ॥ भागान्दशपलान्दद्याद्यवान्यावत्सकस्य च ॥ ५८ ॥ चंदनस्यगुडूच्याश्चरोहिण्याश्चित्रकस्यच ॥ भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेंभसः पचेत् ॥ ५९ ॥ द्रोणशेषेकषायेच पूतेशीते प्रदापयेत् ॥ धातक्याःषोडशपलंमाक्षिकस्यतुलात्रयम् ॥ ॥ ६० ॥ व्योषस्याद्विपलंदद्यात्रिजातस्यचतुष्पलम् ॥ चतुष्पलंप्रियगुश्चाद्विपलंनागकेशरम् ॥ ६१ ॥ सर्वाण्येतानिसंचूर्ण्यघृतभांडेनिधापयेत् ॥ मासादूर्ध्वंपिबेदेनंप्रमेहंहन्तिदुर्जयम् ॥ ६२ ॥ वातरोगान्ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत् ॥ देवदार्वादिकोऽरिष्टोदद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ ६३ ॥

अर्थ—देवदारु ५० पल, अडूसा २० पल और १ मजीठ, २ इन्द्रजौ, ३ दन्ती, ४ तगर, ५ हल्दी, ६ दारुहल्दी, ७ रास्ना, ८ वायविडंग, ९ नागरमोथा, १० शिरस, ११ खैरकी छाल, १२ कोहकी छाल ये बारह औषध दश २ पल लेवे । १ अजमोदा, २ कूडेकी छाल, ३ सफेद चन्दन, ४ गिलोय, ५ कुटकी, ६ चीतेकी छाल ये छः औषध आठ आठ पल लेवे । फिर सब औषधोंको कूट करके उसमें आठ द्रोण जल डालके औटावे । जब १ द्रोण मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब आगे लिखी औषधोंको डाले । धायके फूल १६ पल, सहत तीन तुला और सोंठ, मिर्च, पीपल ये तीनों औषध मिलाय दो पल लेवे । दालचीनी, इलायचीके दाने, पत्रज ये तीन औषध चार पल लेवे । फूलप्रियंगु और नागकेशर दो दो पल लेवे । सब औषधोंका चूर्ण करके उस काढेमें डाल देवे । फिर सहतको मिलाके एकत्र कर घीके चिकने बासनमें भर मुख बन्द कर मुद्रा देके रख दे, जब एक महीना हो जावे तब मुद्राको दूर कर रस निकाल ले इसको "देवदार्वरिष्ट" कहते हैं । इसको पीवे तो घोर प्रमेहका रोग दूर हो तथा यह बादीका रोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाह और कोढके रोगको नष्ट करे ॥

खदिरारिष्ट कुष्ठादिकोंपर ।

खदिरस्यतुलार्धंतुदेवदारुचतत्समम् ॥ बाकुचीद्वादशपलादार्वीस्यात्पलविंशतिः ॥ ६४ ॥ त्रिफलाविंशतिपलाह्यष्टद्रोणेंभसःपचेत् ॥ कषायेद्रोणशेषेचपूतशीतेविनिक्षिपेत् ॥ ६५ ॥ तुलाद्वयंमाक्षिकस्यमुलैकाशर्करामता ॥ धातक्याविंशतिपलं

कङ्कोलंनागकेशरम् ॥ ६६ ॥ जातीफलंलवंगैलात्वक्पत्राणि पृथक्पृथक् ॥ पलोन्मितानिकृष्णायादद्यात्पलचतुष्टयम् ॥ ६७ ॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यमासादूर्ध्वंपिबेत्ततः ॥ महाकुष्ठानिहृद्रोगं पांडुरोगार्बुदंतथा ॥ ६८ ॥ गुल्मंग्रंथिंकृमींश्छ्वासंकासंप्लीहोदरंतथा ॥ एषवैखदिरारिष्टःसर्वकुष्ठनिवारणः ॥ ६९ ॥

अर्थ—खैरकी छाल ५० पल, देवदारु ५०पल, बावची१२ पल, दारुहल्दी२० पल, हरड, बहडा और आमला ये तीनों मिलायके २० पल इस प्रकार संपूर्ण औषध लेकर जवकूट करके उसको आठ द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब एक द्रोणमात्र जल शेष रहे तब उतारके छान लय । जब शीतल हो जावे तब इसमें २०० पल सहत डाले, खाँड १०० पल ले, धायके फूल २० पल, १ कंकोल, २ नागकेसर, ३ जायफल, ४ लौंग, ५ इलायची, ६ दालचीनी, ७ पत्रज ये सात औषधि एक २ पल और पीपल ४ पल इस प्रकार सबको एकत्र करके चूर्ण कर उसको पूर्वोक्त काढेम मिलाय दे । फिर सबको घीके चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा दे । १ महीने पर्यन्त धरा रहने दे, फिर बाद १ महीनेके निकालके पीवे तो इस खदिरारिष्टसे महाकुष्ठ, हृदयरोग, पांडुरोग, अर्बुदरोग, गोलेका रोग, ग्रंथि (गांठ), कृमिरोग, श्वास, खाँसी, पेटमें बाई तरफ होनेवाला फियाका रोग ये सब रोग दूर हों ॥

बब्बूलारिष्ट क्षयादिकोंपर ।

तुलाद्वयंचबब्बूल्याश्चतुर्द्रोणेजलेपचेत् ॥ द्रोणशेषेरसेशीते गुडस्यत्रितुलांक्षिपेत् ॥ ७० ॥ धातकींषोडशपलांकृष्णां चद्विपलांतथा ॥ जातीफलानिकंकोलमेलात्वक्पत्रकेशरम् ॥ ७१ ॥ लवंगंमरिचंचैवपलिकान्युपकल्पयेत् ॥ मासंभाण्डेस्थितस्त्वेषबब्बूलारिष्टकोजयेत् ॥ ७२ ॥ क्षयं कुष्ठमतीसारंप्रमेहंश्वासकासनुत् ॥

अर्थ—बबूल (कीकर) की छाल दो तुला (२००पल) लेवे । उसको जवकूट करके ४ द्रोण पानी डालके काढा करे । जब १ द्रोण शेष रहे तब उतारके छान लेवे, जब शीतल हो जावे तब गुड ३०० तीन सौ पल मिलावे । धायके फूल सोलह पल डाले । पीपल २ पल, १ जायफल, २ कंकोल, ३ इलायचीके दाने, ४ दालचीनी, ५ पत्रज, ६ नागकेशर, ७ लौंग, ८ काली मिरच पल प्रमाण लेवे । सबका चूर्ण कर उस काढेमें डालके सबको घीके चिकने बासनमें भरके मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यन्त धरा रहने दे । फिर मुद्राको दूर कर रसको

छानके निकाल लेवे । इसको बब्बूलारिष्ट कहते हैं । इसको पीवे तो क्षय, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, खांसी, श्वास इन सब रोगोंको दूर करे ॥

द्राक्षारिष्ट उरःक्षतादिकोंपर ।

द्राक्षातुलार्धंद्विद्रोणेजलस्यविपचेत्सुधीः ॥ ७३ ॥ पादशेषे कषायेचपूतेशीतेविनिक्षिपेत् ॥ गुडस्यद्वितुलांतत्रत्वगेलापत्रकेशरम् ॥ ७४ ॥ प्रियंगुमरिचंकृष्णांविडंगंचेतिचूर्णयेत् ॥ पृथक्पलोन्मितैर्भागैस्ततोभांडेनिधापयेत् ॥ ७५ ॥ स्थापयित्वाततोमासंततोजातरसंपिबेत् ॥ उरःक्षतंक्षयंहंतिकासश्वासगलामयान् ॥ ७६ ॥ द्राक्षारिष्टाह्वयःप्रोक्तोबलकृन्मलशोधनः ॥

अर्थ—मुनक्कादाख ५० पल लेवे । उसमें दो द्रोण पानी डालके औटावे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब गुड दो तुला डाले । और १ दालचीनी, २ इलायचीके दाने, ३ पत्रज, ४ नागकेशर, ५ फूलप्रियंगु, ६ काली मिरच, ७ पीपल, ८ वायविडंग ये आठ औषधि एक २ पल ले सब चूर्ण कर उस काढेमें मिला देवे। फिर सबको एक चिकने पात्रमें भरके मुख बन्द कर मुद्रा देवे और उसको १ महीने (अथवा एक पखवारे) धरा रहने दे । सिद्ध होनेके पश्चात् मुद्राको दूर करके रसको छानके निकास ले इसको द्राक्षारिष्ट कहते हैं । इस अरिष्ट पीनेसे उरःक्षतरोग, क्षयरोग, खाँसी, श्वास, कंठका रोग ये संपूर्ण दूर होवें । यह बल वढाता और मलको साफ करता है ॥

रोहितारिष्ट अर्शादिरोगोंपर ।

रोहीतकतुलामेकांचतुर्द्रोणेजलेपचेत् ॥ ७७ ॥ पादशेषेरसे शीतेपूतेपलशतद्वयम् ॥ दद्याद्गुडस्यधातक्याःपलषोडशिकामता ॥ ७८ ॥ पंचकोलंत्रिजातंचात्रिफलांचविनिक्षिपेत् ॥ चूर्णयित्वापलांशेनततोभाण्डेनिधापयेत् ॥ ७९ ॥ मासादूर्ध्वंचपिबतांगुदजायांतिसंक्षयम् ॥ ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदराणिच ॥ कुष्ठशोफारुचिहरोरोहितारिष्टसंज्ञकः ॥ ८० ॥

अर्थ—लाल रोहिडा १ तुला ले जवकूट करके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे। जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब इस

गुड २०० पल मिलावे । धायके फूल १६ पल, १ पीपल, २ पीपरामूल, ३ चव्य, ४ चातकी छाल, ५ सोंठ, ६ दालचीनी, ७ इलायचीके बीज, ८ पत्रज, ९ हरड, १० बहेडा, ११ आंवला ये ग्यारह औषध एक एक पल ले । सबका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें डालके उसको किसी चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा देकर एक महीने पर्यन्त धरा रहने दे, पश्चात् मुद्राको दूर कर । इसको रोहितारिष्ट कहते हैं । इसके पीनेसे बवासीर, संग्रहणी, पांडुरोग, हृदयरोग, प्लीहा, गोलेका रोग, उदररोग, कुष्ठ, सूजन और अरुचिरोग ये सब रोग दूर होंय ॥

दशमूलारिष्ट क्षयप्रमेहादिकोंपर ।

पर्ण्यौबृहत्यौगोकण्टोबिल्वोग्निमन्थकोऽरलुः॥ पाटलाकाश्मरी
चेतिदशमूलमिहोच्यते ॥८१॥ दशमूलानिकुर्वीतभागैःपंच-
पलैःपृथक् ॥ पञ्चविंशत्पलंकुर्याच्चित्रकंपौष्करंतथा ॥ ८२ ॥
कुर्याद्विंशत्पलंलोध्रंगुडूचींतत्समाभवेत् ॥ पलैःषोडशभिर्धा-
त्रीरविसंख्यैर्दुरालभा ॥ ८३ ॥ खदिरोबीजसारश्चपथ्याचेति
पृथक्पलैः ॥ अष्टभिर्गुणितंकुष्टंमञ्जिष्ठादेवदारुच ॥ ८४ ॥
विडंगंमधुकंभार्ङ्गीकपित्थोऽक्षःपुनर्नवा ॥ चव्यंमांसीप्रियंगुश्च
सारिवाकृष्णजीरकः ॥ ८५ ॥ त्रिवृतारेणुकारास्नापिप्पली
क्रमुकःशटी ॥ हरिद्राशतपुष्पाचपद्मकंनागकेशरम् ॥ ८६ ॥
मुस्तमिन्द्रयवाःशृंगीजीवकर्षभकौतथा ॥ मेदाचान्यामहामे-
दाकाकोल्यौऋद्धिवृद्धिके ॥८७॥ कुर्यात्पृथग्द्विपलिकान्पचे-
दष्टगुणेजले ॥ चतुर्थांशंशृतंनीत्वामृद्भांडेसन्निधापयेत् ॥८८॥
चतुःषष्टिपलांद्राक्षांपचेन्नीरेचतुर्गुणे ॥ त्रिपादशेषंशीतंचपूर्व-
क्वाथेशृतंक्षिपेत् ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशत्पलिकंक्षौद्रंदद्याद्गुडचतुः-
शतम् ॥ त्रिंशत्पलानिधातक्याःकङ्कोलंजलचंदनम् ॥ ९० ॥
जातीफलंलवंगंचत्वगेलापत्रकेशरम् ॥ पिप्पलींचेतिसंचूर्ण्य
भागैर्द्विपलिकैःपृथक् ॥ ९१ ॥ शाणमात्रांचकस्तूरींसर्वमेक-
त्रनिःक्षिपेत् ॥ भूमौनिखातयेद्भांडंततोजातरसंपिबेत् ॥९२॥
कतकस्यफलंक्षिप्त्वारसंनिर्मलतांनयेत् ॥ ग्रहणीमरुचिंश्वासं

कासंगुल्मंभगन्दरम् ॥ ९३ ॥ वातव्याधिंक्षयंछर्दिंपांडुरोगं
चकामलाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसिमेहांश्चमन्दाग्निमुदराणिच ॥९४॥
शर्कराम्इमरींमूत्रकृच्छ्रंधातुक्षयंजयेत् ॥ कृशानां पुष्टिजननो
वंध्यानांगर्भदःपरः ॥ अरिष्टोदशमूलाख्यस्तेजःशुक्रबलप्रदः ९५॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने
आसवारिष्टकल्पनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ–दशमूल प्रत्येक आधे २ पल, चीतेकी छाल २५ पल, पुहकरमूल २५ पल, लोध २० पल, गिलोय २० पल, आंवले १६ पल, धमासा १२ पल, खैरकी छाल ८ पल, विजयसार ८ पल और हरड ८ पल। १ कूट, २ मजीठ, ३ देवदारु, ४ वायविडंग, ५ मुलहठी, ६ भारंगी, ७ कैथ, ८ बहेडा, ९ पुनर्नवा, १० चव्य, ११ जटामांसी, १२ प्रियंगुफूल, १३ सारिवा, १४ कालाजीरा, १५ निसोथ, १६ रेणुकबीज, १७ रास्ना, १८ पीपल, १९ सुपारी, २० कचूर, २१ हल्दी, २२ सौंफ, २३ पद्माख, २४ नागकेशर, २५ नागरमोथा, २६ इन्द्रजौ, २७ काकडासिंगी और २८ जीवक ऋषभक (इन दोनोंके अभावमें विदारीकन्द लेवे), २९ मेदा और महामेदा (इन दोनोंके अभावमें मुलहटी लेय), ३० काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनोंके अभावमें असगन्ध लेय) तथा ३१ ऋद्धि और वृद्धि (इनके अभावमें वाराहीकन्द लेवे) ये इकतीस औषध दो दो पल लेवे। फिर सबको जवकूट करके सब औषधोंका आठगुना जल मिलायके काढा करे। जब चौथाई रहे तब उतारके छान ले और इसको किसी घीके चिकने पात्रमें भर देवे। फिर दाख ६४ पल ले उनमें चौगुना पानी डालके औटावे जब तीन हिस्सा पानी शेष रहे तब उतारके छान लेय, इसको भी पहले काढेमें मिलाय देवे। पश्चात् ३२ पल सहत और ४०० चार सौ पल गुड एवं ३० तीस पल धायके फूल डालने चाहिये। १ कंकोल, २ नेत्रवाला, ३ सफेद चन्दन, ४ जायफल, ५ लौंग, ६ दालचीनी, ७ इलायची दाने, ८ पत्रज, ९ नागकेशर और १० पीपल ये दश औषधी दो दो पल लेकर चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें मिलावे। एवं १ शाण कस्तूरीका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें मिलाय दे फिर उस पात्रका मुख बन्द कर मुद्रा दे। इसको एक महीने अथवा पन्द्रह दिन पर्यन्त पृथ्वीमें गडा रहने देवे। जब उन औषधोंका उत्तम रस हो जावे तब उसको बाहर निकालके मुद्रा दूर करे। फिर इसमें निर्मलीके बीजोंका चूर्ण कर थोडासा डाल देवे तो रस निर्मल होजावे। इसको दशमूलारिष्ट कहते हैं। इस अरिष्टके पीनेसे संग्रहणी, अरुचि, नेत्रोंका श्वास, खाँसी, गोला, भगन्दर, बादीका रोग, क्षयरोग, वमन, पांडुरोग, कामलारोग, कुष्ट, बवासीर, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा (पथरीका भेद),

मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षय ये संपूर्ण रोग दूर होवें। यह अरिष्ट दुर्बल मनुष्यको पुष्ट करे और वन्ध्या स्त्रीको पुत्र देवे, तेज धातु (वीर्य) और बल देता है॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे द्वि० माथुरभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ११.

स्वर्णादिधातु और उनका शोधन।

स्वर्णतारंताम्रमारंनागवङ्गौचतीक्ष्णकम् ॥ धातवःसप्तविज्ञेयास्ततस्ताञ्छोधयेद्बुधः ॥ १ ॥
स्वर्णताराम्रताम्राणां पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत् ॥ निषिंचेत्तततप्तानितैलेतक्रेचकांजिके ॥२॥
गोमूत्रेचकुलत्थानां कषायेचत्रिधात्रिधा ॥ एवंस्वर्णादिलोहानांविशुद्धिःसम्प्रजायते ॥३॥
नागवंगौप्रतप्तौचगलितौतौनिषेचयेत् ॥ त्रिधात्रिधाविशुद्धिःस्याद्रविदुग्धेनचत्रिधा ॥ ४ ॥

अर्थ—१ सुवर्ण, २ रूपा (चांदी), ३ तांबा, ४ जस्त[1] अथवा पीतल, ५ शीशा, ६ रांगा और ७ पोलाद आदि लोह इन सातोंको धातु[2] कहते हैं। ये सातों धातु पर्वतसे उत्पन्न होती हैं, इस वास्ते इनमें थोडा बहुत मेल रहता है, इस वास्ते इनका बुद्धिमान् वैद्य शोधन इस प्रकार करे। सुवर्ण (सोना), रूपा, जस्त, ताम्र (तांबा) इनको बारीक कंटकवेधी पत्र कर अग्निमें वारंवार तपाय तपायके तेल छाछ कांजी[3] गोमूत्र और कुलथीका काढा इन प्रत्येकमें

---

[1] जस्तके स्थानमें कोई पीतल लेता है परंतु पीतल मिश्रित धातु है इसवास्ते हमको वह मत संतव्य नहीं है।

[2] वृद्धत्व (सफेद बालोंका होना), कृशत्व और बलहीनता इत्यादि रोगोंका निवारण कर ये देहको धारण करती हैं इसीसे सुवर्णादि धातु कहाती हैं।

[3] कांजी बनानेकी क्रिया—मिट्टीकी मथानीको सरसोंके तेलसे पोतकर उसमें निर्मल पानी भरे तथा १ राई, २ जीरा, ३ सैंधानिमक, ४ हींग, ५ सोंठ और ६ हल्दी इन छः औषधोंका चूर्ण कर चावलोंका भातयुक्त मांड तथा कुलथीका काढा थोडे बाँसके पत्ते ये सब पात्रमें डाल दे तथा पानीके अनुमान माफिक दश पांच उडदके बडे बनाकर डालकर उसका मुख बंद करके तीन दिन धरा रहने दे जब खट्टी बास आने लगे तब जाने कि कांजी बनगई यह कांजी बनानेकी विधि है।

तीन २ वार बुझावे । इस प्रकार सुवर्णादि सात धातुओंकी शुद्धि होती है । शीशा और रांगा ये दोनों धातु नम्र हैं इस वास्ते इनकी विशेष शुद्धि कहते हैं। शीशे और रांगेको अग्निमें तपावे । जब गल जावे तब तैलादिकोंमें तीन २ वार उंडेल (गेर) देवे। तथा आकके दूधमें गलाय २ के बुझावे तो इनकी शुद्धि होवे । विशेष शुद्धि देखना होय तो हमारे निर्माण किये हुए रसराजसुन्दरग्रन्थके प्रथम भागमें देखो ॥

सुवर्णभस्मकी प्रथम विधि ।

स्वर्णाच्चद्विगुणंसूतमम्लेनसहमर्दयेत् ॥ तद्गोलकेसमंगन्धं निदध्यादधरोत्तरम् ॥ ५ ॥ गोलकंचततोरुंध्याच्छरावदृढसंपुटे ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येवंचतुर्दश ॥६॥ निरुत्थंजायतेभस्मगन्धोदेयःपुनःपुनः ॥

अर्थ--सुवर्णका वारीक चूर्ण करके १ भाग तथा शुद्ध किया हुआ पारा २ भाग ले।दोनोंको खरलमें डालके कागदी नींबूके रसमें खरल करे । जब संपूर्ण पारा सुवर्णके बुरादेपर चढ जावे और उसका गोलासा बँध जावे तब गोलेके समान भाग शुद्ध की हुई आंवलासारगन्धकमें बारीक चूर्ण करे । फिर मिट्टीके दो शरावे ले प्रथम शरावेमें आधी गन्धकको बिछायके उसपर उस सुवर्ण और पारेके गोलेको रख देवे, फिर वाकी गंधक जो बची है उसको उस गोलेके ऊपर बुरकके दूसरे शरावेसे बन्द कर देवे और इसके ऊपर सात कपड मिट्टी करे । फिर ३० आरने उपलोंको आधे नीचे रखे, और आधे ऊपर रखे, बीचमें संपुट रख और फूंक देवे। जब स्वांग शीतल होजावे तब संपुटसे उसको निकालके फिर पारेमें घोटे और फिर इसी प्रकार आंच देवे। इस प्रकार १४ चौदह आंच देवे तो सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होवे अर्थात् फिर घृत सुहागे आदि डालनेसे भी नहीं जीवे। यह सुवर्णमारणकी प्रथम विधि कही ॥

सुवर्णमारणकी दूसरी विधि ।

कांचनेगालितेनागंषोडशांशेननिक्षिपेत् ॥ ७ ॥ चूर्णयित्वा तथाम्लेनघृष्ट्वाकृत्वाचगोलकम् ॥ गोलकेनसमंगन्धंदत्त्वा चैवाधरोत्तरम् ॥ ८ ॥ शरावसम्पुटेधृत्वापुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥ एवंसप्तपुटैर्हेमनिरुत्थंभस्मजायते ॥ ९ ॥

---

१ शीशा अथवा राँगेका रस करके तैल कांजी आदिमें बुझाना चाहे तो प्रथम उस तैल काँजीके पात्रको बिली (छिद्रदार) पात्रसे ढक देवे फिर उस छिद्रद्वारा शीशे आदिको गेरे अन्यथा वह रसरूप शीशा आदि उछलकर वैद्यके देहपर पडनेसे मारडालेगा ।

अर्थ–सुवर्णका अग्निके संयोगसे रस करके उसमें सोलहवाँ हिस्सा शीशा डालके ढाल देवे। फिर उसका रेतीसे चूर्ण करके नींबूके रसमें खरल कर गोला बनावे उस गोलेके समानभाग शुद्ध गंधक लेकर चूर्ण करे। मिट्टीके दो सरावे लेकर एक सरावेमें आधा गंधक नीचे बिछावे और आधा ऊपर बिछाय बीचमें उस गोलेको रखके दूसरे सरावेसे मुख बंद करके कपडमिट्टी कर तीस आरने उपलोंकी आँचमें रखके फूंक देवे। इस प्रकार वारंवार घोटे और वारंवार अग्नि देवे। ऐसे सात अग्नि देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होती है और यह मित्रपंचक मिलाकर जिवानेसेभी नहीं जीवे ॥

सुवर्णभस्मकी तीसरी विधि।

कांचनाररसैर्घृष्ट्वासमसूतकगंधयोः ॥ कज्जलींहेमपत्राणिलेपयेत्सममात्रया ॥ १० ॥ कांचनारत्वचः कल्कंमूषायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ धृत्वातत्संपुटेगोलंमृन्मूषासंपुटेचतत् ॥ ११ ॥ निधायसंधिरोधंचकृत्वासंशोष्यगोमयैः ॥ वह्निखरतरंकुर्यादेवंदद्यात्पुटत्रयम् ॥ १२ ॥ निरुत्थंजायतेभस्मसर्वकार्येषुयोजयेत् ॥ कांचनारप्रकारेणलांगलीहन्तिकांचनम् ॥ १३ ॥ ज्वालामुखी यथाहन्यात्तथाहंतिमनःशिला ॥

अर्थ–पारा और गंधक दोनों समान भाग लेवे दोनोंको खरलमें डाल कचनारके रससे खरल करके कजली करे। उस कजलीको समानभाग सुवर्णके पत्रोंपर लेप करे। फिर कचनारकी छालको पीस कल्क करके उसकी दो मूस बनावे। उस एक मूसमें सोनेके पत्र रखके उसपर दूसरी मूसको रख दोनोंकी संधि मिलाय एक गोला बनावे। उस गोलेको मिट्टीके सरावेमें रख दूसरेसे बंद करके कपडमिट्टी कर देवे। फिर धूपमें सुखाय तीव्र आरने उपलोंकी अग्नि देवे। इस प्रकार तीन अग्निके पुट देवे तो सुवर्णकी उत्तम भस्म होय फिर किसी प्रकार नहीं जीवे। यह भस्म संपूर्ण रोगोंपर देनी चाहिये। इसी प्रकार कलयारीके रसमें पारे गंधकको खरल कर कजली करे और सुवर्णके पत्रोंपर लेप कर कलयारीकी मूसमें रख सरावसंपुटमें धरके फूंक देवे तो सुवर्णकी भस्म होय। इसी प्रकार ज्वालामुखीके रसमें घोट पत्रोंपर लेप कर मूसमें रख सरावसंपुटमें फूंके तो भस्म होय। तथा मनशिलमें कजली कर लेप करे और मूसाद्वारा सरावसंपुटमें फूंक देय तो भी सुवर्णकी उत्तम भस्म होय ॥

सुवर्णभस्मकी अन्य विधि।

शिलासिंदूरयोश्चूर्णंसमयोरर्कदुग्धकैः ॥ १४ ॥ सप्तैवभावना

---

१ "कोकिलैः" ऐसाभी पाठांतर है तहाँ कोकिल कहिये कौले।

दद्याच्छोषयेच्चपुनः पुनः ॥ ततस्तुगलितेहेम्निकल्कोऽयंदीयते समः ॥ १५ ॥ पुनर्धमेदतितरांयथाकल्कोविलीयते ॥ एवंवेलात्रयंदद्यात्कल्कंहेममृतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—मनशिल और सिंदूर समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके आकके दूधमें खरल करे। धूपमें सुखायले इस प्रकार सात पुट देवे फिर सुवर्णको गलायके उस सुवर्णके समान ऊपर लिखा मनसिल और सिंदूरका चूर्ण डाले । जब यह चूर्ण मिलकर नष्ट हो जावे तबतक अग्निमें रख धौंकनसि अत्यंत धमावे फिर समान भाग मनशिलादिकोंका चूर्ण डाले और धमावे। इस प्रकार तीन बार करनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होवे ॥

सुवर्णभस्मका प्रकारांतर ।

पारावतमलैर्लिंपेदथवाकुक्कुटोद्भवैः ॥ हेमपत्राणितेषांचप्रदद्यादधरोत्तरम् ॥ १७ ॥ गंधचूर्णसमंदत्त्वाशरावयुगसंपुटे ॥ प्रदद्यात्कुक्कुटपुटंपंचभिर्गोमयोपलैः ॥ १८ ॥ एवंनवपुटान्दद्याद्दशमंचमहापुटम् ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्देयंजायते हेमभस्मकम् ॥ १९ ॥ सुवर्णंचभवेत्स्वादुतिक्तंस्निग्धंहिमंगुरु ॥ बुद्धिविद्यास्मृतिकरंविषहारिरसायनम् ॥ २० ॥

अर्थ—सुवर्णके पत्र करके उनपर कबूतर अथवा मुरगेकी बीटका लेप करके उन पत्रोंके समानभाग गंधकका चूर्ण करके मिट्टीके सरावेमें आधी बिछावे । उसपर सुवर्णके पत्र रखके फिर आधी गंधक ऊपरसे डाल देवे । फिर सरावेसे बंद करके कपडमिट्टी कर धूपमें सुखायले । फिर इसको गौके गोबरके बडे २ पांच उपले लेके अग्नि देवे ऐसे नौ पुट देकर दश वा तीस उपलोंका महापुट देवे । इस प्रकार महापुट देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होवे । अब इस भस्मके गुण कहते हैं । यह मधुर (मीठी), तिक्त (कडवी), स्निग्ध (चिकनी), शीतल और भारी है। यह भस्म बुद्धिकर्त्ता, विद्याकर्त्ता, स्मरणशक्ति बढानेवाली, तथा विषबाधाका नाश करनेवाली और रसायन है ॥

रौप्य (चांदी) की भस्म ।

भागैकंतालकंमर्द्यंयागमम्लेनकेनचित् ॥ तेनभागत्रयंतारपत्राणिपरिलेपयेत् ॥ २१ ॥ धृत्वामूषापुटेरुद्ध्वापुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥

समुद्धृत्यपुनस्तालंदत्त्वारुद्धापुटेपचेत् ॥ २२ ॥
एवंचतुर्दशपुटैस्तारंभस्मप्रजायते ॥

अर्थ—एक भाग हरताल लेकर कागदी नींबूके रसमें १ प्रहर खरल करे। फिर हरतालके तीन भाग रूपेके पत्र लेकर उनपर उस हरतालके कल्कका लेप करे। फिर उनको एकके ऊपर एक रखके मिट्टीके सरावसम्पुटमें रख कपडमिट्टी करके धूपमें सुखायले । फिर तीस आरने उपलोंके बीचमें उस सरावसंपुटको रखके फूंक देवे। इस प्रकार चौदह अग्निपुट देवे तो रूपेकी उत्तम भस्म होवे ॥

रूपेके भस्म करनेकी दूसरी विधि।

स्नुहीक्षीरेणसंपिष्टंमाक्षिकंतेनलेपयेत् ॥ २३ ॥
तालकस्यप्रकारेणतारपत्राणिबुद्धिमा ॥
पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारंभस्मप्रजायते ॥ २४ ॥

अर्थ—सुवर्णमाक्षिक एक भाग लेकर चूर्ण करे। फिर उसको थूहरके दूधमें १ प्रहर खरल कर सुवर्णमाक्षिकसे तिगुने चांदीके पत्र ले उनपर पूर्वोक्त सुवर्णमाक्षिकके कल्कका लेप करके मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर धूपमें सुखायले। पश्चात् उसको आरने उपलोंके बीचमें रखके अग्नि देवे। इस प्रकार चौदह पुट देवे तो रूपेकी भस्म होय ॥

ताम्रभस्मकी विधि।

सूक्ष्माणिताम्रपत्राणिकृत्वासंस्वेदयेद्बुधः ॥ वासरत्रयमम्लेनत-
तःखल्वेविनिक्षिपेत् ॥२५॥ पादांशंसूतकंदत्त्वायाममम्लेनम-
र्दयेत्॥ ततउद्धृत्यपत्राणिलेपयेद्द्विगुणेनच॥२६॥ गंधकेनाम्ल-
घृष्टेनतस्यकुर्याच्चगोलकम् ॥ ततःपिष्ट्वाचमीनाक्षींचांगेरींवापु-
नर्नवाम् ॥ २७ ॥ तत्कल्केनबहिर्गोलंलेपयेदंगुलोन्मितम् ॥
धृत्वातद्गोलकंभांडेशरावेणचरोधयेत् ॥ २८ ॥ वालुकाभिः
प्रपूर्याथविभूतिलवणांबुभिः ॥ दत्त्वाभांडमुखेमुद्रांततश्चुल्ल्यां
विपाचयेत्॥२९॥क्रमवृद्ध्याग्निनासम्यग्यावद्यामचतुष्टयम्॥
स्वांगशीतलमुद्धृत्यमर्दयेत्सूरणद्रवैः ॥ ३० ॥ दिनैकंगोलकं
कुर्यादर्धगंधेनलेपयेत्॥सघृतेनततो मूषापुटेगजपुटेपचेत् ॥ ३१ ॥

स्वांगशीतंसमुद्धृत्यमृतंताम्रंशुभंभवेत् ॥ वांतिभ्रांतिक्लमंमूर्च्छांनकरोतिकदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ–तांबेके कंटकवेधी पत्रोंके बहुत बारीक नखके समान छोटे २ टुकडे कर उनको नींबूके रसमें डालके तीन वार थोडा २ स्वेदन करके पचावे । फिर उन पत्रोंको बाहर निकालके उन पत्रोंका चतुर्थांश पारा लेकर दोनोंको खरलमें डालके नींबूके रससे १ प्रहर घोटे । फिर उन तांबेके पत्रोंको खरलसे निकालके उनकी दूनी गंधक लेके उसको नींबूके रससे खरल करके उन तांबेके पत्रोंपर लेप करके एक गोला बनावे । फिर मीनाक्षी[1] (मछली) अथवा चूका अथवा पुनर्नवा (साँठ) इन तीनों वनस्पतियोंमेंसे जो मिले उसको पीसके उस ताम्रगोलके चारोंतरफ एक २ अंगुल मोटा लेप करे । उस गोलेको किसी पात्रमें धरके उसपर मिट्टीका शराव उलटा ढकके उसके ऊपर मुखपर्यंत बालू भर देवे । फिर राख और नमकको जलमें मिलायके उसकी उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर उस पात्रको चूल्हेपर चढाय क्रमसे मंद, मध्य और तेज अग्नि चार प्रहर देय । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके सूरण (जमींकंद) के रससे १ दिन खरल करे । फिर इसका गोला बनाय उसकी आधी गंधकको घीमें पीसके उस गोलेके चारों तरफ लेप करे । फिर मिट्टीके दो सराव लेय गोलेको एक सरावेमें रखके दूसरेसे बंद करके कपडमिट्टी करके आरने उपलोंके गजपुटमें[2] रखके फूँक देवे । जब शीतल हो जावे तब उस सरावसंपुटको बाहर निकाल उसमेंसे ताम्रभस्मको बुद्धिमानीसे निकाल लेवे । यह भस्म परमोत्तम गुण देनेवाली है इससे वमन, भ्रांति, ग्लानि और मूर्च्छा कदापि नहीं होती है ॥

जस्तकी भस्म ।

अर्कक्षीरेणसंपिष्टोगंधकस्तेनलेपयेत् ॥ समेनारस्यपत्राणिशुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ॥ ३३ ॥ ततोमूषापुटेधृत्वापुटेद्गजपुटेनच ॥ एवंपुटद्वयेनैवभस्मारंभवतिध्रुवम् ॥३४॥ आरवत्कांस्यमप्येवंभस्मतांयातिनिश्चितम् ॥ अर्कक्षीरं[3]वटक्षीरंनिर्गुंडीक्षीरिकातथा ॥ ३५ ॥ ताम्ररीतिध्वनिवधेसमगंधकयोगतः ॥

---

[1] मीनाक्षीको मत्स्याक्षी कहते हैं अर्थात् कुटकी जाननी ऐसा किसीका मत है ।

[2] सवा हाथ गहरा सवा हाथ चौडा और इतनेही लंबे गड्ढेमें आरने उपलोंको भरके बीचमें औषधिके संपुटको रखके अग्नि देनेको गजपुट कहते हैं । परन्तु यह प्रमाण ठीक नहीं है रसराजसुंदरके मध्यभागमें यन्त्राध्यायमें लिखा है सो देखो ।

[3] अर्कक्षीरवदाज्यं स्यात्क्षीरं निर्गुंडिका तथा । इति पाठांतरम् ।

अर्थ–जस्तेके अथवा पीतलके पत्र करके अग्निमें तपाय सात वार अथवा तीन वार नींबूके रसमें बुझाके शुद्ध करे । फिर उन पत्रोंके समान भाग गंधक लेकर आकके दूधमें खरल कर उन तांबेके पत्रोंपर लेप कर मिट्टीकी मूसमें रखके दूसरी मूसमे उसका मुख बन्द कर देवे और कपडमिट्टी करके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देवे । इस प्रकार दो अग्निपुट देनेसे शीशाकी अथवा पीतलकी निश्चय भस्म होवे । इसी प्रकार कांसेकी भस्म होती है । तांबा पीतल और कांसा इनके मारनेकी दूसरी विधि कहते हैं । ताँबा पीतल और काँसा इनमसे जिसकी भस्म करनी होय उसकी वरावर गंधक लेकर आकके अथवा बडके अथवा गौके दूधमें खरल करे अथवा निर्गुंडीके रसमें खरल करके उन पत्रोंपर पृथक् २ लेप करे । पृथक् आरने उपलोंके दो पुट देवे तो उक्त ताम्र आदि धातुओंकी भस्म होय ॥

शीशेकी भस्म ।

तांबूलीरससंपिष्टाशिलालेपात्पुनःपुनः ॥ ३६ ॥
द्वात्रिंशद्भिःपुटैर्नागोनिरुत्थोयातिभस्मताम् ॥

अर्थ–नागरवेलके पानोंका रस निकालके उसमें मनाशिलको पीसे । इस मनसिलके समान भाग शशिके पत्रोंपर उस (मनशिल) का लेप करे । मिट्टीके दो शरावे ले । एकमें उन शीशेके पत्रोंको रखके दूसरेसे उसको बन्द करके कपडमिट्टी कर धूपमें सुखाय फिर गड्ढा खोदके आरने उपलोंसे भरके गजपुटकी अग्नि देवे । इस प्रकार वत्तीस अग्नि देवे तो शीशेकी भस्म होय फिर नहीं जीवे । इसको नागभस्म अथवा नागेश्वर कहते हैं ॥

शीशेमारणका दूसरा प्रकार ।

अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णंचतुर्थांशेननिक्षिपेत् ॥ ३७ ॥ मृत्पात्रे
द्रावितेनागेलोहदर्व्याप्रचालयेत् ॥ यामैकेनभवेद्भस्मतत्तु-
ल्यांचमनःशिलाम् ॥३८॥ कांजिकेनद्वयंपिष्ट्वापचेद्दृढपुटेनच॥
स्वांगशीतंपुनःपिष्ट्वाशिलयाकांजिकेनच ॥ ३९ ॥ पुनःपुटे-
च्छरावाभ्यामेवंषष्टिपुटैर्मृतिः ॥

अर्थ–मिट्टीके खिपडेको चूल्हेपर चढाय उसमें शीशाको डालके पिघलावे (ढवरावे) जब रसरूप हो जावे तब पीपलकी छाल, इमलीकी छाल इन दोनोंका चूर्ण शीशेका चौथाइ लेवे उसको उस पिघले हुए शीशेके रसपर थोडा २ बुरकता जावे और लोहेकी कलछीसे चलाता जावे इस प्रकार १ प्रहर करनेसे शीशेकी भस्म होय । उस भस्मके समान मनशिल लेकर दोनोंको काँजीमें खरल करे । फिर मिट्टीके दो शरावे ले एकमें उस भस्मको रक्खे और दूसरेसे उसका मुख बन्द कर कपडमिट्टी करके गड्ढा खोद उसमें आरने उपले भरे और बीचमें शरा-

वसंपुटको रखके ऊपरसे फिर आरने उपले भरे । इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल लेवे । फिर इसमें समानभाग मनशिल मिलायके दोनोंको काँजीमें खरल कर मिट्टीके सरावसंपुटमें डालके कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय आरने उपलोंकी अग्नि देवे । इस प्रकार ६० साठ पुट देनेसे शीशेकी उत्तम भस्म हो ॥

राँगभस्मप्रकार ।

मृत्पात्रेद्रावितेवंगेचिञ्चाश्वत्थत्वचोरजः ॥ ४० ॥ क्षिप्त्वा तेन चतुर्शांशमयोदर्व्याप्रचालयेत् ॥ ततोद्वियाममात्रेणवंगभस्मप्रजायते ॥ ४१ ॥ अथभस्मसमंतालंक्षिप्त्वाम्लेनप्रमर्दयेत् ॥ ततोगजपुटेपक्त्वापुनरम्लेनमर्दयेत् ॥ ४२ ॥ तालेनदशमांशेनयाममेकंततःपुटेत् ॥ एवंदशपुटैःपक्वोवंगस्तुम्रियतेध्रुवम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—मिट्टीके खिपडेको चूल्हेपर चढाय उसमें रांगेको डालके तपावे । जब रसरूप हो जाय तब इमलीकी छाल और पीपलकी छाल इन दोनोंका चूर्ण रांगेसे चतुर्थांश लेकर उस गले हुए राँगपर थोडा २ डालता जावे और लोहेकी कलछीसे चलाता जाय । इस प्रकार दो प्रहर को तो रांगेकी भस्म होय । फिर इस भस्मके समान हरताल लेकर दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके मिट्टीके शरावेमें संपुट करके ऊपरसे कपडमिट्टी कर देवे । गड्ढा खोदकर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूँक देवे । जब स्वांगशीतल होजावे तब बाहर निकालके उस भस्मका दशवां हिस्सा हरताल ले । नींबूके रसमें दोनोंको खरल कर शरावसंपुटमें रख कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय ले । फिर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार इसमें दश अग्निपुट देवे तो राँगकी निश्चय उत्तम भस्म होवे । इसको वंगभस्म कहते हैं और इसी राँगमें प्रथम गलायके पारा मिलावे फिर उसके पत्र करके भस्म करे तो वह वंगेश्वर कहाता है ॥

लोहभस्मप्रकार ।

शुद्धंलोहभवंचूर्णंपातालगरुडीरसैः ॥ मर्दयित्वापुटेद्वह्नौ दद्यादेवंपुटत्रयम् ॥ ४४ ॥ पुटत्रयंकुमार्याश्चकुठारच्छिन्नकारसैः ॥ पुटषट्कंततोदद्यादेवंतीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ—पोलाद अथवा खेरी लोहका रेतीसे चूरा करके पातालगरुडी (छिलहिंटा) के रसमें खरल कर शरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके संपुटमें रखके

फूँक देवे । इस प्रकार तीन अग्निपुट देवे । तथा घीगुवारके रसकी तीन अग्निपुट देवे, एव वनतुलसीके रसकी (अथवा कसौंदीके) रसकी छः अग्निपुट देय । इस प्रकार बारह पुट देनेसे पोलाद आदि लोहोंकी उत्तम भस्म होय । इसमें जो बारह पुट कहे हैं उन्हें गजपुट जानना ॥

लोहभस्मका दूसरा प्रकार ।

क्षिपेद्द्वादशकांशेनपारदंतीक्ष्णलोहतः ॥ मर्दयेत्कन्यकाद्रावै-
र्यामयुग्मंततः पुटेत् ॥ ४६ ॥ एवंसप्तपुटैर्मृत्युंलोहचूर्णम-
वाप्नुयात् ॥ रसैःकुठारच्छिन्नायाःपातालगरुडीरसैः ॥ ४७ ॥
स्तन्येनचार्कदुग्धेनतीक्ष्णस्यैवंमृतिर्भवेत् ॥

अर्थ–खेडी लोहको रेतीसे चूर्ण कर उस चूर्णका बारहवां हिस्सा हींगलू लेकर घीगुवारके रसमें दोनोंको दो प्रहर खरल करे तब मिट्टीके सरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके बीचमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार सात पुट देय पोलाद और खेडी आदि लोहकी उत्तम भस्म होय । लोहभस्म करनेका दूसरा प्रकार और कहते हैं । छिलहिंटाके रस अथवा स्त्रीके दूधमें तथा गौके दूधमें अथवा पियाबांसा अथवा आकके दूधमें सिंगरफ मिलाय पोलाद लोहेको घोटके पृथक २ सात अग्नि देवे तो तीक्ष्ण लोहेकी उत्तम भस्म होय ॥

लोहभस्मका तीसरा प्रकार ।

सूतकाद्द्विगुणंगन्धंदत्वाकुर्याच्चकज्जलीम् ॥ ४८ ॥ द्वयोःसमं
लोहचूर्णमर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ यामयुग्मंततःपिण्डंकृत्वाता-
म्रस्यपात्रके ॥ ४९ ॥ घर्मेधृत्वाऽरुबूकस्यपत्रैराच्छादयेद्बुधः ॥
यामार्धेनोष्णताभूयाद्धान्यराशौन्यसेत्ततः ॥ ५० ॥ तस्योप-
रिशरावंतुत्रिदिनांतेसमुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वाचगालयेद्वस्त्रादेवंवारितरं
भवेत् ॥ ५१ ॥ एवंसर्वाणिलोहानिस्वर्णादीन्यपिगालयेत् ॥
शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णवासर्वधातवः ॥ ५२ ॥ म्रियन्ते
द्वादशपुटैःसत्यंगुरुवचोयथा ॥

अर्थ–पारा एक भाग और गंधक दो भाग लेके दोनोंकी कजली करे । फिर उस कजलीके समान भाग पोलादका चूरा लेवे । सबको घीगुवारके रसमें दो प्रहर पर्यन्त खरल करके गोला

बनाव । उसको तांबेके पात्रमें रखके उसके ऊपर अंडके पत्ते दो अथवा तीन ढकके चार घडी पर्यन्त धूपमें रख देवे । जब वह गोला गरम हो जावे तब मिट्टीके शरावेसे उस तांबेके पात्रका मुख बन्द करके धानकी राशि (अन्नकी खत्ती)में तीन दिन पर्यन्त गाड देवे । फिर चौथे दिन बाहर निकालके उस लोहेकी भस्मको कपडछान करके इसको पानीमें डाले । यदि पानीमें तरने लगे तो उस भस्मको उत्तम हुई जाननी । इस प्रकार संपूर्ण लोहोंकी भस्म कपडेसे छानके पानीम डालके देखे यदि पानीमें तरने लगे तो उत्तम भस्म हुई जाननी । अब दूसरे प्रकारसे संपूर्ण धातुओंकी भस्म करनेकी विधि । मनशिल और गंधक इन दोनोंको आकके दूधमें पीसके सुवर्ण आदि संपूर्ण धातुओंपर लेप करके आरने उपलोंकी बारह गजपुट अग्नि देवे तो संपूर्ण धातुओंकी भस्म होवे । इस विषयमें दृष्टान्त है जैसे गुरुका वचन सत्य होता है। उसी प्रकार इस प्रयोग करके संपूर्ण धातुओंकी निश्चय भस्म होवे ॥

सात उपधातु ।

माक्षिकंतुत्थकाभ्रौचनीलांजनशिलालकाः ॥ ८३ ॥
रसकश्चेतिविज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥

अर्थ-१ सुवर्णमाक्षिक (सोनामक्खी), २ लीलाथोथा, ३ अभ्रक, ४ सुरमा, ५ मनशिल ६ हरताल और ७ खपरिया ये सात उपधातु जाननी ॥

सुवर्णमाक्षिकका शोधन और मारण ।

माक्षिकस्यत्रयोभागाभागैकंसैंधवस्यच ॥ ८४॥ मातुलुङ्गद्रवैर्वाथजंबीरोत्थद्रवैःपचेत् ॥ चालयेल्लोहजेपात्रेयावत्पात्रंसुलोहितम् ॥ ८५॥ भवेत्ततस्तुसंशुद्धिस्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ कुलत्थस्यकषायेणघृष्ट्वातैलेनवापुटेत् ॥ ८६ ॥ तक्रेणवाजमूत्रेण म्रियतेस्वर्णमाक्षिकम् ॥

अर्थ-सुवर्णमाक्षिक तीन भाग और सैंधानमक एक भाग दोनोंका चूर्ण कर दोनोंको लोहेकी कडाहीमें डालके चूल्हेपर चढायके नीचे अग्नि जलावे फिर इसमें बिजोरेका रस अथवा जंभीरीका रस डालके लोहकी कलछीसे घोटे । जब कडाही लाल होजावे तब नीचे उतार लेवे। जब शीतल हो जावे तब सुवर्णमाक्षिककी भस्मको उसमेंसे निकाल लेवे । इस प्रकार शोधन करके उस सोनामक्खीको कुलथीके काढेमं, तिलके तेलमें, छांछमें अथवा गोमूत्रमें खरल करके सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी अग्निमें फूंक देय तो सुवर्णमाक्षिककी भस्म होय ॥

रौप्यमाक्षिकका शोधन और मारण।

कर्कोटीमेषशृंग्युत्थैर्द्रवैर्जंबीरजैर्दिनम् ॥ ५७ ॥
भावयेदातपेतीव्रेविमलाशुद्ध्यतिध्रुवम् ॥

अर्थ–रूपामाखीका चूर्ण कर ककोडा मेंढासिंगी और जंभीरी इन तीनोंके रसमें एक २ दिन खरल कर धूपमें धरनेसे रौप्यमाक्षिक (रूपामाखी) शुद्ध होय। इसका मारण सुवर्णमाक्षिकके समान जानना ॥

लीलेथोथेका शोधन।

विष्ठयामर्दयेत्तुत्थंमार्जारककपोतयोः ॥ ५८ ॥ दशांशंटंकणं
दत्त्वापचेन्मृदुपुटेततः ॥ पुटंदध्नः पुटेक्षौद्रैर्देयंतुत्थविशुद्धये ॥५९॥

अर्थ–बिल्ली और कबूतर (अथवा पिंडुकिया) इनकी विष्ठा लीलेथोथेके समान तथा लीलेथोथेका दशवाँ हिस्सा सुहागा लेकर सबको एकत्र करके खरल करे और मिट्टीके शरावसंपुटमें भर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे। फिर बाहर निकाल दहीमें खरल कर इसी प्रकार अग्नि देवे। फिर सहतमें खरल करके अग्नि देय तो लीलेथोथेकी शुद्धि होवे ॥

अभ्रकका शोधन और मारण।

कृष्णाभ्रकंधमेद्वह्नौततःक्षीरेविनिक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रंतुतत्कृत्वा
तंदुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥ ६० ॥ भावयेदष्टयामंतदेवंशुद्ध्यति
चाभ्रकम् ॥ कृत्वाधान्याभ्रकंतत्तुशोषयित्वाथमर्दयेत् ॥६१॥
अर्कक्षीरैर्दिनंखल्वेचक्राकारेचकारयेत् ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्चसम्य-
ग्गजपुटेपचेत् ॥ ६२ ॥ पुनर्मर्द्यंपुनःपाच्यंसप्तवारंप्रयत्नतः ॥
ततोवटजटाक्काथैस्तद्वद्देयंपुटेत्रयम् ॥ ६३ ॥ म्रियतेनात्रसंदेहः
सर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ मृतंत्वभ्रंहरेन्मृत्युंजरापलितनाशनम् ॥
॥ ६४ ॥ अनुपानैश्चसंयुक्तंतत्तद्रोगहरंपरम् ॥

अर्थ–काली अभ्रक अर्थात् वज्राभ्रकको कोलेमें डालके धोंकनीसे अथवा फूंकनीसे फूंककर तपावे। जब लाल हो जावे तब निकालके दूधमें बुझाय दे। फिर उसके पृथक् २ पत्र करके चौलाईका रस और नींबूका रस दोनोंका एकत्र करके उसमें उन पत्रोंको आठ प्रहर पर्यंत भिगोय देवे तो अभ्रक शुद्ध होय। फिर उस अभ्रकको उस रसमेंसे निकालके उसका

धान्याभ्रक कर उसको आकके दूधमें एक प्रहर पर्यंत खरल कर गोल २ चक्रके आकार टिकिया बनावे। उनके चारोंतरफ आकके पत्ते लपेटके मिट्टीके सरावसंपुटमें भर उस पर कपडमिट्टी कर धूपमें सुखाय लेवे। फिर उसको आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। इस प्रकार आकके दूधमें १ एक दिन खरल करे और रात्रिमें पुट देवे ऐसे सात पुट देय। फिर बडकी जटाके काढेमें उस अभ्रकको एक २ दिन खरल करे और अग्नि देवे। इस प्रकार तीन गजपुट देय। ऐसी अग्नि देय तो अभ्रककी उत्तम भस्म होय इसमें संशय नहीं है। इस अभ्रकसे संपूर्ण रोग दूर होवें तथा अकाल मृत्युका भी निवारण हो बुढापा दूर हो, सफेद बालोंके काले बाल हों तथा उसको जैसे २ अनुपानके साथ जिस २ रोगमें देय तो यह वैसे २ गुणोंको करता है॥

दूसरी विधि।

शुद्धंधान्याभ्रकंमुस्तंशुंठीषड्भागयोजितम् ॥ ६५ ॥ मर्दयेत्कांजिकेनैवदिनंचित्रकजैरसैः ॥ ततोगजपुटंदद्यात्तस्मादुद्धृत्यमर्दयेत् ॥ ६६ ॥ त्रिफलावारिणातद्वत्पुटेदेवंपुटैस्त्रिभिः ॥ बलागोमूत्रमुसलीतुलसीसूरणद्रवैः ॥ ६७ ॥ मर्दितंपुटितंवह्नौ त्रिस्त्रिवलंव्रजेन्मृतिम् ॥

अर्थ—जिस प्रकार प्रथम विधिकी टिप्पणीमें करनेकी विधि कह आये हैं उस प्रकारसे शुद्ध किया हुआ धान्याभ्रक लेवे उस धान्याभ्रकका छठा हिस्सा नागरमोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके उसमें मिलावे। फिर उसको कांजीमें १ दिन खरल करे। पश्चात् एक दिन चीतेके रसमें खरल करके मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। जब शीतल हो जावे तब उसको बाहर निकालके त्रिफलेके काढेमें नित्यप्रति मर्दन करे इस प्रकार तीन दिन करे और तीनही गजपुटकी आंच देवे। पश्चात् खरेंटीका रस अथवा खरेंटीका काढा, गोमूत्र, मुसलीका काढा, तुलसीके पत्तोंका रस और जमीकन्द इन पांचोंके रसमें अभ्रकको पृथक् खरल करावे। एक एकके तीन २ गजपुट देवे। इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देनेसे अभ्रकका परमोत्तम भस्म होय॥

---

[१] धान्याभ्रककी यह विधि है कि, कतरीहुई अभ्रकको लेकर चतुर्थांश चावलोंके धानको मिलायके उसका कंबलमें पोटली बांधके परातमें रक्खे। फिर उसपर जल डालता जाय और हाथोंसे उस पोटलीको मीडता जावे। इस प्रकार करनेसे उस कंबलमें जितना अभ्रक होगा वह वह बहकर उस परातके पानीमें आजावेगा। जब जाने कि सब अभ्रक परातमें आगया तब उस परातके पानीको नितारके फेंक देवे और उस अभ्रकके चूरेको लेकर धूपमें सुखायले। इसे धान्याभ्रक कहते हैं।

सुरमा और गैरिकादिकोंका शोधन ।

नीलांजनंचूर्णयित्वाजंबीरद्रवभावितम् ॥ ६८ ॥ दिनैकमातपे शुद्धंभवेत्कार्येषुयोजयेत् ॥ एवंगैरिककाशीसटंकणानिवराटिका ॥ ६९ ॥ तुवरीशंखकंकुष्ठंशुद्धिमायातिनिश्चितम् ॥

अर्थ-सुरमाका चूर्ण करके जंभीरीके रसमें खरल कर एक दिन धूपमें रखे तो सुरमा शुद्ध होय । फिर इसको रोगादिकोंपर देना चाहिये । इसी प्रकार गेरू हीराकसीस सुहागा कौडी फिटकरी शंख और मुरदाशंख इन सबकी शुद्धि करनी चाहिये ॥

मनशिलका शोधन ।

पचेत्र्यहमजामूत्रैर्दोलायंत्रेमनःशिलाम् ॥ ७० ॥
भावयेत्सप्तधापित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति ॥

अर्थ-मनशिलको दोलायंत्रमें डालके बकरीके मूत्रमें तीन दिन पचावे । फिर बाहर निकालके खरलमें डाल सात पुट बकरीके पित्तेकी देवे तो मनशिल शुद्ध होवे ।

हरतालका शोधन ।

तालकंकणशः कृत्वातच्चूर्णंकांजिकेक्षिपेत् ॥७१॥ दोलायंत्रेण यामैकंततः कूष्मांडजैर्द्रवैः ॥ तिलतैलेपचेद्यामंयामंचत्रिफलाजलैः ॥ ७२ ॥ एवंयंत्रेचतुर्यामंपाच्यंशुद्ध्यतितालकम् ॥

अर्थ-हरतालके छोटे २ बारीक टुकडे कर उनको कपडेकी पोटलीमें बाँध दोलायंत्रद्वारा कांजीमें एक प्रहर, पेठेके रसमें एक प्रहर, तिलके तेलमें १ प्रहर, तथा त्रिफलाके काढेमें १ प्रहर पचावे । इस प्रकार दोलायंत्रमें हरतालको चार प्रहर पक्व करनेसे शुद्धि होती है ॥

खपरियाका शोधन ।

नृमूत्रेवाथगोमूत्रेसप्ताहंरसकंक्षिपेत् ॥ ७३ ॥
दोलायंत्रेणशुद्धिः स्यात्ततः कार्येषुयोजयेत् ॥

अर्थ-खपरियाको दोलायंत्रमें डालके मनुष्यके मूत्रमें सात दिन अथवा गोमूत्रमें सात दिन पचानेसे खपरिया शुद्ध हो तब इसको औषधोंमें मिलावे ॥

अभ्रकहरतालआदिसे सत्व निकालनेकी विधि ।

लाक्षामीनपयश्छागंटंकणंमृगशृंगकम् ॥ ७४ ॥ पिण्याकंसर्ष-

---

१ काढे आदि पतली वस्तुको किसी गगरे आदिमें भरके जो औषध शोधनी होवे उसकी पोटली बांधके लटकाय देवे इस प्रकार स्वेदनविधि करनेको दोलायंत्र कहते हैं ।

पाःशिग्रुगुंजोर्णागुडसैंधवाः ॥ यवास्तिक्ताघृतंक्षौद्रंयथालाभं
विचूर्णयेत् ॥७५॥ एभिर्विमिश्रिताः सर्वेधातवोगाढवह्निना ॥
मूषाध्माताः प्रजायंतेमुक्तसत्त्वानसंशयः ॥ ७६ ॥

अर्थ-१ लाख, २ छोटी मछली, ३ बकरीका दूध, ४ सुहागा, ५ हरिणका सींग, ६ तिलोंकी खल, ७ सरसों, ८ सँहजनेके बीज, ९ चूंवची (चिरमिठी), १० मेंढाके वाल (ऊन), ११ गुड, १२ सैंधानिमक, १३ जौ, १४ कुटकी, १५ घी और १६ सहत ये सोलह वस्तु, हरताल आदि जिस वस्तुका सत्त्व निकालना होवे उस धातुका आठवाँ हिस्सा एक २ औषध लेकर सबका चूर्ण कर एकत्र गोलासा बनाय मूसमें रखके कोलोंकी आँचमें धोंकनीसे खूब धमावे तो हरताल अथवा अभ्रक आदि उपधातुओंका सत्त्व निकले । इस प्रकार जिस वस्तुका सत्त्व निकालना हो निकाल लेवे । धातुओंका द्रवीकरण आदि विधि रसराजसुन्दर ग्रंथमें देखो ॥

हीराका शोधन और मारण ।

कुलित्थकोद्रवक्काथैर्दोलायंत्रेविपाचयेत् ॥ व्याघ्रीकंदगतंव-
ज्रंत्रिदिनंशुद्धिमृच्छति ॥ ७७ ॥ तप्तंतप्तंतुतद्वज्रंखरमूत्रेनिषेच-
येत् ॥ पुनस्ताप्यं पुनः सेच्यमेवंकुर्यात्त्रिसप्तधा ॥ ७८ ॥
मत्कुणैस्तालकंपिष्ट्वायावद्भवतिगोलकम् ॥ तद्गोलेनिहितंवज्रं
तद्गोलंवह्निनाधमेत् ॥ ७९ ॥ सेचयेदश्वमूत्रेणतद्गोलेचाक्षिपे-
त्पुनः ॥ रुद्धाध्मातंपुनः सेच्यमेवंकुर्याच्चसप्तधा ॥ ८० ॥
एवंचम्रियतेवज्रंचूर्णंसर्वत्रयोजयेत् ॥

अर्थ-व्याघ्रीकंदको कूट पीस लुगदी कर उसमें हीराको रखके उसकी वस्त्रसे पोटली बनाय दोलायंत्रमें डालके कुलथीके काढेमें तीन तथा कोदोंधान्यके काढेमें तीन दिन पचावे तो हीरा शुद्ध होय । फिर उस हीराको अग्निमें तपाय २ के गधेके मूत्रमें बुझावे इस प्रकार इकीस वार बुझावे । फिर खटमलोंमें मिलायके हरतालको पीस उसका गोला करके उस गोलेके बीचमें हीरेको रखके उसको मूसमें रखके कोलोंकी तीव्र अग्निसे धमावे । जब अत्यन्त गरम हो जावे तब उसको घोडेके मूत्रसे बुझाय देवे । फिर उस हीरेको निकाल ले

---

२ संपूर्ण औषधोंकी अपेक्षा सुहागा सत्त्व निकालनेवाली धातुका चतुर्थांश लेवे ऐसा किसी आचार्यका मत है ।

और पूर्वोक्त विधिसे हरतालको खटमलोंके रुधिरमें घोट गोला बनाय उसमें हीरेको रखके उसी प्रकार कोयलेमें धमावे । जब अत्यन्त गरम हो जाय तब घोडेके मूत्रमें बुझाय देवे । इस प्रकार सात बार करे तो हीरेकी उत्तम भस्म होय । फिर इस भस्मको संपूर्ण रोगोंमें देवे । (व्याघ्रीकन्दको दक्षिणमें गुहेरीकन्द कहते हैं और कोई कटेरीकी जडकोही व्याघ्रीकन्द कहते हैं)॥

हीरेकी भस्मकी दूसरी विधि ।

हिंगुसैन्धवसंयुक्तेक्काथेकौलत्थजेक्षिपेत् ॥ ८१ ॥
तप्तंतप्तंपुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णंत्रिसप्तधा ॥

अर्थ—हींग सैंधानमक और कुलथी इन तीनोंका काढा कर उसमें हीरेको तपाय २ के इक्कीस बार बुझावे तो हीरेकी भस्म होवे ॥

तीसरी विधि ।

मडूकंकांस्यजेपात्रेनिगृह्यस्थापयेत्सुधीः ॥ ८२ ॥
सभीतोमूत्रयेत्तत्रतन्मूत्रेवज्रमावपेत् ॥
तप्तंतप्तंचबहुधावज्रस्यैवंमृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ—मेंढकको कांसेके पात्रमें रक्खे जब वह डरके मारे मूते तब उस मूत्रमें हीरेको तपाय २ के अनेक बार बुझावे तो हीरेकी भस्म होय ॥

वैक्रांतका शोधन और मारण ।

वैक्रांतंवज्रवच्छोध्यंनीलंवालोहितंतथा ॥ हयमूत्रेतुतत्सेच्यं
तप्तंतप्तंद्विसप्तधा ॥ ८४ ॥ ततस्तुमेषदृग्युक्तपंचांगेगोलकेक्षि-
पेत् ॥ पुटेन्मूषापुटेरुद्धाकुर्यादेवंचसप्तधा ॥ ८५ ॥ वैक्रांतंभ-
स्मतांयातिवज्रस्थानेनियोजयेत् ॥

अर्थ—वैक्रांत[1] (कासुला) मणि नीलमणि तथा पद्मराग (लाल) मणि इनका शोधन हीरेके समान करे । फिर उस वैक्रान्तमणिको तपाय २ के घोडेके मूत्रमें १४ चौदह बार बुझावे । पश्चात् मेढासिंगीके पंचांगको कूट पीस उसकी लुगदी करके उसमें इस वैक्रांतमणिको रखके सरावसंपुटमें धरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। इस प्रकार सात आंच देवे तो वैक्रांतमणिकी भस्म होय । यह भस्म हीरेकी भस्मके अभावमें देनी चाहिये ॥

---

[1] उत्पन्न होनेके समय विकृतताको प्राप्त होनेसे उसी हीरेको वैक्रांत कहते हैं ।

सम्पूर्ण रत्नोंका शोधन मारण ।

स्वेदयेद्दोलिकायंत्रेजयन्त्याः स्वरसेनच ॥ ८६॥ मणिमुक्ताप्र-
वालानांयामैकंशोधनंभवेत् ॥ कुमार्यातन्दुलीयेनस्तन्येनच
निषेचयेत् ॥८७॥ प्रत्येकंसप्तवेलंचततप्तानिकृत्स्नशः ॥ मौ-
क्तिकानिप्रवालानितथारत्नान्यशेषतः ॥८८॥क्षणाद्विविधवर्णा-
निम्रियंतेनात्रसंशयः ॥ उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताः प्रवालानिचमार-
येत् ॥ ८९ ॥ वज्रवत्सर्वरत्नानिशोधयेन्मारयेत्तथा ॥

अर्थ–सूर्यकान्तमणि, मोती और मूंगा इनको दोलायंत्रमें डालके अरना अथवा जाईके रसमें एक प्रहर पचावे तो ये शुद्ध होवें । फिर इनका मारण इस प्रकार करे । घींगुवारका रस चौलाईका रस तथा स्त्रीका दूध इन तीनोंमें उन मणि मोती और मूंगा तथा और अन्य प्रकारके रत्नोंको तपाय २ एक एकमें सात २ वार बुझावे तो क्षणमात्रमें सबकी भस्म होवे । इस वियमें सन्देह नहीं हैं । तथा इनके मारणकी दूसरी विधि कहते हैं । सुवर्णमाक्षिकका जिस प्रकार मारण कहा है उसी प्रकार मोतियोंका और मूंगोंका मारण करे । हीरेके शोधन और मारणके सदृश संपूर्ण रत्नोंका शोधन मारण करना चाहिये ॥

शिलाजीतका शोधन ।

शिलाजतुसमानीयग्रीष्मतप्तशिलाच्युतम् ॥ ९० ॥
गोदुग्धैस्त्रिफलाक्काथैर्भृंगद्रावैश्चमर्दयेत् ॥
आतपेदिनमेकैकंतच्छुष्कंशुद्धतांव्रजेत् ॥ ९१ ॥

अर्थ–ग्रीष्म ऋतुमें गरमी अधिक होती है इसीसे पर्वतमें जो बडी २ शिला होती हैं, गरमीसे अत्यंत तपती हैं, तब उनसे रस गलकर जम जाता है, उसको शिलाजीत कहते हैं, उस शिलाजीतको लायके गौके दूधमें, त्रिफलेके काढेमें तथा भाँगरेके रसमें पृथक् २ एक एक दिन खरल कर धूपमें धरके सुखाय लेवे तो शिलाजीत शुद्ध होवे ॥

तथा दूसरा प्रकार ।

मुख्यांशिलाजतुशिलांसूक्ष्मखंडप्रकल्पिताम् ॥ निक्षिप्या-
त्युष्णपानीयेयामैकंस्थापयेत्सुधीः ॥ ९२ ॥ मर्दयित्वाततो
नीरंगृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ स्थापयित्वाचमृत्पात्रेधारये-
दातपेबुधः ॥ ९३ ॥ उपरिस्थंघनंचस्यात्तत्क्षिपेदन्यपा-
त्रके ॥ धारयेदातपेधीमानुपरिस्थंघनंनयेत् ॥ ९४ ॥ एवं

पुनःपुनर्नीत्वाद्विमासाभ्यांशिलाजतु ॥ भूयात्कार्यक्षमंवह्नौक्षिप्तांलिंगोपमंभवेत् ॥ ९५ ॥ निर्धूमंचततःशुद्धंसर्वकर्मसुयोजयेत् ॥ अधःस्थितंचयच्छेषंतस्मिन्नीरंविनिक्षिपेत् ॥ ॥ ९६ ॥ विमर्द्यधारयेद्धर्मेपूर्ववच्चैवतन्नयेत् ॥

अर्थ–जिस पाषाणसे शिलाजीत उत्पन्न होता है, उस पाषाणको उत्तम देखके लेवे उस पाषाणके वारीक २ टुकडे करके खलबलाते हुए गरम पानीमें एक प्रहर पर्यन्त भिगोवे। पश्चात् उन टुकडोंको उसी पानीमें वारीक पीसके कपडेमें छान उस पानीको मिट्टीकी नांदमें डालके धूपमें रख देवे। जब उस पानीपर मलाई आयजावे उसको उतारके दूसरे पात्रमें डालता जाय इस प्रकार पृथक्२ पात्रमेंसे बारंबार सब मलाई उतारके दूसरे पात्रमें इकट्ठी करे फिर उस दूसरे पात्रमें भी गरम जल डालके उस शिलाजीतकी मलाईको मिलायके धूपमें धर देवे। जब उसमें मलाई पडे तब उतार २ के तीसरी नांदमें डाले और उसमें भी गरम जल डालके धूपमें धर देवे। जब उसमें मलाई आवे तब फिर पहली शुद्ध की हुई नांदमें मलाईको इकट्ठी करे। इस क्रमसे वरावर एकमेंसे निकालकर दूसरेमें एकत्र करे और पाहेली नांदमें जो नीचे गरद बैठ जावे उसको जलमें पीसके छान लेवे और इसी क्रमसे उसको धूपमें रखके मलाई उतार लिया करे। इस प्रकार दो महीने पर्यन्त करे तो शिलाजीतकी उत्तम शुद्धि होवे। इसकी परीक्षा इस प्रकार करे कि इसमेंसे थोडासा टुकडा तोडके अग्निमें डाले तो उसका पिंडीके समान धूमरहित साकार होता है उसको शुद्ध शिलाजीत जानना। इसको सर्व कार्यमें देवे ॥

मंडूर बनानेकी विधि।

अक्षांगारैर्धमेत्किट्टंलोहजंतद्गवांजलैः ॥ ९७ ॥ सेचयेत्ततततंतत्सप्तवारंपुनःपुनः ॥ चूर्णयित्वाततःक्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः ॥ ९८॥ आलोड्यभर्जयेद्वह्नौमण्डूरंजायतेवरम् ॥

अर्थ–वहेडेकी लकडियोंके कौले करके उसमें पुराने लोहकी कीटी डालके धोंके जब लाल हो जावे तब उस कीटीको गोमूत्रमें बुझाय देवे। इस प्रकार सात वार तपाय २ के गोमूत्रमें बुझावे। फिर उस कीटीका बारीक चूर्ण करके उसका दूना त्रिफलेका काढा हांडीमें भर उसमें उस कीटीके चूर्णको डालके अच्छी रीतिसे उस हांडीके मुखको ढक मुखपर कपडमिट्टी कर देवे। पश्चात् उसको आरने उपलोंकी गजपुटमें रखके फूँक देय। जब शीतल होजावे तब उस हांडीको वाहर निकाल उसमें उस कीटका जो शुद्ध मंडूर बनके तैयार होवे उसको निकाल लेय तो परमोत्तम बने। इसे सब योगोंमें मिलावे ॥

क्षार बनानेकी विधि ।

[1]क्षारवृक्षस्यकाष्ठानिशुष्कान्यग्नौप्रदीपयेत् ॥ ९९ ॥ नीत्वा
तद्भस्ममृत्पात्रेक्षिप्त्वानीरेचतुर्गुणे ॥ विमर्द्यधारयेद्रात्रौप्रात-
रच्छजलं नयेत् ॥ १०० ॥ तन्नीरंक्काथयेद्वह्नौयावत्सर्वं
विशुष्यति ॥ ततःपात्रात्समुल्लिख्यक्षारोग्राह्यःसितप्रभः ॥
॥ १०१॥ चूर्णाभःप्रतिसार्यःस्यात्पेयःस्यात्क्काथवत्स्थितः ॥
इति क्षारद्वयंधीमान्युक्तकार्येषुयोजयेत् ॥ १०२ ॥

इति दामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने
मध्यमखण्डे धातुशोधनमारणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ-जिन वृक्षोंसे खार निकालता है, उन वृक्षोंकी लकडी पंचांग लाकर सुखायके जलाय लेवे । जब राख हो तब उस राखको मिट्टीके गगरेमें भर राखसे चौगुना जल डालके उस राखको उस पानीमें मिलायके रख देवे । सुश्रुतमें ६ गुना जल डालना लिखा है । इस प्रकार १ रात्रिभर धरी रहने दे प्रातःकाल उस घडेमेंसे ऊपर ऊपरका नितरा हुआ जल लोहेकी कढाईमें निकाल लेवे । फिर उस कढाईको अग्निपर चढायके नीचे अग्नि जलायके उस पानीको जलाय देवे । इस प्रकार करनेसे पानी जल जावेगा उस कढाईमें चारों तरफ सफेद २ खार चूर्णके समान लगा हुआ रह जावेगा उसको निकाल लेवे । इस क्षारको प्रतिसार्य कहते हैं । इसको श्वासादि रोगोंपर देवे । तथा काढेके समान पतला जो क्षार, रहता है उसको पेय कहते हैं । उस क्षारको गुल्मादिक रोगोंपर देवे । इस प्रकार पतला और चूर्णके समान ऐसे दो प्रकारका क्षार जानना ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे माथुरभाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

पारदके नाम तथा सूर्यादिनवग्रहोंके नाम करके ताम्रादि नवधातुओंकी संज्ञा ।

[2]पारदःसर्वरोगाणांजेतापुष्टिकरःस्मृतः ॥ सुज्ञेनसाधितःकुर्या-

---

१ ओंगा इमली केला पलाश थूहर चीता कटेरी मोखवृक्ष इत्यादि क्षारवृक्ष जानने ।

२ पारदः सर्वरोगाणां नेता इति पाठान्तरम् ।

त्सांसिद्धिंदेहलोहयोः ॥ १ ॥ रसेंद्रः पारदःसूतो हरजः सूतको रसः ॥ मुकुन्दश्चेतिनामानिज्ञेयानिरसकर्मसु ॥ २ ॥ ताम्रतारनागाश्चहेमवंगौचतीक्ष्णकम् ॥ कांस्यकंकांतलोहंचधातवो नवयेस्मृताः ॥ ३ ॥ सूर्यादीनांग्रहाणांतेकथितानामभिःक्रमात् ॥

अर्थ–पारा संपूर्ण रोगोंका जीतनेवाला और देहको पुष्ट करनेवाला है, वह चतुर मनुष्य करके बनाया हुआ देहकी और लोहकी तत्काल सिद्धि करता है अर्थात् खानेसे देहको अजर अमर करे और लोह (ताँबा राँगा आदि) में डालनेसे सुवर्ण करता है । पारदके नाम १ रसेंद्र, २ पारद, ३ सूत, ४ हरज, ५ सूतक, ६ रस और ७ मुकुंद ये सात नाम रसकर्ममें जहां २ आवें तहां पारदके जानने । १ ताम्र, २ रूपा, ३ जस्त, ४ शीशा, ५ सुवर्ण, ६ राँगा, ७ पोलाद, ८ काँसा और ९ कांतलोह ये नौ धातु क्रमसे सूर्यादि नवग्रहोंके नाम करके जानने । जैसे–जितने सूर्यके नाम हैं वे सब ताँबेके जानने, जितने चन्द्रमाके नाम वे सब रूपेके जानने, जितने मंगलके नाम हैं वे सब जस्तके अथवा पीतलके जानने इसी क्रमसे नवग्रहोंके नाम हैं वे नौ धातुओंके जानना ॥

पारेका शोधन ।

राजीरसोनमूषायांरसंक्षिप्त्वाविबंधयेत् ॥ ४ ॥ वस्त्रेणदोलिकायंत्रेस्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् ॥ दिनैकंमर्दयेत्सूतंकुमारीसंभवैर्द्रवैः ॥५॥ तथाचित्रकजैःक्वाथैर्मर्दयेदेकवासरम् ॥ काकमाचीरसैस्तद्वद्दिनमेकंचमर्दयेत् ॥ ६ ॥ त्रिफलायास्ततः क्वाथै रसोमर्द्यःप्रयत्नतः ॥ ततस्तेभ्यः पृथक्कुर्यात्सूतंप्रक्षाल्यकांजिकैः ॥ ७ ॥ ततः क्षिप्त्वारसंखल्वेरसादर्धंचसैंधवम् ॥ मर्दयेन्निंबुकरसैर्दिनमेकमनारतम् ॥८॥ ततोराजीरसोनश्चमुख्यश्चनवसादरः ॥ एतैरससमैस्तद्वत्सूतोमर्द्यस्तुषांबुना ॥ ९ ॥ ततः संशोष्यचक्राभंकृत्वाक्षिप्त्वाचाहिंगुना ॥ द्विस्थालीसंपुटेधृत्वा पूरयेल्लवणेनच ॥१०॥ अथस्थाल्यांततोमुद्रांदद्याद्दृढतरांबुधः ॥

---

१ सुदिने साधितेति पाठांतरम् । २ बुधैस्तस्येतिनामानीति पाठांतरम् । ३ सूर्याचंद्रमसौ भौमः आशिजो जीवभार्गवौ । सूर्यसुनुः सैंहिकेयः केतुश्चेति नवग्रहाः ।

विशोष्याग्निंविधायाधोनिषिंचेदंबुचोपरि ॥ ११ ॥ ततस्तुकुर्यात्तीव्राग्निंतदधः प्रहरत्रयम् ॥ एवंनिपातयेदूर्ध्वंरसोदोषविवर्जितः ॥ १२ ॥ अथार्धपिठरीमध्येलग्नोग्राह्योरसोत्तमः ॥

अर्थ—राई और लहसन दोनोंको एकत्र पीसके उसकी मूस बनावे । उसमें पारा डालके उसको कपडेमें पोटली बांध दोलायन्त्र करके कांजीमें तीन दिन पचावे । फिर उस पारेको निकाल खरलमें डालके घीगुवारेके रसमें एक दिन खरल करे । फिर चीतेके और कांगुनीके रसमें और त्रिफलाके काढेमें एक एक दिन खरल करे फिर कांजीमें इस पारेको धोयके उन औषधोंके रससे पृथक् करके फिर खरलमें डालके उस पारेका आधा सैंधानमक मिलायके दोनोंको नींबूके रसमें १ दिन खरल करें । फिर राई लहसन और नौसादर ये तीन औषध पारेके समान भाग लेके उसमें पारेको मिलाय धानके तुषोंके काढेमें सबको खरल करे । जब शुष्क हो जावे तब उसकी गोल २ टिकियासी बनावे । उनके चारों तरफ हींगका लेप करके उन टिकियाओंको एक घडेमें रखके उसमें नमक डालके घडेके मुखपर दूसरा घडा उलटा जोडके कपडमिट्टी कर दृढ करके धूपमें सुखाय देवे । फिर इसको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे और ऊपरके घडेपर गीले कपडेका पुचारा फेरता जावे कि जिससे ऊपरका घडा शीतल रहे और जमा हुआ पारा नीचे न गिरे अथवा उसपर शीतल जल भर देवे । फिर उस नीचेके घडेके नीचे ३ प्रहर तेज अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब घडोंको अलग २ करके हलके हाथसे उस ऊपरके लगे हुए पारेको निकाल लेवे । यह पारा परम शुद्ध और दोषरहित होता है ॥

गंधकका शोधन ।

लोहपात्रेविनिक्षिप्यघृतमग्नौप्रतापयेत् ॥ १३ ॥ तप्तेघृतेतत्समानंक्षिपेद्गंधकजंरजः ॥ विद्रुतंगंधकंज्ञात्वादुग्धमध्येविनिक्षिपेत् ॥ १४ ॥ एवंगंधकशुद्धः स्यात्सर्वकार्येषुयोजयेत् ॥

अर्थ—लोहेके कडछुलेम घी डालके मंदाग्निसे तपाय उस घीकी बराबर आमलासार गंधकका बारीक चूर्ण करके उस घीमें डाल देवे । फिर गंधक घीमें तपकर जब रसरूप हो जावे तब एक दूधके पात्रपर बारीक कपडा बांधके उसमें उस गंधकको उंडेल देवे । जब शीतल होजावे तब उस गंधकको निकाल ले । यह शुद्ध गंधक सर्व कार्यमें लावे ॥

हिंगलूसे पारा काढनेकी विधि ।

निंबूरसैर्निंबपत्ररसैर्वायाममात्रकम् ॥ १५ ॥ पिष्ट्वादरदमूर्ध्वं

चपातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ततः शुद्धरसंतस्मान्नीत्वाकार्येषु योजयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–नींबूके रसमें अथवा नींमके पत्तोंके रसम हींगळूको १ प्रहर खरल कर डमरूयंत्रमें धर नींचे अग्नि जलावे । उसमेंसे पारा उडके ऊपरकी हाँडीमें जायके जमजावे । उसे धोकर पारा निकाल ले । यह शुद्ध जानना इसको सर्व कार्यमें लेय ॥

हींगलूका शोधन ।

मेषीक्षीरेणदरदमम्लवर्गैश्चभावितम् ॥
सप्तवारंप्रयत्नेनशुद्धिमायातिनिश्चितम् ॥ १७ ॥

अर्थ–हींगळूको खरलमें डालके भेडके दूधकी सात पुट देवे तथा नींबूके रसकी सात पुट, ऐसे चौदह पुट देय तो हींगळू निश्चय शुद्ध होवे ॥

शुद्ध हुए पारेके मुख करनेकी विधि ।

कालकूटोवत्सनाभः शृंगकश्चप्रदीपकः ॥ हालाहलोब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा ॥१८॥ सौराष्ट्रिकइतिप्रोक्ताविषभेदाअमीनव ॥ अर्कसेहुंडधत्तूरलांगलीकरवीरकम् ॥१९॥ गुंजाहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ॥ एतैर्विमर्दितःसूतश्छिन्नपक्षःप्रजायते ॥ २० ॥ मुखंचजायतेतस्यधातूँश्चग्रसतेक्षणात् ॥

अर्थ–१ कालकूट, २ वत्सनाभ (वच्छनाग), ३ शृंगक (सिंगिया), ४ प्रदीपक, ५ हालहल, ६ ब्रह्मपुत्र, ७ हारिद्र, ८ सक्तुक और ९ सौराष्ट्रिक ये नौ महाविष हैं । १ आक, २ थूहर, ३ धतूरा, ४ कलयारी, ५ कनेर, ६ गुंजा और ७ अफीम ये सात उपविष हैं, ऐसे सब मिलके १६ हुए इनमेंसे एक एक विषमें पारेको सात २ दिन एकके पीछे दूसरेमें इस प्रकार पृथक् २ खरल करके धोय लेवे तो पारेके पक्ष (पर) कट जावें अर्थात् उडे नहीं तथा उसके मुख होकर सुवर्णादि धातुओंको तत्काल ग्रसे अर्थात् खाय जावे । इस वास्ते इन कालकूटादि महाविषोंके लक्षण ग्रथान्तरमें जो लिखे हैं उनको टीकाकार प्रसंगवश लिखते हैं ॥

१ कालकूट विष सफेद वर्णका होता है तथा उसपर लाल २ बिंदु बहुत होते हैं, कीचडके समान नम्र होता है । यह विष देवता और दैत्योंके युद्धमें मलिनामक दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुआ है । यह पीपलके वृक्षके समान एक वृक्ष होता है उसका गोंद है । इसकी उत्पत्ति अहिछत्र मलय कोंकण और शृंगवेर इन पर्वतोंपर अत्यंत होती है ।

विशोष्याग्निंविधायाधोनिषिंचेदंबुचोपरि ॥ ११ ॥ ततस्तुकुर्यात्तीव्राग्निंतदधः प्रहरत्रयम् ॥ एवंनिपातयेदूर्ध्वंरसोदोषविवर्जितः ॥ १२ ॥ अथार्धपिठरीमध्येलग्नोग्राह्योरसोत्तमः ॥

अर्थ—राई और लहसन दोनोंको एकत्र पीसके उसकी मूस बनावे । उसमें पारा डालके उसको कपडेमें पोटली बांध दोलायन्त्र करके कांजीमें तीन दिन पचावे । फिर उस पारेको निकाल खरलमें डालके घीगुवारेके रसमें एक दिन खरल करे । फिर चीतेके और कांगुनीके रसमें और त्रिफलाके काढेमें एक एक दिन खरल करे फिर कांजीमें इस पारेको धोयके उन औषधोंके रससे पृथक् करके फिर खरलमें डालके उस पारेका आधा सैंधानमक मिलायके दोनोंको नींबूके रसमें १ दिन खरल करे । फिर राई लहसन और नौसादर ये तीन औषध पारेके समान भाग लेके उसमें पारेको मिलाय धानके तुषोंके काढेमें सबको खरल करे । जब शुष्क हो जावे तब उसकी गोल २ टिकियासी बनावे । उनके चारों तरफ हींगका लेप करके उन टिकियाओंको एक घडेमें रखके उसमें नमक डालके घडेके मुखपर दूसरा घडा उलटा जोडके कपडमिट्टी कर दृढ करके धूपमें सुखाय देवे । फिर इसको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे और ऊपरके घडेपर गीले कपडेका पुचारा फेरता जावे कि जिससे ऊपरका घडा शीतल रहे और जमा हुआ पारा नीचे न गिरे अथवा उसपर शीतल जल भर देवे । फिर उस नीचेके घडेके नीचे ३ प्रहर तेज अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब घडोंको अलग २ करके हलके हाथसे उस ऊपरके लगे हुए पारेको निकाल लेवे । यह पारा परम शुद्ध और दोषरहित होता है ॥

गंधकका शोधन ।

लोहपात्रेविनिक्षिप्यघृतमग्नौप्रतापयेत् ॥ १३ ॥ तप्तेघृतेतत्समानंक्षिपेद्गंधकजंरजः ॥ विद्रुतंगंधकंज्ञात्वादुग्धमध्येविनिक्षिपेत् ॥ १४ ॥ एवंगंधकशुद्धः स्यात्सर्वकार्येषुयोजयेत् ॥

अर्थ—लोहेके कडछुलेम घी डालके मंदाग्निसे तपाय उस घीकी बराबर आमलासार गंधकका बारीक चूर्ण करके उस घीमें डाल देवे । फिर गंधक घीमें तपकर जब रसरूप हो जावे तब एक दूधके पात्रपर बारीक कपडा बांधके उसमें उस गंधकको उंडेल देवे । जब शीतल होजावे तब उस गंधकको निकाल ले । यह शुद्ध गंधक सर्व कार्यमें लावे ॥

हिंगलूसे पारा काढनेकी विधि ।

निंबूरसैर्निंबपत्ररसैर्वायाममात्रकम् ॥ १५ ॥ पिष्ट्वादरदमूर्ध्वं

चपातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ततः शुद्धरसंतस्मान्नीत्वाकार्येषु
योजयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–नींबूके रसमें अथवा नींमके पत्तोंके रसम हींगलूको १ प्रहर खरल कर डमरूयंत्रमें भर नीचे अग्नि जलावे । उसमेंसे पारा उडके ऊपरकी हाँडीमें जायके जमजावे । उसे धोकर पारा निकाल ले । यह शुद्ध जानना इसको सर्व कार्यमें लेय ॥

हींगलूका शोधन ।

मेषीक्षीरेणदरदमम्लवर्गैश्चभावितम् ॥
सप्तवारंप्रयत्नेनशुद्धिमायातिनिश्चितम् ॥ १७ ॥

अर्थ–हींगलूको खरलमें डालके भेडके दूधकी सात पुट देवे तथा नींबूके रसकी सात पुट, ऐसे चौदह पुट देय तो हींगलू निश्चय शुद्ध होवे ॥

शुद्ध हुए पारेके मुख करनेकी विधि ।

कालकूटोवत्सनाभः शृंगकश्चप्रदीपकः ॥ हालाहलोब्रह्मपुत्रो
हारिद्रः सक्तुकस्तथा ॥१८॥ सौराष्ट्रिकइतिप्रोक्ताविषभेदाअ-
मीनव ॥ अर्कसेहुंडधत्तूरलांगलीकरवीरकम् ॥१९॥ गुंजाहि-
फेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ॥ एतैर्विमर्दितःसूतश्छिन्नप-
क्षःप्रजायते ॥ २० ॥ मुखंचजायतेतस्यधातूँश्चग्रसतेक्षणात् ॥

अर्थ–१ कालकूट, २ वत्सनाभ (वच्छनाग), ३ शृंगक (सिंगिया), ४ प्रदीपक, ५ हालहल, ६ ब्रह्मपुत्र, ७ हारिद्र, ८ सक्तुक और ९ सौराष्ट्रिक ये नौ महाविष हैं । १ आक, २ थूहर, ३ धतूरा, ४ कलयारी, ५ कनेर, ६ गुंजा और ७ अफीम ये सात उपविष हैं, ऐसे सब मिलके १६ हुए इनमेंसे एक एक विषमें पारेको सात २ दिन एकके पीछे दूसरेमें इस प्रकार पृथक् २ खरल करके धोय लेवे तो पारेके पक्ष (पर) कट जावें अर्थात् उडे नहीं तथा उसके मुख होकर सुवर्णादि धातुओंको तत्काल ग्रसे अर्थात् खाय जावे । इस वास्ते इन कालकूटादि महाविषोंके लक्षण ग्रथान्तरमें जो लिखे हैं उनको टीकाकार प्रसंगवश लिखते हैं ॥

१ कालकूट विष सफेद वर्णका होता है तथा उसपर लाल २ बिंदु बहुत होते हैं, कीचडके समान नम्र होता है । यह विष देवता और दैत्योंके युद्धमें मलिनामक दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुआ है । यह पीपलके वृक्षके समान एक वृक्ष होता है उसका गोंद है । इसकी उत्पत्ति अहिछत्र मलय कोंकण और शृंगवेर इन पर्वतोंपर अत्यंत होती है ।

२ वत्सनाभ विषके निर्गुंडीके पत्तोंके समान पत्र होते हैं और आकृति (स्वरूप) में बच्छे नागके समान होता है । इसके आसपास वृक्ष बेल घास ये बढते नहीं हैं । यह विष द्रोणाचल-पर्वतपर अत्यंत उत्पन्न होता ह ।

३ शृंगकविष गौके सींगके समान होकर उसके दो भाग होते हैं । इस विषको गौके सींगसे बांधे तो गौका दूध रुधिरके समान होता है । इसके पत्ते अदरखके पत्तेके समान होते हैं। यह नदीके किनारे जिस जगहपर कीचड होती है, उस जगह बहुधा प्रगट होता है ।

४ प्रदीपक विष चकचकाता हुआ अंगारेके समान लाल रंगकी कांतिवाला होता है और इसके पत्ते खजूरके समान होते हैं । इसके सूँघनेसे प्राणीके देहमें दाह प्रकट होकर तत्काल मर-जावे । यह समुद्रके किनारे बहुत होता है ।

५ हालाहल विष ताडके पत्तेके समान होता है । इसके पत्ते नीले रंगके होते हैं और फल इसके गौके स्तनके समान लंबे और सफेद होते हैं । तथा इसका कंदभी गौके थनके समान होता है । इसके आसपास वृक्षादिक नहीं होते । इसकी बास सूँघतेही मनुष्य तत्काल मर जाता है ।

६ ब्रह्मपुत्र विष ब्रह्मपुत्रनामक नदके किनारे बहुत होता है । इसके पत्ते पलाशके समान होते हैं और फलभी पलाश (ढाक) के समान होते हैं । कंद इसका बडा तथा पराक्रम बडा होता है । यह विष रोगहरणमें और रसायनक्रियामें अत्युपयोगी है ।

७ हारिद्र विष हल्दीके खेतोंमें उत्पन्न होता है । उसके पत्ते हल्दीके समान होते हैं और गाँठ भी हल्दीके समान होती है । यह विष रसायनविषयमें समर्थ है ।

८ सक्तुक विष जौके समान आकृतिमें होता है और भीतरसे सफेद होता है । यह लोकपर्व-तमें बहुत उत्पन्न होता है ।

सौराष्ट्रिक विष सोरठ (गुजरात) देशमें उत्पन्न होता है । इसका कंद कछुएके मस्तकके समान मोटा होता है । तथा कृष्णागरुके समान कालावर्ण होता है और इसके पत्ते पलाशके समान होते हैं, इसका पराक्रमभी बडा उत्कट है ।

मुख और पक्षच्छेदनका दूसरा प्रकार ।

अथवात्रिकटुक्षारौराजीलवणपंचकम् ॥ २१ ॥ रसोनोनवसार-
श्चशिग्रुश्चैकत्रचूर्णितैः ॥ समांशैःपारदादेतैर्जंबीरेणद्रवेणवा ॥२२॥
निंबुतोयैःकांजिकैर्वासोष्णखल्वेविमर्दयेत् ॥ अहोरात्रत्रयेण
स्याद्रसेधातुचरंमुखम् ॥ २३ ॥ अथवाबिंदुलीकीटैरसोमर्द्य-
त्रिवासरम् ॥ लवणाम्लैर्मुखंतस्यजायतेधातुघस्मरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—१ सोंठ, २ काली मिरच , ३ पीपल, ४ जवाखार, ५ सज्जीखार, ६ सैंधानमक, ७ संचरनमक, ८ विडखार, ९ समुद्रनमक, १० रेहका खार, ११ लहसन, १२ नौसादर और १३ सँहजनेकी छाल ये तेरह औषध समान भाग लेकर चूर्ण करके पारेके समान भाग ले सबको तप्तखल्व (जो रसराजसुन्दर ग्रंथके प्रथम खंडमें लिखा है) उसमें डालके जंभीरी अथवा नींबूके रससे अथवा कांजीमें तीन दिनरात्र खरल करे तो स्वर्णादिधातु भक्षण करनेवाला पारेके मुख होय । अथवा बीरबहूटी (जिसको इन्द्रवधूमी कहते हैं) इस नामका कीडा चातुर्मास्यमें होताहै । उसको लायके उसके साथ पारेको तीन दिन खरल करे । फिर नींबूका रस और सैंधानमक दोनोंको एकत्र करके पारा डाल तीनोंको खरल करे तो स्वर्णादि धातुओंको खानेवाला पारेके मुख होवे ॥

कच्छपयन्त्रकरके गन्धकजारण ।

मृत्कुण्डेनिक्षिपेन्नीरंतन्मध्येचशरावकम् ॥ महत्कुण्डपिधा-
नाभंमध्येमेखलयायुतम् ॥ २५ ॥ लिप्त्वाचमेखलामध्यंचू-
र्णेनात्ररसंक्षिपेत् ॥ रसस्योपरिगन्धस्यरजोदद्यात्समांशकम्
॥ २६ ॥ दत्त्वोपरिशरावंचभस्ममुद्रांप्रदापयेत् ॥ तस्योपरि
पुटंदद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः ॥ २७ ॥ एवंपुनःपुनर्गंधंषड्गुणं
जारयेद्बुधः ॥ गन्धजीर्णेभवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निः सर्वकर्मकृत् ॥ २८ ॥

अर्थ—मिट्टीका एक पात्र कूँडेके समान ऊँचे मुखका लेकर उसमें जल भरके उसपर ढकनेकी ऐसी कूँडी लेवे जो उस पात्रके मुखपर आय जावे । उसको लेकर पानीसे न लगे इस प्रकार अलग रक्खे । फिर उस कूँडीमें मिट्टीका गोल एक अंगुल ऊँचा गढेला करके उसमें चूना बिछायके पारा भर देवे । फिर पारेके समान भाग गंधकका चूर्ण उस पारेपर डाले । फिर मिट्टीकी दूसरी कूँडी उलटी ढकके उसके संधियोंको नमक मिली हुई राखसे बंद कर मुद्रा दे देवे । उसके ऊपर गौके गोबरके ४ उपले रखके अग्नि देवे । इस प्रकार उस पारेपर छः वार गंधक डाल २ के अग्नि देकर गंधकजारण करे तो यह पारा देदीप्यमान अग्निके समान होकर सर्व कार्यकर्त्ता होवे ॥

पारामारणकी विधि ।

भूमसारंरसंतोरींगन्धकंनवसादरम् ॥ यामैकंमर्दयेदम्लैर्भागं
कृत्वासमंसमम् ॥ २९ ॥ काचकुप्यांविनिक्षिप्यतांच मृद्वस्त्र-
मुद्रिताम् ॥ विलिप्यपरितोवक्त्रंमुद्रांदत्त्वाचशोषयेत् ॥ ३० ॥

अधःसच्छिद्रपिठरीमध्येकूपींनिवेशयेत् ॥ पिठरींवालुकापूरैर्भृत्वाचाकूपिकागलम् ॥३१॥ निवेश्य चुल्ल्यांतदधःकुर्याद्वह्निंशनैःशनैः ॥ तस्मादप्यधिकंकिञ्चित्पावकंज्वालयेत्क्रमात् ॥ ३२ ॥ एवंद्वादशभिर्यामैर्म्रियतेसूतकोत्तमः ॥ स्फोटयेत्स्वांगशीतंचऊर्ध्वगंगन्धकंत्यजेत् ॥ ३३ ॥ अधःस्थंमृतसूतंचसर्वकर्मसुयोजयेत् ॥

अर्थ—१ घरका धूआं, २ पारा, ३ फिटकरी, ४ गंधक, ५ नौसादर ये पांच औषध समान भाग लेकर नींबूके रसमें १ प्रहर खरल कर काचकी शीशीमें भरके उसपर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय ले। फिर मुखपर डाट देकर बंद कर देवे। फिर एक मिट्टीका बडा पात्र लेके उसकी पेंदीमें छेद करके उसके बीचमें एक ठीकरी रखके उसके ऊपर कांचकी शीशीको रखके ऊपरसे शीशीके गले पर्य्यन्त बालू भर देवे, शीशीकी नलीको खाली रक्खे। इस यंत्रको बालुकायंत्र कहते हैं। फिर उस पात्रको चूल्हेपर रखके नीचे प्रथम हलकी फिर मध्यम और अन्तमें तेज इस प्रकार बारह प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब शीशीको बाहर निकाल युक्तिसे फोडके उसके मुखपर जो गन्धक लगी हुई है, उसको दूर करके नीचे पारेकी भस्म जो रहती है उसको निकालके कायम लावे ॥

पारदभस्म करनेका दूसरा प्रकार।

अपामार्गस्यबीजानांमूषायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ ३४ ॥ तत्संपुटे न्यसेत्सूतंमलयूदुग्धमिश्रितम् ॥ द्रोणपुष्पीप्रसूतानि विडंगान्यरिमेदकः ॥३५॥ एतच्चूर्णमधोर्ध्वंचदत्त्वामुद्राप्रदीयताम्॥ तंगोलंसन्धयेत्सम्यङ्मृन्मूषासम्पुटेसुधीः ॥ ३६ ॥ मुद्रां दत्त्वाशोषयित्वाततोगजपुटेपचेत् ॥ एवमेकपुटेनैवजायते भस्मसूतकम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—ओंगा (चिरचिटा) के बीजोंको बारीक पीसके दो मूष बनावे। फिर द्रोणपु (गोमा) के फूल वायविडंग और खैरकी छाल इन औषधोंका चूर्ण करके आधा चूर्ण ए मूषमें भरे। उसके ऊपर पारा रखके उस पारेके ऊपर कठूमरका दूध भरके ऊपर आधे चूर्ण रख देवे। फिर दूसरी मूषको उस पहली मूषपर रखके सन्धिको लेप कर अच्छी तरह बन्द क देवे। फिर गोला बनाय मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके उसपर भी कपडमिट्टी करके आरने उ लेके गजपुटमें फूँक देवे तो एकही पुट करके पारदकी भस्म होवे ॥

तीसरा प्रकार ।

काकोदुम्बरिकादुग्धैरसंकिञ्चिद्विमर्दयेत् ॥ तद्दुग्धघृष्टहिङ्गो-
श्चमूषायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥ क्षिप्त्वातत्संपुटेसूतंतत्र
मुद्रांप्रदापयेत्॥धृत्वातंगोलकंप्राज्ञोमृन्मूषासंपुटेऽधिके॥३९॥
पचेन्मृदुपुटेनैवसूतकोयातिभस्मताम् ॥

अर्थ—कठूमरके दूधमें पारेको थोडी देर खरल करे फिर कठूमरके दूधमें हींगको खरल करके दो मूष बनावे । एक मूषमें पारेको रखके दूसरी मूषसे उसका मुख बन्द करके अच्छे प्रकार संधियोंको बन्द कर देवे । फिर ऊपरसे पोतकर गोला बनायले इस गोलेको मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी हलकीसी अग्निमें रखके फूँक देवे तो पारेकी भस्म होय ॥

चौथा प्रकार ।

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकन्दगर्भितः ॥ ४० ॥
मृन्मूषासंपुटेपक्त्वासूतोयात्येवभस्मताम् ॥

अर्थ—नागरवेलके पानोंके रसमें पारेको खरल कर ककोडेके कन्दमें पारेको रखके उसकेही टुकडेसे बन्द करके संधि मिलायके कपडमिट्टी करे । फिर उसको धूपमें सुखाय मिट्टीके सराव-संपुटमें रख उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंमें रखके हलकी अग्नि देवे तो पारेकी अवश्य भस्म होय, इसको कार्यमें लावे ॥

ज्वरांकुशो रसः ।

खण्डितंमृगशृंगंचज्वालामुख्यारसैः समम् ॥ ४१ ॥ रुद्ध्वाभां-
डेपचेच्चुल्ल्यांयामयुग्मंततोनयेत् ॥ अष्टांशंत्रिकटुंदद्यान्निष्क-
मात्रंचभक्षयेत् ॥ ४२ ॥ नागवल्ल्यारसैः सार्धंवातपित्तज्वरा-
पहम् ॥ अयंज्वरांकुशोनामरसः सर्वज्वरापहः ॥ ४३ ॥

अर्थ—हारिणके सींगके बारीक टुकडे करके पात्रमें रख उसमें ज्वालामुखीका रस डालके उसका मुखपर सराव ढकके कपडमिट्टी करे । उसको चूल्हेपर रखके नीचे दो प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब उन टुकडोंकी भस्मको बाहर निकालके उस भस्मका आठवां भाग सोंठ मिरच और पीपल इनका चूर्ण करके उस भस्ममें मिलाय दे । फिर इसमेंसे ४ मासेके अनुमान पानके रसमें मिलायके पीवे । इसको ज्वरांकुश कहते हैं । यह संपूर्ण ज्वरोंको दूर करे ॥

ज्वरारिरस ।

पारदंरसकंतालंतुत्थंटंकणगन्धके ॥ सर्वमेतत्समंशुद्धंकारवेल्ल्यारसैर्दिनम् ॥ ४४ ॥ मर्दयेल्लेपयेत्तेनताम्रपात्रोदरांभिषक् ॥ अंगुल्यर्धप्रमाणेनततोरुद्ध्वाचतन्मुखम् ॥ ४५ ॥ पचेत्तंवालुकायंत्रेक्षिप्त्वाधान्यानितन्मुखे ॥ यदास्फुटन्ति धान्यानितदासिद्धंविनिर्दिशेत् ॥४६॥ ततोनयेत्स्वांगशीतंताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ रसंज्वरारिनामानंविचूर्ण्यमरिचैः समम् ॥ ४७ ॥ माषैकंपर्णखंडेनभक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥ त्रिदिनैर्विषमंतीव्रमेकाह्निद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—१ पारा, २ खपरिया, ३ हरताल, ४ लीलाथोथा, ५ सुहागा और ६ गन्धक इन छ औषधोंको शोधकर समान भाग लेवे । सबको खरलमें डाल करेलेके पत्तोंके रससे १ दिन खर करे । फिर तांबेकी डिब्बीमें अर्द्ध अंगुल लेप करके उसपर ढकना देकर उसे वालुकायन्त्र डालके चूल्हेपर रखके नीचे अग्नि जलावे और उस पात्रके मुखपर धान रख देवे । जब धा भुनके खील हो जावे तब जाने कि औषध सिद्ध हो गई । फिर अग्निको बंद करे । जब शीत हो जावे तब बाहर काढके उस डिब्बीसे औषधको निकाल लेवे, इसको ज्वरारिरस कहते हैं। फि इसके समान काली मिरच मिलाय बारीक पीस लेवे । इसमेंसे १ मासे पानमें रखके खाय त यह ज्वरारिरस ऐकाहिक[1], द्वयाहिक[2], त्र्याहिक[3] और चातुर्थिक[4], विषमज्वर दारुणभी दूर होवे।

शीतज्वरारिरस ।

तालकंतुत्थकंताम्रंरसंगंधंमनःशिलाम् ॥ कर्षंकर्षंप्रयोक्तव्यंमर्दयेत्त्रिफलांबुभिः ॥ ४९ ॥ गोलंन्यसेत्संपुटकेपुटंदद्यात्प्रयत्नतः ॥ ततोनीत्वार्कदुग्धेनवज्रीदुग्धेनसप्तधा ॥ ५० ॥ क्वाथेनदंत्याश्यामायाभावयेत्सप्तधापुनः ॥ माषमात्रंरसंदिव्यंपञ्चाशन्मरिचैर्युतम् ॥ ५१ ॥ गुडगद्याणकंचैवतुलसीदलयुग्मकम् ॥ भक्षयेत्त्रिदिनंशक्त्याशीतारिर्दुर्लभः परः ॥ ५२ ॥ पथ्यंदुग्धौदनंदेयं

---

[1] दिनरात्रिमें एक वार आवे । [2] दिनरात्रिमें दो वार आवे । [3] तीसरे दिन आवे जिस तिजारी कहते हैं । [4] जो चतुर्थदिन आवे उसको चौथैय्या कहते हैं ।

विषमंशीतपूर्वकम् ॥ दाहपूर्वंहरत्याशुतृतीयकचतुर्थकौ ॥ ॥ ५३ ॥ द्व्याहिकंसंततंचैववैवर्ण्यंचनियच्छति ॥

अर्थ–१ हरताल, २ लीलाथोथा, ३ ताम्रभस्म, ४ पारा, ५ गंधक, ६ मैनसिल ये छः औषधि एक एक कर्ष लेय । सबको त्रिफलेके काढेमें खरल कर गोला बनाय मिट्टीके सरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी करके धूपमें सुखायले। फिर इसको आरनेउपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। जब शीतल हो जाय तब बाहर निकाल लेवे । फिर खरलमें डालके आकके दूधकी सात पुट देवें तथा थूहरके दूधकी सात पुट देय । एवं दंतीके काढेकी सात पुट और निसोथके काढेकी सात पुट देकर मासे मासेकी गोली बनावे । पचास मिरच, गुड छः मासे और तुलसीके पत्ते दो इन सबको एकत्र करके उसमें एक एक गोली बलाबल विचारके तीन दिन सेवन करे और पथ्यमें दूध भात खानेको देय तो शीतपूर्वक विषमज्वर, दाहपूर्वक ज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक और दिन रात्रमें दो वार आनेवाला द्व्याहिक ज्वर तथा देहमें एकसा रहनेवाला ज्वर और विलक्षण ज्वर ये सब दूर हों ॥

ज्वरघ्नी गुटिका ।

भागेकः स्याद्रसाच्छुद्धादेलायाः पिप्पलीशिवा ॥ ५४ ॥ आकारकरभोगंधः कटुतैलेनशोधितः ॥ फलानिचेंद्रवारुण्याश्चतुर्भागमिताह्यमी ॥ ५५ ॥ एकत्रमर्दयेच्चूर्णमिंद्रवारुणिकारसे ॥ माषोन्मितांगुटींकृत्वादद्यात्सर्वज्वरेबुधः ॥ ५६ ॥ छिन्नारसानुपानेनज्वरघ्नीगुटिकामता ॥

अर्थ–शुद्ध किया हुआ पारा एक भाग और १ एलुआ, २ पीपल, ३ जंगीहरड, ४ अकरकरा, ५ सरसोंक तेलमें शोधी हुई गंधक और ६ इन्द्रायनके फल ये छः औषध चार २ भाग लेवे । सबका चूर्ण करके पारा समेत खरलमें डालके इन्द्रायनके फलके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे । एक गोली गिलोयके रससे सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर होंय ॥

लोकनाथरस क्षयादिरोगोंपर ।

शुद्धोबुभुक्षितः सूतोभागद्वयमितोभवेत् ॥५७॥ तथागंधस्यभागौद्वौकुर्यात्कज्जलिकांतयोः ॥ सूताच्चतुर्गुणेष्वेवकपर्देषुवि-

---

[१] पारा और गंधक इनको प्रथम खरल कर पश्चात् उसमें चूर्ण मिलाय गोली बनायले ।

निक्षिपेत् ॥ ५८ ॥ भागैकंटंकणंदत्त्वागोक्षीरेणविमर्दयेत् ॥
तथाशंखस्यखंडानांभागानष्टौप्रकल्पयेत् ॥५९॥ क्षिपेत्सर्वंपुटस्यांतश्चूर्णलिप्तशरावयोः ॥
गर्तेहस्तोन्मितेधृत्वापचेद्गजपुटेन
च ॥ ६० ॥ स्वांगशीतंसमुद्धृत्यपिष्ट्वातत्सर्वमेकतः ॥ षड्गुंजासंमितंचूर्णमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ ६१ ॥ घृतेनवातजेदद्यान्नवनीतेनपित्तजे ॥ क्षौद्रेणश्लेष्मजेदद्यादतीसारेक्षयेतथा ॥६२॥
अरुचौग्रहणीरोगेकार्श्येमंदानलेतथा ॥ कासेश्वासेषुगुल्मेषुलोकनाथोरसोहितः ॥ ६३ ॥ तस्योपरिघृतान्नंचभुंजीतकवलत्रयम् ॥ मंचेक्षणैकमुत्तानः शयीतानुपधानके ॥६४॥ अनम्लमन्नंसघृतंभुंजीतमधुरंदधि ॥ प्रायेणजांगलंमांसंप्रदेयंघृतपाचितम् ॥६५॥ सदुग्धभक्तंदद्याच्चजातेऽग्नौसांध्यभोजने ॥ सघृतान्मुद्गवटकान्व्यंजनेष्वेवचारयेत् ॥ ६६ ॥ तिलामलककल्केन
स्नापयेत्सर्पिषाथवा ॥ अभ्यंजयेत्सर्पिषाचस्नानंकोष्णोदकेन च
॥ ६७ ॥ क्वचित्तैलंनगृह्णीयान्नबिल्वंकारवेल्लकम् ॥ वार्ताकं
शफरींचिंचांत्यजेद्व्यायाममैथुनम् ॥ ६८ ॥ मद्यंसंधानकंहिंगुशुंठीमाषान्मसूरकान् ॥ कूष्मांडंराजिकांकोपंकांजिकंचैववर्जयेत् ॥ ६९ ॥ त्यजेद्युक्तानिद्रांचकांस्यपात्रेचभोजनम् ॥
ककारादियुतंसर्वंत्यजेच्छाकफलादिकम् ॥ ७० ॥ पथ्योऽयंलोकनाथस्तुशुभनक्षत्रवासरे ॥ पूर्णातिथौशुक्लपक्षेजातेचंद्रबलेतथा ॥ ७१ ॥ पूजयित्वालोकनाथंकुमारींभोजयेत्ततः ॥
दानंदद्याद्द्विघटिकामध्येग्राह्योरसोत्तमः ॥ ७२ ॥ रसात्संजायतेतापस्तदाशर्करयायुतम् ॥ सत्त्वंगुडूच्यागृह्णीयाद्वंशरोचनयायुतम् ॥ ७३ ॥ खर्जूरंदाडिमंद्राक्षामिक्षुखंडानिचारयेत् ॥ अरुचौनिस्तुषंधान्यंघृतभृष्टंसशर्करम् ॥ ७४ ॥
दद्यात्तथाज्वरेधान्यंगुडूचीक्काथमाहरेत् ॥ उशीरवास-

कक्काथं दद्यात्समधुशर्करम् ॥ ७५ ॥ रक्तपित्तेकफेश्वासेकासेचस्वरसंक्षये ॥ अग्निभृष्टजयाचूर्णंमधुनानिशिदीयते ॥ ७६ ॥ निद्रानाशेऽतिसारेचग्रहण्यांमंदपावके ॥ सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्णमुष्णजलैःपिबेत् ॥ ७७ ॥ शूलेऽजीर्णेतथाकृष्णामधुयुक्ताज्वरेहिता ॥ प्लीहोदरेवातरक्तेछर्द्यांचैवगुदांकुरे ॥ ७८ ॥ नासिकादिषुरक्तेषुरसंदाडिमपुष्पजम् ॥ दूर्वायाः स्वरसंनस्येप्रदद्याच्छर्करायुतम् ॥ ७९ ॥ कोलमज्जाकणाबर्हिपक्षभस्मसशर्करम् ॥ मधुनालेहयेच्छर्दिहिक्काकोपस्यशांतये ॥ ८० ॥ विधिरेषप्रयोज्यस्तुसर्वस्मिन्पोटलीरसे ॥ मृगांकेहेमगर्भेचमौक्तिकाख्येरसेषुच ॥ ८१ ॥ इत्ययंलोकनाथाख्योरसःसर्वरुजोजयेत् ॥

अर्थ—शुद्ध और बुभुक्षित ऐसा पारा दो भाग तथा शुद्ध की हुई गंधक दो भाग इन दोनोंकी एक जगह कजली करके पारेसे चौगुनी कौडियोंमें उस कजलीको भरे । फिर सुहागा एक भाग लेकर गौके दूधमें खरल कर उससे कौडियोंके मुखको मूँद देवे । पश्चात् शंखके टुकडे आठ भाग लेकर मिट्टीके दो शरावे लेकर एकमें चूना पोतकर उसमें शंखके टुकडे आधे धरे और उनके ऊपर इन कौडियोंको रक्खे । फिर बाकी रहे हुए आधे शंखके टुकडोंको रख देवे । फिर इसके ऊपर दूसरा शरावा ढकके कपडमिट्टी कर एक हाथ गड्ढा खोदके आरने उपलोंके गजपुटमें रखके अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल उस शरावमेंसे औषधोंको निकाल लेवे । फिर इसको खरल करके धर रक्खे । इसे लोकनाथरस कहते हैं । यह लोकनाथरस छः रत्ती उनतीस काली मिरचके चूर्णमें मिलायके जिसके बादीका रोग होय उसको घीके साथ देवे । पित्तरोग होय तो मक्खनके साथ देवे, कफरोग होय तो सहतमें देवे, और अतिसार, क्षय, अरुचि, संग्रहणी, कृशता, मंदाग्नि, खाँसी, श्वास और गोलेका रोग ये सब दूर होनेमें यह लोकनाथ रस परम प्रशस्त है । इसकी मात्रा सेवन करके इसके ऊपर घी और भातके तीन ग्रास देने चाहिये । फिर शय्यापर विना बिछौनेके एक क्षणमात्र सीधा लेटे और खट्टे पदार्थोंको त्यागके घृतके साथ भोजन करे । उत्तम मीठा दही भोजनमें सेवन करे । जंगली जीवोंमें हरिणादिकोंका

---

१ गंधकादिकोंका जारण करके सुवर्णादि धातु असनेके विषयमें योग्य हुआ जो पारा उसको बुभुक्षित पारा कहते हैं ।

मांस घीमें तलके खाय । सन्ध्याके समय भूँख लगे तो दूधभात खाय तथा मूँगके बडे घीमें तलके खाय । तिल और आमलोंका कल्क कर देहमें मालिश करे अथवा घीकी मालिश करके स्नान करे । स्नानके सिवाय अंगमें लगाना होय तो घीकाही मालिश करे । स्नानका जल कुछ २ गरम होना चाहिये । बेलफल, करेले, बैंगन, छोटी मछली, इमली, श्रम, मैथुन, मद्य, संधान (सधाने), हींग, सोंठ, उडद, मसूर, पेढा, राई, काँजी और कोप इनको लोकनाथ रसका सेवन करनेवाला त्याग देवे, दिनमें न सोवे । काँसेके पात्रमें भोजन न करे । ककार जिनके आदिमें है ऐसे शाक (जैसे करेला ककडी आदि) को तथा फलोंको त्याग देय । इस प्रकार लोकनाथरसका पथ्य कहा है । उत्तम दिन उत्तम वार पूर्णा तिथि (पंचमी दशमी और पूर्णिमा) शुक्र पक्ष तथा उत्तम चंद्रमाका बल विचारके लोकनाथ रसका पूजन कर फिर कुमारी (कन्याओं) को भोजन कराय तथा यथाशक्ति सुवर्णादिका दान देकर इस रसका सेवन करे । इस रसके सेवन करनेसे दो घडी देहमें संताप होता है, उसके शांति करनेको मिश्री गिलोयका सत्त और वंशलोचन इन तीनोंको एकत्र करके सेवन करे तो संताप दूर होवे । खजूर (छुहारे) विलायती अनार दाख (अँगूर) और ईखके टुकडे ये पदार्थ थोडे २ खाय तो इसका संताप और अरुचि दूर हो । धनियेको कूट उसके तुषोंको दूर करके घीमें भूनके उसमें मिश्री मिलायके इसके साथ लोकनाथरसका भक्षण करे तो अरुचि दूर होय । धनिया और गिलोय इनका काढा करके उसमें इस लोकनाथरसको मिलायके पीवे तो ज्वर दूर होवे । नेत्रवाला और अडूसा इन दोनोंका काढा करके सहत और मिश्री मिलाय इसके साथ लोकनाथरस खाय तो रक्तपित्त कफ श्वास खांसी स्वरभंग ये रोग दूर होवें । थोडी भाँगको भून चूर्ण कर उसमें इस रसको मिलाय इसको सहतमें मिलाय रात्रिके समय सेवन करे तो गई हुई निद्रा आवे, अतिसार और संग्रहणी ये रोग दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त होय । कालानमक जंगी हरड और पीपल इन औषधोंका चूर्ण करके इसमें लोकनाथरस मिलायके गरम पानीसे सेवन करे तो शूल और अजीर्ण रोग दूर हों । सहत और पीपलके साथ लोकनाथरस सेवन करे तो पेटमें बाँई तरफ फियाका रोग होता है वह तथा वातरक्त, वमन, मूलव्याधि और नाकके रास्ते रुधिरका गिरना ये संपूर्ण रोग दूर होंय । दूबके रसमें मिश्री मिलायके लोकनाथरस डाल नाकमें नस्य देवे तो नाकसे रुधिरका गिरना बँद होय । बेरकी गुठली पीपल और मोरपाँखकी भस्म इन तीन औषधोंको एकत्र करके उसमें मिश्री और सहत मिलाय लोकनाथरसको एकत्र कर सेवन करे तो ओकारी तथा हिचकी ये दूर होवें । इस प्रमाण संपूर्ण पोटलीरस है उनमें और मृगांक रस हेमगर्भ रस तथा मौक्तिकाख्य रसायन इनमेंभी वही

विधि करनी चाहिये । इस प्रकार लोकनाथरस कहा है । यह लोकनाथरस संपूर्ण रोगोंको दूर करता है ॥

लघुलोकनाथरस क्षयपर ।–

वराटभस्ममंडूरंचूर्णयित्वाघृतेपचेत् ॥ ८२ ॥ तत्सममंमारिचं
चूर्णनागवल्ल्याविभावितम् ॥ तच्चूर्णमधुनालेह्यमथवानवनीतकैः
॥ ८३ ॥ माषमात्रंक्षयंहंतियामेयामेचभक्षितम् ॥
लोकनाथरसोह्येषमंडलाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ८४ ॥

अर्थ–कौडियोंकी भस्म एक भाग, मंडूर एक भाग, काली मिरच दो भाग ले इन तीनों औषधोंको एकत्र करके घीमें खरल करे । जब घी करडा हो जावे तब नागवेलके पानोंके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे । इसको लघु लोकनाथरस कहते हैं । इसे सहतके साथ अथवा मक्खनके साथ एक एक प्रहरके अंतरसे खाय तो सामान्य क्षयरोग दूर हो । इस प्रकार १ मंडल पर्यंत सेवन करे तो राजयक्ष्माकोभी दूर करता है ॥

मृगांकपोटलीरस क्षयादिरोगोंपर ।

भूर्जवत्तनुपत्राणिहेम्नः सूक्ष्माणिकारयेत् ॥ तुल्यानितानि
सूतेनखल्वेक्षिप्त्वाविमर्दयेत् ॥ ८५ ॥ कांचनाररसेनैवज्वालमुख्यारसेनवा
॥ लांगल्यावारसैस्तावद्यावद्भवतिपिष्टिका
॥ ८६ ॥ ततोहेम्नश्चतुर्थांशंटंकणंतत्रानिक्षिपेत् ॥ पिष्टमौक्तिकचूर्णंचहेमद्विगुणमावपेत्
॥ ८७ ॥ तेषुसर्वसमंगंधंक्षिप्त्वाचैकत्रमर्दयेत्
॥ तेषांकृत्वाततोगोलंवासोभिःपरिवेष्टयेत्
॥ ८८ ॥ पश्चान्मृदावेष्टयित्वाशोषयित्वाचधारयेत् ॥ शरावसंपुटस्यांतेतत्रमुद्रांप्रदापयेत्
॥ ८९ ॥ लवणापूरितेभांडेधारयेत्तंचसंपुटम्
॥ मुद्रांदत्त्वाशोषयित्वाबहुभिर्गोमयैःपुटेत्
॥ ९० ॥ ततःशीते समाहृत्यगंधंसूतसमंक्षिपेत् ॥ घृष्ट्वाच
पूर्ववत्खल्वेपुटेद्गजपुटेनच ॥ ९१ ॥ स्वांगशीतंततोनीत्वागुं-

---

१ मंडल चालीस दिवसका होता है ।

जायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ अष्टाभिर्मरिचैर्युक्तःकृष्णात्रययुतोऽथवा
॥ ९२ ॥ विलोक्यदेयो दोषादीनेकैकारसरक्तिका ॥ सर्पिषा
मधुनावापिदद्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥ ९३ ॥ लोकनाथसमंपथ्यं
कुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः ॥ श्लेष्माणंग्रहणींकासंश्वासंक्षयमरो-
चकम् ॥ ९४ ॥ मृगांकोऽयंरसोहन्यात्कृशत्वंबलहीनताम् ॥

अर्थ-सोनेके भोजपत्रके समान पतले पत्र करके उसके समानभाग शुद्ध पारा लेकर दोनोंको एक जगह कचनारके रससे अथवा ज्वालामुखीके रससे जबतक मिलकर पिट्ठीके समान न होवें तबतक खरल करे । पश्चात् सोनेका चतुर्थांश सुहागा तथा सोनेसे दूना मोतियोंका चूरा और सबकी बराबर गंधक ले सबको एक जगह खरल करके एक गोला बनावे । उसके चारोंतरफ कपडा लपेटकर ऊपरसे मिट्टी लहेस देवे । फिर इसको धूपमें सुखायले । और मिट्टीके दो सरावे ले एकमें इस गोलेको रखके दूसरा उसके मुखपर रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे । फिर एक हाँडी लेवे उसको पिसे हुए नमकसे आधी भरके वीचमें इस संपुटको रखके उसको नमकसेही फिर भरके बंद कर देवे और उसके मुखको घरियासे बंद करके मुखपरभी कपडमिट्टी कर देवे । इसको गजपुटकी अग्निसे कुछ अधिक अग्नि आरने उपलोंकी देवे । जब स्वांग शीतल होजावे तब बाहर निकाल औषधको खरलमें डालके फिर पारेके समान गंधक लेके कचनार अथवा ज्वालामुखीके रसमें खरल करे । पूर्वोक्त विधिसे गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब निकास लेय । इस रसको मृगांकपोटलीरस कहते हैं । यह पोटली रस दो रत्ती प्रमाण आठ मिरचोंके साथ अथवा तीन पीपलोंके साथ देवे । दोषोंका तारतम्य देखकर एक रत्ती देय । दोषोंकी अपेक्षानुसार घी और सहतसे देवे । इस रसका सेवन करने वाला प्राणी अंतःकरणको स्वस्थ करके पवित्र हो लोकनाथ रसके समान पथ्य करे । इस प्रकार आचरण करनेसे इस रसायनसे कफके रोग, संग्रहणी, खाँसी, श्वास, क्षयरोग, अरुचि, शरीरकी कृशता और बलहानि ये संपूर्ण रोग दूर होवें ॥

हेमगर्भपोटलीरस कफक्षयादिकोंपर ।

सूतात्पादप्रमाणेनहेम्नः पिष्टंप्रकल्पयेत् ॥ ९५ ॥ तयोःस्याद्द्वि-
गुणोगंधोमर्दयेत्कांचनारिणा ॥ कृत्वागोलंक्षिपेन्मूषासंपुटेमुद्र-
येत्ततः ॥ ९६ ॥ पचेद्भूधरयंत्रेणवासरात्रितयंबुधः ॥ ततउद्धृ-
त्यतत्सर्वंदद्याद्गंधंचतत्समम् ॥ ९७ ॥ मर्दयेच्चार्द्रकरसैश्चित्रकं
स्वरसेनच ॥ स्थूलपीतवराटांश्चपूरयेत्तेनयुक्तितः ॥ ९८ ॥

एतस्मादौषधात्कुर्यादष्टमांशेनटंकणम् ॥ टंकणार्धंविषंदत्त्वापिष्ट्वासेहुंडदुग्धकैः ॥ ९९॥ मुद्रयेत्तेनकल्केनवराटानांमुखानि च ॥ भांडेचूर्णप्रलिप्तेऽथधृत्वामुद्रांप्रदापयेत् ॥ १०० ॥ गर्तेहस्तोन्मिते धृत्वापुटेद्गजपुटेनच ॥ स्वांगशीतंरसंज्ञात्वाप्रदद्याल्लोकनाथवत् ॥ १०१ ॥ पथ्यंमृगांकवज्ज्ञेयंत्रिदिनंलवणंत्यजेत् ॥ यदाच्छर्दिर्भवेत्तस्यदद्याच्छिन्नाशृतंतदा ॥ १०२ ॥ मधुयुक्तंतथाश्लेष्मकोपेदद्याद्गुडार्द्रकम् ॥ विरेकेभर्जिताभंगा प्रदेयादधिसंयुता ॥ १०३ ॥ जयेत्कासंक्षयंश्वासंग्रहणीमरुचिं तथा ॥ अग्निंचकुरुतेदीप्तंकफवातांनियच्छति ॥ १०४ ॥ हेमगर्भः परोज्ञेयोरसः पोटलिकाभिधः ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग ले उसका चतुर्थांश खरल किया हुआ सुवर्णका चूरा अथवा सोनेके वर्क लेवे । एवं पारे और सुवर्ण दोनोंसे दूनी शुद्ध करी हुई गंधक लेवे । तीनोंको कचनारके रसमें खरल कर उसका गोला करके मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर देवे । फिर एक हाथका गड्ढा खोद उसमें दूसरा गड्ढा छोटासा खोदके उसमें पूर्वोक्त शरावसंपुटको रखके ऊपर मिट्टी बिछायके दाब देवे । फिर उसके चारों तरफ आरने उपलोंके बारीक २ टुकडे डालके तीन अग्नि देवे (इस क्रियाको भूधरयंत्र कहते हैं) जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल शरावेमेंसे रसको ले समानभाग गंधक मिलाय दोनोंको अदरखके रसमें खरल करके फिर चीतेकी रसमें खरल करे । पश्चात् बडी २ पीली कौडी लायके उनमें इस घुटीहुई दवाईको भरदेवे । फिर सब औषधोंका आठवाँ भाग सुहागा और सुहागेका आधा भाग विष ले दोनोंको थूहरके दूधमें खरल करके उन कौडियोंके मुखको बंद कर देवे । फिर एक हाँडीमें चूना लेप कर इन कौडियोंको रख देवे । उस हाँडीके मुखपर दूसरी हाँडी जोडके उसकी संधियोंको कपडमिट्टी करके हाथ भरके गड्ढेमें आरने उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब निकाल लेय । इसको हेमगर्भपोटली रस कहते हैं । हेमगर्भपोटलीरस लोकनाथरसकी विधिसे सेवन करे और मृगांकरसायनके समान पथ्य करे इसमेंभी विशेष पथ्य यह है कि तीन दिन नमकरहित भोजन करे । इस औषधके सेवनसे यदि उलटी आवे तो गिलोयका काढा करके उसमें सहत डालके पीवे तो ओकारियोंका आना दूर होय । कफके प्रकोपमें गुड और अदरखको एकत्र करके सेवन करे तो कफ दूर होय । यदि इस रसके प्रभावसे दस्त होने लगें तो भाँगको थोडी

भूनके दहीमें मिलायके खाय तो दस्तोंका होना दूर होय । इस हेमगर्भपोटली रससे खाँसी, क्षय, श्वास, संग्रहणी और अरुचि ये रोग दूर हों, अग्नि प्रदीप्त होय तथा कफवायुका प्रकोप दूर हो॥

दूसरी विधि ।

रसस्यभागाश्चत्वारस्तावंतः कनकस्यच ॥१०५॥ तयोश्चपिष्टिकांकृत्वागंधोद्वादशभागिकः ॥
कुर्यात्कज्जलिकांतेषांमुक्ताभागाश्चषोडश ॥ १०६ ॥ चतुर्विंशच्चशंखस्याभगैकंटंकणस्य
च ॥ एकत्रमर्दयेत्सर्वंपक्वनिंबूकजैरसैः ॥ १०७ ॥ कृत्वातेषां
ततोगोलंमूषासंपुटकेन्यसेत् ॥ मुद्रांदत्त्वाततोहस्तमात्रेगर्तेच
गोमयैः ॥१०८॥ पुटेद्गजपुटेनैवस्वांगशीतंसमुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वा
गुंजाचतुर्मानंदद्याद्गव्याज्यसंयुतम् ॥ १०९ ॥ एकोनत्रिंशदुन्मानमरिचैः सहदीयताम् ॥
राजतेमृन्मयेपात्रेकाचजेवावलेहयेत् ॥ ११० ॥ लोकनाथसमंपथ्यंकुर्य्याच्चस्वस्थमानसः ॥
कासेश्वासेक्षयेवातेकफे ग्रहणिकागदे ॥ १११ ॥ अतीसारेप्रयोक्तव्यापोटलीहेमगर्भिका ॥

अर्थ—पारा चार भाग तथा सुवर्णका बारीक चूर्ण चार भाग दोनोंको एक जगह उत्तम पिट्ठी होने पर्यंत खरल करे । फिर बारह भाग गंधक लेके खरल कर कजली करे पश्चात् सोलह भाग मोती चौबीस भाग शंख और एक भाग सुहागा लेके पूर्वोक्त कजलीमें मिलाय पके हुए नींबूके रसमें खरल करके उसका गोला बनाय मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे। फिर १ हाथका गहरा और लंबा चौडा गड्ढा खोद उसमें गौके गोबरके उपले भर बीचमें शरावसंपुटको रखके गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमें औषधको ले खरल करके धर रक्खे । इसको हेमगर्भपोटली रस कहते हैं। यह हेमगर्भ चार रत्ती लेकर उनतीस काली मिरचके चूर्णके साथ रूपेकी अथवा मिट्टीके अथवा काँचके प्याले गौका घी डालके स्वस्थचित्त करके पीवे और इसके ऊपर लोकनाथरसायनके समान पथ्य करे तो खाँसी, श्वास, क्षयरोग, कफ, ग्रहणी और अतिसार ये संपूर्ण रोग दूर होवें ॥

महाज्वरांकुश विषमज्वरपर ।

शुद्धसूतोविषंगंधः प्रत्येकंशाणसंमितः ॥११२॥ धूर्तबीजंत्रि-

शाणंस्यात्सर्वेभ्योद्विगुणाभवेत् ॥ हेमाह्वाकारयेदेषांसूक्ष्मचूर्णंप्रयत्नतः ॥ ११३ ॥ देयंजम्बीरमज्जाभिश्चूर्णंगुञ्जाद्वयोन्मितम् ॥ आर्द्रकस्वरसैर्वापिज्वरंहंतित्रिदोषजम् ॥ ११४ ॥ एकाह्निकंव्याह्निकंवात्र्याह्निकंवाचतुर्थकम् ॥ विषमंचज्वरंहन्याद्विख्यातोऽयंज्वरांकुशः ॥ ११५ ॥

अर्थ—शुद्ध पारा तीन मासे, शुद्ध किया हुआ विष तीन मासे, गंधक तीन मासे, धतूरेके बीज नौ मासे और चोक सबसे दूना लेवे । सबको एकत्र कर बारीक चूर्ण करके जंभीरीके रसमें अथवा अदरखके रसमें दो रत्ती देवे तो त्रिदोषज्वर और नित्य आनेवाला, दिनरात्रिमें दो बार आनेवाला, एकतरा, तिजारी और चातुर्थिक ज्वर ये सब दूर हों । यह ज्वरांकुश विषमज्वर दूर करनेमें विख्यात है ॥

आनन्दभैरवरस अतिसारादिकोंपर ।

दरदंवत्सनाभंचमरिचंटंकणंकणा ॥ चूर्णयेत्समभागेनरसोह्यानन्दभैरवः ॥ ११६ ॥ गुञ्जैकंवाद्विगुञ्जंवाबलंज्ञात्वाप्रयोजयेत् ॥ मधुनालेहयेच्चानुकुटजस्यफलंत्वचम् ॥ ११७ ॥ चूर्णितंकर्षमात्रंतुत्रिदोषोत्थातिसारनुत् ॥ दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंगोघृतंतक्रमेवच ॥ ११८ ॥ पिपासायांजलंशीतंविजयाचहितानिशि ॥ आर्द्रकस्वरसेन- निंबूरसेनवा हस्वारवटीकार्याः

अर्थ—१ हींगलू, २ शुद्ध किया हुआ वत्सनाभ विष, ३ काली मिरच, ४ सुहागा और ५ पीपल ये पांच औषध समान भाग लेके एकत्र चूर्ण करे । इसको आनन्दभैरवरस कहते हैं । यह आनन्दभैरव रस इन्द्रजौ और कुडेकी छाल ये दोनों एक २ कर्ष प्रमाण लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णके साथ रोगोंका बलाबल विचारके १ रत्ती प्रमाण अथवा दो रत्ती प्रमाण सहतसे देवे तो त्रिदोषसे प्रगट अतिसारका रोग दूर होवे । पथ्यमें गौका दही और भात, घी भात अथवा छाछ भात देवे । प्यास लगे तो शीतल जल पीवे । रात्रिमें थोडी भांग शुद्ध करके घोटके पीवे तो यह भांग अतिसार रोगपर अति हितकारी होती है ॥

लघुसूचकाभरणरस संनिपातपर ।

विषंपलमितंसूतःशाणिकश्चूर्णयेद्द्वयम् ॥११९॥ तच्चूर्णंसंपुटेक्षिप्त्वाकाचलिप्तशरावयोः ॥ मुद्रांदत्त्वाचसंशोष्य ततश्चुल्ल्यांनिवेशयेत् ॥ १२० ॥ वह्निंशनैःशनैःकुर्यात्प्र-

हरद्वयसंख्यया ॥ ततउद्घाटयेन्मुद्रामुपरिस्थांशरावकात् ॥ ॥ १२१ ॥ संलग्नोयोभवेत्सूतस्तंगृह्णीयाच्छनैःशनैः ॥ वायुस्पर्शोयथानस्यात्तथाकूप्यांनिवेशयेत् ॥ १२२ ॥ यावत्सूच्यामुखेलग्नःकूप्यानिर्यातिभेषजम् ॥ तावन्मात्रोरसो देयोमूर्च्छितेसंनिपातिनि ॥ १२३ ॥ क्षौरेणप्रस्थितेमूर्ध्नितत्रांगुल्या चघर्षयेत् ॥ रक्तभेषजसंपर्कान्मूर्च्छितोपिहिजीवति ॥१२४॥ तथैवसर्पदष्टस्तुमृतावस्थोऽपिजीवति ॥ १२५ ॥ यदातापो भवेत्तस्यमधुरंतत्रदीयते ॥

अर्थ—बच्छनागविष १ पल, शुद्ध किया हुआ पारा २ मासे दोनोंको एकत्र खरल करके चूर्ण करे। फिर काचसे लिपे (काच चढे) हुए दो मट्टीके सकोरे ले उनमें चूर्णको रख दोनोंको मिलाय मुख वन्द कर ऊपर कपडमिट्टी कर देवे। फिर धूपमें सुखायके चूल्हेपर रखके दो प्रहरतक मन्द २ अग्नि देवे तब उसको नीचे उतारके मुद्रा दूर कर ऊपरके शरावेमें लगे हुए पारेको हलके हाथसे अचकेसी युक्तिसे निकाल शीशीमें भरके धर रक्खे। पश्चात् उस शीशीमें सूई डालके जितना रस सूईके अग्रभागमें लगे इतना वाहर निकाले। जिस मनुष्यको सन्निपातके होनेसे मूर्च्छा आयरही हो। उस मनुष्यके मस्तकमें तालुएके स्थानमें उस्तरेसे बालोंको मूँडके फिर उस जगहकी खालको छीलके उस घावमें इस औषधको लगाय उँगलीसे यहांतक मलता रहे कि जबतक वह औषध रुधिरसे न मिले। जब रुधिरमें यह औषध अच्छे प्रकार मिल जावेगी उसी समय उस प्राणीकी मूर्च्छा जाती रहेगी और वह प्राणी होशमें आयजावेगा। उसी प्रकार जिस प्राणीको सांपके काटनेसे मूर्च्छा आगई हो और मरा चाहता हो वह भी इस क्रियाके करनेसे बच जावे। इस उपायके करनेसे देहमें दाह विशेष होता है, उसके दूर करनेको गुलकन्द दाख इत्यादिक मधुर पदार्थ भक्षणको देवे तो दाह शान्त होय ॥

जलचूडामणिरस संनिपातपर ।

सूतभस्मसमंगन्धंगन्धात्पादंमनःशिला ॥ माक्षिकंपिप्पलीव्योषंप्रत्येकंशिलयासमम् ॥ १२६ ॥ चूर्णयेद्भावयेत्पित्तैर्मत्स्यमायूरसंभवैः ॥ सप्तधाभावयेच्छुष्कंदेयंगुञ्जाद्वयंहितम् ॥ १२७ ॥ तालपर्णीरसश्चानुपञ्चकोलशृतोऽथवा ॥ जलचूडोरसोनामसन्निपातंनियच्छति ॥ १२८ ॥ जलयोगश्चकर्त्तव्यस्तेनवीर्यंभवेद्रसे ॥

अर्थ—पारेकी भस्म १ भाग और गंधक १ भाग, गंधकका चतुर्थांश मनशिल, १ सुवर्णमाक्षिककी भस्म, २ पीपल, ३ सोंठ, ४ कालीमिरच और ५ पीपल ये पांच औषध मनशिलके समान ले चूर्ण करे । फिर खरलमें डालके मछलीके कलेजेमें पित्त होता है उसके सात पुट देवे । फिर मोरके पित्तके सात पुट देकर सुखाय लेवे, इसको जलचूडामणिरस कहते हैं । यह जलचूडामणिरस दो रत्तीके अनुमान मूसलीके रसमें अथवा पंचकोलके काढेमें देवे । जब इसकी गरमी होय तब उस रोगीके मस्तकपर शीतल जलका तरडा देवे तो रसमें वीर्य बढे । इस प्रकार करनेसे संनिपात दूर होवे । कोई कहते हैं उस रोगीके पास शीतल जलकी परात रक्खे परन्तु यह बात ठीक नहीं है ॥

पंचवक्ररस सन्निपातपर ।

शुद्धसूतंविषंगन्धंमरिचंटंकणंकणा ॥ १२९ ॥ मर्दयेद्धूर्तजद्रावैर्दिनमेकंतुशोषयेत् ॥ पञ्चवक्रोरसोनामद्विगुंजःसन्निपातहा ॥ १३० ॥ अर्कमूलकषायंतुसत्र्यूषमनुपाययेत् ॥ युक्तं दध्योदनंपथ्यंजलयोगंचकारयेत् ॥ १३१ ॥ रसेनानेनशाम्यन्तिसक्षौद्रेणकफादयः ॥ मध्वार्द्रकरसंचानुपिबेदग्निविवृद्धये ॥ १३२ ॥ यथेष्टंघृतमांसाशीशक्तोभवतिपावकः ॥

अर्थ—१ शुद्ध किया हुआ पारा, २ शुद्ध किया हुआ बच्छनाग विष, ३ गंधक, ४ कालीमिरच, ५ सुहागा, ६ पीपल इन छः औषधोंको धतूरेके रसमें एक दिन खरल कर दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे और इनको धूपमें सुखायले । इसको पंचवक्ररस कहते हैं । इस रसको आककी जडका काढा कर उसमें सोंठ मिरच पीपलका चूर्ण मिलाय उसके साथ देवे और पथ्यमें दही भात देवे । तथा रोगीको जब गरमी होय तब शीतल जलका तरडा देवे तो सन्निपात दूर होय । इस रसको सहतके साथ सेवन करनेसे कफादिक रोग दूर हों, अदरखके रसमें सहत मिलायके सेवन करे तो जठराग्निकी वृद्धि होवे । घी और मांस यथेष्ट भोजन करनेसे पचजावे ॥

उन्मत्तरस सन्निपातपर ।

रसगन्धौसमानांशौधत्तूरफलजैरसैः ॥ १३३ ॥
मर्दयेद्दिनमेकंचततुल्यंत्रिकटुक्षिपेत् ॥
उन्मत्ताख्योरसोनामनस्येस्यात्सन्निपातजित् ॥ १३४ ॥

अर्थ—शुद्ध किया पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, १ सोंठ, २ कालीमिरच, ३ पीपल ये तीन औषधि पारा गंधक दोनोंके समान लेवे । सबका चूर्ण कर धतूरेके फलके रसमें एक दिन खरल

करे फिर सुखायके चूर्ण बनाय धूपमें सुखायले । इसको उन्मत्तरस कहते हैं । जिसको संनिपात होय उसकी नाकमें इसकी नस्य देय तो रोगीका सन्निपात दूर होय ॥

सन्निपातपर अंजन ।

निस्त्वग्जेपालबीजंचदशनिष्कंविचूर्णयेत्॥ मरिचंपिप्पलींसूतं प्रतिनिष्कंविमिश्रयेत् ॥ १३५ ॥ भाव्योजम्बीरजैर्द्रावैःसप्ताहंसंप्रयत्नतः ॥ रसोऽयमंजनेदत्तःसन्निपातंविनाशयेत् ॥१३६॥

अर्थ--छिलके रहित जमालगोटेके बीज १० निष्क लेवे और काली मिरच पीपल और पारा ये औषध निष्कप्रमाण लेवे । इन चारोंको जंबीरीके रसमें सात दिन खरल कर उसकी गोलियां बनावे । संनिपातवाले रोगीके नेत्रमें इस गोलीको जलमें घिसके लगावे तो संनिपात दूर होय ॥

नाराचरस शूलादिरोगोंपर ।

सूतटङ्कणकेतुल्येमरिचंसूततुल्यकम् ॥ गन्धकंपिप्पलींशुंठीं द्वौद्वौभागौविचूर्णयेत् ॥१३७॥ सर्वतुल्यंक्षिपेद्दन्तीबीजंनिस्तुषितंभिषक् ॥ द्विगुंजंरेचनंसिद्धंनाराचोऽयंमहारसः ॥१३८॥ आध्मानंशूलविष्टंभानुदावर्त्तंचनाशयेत् ॥ निंबू स्वरसेन वटी गुंजाप्रमाणकार्या.

अर्थ--पारा सुहागा और काली मिरच ये समभाग ले गन्धक पीपल और सोंठ ये तीन औषध पारेसे दूनी ले तथा शुद्ध किया हुआ जमालगोटा सबकी बराबर लेय सबको एकत्र कर चूर्ण कर लेवे । इसको नाराचरस कहते हैं । यह रस दस्त होनेके वास्ते २ रत्ती देवे तो दस्त होवे और पेटका फूलना, शूलरोग, मलका अवरोध और वायुकी ऊर्ध्वगति ये सब रोग दूर होंय । इस नाराचरसको गरम जलके साथ वा तुलसीके रसके वा सहत तथा अदरखके रसके साथ देते हैं । और जब दस्त बन्द करने होंय तब शीतल जल पीवे तो दस्त बन्द हो जावें ॥

इच्छाभेदीरस शूलादिकोंपर ।

दरदंटंकणंशुंठीपिप्पलीचेतिकार्षिकाः ॥ १३९ ॥ हेमाह्वापलमात्रास्याद्दन्तीबीजंचतत्समम् ॥ विशोष्यैकत्रसर्वाणिगोदुग्धेनैवपाययेत् ॥ १४० ॥ त्रिगुंजंरेचनंदद्याद्विष्टंभाध्मानरोगिषु ॥

अर्थ--हींगळू, सुहागा, सोंठ और पीपल ये चार औषधि एक एक तोला लेवे और चोक तथा शुद्ध किया हुआ जमालगोटा चार २ तोले लेय । सब औषधोंको कूट

घीस चूर्ण करे। इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं। यह रस दस्त होनेके वास्ते गौके दूधमें तीन रत्ती देय तो दस्त होकर मलका अवरोध तथा पेटका फूलना इत्यादि रोग दूर होते हैं। यह प्राणीको इच्छाके माफिक दस्त करता है इससे इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं॥

वसंतकुसुमाकररस प्रमेहादिकोंपर।

द्वौभागौहेमभूतेश्चगगनंचापितत्समम् ॥ १४१ ॥ लोहभस्मत्र-
योभागाश्चत्वारोरसभस्मतः ॥ वंगभस्मत्रिभागंस्यात्सर्वमेकत्र
मर्दयेत् ॥ १४२ ॥ प्रवालंमौक्तिकंचैवरससात्म्येनदापयेत् ॥
भावनागव्यदुग्धेनरसैर्घृङ्गाटरूषकैः ॥ १४३ ॥ हरिद्रावारिणा
चैवमोचकंदरसेनच ॥ शतपत्ररसेनापिमालत्याःस्वरसेनच
॥ १४४ ॥ पश्चान्मृगमदश्चंद्रस्तुलसीरसभावितः ॥ कुसुमाक-
रइत्येषवसंतपदपूर्वकः ॥ १४५ ॥ गुंजाद्वयंददीतास्यमधुना
सर्वमेहनुत् ॥ सिताचंदनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगजित् ॥ १४६ ॥

अर्थ—सुवर्णकी भस्म २ भाग, अभ्रककी भस्म २ भाग, लोहभस्म ३ भाग, पारेकी भस्म ४ भाग, वंगभस्म ३ भाग, मूँगा और मोतीकी भस्म ४ भाग इनको गौके दूधकी १, अडूसेके पत्तोंके रसकी १, हल्दीके रसकी १, केलेके कंदके रसकी १, गुलाबजलकी १, मालतीकी १, कस्तूरीकी १, भीमसेनी कपूरकी १, तुलसीके रसकी एक एक भावना देकर गोली बनाय सुखाय लेवे, इसको वसन्तकुसुमाकर रस कहते हैं। इसकी दो रत्ती मात्रा सर्व प्रमेहोंपर देवे। मिश्री और सफेद चन्दनके चूरके साथ देनेसे सर्व पित्तके रोग दूर होते हैं। (यह रस शार्ङ्गधरका नहीं है प्रक्षिप्त पाठ है)॥

राजमृगांकरस क्षयरोगपर।

सूतभस्मत्रिभागंस्याद्भागैकंहेममस्मकम् ॥ मृतांभ्रस्य[1]चभा-
गैकंशिलागंधकतालकम् ॥१४७॥ प्रतिभागद्वयंशुद्धमेकीकृ-
त्यविचूर्णयेत् ॥ वराटान्पूरयेत्तेनछागीक्षीरेणटंकणम् ॥१४८॥
पिष्ट्वातेनमुखंरुद्ध्वामृद्भांडेतन्निरोधयेत् ॥ शुष्कंगजपुटेपक्त्वा
चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥ १४९ ॥ रसोराजमृगांकोऽयंचतुर्गुंजः
क्षयापहः ॥ दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ १५० ॥

---

१ मृतताम्रस्य इति पाठान्तरम्।

अर्थ–पारेकी भस्म ३ भाग सुवर्णकी तथा अभ्रककी भस्म एक भाग, १ मनशिल २ गंधक और ३ हरताल ये तीनों शुद्ध की हुई दो दो भाग ले सबको एकत्र खरल कर चूर्ण कर लेवे। फिर बडी २ पीली कौडी ले उनमें इस चूर्णको भरके मुखको बकरीके दूधमें घिसे हुए सुहागेसे बंद कर देवे। फिर उन कौडियोंको हाँडीमें रखके उस हाँडीके मुखपर दूसरी छोटी हाँडी रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंद कर देवे। धूपमें सुखायके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देय जब शीतल हो जाय तब उस संपुटमेंसे रस निकालके धर रक्खे। इसको राजमृगांक कहते हैं। यह राजमृगांक चार रत्ती, दंश पीपलें और उन्तीस काली मिरच इन दोनोंके चूर्णमें मिलाय सहतमें चाटे तो क्षयरोग दूर होवे॥

स्वयमग्निरस क्षयादिकोंपर।

शुद्धंसूतंद्विधागंधंकुर्यात्खल्वेनकज्जलीम् ॥ तयोःसमंतीक्ष्णचूर्णमर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ १५१ ॥ द्वियामांतेकृतंगोलंताम्रपात्रे विनिक्षिपेत् ॥ आच्छाद्यैरंडपत्रेणयामार्धेऽत्युष्णता भवेत् ॥ १५२ ॥ धान्यराशौन्यसेत्पश्चादहोरात्रात्समुद्धरेत् ॥ संचूर्ण्यगालयेद्वस्त्रेसत्यंवारितरंभवेत् ॥ १५३ ॥ भावयेत्कन्यकाद्रावैःसप्तधाभृंगजैस्तथा ॥ काकमाचीकुरंटोत्थद्रवैर्मुण्डचापुनर्नवैः ॥ १५४ ॥ सहदेव्यमृतानीलीनिर्गुंडीचित्रजैस्तथा ॥ सप्तधातुपृथग्द्रावैर्भाव्यंशोष्यंतथातपे ॥ १५५ ॥ सिद्धयोगोह्ययंख्यातःसिद्धानांचमुखागतः ॥ अनुभूतोमयासत्यंसर्वरोगगणापहः ॥ १५६ ॥ स्वर्णादीन्मारयेदेवंचूर्णीकृत्य तुलोहवत् ॥ त्रिफलामधुसंयुक्तःसर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ १५७॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगकैः ॥ नवभागोन्मितैरेतैः समःपूर्वरसो भवेत् ॥ १५८ ॥ संचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रैर्भक्ष्यंनिष्कद्वयंद्वयम् ॥ स्वयमग्निरसोनाम्नाक्षयकासनिकृंतनः ॥१५९॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक दो भाग लेकर दोनोंकी कजली करके फिर इसमें समान भाग पोलाद लोहका चूर्ण मिलायके घीगुवारके रसमें दो प्रहर पर्यन्त खरल करे। फिर इसका गोला बनाय ताम्रके कटोरेमें उस गोलेको रखके उसके ऊपर अंड-

---

१ यदि यह चूर्ण एक वारमें न खाया जाय तो दो तीन वार मिलायके खाय।

के पत्ते ढकके चार घडी पर्यंत धूपमें रख देवे। जब गोला अत्यंत गरम हो जावे तब उसको धानकी राशिमें गाड देवे। एक दिनरात्रिके पश्चात् उसको निकालकर उसको कपडेमें छान लेय और पानीमें डाले तो यह भस्म निश्चय पानीमें तरने लगे। इस भस्मको खरलमें डालके आगे कही हुई औषधोंके रसकी भावना देवे। जैसे--घीगुवार, भाँगरा, मकोय, पियावांसा, मुंडी, पुनर्नवा, सहदेई, गिलोय, नीली, निर्गुण्डी और चित्रक इनके पृथक् २ सात पुट देवे (ऊपर कही हुई औषधोंके रसमें खरल कर धूपमें सुखाय ले यह एक पुट हुई इस प्रकार सात २ सात पुट देवे) तो वह रसायन सिद्ध होय। इसको स्वयमग्निरस कहते हैं। यह रस सर्वत्र प्रसिद्ध बडे २ पुरुषोंने कहा है इस वास्ते मैंने अनुभव करके कहा है। यह स्वयमग्निरस संपूर्ण रोग दूर करनेको त्रिफलेका चूर्ण और सहत इस अनुपानके साथ दो निष्कप्रमाण लेवे तो संपूर्ण रोग दूर होंय। १ सोंठ, २ मिरच, ३ पीपल, ४ हरड, ५ बहेडा, ६ आँवला, ७ इलायची, ८ जायफल और ९ लौंग इन नौ औषधोंको समान भाग ले चूर्ण करे। इस चूर्णके समान स्वयमग्नि रस लेवे। दोनोंको एकत्र कर सहतमें मिलायके दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो क्षयरोग और खाँसीका रोग ये नष्ट होंय। रसायनकी रीतिसे स्वर्णादिक धातुका लोहके समान चूर्ण करके भस्म करे तो उनकी भी भस्म होय॥

सूर्यावर्त्तरस श्वासपर।

सूताधोंगंधकोमद्योंयामैकंकन्यकाद्रवैः॥ द्वयोस्तुल्यंताम्रपत्रं
पूर्वकल्केनलेपयेत्॥ १६०॥ दिनैकंस्थालिकायंत्रेपक्त्वाचादा-
यचूर्णयेत्॥ सूर्यावर्तोरसोह्येषद्विगुंजः श्वासजिद्भवेत्॥ १६१॥

अर्थ—शुद्ध पारा १ भाग और गंधक पारेसे आधी ले दोनोंको एकत्र करके घीगुवारके रससे एक प्रहर खरल कराके कल्क करावे। फिर दोनोंके समान तांबेके पत्र लेकर उनपर इस कल्कका लेप करके उन पत्रोंको मिट्टीके पात्रमें रखके उस पात्रके मुखपर दूसरा पात्र रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंद कर देवे। फिर उसको धूपमें सुखायके चूल्हेपर औंधा रखके एक दिनकी अग्नि देवे। इसको स्थालिकायंत्र कहते हैं। फिर शीतल होनेपर उन पत्रोंको बाहर निकाल खरल करके बारीक चूर्ण कर लेवे। इसको सूर्यावर्त्तरस कहते हैं। यह दो रत्तीके अनुमान श्वासरोगवालेको देय तो उसकी श्वासको दूर करे॥

स्वच्छन्दभैरवरस वातरोगपर।

शुद्धंसूतंमृतंलोहंताप्यंगंधकतालकम्॥ पथ्याग्निमंथनिर्गुंडी
त्र्यूषणंटंकणंविषम्॥ १६२॥ तुल्यांशंमर्दयेत्खल्वेदिनंनिर्गु-

डिकाद्रवैः ॥ मुंडीद्रावैर्दिनैकंतुद्विगुंजंवटकीकृतम् ॥ १६३ ॥
भक्षयेद्वातरोगार्तोनाम्नास्वच्छंदभैरवः ॥ रास्नामृतादेवदारु
शुंठीवातारिजंशृतम् ॥ १६४ ॥ सगुग्गुलुंपिबेत्कोष्णमनुपा-
नसुखावहम् ॥

अर्थ—१ शुद्ध पारा, २ लोहभस्म, ३ स्वर्णमाक्षिककी भस्म, ४ गंधक, ५ हरताल, ६ जंगीहरड, ७ अरनी, ८ निर्गुण्डी, ९ सोंठ, १० काली मिरच, ११ पीपल, १२ सुहागा, १३ शुद्ध बच्छनाग विष ये तेरह औषधि समान भाग लेकर निर्गुण्डीके रसमें एक दिन खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे । इसको स्वच्छंद भैरवरस कहते हैं । यह रस और १ रास्ना, २ गिलोय, ३ देवदारु, ४ सोंठ, ५ अंडकी जड इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके सेवन करे तो वादीका रोग दूर होय ॥

हंसपोटलीरस संग्रहणीपर ।

दग्धान्कपर्दिकान्पिष्ट्वात्र्यूषणंटंकणंविषम् ॥ १६५ ॥
गंधकंशुद्धसूतंचतुल्यंजंबीरजैर्द्रवैः ॥
मर्दयेद्भक्षयेन्माषंमरिचाज्यंलिहेदनु ॥ १६६ ॥
निहंतिग्रहणीरोगंपथ्यंतक्रौदनंहितम् ॥

अर्थ—१ कौडीकी भस्म, २ सोंठ, ३ काली मिरच, ४ पीपल, ५ फूला हुआ सुहागा, ६ शुद्ध बच्छनाग, ७ गंधक और ८ शुद्ध किया हुआ पारा इन आठ औषधोंको कूट पीस जंभीरीके रसमें खरल कर एक एक मासेकी गोली बनावे इसको हंसपोटलीरस कहते हैं । इसको काली मिरचके चूर्णसे सहत मिलायके भक्षण करे । इसपर छांछ और भातका खाना पथ्य है, यह संग्रहणीरोगको दूर करता है ॥

त्रिविक्रमरस पथरीरोगपर ।

मृतंताम्रमजाक्षीरेपाच्यंतुल्येगतद्रवम् ॥ १६७ ॥ तत्ताम्रंशुद्ध-
सूतंचगंधकंचसमंसमम् ॥ निर्गुंडीस्वरसैर्मर्द्यंदिनंतद्गोलकंकृ-
तम् ॥ १६७ ॥ यामैकंवालुकायंत्रेपाच्यंयोज्यंद्विगुंजकम् ॥
बीजपूरस्यमूलंतुसजलंचानुपाययेत् ॥ १६९ ॥ रसस्त्रिविक्र-
मोनाम्नामासैकेनाश्मरीप्रणुत् ॥

अर्थ—ताम्रभस्मके समान बकरीका दूध ले । उसमें तांबेकी भस्मको मिलायके औटायके गाढी करे । यह ताम्रभस्म शुद्ध किया पारा और गंधक ये तीनों औषध समान भाग लेवे

निर्गुंडीके रससे एक दिन खरल कर उसकी गोली करके उसको वालुकायन्त्रमें डालके एक प्रहर अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उस संपुटसे औषधोंको निकाल लेवे । इसको त्रिविक्रम रस कहते हैं । यह रस दो रत्तीके अनुमान बिजोरेकी जडके रसमें अथवा काढा करके उसके साथ सेवन करे तो पथरीका रोग एक महीनेमें दूर होवे ॥

महातालेश्वररस कुष्ठादिकोंपर ।

**तालंताप्यंशिलासूतंशुद्धंसैन्धवटंकणे ॥ १७० ॥ समांशंचूर्ण-
येत्खल्वेसूताद्द्विगुणगन्धकम् ॥ गन्धतुल्यंमृतंताम्रंजम्बीरैर्दिन-
पञ्चकम् ॥ १७१ ॥ मर्द्यंषड्भिःपुटैःपाच्यंभूधरेसंपुटोदरे ॥
पुटेपुटेद्रवैर्मर्द्यंसर्वमेतच्चषट्पलम् ॥ १७२ ॥ द्विपलं मारितंता-
म्रंलोहभस्मचतुष्पलम् ॥ जंबीराम्लेनतत्सर्वंदिनं मर्द्यंपुटेलघु
॥ १७३ ॥ त्रिंशदंशंविषंचास्यक्षिप्त्वासर्वंविचूर्णयेत् ॥ मा-
हिष्याज्येनसंमिश्रंनिष्कार्धंभक्षयेत्सदा ॥ १७४ ॥ मध्वाज्यैः
बाकुचीचूर्णंकर्षमात्रंलिहेदनु ॥ सर्वकुष्ठान्निहन्त्याशुमहाताले-
श्वरोरसः ॥ १७५ ॥**

अर्थ–१ हरताल, २ सुवर्णमाक्षिक, ३ मनशिल, ४ शुद्ध किया हुआ पारा, ५ सैंधानमक और ६ सुहागा ये छः औषधि समान भाग तथा पारेसे दूनी गन्धक लेवे । तथा गन्धकके समान ताम्रभस्म ले सबको खरल कर जंभीरीके रसमें ५ दिन पर्यन्त घोटे । फिर इसका गोला बनाय उसको शरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी करके भूधरयंत्रमें[1] उस सरावसंपुटको धरके आरने उपलोंकी अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब निकाल फिर जंभीरीके रसमें पांच दिन खरल कर पूर्वरीतिसे भूधरयंत्रमें धरके अग्नि देवे । इस प्रकार छः बार भूधरयंत्रमें डालके अग्नि देय तो भस्म होय । इस प्रकार की हुई भस्म छः पल, ताम्रभस्म दो पल और लोहभस्म चार पल इन तीनों भस्मोंको एकत्र खरल कर जंभीरीके रसमें एक दिन खरल करे । मिट्टीके शरावसंपुटमें डालके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी[2] हलेकी अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके इस भस्मका तीसवां हिस्सा शुद्ध किया वच्छनाग विष बारीक करके मिलावे । इसको महातालेश्वर रस कहते हैं । यह महातालेश्वर रस अर्द्धनिष्कप्रमाण लेके

---

[1] भूधरयंत्रका स्वरूप प्रथम हेमगर्भपोटलीमें कह आये हैं ।

[2] एक बिलस्त लंबा चौडा गड्ढा खोद उसमें आरने उपले भरके हलकी अग्नि देवे इसको कुक्कटपुट कहते हैं ।

भसके घीके साथ सेवन करे और उसी समय घी और सहत दोनों विषम भाग ले एकत्र करे । उसमें बाकुचीका चूर्ण एक कर्ष मिलायके इसके साथ सेवन करे तो यह संपूर्ण कुष्ठें को तत्काल दूर करे ॥

कुष्ठकुठाररस कुष्ठरोगपर ।

सूतभस्मसमोगन्धोमृतायस्ताम्रगुग्गुलू ॥
त्रिफलाचमहानिंबश्चित्रकश्चशिलाजतु ॥ १७६ ॥
इत्येतच्चूर्णितंकुर्यात्प्रत्येकंशाणषोडशम् ॥
चतुःषष्टिकरंजस्यबीजचूर्णप्रकल्पयेत् ॥ १७७ ॥
चतुःषष्टिमृतंचाभ्रंमध्वाज्याभ्यांविलोडयेत् ॥
स्निग्धभांडेघृतंखादेद्द्विनिष्कंसर्वकुष्ठनुत् ॥ १७८ ॥
रसःकुष्ठकुठारोऽयंगलत्कुष्ठनिवारणः ॥

अर्थ-१ पारेकी भस्म, २ गन्धक, ३ लोहभस्म, ४ ताम्रभस्म, ५ गूगल, ६ हरड, ७ बहेडा, ८ आंवला, ९ बकायनकी छाल, १० चीतेकी छाल और ११ शिलाजीत ये ग्यारह औषध प्रत्येक सोलह २ शाण लेवे तथा कंजाके बीज ६४ शाण लेय सबका बारीक चूर्ण करके अभ्रक भस्म ६४ शाग लेके उस चूर्णमें मिलाय देवे । इसको कुष्ठकुठाररस कहते हैं । यह रस दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो संपूर्ण कुष्ठ और गलत्कुष्ठ ये दूर होंय ॥

उदयादित्यरस कुष्ठपर ।

शुद्धंसूतद्विधागन्धंमर्द्यंकन्याद्रवैर्दिनम् ॥ १७९ ॥ तद्गोलंपिठरंमध्ये
ताम्रपात्रेणरोधयेत् ॥ सूतकाद्द्विगुणेनैवशुद्धेनाधोमुखेन
च ॥१८०॥ पार्श्वेभस्मानिधायाथपात्रोर्ध्वंगोमयंजलम् ॥
किञ्चित्प्रदातव्यमग्निंचुल्ल्यांयामद्वयंपचेत् ॥ १८१ ॥ चण्डाग्निना
तदुद्धृत्यस्वांगशीतंविचूर्णयेत् ॥ काष्ठोदुंबरिकावह्नित्रिफला
राजवृक्षकम् ॥ १८२ ॥ विडङ्गंवाकुचीबीजंक्राथयेत्तेन
भावयेत् ॥ दिनैकमुदयादित्योरसोदेयोद्विगुञ्जकः ॥ १८३ ॥
विचर्चिकांदद्रुकुष्ठंवातरक्तंचनाशयेत् ॥ अनुपानंचकर्तव्यंबाकुचीफल
चूर्णकम् ॥ १८४ ॥ खदिरस्यकषायेणसमेनपरिपाचितम् ॥
त्रिशाणंतद्रवांक्षीरैःक्राथैर्वात्रिफलैःपिबेत् ॥ १८५ ॥

त्रिदिनांतेभवेत्स्फोटःसप्ताहाद्वाकिलासके ॥ नीलगुंजाश्वकाशीसंधत्तूरंहंसपादिकम् ॥ १८६ ॥ सूर्यभक्ताचचांगेरीपिष्ट्वा मूलानिलेपयेत् ॥ स्फोटस्थानप्रशांत्यर्थंसप्तरात्रंपुनःपुनः ॥ ॥१८७॥ श्वेतकुष्ठान्निहन्त्याशुसाध्यासाध्यंनसंशयः ॥ अपरः श्वित्रलेपोऽपिकथ्यतेऽत्रभिषग्वरैः ॥१८८॥ गुञ्जाफलाग्निचूर्णं चप्रलेपःश्वेतकुष्ठनुत् ॥ शिलापामार्गभस्मानिलिप्तं श्वित्रंविनाशयेत् ॥ १८९ ॥

अर्थ—शुद्ध किया पारा ४ पल और गन्धक दो भाग लेके घीगुवारके रसमें दोनोंको खरल करके दोनोंका गोला बनावे। उस गोलेको घडेमें रखके पारेका तिगुना शुद्ध किया हुआ तांबा लेकर उसकी कटोरी बनायके उस पूर्वोक्त गोलेको ऊपर ढक देवे और उसकी संधियोंको उपलोंकी राखसे बंद कर देय। गौका गोबर और जल दोनोंको मिलाय उस कटोरीके चारों तरफ लेप कर देवे। उस घडेको चूल्हेपर चढायके प्रचण्ड अग्नि दो प्रहर देवे। जब स्वांगशीतल होजावे तब संपुटमेंसे औषधको निकालके खरल कर आगे लिखे औषधोंके रसकी पुट देवे। जैसे १ कठूमर, २ चित्रक, ३ हरड, ४ बहेडा, ५ आमला, ६ अमलतासका गूदा, ७ वायविडंग और ८ बावची इन आठ औषधोंका काढा करके उक्त रसमें डालके एक दिन खरल करे। फिर इसको गाढी कर गोली बनाय ले, इसे उदयादित्यरस कहते हैं। यह रस १ रत्ती लेकर खैरकी छालके काढेमें बावचीका चूर्ण ३ शाण मिलायके उसके साथ लेवे, अथवा गौके दूधसे अथवा त्रिफलाके काढेसे सेवन करे तो विचर्चिका रोग, दाद, कुष्ठ और वातरक्त ये रोग दूर होवें। इस उदयादित्यरसको तीन दिन सेवन करनेसे उस श्वित्रकुष्ठी मनुष्यके देहमें चौथे दिन वा सातवें दिन फोडे उत्पन्न होते हैं उनके दूर होनेका औषध कहते हैं। १ नीलपुष्पी, २ घूंवची, ३ हीराकसीस, ४ धतूरा, ५ हंसपदी, ६ हुलहुल और ७ चूका इन सात औषधोंकी जड समान भाग लेके बारीक पीसलेवे। फिर इसका उन फोडोंपर सात दिन लेप करे तो फोडे अच्छे होकर सफेद कुष्ठ साध्य अथवा असाध्य होय तोभी दूर होवे इसमें संशय नहीं है। दूसरा प्रकार यह है कि घूंवची (चिरमिटी) और चित्रक इनका बारीक चूर्ण करके पानीमें मिलाय देहमें मालिश करे। उसी प्रकार मनशिल और ओंगाकी राख इन दोनोंको खरल करके देहमें मालिश करे तो सफेद कुष्ठ दूर हो ॥

सर्वेश्वररस कुष्ठादिकोंपर।

शुद्धंसूतंचतुर्गंधंपलंयामंविचूर्णयेत् ॥ मृतताम्राभ्रलोहानांदर-

दस्यपलंपलम् ॥ १९० ॥ सुवर्णरजतंचैवप्रत्यकंदशनिष्ककम्
॥ माषैकंमृतवज्रंचतालंशुद्धंपलद्वयम् ॥ १९१ ॥
जंबीरोन्मत्तवासाभिःस्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ॥ मर्द्यंहयारिजैर्द्रावैः
प्रत्येकेनदिनंदिनम् ॥ १९२ ॥ एवंसप्तदिनंमर्द्यंतद्गोलं वस्त्रवेष्टितम्
॥ वालुकायन्त्रगंस्वेदंत्रिदिनंलघुवह्निना ॥ १९३ ॥
आदायचूर्णयेच्छ्लक्ष्णंपलैकंयोजयेद्विषम् ॥ द्विपलंपिप्पलीचूर्णमिश्रंसर्वेश्वरोरसः
॥ १९४ ॥ द्विगुञ्जोलिह्यतेक्षौद्रैःसुप्तिमंडकुष्ठनुत्
॥ बाकुचीदेवकाष्ठंचकर्षमात्रंसुचूर्णयेत् ॥ १९५ ॥
लिहेदेरंडतैलाक्तमनुपानंसुखावहम् ॥

अर्थ--शुद्ध किया हुआ पारा ४ पल, गन्धक १ पल दोनोंको एकत्र कर एक प्रहर पर्यन्त खरल करे फिर तामेकी भस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म और हींगलू ये चार वस्तु चार २ पल ले, सुवर्णभस्म और रूपेकी भस्म दोनों दश २ निष्क लेवे और हीरेकी भस्म १ मासा तथा हरतालका सत्त्व २ पल ये सब औषध उस पारे गन्धककी कजलीमें मिलाय नींबू, धतूरा, अडूसा, वकायन और कनेर इनकी जडके रसमें तथा थूहर और आक इनके दूधमें पृथक् २ एक २ दिन खरल करके गोला करे । उसके चारों तरफ कपडा लपेट वालुकायंत्रमें रखके चूल्हेपर चढावे और उसके नीचे मन्द २ अग्नि तीन दिन देवे । जब शीतल होजावे तब उस संपुटमेंसे रसको निकालके उसमें शुद्ध किया हुआ बच्छनामविषका चूर्ण १ पल और पीपलका चूर्ण दो पल मिलाय देवे । इसे सर्वेश्वररस कहते हैं । यह रस दो रत्तीके अनुमान सहतके साथ सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल बावची और देवदारु इनका चूर्ण एक कर्ष अण्डीके तेलमें मिलायके सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ और मंडलकुष्ठ दूर हों ॥

स्वर्णक्षीरीरस सुप्तिकुष्ठपर ।

हेमाह्वांपञ्चपलिकांक्षिप्त्वातक्रघटेपचेत् ॥ १९६ ॥
तक्रेजीर्णेसमाहृत्यपुनःक्षीरघटेपचेत् ॥
क्षीरेजीर्णेसमुद्धृत्यक्षालयित्वाविशेषतः ॥ १९७ ॥
तच्चूर्णंपञ्चपलिकंमरिचानांपलद्वयम् ॥
पलैकंमूर्च्छितंसूतमेकीकृत्यतुभक्षयेत् ॥ १९८ ॥
निष्कैकंसुप्तिकुष्ठार्तःस्वर्णक्षीरीरसोह्ययम् ॥

अर्थ–चोक ९ पल लेकर एक घडेमें छाछ भरके उसमें उस चोकको डालके औटावे जब छाछ सूख जाय तब चोकको निकाल लेय फिर उसको दूधके घडेमें डालके औटावे जब दूधभी सूख जाय तब उसको निकालकर धोय लेवे । फिर उसका चूर्ण करके दो पल लेय और पारेकी भस्म १ पल प्रमाण लेके दोनोंको एकत्र पीस लेवे । इसे स्वर्णक्षीरी रस कहते हैं । यह रस १ निष्क नित्य सेवन करे तो सुप्तिकुष्ट दूर होय । किसी किसी वैद्यकी यह संमति है कि चोक नाम उसारे रेवनको कहते हैं ॥

प्रमेहबद्धरस प्रमेहरोगपर ।

सूतभस्ममृतंकांतंमुंडभस्मशिलाजतु ॥ १९९ ॥ शुद्धंताप्यंशिलाव्योषंत्रिफलांकोलबीजकम् ॥ कपित्थंरजनीचूर्णंभृंगराजेनभावयेत् ॥ २०० ॥ विंशद्वारंविशोष्याथमधुयुक्तंलिहेत्सदा ॥ निष्कमात्रंहरेन्मेहान्मेहबद्धरसोमहान् ॥ २०१ ॥ महानिंबस्यबीजानिपिष्ट्वाषट्संमितानिच ॥ पलंतंदुलतोयेनघृतनिष्कद्वयेनच ॥ २०२ ॥ एकीकृत्यपिबेच्चानुहंतिमेहंचिरंतनम् ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म, २ कांतलोहकी भस्म, ३ लोहभस्म, ४ शुद्ध कियाहुआ शिलाजीत, ५ सुवर्णमाक्षिककी भस्म, ६ मनशिल, ७ सोंठ, ८ मिरच, ९ पीपल, १० हरड, ११ बहेडा, १२ आँवला, १३ अंकोलके बीज, १४ कैथका गूदा और १५ हल्दी ये पंद्रह औषध समान भाग ले । इनमें भस्मके सिवाय जो औषधी हैं उनका चूर्ण कर उसमें सब भस्मोंको मिलायके फिर भाँगरेके रसकी २० पुट देवे । इसको मेहबद्ध रस कहते हैं । यह रस १ निष्क प्रमाण सहतके साथ सेवन करे तो घोर प्रमेहका रोग नष्ट होय । यदि बकायनके छः बीजका चूर्ण करके चावलोंका धोवन एक पल लेके उसमें उस बकायनके चूर्णको मिलावे और दो निष्क घी मिलाय इस अनुपानके साथ इस मेहबद्धरसको भक्षण करे तो बहुत दिनका पुराना प्रमेहभी दूर होय ॥

महावह्निरस सर्वउदररोगोंपर ।

चतुःसूतस्यगंधाष्टौरजनीत्रिफलाशिवा ॥ २०३ ॥ प्रत्येकंचद्विभागंस्यात्रिवृज्जैपालचित्रकाः ॥ प्रत्येकंचत्रिभागंस्यात्त्र्यूषणंदंतिजीरकम् ॥ २०४ ॥ प्रत्येकमष्टभागंस्यादेकीकृत्यविचूर्णयेत् ॥ जयंतीस्नुक्पयोभृंगवह्निवातारितैलकैः ॥ २०५ ॥

प्रत्येकेनक्रमाद्भाव्यंसप्तवारंपृथक्पृथक् ॥ महावह्निरसोनामनिष्कमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २०६ ॥ विरेचनंभवेत्तेनतक्रभक्तंसुसैंधवम् ॥ दिनांतेदापयेत्पथ्यंवर्जयेच्छीतलंजलम् ॥ २०७ ॥ सर्वोदरहरः प्रोक्तोमूढवातहरःपरः ॥

अर्थ—पारा चार भाग, गंधक ८ भाग, १ हल्दी, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आँवला और ५ छोटी हरड ये पांच औषध दो दो भाग लेवे। १ निशोथ, २ शुद्ध किया हुआ जमालगोटा और ३ चित्रक ये तीन औषध तीन २ भाग लेवे तथा १ सोंठ, २ मिरच, ३ पीपल, ४ दंती और ५ जीरा ये पांच औषधी आठ २ भाग लेवे। सब औषधोंका चूर्ण करके अरणीका रस, थूहरका दूध, भांगरेका रस, चित्रक और अंडीका तेल इन प्रत्येककी पृथक् २ सात २ भावना देवे। फिर एक २ निष्ककी गोलियाँ बांध लेवे। इसमेंसे १ गोली गरम जलके साथ सेवन करे तो इससे दस्त हो। जब दस्त होंचुके तब सायंकालको पथ्यमें छाछ और भात देना चाहिये और नमकोंमें सैंधानमक खाय। जब २ जल पीवे तब २ गरम जल पीवे शीतल न पीवे। इस रसायनसे दस्त होकर संपूर्ण उदरके विकार तथा मूढवात दूर होवे ॥

विद्याधररस गुल्मादिरोगोंपर ।

गंधकंतालकंताप्यंमृतताम्रंमनःशिलाम् ॥ २०८ ॥ शुद्धंसूतंचतुल्यांशंमर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ पिप्पल्यस्तुकषायेणवज्रीक्षीरेणभावयेत् ॥ २०९ ॥ निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकंजयेत् ॥ रसोविद्याधरोनामगोमूत्रंचापिबेदनु ॥ २१० ॥

अर्थ—१ गंधक, २ हरताल, ३ सुवर्णमाक्षिककी भस्म, ४ ताम्रभस्म, ५ मनशिल और ६ शुद क्रियाहुआ पारा ये छः औषध समान भाग लेकर खरलमें डालके पीपलके काढेसे १ दि खरल करे। फिर २ दिन थूहरके दूधसे खरल करे। इसको विद्याधररस कहते हैं। य रस आधा निष्क लेकर सहतमें मिलायके सेवन करे तो गुल्म (गोलेका) रोग और प्ली दिक रोग दूर होवें ॥

त्रिनेत्ररस पक्ति (परिणाम) शूलादिकोंपर ।

टंकणंहारिणंशृंगंस्वर्णंशुल्बंमृतंरसम् ॥ दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्धापुटेपचेत् ॥ २११ ॥ त्रिनेत्राख्यरसस्यैकंमाषंमध्वाज्यकैर्लिहेत् ॥ सैंधवंजीरकंहिंगुमध्वाज्याभ्यांलिहेदनु ॥ २१२ ॥ पक्तिशूलहरःख्यातोमासमात्रान्नसंशयः ॥

अर्थ—१ सुहागा, २ हरिणका सींग, ३ सुवर्णभस्म, ४ ताम्रभस्म और ५ पारेकी भस्म इन पांच औषधोंको अदरखके रसमें एक दिन खरल कर मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके गड्ढा खोद उसमें आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल ले । इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं । यह रस एक मासेके अनुमान लेके सहत और घी दोनोंको मिलायके इसको भक्षण करे और इसके ऊपर तत्काल १ सैंधानमक, २ जीरा, ३ भुनी हींग इन तीन औषधोंका चूर्ण करके घी और सहतमें मिलायके खाय तो पक्ति (परिणाम) शूल एक महीनेमें दूर होय ॥

शूलगजकेसरीरस शूलादिकोंपर ।

शुद्धसूतंद्विधागंधंयामैकंमर्दयेद्दृढम् ॥ २१३ ॥ द्वयोस्तुल्यंशुद्धताम्रंसंपुटेतंनिरोधयेत् ॥ ऊर्ध्वाधोलवणंदत्त्वामृद्भांडेधारयेद्भिषक् ॥ २१४ ॥ ततोगजपुटेपक्त्वास्वांगशीतंसमुद्धरेत् ॥ संपुटंचूर्णयेत्सूक्ष्मंपर्णखंडेद्विगुंजकम् ॥ २१५ ॥ भक्षयेत्सर्वशूलार्तोहिंगुशुंठीसजीरकम् ॥ वचामरिचजंचूर्णकर्षमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २१६ ॥ असाध्यंनाशयेच्छूलंरसोऽयंगजकेसरी ॥

अर्थ—शुद्ध कियाहुआ पारा १ भाग, गंधक २ भाग दोनोंको मिलायके १ प्रहर पर्यंत खरल करके दोनोंके समान शुद्ध किया ताँबा लेवे । उसकी कटोरी बनायके उसमें पारा गंधककी कजलीको रखके दूसरी कटोरीसे ढकके मिट्टीकी हाँडीको आधी नमकसे भर बीचमें इस तामेकी कटोरीको रख ऊपर फिर पिसे हुए नमकसे भरदेवे फिर उस हांडीके मुखपर दूसरी छोटी पारी ढकके उसकी संधियोंको कपडमिट्टी करके सुखाय लेवे । फिर गड्ढा खोदके उसमें आरने उपले भरके बीचमें संपुटको रखके ऊपर उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब निकालके उस कटोरीको बारीक पीसके चूर्ण करे । इसको शूलगजकेसरी रस कहते हैं । जिस मनुष्यको सर्व प्रकारका शूल हो उसको पानके बीडेमें दो रत्ती यह रखके खिलावे और इसके ऊपर तत्काल १ भुनी हींग, २ सोंठ, ३ जीरा, ४ वच और ५ कालीमिरच इन पांच औषधोंका चूर्ण एक कर्ष प्रमाण ले पानीमें मिलायके पिलावे तो असाध्यभी शूल दूर होय ॥

सूतादिवटी मंदाग्निआदिरोगोंपर ।

शुद्धसूतंविषंगंधमजमोदांफलत्रयम् ॥ २१७ ॥ सर्जक्षारंयवक्षारंवह्निसैंधवजीरकौ ॥ सौवर्चलंविडंगानिसामुद्रंत्र्यूषणंस-

मम् ॥ २१८ ॥ विषमुष्टिसर्वतुल्यांजंबीराम्लेनमर्दयेत् ॥
मरिचाभांवटींखादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ २१९ ॥

अर्थ-१ शुद्ध किया पारा, २ शुद्ध किया बच्छनाग विष, ३ गंधक, ४ अजमोद, ५ हरड, ६ बहेडा, ७ आंवला, ८ सज्जीखार, ९ जवाखार, १० चित्रक, ११ सैंधानमक, १२ जीरा, १३ कालानमक, १४ बिडनमक, १५ सामुद्रनमक, १६ सोंठ, १७ मिरच, १८ पीपल ये अठारह औषध समान भाग ले और बकायनके बीज सब औषधोंके बराबर ले सबका चूर्ण कर जंभीरीके रसमें खरल कर मिरचके समान गोली बांधे। इसमेंसे एक २ गोली नित्य खाय तो सर्व प्रकारके अजीर्ण दूर होंय ॥

अजीर्णकंटकरस अजीर्णपर ।

शुद्धसूतंविषंगंधंसमंसर्वंविचूर्णयेत् ॥ मरिचंसर्वतुल्यांशंकंटकार्याः फलद्रवैः ॥ २२० ॥ मर्दयेद्भावयेत्सर्वमेकविंशतिवारकम् ॥ वटींगुंजात्रयंखादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ २२१ ॥ अजीर्णकंटकश्चायंरसोहंतिविषूचिकाम् ॥

अर्थ-१ शुद्ध किया पारा, २ शुद्ध बच्छनागविष और ३ गंधक ये तीन औषध समान भाग लेवे और तीनोंके समान काली मिरच लेवे । सबको खरल करके कटेरीके फलोंके रसमें पृथक् २ इक्कीस भावना देके तीन २ रत्तीकी गोली बनावे । इसको अजीर्णकंटकरस कहते हैं। इस रसकी एक एक गोली सेवन करनेसे सर्व प्रकारके अजीर्ण तथा विषूचिका (हैजा) दूर होवे ॥

मंथानभैरवरस कफरोगपर ।

मृतंसूतंमृतंताम्रंहिंगुपुष्करमूलकम् ॥ २२२ ॥ सैंधवंगंधकंतालंकटुकींचूर्णयेत्समम् ॥ पुनर्नवादेवदालीनिर्गुंडीतंडुलीयकैः ॥ २२३ ॥ तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकंमर्दयेद्दृढम् ॥ माषमात्रंलिहेत्क्षौद्रैरसंमंथानभैरवम् ॥ २२४ ॥ कफरोगप्रशांत्यर्थंनिंबक्काथंपिबेदनु ॥

अर्थ-१ पारेकी भस्म, २ तामेकी भस्म, ३ हींग, ४ पुहकरमूल, ५ सैंधानमक, ६ गंधक, [illegible] हरताल और ८ कुटकी ये आठ औषध समान भाग ले। भस्मके विना सब औषधोंका चूर्ण करके फिर पूर्वोक्त भस्म मिलायके पुनर्नवा (साँठ) के रससे एक दिन खरल करे । फिर बंदाल, निर्गुंडी, चौलाई और कडवी तोरई इन एक एकके रसमें एक एक दिन खरल कर

गोली बनावे । इसको मंथानुभैरव रस कहते हैं । यह रस १ मासा सहतमें मिलायके सेवन करे और उसके ऊपर तत्काल कडुए नीमकी छालका काढा पीवे तो कफरोग दूर होय ॥

वातनाशनरस वातविकारपर ।

सूतहाटकवज्राणिताम्रंलोहंचमाक्षिकम् ॥ २२५ ॥
तालंनीलांजनंतुत्थमहिफेनंसमांशकम् ॥
पञ्चानांलवणानांचभागमेकंविमर्दयेत् ॥ २२६ ॥
वज्रीक्षीरैर्दिनैकंतुरुद्धाधोभूधरेपचेत् ॥
माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ॥ २२७ ॥
पिप्पलीमूलजक्वाथंसकृष्णमनुपाययेत् ॥
सर्वान्वातविकारांस्तुनिहन्त्याक्षेपकादिकान् ॥ २२८ ॥

अर्थ—१ पारेकी भस्म, २ सुवर्णभस्म, ३ हीरेकी भस्म, ४ तांबेकी भस्म, ५ लोहेकी भस्म, ६ सुवर्णमाक्षिककी भस्म, ७ हरतालकी भस्म, ८ शुद्ध सुरमा, ९ लीलाथोथा और १० अफीम ये दश औषध समान भाग ले । १ सैंधानमक, २ संचरनमक, ३ बिडनोन, ४ खारीनोन और ५ समुद्रनमक ये पांच क्षार मिलाकर एक भाग लेवे अर्थात् दश औषध दश तोले होंय तो पांचों क्षार मिलायके १ तोले लेय । सबको एकत्र करके थूहरके दूधसे १ दिन खरल कर मिट्टीके शरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर भूधरयंत्रमें रखके अग्नि देवे । जब स्वांगशीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल लेवे । इसको वातनाशन रस कहते हैं । यह रस एक मासेके अनुमान अदरखके रससे सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल पीपलामूलका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो संपूर्ण आक्षेपकादिक बादी दूर होय ॥

कनकसुन्दररस ।

कनकस्याष्टशाणाः स्युः सूतोद्वादशभिर्मतः ॥ गन्धोऽपिद्वा-
दशप्रोक्तस्ताम्रंशाणद्वयोन्मितम् ॥ २२९ ॥ अभ्रकस्यचतुः-
शाणंमाक्षिकंचद्विशाणिकम् ॥ वंगोद्विशाणः सौवीरांत्रिशाणं
लोहमष्टकम् ॥ २३० ॥ विषंत्रिशाणकंकुर्याल्लांगलीपलसं-
मिता ॥ मर्दयेद्दिनमेकंचरसैरम्लफलोद्भवैः ॥ २३१ ॥ दद्या-
न्मृदुपुटंवह्नौततः सूक्ष्मंविचूर्णयेत् ॥ माषमात्रोरसोदेयः सन्नि-
पातेसुदारुणे ॥ २३२ ॥ आर्द्रकस्वरसेनैवरसोनस्यरसे-

कर्ष लेवे । सबको पूर्वोक्त पारे गंधककी कजलीमें मिलाय देवे । फिर सहँजनेकी छालके रसमें १ प्रहर खरल करे । पश्चात् ज्वालामुखीके रसमें, सोंठके काढेमें, बेलफलके रसमें और चौलाईके रसमें पृथक् २ एक २ प्रहर खरल करके गोला बनाय ले । उस गोलेके आस पास कपडा लपेटके उस गोलेको कांचके प्यालेमें रखके उसके ऊपर दूसरा प्याला औंधा ढकके कपडमिट्टी कर देवे । फिर एक हांडी ले उसमें पिसा हुआ नमक आधा भरके बीचमें उस संपुटको रख ऊपरसे फिर पिसा हुआ नमक उस हांडीके मुख पर्यन्त भर देवे । फिर हांडीको चूल्हेपर चढाय नीचे दो प्रहर पर्यन्त अग्नि जलावे । फिर शीतल होनेपर उस संपुटमेंसे औषधको काढ लेवे । तब उस गोलेका चूर्ण करके उसमें मूंगेका चूरा एक कर्ष तथा शुद्ध बच्छनागचूर्ण १ शाण मिलाय काले सर्पका विष डालके एक दिन पर्यन्त खरल करे । फिर इस रसको कांचकी आतसी शीशीमें भरके उस शीशीपर कपडमिट्टी करके उस शीशीके मुखपर ईंटकी डाट देकर कपडमिट्टी करदे । इसको धूपमें सुखायके बालुकायन्त्रमें रखके चूल्हेपर चढाय दो प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब शीशीसे औषधको बाहर निकाल खरल करके आगे लिखी हुई औषधोंकी पुट देवे । जैसे १ तगर, २ मुसली, ३ जटामांसी, ४ चोक ५ बेत, ६ पीपल, ७ नीलपुष्पी, ८ पत्रज, ९ इलायची, १० चित्रक, ११ वनतुलसी, १२ सौंफ, १३ बन्दाल, १४ धतूरा, १५ अगस्तिया, १६ मूंडी, १७ महुआ, १८ चमेली और १९ मैनफल इन उन्नीस औषधोंके स्वरसमें घोटे अर्थात् एक औषधका रस निकालके घोटे जब वह सूख जावे तब दूसरी औषधका रस डालके खरल करे इस प्रकार पृथक् २ घोटे । जिस औषधोंमेंसे रस न निकलता होवे उसका काढा करके उस काढेमें खरल करे । जब सूख जाय तब गोली बाँध लेवे । इस रसको संनिपातभैरवरस कहते हैं । इस रसको दो रत्ती प्रमाण बिजोरेके रस और अदरखके रसमें मिलाय तथा उसमें सोलह काली मिरचका चूर्ण डालके संनिपातवाले मनुष्यको देवे तो इससे संनिपात दूर होय । यह संनिपातभैरवरस प्रसिद्ध है ॥

ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीपर ।

तारमौक्तिकहेमानिसारश्चैकैकभागिकाः ॥ २४३ ॥ द्विभागो
गन्धकः सूतस्त्रिभागोमर्दयेदिमान् ॥ कपित्थस्वरसैर्गाढंमृगशृङ्गंततः क्षिपेत् ॥ २४४ ॥ पुटेन्मध्यपुटेनैवतत उद्धृत्यमर्दयेत् ॥ बलारसैः सप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा ॥ २४५ ॥
लोध्रंप्रतिविषामुस्तंधातकीन्द्रयवाः स्मृताः ॥ प्रत्येकमेषां
स्वरसैर्भावनास्यात्त्रिधात्रिधा ॥ २४६ ॥ माषमात्रोरसोदेयो

नवा ॥ किलासंसर्वकुष्ठानिविसर्पंचभगन्दरम् ॥ २३३ ॥
ज्वरंगरमजीर्णंचजयेद्रोगहरोरसः ॥

अर्थ-धतूरेके बीज आठ शाण, पारा बारह शाण, गंधक बारह शाण, तामेकी भस्म दो शाण, अभ्रकभस्म चार शाण, स्वर्णमाक्षिक भस्म दो शाण, वंगभस्म दो शाण, शुद्ध सुरमा तीन शाण, लोहभस्म आठ शाण, शुद्ध बच्छनाग विष तीन शाण और कलयारी विषकी जड एक पल इन सबको बारीक पीसके नींबूके रससे एक दिन पर्यन्त खरल कर मिट्टीके शराव-संपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके बारीक पीसके धर रक्खे। इसको कनकसुन्दर रस कहते हैं। इसको एक मासा लेके अदरखके रससे खाय अथवा लहसुनके रसमें मिलायके खाय तो घोर दुर्घट संनिपात दूर होय। किलासकुष्ठ और अन्य प्रकारके सर्व कुष्ठ, विसर्प, भगन्दर, ज्वर, त्रिपदोष और अजीर्ण ये रोग दूर होंय॥

संनिपातभैरवरस।

रसोगंधस्त्रित्रिकर्षौकुर्यात्कज्जलिकांद्वयोः ॥२३४॥ ताराभ्रता-
म्रवङ्गाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः॥ शिग्रुज्वालामुखीशुण्ठीबिल्वे-
भ्यस्तंदुलीयकात् ॥ २३५ ॥ प्रत्येकंस्वरसैः कुर्याद्यामैकैकं
विमर्दयेत् ॥ कृत्वागोलंवृतंवस्त्रेलवणापूरितेन्यसेत् ॥२३६॥
काचभांडेततः स्थाल्यांकाचकूपींनिवेशयेत्॥वालुकाभिःप्रपू-
र्यांथवह्निर्यामद्वयंभवेत् ॥ २३७ ॥ ततउद्धृत्यतंगोलंचूर्णयि-
त्वाविमिश्रयेत्॥ प्रवालचूर्णकर्षेणशाणमात्राविषेणच॥२३८॥
कृष्णसर्पस्यगरलैर्दिवसंभावयेत्तथा ॥ तगरंमुसलीमांसीहेमा-
ह्वावेतसः कणाः ॥ २३९ ॥ नीलिनीपत्रकंचैलाचित्रकश्चकुठे-
रकः ॥ शतपुष्पादेवदालीधत्तूरागस्त्यमुण्डिकाः ॥ २४० ॥
मधूकजातिमदनारसैरेषांविमर्दयेत् ॥ प्रत्येकमेकवेलंचततः
संशोष्यधारयेत् ॥ २४१ ॥ बीजपूरार्द्रकद्रावैर्मरिचैःषोडशो-
न्मितैः ॥ रसोद्विगुञ्जप्रमितः सन्निपातस्यदीयते ॥ २४२ ॥
प्रसिद्धोऽयंरसोनाम्नासन्निपातस्यभैरवः ॥

अर्थ-शुद्ध पारा ३ कर्ष और गन्धक तीन कर्ष दोनोंको खरल करके कजली करे। फिर रूपेकी भस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, नागभस्म और लोहभस्म ये छः भस्म एक १

कर्ष लेवे । सबको पूर्वोक्त पारे गंधककी कजलीमें मिलाय देवे । फिर सहँजनेकी छालके रसमें १ प्रहर खरल करे । पश्चात् ज्वालामुखीके रसमें, सोंठके काढेमें, बेलफलके रसमें और चौलाईके रसमें पृथक् २ एक २ प्रहर खरल करके गोला बनाय ले । उस गोलेके आस पास कपडा लपेटके उस गोलेको कांचके प्यालेमें रखके उसके ऊपर दूसरा प्याला औंधा ढकके कपडमिट्टी कर देवे । फिर एक हांडी ले उसमें पिसा हुआ नमक आधा भरके बीचमें उस संपुटको रख ऊपरसे फिर पिसा हुआ नमक उस हांडीके मुख पर्यन्त भर देवे । फिर हांडीको चूल्हेपर चढाय नीचे दो प्रहर पर्यन्त अग्नि जलावे । फिर शीतल होनेपर उस संपुटमेंसे औषधको काढ लेवे । तब उस गोलेका चूर्ण करके उसमें मूंगेका चूरा एक कर्ष तथा शुद्ध बच्छनागचूर्ण १ शाण मिलाय काले सर्पका विष डालके एक दिन पर्यन्त खरल करे । फिर इस रसको कांचकी आतसी शीशीमें भरके उस शीशीपर कपडमिट्टी करके उस शीशीके मुखपर ईंटकी डाट देकर कपडमिट्टी करदे । इसको धूपमें सुखायके बालुकायन्त्रमें रखके चूल्हेपर चढाय दो प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब शीशीसे औषधको बाहर निकाल खरल करके आगे लिखी हुई औषधोंकी पुट देवे । जैसे १ तगर, २ मुसली, ३ जटामांसी, ४ चोक ५ बेत, ६ पीपल, ७ नीलपुष्पी, ८ पत्रज, ९ इलायची, १० चित्रक, ११ वनतुलसी, १२ सौंफ, १३ बन्दाल, १४ धतूरा, १५ अगस्तिया, १६ मूंडी, १७ महुआ, १८ चमेली और १९ मैनफल इन उन्नीस औषधोंके स्वरसमें घोटे अर्थात् एक औषधका रस निकालके घोटे जब वह सूख जावे तब दूसरी औषधका रस डालके खरल करे इस प्रकार पृथक् २ घोटे । जिस औषधोंमेंसे रस न निकलता होवे उसका काढा करके उस काढेमें खरल करे । जब सूख जाय तब गोली बाँध लेवे । इस रसको संनिपातभैरवरस कहते हैं । इस रसको दो रत्ती प्रमाण बिजोरेके रस और अदरखके रसमें मिलाय तथा उसमें सोलह काली मिरचका चूर्ण डालके संनिपातवाले मनुष्यको देवे तो इससे संनिपात दूर होय । यह संनिपातभैरवरस प्रसिद्ध है ॥

ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीपर ।

तारमौक्तिकहेमानिसारश्चैकैकभागिकाः ॥ २४३ ॥ द्विभागो
गन्धकः सूतस्त्रिभागोमर्दयेदिमान् ॥ कपित्थस्वरसैर्गाढंमृग-
शृङ्गंततः क्षिपेत् ॥ २४४ ॥ पुटेन्मध्यपुटेनैवतत उद्धृत्यमर्द-
येत् ॥ बलारसैः सप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा ॥ २४५ ॥
लोध्रंप्रतिविषामुस्तंधातकीन्द्रयवाः स्मृताः ॥ प्रत्येकमेषां
स्वरसैर्भावनास्यात्त्रिधात्रिधा ॥ २४६ ॥ माषमात्रोरसोदेयो

मधुनामरिचैस्तथा ॥ हन्यात्सर्वानतीसारान्ग्रहणींसर्वजामपि
॥ २४७ ॥ कपाटोग्रहणीरोगेरसोऽयंवह्निदीपनः ॥

अर्थ–१ रूपेकी भस्म, २ मोती, ३ सुवर्णभस्म और ४ लोहभस्म ये चार औषध एक २ भाग लेवे । गन्धक दो भाग और शुद्ध पारा तीन भाग सबको खरल करके कैथके रसमें घोटके हरिणके सींगमें खूब दाब २ के भरे । फिर उस सींगपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंकी मध्यमाग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके खरलमें डालके खरेटीके रसकी ७ पुट देवे । फिर ओंगा, लोध, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ और गिलोय इनके पृथक् २ स्वरसको निकालके एक २ न्यारी न्यारी तीन २ भावना देवे । जिस औषधका स्वरस न निकले उसका काढा करके इस रसको घोटे । जब सूखनेपर आवे तब एक मासेकी गोलियां बनावे । इसको ग्रहणीकपाटरस कहते हैं । इस रसकी एक गोली कालीमिरचके चूर्णके साथ सहतमें मिलायके सेवन करे तो संपूर्ण अतिसार तथा सम्पूर्ण संग्रहणीके रोग दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होती है ॥

ग्रहणीवज्रकपाटरस संग्रहणीपर ।

मृतसूताभ्रकेगंधयवक्षारंसटंकणम् ॥ २४८ ॥ अग्निमंथंवचां
कुर्यात्सूततुल्यानिमान्सुधीः ॥ ततोजयन्तीजम्बीरभृङ्गद्रावैर्वि-
मर्दयेत् ॥ २४९ ॥ त्रिवासरंततोगोलंकृत्वासंशोष्यधारयेत् ॥
लोहपात्रेशरावंचदत्त्वोपरिविमुद्रयेत् ॥ २५० ॥ अधोवह्निंश-
नैःकुर्याद्यामार्धंततउद्धरेत् ॥ रसतुल्यांप्रतिविषांदद्यान्मोचरसं
तथा ॥ २५१ कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधाभिषक् ॥
धातकींद्रयवामुस्तालोध्रंबिल्वंगुडूचिका ॥ २५२ ॥ एतद्रसै-
र्भावयित्वावेलैकैकंचशोषयेत् ॥ रसंवज्रकपाटाख्यंशाणैकंमधु-
नालिहेत् ॥२५३॥ वह्निशुण्ठीबिडंबिल्वंलवणंचूर्णयेत्समम्॥
पिबेदुष्णांबुनाचानुसर्वजांग्रहणींजयेत् ॥ २५४ ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म, २ अभ्रकभस्म, ३ गन्धक, ४ जवाखार, ५ सुहागा, ६ अरनीकी जड और ७ वच ये सात औषध समान भाग लेवे । सबको पीसके अरनीके रसमें एक दिन खरल करे । फिर जंभीरीके रसमें एक दिन तथा भाँगरेके रसमें एक दिन इस प्रकार इन तीनोंके रसमें तीन दिन खरल करके गोला बनावे । उसको सुखायके

लोहेकी कडाहीमें रख उसके ऊपर मिट्टीका सरावा ढकके उसकी संधियोंको मिट्टीकी मुद्रा देके बंद कर देवे । फिर उस कडाहीको चूल्हेपर चढायके नीचे मन्द मन्द अग्नि चार घडीपर्यंत देवे । जब शीतल हो जावे तब गोलेको बाहर निकाल लेय फिर इसके समान भाग अतीसका चूर्ण और मोचरसका चूर्ण मिलायके खरलमें डाल कैथके रसकी ७ पुट देवे तथा भाँगके रसकी सात पुट देवे । पश्चात् धायके फूल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, लोध, बेलफल और गिलोय इन औषधोंके पृथक् २ रसमें पृथक् २ घोंटे । जब जाने कि कुछ थोडी गीली है तब एक २ शाणकी गोली बनावे । इसको ग्रहणीवज्रकपाट रस कहते हैं । जिसके संग्रहणीका विकार हो उसको मद्यके साथ यह गोली देवे और इसके ऊपर तत्काल चित्रक, सोंठ, बिडनमक, बेलगिरी, सैंधानमक इन पांच औषधोंका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीवे तो सर्व प्रकारकी संग्रहणी दूर होवे ॥

मदनकामदेवरस वाजीकरणपर ।

तारंवज्रंसुवर्णंचताम्रंसूतकगंधकम् ॥ लोहंक्रमविवृद्धानिकुर्या-
देतानिमात्रया ॥ २५५ ॥ विमर्द्यकन्यकाद्रावैर्न्यसेत्काचमये
घटे ॥ विमुच्यपिठरीमध्येधारयेत्सैंधवावृते ॥ २५६ ॥ पिठ-
रींमुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुल्ल्यांनिवेशयेत् ॥ वह्निंशनैःशनैकुर्याद्दि-
नैकंततउद्धरेत् ॥२५७॥ स्वांगशीतंचसंचूर्ण्यभावयेदर्कदुग्ध-
कैः ॥ अश्वगंधाचकाकोलीवानरीमुसलीक्षुरा ॥ २५८॥ त्रित्रि-
वेलंरसैरेषांशतावर्याश्चभावयेत् ॥ पद्मकन्दकसेरूणांरसैः का-
शस्यभावयेत् ॥ २५९ ॥ कस्तूरीत्र्योषकर्पूरकंकोलैलालवं-
गकम् ॥ पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णंविमिश्रयेत् ॥ २६० ॥
सर्वैः समांशर्करांचदत्त्वाशाणोन्मितांपिबेत् ॥ गोदुग्धद्विपलैनै-
वमधुराहारसेवकः ॥ २६१ ॥ अस्यप्रभावात्सौंदर्यंसलभेन्ना-
त्रसंशयः ॥ तरुणीरमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्नजायते ॥ २६२ ॥

अर्थ–रूपेकी भस्म १ भाग, हीरेकी भस्म २ भाग, सुवर्णकी भस्म ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, शुद्धपारा ५ भाग, गन्धक ६ भाग और लोहभस्म ७ भाग इस प्रकार संपूर्ण औषध लेवे । सबका खरलमें डालके घीगुवारके रससे खरल करके कांचकी आतसीशीशीमें भर उसपर कपडमिट्टी करे और मुखपर मुद्रा करके सूखनेपर उस शीशीको हांडीमें रखके शीशीके गलेपर्यंत पिसाहुआ नमक भरके गला खुला रहनेदे । फिर उस हांडीको परियासे ढकके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीस

बंद कर देवे । फिर धूपमें सुखाय चूल्हेपर रखके नीचे मंद २ एक दिनतक अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब शीशीसे औषध निकालके खरलमें डाल आंकके दूधकी तीन पुट देय । पश्चात् १ असगंध, २ काकोलीके अभावमें असगंध, ३ कौंचके बीज, ४ मूसली, ५ तालमखाने, ६ शतावर, ७ कमलगट्टा, ८ कसेरू और ९ कसोंदी इन नौ औषधोंके पृथक् २ रस निकालके एक एककी तीन २ भावना देवे तो यह रस सिद्ध हुआ ऐसा जानना । १ कस्तूरी, २ सोंठ, ३ कालीमिरच, ४ पीपल, ५ कपूर, ६ कंकोल, ७ इलायची और ८ लौंग इन आठ औषधोंका चूर्ण करके इस रसका आठवाँ भाग लेके मिलावे । फिर इसमेंसे १ शाण रस लेके उसकी बराबरकी मिश्री मिलाय दो पल (८ तोले) गौके दूधसे पीवे तो देह अत्यंत सुंदर होय, बलवान् तथा तेजस्वी होय, एवं अनेक तरुण स्त्रियोंसे संभोग करनेसेभी वीर्यका क्षय नहीं हो । इस रसपर खटाई आदिका पथ्य करे और मिष्ट पदार्थ भोजन करे । इसे मदनकामदेवरस कहते हैं ॥

कन्दर्पसुन्दररस वाजीकरणपर ।

सूतोवज्रमहिर्मुक्तातारंहेमसिताभ्रकम् ॥ रसैःकर्षांशकानेता-
न्मर्दयेदरिमेदजैः ॥ २६३ ॥ प्रवालचूर्णंगंधश्चद्विद्विकर्षंविमि-
श्रयेत् ॥ ततोऽश्वगंधास्वरसैर्विमर्द्यमृगशृंगके ॥ २६४ ॥ क्षि-
प्त्वामृदुपुटेपक्त्वाभावयेद्धातकीरसैः ॥ काकोलीमधुकंमांसी-
बलात्रयबिसंगुदम् ॥ २६५ ॥ द्राक्षापिप्पलिवंदाकंवरीपर्णीच-
तुष्टयम् ॥ परूषकंकसेरुश्चमधूकंवानरीतथा ॥ २६६ ॥
भावयित्वारसैरेषांशोषयित्वाविचूर्णयेत् ॥ एलात्वक्पत्रकंवं-
शीलवंगागरुकेशरम् ॥ २६७ ॥ मुस्तंमृगमदःकृष्णाजलंचंद्र-
श्चमिश्रयेत् ॥ एतच्चूर्णैः शाणमितैरसंकंदर्पसुंदरम् ॥२६८॥
खादेच्छाणमितंरात्रौसिताधात्रीविदारिका ॥ एतेषांकर्षचूर्णेन
सर्पिःकर्षसुसंयुतम् ॥ २६९ ॥ तस्यानुद्विपलंक्षीरंपिबेत्सु-
स्थितमानसः ॥ रमणीरमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्नजायते ॥ २७० ॥

---

१ आकके दूधकी तीन पुट देना जो कहा है सो घीगुवारका पुट देकर पश्चात् देना फिर उस औषधको शीशीमें भरके सिद्ध करे । जब सिद्ध होजावे तब पश्चात् पुट देनेसे कदाचित् वमन हो जावे । इस वास्ते टीकाकारने पहले पुट देना कहा है ।

२ असगंध दो बार आई इसवास्ते इसकी पुट दूनी देवे ।

अर्थ—१ पारेकी भस्म, २ हीरेकी भस्म, ३ नागभस्म, ४ मोतीभस्म, ५ रूपेकी भस्म, ६ सुवर्णभस्म और ७ सफेद अभ्रककी भस्म ये सात औषध एक एक कर्ष लेवे। सबको खरलमें डालके खैरकी छालके रसमें खरल कर मूँगेका चूर्ण और गंधक ये दो दो कर्ष लेकर उस औषधमें मिलायके असगंधके रससे खरल करे। फिर उसको हरिणके सींगमें भरके उसपर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी मंदाग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल खरलमें डालके आगे लिखी औषधोंकी पुट देवे। जैसे—१ धायके फूल, २ कंकोलके अभावमें असगंध, ३ मुलहटी, ४ जटामांसी, ५ खरेंटीकी छाल, ६ कँगही, ७ गंगेरन, ८ भसीडा (कमलका कंद), ९ इंगुदी (हिंगोट), १० दाख, ११ पीपल, १२ बाँदा, १३ सतावर, १४ माषपर्णी, १५ मुद्गपर्णी, १६ पृष्ठपर्णी, १७ शालपर्णी, १८ फालसे, १९ कसेरू, २० महुआ, २१ कांचके बीज इन इक्कीस औषधोंका पृथक् २ रस निकालके इस रसमें न्यारी २ भावना देके सुखाय ले। इस रसको कंदर्पसुंदर रस कहते हैं। पश्चात् १ इलायची, २ दालचीनी, ३ तमालपत्र, ४ वंशलोचन, ५ लौंग, ६ अगर, ७ केशर, ८ नागरमोथा, ९ कस्तूरी, १० पीपल, ११ नेत्रवाला और १२ भीमसेनी कपूर इन बारह औषधोंके एक शाण चूर्णमें इस कंदर्पसुन्दररसको एक शाण मिलायके एकत्र करे। इसको एक कर्ष घीमें मिलायके आंवला और विदारीकंद इनका चूर्ण तथा मिश्री ये एक २ कर्ष लेके उस घीमें मिलायके रात्रिमें पीवे और उसी समय प्रसन्न चित्तसे दो पल गौका औटाहुआ दूध पीवे तो अनेक स्त्री भोगनेपरभी धातुक्षीण नहीं हो अर्थात् अपार वीर्यवाला हो ॥

लोहरसायन क्षयादिरोगोंपर।

शुद्धंरसेंद्रंभागैकंद्विभागंशुद्धगंधकम् ॥ क्षिपेत्कज्जलिकांकुर्यात्तत्रतीक्ष्णभवंरजः ॥ २७१ ॥ क्षिप्त्वाकज्जलिकातुल्यंप्रहरैकंविमर्दयेत् ॥ तत्रकन्याद्रवैःखल्वेत्रिदिनंपरिमर्दयेत् ॥२७२॥ ततः संजायतेतस्यसोष्णोधूमोद्गमोमहान् ॥ अत्यंतंपिंडितंकृत्वाताम्रपात्रेनिधायच ॥ २७३ ॥ मध्येधान्यैकशूकस्यत्रिदिनंधारयेद्बुधः ॥ उद्धृत्यतस्मात्खल्वेचक्षिप्त्वाघर्मेनिधायच ॥ ॥२७४॥ रसैःकुठारच्छिन्नायास्त्रिवेलंपरिभावयेत् ॥ संशोष्यघर्मेक्काथैश्चभावयेत्त्रिकटोस्त्रिधा ॥ २७५ ॥ वासामृताचित्रकाणांरसैर्भाव्यंक्रमात्त्रिधा ॥ लोहपात्रेततःक्षिप्त्वाभावयेत्त्रिफलाजलैः ॥ २७६ ॥ निर्गुंडीदाडिमत्वग्भिर्बिसभृंगकुरंटकैः ॥

पलाशकदलीद्रावैर्बीजकस्यशृतेनवा ॥२७७॥ नीलिकालंबु-
षाद्रावैर्बब्बूलफलिकारसैः ॥ त्रिस्त्रिवेलंयथालाभंभावयेदेभिरौ-
षधैः ॥२७८॥ ततः प्रातर्लिहेत्क्षौद्रघृताभ्यांकोलमात्रकम् ॥
पलमात्रंवराक्वाथंपिबेदस्यानुपानकम् ॥ २७९ ॥ मासत्रयं
शीलितंस्याद्वलीपलितनाशनम्॥ मंदाग्निंश्वासकासौचपांडुता-
कफमारुतौ ॥२८०॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तंहन्यादेतन्नसंशयः ॥
वातास्रंमूत्रदोषांश्चग्रहणींतोयजांरुजम् ॥ २८१ ॥ अंडवृद्धिं
जयेदेतच्छिन्नासत्त्वमधुप्लुतम् ॥ बलवर्णकरंवृष्यमायुष्यं
परमंस्मृतम् ॥ २८२ ॥ कूष्मांडंतिलतैलंचमाषान्नंराजिका
तथा ॥ मद्यमम्लैरसंचैवत्यजेल्लोहस्यसेवकः ॥ २८३ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने
मध्यमखण्डे रसकल्पना नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक २ भाग दोनोंको खरलमें डालके कजली करे फिर इसके समान पोलाद लोहका चूर्ण लेकर उस कजलीमें मिलाय एक प्रहरपर्यंत खरल करके घीगुवारके रसमें तीन दिनपर्यंत खरल करे। पश्चात् उस औषधमेंसे गरम २ अत्यंत धूआँ निकलने लगे तब उसका गोला करके तांबेके बासनम रखके उसको धानकी राशिमें गाड देवे। तीन दिनके बाद चौथे दिन निकालके उस गोलेका चूर्ण कर धूपमें रखक वनतुलसीके रसकी ३ पुट देवे। फिर सोंठ, कालीमिरच और पीपल इनका पृथक् २ काढा करके एक २ की तीन २ पुट देवे। पश्चात् अडूसा, गिलोय और चित्रक इन तीनोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे तीन २ पुट देय। पीछे इस रसायनको लोहकी कडाहीमें डालके आगे लिखीहुई औषधोंकी पुट देवे। जैसे १ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ निर्गुंडी, ५ अनारकी छाल, ६ भसीडा (कमलकंद), ७ भांगरा, ८ पियावांसा, ९ पलाश, १० केलाका कद, ११ त्रिजयसार, १२ नीलपुष्पी, १३ मुंडी और १४ बबूलकी छाल इन चौदह औषधोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे एक एकके रसकी तीन २ पुट देवे पश्चात् इस रसायनको कोल प्रमाण सहत और घी एकत्र मिलाय उसम डालके सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल त्रिफलाका काढा १ पल पीवे इस प्रकार इस रसायनको तीन महीने सेवन करे तो देहमें अत्यंत पुरुषार्थ हो, सफेद बाल काले होवे, सहत और पीपलके साथ लेवे तो मंदाग्नि, श्वास, खाँसी, पाण्डुरोग, कफवायु ये दूर होवें। गिलोयसत्त्वके साथ मिलायके लेवे तो वातरक्त, मूत्र-

दोष, जलसे उत्पन्न हुई संग्रहणी, अण्डवृद्धि ये रोग दूर होवें । यह रसायन बलकर्त्ता, कांतिकर्त्ता, स्त्रीगमनविषयमें इच्छा देय है तथा आयुष्यकी वृद्धि करे । इस रसायनके सेवन करनेवालेको पेठा, तिल्लीका तेल, उडद, राई, सहत, खट्टे पदार्थ ये संपूर्ण वस्तु खाना मना है ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे द्वि० माथुरभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

क्षेपकश्लोकाः ।

जैपालंरहितंत्वगंकुररसज्ञाभिर्मलेमाहिषेनिक्षिप्तंत्र्यहमुष्णतोय-
विमलंखल्वेसवासोर्दितम् ॥ लिप्तंनूतनखर्परेषुविगतस्नेहंरजः-
संनिभंनिंबूकांबुविभावितंचबहुशःशुद्धंगुणाढ्यंभवेत् ॥ १ ॥

अर्थ—जमालगाटक बीज लेकर उनके ऊपरकी छाल निकाल अंकुरके भीतरकी जिह्वाको दूर कर कपडेमें पोटली बाँधके तीन दिन भैंसके गोबरमें रक्खे । चौथे दिन निकालके उस जमालगोटेको गरम जलसे धोयडाले । फिर उसको दूसरे उत्तम कपडेमें बांधके कंपडे सहित खरल करे । जब बारिक चूर्ण होजावे तब निकालके नये खिपडेपर उसको पोत देवे तो वह चिकनाई रहित होकर धूलके समान होजावेगा । फिर इसको नींबूके रसकी दो पुट देवे तो यह शुद्ध जमालगोटा विशेष गुण करनेवाला होता है ॥

बच्छनाग वा सिंगीमुहराविषकी शुद्धि ।

विषंतुखण्डशःकृत्वावस्त्रखण्डेनबन्धयेत् ॥
गोमूत्रमध्येनिक्षिप्यस्थापयेदातपेत्र्यहम् ॥ २ ॥
गोमूत्रंचप्रदातव्यंनूतनंप्रत्यहंबुधैः ॥
त्र्यहेऽतीतेसमुद्धृत्यशोषयेन्मृदुपेषयेत् ॥ ३ ॥
शुध्यत्येवंविषंतच्चयोग्यंभवतिचार्तिजित् ॥

अर्थ—बच्छनाग विषके टुकडे करके उसकी कपडेमें पोटली बांधके एक घडेमें डूब जावे इस माफिक गोमूत्र भरके उसको तीन दिन धूपमें रखके धूप देवे और नित्य पुराणे गोमूत्रको निकाल लिया करे उसमें नवीन गोमूत्र भर दिया करे । फिर चौथे दिन उस वच्छनागको बाहर निकालके धूपमें सुखाय लेय । फिर बारीक चूर्ण करे तो उत्तम शुद्ध रोगदूरकर्त्ता होय । बच्छनाग और सिंगिया विषमें केवल नामभेद है ॥

---

[1] सवस्त्र खरल करनेका यह प्रयोजन है, कि वह कपडा उन जमालगोटेकी चिकनाईको सोख लेवे ।

विषशोधनका दूसरा प्रकार ।

खण्डीकृत्यविषंवस्त्रपरिबद्धंतुदोलया ॥ ४ ॥
अजापयसिसंस्विन्नंयामतःशुद्धिमाप्नुयात् ॥
अजादुग्धैर्भावितस्तुगव्यक्षीरेणशोधयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ.--बच्छनाग विषके टुकडे करके कपडेकी पोटलीमें बांधके दोलायन्त्र करके बकरीके दूधमें एक प्रहर पर्यन्त औटावे। यदि बकरीका दूध न मिले तो गौके दूधमें औटावे तो शुद्ध होवे परन्तु यह औरभी याद रहे कि १ तोले बच्छनागको सेरभर दूधमें औटावे और मन्दाग्निसे पचन करावे॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताद्वितीयखण्डं संपूर्णम् ।

[illegible]

॥ श्रीः ॥

शार्ङ्गधरसंहिता.

भाषाटीकासमेता ।

तृतीयखण्डः ३.

प्रथमोऽध्यायः १.

प्रथम स्नेहपानविधि ।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तोघृतंतैलंवसातथा ॥
मज्जाचतंपिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदितेरवौ ॥ १ ॥

अर्थ-स्नेह चार प्रकारका है । जैसे घी, तेल, वसा (चरबी), मज्जा (हड्डीके भीतरका तेल) ये चार स्नेह यत्किंचित् सूर्योदय होनेपर पीने चाहिये ॥

स्थावरोजंगमश्चैवाद्वियोनिः स्नेहउच्यते ॥
तिलतैलंस्थावरेषुजंगमेषुघृतंवरम् ॥ २ ॥

अर्थ-फिर स्नेह दो प्रकारका है एक स्थावर (जो वृक्षादिकसे उत्पन्न हो) और दूसरा जंगम (जो मनुष्यादिकसे प्रगट होवे) स्थावर पदार्थोंके स्नेह अनेक हैं तिनमें तिलोंका तेल श्रेष्ठ है और जंगम पदार्थोंमें घृत आदि शब्दसे वसादिक स्नेह अनेक हैं उन्होंमें घी श्रेष्ठ है । इस प्रकार स्नेहके दो भेद जानने ॥

स्नेहके भेद ।

द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतोमहान् ॥

अर्थ-घी और तेल दोनोंके एकत्र करनेसे उसकी यमक संज्ञा है । घी, तेल और वसा (मांसका तेल ये तीन एकत्र होनेसे उसको त्रिवृत कहते हैं और घी, तेल, मांस, स्नेह तथा वसा ये चार स्नेह एकत्र होनेसे उसको महान् कहते हैं। इस प्रकार स्नेहके ये तीन भेद जानने चाहिये ॥

---

[१] मांसकी अपेक्षा अष्टगुण घी है इस वास्ते प्रथम घृत कहा है तथा घृतमें यह गुण अधिक हैं कि जिसके साथ इसका संयोग करो उसके गुणोंको करे और अपने गुणोंको भी नहीं त्यागे इस वास्ते प्रथम घृतको धरा है ।

स्नेह पीनेका काल ।

पिबेत्त्र्यहंचतुरहंपञ्चाहंषडहंतथा ॥ ३ ॥

अर्थ–घी तीन दिन, तैल चार दिन, मांसस्नेह पांच दिन और हड्डीका तेल छः दिन पीवे। इस प्रमाण क्रमसे घृतादि स्नेह पीनेका क्रम जानना ॥

स्नेहका सात्म्य कितने दिनमें होना ।

सप्तरात्रात्परंस्नेहः सात्मीभवतिसेवितः ॥

अर्थ–सात दिनके पश्चात् घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान सात्म्य होता है फिर उससे गुण और अवगुण कुछ नहीं होता ॥

स्नेहकी स्थलविशेषमें योजना ।

दोषकालाग्निवयसांबलंदृष्ट्वाप्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
हीनांचमध्यमांज्येष्ठांमात्रांस्नेहस्यबुद्धिमान् ॥

अर्थ–वातादिक दोष, काल, अग्नि, अवस्था इनका बलाबल विचारके घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा हीन (दो कर्ष), मध्यम (तीन कर्ष) और ज्येष्ठ (एक पल) इनका तारतम्य देखके योजना करनी चाहिये ॥

स्नेहकी मात्राका प्रमाण त्यागके स्नेह पीनेके दोष ।

अमात्रयातथाकालेमिथ्याहारविहारतः ॥ ५ ॥
स्नेहः करोतिशोफार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञताः ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेके कहे हुए परिमाणको त्यागकर न्यूनाधिक पीनेसे अथवा पीनेका काल त्यागके पहले या पीछे पीवे अथवा घृतादिक स्नेह पीकर मिथ्याहार[1] और मिथ्याविहार[2] करनेसे सूजन, बवासीर, तंद्रा, निद्रा और संज्ञानाश होते हैं। इस वास्ते यथार्थ समयमें ठीक २ स्नेहमात्राका सेवन करे ॥

दीप्ताग्नि मध्यमाग्नि और अल्पाग्निमें स्नेहकी मात्रा देनेका प्रमाण ।

देयादीप्ताग्नयेमात्रास्नेहस्यपलसंमिता ॥ ६ ॥
मध्यमायत्रिकर्षास्याज्जघन्यायद्विकार्षिकी ॥

---

[1] अकालमें थोडा अथवा बहुत भोजन करना तथा अपनी प्रकृतिको जो पदार्थ अच्छा न लगे उसको भक्षण करना तथा देशविरुद्ध अथवा कालविरुद्ध पदार्थ तथा संयोगविरुद्ध पदार्थोंका भक्षण करना मिथ्याहार कहाता है ।

[2] जिस कर्मको करनेकी सामर्थ्य न होनेपर भी बलात्कार करना उसको मिथ्याविहार जानना।

अर्थ–जिस मनुष्यकी दीप्ताग्नि है उसको घृतादिक स्नेहकी एक पल मात्रा देवे । मध्यमाग्नि है उस मनुष्यको तीन कर्ष प्रमाण देवे और जिसकी मंदाग्नि है उस मनुष्यको दो कर्ष प्रमाण स्नेहकी मात्रा देनी चाहिये ॥

स्नेहकी मात्राओंका भेद ।

अथवास्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसंमताः ॥ ७ ॥
अहोरात्रेणमहतीजीर्यत्यह्नितुमध्यमा ॥
जीर्यत्यल्पादिनार्धेनसाविज्ञेयासुखावहा ॥ ८ ॥

अर्थ–संपूर्ण वैद्योंको मान्य ऐसे घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा तीन हैं उनको कहते हैं। जो मात्रा आठ प्रहरमें पचे उसको महती अर्थात् बडी मात्रा कहते हैं । इससे वह एक पलकी होती है । जो मात्रा एक दिनमें पचे उसको मध्यम कहते हैं, यह तीन कर्षकी जाननी और जो मात्रा दो प्रहरमें पचे उसको अल्प अर्थात् छोटी मात्रा कहते हैं । यह दो कर्षकी मात्रा सुखकी देनेवाली है ॥

अल्पादिमात्राओंके गुण ।

अल्पास्याद्दीपनीवृष्यावातदोषेसुपूजिता ॥
मध्यमास्नेहनीज्ञेयाबृंहणीश्रमहारिणी ॥ ९ ॥
ज्येष्ठाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेमें जो कर्षप्रमाणकी अल्प मात्रा है वह जठराग्निको प्रदीप्त करके स्त्रीसंगमें इच्छा प्रगट करती है तथा वातादिक दोषोंके अल्प प्रकोपका नाश करे । तीन कर्षकी जो मध्यम मात्रा है वह देहको पुष्ट करके धातुकी वृद्धि करे तथा श्रमको दूर करे । और पल प्रमाणकी जो ज्येष्ठ मात्रा है वह कुष्ठरोग विषदोष उन्माद भूतादिका ग्रह तथा अपस्मार इन रोगोंको दूर करे ॥

दोषोंमें अनुपानविशेष ।

केवलंपैत्तिकेसर्पिर्वातिकेलवणान्वितम् ॥ १० ॥
पेयंबहुकफेवापिव्योषक्षारसमन्वितम् ॥

अर्थ–पित्तमें केवल घी पीनेको देवे । वादीका कोप होनेसे घीमें सैंधानमक. मिलायके देवे । कफका कोप होय तो व्योष (सोंठ, मिरच, पीपल) और जवाखार इनका चूर्ण कर घीमें मिलायके पिलावे ॥

घी पिलाने योग्य प्राणी ।

रूक्षक्षतविषार्तानांवातपित्तविकारिणाम् ॥ ११ ॥

हीनमेधास्मृतीनांचसर्पिःपानं प्रशस्यते ॥

अर्थ—रूक्ष उरःक्षतरोगी तथा विषदोष इन करके पीडित है शरीर जिनका ऐसे मनुष्योंको तथा जिन मनुष्योंको वात पित्तका विकार है उनको एवं हीन है धारणारूप और स्मरणरूप बुद्धि जिनकी इतने मनुष्योंको घृतपान उत्तम कहा है ॥

तैल पिलाने योग्य रोगी ।

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ॥ १२ ॥
पिबेयुस्तैलसात्म्यायेतैलंदीप्ताग्नयस्तुये ॥

अर्थ—जिनके उदरमें कृमिविकार है, वादी करके व्याप्त है शरीर जिनका, अत्यन्त बढा हुआ है कफ और मेद जिन्होंके, ऐसे मनुष्यको तेल पिलावे । एवं जिनकी प्रकृतिको तेल रुचे अर्थात् झिलता हो उनको और प्रदीप्ताग्निवाले मनुष्योंको तेल पिलाना चाहिये ॥

वसा (मांसस्नेह) पिलाने योग्य रोगी ।

व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्तमहारुजः ॥ १३ ॥
महाग्निमारुतप्राणावसायोग्यानराः स्मृताः ॥

अर्थ[१]—मल्लादि युद्ध (दंडकसरत कुस्ती आदि) तथा धनुष आदिका खींचना इन करके पीडित है शरीर जिन्होंका, क्षीण है वीर्य तथा रक्त जिनका, देहमें घोर है पीडा जिनके, तथा अग्नि और वायु तथा बल हो अधिक जिनके ऐसे मनुष्योंको वसा (मांसका स्नेह) पीने योग्य जानने चाहिये ॥

मज्जा पिलाने योग्य रोगी ।

क्रूराशयाः क्लेशसहावातार्तादीप्तवह्नयः ॥ १४ ॥
मज्जानंचपिबेयुस्तेसर्पिर्वासर्वतोहितम् ॥

अर्थ—करडा है कोष्ठ[२] जिनका, दुःख सहन करता, तथा जो बादीसे पीडित है, एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी, ऐसे मनुष्योंको मज्जा (हड्डीका तेल) अथवा घी पिलानेसे देहको सुख देता है ॥

स्नेह पीनेमें कालनियम ।

शीतकालेदिवास्नेहमुष्णकालेपिबेन्निशि ॥ १५ ॥

---

[१] जिस मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त है, वायु शरीरमें जैसा वर्तना चाहिये ऐसा वर्तता हो अग्निके साथ हो अन्नका पचन करता है इसीसे अग्नि और वायु ये शक्तिके देनेवाले हैं, यदि ये अनुकूल होवे तो मांसका स्नेह पचे अन्यथा नहीं पचे ।

[२] आम अग्नि पक्व मूत्र इनके आशय यकृत् और प्लीहा छः स्थान तथा हृदय उंडुक और फुप्फुस इन नौ स्थानोंको कोष्ठ कहते हैं ।

वातपित्ताधिकेरात्रौवातश्लेष्माधिकेदिवा ॥

अर्थ-शीतकालमें घृतादिक स्नेह दिनमें पीवे, गरमीकी ऋतुमें वात पित्त प्रवल होनेसे रात्रिके समय पीवे, तथा कफ और बादी जिनके प्रवल हो वे घृतादिस्नेह दिनमेंही पीवें । इस प्रकार स्नेहपानका क्रम जानना ॥

स्थलविशेषमें स्नेहोंकी योजना ।

नस्याभ्यंजनगंडूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ॥ १६ ॥
तैलंघृतंवायुंजीतदृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥

अर्थ-नस्य (नाकमें डालना), अभ्यंजन (देहमें मालिश करना), गंडूष (कुरले करना) तथा मस्तक कर्ण और नेत्रोंमें तर्पणमें वातादि दोषोंका बलाबल विचारके वैद्य तेल अथवा घीकी योजना करे ॥

स्नेहोंके पृथक् २ अनुपान ।

घृतेकोष्णंजलंपेयंतैलेयूषः प्रशस्यते ॥ १७ ॥
वसामज्ज्ञोः पिबेन्मंडमनुपानंसुखावहम् ॥

अर्थ-घी पीकर उसपर गरम जल पीवे एवं तेल पीकर उसके ऊपर यूष[1] पीवे । मांसस्नेह तथा हड्डीका तेल पीकर उसके ऊपर मंड[2] पीवे तो सुखकारी होय । इस प्रकार स्नेहोंके अनुपान जानने ॥

भातके साथ स्नेह पिलाने योग्य ।

स्नेहद्विषः शिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ॥ १८ ॥
तृष्णातुरानुष्णकालेसहभक्तेनपाययेत् ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेहोंसे द्वेष है जिनको, तथा बालक वृद्ध और सुकुमार (नाजुक) मनुष्य तथा तृषाकरके पीडित ऐसे मनुष्योंको गरमीकी ऋतुमें भातके साथ घृतादिक स्नेह पिलावे ॥

स्नेहके विना यवागूसे सद्यः स्नेहन होनेवाले ।

सर्पिष्मतीबहुतिलायवागूः स्वल्पतंदुला ॥ १९ ॥
सुखोष्णासेव्यमानातुसद्यःस्नेहनकारिणी ॥

अर्थ-तिलोंको कूटकर उनमें थोडेसे चावल मिलाय घी और पानी डालके चूल्हे पर चढायके औटावे । जब चावल सीजजावें और हलपसीके समान पतली हो जावे उसको

---

[1] यूषका बनाना मध्यमखंडमें लिख आये हैं सो देख लेना ।
[2] भातके मांडको मंड कहते हैं । इसकी विधि द्वितीय खंडमें काढोंके प्रकरणमें लिखी है ।

यवागू कहते हैं । इस यवागूको सुहाती २ गरम २ पीनेसे सद्यः स्नेहन करनेवाली जाननी ॥

धारोष्णदूधसे तत्काल धातु उत्पन्न होवे ।

शर्कराचूर्णसंभृष्टेदोहनस्थेघृतेतुगाम् ॥ २० ॥
दुग्ध्वाक्षीरंपिबेदुष्णंसद्यःस्नेहनमुच्यते ॥

अर्थ–मिश्रीको पीसके घीमें मिलावे फिर इस घीको थोडा गरम कर दूध निकालनेके बरतनमें डाले । फिर उस बरतनमें गौका दूध निकाले और उसी समय गरमागरम पीवे सद्यः स्नेहन होवे ॥

मिथ्या आचारसे न पचे स्नेहका यत्न ।

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वायस्यस्नेहोनजीर्यति ॥ २१ ॥
विष्टभ्यवापिजीर्येतवारिणोष्णेनवामयेत् ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीकर उसपर व्यायामादिक परिश्रम होनेसे तथा कफकारी पदा भोजनमें आनेसे वह स्नेह नहीं पचता है अथवा अत्यंत पीनेसे नहीं पचता अथवा मल अवरोध करके पचे ऐसे मनुष्योंको गरम जल पिलायके उलटी करावे तो स्नेहाजीर्णका दूर होवे ॥

स्नेहजन्य अजीर्णका यत्न ।

स्नेहस्याजीर्णशंकायांपिबेदुष्णोदकंनरः ॥ २२ ॥
तेनोद्गारोभवेच्छुद्धोभक्तंप्रतिरुचिस्तथा ॥

अर्थ–घृतादि स्नेह पीकर अजीर्ण होनेकी शंका होनेसे उसपर गरम जल पीवे तो उत्तम डकार आकर अन्नपर इच्छा जाननेसे अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जाने ॥

स्नेह अजीर्णका द्वितीय यत्न ।

स्नेहेनपैत्तिकस्याग्निर्यदातीक्ष्णतरीकृतः ॥ २३ ॥
तदास्योदीरयेत्तृष्णांविषमांतस्यपाययेत् ॥
शीतंजलंवामयेच्चपिपासातेनशाम्यति ॥ २४ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यकी पित्तकी प्रकृति होती है उस मनुष्यकी अग्नि घृतादिक स्नेह अत्यंत तीक्ष्ण होकर तृषाको अत्यंत बढाती है । ऐसी अवस्थामें शीतल जल पिलावे वमन कराना चाहिये जिससे तृषा शांत होवे ॥

स्नेहपानके अयोग्य मनुष्य ।

अजीर्णीवर्जयेत्स्नेहमुदरीतरुणज्वरी ॥

दुर्बलोरोचकीस्थूलोमूर्च्छार्तोमदपीडितः ॥ २५ ॥
दत्तवस्तिर्विरिक्तश्चवांतितृष्णाश्रमान्वितः ॥
अकालप्रसवानारीदुर्दिनेचविवर्जयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ–अजीर्णका विकार और उदररोग है जिसके, तथा तरुणज्वर, दुर्बल, अरुचि रोगी स्थूल मनुष्य मूर्च्छा और मद इन करके पीडित, वस्तिकर्म किया हुआ, तथा जिसको दस्त होते हों, या विरेचन लिया हो, वमन तथा प्यास इन करके युक्त, एवं प्रसूत होनेके कालको छोडकर अन्य कालमें प्रसूता स्त्री इतने रोगियोंको दुर्दिनमें कोईसा घृतादि स्नेहपान नहीं करना चाहिये ॥

स्नेहपान योग्य मनुष्य ।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्ताचिन्तकाः ॥
वृद्धाबालाः कृशारूक्षाःक्षीणास्राक्षीणरेतसः ॥ २७ ॥
वातार्तितिमिरार्तायेतेषांस्नेहनमुत्तमम् ॥

अर्थ–औषधाधिक करके जिनका पसीना निकला है ऐसे शोधन किये हुए मनुष्य, मद्य पीनेवाले, स्त्रीमें आसक्त, परिश्रम कर चुके हों, चिन्ता करके व्याप्त, वृद्ध, बालक, कृश, रूक्ष, क्षीण है रुधिर और धातु (वीर्य) जिन्होंके, बादीसे पीडित और तिमिररोगसे व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्य घृतादिक स्नेह पीनेके योग्य हैं ऐसा जानना ॥

सम्यक्स्नेहपानके लक्षण ।

वातानुलोम्यंदीप्तोग्निवर्चःस्निग्धमसंहतम् ॥ २८ ॥
मृदुस्निग्धांगताग्लानिःस्नेहोवेगोऽङ्गलाघवम् ॥
विमलेन्द्रियतासम्यक्स्निग्धेरूक्षेविपर्ययः ॥ २९ ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेसे अंगकी रूक्षता दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होता है उसके लक्षण वायुका अनुलोमन होवे, अग्नि प्रदीप्त हो, मल स्निग्ध तथा साफ होय, शरीर नम्र सचिक्कण और ग्लानिरहित होता है । घृतादि स्नेहोंके सेवन न करनेसे उनको उपद्रव नहीं होते, शरीर हलका होवे तथा इन्द्री निर्मल होवे इस प्रकार उत्तम स्नेहपान गुण करता है । एवं रूक्ष मनुष्य ऊपर कहे हुए लक्षणोंसे विपरीत लक्षणवाला होता है अर्थात् शरीरमें स्नेह करके स्नेह न होनेसे जो रूक्ष होता है उसके विपरीत लक्षण होते हैं ॥

अत्यन्तस्नेहपानके लक्षण ।

भक्तद्वेषोमुखस्रावोगुदेदाहः प्रवाहिका ॥
तन्द्रातिसारःपांडुत्वंभृशंस्निग्धस्यलक्षणम् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो मनुष्य घृतादिक स्नेह बहुत पीता है । उसके लक्षण—भोजनमें अप्रीति, मुखसे लारका गिरना, गुदामें दाह होना, प्रवाहिका, नेत्रोंमें तन्द्रा, अतिसार और देह पीला पडजाने ये लक्षण बहुत स्नेहपान करनेके जानने ॥

रूक्षको स्निग्ध और स्निग्धको रूक्ष करना ।

रूक्षस्यस्नेहनंस्नेहैरतिस्निग्धस्यरूक्षणम् ॥
श्यामाकचणकाद्यैश्चतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ ३१ ॥

अर्थ—रूक्षमनुष्यको स्निग्ध पदार्थ जैसे तत्काल मक्खन निकाली हुई छाछ, तिलका कल्क चूर्ण करके स्निग्ध करे । एवं स्निग्ध मनुष्यको रूक्ष पदार्थ जैसे शामखिया और चने आदिसे रूक्ष करना चाहिये ॥

स्नेहादिक सेवनके गुण ।

दीप्ताग्निःशुद्धकोष्ठश्चपुष्टधातुर्जितेन्द्रियः ॥
निर्जरोबलवर्णाढ्यःस्नेहसेवीभवेन्नरः ॥ ३२ ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेहोंके सेवन करनेसे मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होती है, कोठा शुद्ध होता है, शरीरकी रसादिक धातु पुष्ट होती है । वह मनुष्य जितेन्द्री होवे, वृद्धावस्थारहित तथा बल कांति इन करके युक्त होता है । ये गुण स्नेह सेवन करनेसे होते हैं ॥

स्नेहपानमें वर्ज्य पदार्थ ।

स्नेहव्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् ॥
दिवास्वप्नमभिष्यंदिरूक्षान्नंचविवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ—स्नेह पीनेवाले मनुष्यको परिश्रम करना, अत्यन्त शीतल पदार्थ, मलमूत्रादिके वेगोंका धारण, जागना, दिनमें सोना, कफकारी पदार्थ तथा रूक्षान्न इतनी वस्तु वर्जित हैं ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृतमाथुरीभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

स्नेहपानानन्तर पसीने काढनेकी विधि तहां उसके भेद कहते हैं।

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मौस्वेदसंज्ञितौ ॥
उपनाहोद्रवः स्वेदः सर्वेवातार्तिहारिणः ॥ १ ॥

अर्थ—पसीने निकालनेकी विधि चार प्रकारकी है। जैसे—१ ताप[1] २ ऊष्म[2] ३ उपनाह[3] और ४ द्रव[4] ये चारों बादीकी पीडा दूर करनेवाले हैं॥

स्वेदौतापोष्मजौप्रायः श्लेष्मघ्नौसमुदीरितौ ॥
उपनाहस्तुवातघ्नः पित्तसंगेद्रवोहितः ॥ २ ॥

अर्थ—ताप और ऊष्म इन नामोंवाले जो स्वेद निकालनेके प्रकार हैं वे दोनों कफके नाशक हैं। उपनाहनामक जो स्वेद काढनेका प्रकार है वह बादीका नाश करता है और द्रवसंज्ञक स्वेद निकालनेका जो प्रकार है वह पित्त और बादीको नष्ट करता है॥

बादीकी तारतम्यताके साथ न्यूनाधिक स्वेदकी योजना।

महाबलेमहाव्याधौशीतेस्वेदोमहान्स्मृतः ॥
दुर्बलेदुर्बलः स्वेदोमध्येमध्यतमोमतः॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्राणिके देहमें घोर बादीका रोग है उसके देहसे शीतकालमें बहुत पसीने निकालने चाहिये। थोडा रोग होय तो देहसे थोडे पसीने निकाले एवं देहमें मध्यम रोग होय तो वैद्य उस रोगीके देहसे मध्यम पसीने निकाले। इसमें भी देशकाल आदिका विचार वैद्यको करना मुख्य है॥

रोगविशेषकरके स्वेदविशेषकी याजना।

बलासेरूक्षणः स्वेदोरूक्षस्निग्धः कफानिले ॥
कफमेदोवृतेवातेकोष्णगेहंरवेः करान् ॥ ४ ॥
नियुद्धंमार्गगमनंगुरुप्रावरणंध्रुवम् ॥
चिन्ताव्यायामभारांश्चसेवेतामयमुक्तये ॥ ५ ॥

---

[1] वालुकादिकोंकी पोटलीसे शरीरको तपायकर पसीने निकालनेको ताप कहते हैं।

[2] काढे आदिका बफारा देकर पसीने निकालनेको ऊष्म कहते हैं।

[3] रोगके स्थानपर औषधादिकोंकी पिंडी बाँधके पसीने निकालनेको उपनाह कहते हैं।

[4] पतले द्रव्यके योग करके पसीने काढे उसको द्रव कहते हैं।

अर्थ–कफका रोग होनेसे रूक्षपदार्थ जैसे वालुकादिक इनसे अंगका पसीना निकाले । कफ वायुके रोगमें स्निग्ध[1] तथा रूक्ष इन दोनों पदार्थों करके पसीने निकाले । एवं कफमेदोयुक्त बादीका रोग होय तो जिस घरमें गरमी होय उस जगह बैठकर अंगको सहन होय ऐसी थोडी २ गरमीको सहन करे, तथा सूर्यकी किरण (धूप) खाय, कुस्ती लडे, कुछ थोडा मार्ग चले, कंबल सौड रजाई इत्यादिक ओढे, चिंता करे, प्रातःकाल बैठा न रहे, परिश्रम करे तथा किसी एक अंगपर बोझा धारण करे । इतने उपाय पसीने निकालनेको करे तो कफ और मेदोयुक्त बादीका रोग दूर होय ॥

जिनके प्रथम पसीने काढना ।

येषांनस्यंविधातव्यंवस्तिश्चापिहिदेहिनाम् ॥
शोधनीयाश्चयेकेचित्पूर्वंस्वेद्याश्चतेमताः ॥ ६ ॥

अर्थ–जो मनुष्य नस्यकर्म[2]के योग्य हैं तथा बस्ति[3]कर्मके योग्य हैं तथा दस्त देने योग्य हैं इतने मनुष्योंके अंगसे प्रथम पसीने काढकर फिर नस्यादि यत्न करने चाहिये ॥

भगन्दरादिरोगमें स्वेदनकी आज्ञा ।

स्वेद्याः पूर्वंत्रयोऽपीहभगंदर्यर्शस्तथा ॥
अश्मर्यांश्चातुरोजन्तुः शमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥ ७ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके भगंदर रोग हो तथा बवासीरवाला और पथरीरोग करके पीडित ऐसे तीन प्रकारके मनुष्योंके अंगका प्रथम पसीना निकालके फिर शस्त्रकर्म करके इन रोगोंको शमन करे अर्थात् इन रोगोंमें स्वेदन करनेसे वह नम्र होकर शस्त्र कर्मके योग्य होजाता है ॥

पश्चात् पसीने निकालने योग्य प्राणी ।

पश्चात्स्वेद्यागतेशल्येमूढगर्भगदेतथा ॥
कालेप्रजाताकालेवापश्चात्स्वेद्यानितंबिनी ॥ ८ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीके उदरमें गर्भका शूल होवे उसका पतन होनेके पश्चात्, मूढगर्भका पतन होनेके पश्चात्, तथा नौ महीनेके पश्चात्, अथवा नौ महीनेके पूर्व प्रसूत होनेसे उस स्त्रीके देहसे पसीने निकाले ॥

---

[1] घृतादिक स्निग्ध और वालुकादिक रूक्ष इन दोनोंकी एकत्र पोटली बनायके देहको सेके। वे संपूर्ण उपाय तापसंज्ञक पसीनेके जानने ।

[2] नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्य कर्म कहते हैं ।

[3] गुदामें पिचकारी मारनेके कर्मको वस्ति कहते हैं ।

पसीने निकालनेमें देश और काल।

सर्वान्स्वेदान्निवातेचजीर्णाहारेचकारयेत् ॥

अर्थ—ये चारों प्रकारके पसीने मनुष्योंक आहार पचनेके पश्चात् जिस स्थानमें वायुका लेशमात्र न आता होवे। उस जगह करने चाहिये॥

पसीने काढनेपर किस मार्गसे दोष दूर होते हैं।

स्वेदाद्धातुस्थितादोषाः स्वेहस्निग्धस्यदेहिनः॥ ९॥
द्रवत्वंप्राप्यकोष्ठांतर्गतायांतिविरेकताम् ॥

अर्थ—औषधादिकों करके मनुष्यके अंगसे पसीन निकालनेसे तथा किसी बडे बरतनमें तेल[१] भरके उसमें मनुष्य बैठनेसे उसके रसादिक धातुओंमें रहनेवाला वातादिक दोष कोष्टमें जायकर पतले हो गुदाके द्वारा गिरते हैं॥

पसीने निकालनेके पश्चात् दस्त होनेसे उसकी चिकित्सा।

स्विद्यमानशरीरस्यहृदयंशीतलैःस्पृशेत् ॥ १०॥
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्यशीतैराच्छाद्यचक्षुषी ॥

अर्थ—मनुष्यके पसीने निकालनेसे उस रोगीके दोष पेटमें पतले होकर गुदाके द्वारा निकाले जावे तब उसका छातीमें चंदनका लेप करे तो प्रकृति स्वस्थ होय। तथा जो मनुष्य तेलमें बैठा हो उसके दोष पतले होकर गुदाके द्वारा निकाले जाव तब नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतल करनेको रक्खे तो ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होवे॥

स्वेदके अयोग्य मनुष्य।

अजीर्णीदुर्बलोमेहीक्षतक्षीणःपिपासितः ॥ ११॥ अतिसारी
रक्तपित्तीपांडुरोगीतथोदरी॥ मदार्तोगर्भिणीचैवनहिस्वेद्यावि-
जानता॥ १२॥ एतानपिमृदुस्वेदैःस्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ--अजीर्ण दुर्बलता प्रमेह उरःक्षत अत्यंत तृषा अतिसार रक्तपित्त पांडुरोग उदर और मद इनमेंसे कोईसा विकार जिस मनुष्यके होवे वह तथा गर्भिणी स्त्री रोगी पसीने काढनेके ये योग्य नहीं हैं अर्थात् इनके देहसे पसीने न निकाले। यदि ये रोगी पसीने निकालनेसे ही अच्छे होते दीखें तो हलके उपाय करके थोडे पसीने निकाले॥

अल्प पसीने निकालने योग्य रोगीके अंग।

मृदुस्वेदंप्रयुंजीततथाहृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ १३॥

---

[१] नाभीके नीचे चार अंगुल तेल आवे इतना तेल उस पात्रमें भरके बैठे।

अर्थ–हृदय अंडकोश और नेत्र इनका पसीना होय तो थोडा निकाले ॥

अत्यंत पसीने निकालनेके उपद्रव ।

अतिस्वेदात्संधिपीडादाहस्तृष्णाक्लमोभ्रमः ॥
पित्तासृक्पिटिकाकोपस्तत्रशीतैरुपाचरेत् ॥ १४ ॥

अर्थ--देहसे अत्यंत पसीने निकालनेसे सर्व संधियोंमें पीडा हो, तृषा, ग्लानि, श्रम और रक्तपित्त ये उपद्रव हों । तथा देहपर फुन्सी प्रगट होवे । इनके नष्ट करनेको शीतल उपाय करे तो स्वेदके उपद्रव दूर होवें ॥

चार प्रकारके पसीनोंमें तापसंज्ञक पसीनेके लक्षण ।

तेषुतापाभिधः स्वेदोबालुकावस्त्रपाणिभिः ॥
कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यंप्रजायते ॥ १५ ॥

अर्थ--चार प्रकारके पसीने हैं उनमें ताप इस नाम करके पसीना है वह१ वालु, २ वस्त्र, ३ हाथ, ४ खिपडा, ५ कपडेकी गद और ६ अंगार इन करके वालुकादिक जैसी २ शक्ति है उसी २ प्रकारका उत्पन्न होता है ॥

ऊष्म तापसंज्ञकपसीनेके लक्षण ।

ऊष्मस्वेदःप्रयोक्तव्योलोहपिंडेष्टकादिभिः ॥ प्रतप्तैरम्लसिक्तै-
श्चकायेरल्लकवेष्टिते ॥ १६ ॥ अथवा वातनिर्णाशिद्रव्याध्या-
यरसादिभिः ॥ उष्णैर्घटंपूरयित्वापार्श्वेछिद्रंनिधायच ॥ १७॥
विमृद्यास्यंत्रिखंडांचधातुजांकाष्ठवंशजाम् ॥ षडंगुलास्यां
गोपुच्छांनलींयुज्याद्विहस्तकाम् ॥ १८ ॥ सुखोपविष्टं स्व-
भ्यक्तंगुरुप्रावरणावृतम् ॥ हस्तिशुंडिकयानाड्यास्वेदयेद्वात-
रोगिणम् ॥ १९ ॥ पुरुषायाममात्रांवाभूमिमुत्कीर्यखादिरैः ॥
काष्ठैर्दग्ध्वातथाभ्युक्ष्यक्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ २० ॥ वात-
घ्नपत्रैराच्छाद्यशयानंस्वेदयेन्नरम् ॥ एवंमाषादिभिः स्विन्नैः
शयानः स्वेदमाचरेत् ॥ २१ ॥

---

१ ये छः प्रकार कहे हैं । इनकी क्रिया इस प्रकार है कि खैरके अथवा कणखर लकडीके धुएं रहित तथा दहकते हुए अंगारे करके उनपर बालूको तपावे फिर उस वालूको अंडके पत्तोंपर रखे उसकी पुडिया बांधके मनुष्यकी देहको सेंके तो अंगोंसे पसीने निकले । यह पसीने निकालने एक प्रकार है ।

अर्थ–ऊष्मा इस नाम कर जा पसाना है उसकी क्रिया लोहेका गोला अथवा ईंटको तपाय उसपर थोडा खट्टे पदार्थका छिडकाव करके रोगीको कंबल उढायके उस गोलेसे अथवा ईंटसे उस रोगीके अंगोंको सेंके तो पसीने निकले। यह एक प्रकार है। अथवा दशमूलादिक वातनाशक औषधोंके काढेसे अथवा उन औषधोंके रसको गरम कर मिट्टीकी गागरमें भरके उस गागरके मुखपर मुद्रा देकर मुखको बंद कर देवे। फिर उस गागरके कूखमें छिद्र कर धातुकी अथवा लकडीकी अथवा बाँसकी दो हाथकी नली बनावे उस नलीमें तीन संधि करे उनका मुख छः अंगुल लंबा और ऊँचा अथवा गौकी पूँछके समान करे। इस नलीका आकार हाथीकी सूंडके सदृश होनेसे इसको हस्तिशुंडिकानाडी कहते हैं। फिर इस नलीको गागरकी कूखमें उस छिद्रमें जडके फसाकर संधियोंको बंद कर देवे। फिर बादीसे पीडित जो मनुष्य उसको स्वस्थ बैठाके देहमें घी अथवा तेलकी मालिश करके सोड रजाई अथवा कंबल ओढा उस कपडेके भीतर उस नलीका मुख करके देहसे पसीने निकाले। अथवा मनुष्यके साढे तीन हाथ अथवा चार हाथ लंबी जमीन खोद उसमें खैरकी लकडी भरके जलावे। कोला होजावें तब तत्काल उनको निकालके उस जमीनमें दूध धान्योदक छाछ अथवा काँजी इनसे छिडककर तथा उस जमीनमें बादीहरण करता औषधोंके पत्ते बिछाय उसपर रोगीको सुलायके रोगीके देहके पसीने निकाले। इसी प्रकार उडदोंको ले उनको थोडेसे उबाल जब अधकच्चे होजावें तब उनको तपी हुई पृथ्वीमें फैलायके उनके ऊपर अंडके पत्ते आदि वातहारक आपधाके पत्ते डालके उसपर रोगीको सुलायके ऊपरसे कंबल उढायके अंगके पसीने निकाले। इस प्रकार ऊष्मसंज्ञक पसीनेके लक्षण जानने॥

उपनाहसंज्ञकस्वेदके लक्षण।

अथोपनाहस्वेदंचकुर्याद्वातहरौषधैः ॥ प्रदिह्यदेहंवातार्तंक्षीर-
मांसरसान्वितैः॥२२॥ अम्लपिष्टैःसलवणैः सुखोष्णैःस्नेहसंयुतः॥

---

१ छाछ कांजी इत्यादिक खट्टे पदार्थ।

२ उस गागरके मुखपर डाट दक उसको दहकते हुए कोलोंपर धरे तो उस नलीके रास्ते बाफ उत्तम प्रकारसे बाहर निकले।

३ ताम्र लोह इत्यादि धातुओंकी नली बनावे।

४ अंडके पत्ते आकके पत्ते निर्गुंडी इत्यादिकोंके पत्तोंको वातहर जानने। अथवा अंगारोंपर अपने हाथ गरम २ करके रोगीके अंगोंको सेंके तथा कपडेकी गेंद करके अंगारोंपर गरम कर उस गेंदसे रोगीके अंगोंको सेंके। अथवा केवल कपडेकोही अंगारोंसे गरम करके उस कपडेसे अंगोंको सके। अंगारोंको खिपडेमें भर उस खिपडेसे युक्तिके साथ रोगीके अंगमें सेंक लगे इस प्रकार रक्खे। इतने उपायोंसे पसीना निकलता है।

अर्थ—उपनाह नामक स्वेदकी क्रिया कहते हैं। दशमूलादि वायुहारक औषधोंको कूटकर चूर्ण कर उसमें दूध और हरिणादिकोंके मांसका स्नेह दोनों मिलायके कुछ गरम करके वायु पीडित जो अंग उस अंगको सहन होय ऐसा गाढा लेप करके वस्त्रादिक पट्टीसे बाँध अंगका पसीना निकाले। अथवा वातहर औषधोंको कूटकर चूर्ण करे उसको छाछमें अथवा काँजीमें पीसके उसमें थोडा सैंधानमक और तिलका तेल मिलाय कुछ गरम करके वादीसे पीडित अंगपर सहता २ गाढा लेप करक वस्त्रादिकसे बाँधकर अंगका पसीना निकाले। इसको उपनाहसंज्ञक क्रिया कहते हैं ॥

दूसरा प्रकार महाशाल्वणप्रयोग।

उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेनच ॥ २३ ॥
दधिसौवीरकक्षारैर्वीरतर्वादिनातथा ॥
कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥ २४ ॥
शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ॥
एरंडमूलबीजैश्चरास्नामूलकशिग्रुभिः ॥ २५ ॥
मिशिकृष्णाकुठेरैश्चलवणैरम्लसंयुतैः ॥
प्रसारिण्यश्वगंधाभ्यांबलाभिर्दशमूलकैः ॥ २६ ॥
गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभंसमाहृतैः ॥
क्षुण्णैःस्विन्नैश्चवस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥ २७ ॥
महाशाल्वणसंज्ञोऽयंयोगः सर्वानिलार्तिजित् ॥

अर्थ—ग्राम्यमांस[1], आनूप[2]मांस, जीवनीय[3]गणकी औषधि, गौका दही, सौवीर[4], सज्जीखार, जवाखार, रेहका खार, वीरतर्वा[5]दिगणकी औषधि, कुलथी, उडद, गेहूँ, अलसी, तिल, सरसों, सौंफ, देवदारु, निर्गुंडी, कलौंजी, अंडकी जड, अंडके बीज, रास्ना, मूली, सहँजना, हालो, पीपल, वनतुलसी, पांचों नमक, अनारदाना, प्रसारिणी, असगंध, गंगेरनकी छाल, दशमूलकी सब औषधि, गिलोय और कौंचके बीज इन संपूर्ण औषधियोंमेंसे जो मिले उन

---

[1] मुरगा बकरा भेड इत्यादिकोंके मांसको ग्राम्यमांस कतहे हैं।

[2] जलमुरगावी बतक चकवा और मछली आदि जलचरोंके मांसको आनूपमांस कहते हैं।

[3] जीवनीयगणकी औषधें दूसरे खंडमें लिखी हैं।

[4] कच्चे अथवा पके जवोंको कूट तुष निकाल पानी डालके तीन दिन भरा रहने दे उसको सौवीर कहते हैं। इसी प्रकार गेहूँकाभी जानना।

[5] येभी वीरतर्वादि काढेमें देखो।

सबको लायके कूट डाले। फिर कुछ गरम करके कपडेकी पोटली बांधके उस पोटलीसे रोगीके अंगोंको सेंके तो संपूर्ण बादीकी पीडा दूर होय। इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहते हैं इस प्रकार उपनाहसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने॥

द्रवसंज्ञकस्वेदके लक्षण।

द्रवस्वेदस्तुवातघ्नद्रव्यक्काथेनपूरिते ॥ २८ ॥ कटाहेकोष्ठकेवापिसूपविष्टोऽवगाहयेत् ॥ सौवर्णेराजतेवापिताम्रआयसदारुजे ॥ २९ ॥ कोष्ठकंतत्रकुर्वीतोच्छ्रायेषट्त्रिंशदंगुलम् ॥ आयामेनतद्वस्याच्चतुष्कंकसृणितथा ॥ नाभेःषडंगुलंयावन्मग्नःक्काथस्यधारया ॥ ३० ॥ कोष्ठकेस्कन्धयोःसिक्त्वातिष्ठेत्स्निग्धतनुर्नरः ॥ एवंतैलेनदुग्धेनसर्पिषास्वेदयेन्नरम् ॥ ३१ ॥ एकांतरेद्व्यंतरेवास्नेहोयुक्तोऽवगाहने ॥ शिरामुखैरोमकूपैर्धमनीभिश्चतर्पयेत् ॥ ३२ ॥ शरीरबलमाधत्तेयुक्तःस्नेहावगाहने ॥ जलसिक्तस्यवर्धंतेयथामूलेंऽकुरास्तरोः ॥ ३३ ॥ तथाधातुविवृद्धिर्हिस्नेहसिक्तस्यजायते ॥ नातःपरतरःकश्चिदुपायोवातनाशनः॥३४॥

अर्थ—द्रव इस नाम करके जो स्वेद है उसकी क्रिया अर्थात् काढनेकी विधि कहते हैं। दशमूलादि वातहारक औषधोंका काढा करके रोगीके देहमें घी अथवा तेलकी मालिश करे। उसको कडाहीमें अथवा तांबेके बडे पात्रमें बैठायके पूर्वोक्त काढेकी गरमागरम सुहाते २ की धार उस मनुष्यके कन्धोंपर डाले। यह धार टूंडी (नाभि) पर छः अंगुल पर्यंत चढे तहांतक डालता रहे। इस प्रकार तेलकी दूधकी अथवा घीकी धार डाले और उसको वर्मयुक्त करे। इस प्रकार एक दिनको बीच देकर अथवा दो दिन बीचमें देकर करे तो शिराओंके मुखद्वारा रोगोंके छिद्रोंमें होकर तथा नाडीके मार्गोंमें होकर ये स्नेहादि पदार्थ शरीरके अभ्यंतर प्रविष्ट होकर शरीरमें बल उत्पन्न करते हैं, इस विषयमें दृष्टान्त है कि जैसे वृक्षकी जडमें बारंबार जलसेचन करनेसे वृक्ष बढता है उसी प्रकार तैलादिकोंमें बैठनेसे मनुष्यके रसादि सात धातु बढती हैं और बादीका नाश होता है। इस उपायकी अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नहीं है॥

पसीने निकालनेकी अवधि।

शीतशूलाद्युपरमेस्तंभगौरवनिग्रहे ॥
दीप्तेऽग्नौमार्दवेजातेस्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३५ ॥

अर्थ–अंगसे शरदी और शूल (दर्द) इनकी शांति होनेपर अंगका स्तंभ तथा भारीपन ये दूर होनेसे तथा आम्न प्रदीत होनेसे अंगोंमें नम्रता आनेपर रोगीकी देहसे पसीना निकालना बंद करे ॥

स्वेद निकालनेके पश्चात् उपचार ।

सम्यक्स्विन्नंविमृदितंस्नानमुष्णांबुभिःशनैः ॥
भोजयेच्चानभिष्यंदिव्यायामंचनकारयेत् ॥ ३६ ॥
इति शार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके अंगसे पसीने निकाले हैं उसको और जिसके देहमें तेलकी मालिश की है उसको धीरे २ गरम जलसे स्नान करावे । कफकारी पदार्थ खानेको न देवे तथा परिश्रम न करे । इस प्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायांसंहितायामुत्तरखंडेदत्तरामकृतमाथुरभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ३.

वमनविरेचनकाल ।

शरत्कालेवसंतेचप्रावृट्कालेचदेहिनाम् ॥
वमनंरेचनंचैवकारयेत्कुशलोभिषक् ॥ १ ॥

अर्थ–शरद्[1] कालमें वसन्त[2] कालमें और प्रावृट्[3] कालमें कुशल वैद्य मनुष्यको वमनकी औषध देकर रद्द करावे और दस्तकारी औषधि (जुलाब) देवे तो प्रकृति ठीक रहे । कुशल वैद्यको कहनेसे यह प्रयोजन है कि वमन और विरेचन मूढ वैद्यसे न करावे । क्योंकि मूढ वैद्यद्वारा वमन विरेचन करानेसे प्राणबाधाका भय रहता है ॥

वमन कराने योग्य रोगी ।

बलवन्तंकफव्याप्तंहृल्लासार्तिनिपीडितम् ॥ तथावमनसात्म्यंच
धीरचित्तंचवामयेत् ॥ २ ॥ विषदोषेस्तन्यरोगेमन्देऽग्नौश्लीपदे-
ऽर्बुदे ॥ हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषुच ॥ ३ ॥ विदारिका-
पचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु ॥ अपस्मारज्वरोन्मादेतथारक्ता-
तिसारिषु ॥ ४ ॥ नासातालवोष्ठपाकेषुकर्णस्रावेद्विजिह्वके ॥

---

[1] तुला वृश्चिक संक्रांतिस शरत्काल होता है ।

[2] कुंभ मीनकी संक्रांतिका वसन्तकाल होता है ।

[3] वर्षाकालके प्रारंभको प्रावृट्काल कहते हैं । सो मिथुन कर्कसंक्रांतिका जानना ।

गलशुंड्यामतीसारेपित्तश्लेष्मगदेतथा ॥ ५ ॥ मेदोगदेऽरुचौ-
चैववमनंकारयेद्भिषक् ॥

अर्थ-बलवान् मनुष्य जो कफसे व्याकुल है, जिसके मुखसे लार बहती हो, जिसको वमन करना सहजाता हो, धीर चित्तवाला, विषदोष, स्तन्यरोग, मंदाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, गंडमालाका भेद अपचीरोग, खांसी, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुंडी, अतिसार, पित्त श्लेष्मके रोग, मेदोरोग और अरुचि इनमेंसे रोग जिसके होय उस रोगीको वैद्य वमन करावे ॥

वमनमें अयोग्य प्राणी ।

नवामनीयस्तिमिरीनगुल्मीनोदरीकृशः ॥ ६ ॥
नातिवृद्धोगर्भिणीचनचस्थूलः क्षतातुरः ॥
मदार्तोबालकोरूक्षः क्षुधितश्चनिरूहितः ॥ ७ ॥
उदावर्त्यूर्ध्वरक्तीचदुश्छर्दिः केवलानिली ॥
पांडुरोगीकृमिव्याप्तः पठनात्स्वरघातकः ॥ ८ ॥
एतेऽप्यजीर्णव्यथितावाम्यायेविषपीडिताः ॥
कफव्याप्ताश्चतेवाम्यामधुकक्काथपानतः ॥ ९ ॥

अर्थ-तिमिर गोला और उदर इन रोगवाले मनुष्य तथा अतिकृश, अतिवृद्ध, गर्भिणी स्त्री, बडे स्थूल पुरुष, उरःक्षत करके तथा मद करके पीडित, बालक, रूक्ष, क्षुधित (भूखा), निरूहित (गुदाद्वारा पिचकारी दीनी जिसके), जिसके उदावर्त रोग हो, ऊर्ध्वरक्ती[2], जिसको वमन नहीं होती हो, जिसके केवल बादीका रोग होय, पांडुरोगी, कृमिरोगी, तथा वेदशास्त्रके अत्यंत उच्चस्वर पढनेसे जिसका कंठ बैठगया हो इतने रोगियोंको वमन नहीं कराना चाहिये, यदि ये रोगी अजीर्ण करके अथवा कफ करके व्याप्त होवें तो इनको मुलहटीकी अथवा महुएकी छालका काढा पिलायके वमन करावे ॥

वमनके अयोग्य प्राणी ।

सुकुमारंकृशंबालंवृद्धंभीरुंनवामयेत् ॥

---

[1] ये संपूर्ण रोग प्रथमखंडकी सातवें अध्यायमें कहे हैं उनसे जानलेना ।

[2] रक्तपित्तके कोप करके जिनके ऊर्ध्व (मुख नासिका आदि होकर) रुधिर गिरे उसको ऊर्ध्वरक्तपित्ती जानना ।

अर्थ-सुकुमार (नाजुक) मनुष्य कृश[1] बालक वृद्ध डरपोक इन पांच मनुष्योंको वमनकर्ता नहीं देनी चाहिये ॥

वमनमें विहितपदार्थोंको कहते हैं ।

पीत्वायवागूमाकंठंक्षीरतक्रदधीनि च ॥ १० ॥
असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्यदेहिनः ॥
स्निग्धस्विन्नायवमनंदत्तंसम्यक्प्रवर्तते ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यको वमन कराना होवे उसको प्रथम पेट भरके यवागू[2] दूध छाछ अथवा दही पीनेको देवे । जो पदार्थ अपनी प्रकृतिको न भावते हों वे पदार्थ तथा कफकारी पदा खानेको देकर मनुष्योंके दोषोंको उत्क्लेशित करें तो उस मनुष्यको भले प्रकार वमन होवे। जि मनुष्यने घृतपान और स्वेदकर्म किया है उस मनुष्यको एक दिन बीचमें देकर वमन करा उत्तम है अर्थात् इस प्रकार करनेसे उत्तम रद होती है ॥

वमनमें सहायकपदार्थ ।

वमनेषुचसर्वेषुसैन्धवंमधुवाहितम् ॥
बीभत्संवमनंदद्याद्विपरीतंविरेचनम् ॥ १२ ॥

अर्थ-जितने वमनकारकप्रयोग उन सबमें सधवनमक अथवा सहत इनको मिलावे तो हि कारी है । वमन देवे तो बीभत्स[3] (अरोचक वस्तु) देवे और विरेचनमें रोचक पदार्थ (औषध) दे

वमनप्रयोगमें काढे करनेका प्रमाण ।

क्वाथ्यद्रव्यस्यकुडवंश्रपयित्वाजलाढके ॥
अर्धभागावशिष्टंचवमनेष्ववचारयेत् ॥ १३ ॥

अर्थ-काढेकी औषधि १ कुडव[4] ले कुछ कूटके उसमें एक आढक[5] जल डालके औटावे ज आधा जल रहजावे तब उतार छानके वमनके वास्ते पनिका देवे ॥

---

[1] कृश बालक और वृद्ध इनको वमन न करावे ऐसा प्रथमही लिख आये हैं परन्तु निश्चयार्थ फिरभी लिखा है ऐसे जानना चाहिये ।

[2] चावलोंको कूटके उसमें छः गुना जल मिलायके औटावे जब एक जीव होजावे तब उतार लें इसको यवागू कहते हैं ।

[3] वमन करानेवाली औषधोंमें घी मिलायके वमन देनेको बीभत्स वमन कहते हैं ।

[4] चार पलोंका कुडव जानना उस कुडवके व्यावहारिक तोले १६ होते हैं ।

[5] चार प्रस्थका एक आढक जानना उस आढकके तोले २५६ होते हैं ।

वमनमें काढा पीनेका प्रमाण ।

काथपानेनवप्रस्थाज्येष्ठामात्राप्रकीर्तिता ॥
मध्यमाषण्मताप्रोक्तात्रिप्रस्थाचकनीयसी ॥ १४ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यको वमन करना है उसको नौ प्रस्थ[1] काढा पीना बडी मात्रा जाननी । छः प्रस्थ काढा पीना मध्यम मात्रा है और तीन प्रस्थ काढेकी मात्रा लघुमात्रा जाननी चाहिये ॥

वमनमें कल्कादिकोंका प्रमाण ।

कल्कचूर्णावलेहानांत्रिपलंश्रेष्ठमात्रया ॥
मध्यमंद्विपलंविद्यात्कनीयस्तुपलंभवेत् ॥ १५ ॥

अर्थ-कल्क[2] चूर्ण और अवलेह ये तीन २ पल लेना बडी मात्रा कहलाती है । दो पलकी मध्यम मात्रा जाननी तथा एक पलकी छोटी मात्रा जाननी चाहिये ॥

वमनमें उत्तम मध्यम और कनिष्ठ वेगोंका प्रमाण ।

वमनेचापिवेगाः स्युरष्टौपित्तांतमुत्तमाः ॥
षड्वेगामध्यवेगाश्चचत्वारस्त्ववरामताः ॥ १६ ॥

अर्थ-इस प्राणीको वमनकारक औषधि देनेसे सात वेग पर्यंत संपूर्ण दोष निकलकर आठवें वेगमें पित्त निकले तो उत्तम वेग जानने । उसी प्रकार पांच वेग पर्यंत दोष निकलके छठे वेगमें पित्त पडनेसे वे मध्यम वेग जानने । एवं तीन वेग पर्यंत दोष निकलके चतुर्थ वेगमें पित्त निकले तो उस प्राणीको वमनक हीनवेग हुए ऐसे जानना ॥

वमनके विषयमें प्रस्थका प्रमाण ।

वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ॥
सार्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥

अर्थ-वमन होनेके विषयमें तथा दस्त होनेमें जो औषध प्रस्थप्रमाण लेनी कही है वहांपर १३॥ साढे तेरह पलका प्रस्थ लेना चाहिये और फस्त खोलनेमेंभी १३॥ साढे तेरह पलका प्रस्थ लेना ऐसी शास्त्राज्ञा है ॥

वमनमें औषधविशेषकरके कफादिकका जय ।

कफंकटुकतीक्ष्णेनपित्तंस्वादुहिमैर्जयेत् ॥

---

[1] वमनविषयमें जो काढा लेना कहा है तहां १३॥ पलका एक प्रस्थ जानना इस हिसाबसे नौ प्रस्थका काढा लेवे ।

[2] सूखी औषधमें जल डालके चटनीके समान पीसे उसको कल्क कहते हैं ।

सस्वादुलवणाम्लोष्णैःसंसृष्टंवायुनाकफम् ॥ १८ ॥

अर्थ—कटु और तीक्ष्णं[1] औषधोंसे कफको जीते, मधुर[2] और शीतल औषधोंसे पित्त तथा मधुर क्षार अम्ल और उष्ण औषधोंसे वातमिश्रित कफको जीते ॥

कफादिकोंको वमनद्वारा निकालनेवाली औषध ।

कृष्णाराठफलैःसिंधुकफेकोष्णजलैः पिबेत् ॥
पटोलवासानिंबैश्चपित्तेशीतजलंपिबेत् ॥ १९ ॥
सश्लेष्मवातपीडायांसक्षीरंमदनंपिबेत् ॥
अजीर्णेकोष्णपानीयंसिंधुंपीत्वावमेत्सुधीः ॥ २० ॥

अर्थ—कफदोषमें पीपल मैनफल और सैंधानमक इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पिलावे तो वमनके साथ कफ निकले । तथा पित्तदोषमें पटोलपत्र अडूसा और कटुनिंबके पत्तोंका चूर्ण करके शीतल जलमें मिलायके पीवे तो वमनमें पित्त निकले । तथा कफवायुकी पीडा होय तो मैनफलके चूर्णको दूधमें डालके पीवे तो वमन करनेसे कफवायुकी पीडा दूर होवे । तथा अजीर्णमें गरम जलमें सैंधानमक डालके पीवे तो वमन होनेसे इस प्राणीका अजीर्ग दूर होवे ॥

वमन करनेमें बाह्योपचार ।

वमनंपाययित्वाचजानुमात्रासनेस्थितम् ॥
कण्ठमेरंडनालेनस्पृशंतंवामयेद्भिषक् ॥ २१ ॥
ललाटंवमतःपुंसःपार्श्वौद्वौचप्रबोधयेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकारक औषधि देकर घोटू २ ऊँचे आसनपर बैठावे । और अंडकी नालको लेकर उसको मुखमें डालके हलके हाथसे जैसे कफको स्पर्श करे इस प्रकार कंठको सिरावे इस प्रकार भीतर बाहरसे कंठको सिराय २ के वैद्य मनुष्यको रद्द करावे तथा उस रद्द करनेवालेके मस्तकको तथा उसकी दोनों कूख (पसलियोंको) धीरे २ हाथसे सिराना चाहिये॥

उत्तम वमन न होनेसे उपद्रव ।

प्रसेकोहृद्ग्रहःकोढः[3]कण्डूर्दुश्छर्दितान्द्भवेत् ॥ २२ ॥

---

१ सोंठ मिरच पीपल राई आदि तीक्ष्ण औषध कहलाती है ।

२ अनार मुनक्का दाख मिश्री आदि मधुर औषधि जाननी ।

३ मोहारकी मक्खीके काटनेसे जैसे चकत्ते देहमें हो जाते हैं उसी प्रकारके चकत्ते उठ मात्रमें नष्ट होजावें और उनमें खुजली होकर लालवर्ण हो जावें उसे कोढ कहते हैं ।

अर्थ—वमनका उत्तम योग न होनेसे मुखसे लार गिरे, हृदयमें पीडा होवे, देहमें कोढ और खुजली होय ॥

अत्यन्त वमन होनेके उपद्रव ।

अतिवांतेभवेत्तृष्णाहिक्कोद्गारौविसंज्ञता ॥
जिह्वानिःसर्पणंचाक्ष्णोऽर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः ॥ २३ ॥
रक्तच्छर्दिः ष्ठीवनंचकंठेपीडाच जायते ॥

अर्थ—मनुष्यको अत्यंत वमन होनेसे अत्यंत तृषा लगे, हिचकी, डकार आना, संज्ञाका नाश, जीभ मुखसे बाहर निकलपडे, नेत्र फटेसे होकर चंचल होवें, भ्रम, ठोडीका जकडना, अथवा पीडाका होना, मुखसे रुधिरका गिरना; वारंवार थूकना, तथा कंठमें पीडा ये उपद्रव अत्यंत वमन होनेसे होते हैं ॥

अत्यन्त वमन होनेकी चिकित्सा ।

वमनस्यातियोगेनमृदुकुर्याद्विरेचनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—यदि मनुष्यको अत्यंत रद्द होती होवें तो उसको हलकासा जुल्लाव करावे ॥

रद्द करते करते जीभ भीतर चली गईहो उसकी चिकित्सा ।

वमनांतःप्रविष्टायांजिह्वायांकवलग्रहः ॥
स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ॥ २५ ॥
फलान्यम्लानिखादेयुस्तस्यचान्येऽग्रतोनराः ॥

अर्थ—अत्यंत उलटी करते २ यदि मनुष्यकी जीभ भीतर धसगई हो तो मनको प्रसन्नताकारक खट्टे तीक्ष्ण मीठे नमकीन पदार्थ भातके साथ भोजनको देवे, मुँहमें धारण करे तथा घी और दूध ये भातके साथ देवे तथा उस रोगीके सामने दूसरा मनुष्य नींबू अथवा नारंगीको चूस २ कर खाय तो मनुष्यकी जीभ ठिकानेपर आनकर प्रकृति स्वच्छ होय ॥

रद्द करते २ जीभ बाहर निकलपडी होय उसका उपाय ।

निःसृतांतुतिलद्राक्षाकल्कंलिप्त्वाप्रवेशयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—मनुष्यकी जीभ रद्द करते २ यदि बाहर निकल आई हो तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभपर वैद्य लेप करके जीभको भीतर प्रविष्ट करे ॥

वमनसे नेत्रोंमें विकार होनेका उपचार ।

ऽव्यावृत्ताक्ष्णिघृताभ्यक्तेपीडयेच्चशनैःशनैः ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके उलटी करते २ नेत्र फटेसे हो गये हों उसके नेत्रोंमें हलके हाथसे घी लगायके ठिकानेपर करे ॥

उलटी करते २ ठोडी रहगई हो उसका उपचार ।

हनुमोक्षेस्मृतःस्वेदोनस्यंचश्लेष्मवातहृत् ॥ २७ ॥

अर्थ–मनुष्यकी उलटी करते २ ठोडी रह जावे उसके अंगोंका पसीना निकाले तथा कफवायु नाशक औषधी नाकमें डाले तो ठोडीका स्तंभ दूर होवे ॥

उलटी करते २ रुधिर गिरने लगे उसका उपाय ।

रक्तपित्तविधानेनरक्तच्छर्दिमुपाचरेत् ॥

अर्थ–मनुष्यको अत्यंत रद्द होनेसे अंतमें रुधिर गिरने लगे तो जो रक्तपित्त रोगपर उपाय कहे हैं उन उपायोंको करके रुधिरकी उलटीको शांत करे ॥

अत्यन्त वमन होनेसे अधिकतृषा लगनेका यत्न ।

धात्रीरसांजनोशीरलाजाचंदनवारिभिः ॥ २८ ॥
मंथंकृत्वापाययेच्चसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥
शाम्यंत्यनेनतृष्णाद्याः पीडाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥ २९ ॥

अर्थ–१ आँवले, २ रसोत्त[1], ३ खस, ४ साली चावलोंकी खलि, ५ लालचंदन और ६ नेत्रवाला इन छः औषधोंका मंथ[2] करके उसमें घी सहत और मिश्री डालके पीवे तो वमनके कारण जो तृषादिक उपद्रव होते हैं वे दूर होवें ॥

उत्तम वमन होनेके लक्षण ।

हृत्कंठशिरसांशुद्धिर्दीप्ताग्नित्वंचलाघवम् ॥
कफपित्तविनाशश्चसम्यग्वांतस्यचेष्टितम् ॥ ३० ॥

अर्थ–जो प्राणी उत्तम प्रकारकी उलटी करता है उसके लक्षण कहते हैं कि हृदय कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोष उनको दूर कर उनकी शुद्धि होवे, अग्नि प्रदीप्त हो, अंग हलके हों तथा कफदोष और पित्तदोष ये दोनों दूर होवें ॥

ततोऽपराह्णेदीप्ताग्निंमुद्गषाष्टिकशालिभिः ॥
हृद्यैश्चजांगलरसैः कृत्वायूषंचभोजयेत् ॥ ३१ ॥

---

[1] दारुहल्दीका काढा करके उसके समान बकरीका दूध उसमें मिलायके औटावे जब खोवा होजावे तब सुखायके चूर्ण करलेवे । इसको रसोत वा रसांजन कहते हैं ।

[2] आंवले आदि छः औषधोंको एक पल ले जवकूट करके ४ पल जल हांडीमें डाल औषध मिलायके मथ डाले फिर नितारके पानी छानलेवे इसको मंथ कहते हैं ।

अर्थ—जब मनुष्य भले प्रकार वमन कर चुके तब तीसरे प्रहर अग्नि प्रदीप्त होवे । तब मूँग और साठी चावल[1] मनको प्रियकर्त्ता ऐसे वनके हरिणादिकोंके मांसका रस इन सबका यूष[2] बनायके उसके साथ भोजन करे ॥

उत्तम वमनका फल ।

तन्द्रानिद्रास्यदौर्गंध्यंकण्डूंचग्रहणींविषम् ॥
सुवांतस्यनपीडायैभवंत्येतेकदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यने उत्तम प्रकार वमन किया है उसके तंद्रा, निद्रा, मुखकी दुर्गंधि, खाज, संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् भी नहीं होते ॥

अजीर्णशीतपानीयंव्यायामंमैथुनंतथा ॥
स्नेहाभ्यंगंप्रकोपंचदिनैकंवर्जयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायामुत्तरखण्डे
वमनविधिवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अर्थ—अजीर्णकर्त्ता (भारी) पदार्थ, शीतल पानी, दंड कसरत, मैथुन, देहमें तेलकी मालिश करना, तथा क्रोध करना ये सब कर्म जिस दिन वमनकारी औषध लेवे उस दिन त्याग देय ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृत-
माथुरभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

वमनके पश्चात् विरेचन ।

स्निग्धस्विन्नस्यवांतस्यदद्यात्सम्यग्विरेचनम् ॥
अवांतस्यत्वधःस्रस्तोग्रहणींछादयेत्कफः ॥ १ ॥
मन्दाग्निंगौरवंकुर्याज्जनयेद्वाप्रवाहिकाम् ॥
अथवापाचनैरामंबलासंचाविपाचयेत् ॥ २ ॥

---

[1] जो धान साठ दिनमें पक जाते हैं उनके चावलोंको साठीचावल कहते हैं ।

[2] मूंग और साठी चावल १ पल ले जल १ प्रस्थ डालके औटावे जब औटके पेयाके समान होजावे उसको यूष कहते हैं । इसी प्रकार हरिणादिकोंके मांसमें जल डालके यूष बनावे इसको मांसरस कहते हैं ।

अर्थ—प्रथम मनुष्यको स्निग्ध करे अर्थात् पूर्वोक्त विधिसे स्नेहपान करावे, फिर उसके देहसे पसीने निकाले, पश्चात् वांति (उलटी) करावे । जब भले प्रकार वमन कर चुके तब उत्तम प्रकारसे विरेचन देवे । इसका कारण यह है विना वमन कराये दस्त करावे तो उसके अधो-भागमें गया हुआ कफ वह ग्रहणी (छठवीं पित्तधरा तथा अग्निधरा कला) का आच्छादन करता है कि जिससे मंदाग्नि, गौरव (देहमें भारीपना), प्रवाहिका ये रोग उत्पन्न होते हैं अथवा अधो-गत कफ और आमको शुष्क एरण्डमूलादिक करके पचावे ॥

दस्तकी दूसरी विधि ।

स्निग्धस्यस्नेहनैःकार्यस्वेदैःस्विनस्यरेचनम् ॥

अर्थ—घृत दुग्धादिक स्नेहद्रव्य तिन करके स्निग्ध मनुष्य उसको और पिंडेष्टकादि करके देहका पसीना निकाले हुए मनुष्यको दस्त करने चाहिये । यह वमनके विना विरेचन देनेका दूसरा प्रकार है ॥

दस्तोंका सामान्यकाल ।

शरहतौवसन्तेचदेहशुद्धौविरेचयेत् ॥ ३ ॥
अन्यदात्ययिककालेशोधनं शीलयेद्बुधः ॥

अर्थ—शरद् ऋतुमें तथा वसन्त ऋतुमें मनुष्योंकी शरीर शुद्धिके लिये जुलाब देवे तो देहकी शुद्धि होकर देह उत्तम होय । तथा उक्तकालके सिवाय दूसरे कालमें यदि रोग उत्पन्न होय तो उस कालमें भी वैद्य रोगीका विचार करके दस्तकारी औषध देवे ॥

विरेचनयोग्य रोगी ।

पित्तेविरेचनंदद्यादामोद्भूतेगदेतथा ॥ ४ ॥
उदरेचतथाध्मानेकोष्ठशुद्धौविशेषतः ॥

---

१ वमनके पश्चात् दस्त कैसे देवे ऐसा शंका होनेसे भेड चरक सुश्रुत और वाग्भट इत्यादि ग्रन्थोंका अभिप्राय है कि, वमन देकर छः दिन व्यतीत होनेपर पश्चात् तीन दिन स्निग्ध करे। तीन दिन देहसे पसीने निकाले । फिर तीन दिन हलका भोजन (खिचडी आदि) देकर सोलहवें दिन जुलाब कर्त्ता औषधि देवे । यह ग्रंथकारका अभिप्राय है इसालिये श्लोकमें सम्यक् पद धरा है ।

२ मिट्टीका गोला ईंट आदि ।

३ शरद् ऋतु क्वार कार्तिकके दिन ।

४ वसन्त ऋतु चैत्रके दिन ।

अर्थ–पित्तविकार, आमवात, उदररोग, अफरा और बद्धकोष्ठ इन रोगोंमें वैद्य विशेष करके विरेचन देवे ॥

दोष दूर करनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता।

दोषाः कदाचित्कुप्यंतिजितालंघनपाचनैः ॥ ५ ॥
येतुसंशोधनैः शुद्धानतेषांपुनरुद्भवः ॥

अर्थ–वातादिक दोष लंघन और पाचन करनेपर शमन होकर कदाचित् फिर भी कुपित होजाते हैं परन्तु जो संशोधन (वमनविरेचनादि) द्वारा शुद्ध हुए हैं । उनका फिर उद्भव (उत्पत्ति) नहीं है ॥

दस्त कराने योग्य रोगी।

जीर्णज्वरीगरव्याप्तोवातरक्तीभगन्दरी ॥ ६ ॥
अर्शःपांडूदरग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः ॥
योनिरोगप्रमेहार्तागुल्मप्लीहव्रणार्दिताः ॥ ७ ॥
विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः ॥
कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः ॥ ८ ॥
यकृच्छोथाक्षिरोगार्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः ॥
शूलिनोमूत्रघातार्ताविरेकार्हानरामताः ॥ ९ ॥

अर्थ–जीर्णज्वर, सिंगिया आदि विषदोष, वातरक्त, भगंदर, बवासीर, पांडुरोग, उदररोग, गांठ, हृदयरोग, अरुचि, प्रमेह, योनिरोग, गोला, प्लीहा, व्रण, विद्रधि, वमन, विस्फोटक, विषूचिका, कोढ, कर्णरोग, नासारोग, मस्तकरोग, मुखरोग, गुदाके रोग, लिंगेन्द्रीके (उपदंशादि) रोग, यकृत्, सूजन, नेत्ररोग, कृमिरोग, सोमल तथा क्षारजन्य विकार, वादीके रोग, शूलरोग तथा मूत्राघातरोग इन रोगोंसे यदि प्राणी अत्यंत व्याप्त होवे तो उसको विरेचन (दस्त करानेकी औषधि) देवे ॥

दस्त करानेमें अयोग्य।

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणोभयान्वितः ॥
श्रांतस्तृषार्तः स्थूलश्चगर्भिणीचनवज्वरी ॥ १० ॥
नवप्रसूतानारीचमन्दाग्निश्चमदात्ययी ॥
शल्यार्दितश्चरूक्षश्चनाविरेच्याविजानता ॥ ११ ॥

---

१ उदररोगीको दस्त करावे यह प्रथम कह आये हैं परन्तु विशेष करके देना, इस वास्ते फिर उदररोगको कहा है।

अर्थ—बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, उरःक्षत करके क्षीण, भय करके पीडित, थका हुआ, प्यासा, स्थूलपुरुष, गर्भिणी, नवज्वर करके पीडित, नवप्रसूता स्त्री, मंदाग्नि, मदात्यय रोग करके पीडित, शल्य[१] करके पीडित और रूक्ष इतने मनुष्योंको विद्वान् वैद्य दस्त न करावे ॥

दस्तोंमें मृदु मध्य और क्रूर कोष्ठ ।

बहुपित्तोमृदुः प्रोक्तोबहुश्लेष्माचमध्यमः ॥ बहुवातःक्रूरकोष्ठोदुर्विरेच्यः सकथ्यते ॥ १२ ॥ मृद्वीमात्रामृदौकोष्ठेमध्यकोष्ठेच मध्यमा ॥ क्रूरेतीक्ष्णामतातज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका कोठा अत्यंत पित्त करके व्याप्त होय उसे मृदुकोष्ठ जानना । एवं जिसके कोठेमें अत्यंत कफ होय उसे मध्यम कोष्ठ एवं जिसके कोठेमें अत्यंत बादी है उसे क्रूर कोष्ठ जानना । जिस मनुष्यका क्रूर कोठा है ऐसे मनुष्यको दस्तकारी औषध देनेसे शीघ्र दस्त नहीं होते । जिस प्राणीका मृदु कोष्ठ है उसको मृदु औषधकी मात्रा देनी एवं जिन मनुष्योंका कोठा मध्यम है उनको मध्यम औषधकी मध्यम मात्रा देवे तथा जिस प्राणीका अत्यंत क्रूर कोष्ठ है उसको तीक्ष्ण औषधकी तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये ।

मृदुमध्यमादिकोष्ठोंमें मृदुमध्यादिक औषधि ।

मृदुर्द्राक्षापयश्चंचुतैलैरपिविरिच्यते॥ मध्यमस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते॥ १४ ॥ क्रूरः स्नुकपयसाहेमक्षीरीदंतीफलादिभिः॥

अर्थ—जिनका मृदु (नरम) कोठा है उनको दाख दूध और अण्डीका तेल इनसेही दस्त हो सकते हैं । मध्यम कोष्ठवालेको निशोथ कुटकी और अमलतासका गूदा इनसे दस्त होसकते हैं । तथा क्रूर कोठेवालेको थूहरका दूध तथा चौक जमालगोटेके बीज आदि शब्दसे इन्द्रायनकी जड इत्यादिक देनेसे रेचन होता है ॥

उत्तमादिभेद करके दस्तोंके प्रमाण ।

मात्रोत्तमाविरेकस्यत्रिंशद्वेगैः कफांतिका ॥ १५ ॥
वेगैर्विंशतिभिर्मध्याहीनोक्तादशवेगिका ॥

अर्थ—तीस वार दस्त होकर अन्तमें कफ (आम) गिरे तो उसे उत्तम मात्रा जाननी और बीस वेग होकर कफ गिरने लगे उसे मध्यम मात्रा जाननी तथा दश वेगके अन्तमें कफ गिरनेसे हीन मात्रा जाननी । वेगनाम दस्तोंका ह ॥

---

[१] काँच अथवा नाखून अथवा बाल काटा इत्यादिक शरीरमें रहनेसे पीडित जो मनुष्य हो उसको शल्यार्दित जानना ।

दस्त होनेमें कषायादिकी मात्राका प्रमाण।

द्विपलंश्रेष्ठमाख्यातंमध्यमं च पलंभवेत् ॥ १६ ॥
पलार्धंचकषायाणांकनीयस्तुविरेचनम् ॥

अर्थ–दस्त होनेसे दो पल प्रमाण कषाय (काढा) देनेसे जो दस्त हों वे दस्त उत्तम जानने। एक पल प्रमाण काढा देनेसे दस्त होंय तो मध्यम जानने। एवं अर्ध पलके प्रमाण काढेसे दस्त होना कनिष्ठ जानना ॥

दस्त होनेमें कल्कादिकोंके प्रमाण।

कल्कमोदकचूर्णानांकर्षंमध्वाज्यलेहतः ॥ १७ ॥
कर्षद्वयंपलंवापिवयोरोगाद्यपेक्षया ॥

अर्थ–कल्क मोदक और चूर्ण ये कर्ष प्रत्येक सहत घीमें मिलाय दस्त होनेमें देवे। अथवा अवस्था और रोगका तारतम्य देखके दो कर्ष अथवा एक पल देवे ॥

दोषोंके अनुकूल रेचन।

पित्तोत्तरेत्रिवृच्चूर्णंद्राक्षाक्काथादिभिः पिबेत् ॥ १८ ॥
त्रिफलाक्काथगोमूत्रःपिबेद्व्योषंकफार्दितः ॥
त्रिवृत्सैंधवशुण्ठीनांचूर्णमम्लैःपिबेन्नरः ॥ १९ ॥
वातार्दितोविरेकाय जांगलानांरसेनवा ॥

अर्थ–पित्तके आधिक्यमें निसोथका चूर्ण करके दाखके काढेमें मिलायके देवे। आदि शब्द करके गुलकंद गुलाबके फूल और सौंफ इत्यादिकोंके काढेमें देवे। कफका प्रकोप होनेसे त्रिफलाका काढा और गोमूत्र इन दोनोंको एकत्र करके उसमें त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) का चूर्ण मिलायके देवे। यदि मनुष्य बादीसे पीडित हो तो उसको दस्त करानेके वास्ते निसोथ सैंधानमक और सोंठ इनका चूर्ण करके इमली या नींबूके रसमें देवे अथवा जंगली जीवोंके मांसरसमें[1] देवे तो दस्त होवे ॥

अन्य औषधोंसे दस्तोंका विधान।

एरंडतैलंत्रिफलाक्काथेनद्विगुणेनच ॥ २० ॥
युक्तंपीत्वापयोभिर्वानाचिरेणविरिच्यते ॥

अर्थ–अंडीके तेलसे दुगुना त्रिफलेका काढा कर उसमें अंडीका तेल डाल देवे अथवा अंडीका तेल दूधमें मिलायके देवे तो तत्काल दस्त हो ॥

---

[1] हरिण शशा आदिके मांसको पानीमें औटावे। जब सीजके पेयाके समान होजावे तब उतार ले इसको मांसरस कहते हैं।

ऋतुभदकरके दस्त ।

त्रिवृताकौटबीजंचापिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ २१ ॥
समृद्वीकारसःक्षौद्रंवर्षाकालेविरेचनम् ॥

अर्थ--निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ, दाखोंका रस और सहत ये औषध दस्त होनेके वास्ते वर्षाकालमें देना ॥

शरदृतुमें दस्त ।

त्रिवृद्दुरालभामुस्ताशर्करादिव्यचन्दनम् ॥ २२ ॥
द्राक्षांबुनासयष्टीकंशीतलंचघनात्यये ॥

अर्थ--निसोथ, धमासा, नागरमोथा, उत्तम सफेद चन्दन और मुलहटी इन सब औषधोंका चूर्ण कर दाखके पानीमें मिलायके शरदृतुमें देवे तो दस्त होवे । यह दस्तकी औषध शीतल है ॥

हेमन्तऋतुमें दस्त ।

त्रिवृताचित्रकंपाठाह्यजाजीसरलावचा ॥ २३ ॥
हेमक्षीरीचहेमंतेचूर्णमुष्णांबुनापिबेत् ॥

अर्थ--निसोथ, चीता, पाढ, जीरा, दवदारु, वच और चोक इनका चूर्ण कर गरम जलमें मिलायके हेमंतऋतुमें देवे तो दस्त होवे ॥

शिशिर वा वसंतऋतुमें दस्त ।

पिप्पलीनागरंसिंधुश्यामात्रिवृतयासह ॥ २४ ॥
लिहेत्क्षौद्रेणशिशिरेवसन्तेचाविरेचनम् ॥

अर्थ--पीपल, सोंठ, सधानमक और काली निसोथ इन औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाय शिशिर तथा वसंत ऋतुमें चाटे तो दस्त होवे सही । कई श्यामा विधायरेको भी कहते हैं॥

ग्रीष्मऋतुमें दस्त ।

त्रिवृताशर्करातुल्याग्रीष्मकालेविरेचनम् ॥ २५ ॥

अर्थ--निसोथका चूर्ण करक उसमें मिश्री मिलाय दस्त होनेके वास्ते ग्रीष्म ऋतु (गर्मियों) में देवे ॥

अभयामोदक ।

अभयामरिचंशुण्ठीविडंगामलकानिच ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलंत्वक्पत्रंमुस्तमेवच ॥ २६ ॥
एतानिसमभागानिदन्तीचत्रिगुणाभवेत् ॥

त्रिवृदष्टगुणाज्ञेयाषड्गुणाचात्रशर्करा ॥ २७ ॥ मधुनामोदकं
कृत्वाकर्षमात्रप्रमाणतः ॥ एकैकंभक्षयेत्प्रातःशीतंचानुपिबेज्ज-
लम् ॥ २८ ॥ तावद्विरिच्यतेजंतुर्यावदुष्णंनसेवते ॥ पानाहा-
रविहारेषुभवेन्नियंत्रणंसदा ॥२९॥ विषमज्वरमन्दाग्निपांडुका-
सभगन्दरान् ॥ दुर्नामकुष्ठगुल्मार्शोगलगंडव्रणोदरान् ॥३०॥
विदाहप्लीहमेहांश्चयक्ष्माणंनयनामयम् ॥ वातरोगंतथाध्मानं
मूत्रकृच्छ्राणिचाश्मरीम् ॥ ३१ ॥ पृष्ठपार्श्वोरुजघनकट्युदर-
रुजं जयेत् ॥ सततंशीलनादेषपलितानिविनाशयेत् ॥ ३२॥
अभयामोदकाह्येतेरसायनवराःस्मृताः ॥

अर्थ–१ हरड, २ कालीमिरच, ३ सोंठ, ४ वायविडंग, ५ आँवले, ६ पीपल, ७ पीपरामूल, ८ दालचीनी, ९ पत्रज, १० नागरमोथा ये दश औषध समान भाग लेवे। तथा दंती तीन भाग, निशोथ आठ भाग तथा खाँड छः भाग इस प्रकार भाग लेकर सबका चूर्ण कर सहतमें मिलाय एक एक कर्षके मोदक (लड्डू) बनावे। इसमेंसे १ मोदक प्रातःकाल दस्त होनेके वास्ते भक्षण करे और ऊपरसे थोडा शीतल जल पीवे। फिर जबतक दस्त होते रहें तबतक गरम पदार्थका सेवन न करे तथा पान और आहार एवं विहार कहिये श्रमादिक इनमें सर्वकाल नियमित रहे तो विषमज्वर, मंदाग्नि, पांडुरोग, खाँसी, भगंदर, कुष्ठ, गोला, बवासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीह, प्रमेह, राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, बादीके रोग, पेटका फूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, पीठ, पसली, कमर, जाँघ, पिंडरी और उदर इनमें पीडाका होना इत्यादि सर्व रोग दूर होवें। इस मोदकको अभयादिमोदक कहते हैं। इस अभयादिमोदकका निरंतर सेवन करनेसे पलित कहिये मनुष्यके सफेद बालोंका होजाना दूर हो अर्थात् सफेद बाल काले हो जावें तथा यह मोदक उत्तम रसायन है॥

दस्तोंको सहायकर्ता उपचार।

पीत्वाविरेचनंशीतजलैःसंसिच्यचक्षुषी ॥ ३३ ॥
सुगंधिंकिंचिदाघ्रायतांबूलंशीलयेन्नरः ॥

अर्थ–मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उस प्राणीके नेत्रमें शीतल जलके छींटे देवे और अतर पुष्प आदि सुगंधित वस्तु सुँघावे। तथा पानका बीडा बनायके खाय। ये योग करनेसे उत्तम प्रकारके दस्त होते हैं॥

दस्त होनेपर किस प्रकार रहना ।

निर्वातस्थानवेगांश्चधारयेन्नस्वपेत्तथा ॥ ३४ ॥
शीताम्बुनस्पृशेत्क्वापिकोष्णनीरंपिबेन्मुहुः ॥

अर्थ–दस्त होनेके उपरांत हवामें न बैठे, अधोवायु मल मूत्र इत्यादिकोंके वेग (हाजत) को रोके नहीं, सोवे नहीं, शीतल जलको छूवे नहीं तथा दस्तोंमें गरम जल वारंवार पिया करे तो उत्तम जुलाब होवे । (परंतु अभयादिमोदकपर गरमजल न पीवे) ॥

दस्तमें जो पदार्थ निकलते हैं ।

बलादौषधपित्तानिवायुर्वांतेयथाव्रजेत् ॥ ३५ ॥
रेकात्तथामलंपित्तंभेषजंचकफोव्रजेत् ॥

अर्थ–वमन (ओकारी) की औषध पीनेसे कफ और पीई हुई औषध, पित्त और वादी के पदार्थ जैसे वमनके होनेसे वाहर निकलते हैं उसी प्रकार दस्तकारी औषध पीनेसे मल, पि पी हुई औषध और कफ ये पदार्थ दस्तके साथ गुदाके मार्ग होकर वाहर निकलते हैं ॥

उत्तम दस्त न होनेसे उपद्रव ।

दुर्विरक्तस्यनाभेस्तुस्तब्धत्वंकुक्षिशूलता ॥ ३६ ॥
पुरीषवातसंगश्चकण्डूमण्डलगौरवम् ॥
विदाहोऽरुचिराध्मानंभ्रमश्छर्दिश्चजायते ॥ ३७ ॥

अर्थ–दस्त उत्तम न होनेसे इस प्राणीकी नाभिमें स्तब्धता, पसलियोंमें शूल, मल औ अधोवायुकी अप्रवृत्ति, शरीरमें खुजली तथा चकत्ते ये उत्पन्न हों और अंगका भारीपना, दा अरुचि, पेट फूलना, भ्रम तथा वमन ये उपद्रव होते हैं ॥

उत्तम जुलाब न होनेपर उपचार ।

तंपुनःपाचनैःस्नेहैःपक्त्वासंस्नेह्यरेचयेत् ॥
तेनास्योपद्रवायांतिदीप्तोऽग्निर्लघुताभवेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको उत्तम दस्त न हुए हों उसको आरग्वधादिकाथका पाचन देक आमको पचावे फिर उसको स्नेहपान करावे अर्थात् घी पिलायके उसके कोठेको स्नि (चिकना) करक फिर जुलाब देवे तो उसके सम्पूण उपद्रव दूर होकर जठराग्नि प्रदी होय और देह हलका हाव ॥

अत्यन्त दस्त होनेसे उपद्रव ।

विरेकस्यातियोगेनमूर्च्छाभ्रंशोगुदस्य च ॥

शूलंकफातियोगःस्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥ ३९ ॥
मेदोनिभंजलाभासंरक्तंचापिविरिच्यते ॥

अर्थ–मनुष्यको अत्यंत दस्त होनेसे मूर्च्छा, गुदामें पीडा, शूल, कफका अत्यंत गिरना, मांसके धोवनके जलसमान, मेदके समान तथा पानीके समान गुदाके रास्तेसे रुधिर गिरे ये उपद्रव होते हैं ॥

अत्यन्त दस्तजन्य उपद्रवोंका यत्न।

तस्यशीतांबुभिःसिक्तंशरीरंतंदुलांबुभिः ॥ ४० ॥
मधुमिश्रैस्तथाशीतैःकारयेद्वमनंमृदु ॥

अर्थ–अत्यंत दस्त होनेसे मनुष्यके देहपर शीतल जलको छिडके उसी प्रकार शीतल चावलोंके धोवनमें सहत मिलायके पीनेको देवे अथवा हलकी वमन करावे ॥

दस्त बन्द करनेकी औषधि।

सहकारत्वचःकल्कोदध्नासौवीरकेणवा ॥ ४१ ॥
पिष्टोनाभिप्रलेपेनहंत्यतीसारमुल्वणम् ॥

अर्थ–आमकी छालको गौके दहीमें अथवा सौवीर[1]में पीसके कल्क करे उस कल्कका नाभिके ऊपर लेप करे तो दस्त होतहुए बन्द होवें ॥

दस्त रोकनेके यत्न।

अजाक्षीरंपिबेद्वापिवैष्किरंहारिणंतथा ॥ ४२ ॥
शालिभिःषष्टिकैःस्वल्पंमसूरैर्वापिभोजयेत् ॥
शीतैःसंग्राहिभिर्द्रव्यैःकुर्यात्संग्रहणंभिषक् ॥ ४३ ॥

अर्थ–दस्त बन्द होनेके वास्ते बकरीका दूध पीवे अथवा विष्किर पक्षियोंका मांसरस तथा हरिणके मांसका रस सेवन करे। अथवा साठी चावलोंका भात करके थोडा भोजन करे। अथवा मसूरको सिजायकर खाय और भी विलायती अनार आदि शब्दसे शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थोंका सेवन करे तो दस्तोंका होना बन्द होय ॥

उत्तम दस्त होनेके लक्षण।

लाघवेमनसस्तुष्ट्यामनुलोमेगतेऽनिले ॥

---

[1] सौवीर करनेकी विधि मध्यखण्डमें सन्धान और आसव बनानेके प्रकरणमें कह आये हैं। परन्तु टीकाकर्त्ताओंने दस्त बन्द करनेको कांजी लेना ऐसा कहा है।

सुविरिक्तंनरंज्ञात्वापाचनंपाययेन्निशि ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिस प्राणीका देह दस्त होनेसे हलका होगया हो, चित्तमें प्रसन्नता तथा वायुका स्वस्थानमें गमन, इतने लक्षण होनेसे उस मनुष्यको उत्तम जुलाब हुआ जानना। इसको रात्रिके समय पाचन औषधि देनी चाहिये ॥

विरेचन करनेके गुण।

इन्द्रियाणांबलंबुद्धेःप्रसादोवह्निदीप्तता ॥
धातुस्थैर्यंवयःस्थैर्यंभवेद्रेचनसेवनात् ॥ ४५ ॥

अर्थ—जुलाब लेनेसे इस प्राणीकी इन्द्रियोंमें बल आवे, बुद्धि प्रसन्न रहे, जठराग्नि प्रदीप्त होवे, एवं धातु और अवस्था इनमें स्थिरता आवे ॥

दस्तमें वर्जित पदार्थ।

प्रवातसेवाशीतांबुस्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ॥
व्यायामंमैथुनंचैवनसेवेतविरेचितः ॥ ४६ ॥

अर्थ—इस प्राणीको दस्त होनेके बाद अत्यंत पवन नहीं खाना, शीतल जल, तेलकी मालिश, अजीर्ण, परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे ॥

शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूंभोजयेत्कृताम् ॥
जांगलैर्विष्किराणांवारसैःशाल्योदनंहितम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे विरेचनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्थ—दस्त होनेके पश्चात् पथ्यमें साठी चावल और मूंग आदि धान्योंकी यवागू करके सेवन करे तथा जंगली हरिणादि जीवोंके मांसका रस अथवा विष्किरपक्षी और मुरगा इत्यादिकोंके मांसका रस इसके साथ चावलोंका भात खाय ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृतभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१ अंडकी जड सोंठ और धनिया इन तीन औषधोंका काढा करके पाचनार्थ देवे।

२ चावल मूँग इत्यादि धान्यमेंसे जो अपनी प्रकृतिको हित हो उसको छः गुने जलमें औटायके पतली लेईसी करे उसको यवागू कहते हैं।

३ हरिणादि जंगली जीवोंके मांसको पानीमें सिजायके पेयाके समान पतली राखे उसको मांसरस कहते हैं।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

वस्तिकी विधि ।

वस्तिर्द्विधानुवासाख्योनिरूहश्चततःपरम् ॥
वस्तिभिर्दीयतेयस्मात्तस्माद्वस्तिरितिस्मृतः ॥ १ ॥
यःस्नेहैर्दीयतेसस्यादनुवासननामकः ॥
कषायक्षीरतैलैर्योनिरूहःसनिगद्यते ॥ २ ॥

अर्थ—अण्डकोशादि करके गुदामें पिचकारी मारते हैं उस प्रयोगको बस्ति कहते हैं । वह बस्ति अनुवासन और निरूहण इन भेदों करके दो प्रकारकी है । जिनमें घी और तेल इत्यादिक स्नेह करके जो पिचकारी मारते हैं उसको अनुवासन बस्ति कहते हैं । और काढा दूध तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूहबस्ति कहते हैं ॥

अनुवासन वस्ति ।

तत्रानुवासनाख्योहिवस्तिर्यःसोऽत्रकथ्यते ॥
पूर्वमेवततोवस्तिर्निरूहाख्योभविष्यति ॥ ३ ॥
निरूहादुत्तरंचैववस्तिःस्यादुत्तराभिधः ॥
अनुवासनभेदश्चमात्रावस्तिरुदीरितः ॥ ४ ॥
पलद्वयंतस्यमात्रातस्मादर्धापिवाभवेत् ॥

अर्थ—अनुवासन और निरूह इन दोनों वस्तियोंमें प्रथम अनुवासन नामक बस्तिको कहकर फिर निरूहबस्ति तथा उत्तरबस्तिको कहेंगे । तथा उस अनुवासनबस्तिका भेद मात्राबस्ति है उस मात्राबस्तिके स्नेहादिककी मात्रा दो अथवा एक पलकी जाननी इस प्रकार बस्तिके चार भेद हैं ॥

अनुवासनवस्तिके योग्य रोगी ।

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ॥ ५ ॥

अर्थ—रूक्ष कहिये स्नेहपानरहित और प्रदीप्त है अग्नि जिसकी तथा केवल वातरोगी इस प्रकारके मनुष्य अनुवासनबस्तिके योग्य जानन ॥

अनुवासनके अयोग्य ।

नानुवास्यस्तुकुष्ठीस्यान्मेहीस्थूलस्तथोदरी ॥
अस्थाप्यानानुवास्याःस्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥ ६ ॥
शोकमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ॥

अर्थ-कुष्ठी, प्रमेही, स्थूल, उदरी अर्थात् उदररोगी ये अनुवासनके योग्य नहीं हैं। अजीर्ण, उन्माद, प्यास, शोक, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वास, खाँसी और क्षय इन रोगों करके पीडित जो मनुष्य वह अस्थाप्य कहिये निरूहबस्तिके योग्य है । उनकी अनुवासनबस्तिमें योजना न करे ॥

वस्तिके मुख बनानेको सुवर्णादिकी नली ।

नेत्रंकार्यंसुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ॥ ७ ॥
नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते ॥

अर्थ-नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेकी नली वह सुवर्णादि धातु वा नरसल हाथीदांत सींगके अग्रभाग बिल्लोर अथवा सूर्यकांतादि मणिकी करानी चाहिये ॥

रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाण ।

एकवर्षात्तुषड्वर्षंयावन्मानंषडङ्गुलम् ॥ ८ ॥
ततोद्वादशकंयावन्मानंस्यादष्टसंयुतम् ॥
ततःपरंद्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता ॥ ९ ॥

अर्थ-वस्तिकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्ष पर्यन्त छः अंगुल लंबी तथा छः वर्षसे लेकर बारह वर्ष पर्यन्त आठ अंगुलकी नली बनावे एवं बारह वर्षसे उपरान्त नली बारह अंगुलकी लम्बी बनानी चाहिये ॥

नलीके छिद्रका प्रमाण।

मुद्गछिद्रंकलायाभंछिद्रंकोलास्थिसन्निभम् ॥
यथासंख्यंभवेन्नेत्रंश्लक्ष्णंगोपुच्छसन्निभम् ॥ १० ॥
आतुरांगुष्ठमानेनमूलेस्थूलंविधीयते ॥
कनिष्ठिकापरिणाहमग्रेचगुटिकामुखम् ॥ ११ ॥
तन्मूलेकर्णिकेद्वेचकार्येभागाच्चतुर्थकात् ॥
योजयेत्तत्रवस्तिंचबन्धद्वयविधानतः ॥ १२ ॥

अर्थ-छः अंगुलवाली नलीका छिद्र (छेद) मूंगके दानेके प्रमाण करे और जो आठ अंगुलकी नली है उसमें मटरके समान छिद्र करे । बारह अंगुलवाली नलीमें बेरकी गुँठलीके समान छिद्र करना चाहिये। इस क्रम करके नलीके छिद्र करने चाहिये। वह नली चिकनी होकर गौकी पुच्छके समान अर्थात् ऊपर नीचेसे छोटी और बीचमें मोटी बनावे। तथा उस नलीका मूल रोगीके अँगूठेके प्रमाण मोटा करना चाहिये और अग्रभागमें कनिष्ठिका (छोटी उँगली) के प्रमाण मोटी होकर उसका मुख गोल करना चाहिये। उस नलीके तीन भाग त्यागके चतुर्थ भागकी जडमें दो कर्णिका कम-

लपत्रके समान करके हरिणादिकोंके अंडकी वस्ति उस जगह लगायके उन कर्णिकाओंसे उस वस्तिको बाँधके संधि मिलाय देवे ॥

वस्ति किसके अण्डकी होनी चाहिये ।

मृगाजसूकरगवांमाहिषस्यापिवाभवेत्
मूत्रकोशस्यवस्तिस्तुतदलाभेनचर्मजः ॥ १३ ॥
कषायरक्तःसुमृदुर्वस्तिःस्निग्धोदृढोहितः ॥

अर्थ–हरिण, बकरा, सूकर, बैल अथवा भैंसा इनके अंडकी वस्तिकी योजना करे । यदि इनके अंडकोश न मिलें तो हरिणादिकोंके चमडेकी बनावे । और वह वस्ति बेर तथा आहुली (रंग) इत्यादिकके छालके काढेमें रंगीहुई होकर नरम चिकनी तथा पोख्ता होनी चाहिये ॥

व्रणवस्तिका प्रमाण ।

व्रणवस्तेस्तुनेत्रंस्याच्छ्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितम् ॥ १४ ॥
मुद्गच्छिद्रंगृध्रपक्षनलिकापरिणाहिच ॥

अर्थ–व्रणविषयमें जो नली लगाई जाती है उसकी नली आठ अंगुल प्रमाण लंबी चिकनी, तथा उसको छिद्र मूँगके समान तथा गीधके पाँखकी जितनी नली होती है इतनी मोटी हो इस प्रकार व्रणवस्तिकी नली जाननी ॥

वस्तिके गुण ।

शरीरोपचयंवर्णंबलमारोग्यमायुषः ॥ १५ ॥
कुरुतेपरिवृद्धिंचवस्तिःसम्यगुपासितः ॥

अर्थ–वस्तिका उत्तम प्रकारसे सेवन करनेसे शरीरकी वृद्धि, कांति, बल, आरोग्य तथा आयुष्यकी वृद्धि ये गुण उत्पन्न होते हैं ॥

वस्तिके सेवनका काल ।

दिवसांतेवसन्तेचस्नेहवस्तिःप्रदीयते ॥ १६ ॥
ग्रीष्मवर्षाशरत्कालेरात्रौस्यादनुवासनम् ॥
नचातिस्निग्धमशनंभोजयित्वानुवासयेत् ॥ १७ ॥
मदंमूर्च्छांचजनयेद्द्विधास्नेहःप्रयोजितः ॥
रूक्षंभुक्तवतोऽत्यन्तंबलंवर्णंचहीयते ॥ १८ ॥

अर्थ—वसंत ऋतुमें स्नेहवस्ति सायंकालमें देवे, ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु और शरदृतु इनमें रात्रिके समय देवे। रोगीको अत्यंत स्निग्ध भोजन करायके अनुवासन वस्तिका प्रयोग न करे यदि करे तो मद मूर्च्छा ये उत्पन्न होती हैं। एवं अत्यंत रूक्ष भोजन करायके यदि वस्तिकर्म करे तो वल तथा कांति इनकी हानि होय इस प्रकार दोनों प्रकारकी वस्ति देनेसे ये उपद्रव होते हैं॥

वस्तिमें हीनमात्रा अतिमात्राका फल।

हीनमात्रावुभौवस्तीनातिकार्यकरौस्मृतौ ॥
अतिमात्रौतथानाहक्लमातीसारकारकौ ॥ १९ ॥

अर्थ--अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवस्ति इनमें अल्पमात्रा होनेसे उसके द्वारा अत्यंत कार्य नहीं होता अर्थात् रोग भले प्रकार दूर नहीं होता और यदि अनुवासन और निरूहकी अतिमात्रा होजावे तो आनाह ग्लानि और अतिसार ये रोग उत्पन्न होते हैं॥

उत्तमादिमात्रा।

उत्तमस्यपलैःषड्भिर्मध्यमस्यपलैस्त्रिभिः ॥
पलाद्यर्धेनहीनस्ययुक्तामात्रानुवासने ॥ २० ॥

अर्थ--उत्तम वलवाले प्राणियोंको अनुवासनवस्तिमें छः पलकी मात्रा, जो मध्यमवली मनुष्य हैं उनको तीन पल और हीनवल जो मनुष्य हैं उनको मात्रा १॥ डेढ पलकी जाननी॥

स्नेहादिकमें सैंधवादिकका मान।

शताह्वासैंधवाभ्यांचदेयंस्नेहेचचूर्णकम् ॥
तन्मात्रोत्तममध्यांत्याः षट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥ २१ ॥

अर्थ--शतावर और सैंधानमक इनका चूर्ण अनुवासनवस्तिमें दनकी मात्रा छः मासेकी उत्तम, चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ मात्रा जाननी। इस प्रकार मात्राका क्रम जानना॥

दस्त देनेके पश्चात् अनुवासनवस्ति देनेका प्रकार।

विरेचनात्सप्तरात्रेगतेजातबलायच ॥
भुक्तान्नायानुवास्यायवस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ २२ ॥

अर्थ--मनुष्यको दस्त करायके जव सात दिन व्यतीत होजावें और देहमें पुरुषार्थ आय जावे तव उसको भोजन करायके अनुवासन नामक वस्तिके योग्य प्राणीको अनुवासन वस्ति देवे॥

वस्ति देनेकी विधि ।

अथानुवासांस्त्वभ्यक्तमुष्णांबुस्वेदितंशनैः ॥ भोजयित्वायथा-
शास्त्रंकृतचंक्रमणंततः ॥ २३ ॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रंयोजये-
त्स्नेहवस्तिना ॥ सुप्तस्यवामपार्श्वेनवामजंघाप्रसारिणः ॥२४॥
कुंचितापरजंघस्यनेत्रंस्निग्धगुदेन्यसेत् ॥ बद्धावस्तिमुखंसूत्रै-
र्वामहस्तेनधारयेत् ॥ २५ ॥ पीडयेद्दक्षिणेनैवमध्यवेगेनधी-
र्धीः ॥ जृम्भाकासक्षयादींश्चवस्तिकालेनकारयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ–अनुवासनवस्तिके योग्य मनुष्यके देहमें तेल लगाय गरम जलसे देहसे हल्के पसीने निकाल उसको यथाशास्त्र भोजन कराय फिर उसको इधर उधर फिरायके तथा मल मूत्रकी इच्छा होय तो उससे निवृत्त करके, यदि अधोवायु त्यागनेकी इच्छा होय तो उसको त्याग करायके वस्तिकर्म करे । उसको बाईं करवट सुलायके बायाँ पैर पसरवा देवे । दहने पैरको सकोडके फिर गुदाको स्निग्ध कर वस्ति नली वस्तिके मुखपर डोरेसे बाँध उस नलीको गुदाके ऊपर धरे तथा कुशल वैद्य उस नलीको बाएँ हाथमें रखके दहने हाथसे मध्यम वेग करके उसमें पिचकारी देवे अर्थात् पिचकारी मारे तथा वस्तिके समय जंभाई खाँसना तथा छींकना आदि ये रोगीको नहीं करने देवे ॥

पिचकारी मारनेमें काल ।

त्रिंशन्मात्रामितःकालःप्रोक्तोवस्तेस्तुपीडने ॥
ततःप्राणिहितःस्नेहउत्तानोवाक्छतंभवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ–पिचकारी मारनेमें तीस मात्रा पर्यंत काल जानना । फिर स्नेह भीतर पहुँचनेपर १०० अंक जितनी देरमें बोले जावें इतनी देरतक उस रोगीको चित्त लेटा रहने देवे । उस मात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमें लिखा है ॥

कितनी कालकी मात्रा होती है ।

जानुमण्डलमावेष्टयकुर्याच्छोटिकयायुतम् ॥
एकमात्राभवेदेषासर्वत्रैषविनिश्चयः ॥ २८ ॥

अर्थ–घोटूपर हाथकी चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा जानना । ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना ॥

---

१ चावलकी पतली पेया । २ घी लगायके ।

पिचकारी मारनेके अन्तरक्रिया।

प्रसारितैःसर्वगात्रैर्यथावीर्यंप्रसर्पति ॥ ताडयेत्तलयोरेनंत्री-
न्वारांश्चशनैःशनैः ॥ २९ ॥ स्फिजश्चैवंततःश्रोणिंशय्यांचैवो-
त्क्षिपेत्ततः ॥ जातेविधानेतुततःकुर्यान्निद्रांयथासुखम् ॥ ३० ॥

अर्थ–पिचकारी मारनेपर रोगीके हाथ पैर संपूर्ण अंग ढीले छोडके लंबे करे ऐसा करनेसे रसादिधातु अपने २ स्थानपर जाती हैं। तथा रोगीके हाथ पैरोंके तलमें तीन वार हलकी हलकी ताली मारे। उसी प्रकार कूलेमें तथा कटिके पश्चात् भागमें तीन वार ताली मारके उस रोगीको पलंगपर बैठाय देवे। इस प्रकारकी विधि होनेके पश्चात् रोगीको स्वस्थतापूर्वक यथासुख शयन करावे॥

उत्तमवास्तिकर्मके गुण।

सानिलःसपुरीषश्चस्नेहःप्रत्येतियस्यतु ॥
उपद्रवंविनाशीघ्रंससम्यगनुवासितः ॥ ३१ ॥

अर्थ–गुदाके भीतर गया हुआ तैल वायु और मलके साथ मिलकर उपद्रव रहित तत्का बाहर निकले तो उस मनुष्यको वस्तिकर्म उत्तम हुआ जानना॥

स्नेहका विकार दूर होनेमें यत्न।

जीर्णान्नमथसायाह्नेस्नेहेप्रत्यागतेपुनः ॥ लघ्वन्नंभोजयेत्कामंदी-
प्ताग्निस्तुनरोयदि ॥ ३२ ॥ अनुवासितायदेयंस्यादितरेऽह्नि
सुखोदकम् ॥ धान्यशुण्ठीकषायोवास्नेहव्यापत्तिनाशनम् ॥३३

अर्थ–गुदाके द्वारा स्नेह निःशेष बाहर आजानेसे उस मनुष्यकी अग्नि यदि प्रदीप्त हो तो उसको सायंकालमें पुराने अन्न नित्यके आहारकी अपेक्षा न्यून भोजनको देवे और अनु सित मनुष्यको दूसरे दिन सुखोदक देय अर्थात् गरम जल पीनेको देवे अथवा धनिया औ सोंठ इनका काढा करके देय तो स्नेहका विकार दूर होवे॥

वातादिकमें पिचकारी मारनेका प्रमाण।

अनेनविधिनाषड्वासप्तचाष्टौनवापिवा ॥
विधेयावस्तयस्तेषामन्तेचैवनिरूहणम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त विधि करके वातादिक दोषोंमें छः वार सात वार आठ वार अथवा नौ वा पिचकारी मारे। फिर उस पिचकारी मारनेके पश्चात् निरूहणवास्तिकी योजना करे॥

---

१ एक वर्षके पुराने चावल अथवा साठी चावलोंका भात पथ्यमें देवे।

वस्तिके क्रमसे गुण।

दत्तस्तुप्रथमोवस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवंक्षणैः ॥ सम्यग्दत्तोद्वितीयस्तुमूर्धस्थमनिलंजयेत् ॥ ३५ ॥ बलंवर्णंचजनयेत्तृतीयस्तु
प्रयोजितः ॥ चतुर्थपञ्चमौदत्तौस्नेहयेतांरसासृजौ ॥ ३६ ॥
षष्ठोमांसंस्नेहयतिसप्तमोमेदएवच ॥ अष्टमोनवमश्चापिमज्जानं
चयथाक्रमम् ॥ ३७ ॥ एवंशुक्रगतान्दोषान्द्विगुणः साधुसाधयेत् ॥
अष्टादशाष्टादशकान्वस्तीनांयोनिषेवते ॥ ३८ ॥ सकुञ्जरबलोऽप्यश्वंजयेत्तुल्योऽमरप्रभः ॥

अर्थ—प्रथम पिचकारी मारनेसे वह वस्ति और वंक्षण अर्थात् अंडोंकी संधिद्वारा शरीरमें स्नेहन करे अर्थात् धातु बढावे। दूसरी पिचकारी देनेसे मस्तककी वायु दूर हो। तीसरी पिचकारी मारनेसें शरीरमें बल और कांति ये आवें। चौथी और पांचवीं पिचकारी मारनेसे रस और रुधिर इनकी वृद्धि होवे। छठी और सातवीं पिचकारी मारनेसे मांस और मेदामें चिकनाई आवे और आठवीं और नौवीं पिचकारी मारनेसे मज्जामें तथा श्लोकमें जो चकार है उस करके शुक्र धातुमें स्निग्धता करे है। इस प्रकार अठारह पिचकारी देनेसे शुक्रधातुगत जो दोष उनका नाश होय। एवं जो प्राणी छत्तीस पिचकारी सेवन करता है उसमें हाथीके समान बल आनकर वेगमें घोडेको जीतता है तथा देवताके समान कांतिवाला होवे ॥

अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवस्ति ये किसको देवे।

रूक्षायबहुवातायस्नेहवस्तिंदिनेदिने ॥ ३९ ॥ दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामन्याबाधामपाहरेत् ॥ स्नेहोऽल्पमात्रोरूक्षाणांदीर्घकालमनत्ययः ॥ ४० ॥ तथानिरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ॥

अर्थ—रूक्ष होकर जो अत्यन्त बादी करके पीडित हो उसको वैद्य प्रतिदिन (नित्य) स्नेह वस्ति देवे, दूसरोंको अर्थात् स्थूलादिक मनुष्योंको निरूहणवस्ति नित्यप्रति देवे तो वादीका रोग दूर हो। रूक्ष पुरुषके स्नेहकी हलकी पिचकारी मारनी परन्तु रोगी बहुत दिन बचाहुआ होवे तो स्निग्ध मनुष्यके निरूहण वस्ति थोडी देवे ॥

केवल तैल गुदाके बाहर आवे उसका यत्न।

अथवायस्यतत्कालंस्नेहोनिर्यातिकेवलः ॥ ४१ ॥
तस्यान्योऽन्यतरोदेयोनहिस्निग्धस्यतिष्ठति ॥

अर्थ—स्निग्ध मनुष्यके गुदाके द्वारा पिचकारी मारनेके उपरान्त तत्काल स्नेह बाहर निकले है ठैरे नहीं है इस कारण स्नेहवस्ति देकर तत्काल निरूहवस्ति देवे इस प्रकार पलटकर दोनों प्रकारकी वस्ति देवे ॥

तैल बाहर न निकले उसके उपद्रव और यत्न ।

अशुद्धस्यमलोन्मिश्रः स्नेहोनैतियदापुनः ॥ ४२ ॥
तदाशैथिल्यमाध्मानंशूलंश्वासश्चजायते ॥
पक्वाशयेगुरुत्वंचतत्रदद्यान्निरूहणम् ॥ ४३ ॥
तीक्ष्णंतीक्ष्णौषधियुताफलवर्तिर्हितातथा ॥
यथानुलोमनंवायुर्मलंस्नेहश्चजायते ॥ ४४ ॥
तथाविरेचनंदद्यात्तीक्ष्णंनस्यंचशस्यते ॥

अर्थ—वमन विरेचन इत्यादिक करके मनुष्यकी शुद्धि नहीं करी उसकी गुदाके द्वारा यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर नहीं आया होवे तो शरीरका शिथिलपना, पेटका फूलना, शूल, श्वास और पक्वाशयमें भारीपना ये उपद्रव होते हैं । इनके दूर करनेको तीक्ष्ण निरूहणवस्ति देवे। इस प्रकार तीक्ष्ण औषधों करके मिली फलवर्त्ती जिससे वायु अधोगामी होकर मलमिश्रित स्नेह गुदाके द्वारा बाहर आवे इस प्रकार देवे । तथा तीक्ष्ण जुलाव तथा तीक्ष्ण नस्य देनी चाहिये॥

स्नेहवस्ति जिसको उपद्रव न करे उसका विधान ।

यस्यनोपद्रवंकुर्यात्स्नेहवस्तिरनिःसृतः ॥ ४५ ॥
सर्वोऽल्पोवावृतोरौक्ष्यादुपेक्ष्यः सविजानता ॥

अर्थ—स्नेहवस्ति कहिये स्नेहकी पिचकारी गुदामें मारनेके पश्चात् गुदाका संपूर्ण भाग आवृत कहिये व्याप्त होकर रहनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षताके कारण गुदाके एक देशमें व्याप्त होकर रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करे उसको बहुतकाल पर्यन्त रहने देवे ॥

अहोरात्रमेंभी जिसके तैल बाहर न निकले उसका यत्न ।

अनायातंत्वहोरात्रेस्नेहंसंशोधनैर्हरेत् ॥ ४६ ॥
स्नेहवस्तावनायातेनान्यः स्नेहोविधीयते ॥

अर्थ—जो स्नेह दिनरात्रिमेंभी बाहर न आवे उसको जुलाब देकर बाहर निकाले । स्नेहकी पिचकारी मारनेसे जो स्नेह बाहर न आवे तो उसके दो वार स्नेहकी पिचकारी नहीं देवे ॥

अनुवासन तैल ।

गुडूच्येरंडपूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ॥ ४७ ॥

शतावरीसहचरंकाकनासापलोन्मितम् ॥
यवमाषातसीकोलकुलित्थान्प्रसृतोन्मितान् ॥ ४८ ॥
चतुर्द्रोणांभसापक्त्वाद्रोणशेषेणतेनच ॥
पचेत्तैलाढकेपेष्यैर्जीवनीयैःपलोन्मितैः ॥ ४९ ॥
अनुवासनमेतद्धिसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ—१ गिलोय, २ अण्डकी जड, ३ कंजेकी छाल, ४ भारंगी, ५ अडूसा, ६ रोहिषतृण, ७ शतावर, ८ पियावांसा और ९ काकनासा (कौआठोडी) ये नौ औषध एक २ पल प्रमाण लेवे। १ जौ, २ उडद, ३ अलसी, ४ बेरकी गुँठली तथा ५ कुलथी ये पांच औषध दो दो पल लेय इन सब औषधोंको जवकूट करके उसमें जल ४ द्रोण डालके औटावे। जब एक द्रोण मात्र जल शेष रहे तब उतारके छान लेय। फिर इसमें तिलीका तेल एक आढक डालके तथा जीवनीय गणकी औषध एक २ पल प्रमाण लेके बारीक चूर्ण करके उस तेलमें डालके फिर औटावे जब काढा जलकर तेलमात्र शेष रहे तब उतारके तेलको किसी पात्रमें भरके धर रक्खे इसको अनुवासन तेल कहते हैं। यह तेल संपूर्ण बादीके रोगोंको दूर करता है ॥

अनुवासनबस्तिके विपरीत होनेसे जो रोग होवें उनकी चिकित्सा।

षट्सप्ततिर्व्यापदस्तुजायन्तेवस्तिकर्मणः ॥ ५० ॥
दूषितात्समुदायेनताश्चिकित्स्यास्तुसुश्रुतात् ॥

अर्थ—वस्तिकर्ममें दोषरूप कुछभी विपरीतता होनेसे छियत्तर प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं उनकी चिकित्सा सुश्रुत ग्रन्थमें कही है उस क्रमसे करे ॥

वस्तिकर्ममें पथ्य।

पानाहारविहारश्चपरिहाराश्चकृत्स्नशः ॥
स्नेहपानसमाःकार्यानात्रकार्याविचारणा ॥ ५१ ॥
इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे स्नेहविधिर्नामपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ—अन्न पान और विहारादिक इनके आचरण जैसे स्नेहपान प्रकरणमें कहे हैं उसी प्रकार संपूर्ण कार्य इस स्नेहवस्तिमें करे इसमें विचार न करे ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृतमाथुरभाषाटीकायां
स्नेहविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

१ पल और द्रोण आदिका मान प्रथमखंडके परिभाषाप्रकरणमें हैं।

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

निरूहवस्तिका विधान ।

निरूहवस्तिर्बहुधाभिद्यतेकारणांतरैः ॥
तैरेवतस्यनामानिकृतानिमुनिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

अर्थ–निरूहवस्ति कारणभेद करके अनेक प्रकारकी होती हैं और जैसे २ कारणोंके नाम हैं उसी २ प्रकारके उसके नाम होते हैं । उदाहरण जैसे–उत्क्लेशनवस्ति, दोषहरवस्ति, दोषशमनवस्ति इत्यादिक ॥

निरूहवस्तिका दूसरा नाम ।

निरूहस्यापरंनामप्रोक्तमास्थापनंबुधैः ॥
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनांस्थापनंमतम् ॥ २ ॥

अर्थ–निरूहवस्तिका दूसरा नाम आस्थापन जानना । दोष तथा रसादिक धातु इनको अपने स्थानपर बसाती है इसीसे इसको आस्थापन कहते हैं । वातादिक दोष अथवा रोग इनको दूर करती है इसीसे इसको निरूह कहते हैं ॥

निरूहवस्तिमें काढे आदिका प्रमाण ।

निरूहस्यप्रमाणंतुप्रस्थःपादोत्तरंमतम् ॥
मध्यमंप्रस्थमुद्दिष्टंहीनस्यकुडवास्त्रयः ॥ ३ ॥

अर्थ–निरूहबस्ति देनेमें कषायादिकोंका प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम, एक प्रस्थ मध्यम और तीन कुडव कनिष्ठ इस प्रकार जानना ॥

निरूहवस्तिके अयोग्य मनुष्य ।

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषौक्षतोरस्कःकृशस्तथा ॥
आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ ४ ॥
गुदशोफातिसारार्तोविषूचीकुष्ठसंयुतः ॥
गर्भिणीमधुमेहीचनास्थाप्यश्चजलोदरी ॥ ५ ॥

अर्थ–अत्यंत स्निग्ध, ऊर्द्धगामी हैं दोष जिसके वह, उरःक्षत करके पीडित, कृश, पेटका फूलना, ओकारी, हिचकी, बवासीर, खाँसी, श्वास इन करके पीडित, गुदामें पीडा, सूजन, अतिसार, विषूचिका और कुष्ठ इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, मधुप्रमेहवाला, जलंधरवाला इतने रोगी आस्थापन (निरूहवस्ति) के योग्य नहीं हैं ॥

निरूहवस्तिमें योग्य प्राणी ।

वातव्याधावुदावर्तेवातासृग्विषमज्वरे ॥ मूर्च्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥ ६ ॥ वृद्धासृग्दरमंदाग्निप्रमेहेषु निरूहणम् ॥ शूलेऽम्लपित्तेहृद्रोगेयोजयेद्विधिवद्बुधः ॥ ७ ॥

अर्थ--वातरोग, उदावर्त्तरोग, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, प्यास, उदर[1], आनाहरोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, बहुत दिनका रक्तप्रदर, मंदाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त तथा हृद्रोग ये रोग निरूहवस्तिके योग्य जानने चाहिये ॥

निरूहवस्ति देनेका प्रकार ।

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रंस्निग्धस्विन्नमभोजितम् ॥ मध्याह्नेगृहमध्येचयथायोग्यंनिरूहयेत् ॥ ८ ॥ स्नेहवस्तिविधानेनबुधः कुर्यान्निरूहणम् ॥ जातेनिरूहेचततोभवेदुत्कटकासनः ॥ ९ ॥ तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रंचनिरूहगमनेच्छया ॥ अनायातं मुहूर्तेतुनिरूहंशोधनैर्हरेत् ॥ १० ॥

अर्थ--जो मलमूत्रादिक त्याग चुकाहो; स्निग्ध, जिसका पसीना निकल चुका हो, जिसने भोजन न कियाहो ऐसे मनुष्यको दुपहरके समय घरके बीच योग्यता विचार निरूहणवस्ति देवे । और निरूहणवस्तिके कर्म होनेके अनंतर वह निरूह बाहर आनेके लिये एक मुहूर्त (दोघडी) पर्यंत ऊकरू बैठा रक्खे । यदि एक मुहूर्तमेंभी निरूह बाहर नहीं निकले तो उसको शोधन करके बाहर निकालनेका यत्न करे ॥

निरूह बाहर न आनेपर उसके शोधनकी औषधि ।

निरूहैरेवमतिमान्क्षारमूत्राम्लसैंधवैः ॥

अर्थ--निरूहवस्ति बाहर न निकलनेपर जवाखार गोमूत्र नींबूका रस अथवा जंभीरीका रस और सैंधानमक इन चार औषधियोंको एकत्र करके गुदामें फिर निरूहवस्ति देवे तो निरूह बाहर निकले ॥

उत्तमनिरूहवस्ति होनेके लक्षण ।

यस्यक्रमेणगच्छन्तिविट्पित्तकफवायवः ॥ ११ ॥ लाघवंचोपजायेतसुनिरूहंतमादिशेत् ॥

अर्थ--जिस मनुष्यको निरूहवस्ति दी है उसका मल पित्त कफ और वायु ये क्रम करके

---

[1] जलोदरके सिवाय दूसरे उदररोगमें निरूहवस्ति देवे ।

गुदाके रास्तेसे बाहर आकर शरीरमें हलकापन आनेसे निरूहवस्तिका कर्म उत्तम हुआ जानना ॥

जिसको निरूहवस्ति उत्तम न हुई हो उसके लक्षण ।

यस्यस्याद्वस्तिरल्पाल्पवेगोहीनमलानिलः ॥ १२ ॥
मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूहंतमादिशेत् ॥

अर्थ--जिसको निरूहवस्ति दी उस वस्तिके बाहर आनेका वेग अल्प होवे इसीसे मल और वायु ये जितने बाहर आने चाहिये उतने नहीं आवें और मूत्रके स्थानपर पीडा, शरीरका भारी होना तथा अरुचि इतने लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरूहवस्ति उत्तम नहीं हुई ऐसा जानना ॥

उत्तम निरूहवस्ति तथा स्नेहवस्तिके लक्षण ।

विविक्ततामनस्तुष्टिःस्निग्धताव्याधिनिग्रहः ॥ १३ ॥
आस्थापनस्नेहवस्त्योःसम्यग्दानेतुलक्षणम् ॥
अनेनविधिना युंज्यान्निरूहंवस्तिदानवित् ॥ १४ ॥

अर्थ--रोगीके देहमें हलकापन, मनकी प्रसन्नता, चिकनापन तथा रोगका नाश ये उत्तम आस्थापन तथा स्नेहनवस्तिके लक्षण जानने । इसी विधिसे वस्तिकर्मको जाननेवाला वैद्य निरूहवस्ति देवे ॥

निरूहणवस्ति कितनी वार देवे उसका प्रकार ।

द्वितीयंवातृतीयंवाचतुर्थंवायथोचितम् ॥ सस्नेहएकःपवनेपि-
त्तेद्वौपयसासह ॥ १५ ॥ कषायकटुरूक्षाद्याः कफेकोष्णास्त्र-
योमताः ॥ पित्तश्लेष्मानिलाविष्टेक्षीरयूषरसैःक्रमात् ॥ १६ ॥
निरूहंयोजयित्वाचततस्तदनुवासयेत् ॥

अर्थ--दो वार तीन वार अथवा चारवार जैसा दोष होय उसके अनुसार वैद्य निरूहवस्ति देवे । बादीके रोगमें स्नेहयुक्त वस्ति एक वार देवे, पित्तरोग होय तो दुग्धयुक्त निरूहवस्ति दो वार देवे । तथा कफरोग होवे तो कषाय[1] कटु[2] और रूक्ष[3] इत्यादिक पदार्थ एकत्र कर कुछ गरम करके तीन वार निरूहवस्ति देवे अर्थात् इन औषधोंकी तीन वार पिचकारी मारे । अथवा पित्त और कफ वादी इन करके पीडित मनुष्य होय

---

[1] हरड आमले इत्यादिक कषाय पदार्थ जानने ।

[2] सोंठ मिरच आदि कटु पदार्थ जानने ।

[3] कुलथी जौ आदि रूक्ष पदार्थ इनका काढा करके वस्ति देवे ।

तो दूध यूष और मांसरस इनको क्रम करके निरूहवस्ति देवे फिर अनुवासन वस्ति देय अर्थात् स्नेहकी पिचकारी मारे ॥

सुकुमार आदि मनुष्योंको निरूहवस्ति देना।

सुकुमारस्यवृद्धस्यबालस्यचमृदुर्हितः ॥ १७॥
वस्तिस्तीक्ष्णःप्रयुक्तस्तुतेषांहन्याद्बलायुषी ॥

अर्थ–कुसुमार (नाजुक) मनुष्य वृद्ध और बालक इनके हलकी पिचकारी मारे। तथा इनके तीक्ष्ण वस्ति देनेसे इनके बलका और आयुका नाश होता है। इसीसे सुकुमार आदिको तीक्ष्ण वस्ति न देवे ॥

आदि मध्य और अन्तमें वस्तिका देना।

दद्यादुत्क्लेशनंपूर्वंमध्येदोषहरंततः ॥ १८ ॥
पश्चात्संशमनीयंचदद्याद्वस्तिंविचक्षणः ॥

अर्थ–प्रथम दोषोंको उत्क्लेशित करनेवाली औषधोंकी वस्ति देवे तथा मध्यमें दोषनाशक औषधोंकी वस्ति देय। और अन्तमें संशमनीय अर्थात् अपने २ स्वस्थानमें दोष बैठजावे ऐसी वस्ति देय अर्थात् ऐसी औषधोंकी पिचकारी मारे ॥

उत्क्लेशनवस्ति।

एरंडबीजंमधुकंपिप्पलीसैंधवंवचा ॥ १९ ॥
हपुषाफलकल्कश्चवस्तिरुत्क्लेशनःस्मृतः ॥

अर्थ–१ अंडीके बीज, २ महुएके फल, ३ पीपल, ४ सैंधानमक, ५ वच, ६ हाऊबेरके पत्ते और ७ मैनफल ये औषध समान भाग ले कूटके कल्क करे फिर दोषोंको उत्क्लेशित करनेके लिये यह उत्क्लेशन वस्ति देवे ॥

दोषहरवस्ति।

शताह्वामधुकंबिल्वंकौटजंफलमेवच ॥ २० ॥
सकांजिकःसगोमूत्रोवस्तिर्दोषहरःस्मृतः ॥

अर्थ–१ सोवा, २ मुलहटी, ३ बेलगिरी और ४ इन्द्रजौ ये चार औषध समान भाग ले कांजीमें बारीक पीस और इसमें गोमूत्र मिलाय गुदामें पिचकारी मारे तो वातादिक दोषोंका शमन होवे। इसको दोषहरवस्ति कहते हैं ॥

---

१ वमनाध्यायमें वमन करनेके पश्चात् पथ्य कहा है इस जगह टिप्पणीमें यूष कल्क बनानेकी विधि लिखी है सो जाननी।

२ विरेचनाध्यायमें पथ्य कहा है उसी स्थानपर टिप्पणीमें मांसरसकी विधि कही है।

शोधनवस्ति ।

शोधनद्रव्यनिक्काथस्तत्कल्कैःस्नेहसैन्धवैः ॥ २१ ॥
युक्त्याखजेनमथितावस्तयःशोधनाःस्मृताः ॥

अर्थ–निशोथादिक शोधन द्रव्योंका काढा करके और उन्हीं शोधनद्रव्योंका कल्क करे तथा सैंधानमक उस काढेमें मिलाय युक्तिसे रई डालके मथ लेवे फिर दोषोंके शोधन करनेको इसकी वस्ति देवे ॥

दोषशमनवस्ति ।

प्रियंगुर्मधुकोमुस्तातथैवचरसांजनम् ॥ २२ ॥
सक्षीरःशस्यतेवस्तिर्दोषाणांशमनेस्मृतः ॥

अर्थ–१ फूलप्रियंगु, २ महुएके फल, ३ नागरमोथा और ४ रसोत इन चार औषधोंको समान भाग लेकर दूधमें बारीक पीस दोष शमन होनेके अर्थ वस्ति देवे अर्थात् पिचकारी मारे ॥

लेखनवस्ति ।

त्रिफलाक्काथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ॥ २३ ॥
ऊषकादिप्रतीवापैर्वस्तयोलेखनाःस्मृताः ॥

अर्थ–त्रिफलाके काढेमें गोमूत्र सहत और जवाखार मिलावे तथा ऊषकादिक गणकी औषधोंका चूर्ण मिलायके वस्ति देनेका लेखन (कहिये मेदोरोगादिकोंका जो कृशीकरण) वस्ति कहते हैं ॥

बृंहणवस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिक्काथःकल्कैर्मधुरकैर्युतः ॥ २४ ॥
सर्पिर्मांसरसोपेतावस्तयोबृंहणामताः ॥

अर्थ–मूसली गोखरू और कौंचके बीज इत्यादिक बृंहण अर्थात् धातुवर्धक द्रव्योंका काढा कर उसमें महुएके पत्ते दाख और अनार इत्यादिक मधुर द्रव्योंका कल्क, घी और मांसरस इन सबको डालके बृंहण होनेके वास्ते वस्ति देवे ॥

पिच्छिलवस्ति ।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनागराः ॥ २५ ॥ क्षीरसिद्धाः
क्षौद्रयुक्तानाम्नापिच्छिलसंज्ञिताः ॥ अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्तादे-
याविचक्षणैः॥२६॥ मात्रापिच्छिलवस्तीनांपलैर्द्वादशभिर्मता ॥

अर्थ—१ बेरकी छाल, २ नारंगी, ३ गोंदीकी छाल, ४ सेमरकी छाल, ५ धमासा और ६ सोंठ ये छः औषध समान भाग लेके दूधमें पीस उसमें बकरा मेंढा और हरिण इनका रुधिर मिलायके कुशल वैद्य दोष पतले होनेके वास्ते इसकी वस्ति देवे । इस वस्तिको पिच्छिल वस्ति कहते हैं इस वस्तिकी मात्राका प्रमाण बारह पल है ॥

निरूहणवस्ति ।

दत्त्वादौसैंधवस्याक्षंमधुनाप्रसृतिद्वयम् ॥ २७ ॥ विनिर्मथ्यततो
दद्यात्स्नेहस्यप्रसृतित्रयम् ॥ एकीभूतेततःस्नेहेकल्कस्यप्रसृतिंक्षि-
पेत् ॥ २८ ॥ संमूर्च्छितेकषायेतुचतुःप्रसृतिसंमितम् ॥ क्षिप्त्वा
विमथ्यदद्याच्चनिरूहंकुशलोभिषक् ॥ २९ ॥ वातेचतुष्पलंक्षौ-
द्रंदद्यात्स्नेहस्यषट्पलम् ॥ पित्तेचतुःपलंक्षौद्रंस्नेहस्यचपलत्र-
यम् ॥ ३० ॥ कफेषट्पलिकंक्षौद्रंस्नेहस्यैवचतुष्पलम् ॥

अर्थ—प्रथम सैंधानमक एक अक्षप्रमाण कहिये कर्ष प्रमाण तथा सहत दो प्रसृति अर्थात् चार पल इन दोनोंको एकत्र मर्दन करे । फिर उसमें घी अथवा तेल छः पल डालके एकत्र मिलाय दे । तब कल्ककी औषधी कही हैं उनका कल्क करके उस पूर्वोक्त स्नेहमें मिलावे अथवा उस कल्ककी औषधी संमूर्च्छित कहिये औटायके काढा कर उस स्नेहमें मिलावे । कुशल वैद्य इसकी निरूहवस्ति देवे अर्थात् गुदामें पिचकारी मारे । इसे निरूहवस्तिकी साधारण विधि जाननी । विशेष विधि यदि वादीका रोग होवे तो चार पल सहत और स्नेह छः पल लेके एकत्र कर वस्ति देवे । पित्तरोग होय तो सहत ४ पल और स्नेह ३ पल ले एकत्र कर वस्ति देवे । तथा कफ रोग होय तो सहत छः पल तथा स्नेह चार पल इनको एकत्र करके वस्ति देवे ॥

मधुतैलकवस्ति ।

एरंडक्काथतुल्यांशंमधुतैलंपलाष्टकम् ॥ ३१ ॥ शतपुष्पाप-
लार्द्धेनसैन्धवार्धेनसंयुतम् ॥ मधुतैलकसंज्ञोऽयंवस्तिःखज-
विलोडितः ॥ ३२ ॥ मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्तनाशनः ॥
बलवर्णकरश्चैववृष्योबृंहणदीपनः ॥ ३३ ॥

अर्थ—अण्डकी जडका काढा ८ पल और सहत तथा तेल ये चार २ पल एवं सौंफ और सैंधानमक आधे २ पल ले सबको एकत्र कर रईसे मथलेवे इसको मधुतैलक वस्ति कहते हैं । यह वस्ति देनेसे मेदोरोग, गुल्मरोग, कृमिरोग, प्लीहा, मल और उदावर्त्त वायु इनका नाश होय । तथा यह बल, कांति, स्त्रीविषय प्रीति तथा धातुओंकी वृद्धि इनको देती है और अग्निको प्रदीप्त करती है ॥

दीपनवस्ति ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानांप्रसृतिःप्रसृतिर्भवेत् ॥
हपुषासैन्धवाक्षांशोवस्तिःस्याद्दीपनःपरः ॥ ३४ ॥

अर्थ—सहत घी और दूध ये दो दो पल लेवे हाऊबेर और सैंधानमक ये दोनों औषध कर्षमात्र ले बारीक पीसके उसे सहत घी और दूधमें भिगोयके जठराग्नि प्रदीप्त होनेके अर्थ वस्ति देवे ॥

युक्तरथवस्ति ।

एरंडमूलनिःक्वाथोमधुतैलंससैन्धवम् ॥
एषयुक्तरथोवस्तिःसवचापिप्पलीफलः ॥ ३५ ॥

अर्थ—अंडकी जडका काढा करके उसमें सहत और तेल डाले । तथा सैंधानमक वच पीपल और मैनफल ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे । उनको पूर्वोक्त काढेमें मिलाय गुदामें पिचकारी देवे । इसको युक्तरथ वस्ति कहते हैं । यह वस्ति सर्व रोगोंपर है ॥

सिद्धवस्ति ।

पञ्चमूलस्यनिःक्वाथस्तैलंमागधिकामधु ॥
ससैन्धवःसमधुकःसिद्धवस्तिरितिस्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—बृहत्पञ्चमूलका काढा करे और तेल, पीपलका चूर्ण, सैंधानमक, महुएकी लकडीके भीतरका गाभा अथवा मुलहटी ये सब उस काढेमें डालके वस्ति देवे । इसको सिद्धवस्ति कहते हैं । इसे सर्व रोगोंपर देवे ॥

वस्तिकर्ममें पथ्यापथ्य ।

स्नानमुष्णोदकैःकुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् ॥
वर्जयेदपरंसर्वमाचरेत्स्नेहवस्तिवत् ॥ ३७ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायामुत्तरखंडेचिकित्सास्थाने निरूहणवस्तिविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ—वस्तिकर्म कियेहुए मनुष्यको गरम जलसे स्नान करावे, दिनमें सोवे नहीं, अजीर्ण न होने देवे और आचरण स्नेह वस्तिके समान करे यह पथ्य है ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृतमाथुरभाषाटीकायां निरूहणवस्तिविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

उत्तरवस्तिका क्रम ।

अतःपरंप्रवक्ष्यामिवस्तिमुत्तरसंज्ञितम् ॥ द्वादशांगुलकंनेत्रंमध्ये चक्रुतकर्णिकम् ॥ १ ॥ मालतीपुष्पवृंताभंछिद्रंसर्षपनिर्गमम् ॥

अर्थ–अब इसके उपरान्त उत्तरवस्तिका प्रमाण कहताहूं । वारह अंगुल लंवी नली हो उस नलीका मध्यभाग कमलपत्रकी कर्णिकाके समान होना चाहिये । और वह नली मालती फूलके डंठेके समान मोटी हो उसके छिद्रमें एक सरसों चली जावे इतना वडा छिद्र होना चाहिये ॥

उत्तरवस्तिकी योजना कैसे करे ।

पञ्चविंशतिवर्षाणामधोमात्राद्विकार्षिकी ॥ २॥
तदूर्ध्वंपलमानंचस्नेहस्योक्ताविचक्षणैः ॥

अर्थ–मनुष्यकी अवस्था पचीस वर्ष होनेपर्यन्त विचक्षण वैद्य वस्तिमें स्नेहकी मात्रा दो कर्ष योजना करे । पचीस वर्षके पश्चात् १ पल देवे ॥

उत्तरवस्तिकी योजनाका प्रकार ।

अथास्थापनशुद्धस्यतृप्तस्यस्नानभोजनैः ॥ ३ ॥ स्थितस्य जानुमात्रेणपीठेत्विष्टशलाकया ॥ स्निग्धयामेढ्रमार्गेचततोनेत्रं नियोजयेत् ॥ ४ ॥ शनैःशनैर्घृताभ्यक्तंमेढ्ररन्ध्रेऽगुलानिषट् ॥ ततोऽवपीडयेद्वस्तिशनैर्नेत्रंचनिर्हरेत् ॥ ५ ॥ ततःप्रत्यागतेस्नेहेस्नेहवस्तिक्रमोहितः ॥

अर्थ–जो आस्थापन कहिये निरूहणवस्ति करके शुद्ध हुआ तथा स्नान और भोजन करके तृप्त हुआ है ऐसे मनुष्यको आसनपर घोटुओंके वल विठाकर यथायोग्य सचिक्कण सलाई देवे । उस नलीपर घी लगाय शिश्नमार्गमें योजना करके वस्तिका पीडन करे अर्थात् पिचकारी मारे । फिर उस नलीको धीरे २ वाहर निकाल लेवे । फिर उस स्नेहके वाहर आनेसे उत्तम वस्तिकर्म होता है । इस प्रकार स्नेहवस्तिका क्रम जानना ॥

स्त्रियोंके वस्ति देनेकी विधि ।

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलंनेत्रंकुर्याद्दशांगुलम् ॥ ६ ॥
मुद्गप्रवेशंयोज्यंचयोन्यंतश्चतुरंगुलम् ॥
द्व्यंगुलंमूत्रमार्गेचसूक्ष्मनेत्रंनियोजयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—स्त्रियाके वास्ति देनेके वास्ते नेत्र कहिये वस्तिकी नली छोटी उँगलीके बराबर मोटी हो वह दश अंगुलकी लंबी तथा जिसमें मूँग चलाजावे इतना छिद्र होना चाहिये । उस नलीको योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे । स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बहुत बारीक नली लगायके उस नलीको दो अंगुल मूत्रमार्गमें प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥

बालकोंके वस्ति देनेका प्रमाण ।

मूत्रकृच्छ्रविकारेषुबालानांत्वेकमंगुलम् ॥
शनैर्निष्कंपमाधेयंसूक्ष्मनेत्रंविचक्षणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—बालकोंके मूत्रकृच्छ्रविकार होनेसे वैद्य निष्कंप अर्थात् हाथ न हिले इस प्रकार बारीक नलीकी योजना करके धीरे २ उस नलीको शिश्नके भीतर १ अंगुल प्रमाण प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥

स्त्रियोंके तथा बालकोंके वस्ति देनेमें स्नेहकी मात्रा ।

योनिमार्गेषुनारीणांस्नेहमात्राद्विपालिकी ॥
मूत्रमार्गेपलोन्मानाबालानांचद्विकार्षिका ॥ ९ ॥
उत्तानायैस्त्रियैदद्यादूर्ध्वजान्वेविचक्षणः ॥
अप्रत्यागच्छतिभिषग्वस्तावुत्तरसंज्ञके ॥ १० ॥

अर्थ—स्त्रियोंके योनिमार्गमें स्नेहमात्रा अर्थात् स्नेहका प्रमाण दो पलका जानना । स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें स्नेहमात्रा एक पलकी जाननी । बालकोंके दो कर्ष प्रमाण जाननी । उत्तरसंज्ञक वस्तिमें कुशल वैद्य स्त्रीको सीधी बैठाकर उसके गोंटू ऊपरको धर पिचकारी मारे । यदि स्नेह बाहर न आवे तो आगे लिखी विधि करे ॥

शोधनद्रव्यकरके वस्तिका विधान ।

भूयोवस्तिंनिदध्याच्चसंयुक्तैः शोधनैर्गुणैः ॥
फलवर्तिंनिदध्याद्वायोनिमार्गेदृढांभिषक् ॥ ११ ॥
सूत्रैर्विनिर्मितांस्निग्धशोधनद्रव्यसंयुताम् ॥
दह्यमानेतथावस्तौदद्याद्वस्तिंविचक्षणः ॥ १२ ॥
क्षीरवृक्षकषायेणपयसाशीतलेनच ॥
वस्तिःशुक्ररुजःपुंसांस्त्रीणामार्तवजारुजः ॥ १२ ॥

हन्यादुत्तरवस्तिस्तुनोचितोमेहिनांक्वचित् ॥

अर्थ–पछि कहाहुआ उपाय करे शोधन द्रव्य (एरंडादि तैल समुदाय) की योनिमार्गमें पिचकारी मारे। अथवा एरंडबीजादिक जो औषधि हैं उनकी करडी बत्ती बनायके अथवा सूतकी बत्ती करके उस बत्तीमें अंडी आदि औषध लपेटकर योनिमें योजना करे। उस बत्तीके अधोभागमें वस्तिस्थान है उसके विकृत होनेसे गूलर बड (आदि शब्दसे क्षीरवृक्ष) इनका काढा करके वस्ति देवे अथवा शीतल दूधकी वस्ति देवे तो वस्तिस्थान शुद्ध होवे। यह वस्ति शुक्रधातुसंबंधी पीडा होती है उसको तथा स्त्रियोंके रजोदर्शनसंबंधी पीडा होती है उसको दूर करती है। तथा जिन मनुष्योंके प्रमेह है उनको उत्तरवस्तिसे कदाचित् लाभ नहीं होता ॥

वस्तिकर्मके उत्तम होनेके लक्षण।

सम्यग्दत्तस्यलिंगानिव्यापदःक्रमएवच ॥ १४ ॥
वस्तेरुत्तरसंज्ञस्यशमनंस्नेहवस्तिना ॥

अर्थ--उत्तरसंज्ञक वस्ति उत्तम होनेके लक्षण और दोष और उनकी शांति स्नेहवस्तिके समान जाननी चाहिये ॥

गुदामें फलवर्तिकी योजना।

घृताभ्यक्तेगुदेक्षेप्याश्लक्ष्णास्वांगुष्ठसंनिभा ॥
मलप्रवर्तिनीवर्तिःफलवर्तिश्चसास्मृता ॥ १५ ॥
इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ–गुदामें घी लगायके रोगीके अँगूठेके बराबर उत्तम करडी बत्ती करके एरंडबीजादिक रेचक औषधोंका उस बत्तीपर लेप करके दस्त होनेके वास्ते उसको गुदामें प्रवेश करे। इसको फलवर्ति कहते हैं ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायांसंहितायामुत्तरखण्डेदत्तरामकृतमाथुरभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः।

नस्यविधि।

नस्यंतत्कथ्यतेधीरैर्नासाग्राह्यंयदौषधम् ॥
नावनंनस्यकर्मेतितस्यनामद्वयंमतम् ॥ १ ॥

अर्थ–नाकमें डालनेकी औषधोंको नस्य कहते हैं। उस नस्यके नावन और नस्यकर्म ऐसे दो नाम हैं ॥

नस्यके भेद ।

नस्यभेदोद्विधाप्रोक्तोरेचनंस्नेहनंतथा ॥
रेचनंकर्षणंप्रोक्तंस्नेहनंबृंहणंमतम् ॥ २ ॥

अर्थ--इस नस्यके भेद दो हैं--एक रेचन और एक स्नेहन, तिनमें रेचन नस्य वातादि दोषोंको छेदन करता है और जो स्नेहन है वह धातुवृद्धि करता है ॥

नस्यका काल ।

कफपित्तानिलध्वंसेपूर्वमध्यापराह्णके ॥
दिनस्यगृह्यतेनस्यंरात्रावप्युत्कटेगदे ॥ ३ ॥

अर्थ--कफके नाश करनेको नस्य प्रातःकाल देवे, पित्तके नाश करनेको दो प्रहर दिन चढे नस्य देवे तथा वायुको नाश करनेको सायंकालमें नस्य देना । यदि रोग अत्यंत प्रबलताके साथ होवे तो रात्रिके समय नस्य देवे ॥

नस्यका निषेध ।

नस्यंत्यजेद्भोजनांतेदुर्दिनेचापतर्पणे ॥ तथानवप्रतिश्यायीगर्भिणीगरदूषितः ॥ ४ ॥
अजीर्णीदत्तवस्तिश्चपीतस्नेहोदकासवः ॥
क्रुद्धःशोकाभिभूतश्चतृषार्तोवृद्धबालकौ ॥ ५ ॥ वेगावरोधी
स्नातश्चस्नातुकामश्चवर्जयेत् ॥

अर्थ--भोजन करनेके पश्चात् नस्य न लेवे । जिस दिन आकाश बद्दलोंसे घिरा होवे उस दिन नस्य न ले । लंघन करके जिसको नवीन पीनसका रोग होवे, गर्भिणी स्त्री, विषदोषकरके और अजीर्ण करके पीडित मनुष्य, जिसके वस्तिप्रयोग किया हो, घी तेल इत्यादि स्नेह जल और मद्य इनका सेवन करनेवाला मनुष्य, क्रोध शोक तथा तृषासे पीडित, वृद्ध, बालक, वात मूत्र और मल इनका निरोध करनेवाला मनुष्य, स्नान किया हुआ अथवा जिसको स्नान करना है वह इतने मनुष्योंको नस्य नहीं देना चाहिये ॥

नस्यकर्ममें योग्यायोग्य रोगी ।

अष्टवर्षस्यबालस्यनस्यकर्मसमाचरेत् ॥ ६ ॥
अशीतिवर्षादूर्ध्वंचनावनंनैवदीयते ॥

अर्थ--आठ वर्षके बालकके नस्य कर्म करे और अस्सी वर्षके उपरांत अवस्थावाले मनुष्यको नस्यकर्म नहीं करना ॥

अथवैरेचनंनस्यंग्राह्यंतैलैःसुतीक्ष्णकैः ॥ ७ ॥
तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वास्नेहैःक्वाथैरसैस्तथा ॥

अर्थ-विरेचन नस्य अजमायन राई आदिका तीक्ष्ण तेल काढके देना चाहिये अथवा तीक्ष्ण औषधोंकी साथ तेल सिद्ध करके अथवा तीक्ष्ण औषधोंका काढा करके अथवा रसमें स्नेह सिद्ध करके नस्य देवे ॥

रेचकनस्यका प्रमाण।

नासिकारंध्रयोरष्टौषट्चत्वारश्चबिंदवः ॥ ८ ॥
प्रत्येकंरेचनेयोज्यामुख्यमध्यांत्यमात्रया ॥

अर्थ-रेचनमें नाकके दोनों छिद्रों (नथनों) में औषधकी आठ बिंदु डालना उत्तम मात्रा, छः बिंदु (बूँद) डालना मध्यम मात्रा जाननी और चार बिंदु डालना कनिष्ठ मात्रा कही जाती है ॥

नस्यकर्ममें औषधका प्रमाण।

नस्यकर्मणिदातव्यंशाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ ९ ॥ हिंगुस्या-
द्यवमात्रंतुमाषैकंसैंधवंस्मृतम् ॥ क्षीरंचैवाष्टशाणंस्यात्पानीयं
चत्रिकार्षिकम् ॥१०॥ कार्षिकंमधुरंद्रव्यंनस्यकर्मणियोजयेत् ॥

अर्थ-नस्यकर्ममें तीक्ष्ण औषध होय तो एक शाण डाले। हींग एक यवप्रमाण, सैंधानमक २ मासे, दूध आठ शाण, जल तीन कर्ष तथा खाँड अनार इत्यादिक मधुर द्रव्य होंय वे प्रत्येक एक कर्ष प्रमाण डालने चाहिये। इस प्रकार औषधोंकी योजना करे ॥

विरेचननस्यके दूसरे दो भेद।

अवपीडः प्रधमनंद्वौभेदावपरौस्मृतौ ॥ ११ ॥
शिरोविरेचनस्थानेतौतुदेयौयथायथम् ॥

अर्थ-उस विरेचन नस्यके दो भेद हैं। एक अवपीड तथा एक प्रधमन। इन दोनोंकी मस्तकके रेचन करनेमें योजना करे ॥

अवपीडन और प्रधमनके लक्षण।

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितोनिःसृतोरसः ॥१२॥ सोऽवपी-
डः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ षडंगुलाद्विवक्त्रायानाडी
चूर्णंतयाधमेत् ॥१३॥ तीक्ष्णंकोलमितंवक्त्रवातैः प्रधमनंहितत् ॥

अर्थ-तीक्ष्ण[1] औषधको पीसके कल्क करके निचोड लेवे उस निचुडे हुए रसको अवपीड कहते हैं। छः अंगुल लंबी और दो मुखकी नली बनाकर उसमें तीक्ष्णचूर्ण १ कोल डालके मुखकी पवनसे नाकमें फूंक देवे। इसको प्रधमनसंज्ञक नस्य कहते हैं ॥

---

[1] सोंठ मिरच वच इत्यादिक तीक्ष्ण औषधोंको जलमें पीसे।

रेचन और स्नेहयोग्य प्राणी ।

ऊर्ध्वजत्रुगतेरोगेकफजेस्वरसंक्षये ॥१४॥ अरोचकेप्रतिश्याये
शिरःशूलेचपीनसे ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषुनस्यंवैरेचनंहितम् ॥
॥ १५ ॥ भीरुस्त्रीकृशबालानांनस्यंस्नेहेनदीयते ॥

अर्थ—ऊर्ध्वजत्रुगतरोग, कफसंबंधी स्वरका क्षय, अरुचि, प्रतिश्याय, मस्तकशूल, पीनस, सूजन, अपस्मार और कुष्ठ इन रोगोंमें रेचक नस्य हितकारी जानना । डराहुआ मनुष्य, स्त्री, कृश और बालक इनको स्नेहयुक्त नस्य देवे ॥

अवपीडननस्ययोग्य प्राणी ।

गलरोगेसन्निपातेनिद्रायांविषमज्वरे ॥ १६ ॥
मनोविकारेकृमिषुयुज्यतेचावपीडनम् ॥

अर्थ—गलरोग, सन्निपात, निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार और कृमिरोग इनमें अवपीडन नस्य देना चाहिये ॥

प्रधमननस्ययोग्य प्राणी ।

अत्यंतोत्कटदोषेषुविसंज्ञेषुचदीयते ॥ १७ ॥
चूर्णंप्रधमनंधीरैस्तद्धितीक्ष्णतरंयतः ॥

अर्थ—अत्यंत उत्कट दोष (मूर्च्छा अपस्मारादिक तथा संज्ञा नष्ट हुई हो ऐसे संन्यासादिक रोग) इनमें अत्यंत तीक्ष्ण ऐसी प्रधमन संज्ञक चूर्ण नस्य देना चाहिये ॥

रेचनसंज्ञक नस्य ।

नस्यंस्याद्गुडशुण्ठीभ्यांपिप्पल्यासैंधवेनच ॥ १८ ॥
जलपिष्टेनतेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥
हनुमन्यागलोद्भूतानश्यंतिभुजपृष्ठजाः ॥ १९ ॥

अर्थ—सोंठको गरम जलमें औटाय उसमें गुड मिलाय नासिकामें डाले । तथा पीपल और सैंधानमक इनको गरम जलमें औटाय नस्य देवे अर्थात् नाकमें डाले तो नेत्र कान नाक मस्तक ठोढी गर्दन भुजा (हाथ) और पीठ इनकी पीडाको दूर करे ॥

रेचननस्यका दूसरा प्रकार ।

मधूकसारकृष्णाभ्यांवचामरिचसैंधवैः ॥
नस्यंकोष्णजलेपिष्टंदद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ २० ॥
अपस्मारेतथोन्मादेसन्निपातेऽपतन्त्रके ॥

अर्थ-महुएकी लकडीके भीतरका गाभा, पीपल, वच, काली मिरच और सैंधानमक इन सब औषधोंको गरम जलमें पीस नस्य देवे तो मृगी, उन्माद, सन्निपात और अपतन्त्रक वायु इनसे नष्ट हुई चेष्टा दूर होके मनुष्य सावधान होय ॥

रेचन नस्यका तीसरा प्रकार ।

सैंधवंश्वेतमरिचंसर्षपाःकुष्ठमेवच ॥ २१ ॥
बस्तमूत्रेणपिष्टानिनस्यंतंद्रानिवारणम् ॥

अर्थ-सैंधानमक, सफेद मिरच, सफेद सरसों और कूठ ये औषध बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो तंद्रा (और पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग) दूर होवें ॥

प्रधमन संज्ञक नस्य ।

रोहीतमत्स्यपित्तेनभावितंसैंधवंवचा ॥ २२ ॥
मरिचंपिप्पलीशुण्ठींकंकोलंलशुनंपुरम् ॥
कट्फलंचेतितच्चूर्णदेयं प्रधमनंबुधैः ॥ २३ ॥

अर्थ-सैंधानमक, वच, काली मिरच, पीपल, सोंठ, कंकोल, लहसुन, गूगल और कायफर इनका चूर्ण कर रोहू मछलीके पित्तकी इस चूर्णमें पुट दे । जब सूख जावे तब पूर्वोक्त प्रधमन नलीमें इस चूर्णको भरके नस्य देवे तो पूर्वोक्त तंद्रादिक दोष दूर होवें । इस चूर्णको प्रधमन कहते हैं ॥

बृंहण नस्यकी कल्पना ।

अथबृंहणनस्यस्यकल्पनाकथ्यतेऽधुना ॥ मर्शश्चप्रतिमर्शश्च द्वौभेदौस्नेहनेमतौ॥२४॥ मर्शस्यतर्पणीमात्रामुख्याशाणैःस्मृताष्टभिः ॥ मध्यमाचचतुःशाणैर्हीनाशाणमितास्मृता ॥२५॥ एकैकस्मिंस्तुमात्रेयंदेयानासापुटेबुधैः ॥ मर्शस्यद्वित्रिवेलंवावीक्ष्यदोषबलाबलम् ॥ २६ ॥ एकांतरंद्व्यंतरंवानस्यंदद्याद्विचक्षणः ॥ त्र्यहंपंचाहमथवासप्ताहंवासुयंत्रितम् ॥ २७ ॥

अर्थ-बृंहण[1] (धातुको बढानेवाली) नस्यकी कल्पना कहता हूं, बृंहण नस्यके दो भेद हैं—मर्श प्रतिमर्श ये स्नेहनविषयमें लेनी । तिनमें मर्शनस्यकी तर्पणी[2] मात्रा जाननी । वह आठ शाणकी मुख्य मात्रा होती है । चार शाणकी मध्यम मात्रा तथा एक शाणकी हीन मात्रा जाननी उस मात्राको दोषोंका बलाबल विचार कर देवे । मनुष्यको वस्त्रादिकसे लपेटके एक एक पुडिया नाकमें दो अथवा तीन बार एक दिन बीचमें देकर अथवा दो दिन तीन दिनको बीच देकर पांचवें दिन अथवा सातवें दिन नस्य देवे ॥

---

[1] धातुके बढानेके विषयमें ।　[2] धात्वादिकी तृप्ति करनेवाली मात्राको तर्पणी कहते हैं ।

नस्य अधिक होनेका यत्न ।

मर्शेशिरोविरेकेचव्यापदोविविधाः स्मृताः ॥ दोषोत्क्लेशात्क्षया-
च्चैवविज्ञेयास्तायथाक्रमम् ॥ २८ ॥ दोषोत्क्लेशनिमित्तासुयुंज्या-
द्वमनशोधनम् ॥ अथक्षयनिमित्तासुयथास्वंबृंहणंमतम् ॥ २९ ॥

अर्थ–मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकोंकी तृप्ति करनेवाली है उसको आधिक्य होकर दोषोंका कोप होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें विरेचनसंज्ञक नस्यकी मात्राके आधिक्यके कारण मस्तकमेंसे मेदादिकोंका क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी पीडा होती है । तिनमें जिस दोषके उत्क्लेश निमित्त पीडा हो उसके दूर करनेको वमनकर्त्ता अथवा दस्त करनेवाली औषध देवे । और क्षय-मिमित्तवाली पीडाको दूर करनेके लिये बृंहण औषध नाकमें अथवा पेटमें देवे ॥

बृंहण नस्ययोग्य प्राणी ।

शिरोनासाक्षिरोगेषुसूर्यावर्तार्द्धभेदके ॥ दंतरोगेबलेहीनेम-
न्याबाह्वंसजेगदे ॥३०॥ मुखशोषेकर्णनादेवातपित्तगदे तथा ॥
अकालपलितेचैवकेशश्मश्रुप्रपातने ॥ ३१ ॥ युज्यतेबृंहणं
नस्यंस्नेहैर्वामधुरद्रवैः ॥

अर्थ–मस्तकरोग, नासारोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्त रोग, अर्धावभेदक (आधाशीशी), दांतोंका रोग, दुर्वल मनुष्यकी गर्दन, कंधा और बाहु इनमें जो पीडा होती है वह मुखशोष, कर्णनाद, रोग, वातपित्तसंबंधी विकार, विना समय मनुष्यके सफेद बालोंके होनेको पलित रोग कहते हैं वह तथा मस्तकके वाल और डाढी मूछोंके बाल झरकर गिर पडें वह इन्द्रलुप्त रोग, इन सर्व रोगोंमें घृत आदि स्निग्ध पदार्थ तथा खांड आदि मधुर पदार्थ इन करके बृंहण नस्यकी योजना करे ॥

बृंहण नस्य ।

सशर्करंपयःपिष्टंभ्रष्टमाज्येनकुंकुमम् ॥ ३२ ॥ नस्यप्रयोगतो
हन्याद्वातरक्तभवारुजः ॥ भ्रूशंखाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्धभेद-
कान् ॥३३॥ नस्यंस्याद्बुतैलेनतथानारायणेनवा ॥ माषादि-
नावापिसर्पिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ ३४ ॥ तैलंकफेस्याद्वातेच
केवलेपवनेवसा ॥ दद्यान्नस्यंसदापित्तेसर्पिर्मज्जानमेवच ॥ ३५ ॥

अर्थ–दूधमें खांड डालके नस्य देवे अथवा घीमें केशर डालके नस्य देय । इससे वात-रक्तकी पीडा दूर होय । अंडीके तेल करके अथवा नारायग तेल करके अथवा माषादि तेल करके

अथवा उन २ औषधों करके सिद्ध किये हुए घृतकी नस्य देनेसे भ्रुकुटी, शंख (कनपटी), नेत्र, मस्तक, कान इनके संबंधी रोग, तथा सूर्यावर्त्तरोग और आधाशीशी ये रोग दूर होवें । कफरोगपर तेलकी नस्य देवे, वातरोगपर वसा (चरबी) की नस्य देवे और केवल पित्तरोगपर घी और मज्जा इनकी नस्य देवे ॥

पक्षाघातादिकरोगोंपर नस्य ।

माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरोहिषैः ॥
कृतोऽश्वगन्धयाक्काथोहिंगुसैंधवसंयुतः ॥ ३६ ॥
कोष्णनस्यप्रयोगेणपक्षाघातंसकंपनम् ॥
जयेदर्दितवातंचमन्यास्तंभापबाहुकौ ॥ ३७ ॥

अर्थ--१ उडद, २ कौंचके वीज, ३ रास्ना, ४ गंगेरनकी जड, ५ अंडकी जड, ६ रोहिषतृण और ७ असगंध इन सात औषधोंका काढा करके उसमें भूनी हुई हींग और सैंधानिमक डाल उस गरम २ जलकी नस्य देवे तो कंपसहित पक्षाघातवायु, अर्दित (लकवा) वायु, गरदनकी नसका जकडना और अपबाहुक वायु ये सब दूर हों ॥

प्रतिमर्शनस्यकी दो बिन्दुरूप मात्रा ।

प्रतिमर्शस्यमात्रातुद्विद्विबिंदुमितामता ॥
प्रत्येकशोनयनयोःस्नेहेनेतिविनिश्चितम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—घृत आदिसे जो स्निग्ध पदार्थ उनके जो दो बिंदु एक एक २ नयनमें डालते हैं उसे प्रतिमर्शनस्यकी दो बिंदुरूप मात्रा जाननी ॥

बिंदुसंज्ञक मात्रा ।

स्नेहेग्रंथिद्वयंयावन्निमग्नाचोद्धृताततः ॥ तर्जनीयंस्रवेद्बिंदुंसा
मात्राबिंदुसंज्ञिता ॥ ३९ ॥ एवंविधैर्बिंदुसंज्ञैरष्टाभिःशाणउ-
च्यते ॥ सदेयोमर्शनस्येतुप्रतिमर्शोद्विबिंदुकः ॥ ४० ॥

अर्थ—घृत तेल (आदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ) उनमें दो पेरुआ बूडे इस प्रकार तर्जनी उँगलीको डबोयके बाहर काढे । उस पेरुएसे जो बिंदु टपके उसको बिंदुमात्रा कहते हैं । इस प्रकार बिंदुसंज्ञक आठ मात्राओंका एक शाण होता है । वह एक शाण मात्रा मर्शनस्यमें देवे और प्रतिमर्शनस्यमें दो बिन्दु मात्रा देवे । इतनी मर्शनस्यमें विशेषता जाननी ॥

प्रतिमर्शनस्यके समय ।

समयाःप्रतिमर्शस्यबुधैःप्रोक्ताश्चतुर्दश ॥ प्रभातेदंतकाष्ठांतेगृहा-
न्निर्गमनेतथा ॥४१॥ व्यायामाध्वव्यवायांतेविण्मूत्रांतेंजनेकृते ॥

कवलांतेभोजनांतेदिवास्वप्नोत्थितेतथा ॥ ४२ ॥ वमनांतेतथा सायंप्रतिमर्शःप्रयुज्यते ॥

अर्थ–प्रतिमर्शनस्यके समय चौदह हैं, १ प्रातःकाल, २ मुख धोनेपर, ३ घरसे बाहर निकलते समय, ४ परिश्रमके अंतमें, ५ मार्ग चलकर आनेपर, ६ मैथुनके अंतमें, ७ मलत्यागके अंतमें, ८ मूत्रत्यागके अंतमें, ९ नेत्रोंमें अंजन आंजनेके पश्चात्, १० ग्रासके अंतमें, ११ भोजनके अन्तमें, १२ दिनमें सोनेके पश्चात् उठकर, १३ वमनके अंतमें और १४ सायंकालमें इतने समयोंमें प्रतिमर्शनस्य देवे ॥

प्रतिमर्शनस्य करके तृप्तके लक्षण ।

ईषदुच्छिंदनात्स्नेहोयदावक्रंप्रदृश्यते ॥ ४३ ॥
नस्येनिषिक्तंतंविद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥
उच्छिन्दनंपिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम्

अर्थ–नस्य देनेपर अल्पछींक आकर उस स्नेहके मुख
करके तृप्त हुआ ऐसा जानना ! वह मनुष्य मुखमें
रके द्वारा बाहर थूँकदेवे ॥

प्रति

क्षीणेतृष्णास्य
प्रतिमर्शेन
वलीप

॥ ४६ ॥

नम् ॥

ारी, ादी और कौआठोडी इनके बीजोंके भीतरकी
के एक एकको पृथक् २ नस्य देय तो मनुष्यके अकालमें जो सफेद
तरुणावस्थाके समान काले होवें ॥

नस्यकी विधि।

अथनस्यविधिंवक्ष्येनस्यग्रहणहेतवे ॥ ४७ ॥ देशेवातरजोमुक्तेकृतदंतनिघर्षणम् ॥ विशुद्धंधूमपानेनस्विन्नभालंगलंतथा ॥ ४८ ॥ उत्तानशायिनंकिञ्चित्प्रलंबशिरसंनरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादंचवस्त्राच्छादितलोचनम् ॥ ४९ ॥ समुन्नमितनासाग्रंवैद्योनस्येनयोजयेत्॥ कोष्णमच्छिन्नधारंच हेमतारादिशुक्तिभिः ॥ ५० ॥ शुक [illegible] न्त्रयुक्त्यावाप्लोतैर्वानस्यमाचरेत् ॥

अर्थ—नस्य देनेमें [illegible] हते हैं। जिस स्थानमें पवन तथा धूर न होय उसमें मनुष्यको [illegible] और गलेको शुद्ध कर पसीने युक्त करे । फिर चित्त लेटाके [illegible] य पैरोंको लंबे पसार कपडेसे नेत्रोंको ढक देवे। फिर वैद्य इस [illegible] रके उसमें नस्यकी औषधको गरम २ सुहाती धार एकसी [illegible] नस्य सोनेके पात्रमें अथवा चांदीके पात्रमें करके गेरे अथवा सीप और [illegible] आदि करके नाकमें डाले ॥

[illegible] लेनेके पश्चात् नियम।

[illegible] मानेवुशिरोनैवप्रकंपयेत् ॥ ५१ ॥ नकुप्येन्न [illegible] च्छेदेन्नहसेत्तथा ॥ एतद्धिविहितःस्नेहोनैवांतःसंप्रप- [illegible] ॥ ५२ ॥ ततःकासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसंभवः ॥

[illegible] नुष्य नस्य लेनेके समय मस्तकको न हिलावे, क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, छींके [illegible] हंसे नहीं। यदि इस प्रकार आचरण करे तो वह स्नेह मस्तकके भीतर अच्छी तरह नहीं [illegible] खांसी, पीनस, मस्तक तथा नेत्र इनमें पीडा इत्यादिक उपद्रव होते हैं ॥

नस्यके सन्धारणका प्रकार।

शृंगाटकमभिप्लाव्यस्थापयेन्नगिलेद्द्रवम् ॥ ५३॥ पंचसप्तदशैव स्युर्मात्रानस्यस्यधारणे ॥ उपविश्याथनिष्ठीवेन्नासावक्त्रगतं द्रवम् ॥ ५४ ॥ वामदक्षिणपार्श्वाभ्यांनिष्ठीवेत्संमुखेनहि ॥

अर्थ—मनुष्यको नस्य देकर शृङ्गाटक कहिये नासावंशकी पुट भ्रूमध्य देशमें चतुष्पद है उस जगह उस नस्य करके भिगोकर उस नस्यको रख देवे। उसका धारण पांच मात्रा सात मात्रा

---

१ अनुवासन वस्तिके अध्यायमें मात्राका प्रमाण लिखा है उससे जान लेना।

कवलांतेभोजनांतेदिवास्वप्नोत्थितेतथा ॥ ४२ ॥ वमनांतेतथा
सायंप्रतिमर्शःप्रयुज्यते ॥

अर्थ–प्रतिमर्शनस्यके समय चौदह हैं, १ प्रातःकाल, २ मुख धोनेपर, ३ घरसे बाहर निकलते समय, ४ परिश्रमके अंतमें, ५ मार्ग चलकर आनेपर, ६ मैथुनके अंतमें, ७ मलत्यागके अंतमें, ८ मूत्रत्यागके अंतमें, ९ नेत्रोंमें अंजन आंजनेके पश्चात्, १० ग्रासके अंतमें, ११ भोजनके अन्तमें, १२ दिनमें सोनेके पश्चात् उठकर, १३ वमनके अंतमें और १४ सायंकालमें इतने समयोंमें प्रतिमर्शनस्य देवे ॥

प्रतिमर्शनस्य करके तृप्तके लक्षण ।

ईषदुच्छिंछदनात्स्नेहोयदावक्त्रंप्रदृश्यते ॥ ४३ ॥
नस्येनिषिक्तंतंविद्यात्प्रतिमर्शंप्रमाणतः ॥
उच्छिंन्दनंपिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ ४४ ॥

अर्थ–नस्य देनेपर अल्पछींक आकर उस स्नेहके मुखमें उतरनेसे वह मनुष्य प्रतिमर्षनस्य करके तृप्त हुआ ऐसा जानना । वह मनुष्य मुखमें उतरे हुए स्नेहको निगले नहीं किन्तु खखारके द्वारा बाहर थूँकदेवे ॥

प्रतिमर्शके योग्य रोगी ।

क्षीणेतृष्णास्यशोषार्तेबालेवृद्धेचयुज्यते ॥
प्रतिमर्शेनशाम्यंतिरोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥ ४५ ॥
वलीपलितनाशश्चबलमिंद्रियजंभवेत् ॥

अर्थ–धातुक्षीण मनुष्य तथा तृष्णा करके तथा मुखशोष करके पीडित मनुष्य बाल और वृद्ध इनको प्रतिमर्शसंज्ञक नस्य देवे । ऊर्ध्वजत्रुके रोग अर्थात् गरदनके ऊपरके रोग तथा त्वचाकी शिथिलता एवं अकालमें बालोंका सफेद होना अर्थात् पलितरोग ये संपूर्ण रोग प्रतिमर्शनस्य करके दूर होते हैं तथा चक्षुरादि इन्द्रियोंमें बल आवे ॥

पलित होनेमें नस्य ।

बिभीतनिम्बगम्भारीशिवाशेलुश्चकाकिनी ॥ ४६ ॥
एकैकंतैलनस्येनपलितंनश्यतिध्रुवम् ॥

अर्थ–बहेडा, नीमकी छाल, कंभारी, हरड, गोंदी और कौआठोडी इनके बीजोंके भीतरकी मज्जाका तेल पृथक् २ निकालके एक एककी पृथक् २ नस्य देय तो मनुष्यके अकालमें जो सफेद बाल होजाते हैं सो तरुणावस्थाके समान काले होवें ॥

नस्यकी विधि।

अथनस्यविधिंवक्ष्येनस्यग्रहणहेतवे ॥ ४७ ॥ देशेवातरजोमुक्तेकृतदंतनिघर्षणम् ॥ विशुद्धंधूमपानेनस्विन्नभालंगलंतथा ॥ ४८ ॥ उत्तानशायिनंकिंचित्प्रलंबशिरसंनरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादंचवस्त्राच्छादितलोचनम् ॥ ४९ ॥ समुन्नमितनासाग्रंवैद्योनस्येनयोजयेत्॥ कोष्णमच्छिन्नधारंच हेमतारादिशुक्तिभिः ॥ ५० ॥ शुक्त्यावायन्त्रयुक्त्यावाप्लोतैर्वानस्यमाचरेत् ॥

अर्थ-नस्य देनेमें नस्यकी विधि कहते हैं। जिस स्थानमें पवन तथा धूर न होय उसमें मनुष्यको दांतन और धूमपान कराके कपाल और गलेको शुद्ध कर पसीने युक्त करे । फिर चित्त लेटाके मस्तकको कुछ थोडा लंबा कर हाथ पैरोंको लंबे पसार कपडेसे नेत्रोंको ढक देवे। फिर वैद्य इस प्राणीकी नाकको कुछ ऊँची करके उसमें नस्यकी औषधको गरम २ सुहाती धार एकसी लगातार डाले। परन्तु वह नस्य सोनेके पात्रमें अथवा चांदीके पात्रमें करके गेरे अथवा सीप और कौडी अथवा फोहे (कपडेके टुकडे) इत्यादि करके नाकमें डाले ॥

नस्य लेनेके पश्चात् नियम।

नस्येष्वासिच्यमानेषुशिरोनैवप्रकंपयेत् ॥ ५१ ॥ नकुप्येन्नप्रभाषेतनोच्छिंदेन्नहसेत्तथा ॥ एतर्हिविहतःस्नेहोनैवांतःसंप्रपद्यते ॥ ५२ ॥ ततःकासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसंभवः ॥

अर्थ-मनुष्य नस्य लेनेके समय मस्तकको न हिलाव, क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, छींके नहीं और हँसे नहीं। यदि इस प्रकार आचरण करे तो वह स्नेह मस्तकके भीतर अच्छी तरह नहीं जाता, तथा उससे खांसी, पीनस, मस्तक तथा नेत्र इनमें पीडा इत्यादिक उपद्रव होते हैं ॥

नस्यके सन्धारणका प्रकार।

शृंगाटकमभिप्लाव्यस्थापयेन्नागिलेद्द्रवम् ॥ ५३॥ पंचसप्तदशैव स्युर्मात्रानस्यस्यधारणे ॥ उपविश्याथनिष्ठीवेन्नासावक्त्रगतंद्रवम् ॥ ५४ ॥ वामदक्षिणपार्श्वाभ्यांनिष्ठीवेत्संमुखेनहि ॥

अर्थ-मनुष्यको नस्य देकर शृङ्गाटक कहिये नासावंशकी पुट भ्रूमध्य देशमें चतुष्पद हैं उस जगह उस नस्य करके भिगोकर उस नस्यको रख देवे। उसका कारण पांच मात्रा सात मात्रा

---

[१] अनुवासन वस्तिके अध्यायमें मात्राका प्रमाण लिखा है उससे जान लेना।

अथवा दश मात्रा कालपर्यन्त करे । पश्चात् बैठकर नाकसे मुखमें उतरे हुए द्रव्यको खखारकर बांईतरफ अथवा दहनी तरफ थूक देवे, सम्मुख न थूके ॥

नस्यकर्ममें त्याज्य कर्म ।

नस्येनीतेमनस्तापंरजःक्रोधंचसंत्यजेत् ॥ ८५ ॥
शयीतनिद्रांत्यक्त्वाचउत्तानोवाक्छतंनरः ॥
तथावैरेचनस्यांतेधूमोवाकवलोऽहितः ॥ ८६ ॥

अर्थ—नस्यकर्म होनेके पश्चात् मनको संताप न आने देवे, जहां धूल उडती हो वहांपर बैठे नहीं, क्रोध न करे, जिस प्रकार नींद न आवे इस प्रकारसे सौ वाक् पर्यंत सीधा (चित्त) लेटे, विरेचन नस्यके अन्तमें धूम और ग्रास नहीं देना ॥

नस्यमें शुद्धादिकभेद ।

नस्येत्रीण्युपदिष्टानिलक्षणानिसमासतः ॥
शुद्धिहीनातियोगानिविशेषाच्छास्त्रचिन्तकैः ॥ ८७ ॥

अर्थ—नस्यमें शुद्धिलक्षण हीनयोग लक्षण और अतियोगलक्षण ये तीन लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञवैद्योंने कहे हैं वह वक्ष्यमाण संक्षेप करके कहता हूँ ॥

उमत्त शुद्धिके लक्षण ।

लाघवंमनसःशुद्धिःस्रोतसांव्याधिसंक्षयः ॥
चित्तेंद्रियप्रसादश्चशिरसःशुद्धिलक्षणम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—नस्य करके मस्तककी उत्तम शुद्धि होनसे शरीर हलका, मन्यानाडीकी शुद्धि, मुख, नाक, कान और गूदा इत्यादि स्रोतसे (बाहरके छिद्रोंका) का शोधन हो, शिरोरोगादि दूर हों, अन्तःकरण तथा चक्षुरादि इन्द्री ये प्रसन्न रहैं ॥

हीनशुद्धिके लक्षण ।

कण्डूपदेहोगुरुतास्रोतसांकफसंस्रवः ॥
मूर्ध्निहीनविशुद्धेतुलक्षणंपरिकीर्तितम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—नस्य करके मस्तककी अल्प शुद्धि होनेसे देहमें खुजली चले तथा देहका चिकट जाना ये लक्षण हों । एवं स्रोतों (मुख नासिका आदि बाहरके मार्ग) से कफका स्राव होय ॥

अति शुद्धिक लक्षण ।

मस्तुलुंगागमोवातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः ॥
शून्यताशिरसश्चापिमूर्ध्निगाढंविरेचिते ॥ ९० ॥

अर्थ–नस्य द्वारा मस्तककी अत्यंत शुद्धि होनेसे मस्तुलुंग (मस्तक भीतर मगज) का नासिका आदिके द्वारा स्राव होने लगे, वायुकी वृद्धि होय, इन्द्रियोंको विभ्रम होय तथा मस्तकमें शून्यता आवे ॥

हीनशुद्ध्यादिकोंमें चिकित्सा।

हीनातिशुद्धेशिरसिकफवातघ्नमाचरेत् ॥
सम्यग्विशुद्धेशिरसिसर्पिर्नस्येनिषेचयेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ–नस्य करके मस्तककी अल्प शुद्धि तथा अत्यन्त शुद्धि होनेसे कफवातनाशक नस्य देवे तथा उत्तम शुद्धि होनेसे उसको नाकमें घृतकी नस्य देय ॥

अतिस्निग्धके लक्षण।

कफप्रसेकः शिरसोगुरुतेंद्रियविभ्रमः ॥
लक्षणंतदतिस्निग्धंरूक्षंतत्रप्रदापयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ–नस्य करके मनुष्यका मस्तक अत्यंत स्निग्ध होनेसे कफका स्राव, मस्तकमें भारीपन और इन्द्रियोंमें भ्रांति ये लक्षण होते हैं। इसमें रूक्ष पदार्थकी नस्य देय ॥

नस्यमें पथ्य।

भोजयेच्चानभिष्यंदिनस्याचारिकमादिशेत् ॥

अर्थ–अभिष्यन्दी पदार्थ कहिये भैंसका दही आदि शब्दसे कफकारक पदार्थ ये भक्षण न करे। तथा नस्यमें जैसे शिष्टजन आचरण करते हैं उसी प्रकार इस नस्य लेनेवाले रोगीको आचरण करने चाहिये ॥

पञ्चकर्मकी संख्या।

वमनंरेचनंनस्यंनिरूहमनुवासनम् ॥
एतानिपञ्चकर्माणिकथितानिमुनीश्वरैः ॥ ६३ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे
स्नेहविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–१ वमन, २ रेचन, ३ नस्य, ४ निरूहवस्ति और ५ अनुवासनवस्ति इन पांचोंको पंचकर्म ऐसा कहते हैं॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखंडे दत्तरामकृतमाथुरभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

धूमपान विधि ।

धूमस्तुषड्विधःप्रोक्तःशमनोबृंहणस्तथा ॥
रेचनःकासहाचैववामनोव्रणधूपनः ॥ १ ॥

अर्थ—धूम छः प्रकारका है । १ शमन, २ बृंहण, ३ रेचन, ४ कासहा, ५ वमन और ६ व्रणधूपन इस प्रकार छः प्रकारके धूम जानने ॥

शमनादि धूमोंके पर्याय ।

शमनस्यतुपर्यायौमध्यःप्रायोगिकस्तथा ॥
बृंहणस्यापिपर्यायौस्नेहनोमृदुरेवच ॥ २ ॥
रेचनस्यापिपर्यायौशोधनस्तीक्ष्णएवच ॥

अर्थ—शमन धूमके पर्यायशब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो जानने । बृंहण धूमके पर्याय शब्द स्नेहन और मृदु जानने । तथा रेचनधूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने ॥

धूमसेवन अयोग्य प्राणी ।

अधूमार्हाश्चखल्वेतेश्रांतोभीरुश्चदुःखितः ॥ ३ ॥
दत्तवस्तिर्विरिक्तश्चरात्रौजागरितस्तथा ॥
पिपासितश्चदाहार्तस्तालुशोषीतथोदरी ॥ ४ ॥
शिरोभितापीतिमिरीछर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥
क्षतोरस्कःप्रमेहार्तः पांडुरोगीचगर्भिणी ॥ ५ ॥
रूक्षःक्षीणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः ॥
भुक्तान्नदधिमत्स्यश्चबालोवृद्धःकृशस्तथा ॥ ६ ॥
अकालेचातिपीतश्चधूमःकुर्यादुपद्रवान् ॥

अर्थ—थका हुआ, डरनेवाला, दुःख करके पीडित, जिसके वस्ति प्रयोग किया है, जिसका कोठा दस्तों करके खाली हो, रात्रिमें जागरण करनेवाला, तृषा करके पीडित, तथा दाह करके पीडित, तालुशोषी, उदरी, शिरोभिताप करके पीडित, तिमिरी, वमन, आध्मान (बादीसे पेट फूलता है वह रोग), उरःक्षत, प्रमेह और पांडुरोग इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, रूक्ष, क्षीण, दूध[१], सहत, घी, आसव (मद्य) और अन्न दही तथा मछली इनको खायचुका हो, बालक,

---

[१] दूध सहत घी और अन्न इत्यादिक पदार्थ भक्षण करके तत्कालही धूमपान नहीं करना।

वृद्ध और दुर्बल मनुष्य इतने प्राणी धूमपानमें अयोग्य जानने अर्थात् इन सबको धूमपान करना वर्जित है एवम् अकालमें और अत्यंत धूमपान करनेसे उपद्रव होते हैं ॥

धूमपानके उपद्रवोंमें क्या देवे सो कहते हैं ।

तत्रेष्टंसर्पिषःपानंनावनांजनतर्पणम् ॥ ७ ॥
सर्पिरिक्षुरसंद्राक्षांपयोवाशर्करांबुवा ॥
मधुराम्लैरसौवापिशमनायप्रदापयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ–धूमपानके उपद्रव होनेसे उस मनुष्यको घी पीनेको देवे । नाकमें नस्य देय, नेत्रोंमें अंजन लगावे, तथा तर्पण (देहमें तृप्तिकारी द्राक्षादिमंड) देय । घी, ईखका रस, दाख, दूध, सरबत और खांड और जल अथवा मधुर और खट्टे पदार्थ ये भक्षण करनेको देवे जिनसे धूमसंबन्धी उपद्रव दूर हों ॥

धूमपानका समय और गुण ।

धूमश्चद्वादशाद्वर्षाद्गृह्यतेऽशीतिकान्नरः ॥
कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ॥ ९ ॥
वातश्लेष्मविकारांश्चहन्याद्धूमःसुयोजितः ॥

अर्थ–धूमपान बारह वर्षकी अवस्थासे लेकर अस्सी वर्षकी अवस्था पर्यन्त करे पश्चात् नहीं करना । तथा उस धूमकी योजना उत्तम होनेसे श्वास, खांसी, पीनस, गरदन, ठोडी और मस्तक इनमें पीडा होती है वह और वातकफसंबन्धी विकार ये संपूर्ण दूर होवें ॥

धूमप्रयोगसे प्रकृति कैसी होती है ।

धूमोपयोगात्पुरुषःप्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः ॥ १० ॥
दृढकेशद्विजश्मश्रुःसुगन्धवदनोभवेत् ॥

अर्थ–धूमका उपयोग होनेसे मनुष्य चक्षुरादि इन्द्रियवाणी और अन्तःकरण इन करके प्रसन्न रहे और केश दांत और श्मश्रु (मूँछ) तथा दाढी इनमें बल आवे ॥

धूममें नलीका विचार ।

धूमनाडीभवेत्तत्रत्रिखंडाचत्रिपर्विका ॥११॥ कनिष्ठिकापरी-
णाहाराजमाषागमांतरा ॥ धूमनाडीभवेद्दीर्घाशमनेरोगिणो-
ऽगुलैः ॥१२॥ चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ स्मृता ॥
तीक्ष्णेचतुर्विंशतिभिःकासघ्नेषोडशोन्मितैः ॥१३॥ दशांगुले-
र्वामनीयेतथास्याद्व्रणनाडिका ॥ कलायमण्डलंस्थूलाकुलि-
त्थागमरंध्रिका ॥ १४ ॥

अर्थ—धूमसेवनमें नली तीन खण्ड और तीन ग्रंथि गांठ करके युक्त तथा कनिष्ठिका उँगलीके बराबर मोटी तथा उसके छिद्रमें चौराका दाना भीतर चला जावे ऐसी पोली हो । इसी प्रकारकी धूमसेवनकी नली रोगीको चालीस अंगुल लंबी लेनी चाहिये । मृदुसंज्ञक धूमके सेवनमें बत्तीस अंगुलकी लंबी लेय । तीक्ष्णसंज्ञक धूमसेवनमें चौबीस अंगुलकी, काससंज्ञक धूमसेवनमें सोलह अंगुलकी, वामनीय संज्ञक धूमके सेवनमें दश अंगुलकी लंबी नली लेनी, इसी प्रकार व्रणके धूनी देनेको नली दश अंगुलकी लंबी होनी चाहिये । तथा वह नली मटरके दानेके प्रमाण मोटी तथा उसका छिद्र कुलथीका दाना भीतर चला जाय इतना बारीक करे इस प्रकारकी नली व्रणकी धूनीको वैद्य लेवे ॥

धूमपानके अर्थ ईषिकाविधान ।

अथेषिकांप्रलिंपेच्चसुश्लक्ष्णांद्वादशांगुलाम् ॥ धूमद्रव्यस्य कल्केनलेपश्चाष्टांगुलःस्मृतः ॥ १५॥ कल्कंकर्षमितंलिप्त्वा छायाशुष्कंनकारयेत् ॥ ईषिकामपनीयाथस्नेहाक्तांवर्तिमादरात् ॥ ॥१६॥अंगारैर्दीपितांकृत्वाधृत्वानेत्रस्यरंध्रके ॥ वदनेनापिबेद्धूमंवदनेनैवसंत्यजेत् ॥ १७ ॥ नासिकाभ्यां ततःपीत्वामुखेनैववमेत्सुधीः ॥ शरावसंपुटेक्षिप्त्वाकल्कमंगारदीपितम् ॥ १८ ॥ छिद्रेनेत्रंसुवेश्याथव्रणंतेनैवधूपयेत् ॥

अर्थ—ईषिका (नै) बारह अंगुल लम्बी लेवे और धूमसेवनकी औषधियां हैं उनका कल्क करके उस कल्कको एक कर्ष लेकर उस ईषिका अर्थात् नैरर आठ अंगुल पर्यन्त लेप करे । फिर उसको सुखायके सूखनेपर उस ईषिकाको अलग निकास लेवे । फिर उस कल्कके छिद्रमें दूसरी स्नेहयुक्त बत्तीको रख उसके ऊपर अंगार रख जलायके नलीके छिद्रमें धरे । पश्चात उस नली करके मुखसे धूएँको खींचकर मुखद्वाराही त्याग देवे । फिर नाकके रास्तेसे धूएँको खींचके मुखके द्वारा छोडे । तथा शरावसंपुटमें ऊपरकी तरफ छिद्र कर उसमें अंगारे रखके उनके ऊपर व्रणकी धूनीकी औषधोंका कल्क किया हुआ डालके उस शरावेके छिद्रपर नलीके छिद्रको रखके व्रणमें धूनी देवे ॥

कानसी औषधका कल्क कौनसे धूममें देवे ।

एलादिकल्कंशमनेस्निग्धंसर्जरसंमृदौ ॥१९॥ रेचनेतीक्ष्णकल्कंचकासघ्नेक्षुद्रिकोषणम् ॥ वामनेस्नायुचर्माद्यंदद्याद्धूमस्य पानकम् ॥ २० ॥ व्रणेनिम्बवचाद्यंचधूमनंसंप्रचक्षते ॥

---

[१] वमन होनेके वास्ते जो धूम हो उसको वामनीय धूम कहते हैं ।

अर्थ—शमनसंज्ञक धूममें एलादिक[1] औषधोंका गण है उसका कल्क करके देवे । मृदुसंज्ञक धूममें स्निग्ध (घृतादिक स्नेह) पदार्थोंमें शिलारस डालके कल्क करके देवे। रेचकसंज्ञक धूममें तीक्ष्ण औषधि (सरसों राई इत्यादिकों) का कल्क करके देवे । कासघ्नधूममें कटेरी काला मिरच इत्यादि औषधोंका कल्क कर देवे । वामनधूममें (वमन लानेवाले धूममें) स्नायु और चर्मादिक[2] इनका कल्क करके धूमपानार्थ देवे। तथा व्रणमें नीम और वचका धूमपान करावे॥

बालकग्रहनाशक धूनी ।

अन्येऽपिधूमगेहेषुकर्तव्यारोगशांतये ॥ २१ ॥ सयथा ॥
मायूरपिच्छंनिम्बस्यपत्राणिबृहतीफलम् ॥ मरिचंहिंगुमांसी
चबीजंकार्पाससम्भवम् ॥ २२ ॥ छागरोमाहिनिर्मोकं विष्ठा
वैडालिकीतथा ॥ गजदंतश्चतच्चूर्णंकिंचिद्घृतविमिश्रितम्
॥ २३ ॥ गेहेषुधूपनंदत्तंसर्वान्बालग्रहाञ्जयेत् ॥ पिशाचान्रा-
क्षसाञ्जित्वा सर्वज्वरहरंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—बालग्रह दूर होनेको दूसरे प्रकारका धूम होता है तिसमेंसे मयूरपिच्छादि धूनी कहते हैं। १ मोरकी चंद्रिका, २ नीमके पत्ते, ३ कटेरीके फल, ४ मिरच, ५ हींग, ६ जटामांसी, ७ कपासके बिनोले, ८ बकरेके बाल, ९ सांपकी कांचली, १० बिल्लीकी विष्ठा, ११ हाथीका दांत इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण कर उसमें थोडासा घी मिलायके इस चूर्णकी घरमें धूनी देवे तो संपूर्ण बालग्रह पिशाच और राक्षस इनके सर्व उपद्रव तथा संपूर्ण ज्वर दूर हों ॥

धूमपानमें परिहार ।

परिहारस्तुधूमेषुकार्योरेचननस्यवत् ॥
नेत्राणिधातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ॥ २५ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे
धूमविधिर्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

[1] वाग्भट्ट ग्रन्थमें एलादिक गण है उसकी औषधि ये हैं । १ इलायची, २ बडी इलायची, ३ शिलारस, ४ कूठ, ५ गंधप्रियंगु, ६ जटामांसी, ७ नेत्रवाला, ८ रोहिसतृण, ९ कपूरी (शाकविशेष), १० किरमानी अजमायन, ११ मोटी दालचीनी, १२ तमालपत्र, १३ तगर, १४ ग्रन्थपर्णीका भेद दूर्वा, १५ जाईका रस, १६ नखद्रव्य, १७ व्याघ्रनख, १८ देवदारु, १९ अगर, २० विशेषधूप, २१ कशर, २२ कौंचकी जड, २३ गुगल, २४ राल, २५ कुन्दरू और २६ नागचम्पा ।

[2] हरिणादिकोंके स्नायु नाडी और चर्म आदिशब्दसे खुर सींग हाड इत्यादि जानने ।

अर्थ—रेचकसंज्ञक नस्यमें रोगोंके परिहारविषयमें जो उपाय कहा है सो इस धूमपानसे करना चाहिये । नलीका मुख सुवर्णादि धातुका अथवा नरसल अथवा बाँस इत्यादिकोंका करे ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृतमाथुरभाषा-
टीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

गण्डूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ।

चतुर्विधः स्याद्गंडूषःस्नैहिकःशमनस्तथा ॥
शोधनोरोपणश्चैवकवलश्चापितद्विधः ॥ १ ॥

अर्थ—गंडूष[1] चार प्रकारका है १ स्नैहिक, २ शमन, ३ शोधन और ४ रोपण उसी प्रकार कवलभी[2] इन्हीं भेदों करके चार प्रकारका है ॥

स्नैहिकादिकगंडूषोंकी दोषभेदकरके योजना ।

स्निग्धोष्णैःस्नैहिकोवातेस्वादशीतिप्रसादनः ॥ पित्तेकट्वम्लल-
वणैरुष्णैःसंशोधनःकफे ॥ २ ॥ कषायतिक्तमधुरैःकदुष्णोरोप-
णव्रणे ॥ चतुःप्रकारोगण्डूषःकवलश्चापिकीर्तितः ॥ ३ ॥

अर्थ—स्निग्ध और उष्ण इन पदार्थों करके जो कुरला (कुल्ला) करना उसे स्नैहिक गंडूष जानना यह वायुरोगमें करे । मधुर और शीतलपदार्थों करके प्रसादन कहिये शमनगण्डूष जानना यह पित्तरोगमें देवे । तीक्ष्ण, खट्टे खारी और उष्ण इन पदार्थोंकरके शोधन गंडूष जानना यह कफरोगमें योजन करे । कषैले कडुए और मधुर इन पदार्थों करके रोपण गंडूष जानना । यह गरम २ व्रणपर योजना करे । इसी प्रकार कवलभी चार प्रकारका जानना ॥

गंडूष और कवलमें भेद ।

असंचारीमुखेपूर्णेगंडूषःकवलश्चरः ॥
तत्रद्रव्येणगंडूषःकल्केनकवलःस्मृतः ॥ ४ ॥

---

[1] गंडूष कहिये द्रवपदार्थ करके कुल्ले करनेका प्रकार ।

[2] कवल कहिये पदार्थको मुखमें गेरके चबानेका प्रकार ।

अर्थ—काढे आदि जो द्रवपदार्थ हैं उनसे मुखको भरके जैसेका तैसाही रहने देवे । फिर थोडी देरके बाद मुखसे पटक देनेको गंडूष (कुल्ला) कहते हैं । एवं कल्कादिक पदार्थको मुखमें इधर उधर फिरायके मुखम रखनेको कवल कहते हैं ॥

गंडूष और कवली औषधोंका प्रमाण ।

दद्याद्द्रवेषुचूर्णश्चगंडूषेकोलमात्रकम् ॥
कर्षप्रमाणः कल्कश्चदीयतेकवलोबुधैः ॥ ५ ॥

अर्थ—गंडूषमें काढे आदि द्रव द्रव्य हैं उनमें चूर्ण एक कोल डाले । तथा कवलमें १ कर्ष प्रमाण कल्ककी योजना करे ॥

कौनसी अवस्थामें और कितने कुल्ले करे ।

धार्यतेपञ्चमाद्वर्षाद्गंडूषकवलादयः ॥
गंडूषात्सुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥ ६ ॥
मनुष्यस्त्रींस्तथापञ्चसप्तवादोषनाशनात् ॥

अर्थ—पांच वषके पश्चात् अर्थात् पांच वर्षकी आयुके पीछे इस प्राणीको गंडूष और कवलग्रहण करने चाहिये । मनुष्य स्वस्थचित्त होके बैठे । फिर रोग दूर होनेको कपाल गला तथा आदिशब्दसे मुख इनमें थोडा पसीना आनेपर्यंत तीन अथवा पांच अथवा सात गंडूष करे । अथवा दोष दूर होने पर्यंत करे ॥

गंडूषधारणमें दूसरा प्रमाण ।

कफपूर्णास्यतांयावच्छेदोदोषस्यवाभवेत् ॥ ७ ॥
नेत्रघ्राणश्रुतिर्यावत्तावद्गंडूषधारणम् ॥

अर्थ—कफसे मुख भर आवे तबतक अथवा दोषोंका छेदन होनेपर्यंत अथवा नेत्र नाक इनमें स्राव छूटने पर्यंत गंडूष धारण करे ॥

वादीके रोगमें स्नैहिकगंडूष ।

तिलकल्कोदकंक्षीरंस्नेहोवास्नैहिकेहितः ॥ ८ ॥

अर्थ—तिलोंका कल्क और जल तथा दूध और तेल आदि चिकने पदार्थ इनकी स्नैहिक गंडूषमें योजना करना चाहिये ॥

पित्तरोगमें शमनसंज्ञक गंडूष ।

तिलानीलोत्पलंसर्पिः शर्कराक्षीरमेवच ॥
सक्षौद्रोहनुवक्रस्थोगंडूषोदाहनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ–तिल, नीला कमल, घी, खाँड और दूध ये सब पदार्थ एकत्र कर इसमें सहत डालके कुल्ले करें तो पित्तसंबंधी ठोडी और मुख इनमें जो दाह होय सो दूर होवे ॥

व्रणादिरोगोंमें मधुगंडूष ।

वैशद्यंजनयत्यास्यंसंदधातिमुखव्रणान् ॥
दाहतृष्णाप्रशमनंमधुगंडूषधारणम् ॥ १० ॥

अर्थ–सहतको जलमें मिलायके कुल्ले करे तो मुखके घाव और छाले पडे तथा दाह और तृषा ये रोग दूर होकर मुखमें स्वच्छता आती है ॥

विषादिकोंपर गंडूष ।

विषक्षाराग्निदग्धेचसर्पिर्धार्यंपयोऽथवा ॥

अर्थ–विषदोष, क्षारादिजन्य विकार, अग्निदाहजन्य विकार इनमें घी अथवा दूधके कुल्ले करे॥

दांतोंके हिलनेपर गंडूष ।

तैलसैंधवगंडूषोदंतचालेप्रशस्यते ॥ ११ ॥

अर्थ–तिलोंका तेल और सैंधानमक इनको एकत्र करके कुल्ले करे तो हिलतेहुए दाँत जमकर मजबूत होजावें ॥

मुखशोषपर गंडूष ।

शोषंमुखस्यवैरस्यंगंडूषः कांजिकोजयेत् ॥

अर्थ–मुखशोष तथा मुखकी विरसता इनमें काँजीके कुरले करे तो मुखशोष और विरसता दूर हो ॥

कफपर गंडूष ।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेणकफेहितः ॥ १२ ॥

अर्थ–सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच और पीपल) तथा राई इनका चूर्ण कर अदरखके रसमें मिलायके कुरले करे तो कफका दोष दूर होवे ॥

कफ और रक्तपित्तपर गंडूष ।

त्रिफलामधुगंडूषः कफासृक्पित्तनाशनः ॥

अर्थ–त्रिफलाके चूर्णको सहतमें मिलाय कुल्ले करनेसे कफ और रक्तपित्त दूर होवे ॥

मुखपाक (छालेपर) गंडूष ।

दार्वीगुडूचीत्रिफलाद्राक्षाजात्यश्चपल्लवः ॥ १३ ॥
यवासश्चेतितत्क्वाथः षष्ठांशः क्षौद्रसंयुतः ॥
शीतोन्मुखेघृतोहन्यान्मुखपाकंत्रिदोषजम् ॥ १४ ॥

अर्थ–दारुहल्दी, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीके पत्ते और जवासा ये सब औषध समान भाग लेकर काढा करे। इस काढेका छठा भाग सहत मिलायके उस काढेको शीतल करके कुल्ले करे तो त्रिदोषजन्य मुखपाक (मुखके छाले) दूर होवें ॥

गंडूषके सदृश प्रतिसारण और कवल।

यस्यौषधस्यगंडूषस्तथैवप्रतिसारणम् ॥
कवलश्चापितस्यैवज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः ॥ १५ ॥

अर्थ–जिस औषधिका गंडूष उसी औषधका प्रतिसारण (मंजन) जानना तथा उसी औषधका कवलभी कुशल वैद्य जाने ॥

कवलका प्रकार।

केशरंमातुलिंगस्यसैंधवव्योषसंयुतम् ॥
हन्यात्कवलतोजाड्यमरुचिंकफवातजाम् ॥ १६ ॥

अर्थ–बिजोरेकी केशर, सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) ये औषध एकत्र कर इनका कवल करनेसे मुखकी जडता तथा कफवातजन्य अरुचि ये दूर हों ॥

प्रतिसारणके भेद।

कल्कोऽवलेहश्चूर्णंचत्रिविधंप्रतिसारणम् ॥
अङ्गुल्यग्रगृहीतंचयथास्वंमुखरोगिणाम् ॥ १७ ॥

अर्थ–कल्क, अवलेह और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारका है। उसको मुखरोगी मनुष्यके जैसा दोष होय उसीके अनुसार उँगलीके आगेके पेरुएमें भरके जीभको तथा संपूर्ण मुखमें लगावे ॥

प्रतिसारण चूर्ण।

कुष्ठंदार्वीसमंगाचपाठातिक्ताचपीतिका ॥
तेजनीमुस्तलोध्रंचचूर्णंस्यात्प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥
रक्तश्रुतिंदंतपीडांशोथंदाहंचनाशयेत् ॥

अर्थ–१ कूठ, २ दारुहल्दी, ३ लजालू, ४ पाढ, ५ कुटकी, ६ मजीठ, ७ हल्दी, ८ नागरमोथा और ९ लोध इन नौ औषधोंका चूर्ण करके जीभपर तथा संपूर्ण मुखमें उँगलीके पेरुएसे रगडे तो दाँतोंके मसूढोंसे रुधिरका गिरना, दाँतोंमें पीडाका होना, सूजन, दाह ये रोग दूर हों। इस चूर्णको प्रतिसारण अर्थात् मंजन कहते हैं ॥

गंडूषादिके हीनयोगादि होनेके लक्षण।

हीनयोगात्कफोत्क्लेशोरसाज्ञानारुचीतथा ॥ १९ ॥

अतियोगान्मुखेपाकःशोषस्तृष्णाक्लमोभवेत् ॥

अर्थ—गंडूषादिकोंका हीनयोग (अल्पयोग) होनेसे कफका आधिक्य होता है। मधुरादि पदार्थोंसे रसका ज्ञान नहीं रहता और अन्नादिकोंपर अरुचि होती है। गंडूषादिकोंका अत्यंत योग होनेसे मुखपाक अर्थात् मुखमें छाले होजावें तथा शोष और प्यास ये लक्षण होते हैं ॥

शुद्धगंडूषके लक्षण।

व्याधेरवचयस्तुष्टिर्वैशद्यंवक्त्रलाघवम् ॥
इंद्रियाणांप्रसादश्चगंडूषेशुद्धिलक्षणम् ॥ २० ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे गंडूषादिविधिर्नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ—गंडूषादिकोंका उत्तम योग होनेसे व्याधिका नाश, अंतःकरणमें संतोष, मुखमें निर्मलपन, हलकापन, रसनादिक इन्द्रियोंमें प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृतमाथुरभाषाटीकायां
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ११.

लेपकी विधि।

आलेपस्यचनामानिलिप्तोलेपश्चलेपनम् ॥ दोषघ्नोविषहावर्ण्यो
मुखलेपस्त्रिधामतः ॥ १ ॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागत्रिभागार्धांगुलो-
न्नतः ॥ आर्द्रोव्याधिहरःसस्याच्छुष्कोदूषयतिच्छविम् ॥ २ ॥

अर्थ—लिप्त लेप और लेपन ये तीन नाम लेपके हैं, उसीको आलेप कहते हैं। वह लेप दोषघ्न विषघ्न और वर्ण्य इन भेदों करके मुखलेप तीन प्रकारका है। उस लेपके प्रमाण तीन है जैसे एक अंगुल ऊंचेको दोषघ्न जानना, पौन अंगुलके प्रमाण ऊँचे लेपको विषघ्न जानना और जो आधे अंगुल ऊँचा होवे उसे वर्ण्य जानना। ऐसे तीन प्रमाण जानने। जो आर्द्र (गीला) लेप है उसे रोगहरणकर्ता जानना। जो शुष्क (करडा) लेप है उसे शरीरकी कांतिको दूषित करनेवाला जानना ॥

---

१ सूजन खुजली इत्यादि रोगोंको दूर करता जानना।

२ भिलावें वच्छनाग इत्यादिकोंके विषको दूर करनेवाला।

३ मुख और त्वचाको कांति देनेवाला।

शोथघ्न लेप।

पुनर्नवांदारुशुण्ठींसिद्धार्थशिग्रुमेवच ॥
पिष्ट्वाचैवारनालेनप्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ३ ॥

अर्थ–१ पुनर्नवा (सांठ), २ देवदारु, ३ सोंठ, ४ सफेद सरसों और ५ सहँजनेकी छाल ये पांच औषधि समान भाग लेकर कांजीमें पीस सूजनपर लेप करे तो नौ प्रकारकी सूजन दूर होय ॥

दाहशांतिका लेप।

विभीतफलमज्जाक्तलेपोदाहार्त्तिनाशनः ॥

अर्थ–बहेडेके भीतरकी गिरीको बारीक पीस देहमें लेप करे तो दाहसंबन्धी पीडा दूर हो ॥

दशांगलेप।

शिरीषंमधुयष्टींचतगरंरक्तचन्दनम् ॥ ४ ॥ एलामांसीनिशायुग्मं
कुष्ठंवालकमेवच ॥ इति संचूर्ण्यलेपोऽयंपंचमांशघृतप्लुतः ॥५॥
जलेनक्रियतेसुज्ञैर्दशांगइतिसंज्ञितः ॥ विसर्पान्विषविस्फोटा-
ञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–१ सिरसकी छाल, २ मुलहटी, ३ तगर, ४ लालचन्दन, ५ इलायची, ६ जटामांसी, ७ हल्दी, ८ दारुहल्दी, ९ कूठ और १० नेत्रवाला इन दश औषधोंको समान भाग ले बारीक पीस चूर्ण करे फिर जलमें सानके रोगके स्थानपर लेप करे तो विसर्परोग, विषदोष, विस्फोट, सूजन, दुष्टव्रग ये सर्व रोग दूर हों। इस लेपको दशांगलेप कहते हैं ॥

विषघ्न लेप।

अजादुग्धतिलैर्लेपोनवनीतेनसंयुतः ॥
शोथमारुष्करंहंतिलेपोवाकृष्णमृत्तिकैः ॥ ७ ॥

अर्थ–बकरीके दूधमें तिलोंको पीसके उसमें मक्खन मिलाय लेप करे अथवा काली मिट्टी और तिल इन दोनोंको एकत्र पीस इसमें मक्खन मिलाय लेप करे तो भिलावेंकी सूजन दूर होवे ॥

दूसरा प्रकार।

लांगल्यतिविषालाबूजालिनीबिजमूलकैः ॥
लेपोधान्यांबुसंपिष्टःकीटविस्फोटनाशनः ॥ ८ ॥

अर्थ–१ कलियारी, २ अतीस, ३ कडुई तूंबीके बीज, ४ कडुई तोरईके बीज ५, मूलीके बीज इन पांच औषधोंको समान भाग लेकर धान्यांबु (काँजी) में पीसके कीटविशेषके दंशपर लेप करे तथा विस्फोटक रोगपर लेप करे तो ये विकार दूर हों ॥

मुखकांतिकारक लेप ।

रक्तचंदनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियंगवः ॥
वटांकुरमसूराश्चव्यंगघ्नामुखकांतिदाः ॥ ९ ॥

अर्थ–१ लालचन्दन, २ मजीठ, ३ लोध, ४ कूठ, ५ फूलप्रियंगु, ६ बडके अंकुर, ७ मसूर ये सात औषधी समभाग लेकर पानीमें पीस लेप करे तो झाईं रोग दूर हो और यह लेप मुखपर कांति करता है ॥

दूसरा प्रकार ।

मातुलुंगजटासर्पिःशिलागोशकृतोरसः ॥
मुखकांतिकरोलेपःपिटिकाव्यंगकालजित् ॥ १० ॥

अर्थ–विजोरेकी जड, घी, मनशिल और गौके गोवरका रस ये चार औषध एकत्र कर मुखपर लेप करे तो यह लेप मुखपर कांति करे और मुँहाँसे व्यंग और नीलिका ये रोग दूर हों ॥

मुँहाँसे नाशक लेप ।

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः ॥ तद्वद्गोरोचनायुक्तं
मरीचंमुखलेपनात् ॥ ११ ॥ सिद्धार्थकवचालोध्रसैंधवैश्चप्रलेपनम् ॥

अर्थ–लोध, धनिया और वच ये तीन औषधि समान भाग ले जलमें पीस लेप करे अथवा गोरोचन और कालीमिरच इन दोनोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे । अथवा सफेद सरसों, वच, लोध और सैंधानिमक इन चार औषधोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे । इस प्रकार ये तीन प्रकारके लेप मुखके मुँहाँसे दूर करनेके वास्ते जानने ॥

व्यंगरोगपर लेप ।

व्यंगेषुचार्जुनत्वग्वामांजिष्ठावासमाक्षिकः ॥ १२ ॥
लेपःसनवनीतोवाश्वेताश्वखुरजामषी ॥

अर्थ–कोहवृक्षकी छालका चूर्ण अथवा मंजीठका चूर्ण अथवा सफेद घोडेके खुरसंबन्धी हाडकी राख ये तीन औषध पृथक् २ सहत और मक्खनमें मिलायके पृथक् २ लेप करे तो व्यंग रोग दूर होवे ॥

मुखकी झाईंपर लेप ।

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यांमर्दयित्वाविलेपनात् ॥ १३ ॥
मुखकार्ष्ण्यंशमंयातिचिरकालोद्भवंध्रुवम् ॥

अर्थ–आकके दूधमें हल्दीको पीस लेप करे तो मुखकी बहुत दिनकी कालौंच (झाईं) दूर होवे ॥

मुँहाँसे आदिपर लेप।

वटस्यपांडुपत्राणिमालतरिक्तचंदनम् ॥ १४ ॥
कुष्ठंकालीयकंलोध्रमेभिर्लेपंप्रयोजयेत् ॥
तारुण्यपिटिकाव्यंगनीलिकादिविनाशनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—बडके पीले पत्ते, चमेली, लालचन्दन, कूट, दारुहल्दी और लोध इन सब औषधोंको एकत्र पीसके लेप करे तो जवानीके मुँहाँसे और व्यंग नीलिकादिक रोग दूर होवें ॥

अरुंषिकारोगपर लेप।

पुराणमथपिण्याकंपुरीषंकुक्कुटस्यच ॥
मूत्रपिष्टःप्रलेपोऽयंशीघ्रंहन्यादरुंषिकाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तिलोंकी पुरानी खल और मुरगेकी बीठ इन दोनोंको गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिका दूर होवे ॥

दूसरा प्रकार।

खदिरारिष्टजंबूनांत्वग्भिर्वामूत्रसंयुतैः ॥
कुटजत्वक्सैन्धवंवालेपोहन्यादरुंषिकाम् ॥ १७ ॥

अर्थ—खैर, नीम और जामुन इन तीनोंकी छालका चूर्ण करके गोमूत्रसे पीस लेप करे अथवा कुडेकी छाल और सैंधानिमक ये दो औषध गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिका रोग दूर होवे ॥

दारुणरोगपर लेप।

प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैःससैन्धवैः ॥
कार्योदारुणकेमूर्ध्निप्रलेपोमधुसंयुतः ॥ १८ ॥

अर्थ—१ चिरोंजी, २ मुलहटी, ३ कूठ, ४ उडद और ५ सैंधानिमक ये पांच औषध समान ले बारीक पीस सहतमें मिलायके मस्तकमें दारुण (कहिये दारुणरोग) दूर होनेके वास्ते लेप करे ॥

दूसरी विधि।

दुग्धेनखाखसंबीजंप्रलेपाद्दारुणंजयेत् ॥ आम्रबीजस्यचूर्णंतुशिवाचूर्णसमंद्वयम् ॥ १९ ॥ दुग्धपिष्टःप्रलेपोऽयंदारुणंहंतिदारुणम् ॥

अर्थ—खसखसको दूधमें पीस मस्तकपर लेप करे तथा आमकी गुठलीकी गिरी, छोटी हरड इन दोनोंको समान भाग ले चूर्ण कर दूधमें पीस लेप करे तो घोर दुर्धर दारुण रोग दूर होवे ॥

इन्द्रलुप्तपर लेप।

रसस्तिक्तपटोलस्यपत्राणांतद्विलेपनात् ॥ २० ॥

इन्द्रलुप्तंशमंयातित्रिभिरेवदिनैर्ध्रुवम् ॥

अर्थ—कडुए पटोलके पत्तोंका रस काढके उसका तीन दिन लेप करे तो इन्द्रलुप्त रोग निश्चय दूर होवे ॥

दूसरी विधि ।

इन्द्रलुप्तापहोलेपोमधुनाबृहतीरसः ॥ २१ ॥
गुञ्जामूलफलंवापिभल्लातकरसोऽपिवा ॥

अर्थ—कटेरीका रस निकाल उसमें सहत मिलायके लेप करे अथवा घूंघचीकी जडका अथवा घूंघची (चिरमिठी) के रसको सहतमें मिलायके लेप करे । अथवा भिलावेंके पत्तोंका रस निकाल उसमें सहत मिलाय लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो ॥

केशवृद्धिपर लेप ।

गोक्षुरस्तिलपुष्पाणितुल्येचमधुसर्पिषी ॥ २२ ॥
शिरःप्रलेपनंतेनकेशसंवर्धनंपरम् ॥

अर्थ—गोखरू तिलके फूल इन दोनोंको समान भाग लेके चूर्ण करे और सहत तथा घी ये दोनों बराबर लेके इसमें चूर्णको सानके मस्तकपर लेप करे तो केश बढें ॥

केश जमानेवाला लेप ।

हस्तिदंतमषींकृत्वाछागीदुग्धंरसांजनम् ॥ २३ ॥
रोमाण्यनेनजायंतेलेपात्पाणितलेष्वपि ॥

अर्थ—हाथीके दाँतको जलायके उसकी राख कर लेवे यह राख और रसोत इन दोनोंको बकरीके दूधमें पीस जिस स्थानके बाल उडगये हों उस जगह लेप करे तो बाल ऊग आवें। यह लेप हाथोंकी हथेली पर करनेसे हथेलीमें भी बाल अवश्य ऊगें ॥

इन्द्रलुप्तरोगपर लेप ।

यष्टींदीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः ॥ २४ ॥
इंद्रलुप्तःशमंयातिकेशाःस्युःसघनादृढाः ॥

अर्थ—मुलहटी, कमल और दाख इन तीन औषधोंको तिलोंके तेल गौका दूध और घी इनमें पीसके लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो तथा बाल दृढ और सघन होवें ॥

केश आनेपर दूसरा लेप ।

चतुष्पदानांत्वग्रोमनखशृंगास्थिभस्मभिः ॥ २५ ॥
तैलेनसहलेपोऽयंरोमसंजननःपरः ॥

अर्थ—बकरी आदि चौपाये जीवोंका त्वचा (चाम), बाल, नख, सींग और हाड इनकी भस्म कर तिलके तेलमें मिलायके लेप करे तो यह लेप नवीन केश (बाल) आनेमें अत्यंत उत्तम है ॥

केश काले करनेका लेप।

इंद्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यंगमाचरेत् ॥ २६ ॥
प्रत्यहंतेनकालाग्निसन्निभाः कुन्तलाह्यलम् ॥

अर्थ—इन्द्रायनके बीजोंका तेल पातालयंत्र करके निकाल लेय फिर इसको सफेद बालोंपर नित्य लेप करे तो बाल अत्यंत काले होव ॥

दूसरी विधि।

अयोरजोभृङ्गराजस्त्रिफलाकृष्णमृत्तिका ॥ २७ ॥
स्थितामिक्षुरसेमासंलेपनात्पलितंजयेत् ॥

अर्थ—१ लोहका चूर्ण, २ भाँगरा, ५ त्रिफला (हरड, बहेडा, आँवला), ६ कालीमिट्टी ये छः औषध समान भाग ले चूर्ण कर ईखके रसमें डालके एक महीने पर्यंत धरा रहने देवे। फिर अकालमें जो सफेद बाल हुए हो उनपर यह लेप करे तो काले बाल होवें॥

तीसरा प्रकार।

धात्रीफलत्रयंपथ्येद्वेतथैकंविभीतकम् ॥ २८ ॥ पंचाम्रमज्जा-
लोहस्यकर्षैकंचप्रदीयते ॥ पिष्टालोहमयेभांडेस्थापयेदुषितं
निशि ॥ २९ ॥ लेपोऽयंहंतिनचिरादकालपलितंमहत् ॥

अर्थ—आमले तीन, हरड दो, बहेडेका फल एक, आमकी गुठलीके भीतरकी मिंगी पांच, लोहचूर्ण एक कर्ष इन संपूर्ण औषधोंको लोहकी कडाहीमें बारीक पीस सब रात्री उसी प्रकार धरी रहने देवे। दूसरे दिन लेप करे तो जिस मनुष्यके थोडी अवस्थामें सफेद बाल होगये होवे इस लेपसे तत्काल काल होव ॥

चतुर्थ प्रकार।

त्रिफलानीलिकापत्रंलोहंभृंगरजःसमम् ॥ ३० ॥
अजामूत्रेणसंपिष्टंलेपात्कृष्णीकरंस्मृतम् ॥

अर्थ—त्रिफला और नीलके पत्ते तथा लोहका चूर्ण एवं भांगरा इन सब औषधोंको समान भाग लेके बकरीके मूत्रसे पीस लेप करे तो यह लप सफद बालोंक काले करनेमें परमोत्तम है॥

पांचवां प्रकार।

त्रिफलालोहचूर्णंचदाडिमत्वग्भिसंतथा ॥ ३१ ॥ प्रत्येकंपंच-

पलिकंचूर्णंकुर्याद्विचक्षणः ॥ भृङ्गराजरसस्यापिप्रस्थषट्कंप्रदापयेत् ॥३२॥ क्षिप्त्वालोहमयेपात्रेभूमिमध्येनिधापयेत् ॥ मासमेकंततः कुर्याच्छागीदुग्धेनलेपनम् ॥३३॥ कूर्चौशिरसिरात्रौच संवेष्ट्यचैरंडपत्रकैः ॥ स्वपेत्प्रातस्ततः कुर्यात्स्नानंतेनचजायते ॥ ३४ ॥ पलितस्यविनाशश्चत्रिभिर्लेपैर्नसंशयः ॥

अर्थ—त्रिफला, लोहका चूरा, अनारकी छाल और कमलका कंद ये प्रत्येक पांच २ पल लेवे । सबको वारीक पीस चूर्ण करे । फिर छः प्रस्थ भाँगरेका रस निकालके एक लोहेकी कडाहीमें भरके और पूर्वोक्त त्रिफला आदिका चूर्ण डालके एक महीने पर्यंत जमीनमें गाड देवे । पश्चात् बाहर निकालके इसमें बकरीका दूध मिलायके मस्तकमें रात्रिके समय लेप करे और उस लेपपर अंडके पत्ते बाँधके सोय जावे । प्रातःकाल उठके स्नान करे, इस प्रकार तीन लेप करे तो जिस मनुष्यके युवावस्थामें सफेद बाल होगये हों वे निश्चय बहुत जल्दी काले होजावें ॥

केशनाशक प्रयोग ।

शंखचूर्णस्यभागौद्वौहरितालंचभागिकम् ॥ ३५ ॥ मनःशिला चार्धभागास्वर्जिकाचैकभागिका ॥ लेपोऽयंवारिपिष्टस्तुकेशानुत्पाट्यदीयते ॥ ३६ ॥ अनयालेपयुक्त्याचसप्तवेलं प्रयुक्तया ॥ निर्मूलकेशस्थानंस्यात्क्षपणस्यशिरोयथा ॥ ३७ ॥

अर्थ—शंखचूर्ण दो भाग, हरताल एक भाग, मनशिल आधा भाग, सर्ज्जीखार एक भाग इन सबको जलमें पीसके जिस जगहके बाल निर्मूल करने हों उस जगह उस्तरासे बालोंको दूर करके इन औषधका लेप करे । इस प्रकार युक्तिसे सात लेप करे तो बालोंके आनेका स्थान निर्मूल होवे अर्थात् फिर उस जगह बाल नहीं आवें । संन्यासीके मस्तक प्रमाण चिकना होजाय ॥

दूसरी विधि ।

तालकंशाणयुग्मंस्यात्षट्शाणंशंखचूर्णकम् ॥ द्विशाणिकंपलाशस्यक्षारंदत्त्वाप्रमर्दयेत् ॥ ३८ ॥ कदलीदंडतोयेनरविपत्ररसेनवा ॥ अस्यापिसप्तभिर्लेपैर्लोम्नांशातनमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—हरताल २ शाण और शंखका चूर्ण छः शाण तथा पलाश (ढाक) का खार २ शाण इन सब औषधोंको केलाके दंडके रसमें अथवा आकके पत्तोंके रसमें खरल कर केश दूर करनेकी जगह सात वार लेप करे । यह लेप केश दूर करनेके विषयमें परमोत्तम है ॥

सफेद कोढ दूर होनेका औषध।

सुवर्णपुष्पकासीसंविडंगानिमनःशिला ॥
रोचनासैंधवंचैवलेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ४० ॥

अर्थ–१ पीली चमेली, २ हीराकसीस, ३ वायविडंग, ४ मनशिल, ५ गोरोचन, ६ सैंधानमक ये छः औषध समान भाग ले गोमूत्रसे पीस लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ (सफेद कोढ) दूर हो ॥

दूसरी विधि।

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिकाकृता ॥
बस्तमूत्रेणसंपिष्टाप्रलेपाच्छ्वित्रनाशिनी ॥ ४१ ॥

अर्थ–१ काकतुंडी, २ पमारके वीज, ३ कूठ, ४ पीपल ये चार औषध समान भाग लेकर बकरेके मूत्रसे पीसके लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ दूर होवे ॥

तीसरी विधि।

बाकुचीवेतसोलाक्षाकाकोदुंबरिकाकणा ॥ रसांजनमयश्चूर्णंतिलाः
कृष्णास्तदेकतः ॥ ४२ ॥ चूर्णयित्वागवांपित्तैः पिष्ट्वाचगुटिका
कृता ॥ अस्याः प्रलेपाच्छ्वित्राणिप्रणश्यंत्यतिवेगतः ॥४३॥

अर्थ–१ बावची, २ अमलवेत, ३ लाख, ४ कठूमर, ५ पीपल, ६ सुरमा, ७ लोहका चूर्ण, ८ काले तिल ये आठ औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे। फिर गौके पित्तसे इन सब औषधोंको खरल करके गोली करे। फिर लेप करे इस लेपके प्रभावसे श्वित्रकुष्ठ बहुत जल्दी दूर हो ॥

विभूतिपर लेपन।

धात्रीसर्जरसश्चैवयवक्षारश्चचूर्णितैः ॥
सौवीरेणप्रलेपोऽयंप्रयोज्यः सिध्मनाशने ॥ ४४ ॥

अर्थ–१ आँवले, २ राल, ३ जवाखार इन तीन औषधोंको सौवीरमें अथवा काँजीमें पीसके विभूत (बनरफ) रोग दूर करनेको प्रयुक्त करे ॥

दूसरा प्रकार।

दार्वीमूलकबीजानितालकंसुरदारुच ॥ तांबूलपत्रंसर्वाणिकार्षि-
काणिपृथक्पृथक् ॥४५॥ शंखचूर्णंशाणमात्रंसर्वाण्येकत्रचूर्णयेत्॥
लेपोऽयंवारिणापिष्टः सिध्मनांनाशनः परः ॥ ४६ ॥

अर्थ–१ दारुहल्दी, २ मूलीके बीज, ३ हरताल, ४ देवदारु, ५ नागरवेलके पान ये पांच

---

१ सौवीर बनानेकी विधि मध्यमखण्डमें सन्धानप्रकरणमें लिखी है।

औषध एक २ कर्ष तथा शंखका चूर्ण १ शाण ले । इन सब औषधोंका चूर्ण करके जलसे पीसके लेप करे तो विभूत रोग दूर हो ॥

नेत्ररोगपर लेप ।

हरीतकीसैन्धवंचगैरिकंचरसांजनम् ॥
बिडालकोजलेपिष्टः सर्वनेत्रमयापहः ॥ ४७ ॥

अर्थ—१ हरड, २ सेंधानमक, ३ गेरू और ४ रसोत ये चार औषध समान भाग ले जलसे पीसके बिडालक अर्थात् नेत्रोंके बाहर लेप करे । इसको बिडालक कहते हैं । इस लेप करके नेत्रके सर्व विकार दूर होवें ॥

दूसरी विधि ।

रसांजनंव्योषयुतंसंपिष्टंवटकीकृतम् ॥
कण्डूपाकान्वितांहंतिलेपादंजननामिकाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—१ रसांजन, व्योष कहिये २ सोंठ, ३ मिरच, ४ पीपल ये चार औषध समान भाग ले पानीसे पीस गोली करे । इसको जलमें घिसके खुजलीयुक्त तथा पाकयुक्त अंजननामिका (मुहरी) जो नेत्रोंके कोएनपर होती है उसके दूर करनेको लगावे तो गुहेरी दूर हो ॥

खुजलीआदिपर लेप ।

प्रपुन्नाटस्यबीजानिबाकुचीसर्षपास्तिलाः ॥
कुष्ठंनिशाद्वयंमुस्तंपिष्ट्वातक्रेणलेपतः ॥ ४९ ॥
प्रलेपादस्यनश्यंतिकडूदद्रूविचर्चिकाः ॥

अर्थ—१ पमारके बीज, २ बावची, ३ सरसों, ४ नील, ५ कूट, ६ हल्दी, ७ दारुहल्दी, ८ नागरमोथा ये आठ औषध समान भाग ले चूर्ण करे । छाछमें पीसके इसका लेप करे तो खुजली दाद और विचर्चिका (पैरोंका फटना) ये रोग दूर होवें ॥

दादखुजली आदिपर लेप ।

हेमक्षीरीविडंगानिदरदंगंधकस्तथा ॥ ५० ॥ दद्रुघ्नः कुष्ठ-
सिन्दूरंसर्वाण्येकत्रमर्दयेत् ॥ धत्तूरनिम्बतांबूलीपत्राणांस्वरसैः
पृथक् ॥ ५१ ॥ अस्यप्रलेपमात्रेणपामादद्रूविचर्चिकाः ॥
कण्डूश्चरकसश्चैवप्रशमंयातिवेगतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—१ चोक, २ वायविडंग, ३ हींगलू, ४ गंधक, ५ पमारके बीज, ६ कूठ, ७ सिंदूर ये सात औषध समान भाग लेकर धंतूरेके पत्ते तथा नीमके पत्ते और नागरबेलके पत्तोंका रस इनमें पृथक् २ खरल कर एक एकका लेप करे तो खाज, दाद और विचर्चिका, कंडू और रकस (सूखी खाज) रोग (कुष्ठरोगका भेद) संपूर्ण दूर होवें ॥

दूसरा प्रकार।

दूर्वाभयासैंधवंचचक्रमर्दःकुठेरकः ॥
एभिस्तक्रयुतोलेपःकण्डूदद्रूविनाशनः ॥ ५३ ॥

अर्थ–१ दूब, २ छोटी हरड, ३ सैंधानिमक, ४ पमारके बीज, ५ वनतुलसी ये पांच औषध समान भाग ले छाछमें पीस लेप करे तो खुजली और दाद ये दूर हों॥

रक्तपित्तादिकोंपर लेप।

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वाबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ॥
क्षीरपिष्टैःप्रलेपःस्याद्रक्तपित्तशिरोरुजि ॥ ५४ ॥

अर्थ–१ लालचन्दन, २ नेत्रवाला, ३ मुलहटी, ४ गंगेरनकी जड, ५ वघनखी, ६ कमल ये छः औषध समान भाग ले दूधमें पीस लेप करे तो रक्तपित्तसंबन्धी मस्तकपीडा दूर हो॥

उदर्दरोगपर लेप।

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैःसह ॥
कटुतैलेनसंमिश्रमुदर्दघ्नंप्रलेपनम् ॥ ५५ ॥

अर्थ–१ सफेद सरसों, २ हल्दी, ३ कूठ, ४ पमारके बीज, ५ तिल इन पांच औषधोंको समान भाग ले बारिक चूर्ण करके सरसोंके तेलमें मिलायके लेप करे तो शीतपित्तका भेद उदर्द रोग जो है वह दूर होवे॥

वातविसर्परोगपर लेप।

रास्नानीलोत्पलंदारुचन्दनंमधुकंबला ॥
घृतक्षीरयुतोलेपोवातवीसर्पनाशनः ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ रास्ना, २ नीला कमल, ३ देवदारु, ४ लालचन्दन, ५ मुलहटी, ६ गंगेरनकी जड ये छः औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर दूधमें अथवा घीमें सानके लेप करे तो वातविसर्प रोग दूर हो॥

पित्तविसर्परोगपर लेप।

मृणालंचन्दनंलोध्रमुशीरंकमलोत्पलम् ॥
सारिवामलकंपथ्यालेपःपित्तविसर्पनुत् ॥ ५७ ॥

अर्थ–१ कमलका डाँठरा, २ लालचन्दन, ३ लोध, ४ नेत्रवाला, ५ कमल, ६ छोटा कमल, ७ सारिवा, ८ आंवले, ९ छोटी हरड ये नौ औषध समान भाग ले पानीसे पीस लेप करे तो पित्तविसर्प दूर होवे॥

कफविसर्पपर लेप ।

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ॥
नलमूलमनंताचलेपःश्लेष्मविसर्पहा ॥ ५८ ॥

अर्थ--त्रिफला कहिये १ हरड, २ बहेडा, ३ आँवला, ४ पद्माख, ५ नेत्रवाला, ६ धायके फूल, ७ कनेर, ८ नरसलकी जड, ९ धमासा ये नौ औषध समान भाग ले जलसे पीस लेप करे तो कफविसर्प दूर होवे ॥

पित्तवातरक्तपर लेप ।

मूर्वानीलोत्पलंपद्मंशिरीषकुसुमैःसह ॥
प्रलेपःपित्तवातास्रेशतधौतघृतप्लुतः ॥ ५९ ॥

अर्थ--१ मूर्वा, २ नीला कमल, ३ पद्माख और ४ सिरसका फूल ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे तथा सौ बार धुले हुए घीमें इस चूर्णको मिलायके लेप करे तो पित्तवातरक्त दूर होवे ॥

नाकसे रुधिर गिरनेपर लेप ।

आमलंघृतभृष्टंतुपिष्टंकांजिकवारिभिः ॥
जयेन्मूर्ध्निप्रलेपेनरक्तंनासिकयास्रुतम् ॥ ६० ॥

अर्थ--आँवलेको घीमें भून कांजीमें पीस मस्तकपर लेप करे तो नाकसे जो रुधिर गिरता है वह दूर होवे ॥

वातकी मस्तकपीडापर लेप ।

कुष्ठमेरण्डतैलेनलेपात्कांजिकपेषितम् ॥
शिरोऽर्तिंवातजांहन्यात्पुष्पंवामुचुकुन्दजम् ॥ ६१ ॥

अर्थ--कूठ अथवा मुचुकुन्दके फूलोंको काँजीमें पीस उसमें अण्डीका तेल मिलायके वातसंबन्धी मस्तकपीडा दूर होनेको लेप करे ॥

दूसरा प्रकार ।

देवदारुनतंकुष्ठंनलदंविश्वभेषजम् ॥
सकांजिकःस्नेहयुक्तोलेपोवातशिरोऽर्तिनुत् ॥ ६२ ॥

अर्थ--१ देवदारु, २ तगर, ३ कूठ, ४ नेत्रवाला और ५ सोंठ ये पांच औषध समान भाग ले कांजीसे पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके लेप करे तो वातसंबन्धी मस्तकपीडा दूर होय॥

पित्तशिरोरोगपर लेप ।

धात्रीकसेरुह्रीबेरपद्मपद्मकचंदनैः ॥ दूर्वोशीरनलानांचमूलैः कुर्यात्प्रलेपनम् ॥ ६३ ॥
शिरोर्तिंपित्तजांहन्याद्रक्तपित्तरुजं तथा ॥

अर्थ–१ आँवला, २ कचूर, ३ नेत्रवाला, ४ कमल, ५ पद्माख, ६ रक्तचंदन, ७ दूबकी जड, ८ नेत्रवाला और ९ नरसलकी जड इन नौ औषधोंको जलमें पीसके लेप करे तो पित्तसंबंधी मस्तकपीडा दूर होवे ॥

कफसम्बन्धी मस्तकपीडापर लेप ।

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागरुदारुभिः ॥ ६४ ॥
मांसीरास्नारुबूकैश्चकोष्णोलेपःकफार्तिनुत् ॥

अर्थ–१ रेणुका, २ तगर, ३ पत्थरका फूल, ४ नागरमोथा, ५ इलायची, ६ अगर, ७ देवदारु, ८ जटामांसी, ९ रास्ना और १० अंडकी जड ये दश औषध समान भाग ले गरम जलम पीसके कफसंबन्धी मस्तकपीडापर लेप करे तो अच्छी होय ॥

दूसरा प्रकार ।

शुण्ठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैःसरोहिषैः ॥ ६५ ॥
मूत्रपिष्टैःसुखोष्णैश्चलेपःश्लेष्मशिरोऽर्तिनुत् ॥

अर्थ–१ सोंठ, २ कूठ, ३ पमारके बीज, ४ देवदारु, ५ रोहिषतृण ये पांच औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीस सुखोष्ण कहिये कुछ गरम करके लेप करे तो कफसंबन्धी मस्तकपीडा दूर हो ॥

सूर्यावर्त्त तथा अर्धभेदकपर लेप ।

सारिवाकुष्ठमधुकंवचाकृष्णोत्पलैस्तथा ॥ ६६ ॥
लेपःसकांजिकस्नेहःसूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥

अर्थ–१ सारिवा, २ कूठ, ३ मुलहटी, ४ वच, ५ पीपल तथा ६ नीला कमल ये छः औषध समान भाग लेकर काँजीमें पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके लेप करे तो सूर्यावर्त्त रोग और आधासीसी ये रोग दूर हो ॥

कनपटी, अनंतवात तथा सर्वशिरोरोगोंपर लेप ।

वरीनीलोत्पलंदूर्वातिलाःकृष्णापुनर्नवा ॥ ६७ ॥
शंखकेऽनंतवातेचलेपःसर्वशिरोऽर्तिजित् ॥

अर्थ–१ विदारीकन्द, २ नीला कमल, ३ दूब, ४ काले तिल और ५ पुनर्नवा ये पांच औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस लेप करे तो कनपटीकी पीडा, अनंतवात और सर्व मस्तकके रोग दूर हों ॥

दूसरा प्रकार ।

अथलेपविधिश्चान्यःप्रोच्यतेसुज्ञसंमतः ॥ ६८ ॥
द्वौतस्यकथितौभेदौप्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥

अर्थ--इसके अनंतर बुद्धिमानोंको मान्य एस दूसरे लेपकी विधि है तिसमें एक प्रलेपाख्य और दूसरी प्रदेहक इस प्रकार दो भेद जानने ॥

उन दोनों लेपोंके उच्चत्वमें प्रमाण ।

चर्मार्द्रमाहिषंयद्वत्प्रोन्नतंसमितिस्तयोः ॥ ६९ ॥
शीतस्तनुर्निर्विषीचप्रलेपःपरिकीर्तितः ॥
आर्द्रोघनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहःश्लेष्मवातहा ॥ ७० ॥

अर्थ--वे प्रलेपक और प्रदेहक ये दो लेप भैंसकी गीली चाम जितनी मोटी होती है इतने मोटे होने चाहिये । तथा उसके गुण कहते हैं कि शीतवीर्य तथा तनु अर्थात् सूक्ष्मरूप स्रोतसों (छिद्रों) में प्रवेश करनेवाले तथा निर्विषी ऐसा प्रलपक जानना । आर्द्र कहिये द्रवयुक्त और जड तथा उष्ण कफवायुको दूर करनेवाला ऐसा प्रदेहक लेप जानना ॥

दोनों प्रकारके लेप किस जगह देने ।

रोमाभिमुखमादेयौप्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥
वीर्यंसम्यग्विशत्याशुरोमकूपैःशिरामुखैः ॥ ७१ ॥

अर्थ--प्रलेपाख्य और प्रदेहक ये दोनों लेप रोम सन्मुख करके देवे अर्थात् सब रोमोंको खडे करके लेप करे । इसका यह कारण है कि शिरारूप जो रोमरंध्र उनके द्वारा करके उस लेपका वीर्य उत्तम प्रकार करके शरीरमें प्रवश करता है ॥

साधारणलेपविषयमें निषेध ।

नरात्रौलेपनंकुर्याच्छुष्यमाणंनधारयेत् ॥
शुष्यमाणमुपेक्षेतप्रदेहंपीडनंप्रति ॥ ७२ ॥

अर्थ--रात्रिमें लेप न करे । और उस लेपके सखनेपर उसको धारण न करे । कारण यह है कि लेप सूखनेपर उसको लगा रहने देनेसे देहको अत्यंत पीडा होती है ॥

रात्रिमें निषेधका हेतु ।

तमसापिहितोह्यूष्मारोमकूपमुखेस्थितः ॥
विनालेपेननिर्यातिरात्रौनोलेपयेत्ततः ॥ ७३ ॥

अर्थ--रात्रिमें अन्धकार करके शरीरसंबन्धी ऊष्मा आच्छादित हो रोमरंध्रमुखोंमें आकर रह है और विना लेपके वह बाहर निकले है इसीसे रात्रिम लेप न करे ॥

रात्रिमें प्रलेपादिकोंकी विधि तथा योग्य प्राणी ।

रात्रावपिप्रलेपादिर्विधिः कार्योविचक्षणैः ॥
आपाकिशोथेगम्भीरेरक्तश्लेष्मसमुद्भवे ॥ ७४ ॥

अर्थ—जिस सूजनका पाक नहीं हुआ हो उसपर तथा गंभीरसंज्ञक जो व्रण उसमें एवं रक्तकफसे उत्पन्न जो सूजन उसमें बुद्धिमान् वैद्य रात्रिमेंभी लेपादिकोंकी विधि करे अर्थात् लेप करे ॥

व्रण दूर होनेपर लेप ।

आदौशोथहरोलेपोद्वितीयोरक्तसेचनः ॥ तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः ॥ ७५ ॥ पंचमः शोधनोभूयात्षष्ठोरोपणइष्यते ॥
सप्तमोवर्णकरणोव्रणस्यैतेक्रमामताः ॥ ७६ ॥

अर्थ—प्रथम व्रणसंबंधी जो सूजन होती ह उसके दूर करनेको लेप करे । दूसरा लेप व्रणमें जो रुधिर जमा रहता है वह पिघल जावे ऐसा लेप करे । तीसरा लेप उपनाह कहिये पसीने निकालनेका प्रयोग है । चौथा लेप व्रण फूटे ऐसा करे । पांचवाँ लेप राध आदिका शोधन होय ऐसा करे । छठा लेप रोपण कहिये व्रण भर आवे ऐसा करे । सातवाँ लेप व्रणके स्थानपर कांति आवे ऐसा करे इस प्रकार व्रण अच्छा होनेके विषयमें सात क्रम जानने । वे औषध आगे ग्रंथमें कहते हैं ॥

व्रणसम्बन्धी वायुकी सूजनपर लेप ।

बीजपूरजटामांसीदेवदारुमहौषधम् ॥
रास्नाग्निमंथोलेपोऽयंवातशोथविनाशनः ॥ ७७ ॥

अर्थ—१ बिजोरेकी जड, २ जटामांसी, ३ देवदारु, ४ सोंठ, ५ रास्ना, ६ अरनीकी जड ये छः औषध समान भाग लेके पानीमें पीस व्रणसंबंधी जो बादीकी सूजन उसके दूर करनेको लेप करे ॥

पित्तकी सूजनपर लेप ।

मधुकंचंदनंमूर्वानलमूलंचपद्मकम् ॥
उशीरंबालकंपद्मंपित्तशोथेप्रलेपनम् ॥ ७८ ॥

अर्थ—१ मुलहटी, २ लालचंदन, ३ मूर्वा, ४ नरसलकी जड, ५ पद्माख, ६ नेत्रवाला, ७ खस, ८ कमल ये आठ औषधि समान भाग ले जलसे पीस व्रणसंबंधी पित्तकी सूजनपर लेप करे ॥

कफजन्य व्रणकी सूजनपर लेप ।

कृष्णापुराणपिण्याकंशिग्रुत्वक्सिकताशिवा ॥
मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयंप्रदेहः श्लेष्मशोथहृत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—१ पीपल, २ पुरानी खल, ३ सँहजनेकी छाल, ४ खांड और ५ हरड ये पांच औषधि समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके थोडा गरम करके कफसंबंधी सूजन दूर करनेको यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे ॥

आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजनपर लेप ।

द्वेनिशेचंदनेद्वेचशिवादूर्वापुनर्नवा ॥ उशीरंपद्मकंलोध्रंगैरिकं
चरसांजनम् ॥ ८० ॥ आगंतुकेरक्तजेचशोथेकुर्यात्प्रलेपनम् ॥

अर्थ—१ हल्दी, २ दारुहल्दी, ३ चंदन, ४ लालचंदन, ५ हरड, ६ दूब, ७ पुनर्नवा (सांठ), ८ नेत्रवाला, ९ पद्माख, १० लोध, ११ गरू, १२ रसोत ये बारह औषध समान भाग ले जलमें बारीक पीस आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजन दूर होनेके वास्ते यह लेप करे ॥

व्रण पकनेका लेप ।

शणमूलकशिग्रूणांफलानितिलसर्षपाः ॥ ८१ ॥
सक्तवः किण्वमतसीप्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥

अर्थ—१ सनके बीज, २ मूलीके बीज, ३ सँहजनके बीज, ४ तिल, ५ सरसों, ६ जव, ७ लोहकी कीटी, ८ अलसीके बीज ये आठ औषध समान भाग ले व्रण पकनेको यह प्रदेह संज्ञक लेप करे ॥

पके व्रण फोडनेका लेप ।

दन्तीचित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसीगुडः ॥ ८२ ॥
भल्लातकश्चकासीसंसैंधवंदारणेस्मृतः ॥

अर्थ—१ दंतीकी जड, २ चीतेकी छाल, ३ थूहरका दूध, ४ आकका दूध, ५ गुड, ६ भिलावें, ७ हीराकसीस, ८ सैंधानमक इन आठ औषधोंमेंसे छः औषधोंका चूर्ण करके उसको थूहरके दूध और आकके दूधमें सानके पकेहुए व्रणपर लगावे तो वह फूटजावे ॥

दूसरा प्रकार ।

चिरबिल्वोग्निकोदंतीचित्रकोहयमारकः ॥ ८३ ॥
कपोतकंकगृध्राणांमलंलेपनदारणम् ॥

अर्थ—१ कंजेके बीज, २ भिलावें, ३ दंतीकी जड, ४ चीतेकी छाल, ५ कनेरकी जड इन पाच औषधोंका चूर्ण करे । फिर कपोत (कबूतर या पिडुकिया), कंक (सफेद चील) और गीध इन तीनोंकी बीठ समान भाग लेके उस चूर्णमें मिलायके पकेहुए फोडेपर लेप करे तो वह फोडा तत्काल फूटजावे ॥

तीसरा प्रकार ।

सर्जिकायावशूकाढ्याः क्षारालेपनदारणाः ॥ ८४ ॥

हेमक्षीर्य्यास्तथालेपोव्रणपरमदारणः ॥

अर्थ—सज्जीखार और जवाखार इनका लेप फोडा फोडनेको करे उसी प्रकार हेमक्षीरी (चोक) का लेप फोडेके फोडनेको उत्तम कहा है ॥

व्रणशोधन लेप ।

तिलसैंधवयष्ट्याह्वनिंबपत्रनिशायुगैः ॥ ८५ ॥
त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपोव्रणशोधनः ॥

अर्थ—१ तिल, २ सैंधानमक, ३ मुलहटी, ४ नीमके पत्ते, ५ हल्दी, ६ दारुहल्दी, ७ निसोथ ये सात औषध समान भाग ले वारीक चूर्ण कर घीमें सानके लेप करे तो व्रणका शोधन होवे ॥

व्रणके शोधन और रोपणविषयक लेप ।

निंबपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतः ॥ ८६ ॥
तिलैश्चसहसंयुक्तोलेपः शोधनरोपणः ॥

अर्थ—१ नीमके पत्ते, २ घी, ३ सहत, ४ मुलहटी, ५ तिल इन पांच औषधोंमेंसे तीन औषधोंका चूर्ण करके उसमें घी सहत मिलायके व्रणका शोधन और रोपण करनेके वास्ते लेप करे ॥

व्रणसम्बन्धी कृमि दूर करनेपर लेप ।

करंजारिष्टनिर्गुंडीलेपोहन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥ ८७ ॥
लशुनस्याथवालेपोहिंगुनिंबभवोऽथवा ॥

अर्थ—१ करंज, २ नीम, ३ निर्गुंडी इन तीन औषधोंके पत्तोंको पीस व्रणसंबंधी कृमि दूर होनेको लेप करे । अथवा केवल लहसनको पीसके लेप करे अथवा हींग और नीमके पत्ते दोनोंको एकत्र पीसके लेप करे ॥

व्रणके शोधन और रोपणपर दूसरा लेप ।

निंबपत्रंतिलादंतीत्रिवृत्सैंधमाक्षिकम् ॥ ८८ ॥
दुष्टव्रणप्रशमनोलेपः शोधनरोपणः ॥

अर्थ—१ नीमके पत्ते, २ तिल, ३ दंती, ४ निसोथ, ५ सैंधानमक ये पांच औषध समान भाग ले वारीक चूर्ण कर सहतमें सानके दुष्ट व्रणके शमन होने और शोधन तथा रोपण कहिये भरनेके वास्ते लेप करे ॥

उदरशूलमें नाभिपर लेप ।

मदनस्यफलंतिक्तांपिष्ट्वाकांजिकवारिणा ॥ ८९ ॥
कोष्णंकुर्यान्नाभिलेपंशूलशांतिर्भवेत्ततः ॥

अर्थ–१ मैनफल, २ कुटकी इन दोनों औषधोंको समान भाग ले कांजीसे पीस कुछ गरम करके नाभीपर लेप करे तो पेटका शूल (दर्द) दूर होय ॥

वातविद्रधिपर लेप ।

शिग्रुशेफालिकैरंडयवगोधूममुद्गकैः ॥ ९० ॥
सुखोष्णोबहुलोलेपः प्रयोज्योवातविद्रधौ ॥

अर्थ–१ सँहजनेकी छाल, २ निर्गुंडीके पत्ते, ३ अंडकी जड, ४ जौ, ५ गेहूँ, ६ मूँग ये छः औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस वातविद्रधि रोग दूर होनेके वास्ते सहन होय ऐसा गरम करके गाढा लेप लगावे ॥

पित्तविद्रधिपर लेप ।

पैत्तिकेसर्पिषालाजमधुकैः शर्करान्वितैः ॥ ९१ ॥
प्रलिम्पेत्क्षीरपिष्टैर्वापयस्योशीरचंदनैः ॥

अर्थ–साली चावलकी खील, मुलहटी इन दोनोंका चूर्ण और खांड इन दोनोंको घीमें सानके लेप करे। अथवा पयस्या कहिये क्षीरकाकोली उसके अभावमें असगंध, नेत्रवाला और लाल चंदन ये तीन औषध दूधमें पीसके लेप करे तो पित्तविद्रधि दूर होय ॥

कफविद्रधिपर लेप ।

इष्टकासिकतालोहकिट्टगोशकृतासह ॥ ९२ ॥
सुखोष्णश्चप्रदेहोऽयंमूत्रैः स्याच्छ्लेष्मविद्रधौ ॥

अर्थ–१ ईंट, २ वालूरेत, ३ लोहकी कीट, ४ गौका गोवर ये चार औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके यह प्रदेहसंज्ञक लेप कफविद्रधिपर करे तो कफकी विद्रधि दूर हो ॥

आगन्तुकविद्रधिपर लेप ।

रक्तचंदनमंजिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ॥ ९३ ॥
क्षीरेणविद्रधौलेपोरक्तागंतुनिमित्तजे ॥

अर्थ–१ लालचंदन, २ मजीठ, ३ हल्दी, ४ मुलहटी, ५ गेरू ये पांच औषध समान भाग ले दूधमें पीस अभिघात निमित्त करके दुष्टहुए रुधिरसे उत्पन्न विद्रधिपर लेप करे ॥

वातगलगण्डपर लेप ।

निचुलः शिग्रुबीजानिदशमूलमथापिवा ॥ ९४ ॥
प्रदेहोवातगण्डेषुसुखोष्णः संप्रदीयते ॥

अर्थ–१ जलवेतस, २ सँहजनेके बीज इन दोनोंको जलसे पीस वातगलगंड दूर होनेके वास्ते यह प्रदेहसंज्ञक लेप सहन होय ऐसा थोडा गरम करके करे अथवा दशमूलको पीसके लेप करे ॥

कफके गलगण्डपर लेप ।

देवदारुर्विशालाचकफगण्डेप्रदेहकः ॥ ९५ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ इन्द्रायणकी जड इन दोनों औषधोंको जलसे पीस कफगलगंड दूर होनेको यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे ॥

सर्षपारिष्टपत्राणिदग्ध्वाभल्लातकैःसह ॥
छागमूत्रेणसंपिष्टमपचीघ्नंप्रलेपनम् ॥ ९६ ॥

अर्थ–१ सरसों, २ नीमके पत्ते, ३ भिलावें ये तीन औषध समान भाग लेके जलाय डाले । जब राख होजावे तब इस राखको बकरेके मूत्रसे सानके अपचीरोग जो गंडमालाका भेद है उसके दूर करनेको लेप करे ॥

गण्डमाला अर्बुद तथा गलगण्डपर लेप ।

सर्षपाःशिवबीजानिशणबीजातसीयवान् ॥
मूलकस्यचबीजानितक्रेणाम्लेनपेषयेत् ॥ ९७ ॥
गण्डमालार्बुदंगंडंलेपनानेन शाम्यति ॥

अर्थ–१ सरसों, २ सहजनेके बीज, ३ सनके बीज, ४ अलसीके बीज, ५ जौ, ६ मूलीके बीज ये छः औषध समान भाग ले खट्टी छाछमें पीस गंडमाला, अर्बुद और गलगंड ये रोग दूर करनेको यह लेप करे ॥

अपबाहुकवातरोगपर लेप ।

तक्षयित्वाक्षुरेणांगंकेवलानिलपीडितम् ॥ ९८ ॥
तत्रप्रदेहंदद्याच्चपिष्टंगुंजाफलैःकृतम् ॥
तेनापबाहुजापीडाविश्वाचीगृध्रसीतथा ॥ ९९ ॥
अन्यापिवातजापीडाप्रशमंयातिवेगतः ॥

अर्थ–केवल वादीसे पीडित मनुष्यके अंगमें जिस जगह वादीका कोप होवे उस स्थानको छूरेसे मूंड बाल दूर करके उस स्थानपर घूंवचीको जलमें पीसके लेप करे तो अपबाहुक वायु, विश्वाची वायु (जो भुजामें होती है) तथा गृध्रसी वायु (जंघारोग विशेष) ये वायु दूर हों तथा और प्रकारके वायुसंबन्धी रोग इस लेप करके तत्काल दूर हों ॥

श्लीपदरोगपर लेप ।

धत्तूरैरंडनिर्गुंडीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ १०० ॥
प्रलेपःश्लीपदंहन्तिचिरोत्थमपिदारुणम् ॥

अर्थ–१ मैनफल, २ कुटकी इन दोनों औषधोंको समान भाग ले कांजीसे पीस कुछ गरम करके नाभीपर लेप करे तो पेटका शूल (दर्द) दूर होय ॥

वातविद्रधिपर लेप ।

शिग्रुशेफालिकैरंडयवगोधूममुद्गकैः ॥ ९० ॥
सुखोष्णोबहुलोलेपः प्रयोज्योवातविद्रधौ ॥

अर्थ–१ सँहजनेकी छाल, २ निर्गुंडीके पत्ते, ३ अंडकी जड, ४ जौ, ५ गेहूँ, ६ मूँग ये छः औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस वातविद्रधि रोग दूर होनेके वास्ते सहन होय ऐसा गरम करके गाढा लेप लगावे ॥

पित्तविद्रधिपर लेप ।

पैत्तिकेसर्पिषालाजमधुकैः शर्करान्वितैः ॥ ९१ ॥
प्रलिम्पेत्क्षीरपिष्टैर्वापयस्योशीरचंदनैः ॥

अर्थ–साली चावलकी खील, मुलहटी इन दोनोंका चूर्ण और खांड इन दोनोंको घीमें सानके लेप करे। अथवा पयस्या कहिये क्षीरकाकोली उसके अभावमें असगंध, नेत्रवाला और लाल चंदन ये तीन औषध दूधमें पीसके लेप करे तो पित्तविद्रधि दूर होय ॥

कफविद्रधिपर लेप ।

इष्टकासिकतालोहकिट्टंगोशकृतासह ॥ ९२ ॥
सुखोष्णश्चप्रदेहोऽयंमूत्रैः स्याच्छ्लेष्मविद्रधौ ॥

अर्थ–१ ईंट, २ वालूरेत, ३ लोहकी कीट, ४ गौका गोवर ये चार औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके यह प्रदेहसंज्ञक लेप कफविद्रधिपर करे तो कफकी विद्रधि दूर हो ॥

आगन्तुकविद्रधिपर लेप ।

रक्तचंदनमंजिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ॥ ९३ ॥
क्षीरेणविद्रधौलेपोरक्तागंतुनिमित्तजे ॥

अर्थ–१ लालचंदन, २ मजीठ, ३ हल्दी, ४ मुलहटी, ५ गेरू ये पांच औषध समान भाग ले दूधमें पीस अभिघात निमित्त करके दुष्टहुए रुधिरसे उत्पन्न विद्रधिपर लेप करे ॥

वातगलगण्डपर लेप ।

निचुलः शिग्रुबीजानिदशमूलमथापिवा ॥ ९४ ॥
प्रदेहोवातगण्डेषुसुखोष्णः संप्रदीयते ॥

अर्थ–१ जलवेतस, २ सँहजनेके बीज इन दोनोंको जलसे पीस वातगलगंड दूर होनेके वास्ते यह प्रदेहसंज्ञक लेप सहन होय ऐसा थोडा गरम करके करे अथवा दशमूलको पीसके लेप करे ॥

कफके गलगण्डपर लेप।

देवदारुविशालाचकफगण्डेप्रदेहकः ॥ ९५ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ इन्द्रायणकी जड इन दोनों औषधोंको जलसे पीस कफगलगंड दूर होनेको यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे ॥

सर्षपारिष्टपत्राणिदग्ध्वाभल्लातकैःसह ॥
छागमूत्रेणसंपिष्टमपच्यघ्नंप्रलेपनम् ॥ ९६ ॥

अर्थ–१ सरसों, २ नीमके पत्ते, ३ मिलावें ये तीन औषध समान भाग लेके जलाय डाले। जब राख होजावे तब इस राखको बकरेके मूत्रसे सानके अपचीरोग जो गंडमालाका भेद है उसके दूर करनेको लेप करे ॥

गण्डमाला अर्बुद तथा गलगण्डपर लेप।

सर्षपाःशिवबीजानिशणबीजातसीयवान् ॥
मूलकस्यचबीजानितक्रेणाम्लेनपेषयेत् ॥ ९७ ॥
गण्डमालार्बुदंगंडंलेपनानेन शाम्यति ॥

अर्थ–१ सरसों, २ सँहजनेके बीज, ३ सनके बीज, ४ अलसीके बीज, ५ जौ, ६ मूलीके बीज ये छः औषध समान भाग ले खट्टी छाछमें पीस गंडमाला, अर्बुद और गलगंड ये रोग दूर करनेको यह लेप करे ॥

अपबाहुकवातरोगपर लेप।

तक्षयित्वाक्षुरेणांगंकेवलानिलपीडितम् ॥ ९८ ॥
तत्रप्रदेहंदद्याच्चापिष्टंगुंजाफलैःकृतम् ॥
तेनापबाहुजापीडाविश्वाचीगृध्रसीतथा ॥ ९९ ॥
अन्यापिवातजापीडाप्रशमंयातिवेगतः ॥

अर्थ–केवल बादीसे पीडित मनुष्यके अंगमें जिस जगह बादीका कोप होवे उस स्थानको छूरेसे मूंड बाल दूर करके उस स्थानपर घूंघचीको जलमें पीसके लेप करे तो अपबाहुक वायु, विश्वाची वायु (जो भुजामें होती है) तथा गृध्रसी वायु (जंघारोग विशेष) ये वायु दूर हों तथा और प्रकारके वायुसंबन्धी रोग इस लेप करके तत्काल दूर हों ॥

श्लीपदरोगपर लेप।

धत्तूरैरंडनिर्गुंडीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ १०० ॥
प्रलेपःश्लीपदंहन्तिचिरोत्थमपिदारुणम् ॥

अर्थ-१ धतूरेके पत्ते, २ अण्डके पत्ते, ३ निर्गुंडीके पत्ते, ४ पुनर्नवा जड सहित, ५ सँहजनेकी छाल, ६ सरसों इन छः औषधोंको पीस बहुत दिनका तथा दारुण श्लीपद रोग दूर होनेके वास्ते यह लेप करे ॥

कुरण्डरोगपर लेप ।

अजाजीहपुषाकुष्ठमेरंडबदरान्वितम् ॥ १०१ ॥
कांजिकेनतुसंपिष्टंकुरंडघ्नंप्रलेपनम् ॥

अर्थ-१ जीरा, २ हाऊबेर, ३ कूठ, ४ अण्डकी जड, ५ बेरकी छाल इन पांच औषधोंको समान भाग ले काँजीमें पीस कुरंड (अंडवृद्धि) रोग दूर होनेको यह लेप करे ॥

उपदंशरोगपर लेप ।

करवीरस्यमूलेनपरिपिष्टेनवारिणा ॥ १०२ ॥
असाध्यापिजरत्याशुलिंगोत्थारुक्प्रलेपनात् ॥

अर्थ-कनेरकी जडको जलमें पीसके लेप करे तो लिंगमें जो उपदंशसंबन्धी पीडा वह असाध्य भी तत्काल दूर होवे ॥

उपदंशपर दूसरा लेप ।

दहेत्कटाहेत्रिफलांसामसीमधुसंयुता ॥ १०३ ॥
उपदंशेप्रलेपोऽयंसद्योरोपयतिव्रणम् ॥

अर्थ-त्रिफलेको कडाहीमें जलायके उसकी राख सहतमें मिलायके लेप करे तो लिंगमें जो उपदंशसंबन्धी व्रण होता है उसका तत्काल रोपण होय अर्थात् वह घाव तत्काल भर आवे ॥

उपदंशपर तीसरा लेप ।

रसांजनंशिरीषेणपथ्ययाचसमन्वितम् ॥ १०४ ॥
सक्षौद्रंलेपनंयोज्यमुपदंशगदापहम् ॥

अर्थ-१ रसोत, २ सिरसकी छाल, ३ हरड ये तीन औषध ले समान भागका चूर्ण कर सहतमें मिलायके लिंगपर लेप करे तो उपदंशसंबन्धी जो लिंगमें घाव आदि उपद्रव होते हैं वे तत्काल नष्ट हों ॥

अग्निदग्धपर लेप ।

अग्निदग्धेतुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः ॥ १०५ ॥
सामृतैःसर्पिषा स्निग्धैर्लेपंकारयेद्भिषक् ॥
तन्दुलीयकषायैर्वाघृतमिश्रैःप्रलेपयेत् ॥ १०६ ॥

अर्थ– वंशलोचन, २ पाखर, ३ लाल चंदन, ४ गेरू, ५ गिलोय इन पांच औषधोंको समान भाग लेके चूर्ण करे। फिर घीमें मिलाय जिस मनुष्यकी देह अग्निसे जल गई हो उस पर लेप करे। अथवा चौलाईका काढा करके उसमें घी डालके उसका लेप करे ॥

दूसरा लेप।

यवान्दग्ध्वामसींकार्यातैलेनयुतयात्तया ॥
दद्यात्सर्वाग्निदग्धेषुप्रलेपोव्रणरोपणः ॥ १०७ ॥

अर्थ–जवोंको जलाय राख करके तिलके तेलमें मिलाय मनुष्यके देहपर अग्निसे जले हुए स्थानपर लेप करे तो जलनेसे जो घाव हुआ हो वह भरके शरीर जैसाका तैसा हो जावे। अग्निका जलना प्लुष्टादि भेदसे चार प्रकारका है सो माधवनिदानसे जान लेना॥

योनि कठोर करनेका लेप।

पलाशोदुम्बरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः ॥
मधुनायोनिमालिंपेद्दार्ढ्यकरणमुत्तमम् ॥ १०८ ॥

अर्थ–१ पलास (ढाक) के फूल, २ गूलरके फल इन दोनोंका चूर्ण कर तिलके तेलमें मिलायके तथा उसमें सहत मिलायके योनिमें लेप करे तो शिथिल हुई भी योनि इस लेपसे कठोर अर्थात् तंग होजावे ॥

दूसरा लेप।

माकन्दफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनात् ॥
गतेऽपियौवनेस्त्रीणांयोनिर्गाढातिजायते ॥ १०९ ॥

अर्थ–आमका कोमल फल तथा कपूर इन दोनोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाय योनिमें लेप करे तो वृद्धा (बुड्ढी) स्त्रीकीभी योनि सुकडक अत्यंत तंग होजावे ॥

लिंग और स्तनादिककी वृद्धि करनेका लेप।

मरीचंसैन्धवंकृष्णातगरंबृहतीफलम् ॥ अपामार्गस्तिलाः कुष्ठं
यवामाषाश्चसर्षपाः ॥ ११० ॥ अश्वगन्धाचतच्चूर्णंमधुनासह
योजयेत् ॥ अस्यसन्ततलेपेनमर्दनाच्चप्रजायते ॥ १११ ॥
लिङ्गवृद्धिःस्तनोत्सेधःसंहतिर्भुजकर्णयोः ॥

अर्थ–१ कालीमिरच, २ सैंधानमक, ३ पीपल, ४ तगर, ५ कटेरीके फल, ६ ओंगाके बीज, ७ काले तिल, ८ कूठ, ९ जौ, १० उडद, ११ सरसों, १२ असगंध ये बारह औषध समान भाग ले चूर्ण कर सहतमें मिलाय लिंगपर निरंतर अर्थात् नित्य प्रति लेप कर मर्दन करे तो

लिंग मोटा होय । इसी प्रकार स्त्रियोंके स्तनोंपर करे तथा भुजा और कर्ण (कान) पर लेप कर मर्दन करे तो इनकी वृद्धि होवे ॥

लिंगवृद्धिपर दूसरा लेप ।

सिताश्वगंधासिन्धूत्थाछागक्षीरैर्घृतंपचेत् ॥ ११२ ॥
तल्लेपान्मर्दनाल्लिङ्गवृद्धिःसञ्जायतेपरा ॥

अर्थ—सफेद फूलकी असगंध और सेंधानमक ये दोनों औषध बारीक करके इस चूर्णसे चौगुना घी और घीसे चौगुना भेडका दूध ले सबको एकत्र करके चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे जब सब वस्तु जलकर केवल घी मात्र शेष रहे तब इस घीको लिंगपर लेप करके मर्दन करे तो लिंग अत्यंत स्थूल होवे ॥

योनिद्रावणकारी लेप ।

इन्द्रवारुणिकापत्ररसैःसूतंविमर्दयेत् ॥ ११३ ॥
रक्तस्यकरवीरस्यकाष्ठेनचमुहुर्मुहुः ॥
तल्लिप्तलिंगसंयोगाद्योनिद्रावोऽभिजायते ॥ ११४ ॥

अर्थ—इन्द्रायणके पत्तोंका रस निकालके उस रसमें पारा मिलायके लाल फूलके कनेरकी लकडीसे उसको खरल करे अर्थात् घोटे । इस प्रकार वारंवार अर्थात् जब २ रस सूख जाव तब २ और रस डालके पारेको घोटे । इस प्रकार पांच सात वार घोटके लिंगपर लेप करे। पश्चात् शिश्न और योनिका संयोग होतेही पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीका वीर्य तत्काल पतन हो स्त्री हतवीर्य होवे ॥

देहदुर्गंध दूर करनेका लेप ।

तांबूलपत्रचूर्णंतुचूर्णंकुष्ठशिवाभवम् ॥
वारिणालेपनंकुर्याद्गात्रदौर्गंध्यनाशनम् ॥ ११५ ॥

अर्थ—१ पान, २ कूठ, ३ हरड इन तीनोंका चूर्ण कर जलमें मिलायके शरीरमें लेप करे तो देहसंबन्धी दुर्गन्ध दूर होवे ॥

दूसरा लेप ।

कुलित्थसक्तवःकुष्ठंमांसीचन्दनजंरजः ॥
सक्तवश्चणकस्यैवत्वक्चैवैकत्रकारयेत् ॥ ११६ ॥
स्वेददौर्गंध्यनाशश्चजायतेऽस्यावधूलनात् ॥

अर्थ—१ कुलथीका सत्तू, २ कूठ, ३ जटामांसी, ४ सफेद चन्दन, ५ चनेका भुना हुआ चून इन सबका चूर्ण करके शरीरमें इस चूर्णका अवधूलन कहिये मालिश करे तो देहमें पसीनोंका आना और देहकी दुर्गन्ध दूर होवे ॥

वशीकरण लेप ।

वचासौवर्चलंकुष्ठंरजन्योमरिचानिच ॥ ११७ ॥
एतल्लेपप्रभावेणवशीकरणमुत्तमम् ॥

अर्थ—१ वच, २ संचरनमक, ३ कूठ, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ कालीमिरच ये छः औषध समान भाग ले जलसे पीस शरीरमें लेप करे । यह लेप वशीकरण कर्ता उत्तम प्रयोग है ॥

मस्तकमें तेल धारण करनेके चार प्रकार ।

अभ्यंगःपरिषेकश्चपिचुर्वस्तिरितिक्रमात् ॥ ११८ ॥
मूर्धतैलंचतुर्धास्याद्बलवच्चयथोत्तरम् ॥

अर्थ—अभ्यंग कहिये मस्तकमें तेलका मर्दन आर परिषेक कहिये मस्तकमें तेलको चुपडना तथा पिचु कहिय रुईके गालेको अथवा कपडेके टुकडेको तेलमें भिगोयके मस्तकपर धारण करना । और वस्ति कहिये चमडेकी वस्ति बनायके मस्तकपर तेल धारण करनेका प्रयोग वह आगेके श्लोकमें कहा है इस प्रकार मूर्धतैलके कहिये मस्तकमें तेल धारण करनेके चार भेद हैं सो क्रमसे एककी अपेक्षा दूसरा बलवान् ह ॥

शिरोवस्तिकी विधि ।

त्रयाऽभ्यंगादयःपूर्वंप्रसिद्धाःसर्वतःस्मृताः ॥ ११९ ॥
शिरोवस्तिविधिश्चात्रप्रोच्यतेसुज्ञसंमतः ॥

अर्थ—पिछले श्लोकमें कहे हुए अभ्यंग परिषेकादिक तीन प्रकार वे सर्वत्र स्थलोंमें प्रसिद्ध हैं । तथा शिरोवस्तिकी विधि नहीं कही इस वास्ते बुद्धिमानोंको मान्य ऐसी शिरोवस्तिकी विधि कहता हूं ॥

शिरोवस्तिका प्रकार ।

शिरोवस्तिश्चर्मणःस्याद्द्विमुखोद्वादशांगुलः ॥ १२० ॥
शिरःप्रमाणंतंबद्ध्वामस्तकेमाषपिष्टकैः ॥
संधिरोधंविधायादौस्नेहैःकोष्णैःप्रपूरयेत् ॥ १२१ ॥

अर्थ—मस्तकपर धारण करनेकी जो वस्ति उसको शिरोवस्ति कहते हैं वह हरिणादिकाक चमडेकी बनावे । उसका आकार बारह अंगुल ऊंची टोपीके समान बनायके दो मुख बनावे । तिसमें नीचेका मुख मस्तकपर आयजावे ऐसा करे और ऊपरका मुख छोटा करना चाहिये । उस टोपीको मनुष्यको पहनाय उसके नीचे जो छिद्र रहते हैं उसके चारों तरफ उडदके चूनको जलमें सानके संधियोंको बंद कर देवे । पश्चात् स्नेह सहन होय ऐसा थोडा गरम करके वस्तिके ऊपरके मुखसे मस्तकपर भर देवे ॥

शिरोवस्तिधारणमें प्रमाण ।

तावद्धार्यस्तुयावत्स्यान्नासानेत्रमुखस्रुतिः ॥
वेदनोपशमोवापिमात्राणांवासहस्रकम् ॥ १२२ ॥

अर्थ-नाक, नेत्र और मुख इनमें जवतक स्राव न होय तवतक अथवा मस्तकसंबंधी पीडा दूर हो तबतक अथवा वस्तिके अध्यायमें अनुवासनवस्तिकी मात्राका कालप्रमाण १००० एक हजार मात्रा पूर्ण होनेपर्यंत मस्तकपर वस्तिको धारण करे ॥

शिरोवस्तिधारणमें काल ।

विनाभोजनमेवात्रशिरोवस्तिःप्रशस्यते ॥
प्रयोज्यस्तुशिरोवस्तिःपंचसप्ताहमेववा ॥ १२३ ॥

अर्थ-विना भोजन किये हुए मनुष्यको शिरोवस्ति कराना उत्तम है और यह शिरोवस्ति पांचवें दिन अथवा सातवें दिन करनी चाहिये ॥

शिरोवस्तिके कर्म होनेके उपरांत क्रिया ।

विमोच्यशिरसोवस्तिंगृह्णीयाच्चसमंततः ॥
ऊर्ध्वकायंततःकोष्णनीरैःस्नानंसमाचरेत् ॥ १२४ ॥

अर्थ-मस्तकपर धारण की हुई वस्तिके चारों तरफ एकसा उछलकर पटक देवे अर्थात् ऐसा न करे कि कहीं तो वस्ति लगी हुई है और कहींसे उखाडी हुई । जब वस्तिको उखाड चुके तब ऊर्ध्वकाय कहिये मस्तकपर सुहाता २ गरम जल डालके स्नान करे ॥

शिरोवस्ति देनेसे रोग दूर हों उनका कथन ।

अनेनदुर्जयारोगावातजायांतिसंक्षयम् ॥
शिरःकंपादयस्तेनसर्वकालेषुयुज्यते ॥ १२५ ॥

अर्थ-दुजय कहिये दूर करनेको अशक्य ऐसे शिरःकंपादिक जो वादीके रोग हैं वे इस वस्तिके देनेसे दूर होते हैं इसवास्ते इनमें इस वस्तिकी सर्व कालमें योजना करनी चाहिये ॥

कानमें औषध डालनेकी विधि ।

स्वेदयेत्कर्णदेशंतुकिंचिन्नुःपार्श्वशायिनः ॥
मूत्रैःस्नेहैरसैःकोष्णैस्ततः कर्णप्रपूरयेत् ॥ १२६ ॥

अर्थ-मनुष्यको कुछ करवटकी तरफ सुलायके कानके चारों तरफ पसीने युक्त करके पश्चात् गोमूत्रादि तैलादिक तथा औषधोंका रस सहन होय इस प्रकार थोडा २ गरम करके कानमें डाले ॥

कानमें औषध डालके कितनी देर ठहरे।

कर्णंतुपूरितंरक्षेच्छतंपंचशतानिवा ॥
सहस्रंवापिमात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥ १२७ ॥

अर्थ—कर्णरोग, कंठरोग और मस्तकरोग ये दूर होनेके लिये कानमें जो औषध डालीहो वह सौ मात्रा अथवा पांच सौ मात्रा अथवा एक हजार मात्रा होवे तावत्काल पर्यंत कानमें रक्खे। मात्राके लक्षण आगेके श्लोकमें कहे हैं सो जानना ॥

मात्राका प्रमाण।

स्वजानुनः करावर्तंकुर्याच्छोटिकयायुतम् ॥
एषामात्राभवेदेकासर्वत्रैवैषनिश्चयः ॥ १२८ ॥

अर्थ—अपने घोंटूके चारों तरफ स्पर्श होय इस प्रकार हाथको फेरके चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा होती है ऐसा निश्चय सर्वत्र है ॥

रसादिक तथा तैलादिक इनका कानमें डालनेका काल।

रसाद्यैः पूरणंकर्णेभोजनात्प्राक्प्रशस्यते ॥
तैलाद्यैः पूरणंकर्णेभास्करेऽस्तमुपागते ॥ १२९ ॥

अर्थ—रसादिकरके जो औषध कानमें डालना हो सो भोजन करनेके पूर्व डाले। तथा तेलादिक जो औषध कानमें डाले वह दिन मूँदनेके पश्चात् अर्थात् रात्रिमें डाले ॥

कर्णशूलपर औषध।

पीतार्कपत्रमाज्येनलिप्तमग्नौप्रतापयेत् ॥
तद्रसः श्रवणेक्षितः कर्णशूलहरः परः ॥ १३० ॥

अर्थ—आकके पके हुए पत्तेमें घी लगाय अग्निपर तपाय उसका रस निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर हो ॥

कर्णशूलपर मूत्रप्रयोग।

कर्णशूलातुरेकोष्णंबस्तमूत्रंससैंधवम् ॥
निक्षिपेत्तेनशाम्यंतिशूलपाकादिकारुजः ॥ १३१ ॥

अर्थ—बकरेके मूत्रमें सैंधानमक डालके कुछ थोडा गरम कर कानमें डाले तो कर्णशूल और व्रणसंबंधी पाकादिक उपद्रव दूर हों ॥

कर्णशूलपर तीसरा प्रयोग।

शृङ्गवेरंचमधुकंमधुसैंधवमामलम् ॥ तिलपर्णीरसस्तैलंटंकणं
निंबुकद्रवम् ॥१३२॥ कदुष्णंकर्णयोर्देयमेतद्वावेदनापहम् ॥

अर्थ-१ अदरखका रस, २ मुलहटी, ३ सहत, ४ सैंधानमक, ५ आंवले, ६ तिलपर्णीका रस, ७ सरसोंका तेल, ८ सुहागा, ९ नीमका रस ये नौ औषध एकत्र कर कुछ गरम करके कानमें डाले तो कर्णसंबंधी पीडा दूर होवे ॥

कर्णशूलपर चतुर्थ प्रयोग ।

कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैः शुभैः ॥ १३३ ॥
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णंकर्णशूलोपशांतये ॥

अर्थ-१ कैथके फलका रस, २ विजोरेका रस, ३ अमलवेतका[1] रस, ४ अदरखका रस ये चार रस एकत्र कर कुछ २ गरम कर कर्णशूल दूर होनेके वास्ते कानमें डाले ॥

कर्णशूलपर पांचवां प्रयोग ।

अर्कांकुरानम्लपिष्टास्तैलाक्ताँल्लवणान्वितान् ॥ १३४ ॥
संनिदध्यात्स्नुहीकांडेकोरितेतच्छदावृते ॥
पुटपाकक्रमंकृत्वारसैस्तच्चप्रपूरयेत् ॥ १३५ ॥
सुखोष्णैस्तेनशाम्यंतिकर्णपीडाः सुदारुणाः ॥

अर्थ-आकके अंकुर अर्थात् आगेकी कोमल २ पत्ती इनको नींबूके रसमें खरल कर उसमें थोडासा तिलका तेल और सैंधानमक डाल गोला बनावे । फिर थूहरकी गीली लकडीको भीतरसे पोली करके उसमें उस गोलेको रखके उसके चारों तरफ थूहरके पत्ते लपेटके बांध देवे फिर उसके ऊपर गीली मिट्टी लपेटके पुटपाककी[2] विधिसे उस औषधका पाक होय ऐसी हलकी अग्नि देवे । पश्चात् उस गोलेको बाहर निकालके पत्ते वगैरहको दूर करे । फिर उस थूहरको लकडी सहित निचोडके रस निकाल लेवे । अग्निपर सुखोष्ण करके कानमें डाले तो कानमें जो बडी भारी दारुण पीडा होतीहो वह दूर होय ॥

कर्णशूलपर दीपिका तैल ।

महतः पंचमूलस्यकांडान्यष्टांगुलानितु ॥ १३६ ॥
क्षौमेणावेष्ट्यसंसिच्यतैलेनादीपयेत्ततः ॥
यत्तैलंच्यवतेतेभ्यः सुखोष्णंतेनपूरयेत् ॥ १३७ ॥
ज्ञेयंतद्दीपिकातैलंसद्योगृह्णातिवेदनाम् ॥
एवंस्याद्दीपिकातैलंकुष्ठेदेवतरौतथा ॥ १३८ ॥

---

[1] अमलवेतके अभावमें चनेका खार अथवा चूकेका रस डालना चाहिये ।

[2] पुटपाककी विधि मध्यमखंडमें स्वरसके पश्चात् कही है सो देखलेना ।

अर्थ–बडा पंचमूल अर्थात् बेल आदि पांच औषधोंकी जड आठ २ अंगुलकी ले उनको रेशमी वस्त्रमें अथवा कपडेमें लपेट तेलमें भिगोकर अग्निसे जलावे । तथा उन जडोंको सीधी रक्खे कि जिससे तेल टपक कर नीचे गिरे । उस तेलको कुछ थोडासा गरम करके कानमें डाले तो कानकी पीडा अर्थात् कानमें टीस मारना तत्काल दूर हो । इसको दीप्रिकातैल कहते हैं इसी प्रकार कूठ अथवा देवदारुका तेल निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होवे ॥

कर्णशूलपर स्योनाकतैल ।

तैलंस्योनाकमूलेनमन्देऽग्नौपरिपाचितम् ॥
हरेदाशुत्रिदोषोत्थंकर्णशूलंप्रपूरणात् ॥ १३९ ॥

अर्थ–टेंटूकी जडको पीस कल्क करे तथा उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर दोनोंको एकत्र करे तथा उस तेलके पाक होनेके वास्ते उसमें कल्कका चौगुना जल डालके चूल्हेपर रखके मन्द २ आंचसे परिपक करे जब जल आदि सब जलके केवल तेलमात्र आय रहे तब उतारके तेलको छान किसी उत्तम शीशी आदि पात्रमें भरके रख देवे । इसको कानमें डाले तो त्रिदोषजन्य कर्णशूल तत्काल दूर होवे ॥

कर्णनादपर तैल ।

कल्ककाथेनयष्ट्याह्वकाकोलीमाषधान्यकैः ॥
सूकरस्यवसांपक्त्वाकर्णनादार्तिहारिणी ॥ १४० ॥

अर्थ–१ मुलहटी, २ काकोलीके अभावमें असगंध, ३ उडद, ४ धनिया इन चार औषधोंका काढा करके उसमें इन्हीं औषधोंका कल्क करके डाल देवे । तथा सूअरकी वसा (अर्थात् मांसका स्नेह) उस काढेमें डालके चूल्हेपर चढाय अग्नि देकर स्नेह मात्र रहे तबतक पाक करे फिर इसको कानमें डाले तो कर्णनाद (कानोंमें शब्द हुआ करे सो) दूर हो ॥

कर्णनादादिकोंपर तैल ।

सर्जिकामूलकंशुष्कंहिंगुकृष्णासमन्वितम् ॥
शतपुष्पाचतैस्तैलंपक्वंसूक्तंचतुर्गुणम् ॥ १४१ ॥
प्रणादंशूलबाधिर्यंस्रावंकर्णस्यनाशयेत् ॥

अर्थ–१ सज्जीखार, २ सूखी मूली, ३ हींग, ४ पीपल, ५ सौंफ ये पांच औषध समान भाग ले, पीस कल्क करे । उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर उस कल्कमें मिलावे ।

तथा उस कल्कका चौगुना सूक्त (सिरका) लेकर तेलमें मिलावे । फिर इस तेलके पात्रको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे । जब तेलका पाक होचुके तब उतारके तेलको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे । इस तेलको कानमें डाले तो कर्णप्रणाद, कर्णशूल, बहिरापना तथा कानसे पूय (राध) आदिका स्राव ये रोग दूर होंय ॥

बहरेपनपर अपामार्गक्षारतैल ।

अपामार्गक्षारजलेतत्क्षारंकल्कितांक्षिपेत् ॥ १४२ ॥
तेनपक्वंजयेत्तैलंबाधिर्यंकर्णनादकम् ॥

अर्थ—ओंगाकी राख कर किसी मिट्टीके पात्रमें धर उसमें उस राखसे चौगुना जल डालके रात्रिको चार प्रहर धरा रहने दे । प्रातःकाल ऊपरके पानीको लोहेकी कडाहीमें निकाल उसमें उस जलसे चौथाई तिलका तेल डाले । फिर चूल्हेपर चढायके मन्द २ अग्निसे पाक करे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके पात्रमें धर रक्खे । इस तेलको कानमें डाले तो कानका बहरापन तथा कर्णनाद दूर होय ॥

कर्णनाडीपर शम्बूकतैल ।

शम्बूकस्यतुमांसेनपचेत्तैलंतुसार्षपम् ॥ १४३ ॥
तस्यपूरणमात्रेणकर्णनाडीप्रशाम्यति ॥

अर्थ—शंबूक कहिये छोटा शंख अथवा सीपी उसका मांस और उस मांससे चौगुना सरसोंका तेल लेवे । उस तेलमें मांस डालके पकावे । जब पक्क होजावे तब मांसको निकालकेदूर करे और इस तेलको कानमें डाले तो कर्णनाडी कहिये कर्णसंबन्धी फोडा दूर होय ॥

कर्णस्रावपर औषध ।

चूर्णपञ्चकषायाणां कपित्थरसमेवच ॥ १४४ ॥
कर्णस्रावेप्रशंसंतिपूरणंमधुनासह ॥

अर्थ—पंचकषाय कहिये पंचकषाय संज्ञक पाँच औषध (कि जिनके नाम आगेके श्लोकमें कहे हैं) उनका चूर्ण करे । फिर कैथके रसमें इस चूर्णको और थोडा सहत डालके राध आदि स्राव दूर करनेको कानमें डाले ॥

पंचकषायसंज्ञक वृक्षोंके नाम ।

तिन्दुकान्यभयालोध्रः समंगाचामलक्यपि ॥ १४५ ॥
ज्ञेयाःपञ्चकषायास्तुकर्मण्यस्मिन्भिषग्वरैः ॥

अर्थ--१ तेंदू, २ हरड, ३ लोध, ४ मजीठ, ५ आंवला ये कर्णस्राव दूर होनेके वास्त पंचकषायसंज्ञक वृक्ष जानने। इनके फल लेने। यह विचार प्रथमखंडके परिभाषा अध्यायमें कहआये हैं॥

कर्णस्रावपर औषध।

सर्जिकाचूर्णसंयुक्तंबीजपूररसंक्षिपेत्॥ १४६॥
कर्णस्रावरुजोदाहाःप्रणश्यंतिनसंशयः॥

अर्थ--सज्जीखारके चूर्णको बिजोरके रसमें मिलायके कानमें डाले तो कर्णस्रावसम्बन्धी पीडा और दाह ये निश्चय करके दूर हों॥

कानसे राध वहै उसपर औषध।

आम्रजंबूप्रवालानिमधूकस्यवटस्यच॥ १४७॥
एभिःसंसाधितंतैलंपूतिकर्णोपशांतिकृत्॥

अर्थ--आम, जामुन, महुआ और वड इन चारोंके कोमल पत्तोंको पीस कल्क करके उसमें तिलोंका तेल, उस कल्कका चौगुना डालके अग्निपर पाक करे। पश्चात् यह तेल कानमेस जो राध वहती है उसके दूर होनेके लिये कानमें डाले॥

कर्णके कीडे दूर होनेपर तेल।

पूरणंहरितालेनगवांमूत्रयुतेनच॥ १४८॥
अथवासार्षपंतैलंकर्णकीटहरंपरम्॥

अर्थ--हरतालको गोमूत्रमें औटायके कानमें डाले अथवा सरसोंका तेल कानमें डाले तो कानके कीडेको हरण करता है॥

कानका कीडा दूर होनेका दूसरा प्रयोग।

स्वरसंशिग्रुमूलस्यसूर्यावर्तरसंतथा॥ १४९॥
त्र्यूषणंचूर्णितं चैवकपिकच्छूरसंतथा॥
कृत्वैकत्रंक्षिपेत्कर्णेकर्णकीटहरंपरम्॥ १५०॥

अर्थ--सहजनेकी छालका रस, हुलहुलका रस, त्र्यूषण (सोंठ, मिरच, पीपल) और कौंछकी जडका रस ये सब रस एकत्र करके उसमें पूर्वोक्त त्रिकटेका रस मिलायके कानके कीडे दूर करनेको कानमें डाले॥

तीसरा प्रयोग।

सद्योमद्यंनिहंत्याशुकर्णकीटंसुदारुणम्॥

सद्योहिंगुनिहन्त्याशुकर्णकीटंसुदारुणम् ॥ १६१ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायामुत्तरखंडेचिकित्सास्थानेलेपादिविधिवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अर्थ--हींग और मद्य इन दोनोंमेंसे कोईसी एक वस्तु कानमें डाले तो कानके कीडे मरजावें॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृतमाथुरभाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

रक्तस्रावका विधि ।

शोणितंस्रावयेज्जंतोरामयंप्रसमीक्ष्यच ॥
प्रस्थंप्रस्तार्धकंवापिप्रस्थार्धार्धमथापिवा ॥ १ ॥

अर्थ--मनुष्यके देहमें आमय कहिये रुधिरजन्य कुष्ठादिक रोगोंको देखके रक्तस्राव करे अर्थात् देहसे रुधिर निकाले उसका प्रमाण १ प्रस्थ अथवा अर्धप्रस्थ अथवा आधेका आधा अर्थात् चौथाई प्रस्थ कहिये १ कुडव प्रमाण जानना ॥

रक्तस्रावका सामान्यकाल ।

शरत्कालेस्वभावेनकुर्याद्रक्तस्रुतिंनरः ॥
त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्यानस्यूरक्तस्रुतेर्यतः ॥ २ ॥

अर्थ--देहसे रुधिर काढनेसे त्वचासंबंधी दोष व्रणादिक गांठ और सूजन इत्यादिक रोग दूर होते हैं। इससे शरत्कालमें स्वभाव करके मनुष्योंका रुधिरस्राव करे अर्थात् फस्त खोले॥

रक्तका स्वरूप ।

मधुरंवर्णतोरक्तमशीतोष्णंतथागुरु ॥
शोणितंस्निग्धविस्रंस्याद्विदाहश्चास्यपित्तवत् ॥ ३ ॥

अर्थ--रुधिर रस करके मीठा है, वर्ण करके लाल और गुणों करके अशीतोष्ण कहिये मंदोष्ण, भारी, चिकना तथा आमगंधी है । तथा उस रुधिरकी दाहशक्ति पित्तके समान है । इस प्रकार रुधिरके रस, वर्ण और गुण जानने ॥

रुधिरमें पृथिव्यादिभूतोंके गुण।

विस्रताद्रवतारागश्चलनंविलयस्तथा ॥
भूम्यादिपञ्चभूतानामेतेरक्तगुणाःस्मृताः ॥ ४ ॥

अर्थ–विस्रता कहिये आमगंधता यह पृथ्वीका गुण है। द्रवता अर्थात् पतलापन जलका गुण है। राग कहिये लाली अग्निका गुण है। चलन वायुका गुण और लीनता आकाशका गुण है। इस प्रकार पृथिव्यादि पांच भूतोंके पांच गुण रुधिरमें हैं इस प्रकार जानना ॥

दुष्टरुधिरके लक्षण।

रक्तेदुष्टेवेदनास्यात्पाकोदाहश्चजायते ॥
रक्तमण्डलताकण्डूःशोथश्चपिटिकोद्गमः ॥ ५ ॥

अर्थ--मनुष्यका रुधिर दुष्ट होनेसे शरीरमें पीडा होय, अंग पकेके समान होकर दाह होय, तथा देहमें रुधिरके चकत्ते खुजली सूजन और फुन्सी होय ॥

रुधिरवृद्धिके लक्षण।

वृद्धेरक्तांगनेत्रत्वंशिराणांपूरणंतथा ॥
गात्राणांगौरवंनिद्रामदोदाहश्चजायते ॥ ६ ॥

अर्थ--रुधिरके वढनेसे शरीर और नेत्र ये लाल रंगके हों, धमन्यादि नाडी पूरित होवें अर्थात् फूल आवें। तथा देहका भारी होना, निद्रा, मद य उपद्रव होते हैं ॥

क्षीणरुधिरके लक्षण।

क्षीणेऽम्लमधुराकांक्षामूर्च्छाचत्वचिरूक्षता ॥
शैथिल्यंचशिराणांस्याद्वातादुन्मार्गगामिता ॥ ७ ॥

अर्थ--मनुष्यका रुधिर क्षीण होनेसे खटाई और मिष्टपदार्थोंके भोजनकी इच्छा होय, मूर्च्छा आवे, त्वचाका रूखापन, नाडियोंमें शिथिलता, तथा वायु ऊर्ध्वमार्ग होकर गमन करती है ॥

वादीसे दूषितरुधिरके लक्षण।

अरुणंफेनिलंरूक्षंपरुषंतनुशीघ्रगम् ॥
अस्कंदिसूचिनिस्तोदंरक्तंस्याद्वातदूषितम् ॥ ८ ॥

अर्थ--वादीसे रुधिरके दूषित होनेसे वह लाल रंगका, झागके समान, रूक्ष, कठोर और हलका, शीघ्र गमन कर्ता और पतला होता है। तथा सूईके चुभानेके समान पीडा होती है ॥

पित्तदूषितरुधिरके लक्षण ।

पित्तेनपीतंहरितंनीलंश्यावंचविस्रकम् ॥
अस्कंद्युष्णंमक्षिकाणांपिपीलीनामनिष्टकम् ॥ ९ ॥

अर्थ--पित्त करके रुधिरके दूषित होनेसे उसका रंग पीले रंगका, हरे रंगका, नीले रंगका, अथवा श्याम रंगका होता है । वह आमगंधी (कचाईद मारे), उष्ण और चंचलतारहित होता है तथा उसको चेंटी और मक्खी नहीं खाती ॥

कफदूषितरुधिरके लक्षण ।

शीतंचबहुलंस्निग्धंगैरिकोदकसन्निभम् ॥
मांसपेशीप्रभंस्कंदिमंदगंकफदूषितम् ॥ १० ॥

अर्थ--कफसे दूषित हुआ रुधिर स्पर्श करनेसे अत्यंत शीतल होता है, स्निग्ध होकर गेरूके समान रंगवाला होता है, तथा मांसपेशी कहिये मांसके छोटे २ टुकडोंके समान हो, स्कंदि कहिये घन तथा मंदगमन करनेवाला होता है ॥

द्विदोष तथा त्रिदोषसे दूषित रुधिरके लक्षण ।

द्विदोषदुष्टंसंसृष्टंत्रिदुष्टंपूतिगन्धकम् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तंकांजिकाभंचजायते ॥ ११ ॥

अर्थ--दो दोषोंसे दूषित हुआ रुधिर दोनों दोषोंके लक्षण करके युक्त होता है । एवं त्रिदोषसे दूषित हुए रुधिरमें सडीहुई बास आवे और वह तीनों दोषोंके लक्षण करके युक्त होकर काँजीके समान होता है ॥

विषदूषितरुधिरके लक्षण ।

विषदुष्टंभवेच्छ्यावंनासिकोन्मार्गंतथा ॥
विस्रंकांजिकसंकाशंसर्वकुष्ठकरंबहु ॥ १२ ॥

अर्थ--विषसे दूषित हुआ रुधिर काले रंगका होता है । ऊपरके मार्ग होकर नासिकासे गिरता है । आमगंधि होकर काँजीके समान दीखता है तथा अतिशय करके यह दूषित रुधिर संपूर्ण कुष्ठोंको उत्पन्न करता है ॥

शुद्धरुधिरके लक्षण ।

इंद्रगोपप्रभंज्ञेयंप्रकृतिस्थमसंहतम् ॥

अर्थ--जिस रुधिरमें कोईसा विकार नहीं हो अर्थात् शुद्ध रुधिर जो अपनी प्रकृतिपर है वह इन्द्रगोप (वीरबहूटी इस नामका कीडा लाल रंगका जो वर्षाऋतुमें होता है उस) के समान रंगवाला और पतला होता है ॥

रुधिरस्रावयोग्य रोग।

शोथेदाहेऽंगपाकेचरक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ ॥१३॥ वातरक्तेतथाकु-
ष्ठेसपीडेदुर्जयेऽनिले ॥ पाणिरोगेश्लीपदेचविषदुष्टेचशोणिते ॥
॥ १४॥ ग्रंथ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु ॥ विदारीस्तन-
रोगेषुगात्राणांसादगौरवे ॥ १५ ॥ रक्ताभिष्यंदतंद्रायांपूति-
घ्राणस्यदेहके ॥ यकृत्प्लीहविसर्पेषुविद्रधौपिटिकोद्गमे ॥१६॥
कर्णौष्ठघ्राणवक्त्राणांपाकेदाहेशिरोरुजि ॥ उपदंशे रक्तपित्तेरक्त-
स्रावः प्रशस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—दाह सूजन तथा जिसके अंगका पाक तथा शरीर लाल रंगका हो ऐसा मनुष्य तथा जिसकी नासिका द्वारा रुधिर गिरा करे, वातरक्त, कोढ तथा पीडायुक्त हो, जीतनेमें अशक्य ऐसा वादीका रोग, हाथोंका रोग, श्लीपदरोग तथा विषसे दूषित रुधिर, ग्रंथिरोग, अर्बुद, गंडमालाका भेद अपची रोग, क्षुद्ररोग, रक्ताधिमंथ (नेत्रोंका रोग), विदारीरोग, स्तनरोग, अंगोंकी शिथिलता, तथा शरीरका भारी होना, रक्ताभिष्यंद, तन्द्रा, दुर्गंधयुक्त है नाक मुख और देह जिसके, यकृत् कहिये कालखंडरोग, प्लीहा, विसर्प, विद्रधि तथा अंगोंपर फुन्सीका होना, कान और होठ नाक तथा मुख इनका पाक, दाह, मस्तकपीडा, उपदंश, रक्तपित्त ये विकार जिन मनुष्योंके देहमें होयँ उनका रुधिर वैद्यको निकालना चाहिये । ये रुधिर काढनेके योग्य हैं ॥

रुधिर निकालनेके प्रकार।

एषुरोगेषुशृंगैर्वाजलौकालाबुकैरपि ॥
अथवापिशिरामोक्षैः कुर्याद्रक्तस्रुतिंनरः ॥ १८ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त रोगोंमें वैद्य सींगी जोंक तूँबी अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले ॥

फस्त खोलने अयोग्य रोगी।

नकुर्वीतशिरामोक्षंकृशस्यातिव्यवायिनः ॥ क्लीबस्यभीरोर्ग-
र्भिण्याः सूतिकापांडुरोगिणः ॥ १९ ॥ पंचकर्मविशुद्धस्यपी-
तस्नेहस्यचार्शसाम् ॥ सर्वांगशोथयुक्तानामुदरश्वासकासिनाम्
॥ २० ॥ छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्निग्धतनोरपि ॥ ऊनषोड-

---

१ अंग पके फोडेके समान होता है।

२ ये कर्णादिक पकेके समान होकर प्रतीत हों।

शवर्षस्यगतसप्ताधिकस्यच ॥ २१ ॥ आघातप्रतरक्तस्यशि-
रामोक्षोनशस्यते ॥ एषांचात्ययिकेयोगेजलौकाभिस्तुनिर्हरेत्
॥ २२ ॥ तथापिविषयुक्तानांशिरामोक्षोऽपिशस्यते ॥

अर्थ- कृश (दुबलाहुआ) मनुष्य, स्त्रीका संग करनेमें अत्यंत आसक्त, नपुंसक, डरपोक, गर्भिणी स्त्री, प्रसूता स्त्री, पांडुरोगी, वमनादि पंच कर्म करके शुद्ध हुआ मनुष्य, जिसने स्नेहपान किया हो, बवासीररोग, जिसका सर्वांग सूजगया हो, उदररोग, श्वास, खाँसी, वमन और अतिसार इत्यादि रोगोंसे पीडित, तथा जिसके अंगोंका पसीना निकाला हो, जिस मनुष्यकी अवस्था सोलह वर्षसे न्यून (कम) हो, तथा जिसकी सत्तर वर्षसे ऊपर अवस्था (उमर) होगईहो, चोट लगनेसे नासिकादिद्वारा रुधिर गिरताहो ऐसा मनुष्य, इन सब रोगियोंकी फस्त नहीं खोलनी। यदि रुधिर निकालनाही ठीक समझाजावे तो जोंक लगायके रुधिर निकाले । कदाचित् ये रोगी विषप्रयोगसे व्याप्त होवें तो उनकी फस्त खोलकरही रुधिर निकाले ॥

वातादिकसे दूषितरक्तके निकालनेका प्रकार ।

गोशृंगेणजलौकाभिरलाबुभिरपित्रिधा ॥२३॥ वातापित्तकफै-
र्दुष्टंशोणितंस्रावयेद्बुधः ॥ द्विदोषाभ्यांतुसंसृष्टंत्रिदोषैरपिदूषि-
तम् ॥ २४ ॥ शोणितंस्रावयेद्युक्त्याशिरामोक्षैः पदैस्तथा ॥

अर्थ--बादीसे दूषित हुआ जो रुधिर उसको गौके सींगसे अर्थात् सींगी देकर निकाले। पित्तसे दूषित रुधिरको जोंक लगायके निकाले। कफसे दूषित रुधिरको तूमडी लगायके निकाले। और जो दो दोषों करके अथवा तीन दोषों करके दूषित रुधिर है उसको युक्तिपूर्वक फस्त खोलके अथवा पछनेसे निकालना चाहिये ॥

सींगी आदिको रुधिरग्रहणमें प्रमाण ।

गृह्णातिशोणितंशृंगंदशांगुलमितंबलात् ॥ २५ ॥
जलौकाहस्तमात्रंचतुंबीचद्वादशांगुलम् ॥
पदमंगुलमात्रेणशिरासर्वांगशोधिनी ॥ २६ ॥

अर्थ--सिंगी लगानेसे सिंगी अपने बलसे दश अंगुलके रुधिरको खींचलेती है, जोंक लगानेसे एक हाथके रुधिरको खींचे, तुंबी बारह अंगुलका, उस्तरा एक अंगुलके रुधिरको खींचके निकाले । एवं फस्त खोलनेसे सम्पूर्ण अंगका शोधन होता है ॥

जिनके अंगसे रुधिर नहीं निकले उसका कारण ।

शीतेनिरन्नेमूर्च्छातितन्द्राभीतिमदश्रमैः ॥
युतानांनस्रवेद्रक्तंतथाविण्मूत्रसंगिनाम् ॥ २७ ॥

अर्थ—शीतकालमें जिस मनुष्यने उपवास किया हो, मूर्च्छा तंद्रा भयभीत मद और श्रम इन करके युक्त हो, मल और मूत्र ये जिसने भले प्रकार न किये हों ऐसे मनुष्योंके देहसे रुधिर नहीं निकलता ॥

रुधिर न निकलनेमें औषधि ।

अप्रवर्तिनिरक्तेचकुष्ठचित्रकसैन्धवैः ॥
मर्दयेद्व्रणवक्त्रंचतेनसम्यक्प्रवर्तते ॥ २८ ॥

अर्थ—फस्त देनेसे यदि रुधिर बाहर न आवे तो कूठ चित्रक और सैंधानमक इन तीन औषधोंका चूर्ण करके व्रणके मुखपर चुपडे तो रुधिर उत्तम प्रकारसे निकलने लगे ॥

रुधिर निकालनेमें काल ।

तस्मान्नशीतेनात्युष्णेनास्विन्नेनातितापिते ॥
पीत्वायवागूंतृप्तस्यशोणितंस्रावयेद्बुधः ॥ २९ ॥

अर्थ--शीतकाल तथा अत्यंत गरमी न हो ऐसे समयमें मनुष्यके अंगका पसीना विना निकाले और शरीर अत्यंत तप्त न होनेपर जौकी यवागू पीकर तृप्त हुए मनुष्यका वैद्य रुधिर निकाले ॥

अत्यन्त रुधिर निकलनेमें कारण ।

अतिस्विन्नस्योष्णकालेतथैवातिशिराव्यधात् ॥
अतिप्रवर्ततेरक्तंतत्रकुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ३० ॥

अर्थ--मनुष्यके अंगका अत्यंत पसीना निकालकर गरमीकी ऋतुमें रुधिर निकालनेसे तथा फस्त खोलते समय अधिक नसके कट जानेसे देहसे रुधिर अधिक निकलता है उसके बन्द करनेका यत्न आगेके श्लोकोंमें कहा है ॥

अत्यन्त रुधिर निकलनेपर उपाय ।

अतिप्रवृत्तेरक्तेचलोध्रसर्जरसांजनैः ॥ यवगोधूमचूर्णैर्वाधवधन्वनगैरिकैः ॥ ३१ ॥ सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वाभस्मनाक्षौमवस्त्रयोः ॥ मुखंव्रणस्यबद्ध्वाचशीतैश्चोपचरेद्व्रणम् ॥ ३२ ॥ विध्येदूर्ध्वांशिरांतांवादहेत्क्षारेणवाग्निना ॥ व्रणंकषायःसंधत्तेरक्तंस्कन्दयतेहिमम् ॥ ३३ ॥ व्रणास्यंपाचयेत्क्षारोदाहःसंकोचयेच्छिराम् ॥

अर्थ—नसमेंसे रुधिर अत्यन्त निकलने लगे ता उसक बन्द करनेको लोध राल और रसोत इन तीनोंका चूर्ण अथवा जौ और गेहूँ इनका चून अथवा धामिन जवासा और गेरू इन तीनोंका

चूर्ण अथवा सांपकी कांचलीका चूर्ण अथवा रेशम और कपडेकी राख इन सब औषधोंमें जो समयपर मिल जावे उसको उस घावके मुखपर भरके दाब देवे फिर उस व्रणपर चन्दनादिक शीतल लेपादिक उपचार करे तो रुधिरका अत्यंत निकलना बंद होवे। यदि इतने उपाय करनेपर भी रुधिर बंद न होय तो उस नसके ऊपर फिर शस्त्रसे फस्त खोले। अथवा उस व्रणके मुखको अग्निसे दाग देवे। इत्यादि उपायों करके रुधिर बंद होता है इसमें हेतु कहते हैं कि कषाय कहिये लोध्रादिक चूर्ण व्रणके मुखको पकडता है और शीतोपचार करके रुधिर थमता है। क्षार करके व्रणका पाचन होता है। तथा अग्न्यादि दाह करके शिरा (नस) का संकोच होता है॥

दाग देनेसे जो रोग दूर हो उनके नाम।

वामांडशोथेदक्षस्यपरस्यांगुष्ठमूलजाम् ॥ ३४ ॥ दहेच्छिरां
व्यत्ययेतुवामांगुष्ठशिरांदहेत् ॥ शिरादाहप्रभावेणशुष्कशोथः
प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥ विषूच्यांपाददाहेनजायतेऽग्नेः प्रदी-
पनम् ॥ संकुचंतियतस्तेनरसश्लेष्मवहाःशिराः ॥ ३६॥ यदा
वृद्धिर्यकृत्प्लीह्नोःशिशोःसञ्जायतेऽसृजः ॥ तदातत्स्थानदा-
हेनसंकुचंत्यसृजःशिराः ॥ ३७ ॥

अर्थ-मनुष्यको बायें तरफके अंडकोशपर सूजन होय तो दहने हाथके अँगूठेकी जडमें शिराको दाग देवे और दहने अंडकोशपर सूजन होय तो बायें हाथके अँगूठेकी जडमें दाग देवे तो अंडकोशकी सूजन दूर होवे। विषूचिका होनेसे लोहकी पत्ती अथवा कलछीको तपायकर पैरोंके तलवोंको तपावे ऐसा करनेसे रसवाहिनी शिरा तथा कफवाहिनी शिरा हैं उनका संकोच होकर अग्नि प्रदीप्त तथा विषूचिका (हैजा) दूर होती है। जिस समय बालकके पेटमें दहिने तरफ यकृत् कहिये कलेजा और बाई तरफ प्लीहा इनकी वृद्धि होय उस कालमें उस जगहपर दाग देवे तो यकृत् और प्लीहा ये सुकड जाते हैं॥

दुष्टरुधिर निकालनेपर जो अवशिष्ट रहे उसके गुण।

रक्तदुष्टेऽवशिष्टेऽपिव्याधिर्नैवप्रकुप्यति ॥ अतःस्राव्यंसावशेषं
रक्तेनातिक्रमोहितः ॥ ३८॥ आंध्यमाक्षेपकंतृष्णांतिमिरं शि-
रसोरुजम् ॥ पक्षाघातंश्वासकासौहिक्कांदाहंचपांडुताम् ॥३९॥
कुरुतेविस्रुतंरक्तंमरणंवाकरोतिच ॥

अर्थ–शरीरसे दुष्ट रुधिर निकलकर थोडा अवशिष्ट रहनेसे रोगोंका प्रकोप नहीं होता इसीसे जब २ रुधिर निकाले तभी २ थोडासा अवशिष्ट छोड देना चाहिये तो हितकारी होताहै। संपूर्ण रुधिर काढनेसे अन्धापन, आक्षेपवायु, प्यास, तिमिर, मस्तकपीडा, पक्षावातवायु, श्वास, खांसी, हिचकी, दाह और पांडुरोग ये उपद्रव होते हैं तथा मनुष्य मरणावस्थाको पहुँच जाता है। इसी वास्ते इस प्राणीका संपूर्ण रुधिर नहीं काढना चाहिये॥

रुधिरसे देहकी उत्पत्तिआदिका प्रकार।

देहस्योत्पत्तिरसृजादेहस्तेनैवधार्यते॥ ४० ॥
विनातेनव्रजेज्जीवोरक्षेद्रक्तमतोबुधः॥

अर्थ–रुधिरसे देहकी उत्पत्ति है तथा रुधिरसेही देहका धारण होता है और रुधिरके विना जीव रहताही नहीं है अतः बुद्धिमान् वैद्य रुधिरका रक्षण करे॥

रुधिर निकालनेपर दोष कुपित होनेका उपाय।

शीतोपचारैःकुपितेह्यतरक्तस्यमारुते॥ ४१ ॥
कोष्णेनसर्पिषाशोथंसव्यथंपरिषेचयेत्॥

अर्थ–रुधिर काढनेपर व्रणस्थानमें पित्तका प्रकोप होनेसे चन्दनादिक शीतल उपचार करे, बादीका प्रकोप होनेसे यदि उस व्रणके स्थानमें पीडायुक्त सूजन आय जावे तो उस स्थानमें थोडे घीको गरम करके लगावे॥

रुधिर निकालनेपर पथ्य।

क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः॥ ४२ ॥
रसःसमुचितःपानेक्षीरंवाषष्टिकाहिताः॥

अर्थ–शरीरसे रुधिर काढनेसे जो मनुष्य क्षीण होगया हो उसको हरिग ससा मेंढा काला हरिण तथा बकरा इनके मांसका रस सिद्ध करके पिलावे तथा साँठी चावलोंको गौके दूधमें डालके खीर करके भोजन कराना अथवा गौका दूध पिलावे। साँठी चावलका भात खानेको दे। इस प्रकार ये पदार्थ सेवन करना हितकारी होता है॥

उत्तम प्रकारसे रुधिर निकलनेके लक्षण।

पीडाशांतिर्लघुत्वंचव्याधेरुद्रेकसंक्षयः॥ ४३ ॥
मनःस्वास्थ्यंभवेच्चिह्नंसम्यग्विस्राविते ऽसृजि॥

अर्थ–पीडाका नाश, देहमें हलकापन, रोगोंके उत्कर्षका भले प्रकार नाश, मनमें प्रसन्नता ये लक्षण उत्तम प्रकार रुधिर निकालनेसे होते हैं॥

रुधिर निकलनेपर वर्जित वस्तु।

व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकान् ॥ ४४ ॥
एकाशनंदिवानिद्राक्षाराम्लकटुभोजनम् ॥
शोकंवादमजीर्णंचत्यजेदाबलदर्शनात् ॥ ४५ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे चिकित्सा-स्थाने रक्तमोक्षणविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अर्थ–परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलसे स्नान करना, बहुत हवा खाना, एकही धान्यका भोजन करना, दिनमें सोना, जवाखारादि खारे खट्टे तथा चरपरे पदार्थ भक्षण करना, शोक और वाद करना तथा बहुभोजनजन्य अजीर्ण इस प्रकार ये सर्व कारण शरीरमें जबतक पुरुषार्थ न आवे तबतक त्याग देना चाहिये ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायामुत्तरखण्डे दत्तरामकृतमाथुरभाषा-टीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.

नेत्र अच्छे होनेके वास्ते उपचार।

सेकआश्चोतनंपिण्डीबिडालस्तर्पणंतथा ॥
पुटपाकोऽञ्जनंचैभिःकल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थ–१ सेक, २ आश्चोतन, ३ पिंडी, ४ बिडाल, ५ तर्पण, ६ पुटपाक और ७ अञ्जन ये सात प्रकार नेत्ररोगमें कहे हैं। इनका कल्क करके जिस रीतिसे नेत्ररोगपर उपचार करना कहा है उसी प्रकार करे ॥

सेकके लक्षण।

सेकस्तुसूक्ष्मधाराभिःसर्वस्मिन्नयनेहितः ॥
मीलिताक्षस्यमर्त्यस्यप्रदेयश्चतुरंगुलम् ॥ २ ॥

अर्थ–मनुष्यके नेत्र बन्द करायके दूध घी रस इत्यादिकोंकी संपूर्ण नेत्रपर चार अंगुलके अंतरसे धार डालनेको सेक कहते हैं ॥

उस सेकके स्नेहनादिभेदकरके तीन प्रकार।

सचापिस्नेहनोवातेरक्तेपित्तेचरोपणः ॥
लेखनश्चकफेकार्यस्तस्यमात्राधुनोच्यते ॥ ३ ॥

अर्थ--वातरोग होनेसे स्नेहन[1] सेक करे। रक्तपित्तका कोप होनेसे रोपण[2] सेक करे तथा कफरोग होनेसे लेखन[3] सेककी योजना करे। अब उसकी मात्रा कहते हैं ॥

सेककी मात्रा।

षड्वाक्छतैःस्नेहनेषुचतुर्भिश्चैवरोपणे ॥
वाक्छतैश्चत्रिभिःकार्यःसेकोलेखनकर्मणि ॥ ४ ॥

अर्थ--स्नेहनकर्ममें छःसौ अंक होने पर्यंत नेत्रोंपर जिस औषधकी कही है उसकी धार दे। रोपण कर्म होय तो चार सौ अंक होंय तबतक धार डाले तथा लेखनकर्म होनेसे तीन सौ अंक होंय तबतक धार डाले ॥

सेक करनेका काल।

कार्यस्तुदिवसेसेकोरात्रौचात्ययिकेगदे ॥

अर्थ--नेत्रोंपर सेक करना होय तो दिनमें करे। यदि रोगकी आधिक्यता होवे तो रात्रिके समय करे ॥

वाताभिष्यंदरोगपर सेक।

एरंडत्वक्पत्रमूलैःशृतमाजंपयोहितम् ॥ ५ ॥
सुखोष्णंसेचनंनेत्रेवाताभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ--अंडकी छाल पत्ते और जड ये संपूर्ण बकरीके दूधमें औटावे पश्चात् सुखोष्ण करके गरम २ की धार वाताभिष्यंदरोग दूर हानेके वास्ते नेत्रोंपर देव ॥

वाताभिष्यंदपर दूसरा सेक।

परिषेकोहितोनेत्रेपयःकोष्णंससैंधवम् ॥ ६ ॥
रजनीदारुसिद्धं वा सैंधवेनसमन्वितम् ॥
वाताभिष्यंदशमनंहितंमारुतपर्यये ॥ ७ ॥

---

[1] दूध घी इत्यादि स्नेहन द्रव्यों करके नेत्रोंपर धार देना।

[2] लोध मुलहटी त्रिफला इत्यादिक जो औषध उनको दूधमें अथवा पानीमें पीस नेत्रोंपर धार देव।

[3] सोंठ मिरच इत्यादि लेखन औषधोंको जलमें पीसके अथवा काढा करके नेत्रोंपर धार देव।

शुष्काक्षिपाकेचाहितमिदंसेचनकंतथा ॥

अर्थ--बकरीके दूधमें सैंधानमक डाल गरम करके सहन होय ऐसी गरम २ दूधकी धार नेत्रोंपर देय । अथवा हल्दी देवदारु और सैंधानमक इनका चूर्ण कर उसको दूधमें डालके गरम२ नेत्रोंपर धार डाले तो वाताभिष्यद राग, वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूर हों ॥

रक्तपित्त तथा अभिघातपर सेक ।

शाबरंमधुकंतुल्यंघृतभृष्टंसुचूर्णितम् ॥ ८ ॥
छागक्षीरघृतंसेकात्पित्तरक्ताभिघातजित् ॥

अर्थ--लोध्र और मुलहटी ये दोनों औषध समान भाग ले घीमें भून चूर्ण करके बकरीके दूधमें डाल नेत्रोंपर सेक करे अर्थात् उस दूधकी गरम २ नेत्रोंपर धार देवे तो पित्तविकार, रुधिरविकार और अभिघातजन्य विकार दूर होवे ॥

रक्ताभिष्यन्दपर सेक ।

त्रिफलालोध्रयष्टीभिःशर्कराभद्रमुस्तकैः ॥ ९ ॥
पिष्टैःशीतांबुनासेकोरक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥

अर्थ--त्रिफला (कहिये हरड, बहेडा, आँवला), लोध, मुलहटी, खाँड और नागरमोथेका भेद भद्रमोथा ये सब औषध समान भाग ले शीतल जलमें पीस उस पानीका नेत्रोंपर सेक करे तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर हो । रक्ताभिष्यंद अर्थात् जिसके नेत्र रुधिरविकारसे दूखें ॥

रक्ताभिष्यन्दपर दूसरा सेक ।

लाक्षामधुकमंजिष्ठालोध्रकालानुसारिवा ॥ १० ॥
पुण्डरीकयुतःसेकोरक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥

अर्थ--१ लाख, २ मुलहटी, ३ मंजीठ, ४ लोध, ५ सारिवा, ६ सफेद कमल. इन छः औषधोंको जलमें पीसके उस पानीकी नेत्रोंपर धार डाले तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर होवे ॥

नेत्रशूलनाशक सेक ।

श्वेतलोध्रघृतेभृष्टंचूर्णितंपटविस्रुतम् ॥ ११ ॥
उष्णांबुनाविमृदितंसेकाच्छूलघ्नमम्बके ॥

अर्थ--सफेद लोधका घृतमें भूनके चूर्ण कर लेवे फिर उसको कपडछान करके गरम जलसे पीस उस जलकी नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रोंमें पीडा होना दूर होवे ॥

आश्चोतनके लक्षण ।

अथह्याश्चोतनंकार्यंनिशायांनकथंचन ॥ १२ ॥

उन्मीलितेऽक्ष्णिदृङ्मध्येबिंदुभिर्द्व्यंगुलाद्धितम् ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रोंमें दो अंगुलके अंतरसे दूध काढा इत्यादिककी बूँद डालना इसको आश्चोतन कहते हैं। यह आश्चोतन कर्म रात्रिमें कदापि न करे ॥

लेखनादि आश्चोतनमें कितनी बिन्दु डाले उसका प्रमाण।

बिंदवोऽष्टौलेखनेषुस्नेहने दशबिंदवः ॥ १३ ॥
रोपणेद्वादशप्रोक्तास्तेशीतेकोष्णरूपिणः ॥
उष्णेचशीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैषनिश्चयः ॥ १४ ॥

अर्थ—लेखन कर्म होय तो नेत्रमें आठ बूँद डाले। स्नेहकर्ममें दश बिंदु, रोपणकर्ममें बारह बिंदु डाले। वे बिंदु शीतकाल होय तो मंदोष्ण करके डाले और गरमीकी ऋतु हो तो शीतल डाले यह सर्वत्र निश्चय है ॥

वातादिकोंमें देनेकी योजना।

वातेतिक्तंतथास्निग्धंपित्तेमधुरशीतलम् ॥
तिक्तोष्णरूक्षंचकफेक्रमादाश्चोतनंहितम् ॥ १५ ॥

अर्थ—वातरोगमें कटु और स्निग्ध ऐसा आश्चोतन करे, पित्तरोग होय तो मधुर तथा शीतल ऐसा करे, कफरोग होय तो कटु और उष्ण तथा रूक्ष ऐसा आश्चोतन करे इस प्रकार आश्चोतन योजना करनेसे हितकारी होता है ॥

आश्चोतनकी मात्राके लक्षण।

आश्चोतनानांसर्वेषांमात्रास्याद्वाक्छतंहितम् ॥
निमेषोन्मेषणंपुंसामंगुल्योश्छोटिकाथवा ॥ १६ ॥
गुर्वक्षरोच्चारणंवावाङ्मात्रेयंस्मृताबुधैः ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंका निमेषोन्मेष कहिये पलकोंका खुलना मूँदना अथवा चुटकी बजाना अथवा गुरु कहिये दीर्घ अक्षरका उच्चारण करना अर्थात् एक अंक बोलना इतने कालको एक वाङ्मात्रा कहते हैं ऐसी सौ वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतन कर्मोंमें हितकारी होती है ॥

वाताभिष्यन्दपर आश्चोतन।

बिल्वादिपंचमूलेनबृहत्येरंडशिग्रुभिः ॥ १७ ॥
क्वाथआश्चोतनेकोष्णोवाताभिष्यन्दनाशनः ॥

अर्थ—बिल्वादि पांच औषधोंकी जड कटेरी अण्डकी जड तथा सहँजनेकी छाल इन सब औषधोंका काढा करके उसको सुहाता २ गरम करके नेत्रोंमें बूँद डाले तो वाताभिष्यंदरोग दूर होवे ॥

वातजन्य तथा रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए अभिष्यन्दपर आश्चोतन ।

अम्बुपिष्टैर्निंबपत्रैस्त्वचंलोध्रस्यलेपयेत् ॥ १८ ॥
प्रताप्यवह्निनापिष्ट्वातद्रसोनेत्रपूरणात् ॥
वातोत्थंरक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दंविनाशयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोध्रकी छालपर लेप कर देवे । फिर उस छालको अग्निपर तपायके पीस लेवे । तब उसका रस निकालके नेत्रोंमें बूँद डाले तो वातजन्य तथा रक्तपित्तजन्य जो अभिष्यन्द होता है वह दूर होवे ॥

सर्वप्रकारके अभिष्यन्दोंपर आश्चोतन ।

त्रिफलाश्चोतनंनेत्रेसर्वाभिष्यन्दनाशनम् ॥

अर्थ—त्रिफलेके काढेकी गरम २ बूँद नेत्रोंमें डाले तो सर्व प्रकारके अभिष्यन्दरोग दूर हों ॥

रक्तपित्तादिजन्य अभिष्यन्दपर आश्चोतन ।

स्त्रीस्तन्याश्चोतनंनेत्रेरक्तपित्तानिलार्तिजित् ॥ २० ॥
क्षीरसर्पिर्घृतंवापिवातरक्तरुजंजयेत् ॥

अर्थ—स्त्रीके दूधके बूँद नेत्रोंमें डाले तो रक्तपित्त तथा वादीसे होनेवाली पीडा दूर होवे । उसी प्रकार दूध मलाई अथवा घी इनकी बिंदु नेत्रोंमें छोडे तो वातरक्तसंबंधी पीडा दूर होवे ॥

पिण्डीके लक्षण ।

पिंडीकवलिकाप्रोक्ताबध्यतेपट्टवस्त्रकैः ॥ २१ ॥
नेत्राभिष्यन्दयोग्यासाव्रणेष्वपिनिबध्यते ॥

अर्थ—औषधको पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर रखके रेशमी कपडेकी पट्टीसे बाँधे इसको पिंडी अथवा कवलिका इस प्रकार कहते हैं । यह पिंडी नेत्राभिष्यन्द रोगपर हितकारी है तथा व्रणपर भी इसको बाँधते हैं ॥

कफाभिष्यन्दपर शिरोविरेचन ।

अभिष्यन्देऽधिमन्थेचसञ्जातेश्लेष्मसम्भवे ॥ २२ ॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्यशिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥

अर्थ—कफसंबन्धी अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ ये रोग जिस मनुष्यके होवें उसके मस्तकमें तेल मलकर स्निग्ध करे अर्थात् मस्तकके पसीने निकाले । फिर मस्तकके शोधन होनेके वास्ते तीक्ष्ण औषधकी नाकमें नस्य देवे ॥

अधिमन्थरोगपर दूसरा उपचार।

अधिमन्थेषुसर्वेषुललाटेवेधयेच्छिराम् ॥ २३ ॥
अशांतेसर्वथामन्थेभ्रुवोस्तुपरिदाहयेत् ॥

अर्थ—संपूर्ण अधिमन्थोंमें ललाटस्थ शिरा अर्थात् मस्तककी फस्त खोलके रुधिर निकाले तो सर्व प्रकारके अधिमन्थ शान्त होवें। यदि इस प्रकार करनेपर भी रोगशांति न होवे तो भ्रुकुटीमें दाग देवे ॥

अभिष्यन्दमें क्रिया।

अभिष्यन्देषुसर्वेषुबध्नीयात्पिण्डकांबुधः ॥ २४ ॥
वाताभिष्यन्दशांत्यर्थंस्निग्धोष्णांपिडिकाभवेत् ॥

अर्थ—संपूर्ण अभिष्यन्द रोगोंमें नेत्रोंपर जो औषध कही है उसकी टिकिया करके बाँधे और वाताभिष्यन्द शमन होनेको स्निग्ध कहिये चिकनी और गरम ऐसी टिकिया बाँधे ॥

वाताभिष्यन्दपर तथा पित्ताभिष्यन्दपर पिंडी।

एरंडपत्रमूलत्वङ्निर्मितावातनाशिनी ॥ २५ ॥
पित्ताभिष्यन्दनाशायधात्रीपिंडीसुखावहा ॥

अर्थ—अण्डके पत्ते जड आर छाल इन सबको पीसके टिकिया बनावे इस टिकियाको वाताभिष्यन्द नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे। तथा पित्ताभिष्यंद दूर करनेको आँवलोंको पीस टिकिया बनायके नेत्रोंपर बाँधे ॥

पित्ताभिष्यन्दपर दूसरी पिंडी।

महानिम्बफलोद्भूतापिंडीपित्तविनाशिनी ॥ २६ ॥

अर्थ—बकायनके फलोंको पीस टिकिया बनाय पित्ताभिष्यन्द नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे ॥

कफाभिष्यन्दपर पिंडी।

शिग्रुपत्रकृतापिंडीश्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी ॥

अर्थ—सँहजनेके पत्तोंको पीस टिकिया बनाय कफाभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे ॥

कफपित्ताभिष्यन्दपर पिंडी।

निम्बपत्रकृतापिंडीश्लेष्मपित्तहराभवेत् ॥ २७ ॥
त्रिफलापिंडिकाप्रोक्तानाशनेश्लेष्मपित्तयोः ॥

अर्थ—कफपित्ताभिष्यंद दूर करनेको नीमके पत्ते पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर बाँधे अथवा त्रिफलाको पीस टिकिया बनायके नेत्रोंपर बाँधे तो कफपित्ताभिष्यंद रोग दूर हो ॥

रक्ताभिष्यन्दपर पिंडी ।

पिष्ट्वाकांजिकतोयेनघृतभृष्टाचपिंडिका ॥ २८ ॥
लोध्रस्यहरतिक्षिप्रमभिष्यन्दमसृग्दरम् ॥

अर्थ—लोधको काँजीमें पीस घीमें भूनके टिकिया बनावे । इसको नेत्रोंपर बाँधे तो रक्ताभिष्यंद नेत्ररोग दूर हो ॥

सूजन खुजली इत्यादिकोंपर पिंडी ।

शुंठीनिम्बदलैःपिंडीसुखोष्णास्वल्पसैन्धवा ॥ २९ ॥
धार्याचक्षुषिसंयोगाच्छोथकंडूव्यथापहा ॥

अर्थ—सोंठ और नीमके पत्ते इनको एकत्र पीस उसमें थोडासा सैंधानमक डालके टिकिया बनावे । इसको सूजन और खुजली दूर होनेके वास्ते कुछ गरम करके नेत्रोंपर बाँधे ॥

बिडालकके लक्षण ।

बिडालकोबहिर्लेपोनेत्रपक्ष्मविवर्जितः ॥ ३० ॥
तस्यमात्रापरिज्ञेयामुखलेपविधानवत् ॥

अर्थ-नेत्रोंको छोड पलकोंके बाहरके अंगमें नेत्रोंके चारों तरफ लेप करनेको बिडालक कहते हैं । इसके लेपकी मात्रा मुखलेपका विधान कहा है उसी प्रकार जानना ॥

सर्वनेत्ररोगोंपर लेप ।

यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीताक्ष्यैःसमांशकैः ॥ ३१ ॥
जलपिष्टैर्बहिर्लेपःसर्वनेत्रामयापहः ॥

अर्थ—१ मुलहटी, २ गेरू, ३ सैंधानमक, ४ दारुहल्दी, ५ खपरिया इन सबको समान भाग ले पानीमें पीस नेत्रोंके बाहरके भागमें चारों तरफ लेप करे तो सर्व अभिष्यन्द रोग दूर हों ॥

सर्वनेत्ररोगपर दूसरा लेप ।

रसांजनेनवालेपः पथ्याविश्वदलैरपि ॥ ३२ ॥
कुमारिकाग्निपत्रैर्वादाडिमीपल्लवैरपि ॥
वचाहरिद्राविश्वैर्वातथानागरगैरिकैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—रसोतको जलमें पीस लेप करे अथवा हरड, सोंठ और पत्रज ये तीन औषध जलमें पीसके लेप करे । अथवा घीगुवार और चीतेके पत्ते दो औषध जलम पीसके लेप करे । अथवा अनारकी पत्तियोंको पीसके लेप करे । अथवा वच हल्दी और सोंठ ये तीन औषध जलमें पीसके

लेप करे । उसी प्रकार सोंठ और गेरू ये दो औषध जलसे पीसके लेप करे । ये छः प्रकारके लेप नेत्रके बाहरके भागमें चारों तरफ करनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होवें ॥

सर्वनेत्ररोगोंपर तीसरा लेप ।

दग्ध्वाग्नौसैंधवंलोध्रंमधूच्छिष्टयुतेघृते ॥
पिष्टमंजनलेपाभ्यांसद्योनेत्ररुजापहम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—सैंधानिमक और लोध इन दोनों औषधोंको अग्निमें जलायके मोम और घीमें सान लेवे फिर खूब बारीक करके नेत्रोंमें अञ्जन करे और बाहरके भागमें इन औषधोंका लेप करे तो नेत्रसंबन्धी पीडा तत्काल दूर होवे ॥

चौथा लेप ।

लोहस्यपात्रेसंघृष्टोरसोनिंबुफलोद्भवः ॥
किञ्चिद्घनोबहिर्लेपान्नेत्रबाधांव्यपोहति ॥ ३५ ॥

अर्थ—लोहेके पात्रमें नींबूके रसको घोटे । जब कुछ गाढा होजावे तब नेत्रोंमें बाहरके भागमें लेप करे तो नेत्रसंबन्धी पीडा दूर होवे ॥

अर्मरोगपर लेप ।

संचूर्ण्यमरिचंकेशराजस्वरसमर्दनात् ॥
लेपनादर्मणांनाशंकरोत्येषप्रयोगराट् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कालीमिरचोंको भांगरेके रसमें पीसके नेत्रोंपर लेप करे तो शुक्लार्म तथा अधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगमें जो अर्मरोग है वह दूर होवे ॥

अञ्जननामिका फुन्सीपर लेप ।

स्विन्नांभित्वाविनिष्पीड्यभिन्नामञ्जननामिकाम् ॥
शिलैलानतसिन्धूत्थैःसक्षौद्रैःप्रतिसारयेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—नेत्रके कोयोंमें अंजननामिका फुंसी होती है उसको स्वेदयुक्त करके अर्थात् बफारेसे पसीने निकालके फोड डाले और चारों तरफसे दाबके मलवा निकाल डाले । फिर मनशिल, इलायची, तगर और सैंधानमक इन चार पदार्थोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाय उस फुंसीमें प्रतिसारण करे अर्थात् उस औषधको उस फुंसीके ऊपर चुपडे तो अंजननामिका फुंसी (गुहेरी) दूर होवे ॥

नेत्ररोगपर तर्पण ।

अथतर्पणकंवच्मिनेत्रतृप्तिकरंपरम् ॥ यद्रूक्षंपरिशुष्कंचनेत्रं
कुटिलमाविलम् ॥ ३८ ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मी-

ळनसंयुतम् ॥ तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥
॥ ३९ ॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यांयुक्तंवातविपर्ययैः ॥ तन्नेत्रं
तर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ॥ ४० ॥

अर्थ—नेत्रोंको तृप्त करता ऐसा तर्पण कहता हूं । जिन नेत्रोंमें रूक्षता शुष्कता वा कोपन तथा गदलाहट होवे ऐसे प्रकारके नेत्ररोग तथा जिसमें पलकोंके बाळ जाते रहे हों, शिरोत्पातक, कृच्छ्रोन्मीलन, तिमिर, अर्जुन, शुक्र कहिये फूला, अभिष्यंद, अधिमंथ, शुक्राक्षिपाक, सूजन, वातविपर्यय इतने रोगों करके व्याप्त जो नेत्र उनमें वैद्य तर्पण करे अर्थात् नेत्रोंकी तृप्तिकारी औषध उनमें डाले ॥

तर्पण अयोग्य प्राणी ।

दुर्दिनात्युष्णशीतेषुचिन्तायासभ्रमेषुच ॥
अशांतोपद्रवेचाक्षिणतर्पणंनप्रशस्यते ॥ ४१ ॥

अर्थ—दुर्दिन काहिये मेघाच्छादित दिवस अत्यंत गरमी और शीतकाल होनेसे शरीरमें चिंता परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसे तथा नेत्रसंवंधी शूलादिक उपद्रव शान्त न होनेसे यह मात्राकी योजना न करे ॥

तर्पणका विधान ।

वातातपरजोहीनेदेशेचोत्तानशायिनः ॥ आधारामाषचूर्णेन
क्लिन्नेनपरिमण्डलौ ॥ ४२ ॥ समौदृढावसंबाधौकर्तव्यौनेत्रको-
शयोः ॥ पूरयेद्घृतमण्डेनविलीनेनसुखोदकैः ॥ ४३ ॥ अथवा
शतधौतेनसर्पिषाक्षीरजेनवा ॥ निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणियावत्स्यु-
स्तावदेवहि ॥ ४४ ॥ पूरयेन्मीलितेनेत्रेततउन्मीलयेच्छनैः ॥

अर्थ—पवन गरमी तथा धूल ये जिस जगह न होवे उस स्थानमें मनुष्यको चित्त लटायक नेत्रकोशमें अर्थात् नेत्रके चारों ओर भीगेहुए उडदोंके चूनका दृढ तथा उत्तम गोल और समान मंडल बनावे । फिर नेत्रोंको बन्द करके उस मंडलमें पतला घी भर देवे । अथवा मंड कहिये मांड अथवा सुखोष्णजल अथवा सौ वार धुलाहुआ घी अथवा दूध ये पदार्थ जहांतक नेत्रोंके पलक न डूबे तहांतक भरे अर्थात् तबतक पतली २ धार डाले फिर धीरे २ नेत्रोंको खोले ॥

तर्पणमात्राका प्रमाण ।

धारयेद्वर्त्मरोगेषुवाङ्मात्राणांशतंबुधः ॥ ४५ ॥ स्वच्छेकफे
संधिरोगेमात्रापंचशतंहितम् ॥ शुक्लेचषट्शतंकृष्णरोगेसप्तश-
तंमतम् ॥ ४६ ॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथेसहस्रकम् ॥ सह-
स्रंवातरोगेषुधार्यमेवंहितर्पणम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—नेत्रसंबंधी पलकोंके रोग उनमें सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत तर्पणरूप औषध नेत्रोंमें धारण करे, केवल कफरोग होय तो नेत्रोंके संधिगत रोग होनेसे पांच सौ मात्रा धारण करे, नेत्रोंके सफेद भागमें रोग होनेसे छः सौ मात्रा, काली पुतलीमें रोग होनेसे सात सौ मात्रा, दृष्टिरोग होनेसे आठ सौ, अधिमंथरोग होनेसे एक हजार मात्रा तथा वातरोग होनेसे एक हजार मात्रा तर्पणरूप औषधको धारण करे इस प्रकार मात्राका प्रमाण जानना ॥

तर्पणद्वारा कफकी आधिक्यता होनेमें उपाय ।

स्विन्नेनयवपिष्टेनस्नेहवीर्येरितंततः ॥
यथास्वंधूमपानेनकफमस्यविशोधयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—तर्पणके स्नेह वीर्य करके उत्पन्न हुए कफको जौ भिगोकर पीस लेवे इसको हुक्केमें धरके पीवे । इस प्रकार शोधन करना चाहिय ॥

तर्पणप्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा ।

एकाहंवात्र्यहंवापिपंचाहंचेष्यतेपरम् ॥

अर्थ—नेत्रोंमें तर्पणप्रयोग करना होय तो एक दिन अथवा तीन दिन अथवा पांच दिन पर्यंत करे । यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना ॥

तर्पणकी तृप्तिके लक्षण ।

तर्पणेतृप्तिलिंगानिनेत्रस्येमानिभावयेत् ॥ ४९ ॥
सुखस्वप्नावबोधत्वंवैशद्यंवर्णपाटवम् ॥
निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्चक्रियालाघवमेवच ॥ ५० ॥

अर्थ—सुखपूर्वक निद्राका आना और यथेष्ट जागना, नेत्रोंकी कांति उत्तम होय, दृष्टि (नजर) स्वच्छ (साफ) हो, रोगोंका नाश और क्रियालाघव कहिये नेत्रोंका खुलना मूंदनारूप क्रियाका हलकापन होय । ये लक्षण तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे होते हैं ॥

तर्पण अधिक होनेके लक्षण ।

अथसाश्रुगुरुस्निग्धंनेत्रंस्यादातितर्पितम् ॥

अर्थ—तर्पण करके नेत्र अत्यंत तृप्त होनेसे नेत्रोंसे जल आवे, नेत्रोंका भारीपन तथा उनसे चिकनाहट होती है ॥

हीनतर्पणके लक्षण ।

रूक्षमस्राविलंरुग्णंनेत्रंस्याद्धीनतर्पितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे तेजरहित हों लाल रंगके हों दूखें तथा रोगों करके व्याप्त हों ॥

तर्पण करके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेसे यत्न ।

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥

अर्थ—तर्पण करके अतिस्निग्ध नेत्र उनको रूक्ष उपायों करके अच्छा करे । हीनस्निग्ध नेत्रोंकी स्निग्धोपचारों करके चिकित्सा करे अर्थात् रूक्षोंको चिकने पदार्थों करके और चिकनोंको रूक्ष पदार्थ करके अच्छा करना चाहिये ॥

पुटपाक ।

**अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिपुटपाकस्यसाधनम् ॥ ६२ ॥ द्वौबिल्वमा-
त्रौमांसस्यपिंडौस्निग्धौसुपेषितौ ॥ द्रव्याणांबिल्वमात्रंतुद्रवाणां
कुडवोमतः ॥ ६३ ॥ तदेकस्थंसमालोड्यपत्रैःसुपरिवेष्टितम् ॥
पुटपाकेनतत्पक्त्वागृह्णीयात्तद्रसंबुधः ॥ ६४ ॥ तर्पणोक्तविधानेन
यथावदुपचारयेत् ॥**

अर्थ—इसके उपरांत पुटपाक साधनकी क्रिया कहते हैं । हरिणादिकोंका मांस दो बिल्व लेकर उसको घृतादिक स्नेहपदार्थके साथ मिलायके बारीक पीस सूखी औषध जो कही है वह एक बिल्व ले । तथा दूध जल इत्यादिक द्रवपदार्थ एक कुडव ले । ये सब वस्तु उस मांसमें मिलायके उस मांसका गोला बनावे । फिर जामुन अथवा आम इत्यादिकोंके पत्तोंको उस मांसके गोलेके चारों तरफ लपेटके उसपर मिट्टीका लेप करे । पश्चात् पुटपाककी विधिसे उस गोलेको अग्निमें सिद्ध करे । फिर उसकी मिट्टी और पत्तोंको दूर करके उस गोलेको निचोडके रस निकास लेवे और तर्पणकी विधिके अनुसार इस रसको नेत्रोंमें डाले । (बिल्व नाम पलका है) मध्यखंडमें स्वरसाध्यायमें पुटपाककी विधि कही है ॥

पुटपाकसम्बन्धी रस नेत्रोंमें डालनेका विधान ।

**दृष्टिमध्येनिषेच्यःस्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ ६५ ॥
स्नेहनोलेखनश्चैवरोपणश्चेतिसत्रिधा ॥**

अर्थ—वह पुटपाकसंबंधी रस स्नेहन लेखन और रोपण इन भेदों करके तीन प्रकारका है। उसे मनुष्यको चित्त लेटायके नेत्रोंमें दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डाले ॥

स्नेहादि भेदकरके पुटपाककी योजना।

हितःस्निग्धोऽतिरूक्षस्यस्निग्धस्यापिहिलेखनः ॥ ५६ ॥
दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥

अर्थ—रूक्ष नेत्रोंमें स्निग्ध पुटपाक और स्निग्ध नेत्रोंमें लेखन पुटपाक योजना करे तथा दृष्टिमें बल आनेके लिये इतर कहिये रोपण पुटपाककी योजना करे। वह पुटपाक नेत्रसंबंधी दुष्ट हुए पित्त रुधिर व्रण और वायु इनको दूर करे। इनकी पृथक् २ योजना आगेके श्लोकमें कही है॥

स्नेहनपुटपाक।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदःस्वाद्वौषधैःकृतः ॥ ५७ ॥
स्नेहनः पुटपाकस्तुधार्योद्वेवाक्छतेदृशोः ॥

अर्थ—घी हरिणादिकोंका मांस वसा मज्जा और मेदा ये सब घीमें मिलायके पीसे। तथा स्वादु औषध कहिये काकोल्यादि गणकी औषधोंका चूर्ण करके उस मांसादिकमें मिलायके गोला करे। उस गोलेके चारों तरफ जामुन आँब इत्यादिकोंके पत्ते लपेट उसपर मिट्टी लगायके पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे। पश्चात् उस गोलेको बाहर निकाल मिट्टी और पत्तोंको दूर करके रस निचोड लेवे। इस रसको नेत्रोंमें डाले और जबतक दो सौ मात्रा होवें तबतक इसको धारण करें। इसको स्नेहनपुट पाक कहते हैं॥

लेखनपुटपाक।

जांगलानांयकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥ ५८ ॥ कृष्णलोहरजस्ता-
म्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ॥ समुद्रफेनकासीसस्रोतोजलधिमस्तुभिः
॥ ५९ ॥ लेखनोवाक्छतंधार्यस्तस्यतावद्विधारणम् ॥

अर्थ—हरिणादिकोंके कलेजेका मांस लोहचूर्ण तांबेका चूर्ण शंख मूँगा सैंधानमक समुद्रफेन हीराकसीस सुरमा तथा बकरीके दहीका तोड ये नौ लेखन द्रव्य जानना। इनका चूर्ण करके उसी मांसमें मिलाय दे। तथा उसमें दहीका तोड (दहीका जल) मिलायके गोला करे। और इसको पुटपाककी विधि (जो पूर्व कह आये हैं उसी प्रकार) से सिद्ध करे। पश्चात् उसको बाहर निकाल निचोडके रस निकाल लेवे। इसको नेत्रोंमें डालके सौ वाङ्मात्रा होने पर्यंत धारण करे। इसको लेखन पुटपाक कहते हैं॥

---

[१] तर्पण और पुटपाक दोनोंमें नेत्रोंके चारों तरफ उडदका थामलामाथा बनाय करके रस डालते हैं परन्तु तर्पणरूप औषध नेत्र मूँदके ऊपर गेरते हैं और पुटपाकसंबंधी रस नेत्रोंको खोलकर नेत्रोंके बीचोबीचमें डाला जाता है केवल इतनाही भेद है।

रोपण पुटपाक ।

स्तन्यजांगलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः ॥ ६० ॥
लेखनात्त्रिगुणोधार्यःपुटपाकस्तुरोपणः ॥
वितरेत्तर्पणोक्तांतुक्रियांव्यापत्तिदर्शने ॥ ६१ ॥

अर्थ—स्त्रीके स्तनका दूध हरिणादिकोंका मांस सहत घी और कुटकी इन संपूर्ण औषधोंका पूर्वोक्त हरिणादिकके मांसमें मिलायके गोला बनावे । तथा इसको पुटपाककी विधिसे परिपक्क करके बाहर निकाल पत्ते मिट्टी दूर करके रस निचोड लेवे इसको नेत्रोंमें डालके तीन सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत धारण करे । इसको रोपण पुटपाक कहते हैं । यदि पुटपाकके अधिक अथवा न्यून होनेसे नेत्रोंमें भारीपना तथा निस्तेजता इत्यादिक उपद्रव होवें तो तर्पणमें जैसी क्रिया लिखी है उसी प्रकार इस पुटपाकके हीनाधिक्य होनेमें करे ॥

संपक्कदोष होनेसे अञ्जन तथा साधारण अञ्जनका विधान ।

अथसंपक्कदोषस्यप्राप्तमंजनमाचरेत् ॥ हेमंतेशिशिरेचैवमध्या-
ह्नेऽजनमिष्यते ॥ ६२॥ पूर्वाह्णेचापराह्णेचग्रीष्मेशरदिचेष्यते ॥
वर्षासुनाञ्जनात्युष्णेवसन्तेचसदैवहि ॥ ६३ ॥

अर्थ—दोषोंका परिपाक होनेपर अर्थात् पांच दिनके पश्चात् अंजनादिक करे । तथा अंजनकी साधारण विधि कहते हैं कि हेमन्तऋतु (मार्गशिर और पौष) तथा शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन) इनमें मध्याह्नकालमें (दो प्रहर दिन चढनेपर) नेत्रोंमें अंजन करे । ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ आषाढ) और शरद्ऋतु (आश्विन कार्तिक) इनमें दो प्रहर दिन चढनेके पूर्व और तीसरे प्रहरमें अंजन करे । वर्षाऋतु (श्रावण भाद्रपद) तथा अत्यंत गरमीमें अंजन न करे । एवं वसंत ऋतुमें सर्वकाल अंजन आंजना चाहिये ॥

अञ्जनके भेद ।

लेखनंरोपणंचैवतथातत्स्नेहनांजनम् ॥ लेखनंक्षारतीक्ष्णाम्लरसै-
रञ्जनमिष्यते ॥ ६४ ॥ कषायतिक्तरसयुक्सस्नेहंरोपणंमतम् ॥
मधुरस्नेहसम्पन्नमञ्जनंचप्रसादनम् ॥ ६५ ॥

अर्थ--लेखन रोपण और स्नेहन इन भेदों करके अंजन तीन प्रकारका है उनमें खारी तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजनमें हैं वह लेखन अंजन कहाता है । कषाय कहिये कषैला, तिक्त

---

१ जिस प्राणीके नेत्र जिस दिन दूखनेको आवें उस दिनसे लेकर पांच दिनके पश्चात् दोष परिपक्क होते हैं ।

कहिये कडुआ इन दो रसों करके युक्त जो अंजन स्नेहयुक्त हो उसे रोपणांजन जानना । मधुररस करके युक्त और स्नेहयुक्त जो होय उस अंजनको प्रसादन कहिये स्नेहनांजन जानना ॥

गुटिकादिभेदकरके अंजनके तीन भेद ।

गुटिकारसचूर्णानित्रिविधान्यंजनानिच ॥
कुर्याच्छलाकयांगुल्याहीनानिचयथोत्तरम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—गुटिका कहिये गोली तथा रसरूप (द्रवपदार्थ युक्त) अंजन एवं चूर्ण इस प्रकार अञ्जन तीन प्रकारके जानने । गुटिकाकी अपेक्षा (बनिस्बत्) रस गुणोंमें न्यून है । तथा रसांजनकी अपेक्षा चूर्णांजन गुणोंमें न्यून है इस प्रकार उत्तरोत्तर गुणोंमें हलके हैं । तथा उन अञ्जनाको शलाका कहिये सलाई करके उँगलियोंसे नेत्रोंमें लगावे ॥

अंजनविषयमें अयोग्य ।

श्रांतेप्ररुदितेभीतेपीतमद्येनवज्वरे ॥
अजीर्णेवेगघातेचनांजनंसंप्रचक्षते ॥ ६७ ॥

अर्थ—श्रमसे थकाहुआ, रुदन करनेवाला, डरपोक, मद्यपान करनेवाला, नवीन ज्वरवाला और अजीर्ण होनेवाला, मूत्रादिकोंका अवरोध करनेवाला ऐसे मनुष्यको अञ्जन नहीं करना चाहिये ॥

अञ्जनवर्तीका प्रमाण ।

हरेणुमात्रांकुर्वीतवर्तितीक्ष्णांजनेभिषक् ॥
प्रमाणंमध्यमेऽध्यर्धंद्विगुणंतुमृदौभवेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—तीक्ष्ण अञ्जन (जो नेत्रोंको अत्यंत पीडा करे) की हरेणु (मटर) के समान लम्बी बत्ती बनावे । उसी प्रकार मध्यम अञ्जनमें हरेणुके डेढ बीजके बराबर लंबी गोली बनावे और मृदु अञ्जनमें मटरके दो बीजोंकी बराबर गोली बत्तीके आकार करे ॥

अञ्जनमें रसका प्रमाण ।

रसक्रियातूत्तमास्यात्रिविडङ्गमिताहिता ॥
मध्यमाद्विविडंगास्याद्धीनात्वेकविडंगका ॥ ६९ ॥

अर्थ—रसक्रिया कहिये द्रवरूप अञ्जनकी मात्रा तीन वायविडंगके समान नेत्रोंमें डालनेसे उत्तम रसक्रिया जाननी । दो वायविडंगके समान मात्रा नेत्रोंमें डालनेको मध्यम रसक्रिया जाननी, एक वायविडंगके प्रमाणकी मात्रा हीनरसक्रिया अर्थात् कनिष्ठ जाननी ॥

विरेचनअञ्जनमें चूर्णका प्रमाण ।

वैरेचनिकचूर्णंतुद्विशलाकंविधीयते ॥
मृदौतुत्रिशलाकंस्याच्चतस्रःस्नैहिकेऽञ्जने ॥ ७० ॥

अर्थ–वैरेचनिकचूर्ण (जिस चूर्णसे नेत्रोंसे अधिक जल गिरे) उसको द्विशलाक अर्थात् सलाईको दो वार चूर्णमें सानके दो वार नेत्रोंमें फेरके निकास लेवे । मृदु अञ्जनमें औषधोंके चूर्णमें तीन वार सलाईको डुबोयके तीन वार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय । घी आदि जो चिकने पदार्थ हैं उनसे मिले हुए अञ्जनोंमें सलाईको चार वार डुबोयके सलाईको चार वार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय ॥

सलाईका प्रमाण और वह किसकी बनावे ।

मुखयोःकुण्ठिताश्लक्ष्णाशलाकाष्टांगुलोन्मिता ॥
अश्मजाधातुजावास्यात्कलायपरिमण्डला ॥ ७१ ॥

अर्थ–पाषाण (पत्थर) की अथवा सुवर्णादि धातुओंकी ऐसी सलाई आठ अंगुलकी करके उसका मुख गोल करे परन्तु वारीक न करे । तथा वह मटरके दानेके समान सुन्दर गोल होनी चाहिये ॥

लेखनादिकोंमें सलाईका प्रमाण ।

ताम्रलोहाश्मसंजाताशलाकालेखनेमता ॥
सुवर्णरजतोद्भूताशलाकास्नेहनेमता ॥ ७२ ॥
अंगुलीचमृदुत्वेनकथितारोपणेबुधैः ॥

अर्थ–लेखन अञ्जनमें तांबेकी अथवा लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाईकी योजना करे । स्नेहन अञ्जनमें सोनेकी अथवा रूपे (चांदी) की सलाईकी योजना करे तथा उँगलीमें नम्रता है इसी वास्ते रोपण अंजनमें उँगलीकी योजना करे अर्थात् उँगलीहीसे लगावे ॥

कौनसे समय तथा कौनसे भागमें अञ्जन करे ।

सायंप्रातश्चांजनंस्यात्तत्सदानैवकारयेत् ॥ ७३ ॥
नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायांसंप्रशस्यते ॥
कृष्णभागादधःकुर्यादपांगंयावदंजनम् ॥ ७४ ॥

अर्थ–सायंकाल और प्रातःकाल अञ्जन करे । सर्वकाल अञ्जन नहीं करे, अत्यंत शीतकाल, अत्यंत उष्णकाल, वायु (अत्यंत हवा) चलनेके समय और जिस समय बद्दल होवे उस समय अञ्जन न करे । नेत्रके काले भागके नीचेके पलकमें अञ्जन करे ॥

चन्द्रोदयावर्ती।

शंखनाभिर्विभीतस्यमज्जापथ्यामनःशिला ॥ पिप्पलीमरिचं
कुष्ठंवचाचेतिसमांशकम् ॥७५॥छागीक्षीरेणसंपिष्यवर्तिकुर्या-
द्यवोन्मिताम् ॥ हरेणुमात्रांसंघृष्यजलैःकुर्यादथांजनम् ॥७६॥
तिमिरंमांसवृद्धिंचकाचंपटलमर्बुदम् ॥ रात्र्यंधंवार्षिकंपुष्पंव-
र्तिश्चन्द्रोदयाजयेत् ॥ ७७ ॥

अर्थ—१ शंखकी नाभी, २ बहेडेके फलके भीतरकी गिरी, ३ हरड, ४ मनशिल, ५ पीपल, ६ कालीमिरच, ७ कूठ और ८ वच ये आठ औषधि समान भाग ले बकरीके दूधमें बारीक पीस जौके समान गोली बत्तीके सदृश लंबी बनावे। इसको चन्द्रोदयावर्त्ती कहते हैं। पश्चात् एक गोलीको रेणुकाके बीजके समान जलमें घिसके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, काचाबिंदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतौंध तथा एक वर्षका फूला ये सब रोग दूर हों ॥

फूलआदिपर वत्ती।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशःपरिभाविता ॥
करंजबीजवर्तिस्तुशुक्रादींश्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ—कंजेके बीजोंका चूर्ण करके पलासके फूलोंके रसकी अनेक भावना अर्थात् पुट देकर बहुत बारीक खरल कर बत्तीके समान लंबी गोली बनावे। फिर इस गोलीको जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो शुक्र कहिये फूला आदेशब्द करके मांसवृद्धि जड इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर होवें ॥

दूसरा प्रकार।

समुद्रफेनसिन्धूत्थशंखदक्षांडवल्कलैः ॥
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिःशुक्रादींश्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—१ समुद्रफेन, २ सैंधानमक, ३ शंख, ४ मुरगेके अण्डेके ऊपरका वक्कल, ५ सँहजनेके बीज ये पांच औषध समान भाग ले जलसे पीस बत्तीके समान गोली करके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो फूला छर इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर हों ॥

लेखनीदन्तवर्त्ती।

दन्तैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ॥
शंखमुक्ताम्भोधिफेनयुतैःसर्वैर्विचूर्णितैः ॥ ८० ॥
दन्तवर्तिःकृताश्लक्ष्णाशुक्राणांनाशिनीपरा ॥

अर्थ–हाथी सूअर ऊँट बैल घोडा बकरा और गधा इनके दांत तथा शंख मोती और समुद्रफेन इन सबका चूर्ण करके पानीमें पीसके बत्तीके सदृश गोली बनावे । इस गोलीको दंतवर्त्ती कहते हैं । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो फूला दूर होय ॥

तंद्रा दूर होनेको लेखनीवर्त्ति ।

नीलोत्पलंशिग्रुबीजंनागकेशरकंतथा ॥ ८१ ॥
एतत्कल्कैःकृतावर्तिरातितन्द्रांविनाशयेत् ॥

अर्थ–नीला कमल सहँजनेके बीज तथा नागकेशर ये तीन पदार्थ समान भाग ले जलमें खरल करके लम्बी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो तन्द्रा दूर हो ॥

रोपिणीकुसुमिकावर्त्ती ।

तिलपुष्पाण्यशीतिःस्युःषष्टिसंख्याःकणाकणाः ॥ ८२ ॥ जाती-
सुमानिपंचाशन्मरिचानिचषोडश ॥ सूक्ष्मंपिष्ट्वाजलेवर्तिः
कृता कुसुमिकाभिधा ॥ ८३ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राणांनाशिनी
मांसवृद्धिहृत् ॥ एतस्याश्चांजनमात्राप्रोक्तासार्धहरेणुका ॥ ८४ ॥

अर्थ–तिलके फूल ८०, पीपलके भीतरके दाने ६०, चमेलीके फूल ५०, तथा कालीमिरच १६ इन सबको एकत्र कर जलसे पीसके गोली बनावे । इसको कुसुमिकावर्त्ती कहते हैं । यह गोली हरेणुकाके डेढ १॥ बीजके बराबर जलमें पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो तिमिर अर्जुन फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूर होवें ॥

नैत्रेन मानम। कृष्णतिलपुष्प २" तोले
फूल चमेली २" तोले
मरिच दक्षणी ८ मासे
पीपल बडी के बीज ८ मासे
नहैन वर्ती क्रियेया ॥

रतोंध दूर करनेकी बत्ती ।

रसांजनंहरिद्रेद्वेमालतीनिंबपल्लवाः ॥
गोशकृद्रससंयुक्तावर्तिर्नक्तांध्यनाशिनी ॥ ८५ ॥

अर्थ–१ रसोत, २ हल्दी, ३ दारुहल्दी, ४ चमेलीके पत्ते, ५ नीमके पत्ते इन पांच औषधोंको समान भाग ले गौके गोबरके रसमें बारीक पीसके गोली बनावे । इसको जलसे घिसके लगावे तो रतोंध दूर होय ॥

नेत्रस्रावपर स्नेहनीवर्त्ती ।

धात्र्यक्षपथ्याबीजानिह्येकद्वित्रिगुणानिच ॥ पिष्ट्वावर्तिंजलैः कुर्याद-
जनंद्विहरेणुकम् ॥ ८६ ॥ नेत्रस्रावंहरत्याशुवातरक्तरुजंतथा ॥

अर्थ–आँवलेके भीतरका बीज १ भाग, बहेडेके फलका बीज २ भाग, हरडके भीतरका बीज गोली ३ भाग, इन सब बीजोंको एकत्र करके जलमें बारीक पीस लंबी गोली करे । पश्चात् उस गोलीमेंसे दो हरेणुकाके बीज समान जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो नेत्रोंसे जलका बहना तत्काल दूर हो तथा वातरक्तसंबन्धी पीडा दूर होय ॥

रसक्रिया।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थासिताशंखमनःशिलाः ॥८७॥ गैरिकोदधिफेनौचमरिचंचेतिचूर्णयेत् ॥ संयोज्यमधुनाकुर्यादंजनार्थंरसक्रियाम् ॥ ८८ ॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरांपराम् ॥

अर्थ—१ लीलाथोथा, २ स्वर्णमाक्षिक, ३ सधानमक, ४ मिश्री, ५ शंख, ६ मनशिल, ७ गेरू, ८ समुद्रफेन और ९ काली मिरच ये नौ औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर सहतमें मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो पलकोंके रोग, अर्मरोग, तिमिर, काचबिंदु और फूला ये रोग दूर होंय ॥

फूला दूर करनेकी रसक्रिया।

वटक्षीरेणसंयुक्तोसुरुयःकर्पूरजःकणः ॥ ८९ ॥
क्षिप्रमंजनतोहंतिकुसुमंचद्विमासिकम् ॥

अर्थ—वडके दूधमें कपूरको घिस नेत्रोंमें अंजन करनेसे दो महीनोंका फूला शीघ्र दूर होवे ॥

अतिनिद्रानाशक लेखनी रसक्रिया।

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमंजयेत् ॥ ९० ॥
अतिनिद्राशमंयातितमः सूर्योदयेयथा ॥

अर्थ—सहत और घोडेकी लार इन दोनोंमें काली मिरच पीसके जिसको अत्यंत निद्रा आती हो उसके नेत्रोंमें लगावे तो जैसे सूर्यके उदय होनेस अंधकार नष्ट होता है उसी प्रकार इस गोलीके अंजन करनेसे निद्रा तत्काल दूर होवे ॥

तंद्रानाशक रसक्रिया।

जातीपुष्पंप्रवालंचमरिचंकटुकीवचा ॥ ९१ ॥
सैंधवंबस्तमूत्रेणपिष्टंतंद्राघ्नमंजनम् ॥

अर्थ—चमेलीके फूल, चमेलीके अंकुर, काली मिरच, कुटकी, वच और सैंधानमक ये औषध समान भाग ले बकरेके मूत्रमें सबको बारीक पीस नेत्रोंमें अंजन करे तो तंद्रा दूर होय ॥

संनिपातपर रसक्रिया।

शिरीषबीजंगोमूत्रेकृष्णामरिचसैंधवैः ॥ ९२ ॥
अंजनंस्यात्प्रबोधायसरसोनशिलावचैः ॥

अर्थ—१ सिरसके बीज, २ पीपल, ३ काली मिरच, ४ सैंधानमक, ५ लहसन, ६ मनशिल

और ७ वच ये सात औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके जो मनुष्य संनिपातमें बेहोश पडा हो उसके नेत्रोंमें आज तो उसको तत्काल होश हो जावे ॥

दाहादिकोंपर रसक्रिया ।

दार्वीपटोलंमधुकंसनिंबंपद्मकोत्पलम् ॥ ९३ ॥ सपौंडरीकंचै-
तानिपचेत्तोयेचतुर्गुणे ॥ विपाच्यपादशेषंतुशृतंनीत्वापुनःपचेत्
॥ ९४ ॥ शीतेतस्मिन्मधुसितांदद्यात्पादांशकांनरः ॥
रसक्रियैषादाहाश्रुरक्तरोगरुजोहरेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ—१ दारुहल्दी, २ पटोलपत्र, ३ मुलहटी, ४ नीमकी छाल, ५ पद्माख, ६ कमल, ७ सफेद कमल ये सात पदार्थ समान भाग ले जौकूट कर उसमें सब औषधोंसे चौगुना जल डालके आटावे । जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारले । फिर उसको छानके फिर औटावे । जब गाढा होनेपर आवे तो उस अवलेहसे चौथाई सहत और मिश्री मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो दाह, स्राव, रुधिरके विकारसे नेत्रोंका लालरंग होना ये सर्व रोग दूर होवें ॥

नेत्रोंके पलकोंके बाल आनेको तथा खुजली आदिपर रोपणी रसक्रिया ।

रसांजनंसर्जरसोजातीपुष्पंमनःशिला ॥ समुद्रफेनोलवणंगैरिकं
मरिचानिच ॥ ९६ ॥ एतत्समांशंमधुनापिष्टाप्रक्लिन्नवर्त्मनि ॥
अंजनंक्लेदकंडूघ्नंपक्ष्मणांचप्ररोहणम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—१ रसोत, २ रार, ३ चमेलीके फूल, ४ मनशिल, ५ समुद्रफेन, ६ सैंधानमक, ७ गेरू और ८ काली मिरच इन आठ औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो पलकोंके रोगोंमें उत्क्लिष्ट वर्त्म रोग है वह तथा नेत्रोंका मैल युक्त होना एवं खुजली ये रोग दूर होवें तथा पलकोंके झडे हुए बाल फिर ऊग आवें ॥

तिमिरपर रसक्रिया ।

गुडूचीस्वरसःकर्षःक्षौद्रंस्यान्माषकोन्मितम् ॥ सैंधवंक्षौद्रतुल्यं
स्यात्सर्वमेकत्रमर्दयेत् ॥ ९८ ॥ अंजयेन्नयनंतेनपिल्लार्मंतिमिरंजयेत्
॥ काचंकंडूंलिंगनाशंशुक्लकृष्णगतान्गदान् ॥ ९९ ॥

अर्थ—गिलोयका स्वरस एक कर्ष निकालके उसमें सहत और सैंधानमक एक एक मासा मिलायके अच्छी रीतिसे खरल करे । फिर नेत्रोंमें अंजन करे तो पिल्लार्म, तिमिर, काचबिंदु, खुजली, लिंगनाश तथा नेत्रोंके सफेद भागमें और काले भागमें होनेवाले ये सब रोग दूर हों ॥

अंजनमें पुनर्नवाका योग।

दुग्धेनकंडूंक्षौद्रेणनेत्रस्रावंचसर्पिषा ॥
पुष्पंतैलेनतिमिरंकांजिकेननिशांधताम् ॥ १०० ॥
पुनर्नवाजयेदाशुभास्करस्तिमिरंयथा ॥

अर्थ–पुनर्नवा (साँठ) को दूधमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करनेसे नेत्रोंकी खुजली दूर होय। सहतमें घिसके लगावे तो नेत्रोंसे जलका बहना दूर हो। घीमें घिसके लगावे तो फूला दूर होवे। तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर रोग नष्ट होय। कांजीमें घिसके लगावे तो रतोंध दूर होय। इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे सूर्यनारायण अंधकारका तत्काल नाश करें उसी प्रकार पुनर्नवा अनुपानके भेद करके सर्व रोगोंको दूर करती है॥

नेत्रस्रावपर रोपणीरसक्रिया।

बब्बूलदलनिष्क्वाथोलेहीभूतस्तदंजनात् ॥ १०१ ॥
नेत्रस्रावंजयत्येषमधुयुक्तोनसंशयः ॥

अर्थ--बबूरके पत्तोंके काढेको गाढा होने पर्यन्त औटावे। फिर इसमें थोडासा सहत डालके नेत्रोंमें अंजन करे तो यह नेत्रोंसे जलके बहनेको निश्चय दूर करे॥

दूसरा प्रकार।

हिञ्जुलस्यफलंघृष्ट्वापानीयेनित्यमंजनम् ॥ १०२ ॥
चक्षुःस्रावोपशांत्यर्थंकार्यमेतन्महौषधम् ॥

अर्थ--हिञ्जुलके फलको पानीमें घिसके नित्य अंजन करे तो नेत्रोंसे जल गिरनेको दूर करे॥

नेत्रस्वच्छ होनेको स्नेहनीरसक्रिया।

कतकस्यफलंघृष्ट्वामधुनानेत्रमंजयेत् ॥ १०३ ॥
ईषत्कर्पूरसहितंस्मृतंनेत्रप्रसादनम् ॥

अर्थ–निर्मलीके फलको सहतमें घिसके उसमें थोडासा कपूर मिलायके नेत्र प्रसन्न होनेके वास्ते अंजन करे॥

शिरोत्पातरोगपर अंजन।

सर्पिःक्षौद्रंचांजनंस्याच्छिरोत्पातस्यशातने ॥ १०४ ॥

अर्थ--घी और सहत दोनोंको एकत्र कर नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्ररोगमें जो शिरोत्पात रोग है वह दूर होय॥

अंधापन दूर होनेकी रसक्रिया ।

कृष्णसर्पवसाशंखःकतकाफलमंजनम् ॥
रसक्रियेयमचिरादंधानांदर्शनप्रदा ॥ १०५ ॥

अर्थ–काले सर्प (काले सांप) की वसा कहिये मांसस्नेह शंख और निर्मलीके बीज इन तीनोंको एकत्र खरल कर नेत्रोंमें अंजन करे तो मनुष्यको बहुत जल्दी दीखने लगे ॥

लेखनचूर्णांजन ।

दक्षांडत्वक्छिलाकाचैः शंखचन्दनगैरिकैः ॥
द्रव्यैरंजनयोगोऽयंपुष्पार्मादिविलेखनः ॥ १०६ ॥

अर्थ–१ मुरगेके अंडेकी सफेदी, २ मनशिल, ३ सफेद कांच, ४ शंख, ५ सफेद चन्दन और ६ स्वर्णगैरिक अर्थात् नम्र जातका गेरू ये छः पदार्थ समान भाग ले बारीक पीसके चूर्ण करे। फिर इसको नेत्रोंमें अञ्जन करे तो फूला और मांसार्मादिक रोग दूर हों ॥

रतौंध दूर होनेका लेखनचूर्ण ।

कणाच्छागयकृन्मध्येपक्त्वातद्रसपेषिता ॥
अचिराद्धंतिनक्तांध्यंतद्वत्सक्षौद्रभूषणम् ॥ १०७ ॥

अर्थ–बकरेके कलेजेके मांसमें पीपल रखके अंगारोंपर पाक करे । पश्चात् उस मांसके रस तथा पीपल इन दोनोंको पीसके जिस प्राणीके रतौंध आती है उसके अञ्जन करे तो रतौंध जाता रहे ॥

खुजली आदिपर लेखनचूर्णाञ्जन ।

शाणार्धंमरिचंद्वौचपिप्पल्यर्णवफेनयोः ॥
शाणार्धंसैन्धवंशाणानवसौवीरकांजनम् ॥ १०८ ॥
पिष्टंसुसूक्ष्मंचित्रायांचूर्णांजनमिदंशुभम् ॥
कण्डूकाचकफार्तानांमलानांचविशोधनम् ॥ १०९ ॥

अर्थ–कालीमिरच अर्ध शाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोनों दो दो शाण ले सैंधानमक अर्ध शाण तथा सुरमा नौ शाण इन सब औषधोंको जिस दिन चित्रा नक्षत्र होय उस दिन अत्यंत बारीक पीस चूर्ण करे । फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अञ्जन करे तो खुजली तथा काचबिंदु ये दूर हों । कफ करके पीडित नेत्रोंका तथा मलोंका शोधन होय ॥

सर्वनेत्ररोगोंपर मृदुचूर्णांजन ।

शिलायांरसकंपिष्ट्वासम्यगाप्लाव्यवारिणा ॥ गृह्णीयात्तज्जलंसर्वं
त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ ११० ॥ शुष्कंचतज्जलंसर्वंपर्पटीसन्निभं

भवेत् ॥ विचूर्ण्यभावयेत्सम्यक्त्रिवेलंत्रिफलारसैः ॥ १११ ॥
कर्पूरस्यरजस्तत्रदशमांशेननिक्षिपेत् ॥ अंजयेन्नयनेतेनसर्वदो-
षहरंहितत् ॥ ११२ ॥ सर्वरोगहरंचूर्णंचक्षुषोःसुखकारिच ॥

अर्थ--खपरियाको पत्थरके खरलमें उत्तम रीतिसे खरल करके काजल समान वारीक चूर्ण करे। पश्चात् उस चूर्णको जलमें डालके मिलाय देवे फिर उस जलको नितारके दूसरे पात्रमें निकाल लेवे और उस पात्रमें जो नीचे खपरियाके बडे २ टुकडे रह गये हों उनको दूर रटक देवे। फिर उस नितारे हुए पानीको दूसरे पात्रमें करके सुखायले इस प्रकार करनेसे उस खपरियाके चूर्णकी पपडी जम जावेगी, उसको निकालके चूर्ण करे। उस चूर्णको त्रिफलेके काढकी तीन भावना देवे। पश्चात् उस चूर्णका दशवां भाग भीमसेनी कपूर मिलायके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो सर्व दोष तथा सर्व रोग दूर होकर नेत्रोंको सुख होय। खपरियाको वैद्य परीक्षा करके लेवे। (यह मुम्बईमें मिलती है) ॥

सर्वनेत्ररोगोंपर सौवीरांजन।

अग्नितप्तंचसौवीरंनिषिंचेत्रिफलारसैः ॥ ११३ ॥ सप्तवेलंतथा
स्तन्यैःस्त्रीणांसिक्तविचूर्णितम् ॥ अंजयेन्नयनेतेनप्रत्यहंचक्षुषो-
र्हितम् ॥ ११४ ॥ सर्वानक्षिविकारांस्तुहन्यादेतन्नसंशयः ॥

अर्थ--सुरमेको अग्निमें तपायके उसपर त्रिफलेके काढेको छिरक देवे। जब शीतल हो जावे तब फिर अग्निमें तपावे और त्रिफलेका काढा छिडकके शीतल करे। इस प्रकार सात वार करे तथा इसी प्रकार सात वार स्त्रीका दूध छिडकके शीतल करे। फिर इसको बहुत वारीक पीसके सलाईसे अञ्जन करे तो यह अञ्जन नेत्रोंको बहुत हितकारी होय इसमें सन्देह नहीं है ॥

शीशेकी सलाई बनानेकी विधि।

त्रिफलाभृंगशुंठीनांरसैस्तद्वच्चसर्पिषा ॥ ११५ ॥
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैःसिक्तोनागःप्रतापितः ॥
तच्छलाकाहरत्येवसर्वान्नेत्रभवान्गदान् ॥ ११६ ॥

अर्थ-त्रिफलेका काढा, भांगरेका रस, शुंठिका काढा, घी, गोमूत्र, सहत और बकरीका दूध, इन एक एकमें सात २ बार शीशेको बुझावे। फिर उस शीशेकी सलाई बनावे। इस सलाईको नेत्रोंमें फेरा करे तो संपूर्ण नेत्रके रोग दूर होवें ॥

प्रत्यंजन करनेकी विधि।

गतदोषमपेताश्रुसंपश्यन्सम्यगंभसि ॥
प्रक्षाल्याक्षियथादोषंकार्यंप्रत्यंजनंततः ॥ ११७ ॥

अर्थ--उस शीशेकी सलाईको नेत्रोंमें फेरनेसे दोष दूर हो नेत्रोंसे पानी निकल जानेके पश्चात् रोगी क्षणमात्र शीतल जलको देखे फिर उसके नेत्र जलसे धोयके नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे। वह प्रत्यंजन आगे इसी ग्रन्थमें लिखा है ॥

सदोष नेत्र होनेसे निषेध।

नवानिर्गतपोषेऽक्षिणधावनंसंप्रयोजयेत् ॥
प्रत्यंजनंतीक्ष्णतप्तेनेत्रेचूर्णंप्रसादनः ॥ ११८ ॥

अर्थ--नेत्रोंसे जबतक दोष निःशेष न निकले तबतक नेत्रोंको जलसे नहीं धोवे तथा तीक्ष्ण अञ्जन करके नेत्र संतप्त होनेसे उसमें प्रत्यंजन चूर्ण लगावे। वह आगेके श्लोकमें कहा है अथवा प्रसादन चूर्ण नेत्रोंमें लगावे ॥

प्रत्यंजनचूर्ण।

शुद्धेनागेद्रुतेतुल्यंशुद्धंसूतंविनिक्षिपेत् ॥
कृष्णांजनंतयोस्तुल्यंसर्वमेकत्रचूर्णयेत् ॥ ११९ ॥
दशमांशेनकर्पूरंतस्मिंश्चूर्णेप्रदापयेत् ॥
एतत्प्रत्यञ्जनंनेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ १२० ॥

अर्थ--शीशेको शुद्ध करके अग्निपर पतला करे। तथा शीशेका समभाग शुद्ध किया हुआ पारा लेकर उस तपे हुए शीशेमें मिलाय देवे पश्चात् इन दोनोंका समान भाग सुरमा लेके दोनोंमें मिलाय दे। फिर सबका चूर्ण करके उस चूर्णका दशवां हिस्सा भीमसेनी कपूर उस चूर्णमें मिलावे। इसको प्रत्यञ्जन चूर्ण कहते हैं। इस करके संपूर्ण नेत्ररोग दूर होते हैं तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके समान गुण कर्ता है ॥

सर्वविषपर अंजन।

जयपालस्यमज्जांचभावयेन्निंबुकद्रवैः ॥
एकविंशतिवेलंततोवर्तिंप्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥
मनुष्यलालयाघृष्ट्वाततोनेत्रेतयांजयेत् ॥
सर्पदष्टंविषंजित्वासञ्जीवयतिमानवम् ॥ १२२ ॥

अर्थ--जमालगोटेके भीतरकी मज्जा अर्थात् बीजोंके भीतरका बीज उसको नींबूके रसकी २१ इकीस पुट देकर बारीक पीस लंबी गोली बनावे पश्चात् उसको मनुष्यकी लारमें घिसके नेत्रोंमें अञ्जन करे तो सर्पके काटनेसे जो विषबाधा होय वह दूर होकर मनुष्य सावधान होय ॥

---

[१] सुवर्णादि धातुओंका शोधन मध्यखंडमें लिखा है उसी जगह शीशेका शोधन है सो जानना अथवा शीशेकी सलाई बनानेमें जिस प्रकार शुद्धि लिखी है उस प्रकार करनी चाहिये।

हाथोंकी हथेलीसे नेत्र पोंछनेके गुण ।

भुक्त्वापाणितलंघृष्ट्वाचक्षुषोर्यदिदीयते ॥
जातारोगाविनश्यंतितिमिराणितथैवच ॥ १२३ ॥

अर्थ—भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धो गीले हाथोंकी दोनों हथेली आपसमें घिसके नेत्रोंमें लगावे तो उत्पन्न हुए रोग तथा तिमिर रोग ये दूर होवें ॥

शीतांबुपूरितमुखः प्रतिवासरंयः कालत्रयेणनयनद्वितयंजलेन ॥ आसिंचतिध्रुवमसौनकदाचिदक्षिरोगव्यथाविधुरतांभजतेमनुष्यः ॥ १२४ ॥

अर्थ—प्रतिदिन दिनमें तीन वार शीतल जलसे मुखको भरके शीतल जलसे नेत्रोंको तीन वार छिडके तो अतिदुःख देनेवाली नेत्ररोगसंबन्धी पीडा वह कभी भी नहीं होवे ॥

ग्रन्थको समुद्रत्वसूचनापूर्वक स्वाभिमानका परिहार ।

आयुर्वेदसमुद्रस्यगूढार्थमणिसंचयम् ॥
ज्ञात्वाकैश्चिद्बुधैस्तैस्तुकृताविविधसंहिताः ॥ १२५ ॥
किञ्चिदर्थंततोनीत्वाकृतेयंसंहितामया ॥
कृपाकटाक्षविक्षेपमस्यांकुर्वंतुसाधवः ॥ १२६ ॥

अर्थ—समुद्रके समान (दुरवगाहन) आयुर्वेद तत्संबन्धी जो मणिके समान गूढार्थ उनके समुदायोंको उत्तम प्रकार जानके अग्निवेश चरकादिक मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारकी जो संहिता की हैं उन सब संहिताओंका कुछ २ सारांश लेकर यह शार्ङ्गधरसंहिता की है । इसपर महात्माजन कृपा करके अवलोकन करो ॥

ग्रन्थ पढनेका फल ।

विविधगदार्तिदरिद्रनाशनंयाहरिरमणीवकरोतियोगरत्नैः ॥
विलसतुशार्ङ्गधरसंहितासाकविहृदयेषुसरोजनिर्मलेषु ॥ १२७ ॥

अर्थ—योग कहिये काढे, चूर्ण, गुटिका, अवलेह इत्यादिक येही हुए रत्न इन करके अनेक प्रकारके ज्वरादिक जो रोग तत्संबन्धी पीडारूप जो दरिद्र उसको दूर करनेवाली ऐसी यह शार्ङ्गधरसंहिता कमलके समान निर्मल कविके हृदयमें शोभित होवे । इस विषयमें दृष्टान्त है कि, जैसे लक्ष्मी अनेक प्रकारके रत्नों करके अपने आश्रित (भक्तजनों) के दरिद्रको दूर करती है तैसेही यह संहिता भी है ॥

---

१ शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ । भोजनांते स्मरेन्नित्यं चक्षुस्तस्य न हीयते ।

अल्पायुषामल्पधियामिदानींकृतंसमस्तश्रुतिपाठशक्ति ॥
तदत्रयुक्तंप्रतिबीजमात्रमभ्यस्यतामात्महितप्रयत्नात् ॥ १२८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डः परिपूर्णः।

अर्थ-कलियुगमें प्रायः मनुष्य अल्पायुषी तथा अल्पबुद्धिवाले हैं इसीसे लोग (प्राणी) सर्व आयुर्वेद पढनेमें समर्थ नहीं हैं अतएव इस युगमें आत्माको हितकारी योग्य सारांशरूप ऐसा जो यह तन्त्र उसका बडे प्रयत्न करके अभ्यास करो॥ इति शा०सं० त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

इति श्रीमाथुरपाठकज्ञातीयभारद्वाजकुलकैरवानन्ददायिराकेशश्रीकृष्णलाल-
पुत्रदत्तरामनिर्मिता शार्ङ्गधरसंहितामाथुरभाषाटीका समाप्ता ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापखाना, कल्याण-मुंबई.

[illegible]

१ [illegible] २० [illegible]

२ [illegible] श्री० [illegible]

श्री० एस० सोनपट [illegible]

[illegible]

३ [illegible]

[illegible]

[illegible]

४ [illegible]

५ [illegible]

[illegible] पृ. ५४६

सं० ३०६